हिन्दी
विश्व-भारती

हिन्दी प्रचार-भारती

१३२६
१

प्रधान संपादक

श्रीनारायण चतुर्वेदी, एम० ए० (लंदन)

शिक्षा-प्रसार अफसर, संयुक्त प्रांत

संयुक्त संपादक

कृष्णवल्लभ द्विवेदी, बी० ए०

सहयोगी लेखक आदि

डा० गोरखप्रसाद, डी० एस-सी० (एडिनबरा), एफ़० आर० ए० एस०, रीडर, गणित, प्रयाग विश्वविद्यालय।

श्री० भगवतीप्रसाद श्रीवास्तव, एम० एस-सी०, एल-एल० बी०, लेक्चरर, भौतिक विज्ञान, किशोरी रमण इंटरमीडिएट कालेज, मथुरा।

श्री० मदनगोपाल मिश्र, एम० एस-सी०, लेक्चरर, रसायन-विज्ञान, कान्यकुब्ज इंटरमीडिएट कालेज, लखनऊ।

श्री० वासुदेवशरण अग्रवाल, एम०ए०,एल-एल० बी०, क्यूरेटर, प्राविंशियल म्यूज़ियम, ऑफ आर्कियालाजी, लखनऊ।

श्री० रामनारायण कपूर, बी० एस-सी० (मेटल०), मेटलर्जिस्ट, नेशनल आयर्न एण्ड स्टील कंपनी लि०, बेलूर।

डा० शिवकण्ठ पाण्डेय, डी० एस-सी०, लेक्चरर, वनस्पति-विज्ञान, लखनऊ-विश्वविद्यालय।

श्री० श्रीचरण वर्मा, एम० एस-सी०, एल-एल० बी०, लेक्चरर, जीव-विज्ञान, प्रयाग-विश्वविद्यालय।

श्री० सुरेन्द्रदेव बालुपुरी।

श्री० सीतलाप्रसाद सक्सेना, एम० ए०, बी० काम०, लेक्चरर, अर्थशास्त्र, लखनऊ-विश्वविद्यालय।

डा० रामप्रसाद त्रिपाठी, एम०ए०,डी० एस-सी०(लंदन), रीडर, इतिहास, प्रयाग-विश्वविद्यालय।

डा० राधाकमल मुकर्जी, एम० ए०, पी-एच० डी०, प्रोफेसर, समाज-विज्ञान, लखनऊ-विश्वविद्यालय।

श्री० वीरेश्वर सेन, एम०ए०, हेडमास्टर, गवर्नमेंट स्कूल ऑफ आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट्स, लखनऊ।

श्री० ब्रजमोहन तिवारी, एम० ए०, एल० टी०, लेक्चरर, कान्यकुब्ज इंटरमीडिएट कालेज, लखनऊ।

डा० सत्यनारायण शास्त्री, पी-एच० डी (हाइडलबर्ग)।

डा० डी० एन० मजूमदार, एम० ए०, पी-एच० डी० (कैंटब), पी० आर० एस०, एफ़० आर० ए० आई०, लेक्चरर, मानव-विज्ञान, लखनऊ-विश्वविद्यालय।

श्री० श्यामसुन्दर द्विवेदी, बी० ए०, साहित्यरत्न।

डा० विद्यासागर दुबे, एम० एस-सी०, पी-एच० डी०, (लंदन), डी० आई० सी०, अध्यक्ष, ग्लास-टेकनालाजी डिपार्टमेंट, काशी-हिंदू-विश्वविद्यालय।

डा० इबादुर रहमान खाँ, पी-एच० डी० (लंदन), प्रिंसिपल, बेसिक ट्रेनिंग कालेज, इलाहाबाद।

श्री० कुँवर सेन, एम० ए० (कैंटब), बार-एट-लॉ; जूडीशियल मिनिस्टर, जोधपुर स्टेट।

श्री० भैरवनाथ झा, बी०एस-सी०, बी० एड० (एडिन०), इंस्पेक्टर ऑफ स्कूल्स, यू० पी०।

प्रकाशक

राजराजेश्वरप्रसाद भार्गव,

एजूकेशनल पब्लिशिङ्ग कंपनी लिमिटेड,

चारबाग़, लखनऊ.

विषय-सूची

विश्व की कहानी

... सामर्थ्य किसी में न रहा, तब

पृथ्वी की कहानी

मनुष्य की कहानी

मनुष्य की कहानी (क्रमशः)

हमारा मस्तिष्क

मानव समाज

इतिहास की पगडंडी

प्रकृति पर विजय

मनुष्य की कलात्मक सृष्टि

मनुष्य की कहानी (क्रमशः)

साहित्य-सृष्टि

देश और जातियाँ

भारतभूमि

मानव विभूतियाँ

अमर कथाएँ

क्या, क्यों और कैसे

वक्तव्य और निवेदन

मंगलमूर्त्ति भगवान् की कृपा से आज हम हिन्दी-संसार के सन्मुख 'हिन्दी विश्व-भारती' लेकर उपस्थित हो रहे हैं। इस आयोजन में हम कितने सफल हुए हैं—इसका निर्णय हम अपने कृपालु और मर्मज्ञ पाठकों के ऊपर छोड़ते हैं। हम यहाँ पर केवल अपने उद्देश्यों और अभिलाषाओं के विषय मे कुछ निवेदन करके संतोष कर लेंगे।

हिन्दी जिस गति से उन्नति कर रही है उसको देखकर आश्चर्य होता है। उसे किसी भी युग मे अन्य भाषाओं के समान राज्य का आश्रय प्राप्त नहीं हुआ। प्रत्युत् उसकी उन्नति में अनेक बाधाएँ होती गईं। फिर भी हिन्दी का आन्दोलन वेग और गति पकड़ता गया। उसका एकमात्र कारण यही है कि यह आन्दोलन वास्तव मे जनता का आन्दोलन है और उसके लिए कितने ही प्रतिभाशाली व्यक्तियों और विद्वानों ने त्याग और लगन के साथ सतत परिश्रम किया है। वे पुरस्कार की अपेक्षा जनता और साहित्य की सेवा मे आनन्द और संतोष अनुभव करते रहे हैं। उन्हीं असंख्य ज्ञात और अज्ञात सेवकों के कारण आज हिन्दी इस अवस्था मे पहुँच गई है कि उसका साहित्य ज्ञान और विज्ञान की सभी शाखाओं में उन्नति कर रहा है। वह प्रगतिशीलता में भारत की किसी भाषा से पीछे नहीं है।

प्राचीन साहित्य में तो उसका उच्च स्थान निश्चित ही है, आधुनिक कलात्मक साहित्य का भी उसमे बाहुल्य है। यह बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि हिन्दी का साहित्य एकांगी नहीं प्रत्युत् बहुमुखी है। यदि उसमें उच्च कोटि की साहित्यिक पत्रिकाएँ हैं तो साथ ही 'विज्ञान' और 'भूगोल' के समान वैज्ञानिक पत्र और 'ना० प्र० पत्रिका' के समान अन्वेषण-संबंधी पत्र भी हैं। हिन्दी-जनता की रुचि बहुत ही विस्तृत और सर्वतोमुखी है। आज हिन्दी-जनता की ज्ञान-पिपासा अतृप्त हो रही है। वह उन्नति के जिस मार्ग पर अग्रसर है उसके लिए उसे आत्मचिंतन से लेकर भौतिक विज्ञान के चमत्कार और प्रकृति के रहस्यों की जानकारी तक की आवश्यकता है। हिन्दी के सेवकों का कर्तव्य है कि वे हिन्दी-जनता की इस सराहनीय रुचि और सदिच्छा की पूर्त्ति करें। यही नहीं, आज के संसार की आवश्यकताएँ इस प्रकार की हैं कि हमारे देशवासियों को आधुनिक संसार की गति-विधि से भली भाँति परिचित रहना चाहिए। उन्हें संसार के राष्ट्रों मे अपना उचित स्थान प्राप्त करना और अपने स्थान की मर्यादा की रक्षा करनी है। इसके लिए उनके पास प्राचीन वैभव और अपने आत्मज्ञान की विभूति तो है ही, अब उन्हे केवल इस जड़वादी संसार के मानव-जनित विज्ञान के ज्ञान की आवश्यकता है।

उसी अभाव की पूर्त्ति के लिए 'हिन्दी विश्व-भारती' का आयोजन किया गया है। यह उद्योग किया गया है कि हमारे हिन्दी-भाषा-भाषी विद्वान् ही इस यज्ञ के होता बनें। वे ही हिन्दी जनता की रुचि और आवश्यकताओं से भली भाँति परिचित हैं। वे ही हमारी सुंदर और कोमल भाषा मे अपने भावों को भली भाँति व्यक्त कर सकते हैं। हमे उन्हीं के अनुभव और विद्वत्ता का लाभ उठाना चाहिए। हमें इस बात का गर्व है कि हम अपने देश के इतने सम्माननीय विद्वानों का सहयोग प्राप्त कर सके हैं।

'हिन्दी विश्व-भारती' ज्ञान-विज्ञान का केवल कोश ही नहीं, यह आधुनिक ज्ञान का ऐसा भण्डार है जो हमारे देशवासियों के लिए हस्तामलक का काम करेगा। वह विद्यार्थियों ही के लिए नहीं, किंतु वयस्कों के काम की भी पुस्तक है। उससे उनका मानसिक मनोरंजन ही नहीं, किंतु उनकी ज्ञान-तृषा भी शांत होगी।

यह पहला भाग आपके सामने उपस्थित है। इससे आपको विदित होगा कि उसको सुन्दर और उपयोगी बनाने मे कुछ उठा नहीं रखा गया। केवल चित्रों के संग्रह करने ही मे प्रचुर धनराशि का व्यय करना पड़ा है। सुन्दर छपाई का विशेष प्रबंध किया गया है, और बहुत अच्छे कागज के लिए विशेष आयोजन किया गया है। सारांश, इसका बाह्य और अभ्यतर—दोनो ही को—सुन्दर और श्रेष्ठ बनाने में हम प्रयत्नशील हैं, और सदैव बने रहेंगे। यह सब होते हुए भी इस देश की आर्थिक अवस्था को देखते हुए इसका मूल्य बहुत कम रक्खा गया है। इसके प्रकाशन के लिए जो लिमिटेड कम्पनी बनी है, उसका मुख्य उद्देश्य इस पुस्तक से लाभ उठाना नही. प्रत्युत् जनता के सामने एक आदर्श प्रकाशन रखना है।

हम हिन्दी-जनता के प्रति अपना कर्त्तव्य भरसक कर रहे है। हमे आशा ही नही किन्तु विश्वास भी है कि हमारे कृपालु पाठक और हिन्दी के शुभचिनक तथा जनता मे ज्ञान-प्रसार के इच्छुक महानुभाव भी इस प्रकाशन के प्रति अपना कर्त्तव्य पालन करके हिन्दी और जनता की सेवा करेंगे।

अत में हमे उन सभी महानुभाव सज्जनों और संस्थाओं—विशेषकर अपने सहयोगी लेखकों, संपादकों, चित्रकारों, तथा फोटो-चित्र आदि से सहायता करनेवाली भारतीय और विदेशी वैज्ञानिक समितियों, वेधशालाओ और व्यापारिक संस्थाओं—के प्रति अपना आभार प्रदर्शित करना है, जिनके अमूल्य सहयोग, सत्परामर्श और सहानुभूति के बिना हमारे लिए इस आयोजन को सफल बनाना कठिन ही नही, असंभव होता।

लखनऊ
श्रावण, १९९६ वि०

श्रीनारायण चतुर्वेदी

हिन्दी विश्व-भारती—क्या और क्यों ?

अपनी इस प्रगति की यात्रा में हम मानव आज दिन उस स्थिति पर आ पहुँचे हैं, जहाँ से भविष्य की ओर पाँव बढाने के पहले एक बार अपने आसपास की इस दुनिया और स्वयं अपने आप पर भी एक विहंगम दृष्टि डाल लेना हमारे लिए नितान्त आवश्यक हो गया है।

हमें देख लेना है, कितना रास्ता हम पार कर चुके, इस समय हम किस परिस्थिति में हैं और इस जगह से यह दुनिया हमें कैसी दिखाई दे रही है। हमारे लिए यह अनिवार्य रूप से आवश्यक है, क्योंकि अब हम यह दिन पर दिन अनुभव करने लगे हैं कि देह और अवयव की तरह इस दुनिया से हमारा रक्त और मांस का संबंध है— इसकी ओर से मुँह चुराकर या इसके प्रति आँखे बन्द कर पल भर के लिए भी हम अपनी सभ्यता की इमारत को खडा नहीं रख सकते।

मुश्किल से कुछ हज़ार, या संभव है कुछ लाख, वर्ष अभी बीत पाये होंगे, जब सहसा अपने हमजोली दूसरे जीवधारियों को पीछे छोड़कर हम एक दिन अपनी इस पगडंडी पर चल पडे थे। हमारे मन मे इस अद्भुत दुनिया को जानने और समझने की एक अजीब उत्कंठा जग उठी थी, और भीतर ही भीतर कुछ प्रश्न हमारे मस्तिष्क में खलबली मचाने लगे थे। अपने वे आरंभ के प्रश्न तो किसी न किसी तरह हमने हल कर लिये। पर लाख कोशिश करने पर भी अपनी उस प्रबल ज्ञान की प्यास को हम न दबा पाये। ज्यों-ज्यों पुरानी गुत्थियाँ सुलझती गई, नए-नए प्रश्न आ आकर हमारे सामने जुटते गये। और आज भी, जब कि अपने पेचीदे यंत्रों से हमने इस दुनिया के रहस्य की एक झाँकी देख पाने मे सफलता पा ली है, अपने इतिहास के प्रभातकाल की ही तरह ज्ञान की एक प्रकाश-रेखा के लिए हम ज्यों-क-त्यों अंधकार मे हाथ फटफटाते हुए लगातार पुकार रहे हैं—"तमसो मा ज्योतिर्गमय" (इस अंधकार से हमें प्रकाश की ओर ले चल)।

लडखडाते और ठोकरें खाते जब पहले-पहल हम जंगलो से वाहर निकले थे तब तो यह दुनिया हमारे लिए कोई बहुत बडी न थी। साथी-संगी कुछ जानवर, पानी से घिरी थोडी-सी धरती और सिर पर चमकते हुए चाँद, सूरज और जुगनू-जैसे कुछ हजार तारे—यही थी हमारी उन दिनो की दुनिया! किन्तु पिछले दो-तीन हज़ार वर्षों की अवधि ही में हमने अपने औज़ारों और यंत्रो से मानो फैलाकर इस छोटी सी दुनिया को कितनी लम्बी-चौड़ी बना लिया है! और इसके साथ-ही-साथ स्वयं हमने भी जिस अद्भुत नवीन सृष्टि की रचना कर डाली है, वही क्या कम अचरज की वस्तु है! चींटी से हाथी बनकर आज हम न सिर्फ़ संसार के विकास की धारा में बहते हुए आगे बढ रहे हैं, बल्कि अपनी सृजन-शक्ति द्वारा उसे गति देते हुए किसी अज्ञात लक्ष्य की ओर मोडते भी जा रहे हैं। उस प्रेरक शक्ति का मूल क्या हमारा वह ज्ञान ही नहीं हैं जिसे हमने अपनी जिज्ञासा के फल के रूप में पाया है?

युग-युग की कठोर साध और पराक्रम से उपार्जित यह अनमोल ज्ञान-राशि ही हमारी इस जीवन-संग्राम-यात्रा का एकमात्र संबल है। इसी पर हमारे वर्त्तमान या भावी जीवन का स्वरूप निर्भर है। भारत में तो आज दिन हमें इस संबल की सबसे अधिक आवश्यकता है; क्योंकि यहाँ इस समय हम एक महान् युगान्तर की घड़ियो मे से गुज़र रहे हैं। राजनीतिक, सामाजिक और सांपत्तिक दासता की बेडियों में जकड़ा हुआ भारत आज मुक्ति के लिए जीवन-मरण के घोर संग्राम में प्रवृत्त है। किन्तु क्या उसकी यह साध कभी पूरी हो पायगी यदि वह दासता के सबसे घोर रूप अविद्या और अज्ञानांधता के चंगुल से अपनी मुक्ति न कर पाया? ज्ञान का यह प्राचीन रश्मिकेन्द्र आज निरक्षरता के घोर शाप से ग्रस्त है। उसके अस्त्र शस्त्र कुंठित हो गये हैं—वे पुराने पड गये हैं। और ज़ंग ने उन्हें चाट खाया है। फिर भी मोहवश वह इन्ही टूटे हथियारों को लेकर जीवित रहने की विडम्बना मे फँसा हुआ है! क्योकर इस घोर मृत्युरूपी अविद्या-पाश से उसका छुटकारा हो?

भारत ही के आर्षग्रंथों में वर्णित एक प्रसंग मे इस प्रश्न का बडा महत्त्वपूर्ण उत्तर निहित है। कहते हैं, एक बार जब असुरो (या अविद्या की शक्तियों) के आतंक से विश्व की रक्षा करने का सामर्थ्य किसी में न रहा, तब

अंत से ज्ञान की अधिष्ठात्री वीणापाणि भारती (विद्या या ज्ञान की शक्ति) ने ही स्वय रणभूमि मे उतरकर ससार की रक्षा की थी। आज भी जब कि अपने ही पैदा किए हुए अपने मस्तिष्क के जालो के कारण हमारी दृष्टि धुँधली पड गई है और विचारो मे एक अजीब सकीर्णता छा गई है, जब कि व्यक्तिगत स्वार्थपरता ही हमारा एकमात्र व्यवसाय हो गया है और उसके कारण यह दुनिया हमारे लिए दुःखदैन्य का आगार बन गई है जब कि ज्ञान-विज्ञान का भी उपयोग मुख्यतया मानव द्वारा मानव के शोषण और हत्या के लिए ही किया जाने लगा है और एक दृष्टि से मानव-जाति फिर से वर्बरावस्था की ओर अग्रसर होती दिखाई देने लगी है—पारस्परिक सघर्ष और सास्कृतिक पतन की इस घडी मे हम सिवा उसी अविद्यानाशिनी ज्ञानमूर्त्ति भारती के किसका आह्वान करे ? हमारी यह जडता और अज्ञान ही तो हमारे इस समस्त दु ख-दैन्य और सघर्ष की जड है। इससे छुटकारा पा जाने पर क्या फिर इस बात को समझना हमे कठिन होगा कि सब मनुष्य समान हैं और सबके हित ही मे प्रत्येक का सच्चा कल्याण है ?

यही है 'हिन्दी विश्व-भारती' की कहानी का प्रारभ। 'हिन्दी विश्व-भारती' कोरा एक ग्रंथ ही नहीं, यह युग-परिवर्त्तन की घडियो मे से गुजर रहे हम भारतवासियो की अंध विचारो या कूपमण्डूकता से मुक्ति पाने के लिए जगी हुई एक नयी साध है। यह हमारे लिए मानव-जाति के सचित ज्ञान को अपनी ही भाषा मे पाने का प्रयास ही नहीं, वरन् अपने मस्तिष्क मे छाये हुए विचारसंकीर्णता के जालो को झाड़-बुहार कर एक नवीन वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनाने और आनेवाली पीढी के लिए रास्ता साफ कर जाने की एक क्राति का प्रतीक है।

अब हम कुएँ मे मेढक बन कर नहीं रहने के। अनंत आकाश मे चिनगारियो की तरह चमकते हुए चाँद, सूरज, और तारे, क्षण भर मे उमड-घुमडकर सिर पर छा जाने वाले बादल और उनमे कौंधती हुई बिजली, बादलो से भी ऊँचे सिर उठाए हुए हिमान्वित गिरिशिखर और उछल-उछलकर उनसे होड करती हुई सागर की लहरें; पृथ्वी को एक अजायबघर-सा बनाये हुए अनगिनत जानवर और पेड-पौधे, और इन सबसे कहीं अधिक निराली और आश्चर्य-जनक वर्बरावस्था के युग से हवाई जहाज और कल-कारखानो के इस युग तक बढ़ा चला आ रहा स्वयं हमारा ही अद्भुत् जीता-जागता जुलूस, एव मानव द्वारा चिरंतन सौंदर्य और अनत की खोज, कला का विकास, और आत्म-ज्ञान की प्राप्ति के सफल प्रयास—ये सब आज अपना रहस्य खोलने को बरबस हमे अपनी ओर खीच रहे है। उनको जान लेने की प्रबल उत्कंठा हमारे मन मे जग उठी है। किंतु इन सबका ज्ञान क्योकर हमे सुलभ हो जब तक अपनी ही भाषा मे, अपने ही विश्वसनीय पथ-प्रदर्शको द्वारा और अपने ही वातावरण के अनुरूप और अनुकूल रूप मे इनकी कहानी हमे पढने को न मिल सके ?

'हिन्दी विश्व-भारती' आज उसी मनचाहे रूप में विश्व, पृथ्वी और मनुष्य की संपूर्ण कहानी हमारे सामने ला रही है।

—कृष्णवल्लभ द्विवेदी

विश्व की कहानी
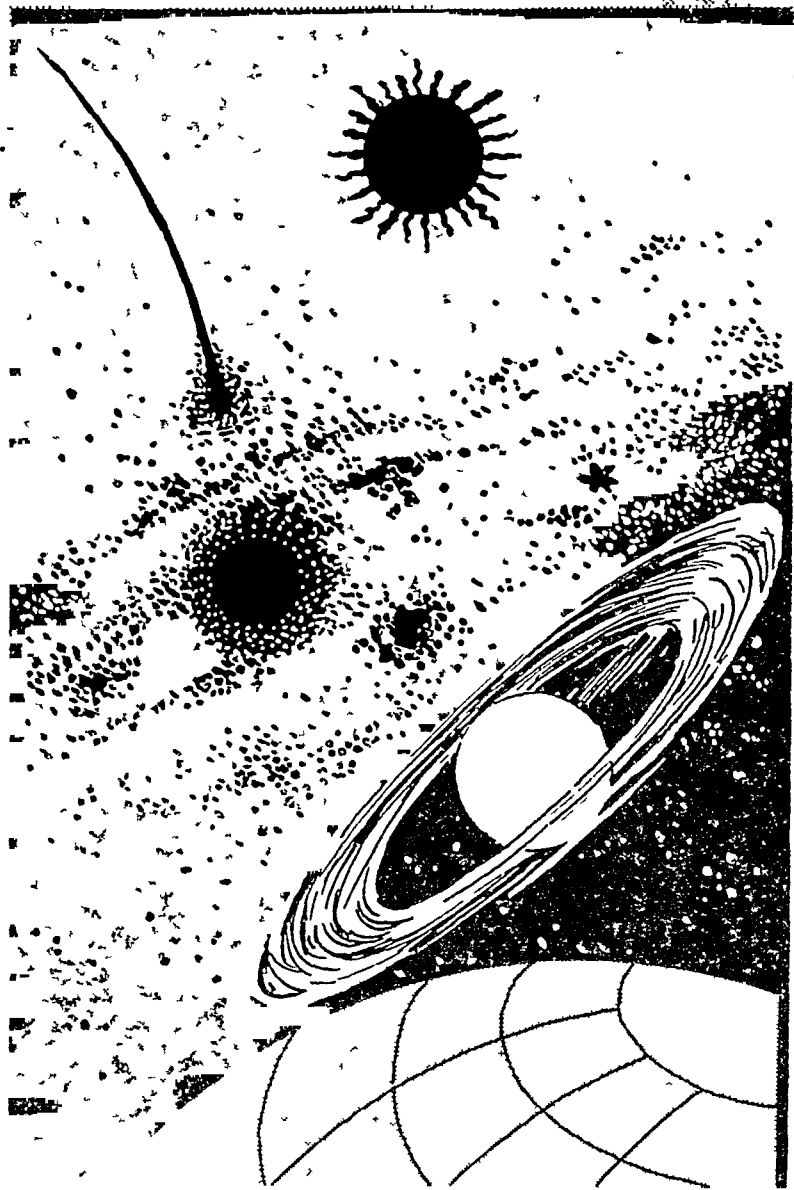
अनन्त ब्रह्माण्ड की एक झलक

जब से मनुष्य को दूरदर्शक के रूप में मानो दिव्य दृष्टि प्राप्त हुई है, एक के बाद एक नवीन क्षेत्र सृष्टि के सुदूर धुंधले क्षितिज से ऊपर उठते हुए उसके सामने फैलने लगे हैं, जिससे उनके मन पर अब इस बात की गहरी छाप जम गई है कि यह विश्व सचमुच ही अनंत है। ऊपर मृगशीर्ष (Orion) नक्षत्रमण्डल में दिखाई पड़नेवाली महान् नीहारिका का माउण्ट विल्सन के १०० इंच शीशेवाले दूरदर्शक से लिया गया एक चित्र है। नंगी आँखों से देखने पर यह नीहारिका शायद एक धुंधले बिन्दुमात्र-सी दिखाई पड़ेगी, किन्तु इसका आकार इतना बड़ा है कि यदि हम लगभग २० करोड़ मील व्यास के एक गोले की कल्पना करें, और तब ऐसे १० लाख गोलों की लम्बाई-चौड़ाई का अनुमान करें फिर भी उक्त नीहारिका की लंबाई-चौड़ाई के सामने यह अपरिमेय आकार भी तुच्छ होगा! और हमारे इस विश्व-ब्रह्माण्ड में हजारों ऐसी और इससे भी बड़ी नीहारिकाएँ हैं, जो आकाश में बिखरी पड़ी हैं, तथा इतनी दूरी पर हैं कि १ लाख ८६ हजार मील प्रति सेकंड की गति से चलनेवाले प्रकाश को भी वहाँ से पृथ्वी तक पहुँचने में दस से तीस लाख वर्ष तक लगते हैं! [फोटो 'माउण्ट विल्सन वेधशाला' की कृपा से प्राप्त।]

ज्योतिष—प्रारंभिक बातें

दृश्य जगत् के व्यापक रूप अनंत आकाश और उसमें एक दूसरे से लाखों-करोडो मील की दूरी पर शून्य मे चक्कर काटते हुए ग्रहों और नक्षत्रो की अचरज-भरी कहानी।

सूर्य और चन्द्रग्रहण, पुच्छल तारे या चमकती हुई उल्काएँ हमे आश्चर्य मे डाल देती हैं। हम सोचने लगते हैं कि तारे क्यों टूटकर गिरते हें, पुच्छल तारे क्या हैं; उनमे क्यो लबी-सी पूँछ होती है; सभी तारों मे पूँछे क्यो नही होती हैं, पुच्छल तारे कुछ दिनो मे अतर्धान क्यो हो जाते हैं; कैसे लोग पहले से ही बतला सकते हे कि ग्रहण किस दिन और किस समय लगेगा, इत्यादि।

परतु ज्योतिप-सबंधी साधारण बातें भी कुछ कम आश्चर्य-जनक नही हैं। किसी भी स्वच्छ अँधेरी रात मे तारो को देखो। कैसा सुंदर दृश्य आँखो के सामने उपस्थित होता है! फिर विचार करो कि इन्ही तारो के समान अन्य तारे पृथ्वी के अगल-बगल और नीचे भी हैं और उन्ही के बीच तुम पृथ्वी पर सवार होकर बडी तेज़ी से उडे चले जा रहे हो। असली बात यही है, पृथ्वी तारो के बीच आकाश मे प्रचड गति से सदा दौड रही है और तुम उस पर सवार हो! पृथ्वी हमको कितनी बडी जान पडती है, परतु इन तारो के सामने वह धूल के एक कण से भी छोटी है!

आकाश में दौड़ती हुई पृथ्वी

जिस पर सवार हम ६६,६०० मील प्रति घण्टे की गति से शून्य में यात्रा कर रहे हैं!

पाठशालाओ और विश्वविद्यालयो से जनता तक मे ज्ञान फैल जाने के कारण अब कई बातों पर हमे आश्चर्य नही होता, परतु प्राचीन मनुष्यों को ऐसी बाते भी अत्यंत रहस्यमयी जान पडती थी। जैसे सूर्य का प्रति दिन पूर्व मे उदय होना या ऋतुओं का क्रमानुसार नियमपूर्वक आते रहना, एक वर्ष मे कितने दिन होते हैं—कितने दिनों बाद वर्षा ऋतु फिर आयेगी—ऐसी मोटी बातो का पता लगाने मे भी हमारे पूर्वजो को अत्यत कठिनाई पडी थी।

आधुनिक विज्ञान ने अनेक बातो का पता लगा लिया है; परतु साथ ही अनेक नवीन समस्याएँ भी उपस्थित हो गई हैं, जिससे वैज्ञानिक भी आश्चर्यसागर मे डुबकियाँ खा रहे हैं। मनुष्य का स्वभाव ही ऐसा है कि वह जानना चाहता है—क्यों? कैसे? क्या हो रहा है? क्या होगा? जिससे प्रत्यक्ष लाभ हो रहा है, उसकी तो बात ही दूसरी है; परतु जिससे प्रत्यक्ष मे कोई लाभ होने की सभावना नही है, उसके जानने के लिए भी मनुष्य उत्सुक रहता है। सत्य क्या है, इसके जानने पर जो आनंद मिलता है, जो

तृप्ति मिलती है वही खोज के सारे परिश्रम का पुरस्कार है। ससार की मोह-ममता, नोच-खसोट में ज्ञान की खोज मनुष्य को ऊपर उठाती है और इस सबध में ज्योतिष के अध्ययन से बढ़कर शायद ही कोई दूसरा ध्येय हो सकता हो।

ज्योतिष का अध्ययन हमारे पूर्वजों के लिए वाञ्छित ही नहीं, आवश्यक भी था। पूजा-पाठ, खेती-बारी, बही-खाता, इन सभी के लिए ज्योतिष की मोटी-मोटी बातों का जानना आवश्यक था। परतु ज्योतिष की बाते किसी-न-किसी को प्रकृति से ही सीखना था और जो लोग इन विषयों की खोज करते थे, वे ऋषि और ज्ञानी कहलाते थे, उनका सर्वत्र आदर होता था। धीरे-धीरे सहिताएँ और सिद्धात बने, जिनके सहारे ग्रहण आदि तक टेढी बातो की भविष्यद्वाणी की जा सकती थी। ससार के अन्य देशों में भी इसी प्रकार ज्योतिष के ज्ञान की वृद्धि हुई। अति प्राचीन काल मे वाणिज्य खूब बढा-चढा था। लोग व्यापार के लिए दूर-दूर की यात्रा करते थे और इस प्रकार ज्ञान भी एक देश से दूसरे देश तक पहुँच जाता था। भारतवर्ष के अतिरिक्त बैबिलोनिया, चीन और मिस्र देश मे भी ज्योतिष का ज्ञान उच्च कोटि का था। इसके बाद यूनानियों ने इस विद्या मे बडी उन्नति की और वहाँ का ज्ञान भारतवर्ष में भी फैल गया।

सोलहवी शताब्दी मे दूरदर्शक का आविष्कार गैलीलियो ने किया। तब से ज्योतिष मे एक नवीन प्रकार का अध्ययन भी होने लगा। पहले सूर्य, चद्रमा और ग्रह कैसे चलते हैं, किस समय उनकी स्थिति आकाश मे कहाँ होगी, ग्रहण कब लगेगा, इत्यादि, बातो का अध्ययन होता था। दूरदर्शक के आविष्कार के बाद यह भी देखना सभव हो गया कि सूर्य और चद्रमा का आकार क्या है. उनके पृष्ठो पर क्या-क्या है, कौन-सा ग्रह किस आकार का है, इत्यादि। धीरे-धीरे उनकी नाप-तौल का भी ज्ञान प्राप्त हुआ। कई आश्चर्यजनक बातों का पता

आकाश मे पुच्छल तारे का अद्भुत दृश्य

यह हेली के सुप्रसिद्ध पुच्छल तारे का मई ६, १९१०, को लिया गया चित्र है, जब वह अंतिम बार दिखाई दिया था। [फोटो 'लिक वेधशाला' की कृपा से प्राप्त]

चला। शनि के चारो ओर एक वलय (छल्ला) है, शुक्र मे वैसी ही कलाएँ दिखलाई पडती हैं, जैसी चद्रमा मे. मगल मे धारियाँ दिखलाई पडती हैं, जो शायद नहरे हें। सभव है ये कृत्रिम हो और वहाँ जीवधारी भी हो इत्यादि।

गत साठ-सत्तर वर्षो मे ज्योतिष-सबधी अनुसधान ने दूसरा मार्ग पकडा है। अब आकाशीय पिडों की रासायनिक बनावट की जॉच होने लगी। जिस यत्र से इन आश्चर्यजनक आविष्कारों का सफल होना सभव हुआ, वह वही छोटा-सा शीशे का टुकडा है, जो झाड-फानूसों मे सजावट के लिए लगा रहता है। इसमे तीन पहले होती है और इसलिए त्रिपार्श्व कहलाता है। इसके द्वारा देखने से चक्रे रग-बिरगी दिखलाई पडती हैं और इन्ही रगो को देखने से आकाशीय पिडो की रासायनिक बनावट, तापक्रम इत्यादि का पता चला। इन अनुसधानो मे फोटोग्राफी से भी पूरी सहायता ली जाती है।

पिछले तीस-चालीस वर्षों मे तारो पर विशेष ध्यान दिया गया है। तारे ज्योतिषियों की दृष्टि मे पहले केवल बिन्दु-सरीखे थे। न उनमे गति थी कि वे गणित-ज्योतिषियो को प्रिय लगते और न वे इतने बडे थे कि उनकी विशेष जानकारी प्राप्त होने की सभावना देखकर भौतिक ज्योतिष-प्रेमी उनकी ओर झुकते। परतु अब ज्योतिषियों के यत्र इतने शक्तिशाली होते हैं और साथ ही अब गणित, भौतिक विज्ञान और रसायनशास्त्र का ज्ञान इतना बढ़ा-चढा है कि ऐसे रोचक प्रश्नों का भी उत्तर मिल गया है; जैसे, तारे गिनती मे कितने हैं; वे कितनी दूर हैं; वे कितने बड़े हैं; कितने भारी हैं; उनकी भौतिक और रासायनिक बनावट क्या है; वे किस प्रकार जन्म लेते, युवा होते और मरते हैं; हमारी पृथ्वी और सूर्य का जन्म संभवतः कैसे हुआ होगा, इत्यादि।

इनमें से प्रायः सभी प्रश्नों का उत्तर अत्यत आश्चर्यजनक है। पता चला है कि कुछ चमकीले तारे भी इतनी दूर हैं कि वहाँ से पृथ्वी तक प्रकाश के आने मे लाखो वर्ष लगते हैं। यद्यपि प्रकाश इतना शीघ्रगामी है कि वह केवल एक सेकंड मे १,८६,००० मील चल लेता है! ज्येष्ठा तारा इतना बड़ा है कि उसमे ७,००,००,००,००,००,००० पृथ्वियाँ समा जायँगी। कुछ तारे इतने हलके द्रव्य के बने है कि वे गुब्बारों मे भरे जानेवाले गैसों से कहीं अधिक हलके हैं, और इसके विपरीत कुछ तारे इतने ठोस हैं कि यदि कोई अपनी अँगूठी मे नग के बदले उनका एक टुकड़ा जड़वा ले तो अँगूठी तौल मे आठ मन की हो जायगी!

हमारा निकट पड़ोसी—मंगल ग्रह

जिस पर दिखाई पडनेवाली कृत्रिम-सी धारियों को कोई वैज्ञानिक नहरें बताता है और कोई हरे-भरे खेत या वन। इन्हीं के आधार पर वहाँ जीवधारियों के होने का भी अनुमान किया जाता है। [फ़ोटो 'माउण्ट विल्सन वेधशाला' की कृपा से प्राप्त]

प्रसिद्ध हास्यरस के लेखक मार्क ट्वेन ने अपनी कहानी 'कैप्टेन स्टॉर्मफील्ड की आकाश-यात्रा' मे एक घटना लिखी है, जिसमे अवश्य ही लेखक ने यथाशक्ति असीम अतिशयोक्ति की है। एक देवदूत गुब्बारे पर चढ़कर विश्व का नक़शा देखने गया, जो नाप मे रूहोड द्वीप (क्षेत्रफल लगभग १००० वर्ग मील) के बराबर था। अभिप्राय था सूर्य और इसके ग्रहों की स्थिति जानना। लौटने पर दूत ने कहा कि शायद नक़शे मे सौर जगत् था तो, पर उसे सदेह यह हो रहा था कि कही वह किसी मक्खी का चिह्न न रहा हो!

परंतु अतिशयोक्ति के बदले कहने मे कुछ कमी ही रह गई। आधुनिक अनुसंधानों के आधार पर बने सारे भारतवर्ष के बराबर विश्व के मानचित्र मे भी हमारा सौर जगत् केवल सुई की नोक के बराबर होगा। मार्क ट्वेन के

सूर्य-ग्रहण जिसके समय की ठीक-ठीक पूर्व सूचना हमारे भारतीय ज्योतिषी अपने गणित-ज्ञान के आधार पर सदियों से देते चले आ रहे हैं। यह सूर्य के सपूर्ण ग्रहण का चित्र है। सूर्य और चन्द्र के ग्रहण मनुष्य को आदि काल ही से आश्चर्य में डालते रहे हैं और इनके सम्बन्ध में हर देश में भिन्न-भिन्न किवदतियाँ प्रचलित हैं। [फोटो 'लिक वेध-शाला' की कृपा से प्राप्त।]

दूत को इस मानचित्र मे हमारे सौर जगत् का देख पाना भी कठिन होगा। परतु यदि वह कही इस चित्र मे पृथ्वी को देखना चाहे, तो आजकल के बडे-से-बडे सूक्ष्मदर्शक यंत्र लगाने पर भी वह पृथ्वी को न देख सकेगा। इतने बडे पैमाने पर भी पृथ्वी इतनी नन्हीं होगी।

निस्सदेह ज्योतिष अन्य विज्ञानों का पिता है। सूर्य, चद्रमा और नक्षत्रों के नियमित उदयास्त से, चद्रमा के विधियुक्त घटने-बढने से और जाडा, गरमी, बरसात आदि ऋतुओं के नियमानुसार लौटने से ही पहले-पहल मनुष्यों ने यह सीखा होगा कि इस परिवर्तनशील ससार मे कोई नियम भी है और नियमो का ज्ञान करना ही विज्ञान की उत्पत्ति का मूल कारण है। इसके अतिरिक्त जैसे तुच्छ धातुओं से सुवर्ण बनाने की खोज मे रसायनशास्त्र और रोगो से मुक्ति पाने की चेष्टा मे वैद्यकशास्त्र की उत्पत्ति

आकाश मे टूटती हुई उल्काएँ और उल्कापिण्ड—इस चित्र के दाहिनी ओर का पत्थर-जैसा पिण्ड आतिशबाज़ी की तरह आकाश मे टूटती हुई इन्ही उल्काओ का पृथ्वी पर गिरा हुआ एक अंश है।

सूर्य के प्रचण्ड स्वरूप की एक कल्पना

प्रकाश का जो चमकता हुआ गोला नित्य हमारी पृथ्वी के पूर्व क्षितिज पर उदय होते और पश्चिम में अस्त होते दिखाई देता है, वह वास्तव में हमारी इस पृथ्वी से कई गुना बड़ा एक प्रचण्ड आग का गोला है, जिसकी सतह पर हजारों मील ऊँची लपटें धू धू करती हुई अपना ताण्डव किया करती हैं। सूर्य ही हमारी इस दुनिया के प्रकाश और उष्णता का मूल स्रोत है, जिसके अभाव मे हमारी यह पृथ्वी जीवन और ज्योति दोनों से विहीन हो जायगी।

न-कुछ ज्योतिष अवश्य जानना चाहिए। बालक से लेकर बूढ़े तक सभी को ज्योतिष मे रुचि होती है और प्रत्येक शिक्षित मनुष्य से कभी-न-कभी ज्योतिष-सबधी साधारण प्रश्न कोई अवश्य कर बैठता है। अपने मन मे भी इस प्रकार की कई एक बातो के जानने की इच्छा उत्पन्न हुआ करती है। उदाहरणार्थ, कौन नही जानना चाहता कि पुरोहित लोग जो मेष, वृष, मिथुन, कर्क इत्यादि गिनते हैं, उसका अर्थ क्या है? तारे क्यो गिरते है और वे क्या है? पुच्छल तारा जो आकाश मे कभी-कभी आ जाता है, कहाँ से आता है और कहाँ लुप्त हो जाता है? आकाश-गगा क्या है? ग्रहो और नक्षत्रो मे भी प्राणी है अथवा नही? मगल तक कोई उड जा सकता है अथवा नही? विश्व की उत्पत्ति पर वैज्ञानिको का क्या मत है? क्या सचमुच चद्रमा पृथ्वी ही का एक टुकडा है? फलित ज्योतिष कहाँ तक सच है? हमारे पूर्वज कितना ज्योतिष जानते थे? इत्यादि। ऐसे प्रश्न अत्यत रोचक है। इन सबका उत्तर प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति को दे सकना चाहिए।

प्रस्तुत ग्रथ की ज्योतिष-सबधी लेखमाला को पढ़ने पर इन और ऐसे ही अन्य अनेक प्रश्नो का सतोषजनक उत्तर पाठक को मिल जायगा। इस लेखमाला मे ज्योतिष के उन सभी अगो पर विचार किया जायगा, जो सर्वसाधारण के समझने योग्य है। चित्रो को अधिक सख्या मे देकर पाठको के पास दूरदर्शक या अन्य यत्र न रहने की असुविधा को बहुत-कुछ मिटा दिया जायगा।
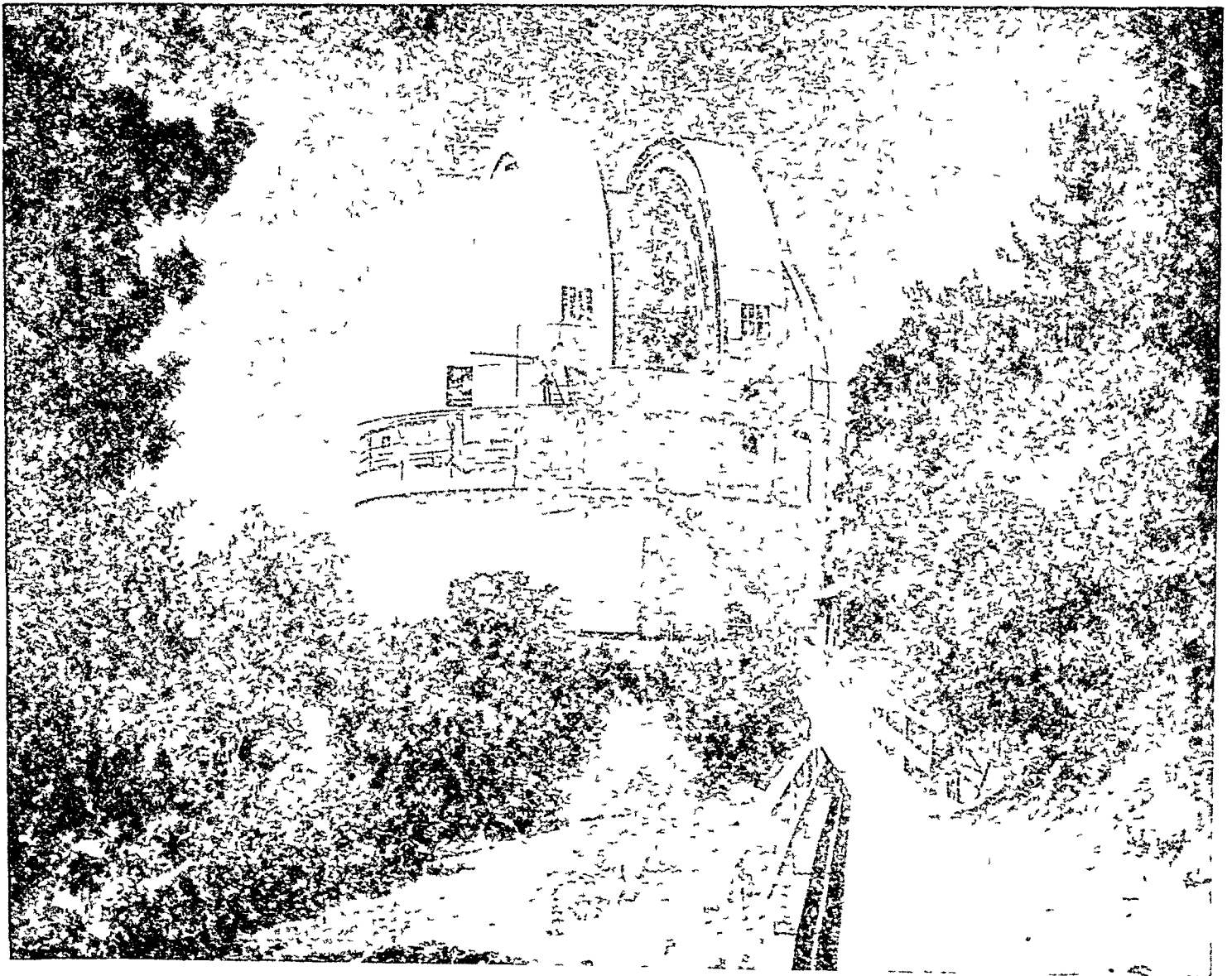
माउण्ट विल्सन की संसारप्रसिद्ध वेधशाला की मुख्य इमारत

जिसमे १०० इंच व्यास के शीशेवाला संसार का वर्तमान सबसे बडा दूरदर्शक रक्खा हुआ है। हमारा आज का ज्योतिष-संबंधी ज्ञान ऐसी ही वेधशालाओ में काम करनेवाले ज्योतिषियो के अनवरत परिश्रम का फल है। [फोटो 'माउण्ट विल्सन वेधशाला' की कृपा से प्राप्त]

'अणोरणीयान् महतोमहीयान्'

'सूक्ष्म से भी सूक्ष्म और महान् से भी महान्'—दार्शनिक की तरह आज वैज्ञानिक भी दूरदर्शक द्वारा करोडो मील दूर के अनगिनत नक्षत्रपुंजो तथा सूक्ष्मदर्शक द्वारा उतने ही अपरिमेय और अनंत अणु-परमाणुओं की एक साधारण-सी झलक देख पाकर ईश्वर के विराट् रूप के सम्बन्ध मे उपनिषदो के उपरोक्त वाक्यो को सृष्टि पर लागू करते हुए दोहरा रहा है । वास्तव मे, सृष्टिकर्त्ता की तरह उसकी यह अद्‌भुत कृति भी न केवल महानता मे बल्कि सूक्ष्मता मे भी अनंत है ।
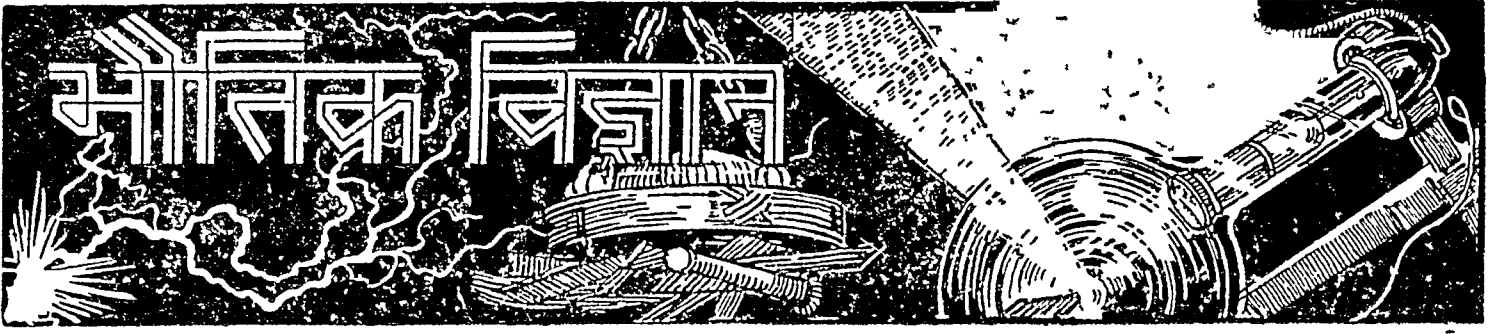
रहस्यमय जगत्

उन तत्वों और प्राकृतिक शक्तियों की कहानी जिनसे इस विशाल विश्व की रचना हुई है और जिनकी क्रिया-प्रतिक्रिया के फलस्वरूप सृष्टि का संचालन होता है ।

नित्य ही तरह-तरह की घटनाऍ हमे चारों ओर देखने को मिलती हैं। कभी आसमान मे बादल छा जाते हैं, तो कभी बिजली कौंधती है। कभी तो इतनी गर्मी पडती है कि पखे के नीचे भी चैन नही मिलता, तो कभी इतनी ठडक कि लिहाफ के भीतर भी हमारे दॉत कटकटाते हैं। तो ये बादल आते कहॉ से हैं? क्या सचमुच इन्द्रदेव इन्हे हमारे पास पुरस्कार-स्वरूप भेजते हैं? वर्षा एक ख़ास ऋतु मे ही क्यों होती है? बिजली क्या इसीलिए कौंधती है कि देवराज इन्द्र क्रुद्ध होकर बादलो मे बर्छी भोंक देते हैं? निस्सदेह प्रत्येक विचार-शील व्यक्ति के मन मे इस प्रकार के प्रश्न उठते हैं। स्वभावतः वह जानना चाहता है कि क्यो जेठ की धूप मे रक्खी हुई लोहे की कुर्सी इतनी तपने लगती है कि उस पर बैठना असभव हो जाता है जबकि उसी की बग़ल मे रक्खा हुआ लकड़ी का स्टूल गर्म नही हो पता? क्यों गर्म चाय डालने से शीशे की गिलास टूट जाती है, जबकि कॉसे की गिलास मे ठडी-गर्म हर प्रकार की चीज़े पी जा सकती हैं? नंगे पैरों बिजली के तार छूने पर हमे ज़बर्दस्त झटका क्यों लगता है, जबकि लकड़ी की खड़ाऊँ पहनकर उस तार को हम निरापद छू सकते हैं? गर्मी के दिनो में कघी करते समय बालों से चिनगारियॉ क्यो निकलने लगती हैं?

आकाश में विद्युत् की चमक

क्या सचमुच बिजली इसलिए कौंधती है कि इन्द्र क्रुद्ध होकर बादलों में बर्छी भोंक देते हैं?

इस प्रकार के सैकड़ों प्रश्न हमारे मन मे उठते हैं और हज़ारों वर्ष से लोग इन प्रश्नों को हल करने की कोशिश कर रहे हैं। बाह्य जगत् की अनोखी समस्याओ के प्रति मनुष्य ने प्राचीन काल से ही गहरी दिलचस्पी दिखाई है। वह देखता है, भिन्न-भिन्न चीज़े एक-सी ही परिस्थितियों मे भिन्न-भिन्न तरीक़ों से पेश आती हैं। मेज़ पर बर्फ़ रख दीजिए, तो गलने के

पहले तक वह मेज ही पर पडी रहेगी, किन्तु पानी मेज पर डालिए, तो समूची मेज पर फैलकर वह नीचे जा गिरेगा और पानी की भाप तो और भी क़ाबू मे नही आती। खौलते हुए पानी की देगची का ढक्कन उठा लीजिए, तो भाप कमरे मे चारों ओर फैल जायगी। फिर भी आप जानते ह कि बर्फ, पानी और भाप वास्तव मे एक ही चीज के भिन्न-भिन्न रूप हैं। जाडे के दिनो मे घी जमकर पत्थर-जैसा कडा हो जाता है, किन्तु धूप दिखाने

पर वही पिघलकर पानी ऐसा बन जाता है और आग पर चढा देने पर वही वाष्परूप मे परिवर्तित होने लगता है। तो क्या ससार की सभी वस्तुएँ पानी ही की तरह अनिवार्य रूप से तीनों रूप—ठोस, द्रव और वाष्परूप—धारण कर सकती हे? श्वास लेने के लिए हम हवा का प्रयोग करते हें, तो क्या हवा भी समुचित परिस्थितियो मे पानी की तरह बोतलों मे से उँडेली जा सकती है? तब तो हमारा यह कहना कि लोहा ठोस पदार्थ है और पारा द्रव, एक प्रकार से गलत है, क्योंकि वैज्ञानिक हमे बताता है कि दुनिया के सभी ठोस पदार्थ गर्म किये जाने पर द्रव या वाष्परूप मे परिणत किये जा सकते हैं। किसी भी द्रव पदार्थ को लीजिए, उसमे थोडी ठडक पहुँचाइए और उस पर जरा दबाव (pressure) डालिए, बस, फौरन् ही वह ठोस बन जायगा। उदाहरण के लिए आप दूध को आइसक्रीम की मशीन मे डालते हैं, दूध के डिब्बे के चारों ओर बर्फ भरी रहती है। मशीन घुमाने पर बर्फ की ठडक दूध मे पहुँचती है और फौरन् आपकी आइसक्रीम जम जाती है।

निस्सदेह हम अपने आस पास की चीजो मे तरह-तरह का कुतूहल भरा हुआ पाते ह। वैज्ञानिक प्रयोगशालाओ के भीतर विचित्र यन्त्रो की सहायता से बाह्य जगत् के इसी रहस्य का अध्ययन करता है। मनुष्य वास्तव मे यह जानना चाहता है कि सैकडों-हजारो तरह की भिन्न-भिन्न चीज़े जो हमे ससार मे दिखाई देती हें, आखिर उनके पीछे मूल तत्त्व क्या है? चाक़ू, फाउन्टेनपेन, घडी, मोटरकार आदि को मनुष्य ने फैक्टरियों मे बनाया है, किन्तु लोहा, लक्ड़ी, पानी, वायु आदि का निर्माण कैसे हुआ? क्या उनके मूल तत्त्वों में किसी प्रकार की समानता है? प्राकृतिक रूप मे जितनी वस्तुएँ पाई जाती ह, क्या विधाता ने उनमें से

द्रव्य के तीन रूप

प्रकृति ही मे हमे वायुरूप बादल, शिलारूप बर्फ और लहराते जल के रूप मे एक ही द्रव्य जल के वायुरूप ठोस और तरल ये तीन भिन्न रूप मिलते है।

प्रत्येक को अलग-अलग मसाले से बनाया है या उनकी तह मे एक ही मूल तत्त्व है?

आज से हजारों वर्ष पहले भी मानव समाज जब अपनी शैशवावस्था से होकर गुजर रहा था, तब मनुष्य ने इन प्रश्नो के उत्तर ढूँढने का सराहनीय प्रयत्न किया था। विज्ञान की नीव शायद तभी पड चुकी थी। उन दिनों लोगों के पास यन्त्र न थे। अतएव केवल अपनी इन्द्रियों

की सहायता से ही उन्हे प्रकृति का अध्ययन करना पडता था। अमुक वस्तु गर्म है या ठडी, यह जानने के लिए उन्हे उस चीज़ को हाथ से छूना पडता था, उनके पास आधुनिक युग के थर्मामीटर न थे। यही कारण है कि उनका प्रकृतिज्ञान प्रायः अधूरा और ग़लत होता था। अनेक बाते उनकी समझ मे ही नहीं आती थी। फलस्वरूप वे मान बैठे थे कि प्रकृति रहस्यमय है। इस रहस्य को समझाने के लिए प्राचीन काल के विद्वानो ने पौराणिक कहानियों की रचना की। पृथ्वी कहाँ पर कैसे टिकी हुई है, इसका ठीक ठीक जब वे पता न लगा सके, तो उन्होंने कल्पना की कि एक विशाल नाग—शेषनाग—के फण पर पृथ्वी रक्खी हुई है और जब कभी शेषनाग अपने फण हिलाते है, पृथ्वी पर भूचाल आता है। किंतु इन पौराणिक कहानियों को सच मानकर लोगो ने सतोष कर लिया हो, यह बात भी नही थी। प्रकृति के रहस्योद्घाटन का कार्य निरतर जारी रहा। लोगों ने एक-एक कर पौराणिक कहानियो की निस्सारता देखी। वैज्ञानिक ने कल्पना की ऊँची उडान न उडकर वास्तविकता की कठोर भूमि पर चलना सीखा। भौतिक विज्ञान का नवीन युग इसी ज़माने से आरभ होता है। हरएक नया प्रश्न, हरएक नई समस्या अब प्रयोग की कसौटी पर कसी जाने लगी—कोरे अनुमान के दलदल से विज्ञान बाहर निकला। प्रयोग और शुद्ध तर्क इन दोनो की सहायता से विज्ञान ने दिन-दूनी रात-चौगुनी तरक्की की। प्रकृति का प्रत्येक कार्य नियमित सिद्धातो के अनुसार होता है, इस अखड सत्य का आभास मनुष्य को मिला। अतः प्रकृति के नियमो की उसने पूरी जानकारी हासिल की और इस जानकारी से उसने पूरा लाभ भी उठाया। इन नियमो के आधार पर उसने तरह-तरह के यत्र बनाये और अपनी इद्रियों की शक्ति बढाने मे इनका प्रयोग किया। नेत्र की जहाँ पहुँच नही थी, वहाँ के लिए सूक्ष्मदर्शक और दूरदर्शक का निर्माण किया, कान जिन शब्दो को ग्रहण नही कर पाते थे, उनको सुनने के लिए बढिया क़िस्म के यंत्र बनाये। इस प्रकार अपनी निरीक्षण-शक्ति बढाकर वैज्ञानिक ने प्रकृति से घनिष्ट ससर्ग पैदा किया। प्रकृति का भेद जान लेने के उपरात वैज्ञानिक ने उसे अपने वश मे करने का भी सफल प्रयत्न किया। ऊँचे-ऊँचे झरनो से उसने बिजली उत्पन्न की और उसे अपने घर मे लाकर उससे दिया-बत्ती का काम लिया, चूल्हा गर्म कराया, यहाँ तक कि घर की चक्की भी उसी से चलवाई।

मनुष्य के मन मे एक नये आत्मविश्वास का आविर्भाव हुआ। अज्ञानवश जिन चीज़ो को वह समझ नही पाता था, जिनसे वह डरता था, उन्हीं को पूर्णतया उसने अपने वश मे कर लिया है। प्रकृति के सामने वह नगण्य नहीं है, इस बात का वह अब अनुभव करने लग गया है।

वैज्ञानिक अनुसंधान के रास्ते मे वैज्ञानिक को एकाग्र मन और अपनी शक्ति से काम करना होता है। प्रयोगशालाओ के भीतर वह रात-रात भर जागता है। यत्रो की खुटखुट मे उसे खाने पीने की सुध नही रहती, उसे ओस की परवा नही होती और शायद ठड भी उसे नही लगती। ऐसी अद्भुत लगन अन्यत्र आपको शायद ही मिलेगी। वैज्ञानिक की यह कठिन तपस्या सदैव सफल ही होती हो, यह बात भी नही है। अनुसधान के क्रम मे वैज्ञानिको ने भी भूले की है, और इस कारण उन्हे पीछे भी हटना पडा है, किंतु वे हताश कभी नहीं हुए।

पदार्थ-जगत् इतना विस्तृत है कि इसको वैज्ञानिक मीमासा करने के लिए इसे दो विभागो मे बॉटना पडा। पदार्थ के बहिर्देश मे जितने परिवर्त्तन होते हैं—उनका रूप, उनका ताप, उनका रग, उनका भारीपन तथा अन्य बाते, जिनका ज्ञान हम इद्रियो अथवा यत्रो द्वारा कर सकते हैं—उन सबका अध्ययन भौतिक विज्ञान के ज़िम्मे है। और पदार्थ के मूल तत्त्व क्या है? एक पदार्थ एकदम दूसरे पदार्थ मे कैसे परिवर्त्तित हो जाता है? क्या हज़ारो-लाखो चीज़े, जो हमे ससार मे दिखाई पडती हैं, वे सभी वास्तव मे भिन्न-भिन्न पदार्थो से बनी हैं? अथवा ससार मे केवल सौ-पचास ही मूल पदार्थ हैं, जिनके आपस के हेर-फेर से हम तरह-तरह की अनगिनत चीज़े बना लेते हैं? इन मौलिक प्रश्नों का हल आपको रसायन विज्ञान मे मिलेगा।

हमने देखा है कि भौतिक और रसायन विज्ञान दोनो ही पदार्थ का निरीक्षण करते हे, केवल उनके दृष्टिकोण मे अतर है। एक का सबध बाह्य रूपरग से है, तो दूसरा पदार्थ के भीतर की बातो का पता लगाता है। अतः भौतिक और रसायन विज्ञान वास्तव मे दो भिन्न-भिन्न चीज़े नहीं हे। ये दोनों बहुत दूर तक अलग-अलग नहीं चलते। आगे बढने पर प्रकृति के मूल सिद्धातो पर दोनों ही आ पहुँचते हे, और तब भौतिक और रसायन विज्ञान के बीच की विभाजक रेखा भी मिट जाती है। प्रकृति के रहस्योद्घाटन के लिए दोनो ही हाथ-मे हाथ मिलाकर अनुसधान के पथ पर चलते हैं। रसायन विज्ञान हमे बताता है कि

कुल ६२ मौलिक पदार्थ इस ससार में पाये जाते हैं। इन्ही मे से कुछ को लेकर प्रकृति या मनुष्य, पेड़-पौधों, आसमान के तारे, सूर्य, चद्रमा, नदी, तालाब, हमारी काम की चीजें और स्वय हमारे शरीर की रचना हुई, और भौतिक विज्ञान आपको बताता है कि इन ६२ मौलिक पदार्थों का पारस्परिक सबध क्या है, लोहे मे चुम्बकीय शक्ति कहाँ से आ गई, इन मौलिक पदार्थो का वजन, उनका आकार कैसा है, क्या मौलिक पदार्थों के अवयव में आकर्षण-शक्ति मौजूद है, विद्युत् और चुम्बकीय शक्तियों का इन अवयवों पर कैसा प्रभाव पड़ता है, आदि, आदि।

वैज्ञानिक आपको बताता है कि मौलिक पदार्थो के अवयव भी गेंद की भाँति ठोस नही होते, वरन् उनके भीतर अधिकाश भाग एकदम खोखला रहता है। जिस प्रकार सूर्य के इर्द-गिर्द पृथ्वी, मगल, बृहस्पति आदि ग्रह चक्कर लगाते हैं, उसी तरह अवयवों के अदर भी एक केंद्रीय अणु के चारों ओर दो-चार परमाणु चक्कर लगाया करते हैं। इन परमाणुओं की रफ्तार भी बेहद तेज होती है। सभी पदार्थों के अवयवों के खोखलेपन का यह हाल है कि यदि समूचे ससार के पदार्थ को मींजकर हम इन अणु-परमाणुओं को एक दूसरे से मिला दें, तो हमे एक छोटी नारगी के बराबर की चीज मिलेगी!

अणु-परमाणुओं की दुनिया मे प्रवेश किये हुए अभी वैज्ञानिक को ४० वर्ष भी नहीं हो पाये हैं, किंतु इतने अल्प काल में ही उसने आश्चर्यजनक रहस्यों का पता लगा लिया है। आज दिन जहाँ दूरदर्शक के द्वारा उसने इस सृष्टि के व्यापक महान् रूप के अनतत्व का आभास पा लिया है, वहाँ सूक्ष्मदर्शक उसे इस अद्भुत विश्व के सूक्ष्म रूप—अणु-परमाणुओं—के अनतत्व की एक झलक दिखाकर चक्कर मे डाल रहा है। मनुष्य के चिरसचित स्वप्नों को वह आज सच बनाने जा रहा है। उसके हाथ पारस पत्थर लग गया है। उसे पूर्ण आशा है कि निकट भविष्य मे वह सभी मौलिक पदार्थों को भी एक दूसरे मे परिणत कर सकेगा।
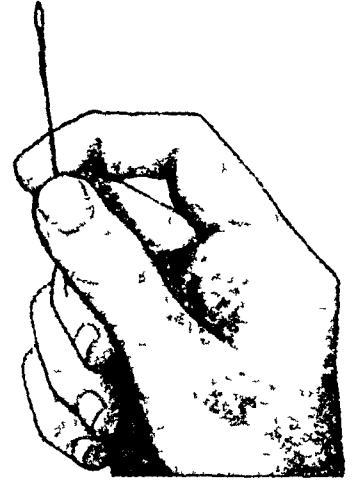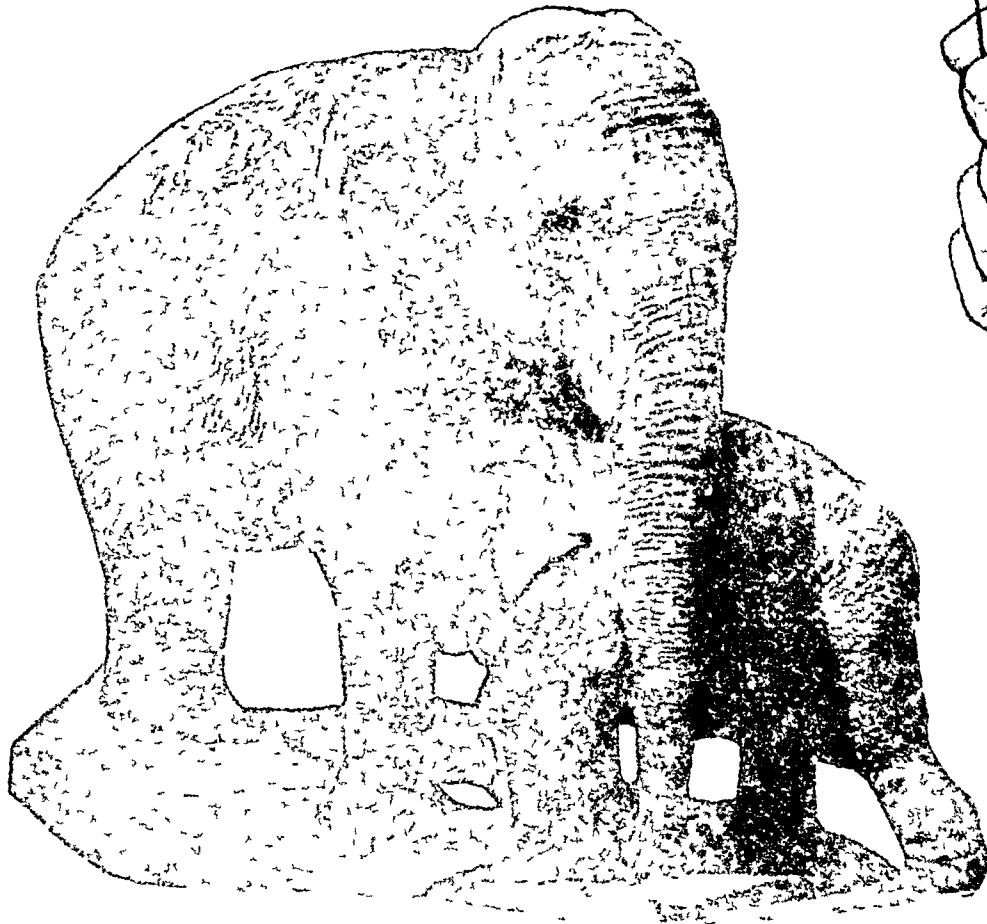
द्रव्य का खोखलापन
पदार्थों के अवयवो के खोखलापन का यह हाल है कि यदि इस हाथी और उसके बच्चे के शरीर के परमाणुओं को मीजकर एक दूसरे में मिला दें तो केवल इतना द्रव्य रहेगा जो एक सुई के छेद मे से निकाला जा सके!

रसायन क्या है ?

जिससे इस अद्भुत विश्व की रचना हुई है उस मूल द्रव्य के विभिन्न रूपों, गुणों, और उसकी क्रिया-प्रतिक्रिया के फलस्वरूप होनेवाली रासायनिक क्रियाओं की विवेचना।

यदि हम थोडा-सा विचार करे, तो हमे इस बात का अनायास ही अनुभव हो सकता है कि सारी सृष्टि का निर्माण दो वस्तुओं से हुआ है। एक तो अनत आकाश (endless Space) और दूसरे, उसमे स्थित वह वस्तु, जिसका अनुभव हम अपनी ज्ञानेद्रियो से कर सकते हैं, जो जगह घेरती है और जिसका भार हम तौल कर निकाल सकते हैं। इस दूसरी वस्तु को हम द्रव्य (matter) कहते हैं। पत्थर, पानी, लकड़ी, हवा, लोहा, कोयला, हमारा शरीर आदि सभी द्रव्य से बने हैं। क्योंकि इनमे द्रव्य के सभी गुण पाये जाते हैं। लेकिन जब हम इस द्रव्य को परखते हैं, तो हमे उसमे सहस्रो प्रकार के रंग, रूप और गुण दृष्टिगोचर होते हैं। कोई लाल है, तो कोई पीला ; कोई चमकदार है, तो कोई धुँधला ; कोई ठोस है, तो कोई तरल, या वाष्परूप ; कोई मीठा है, तो कोई खट्टा ; कोई भारी है, तो कोई हलका ; किसी मे गर्मी और बिजली दौडती है, तो किसी मे नही ; किसी मे एक ही प्रकार का द्रव्य पाया जाता है, तो किसी मे द्रव्य के विभिन्न प्रकारों का संयोग , किसी मे किसी प्रकार का परिवर्त्तन होता है, तो किसी मे किसी प्रकार का।

मनुष्य सदा से ही द्रव्य के इन विभिन्न गुणों का निरीक्षण करता रहा है, और इन गुणो और अपनी बुद्धि के अनुसार द्रव्य के विभिन्न प्रकारों का वर्गीकरण भी। किसी प्रकार के द्रव्य को उसने ठोस कहा, तो किसी को तरल ; किसी को धातु (metal) कहा, तो किसी को अधातु (non-metal) , किसी को अम्ल (acid) कहा, तो किसी को खार (alkali)। जो वस्तु द्रव्य के दो या अधिक प्रकारो मे पृथक् न हो सकी और जिसमे एक ही प्रकार का द्रव्य पाया गया, उसका नाम मूल तत्त्व (element) पडा ; और जो पदार्थ द्रव्य के दो या अधिक प्रकारो मे पृथक् हो सका, अथवा जो द्रव्य के दो या अधिक प्रकारों से बना हुआ पाया गया, वह सयुक्त पदार्थ (compound) कहलाया। द्रव्य के नये-नये प्रकारों के आविष्कार और उनके गुणों के निरीक्षण के साथ उनका वर्गीकरण भी होता जा रहा है। मनुष्य द्वारा द्रव्य के वर्गीकरण का यह प्रयास रसायन-शास्त्र का एक अंग है।

परतु इस निरीक्षणात्मक परीक्षा के बाद इस प्रश्न का उठना स्वाभाविक है कि आख़िर द्रव्य में इस विभिन्नता का कारण है क्या ? क्या बात है कि हवा पानी से, शकर नमक से, लकड़ी लोहे से, पत्थर हीरे से, तथा सोना कोयले से इतना अधिक विभिन्न है ? इस जिज्ञासा ने मनुष्य की बुद्धि को द्रव्य की रचना (composition) की ओर आकर्षित किया। आज प्रारंभिक रसायन के जाननेवालों को भी यह ज्ञात है कि हवा मुख्यतः दो मूल गैसों, 'नाइट्रोजन' और 'आक्सिजन', का मिश्रण है ; पानी दो अदृश्य मूल गैसो, 'आक्सिजन' और 'हाइड्रोजन', के रासायनिक सयोग से बना है ; शकर, मैदा और रुई, ये तीनो वस्तुएँ पानी के अवयवों ('हाइड्रोजन' और 'आक्सिजन') और 'कार्बन' (कोयले का मूल तत्त्व) के सयोग से बनी हैं ; नमक जो हमारे दैनिक जीवन की एक साधारण वस्तु है, दो ऐसे मूल पदार्थों से बना हुआ है, जिनसे साधारण लोग नितांत अपरिचित रहते हैं, यानी पहला 'सोडियम', जो एक विचित्र धातु है और जो हवा और पानी मे रखने से इतनी शीघ्रता के साथ अन्य संयुक्त पदार्थों मे परिणत हो जाती है कि उसे मिट्टी के तेल मे रक्खा जाता है, और दूसरा 'क्लोरीन' जो पीलापन लिये हुए

और स्फुरित हो रही है। सृष्टि के सारे कार्यों का समावेश हम परिवर्त्तन मे ही पाते हैं। स्वय हमारा जन्म, जीवन और मृत्यु अविरत परिवर्त्तन के ही उदाहरण हैं। हमारे शरीर का निर्माण होता है, बचपन से यौवन और यौवन से वृद्धावस्था आती है, और फिर मृत्यु के बाद शरीर मिट्टी मे मिल जाता है। इसी प्रकार पेड और पौधे उगते हैं, फूल खिलते हैं और फिर सूखकर अथवा मुरझाकर धूल मे मिल जाते हैं। वास्तव मे ससार की कोई भी वस्तु सदा के लिए अपरिवर्त्तित नहीं रह सकती। लकडी, कोयला तथा अनेक अन्य वस्तुएँ जलने से भस्म हो जाती हैं, लोहा खुले में छोड़ देने से मोर्चे मे बदल जाता है· दूध रख देने से दही में परिणत हो जाता है . हवा हमारे फेफड़ों मे पहुँचकर परिवर्त्तित रूप मे बाहर निकलती है, भोजन के रूप में खाई जानेवाली वस्तुएँ शरीर के अदर पचकर रक्त, मास और हड्डियों मे बदलती हैं;

सेब काटकर खुला रखने पर गेरुवा रंग का क्यों हो जाता है?

कोयला हवा में रखने पर क्यों धधकता है?

कोई भी जानवर दौड़ते-चलते वक्त आवश्यक शक्ति कहाँ से पाता है? किस प्रकार उसका खाया हुआ आहार रक्त, मास और हड्डियों में बदल जाता है?

भीगा चाकू हवा में रखने पर क्यों मोर्चा खा जाता है?

किसी बरतन में कुछ घंटे रखे रहने पर आप ही आप दूध जमकर दही जैसा क्यों बन जाता है?

पौधा हवा और रोशनी ही में क्यों फलता-फूलता है?

दियासलाई रगड़ने से क्यों आग पैदा हो जाती है?

नित्य हमारे आस-पास होनेवाली रासायनिक क्रियाओं के कुछ उदाहरण

हलके हरे रग की गैस होती है और जो सूँघने मे कर्कश और विषाक्त होती है; लकडी मे भी मुख्यतया कोयला और पानी के तत्त्व ('कार्बन', 'हाइड्रोजन और 'आक्सिजन') ही रहते हैं, परंतु लोहा और सोना स्वयं मूल धातु हैं, जिनसे दो या अधिक वस्तुएँ नहीं निकाली जा सकतीं सगमरमर पत्थर तीन मूल पदार्थों के संघात से बना है, अर्थात् 'कैल्शियम' धातु (जो चूने मे रहती है), 'कार्बन' और 'आक्सिजन' गैस, किंतु हीरा शुद्ध कोयले ('कार्बन') का ही एक दूसरा रूप है। इस प्रकार विभिन्न वस्तुओं के रचना-ज्ञान को प्राप्त करने का मानव प्रयास रसायन विज्ञान का दूसरा अग है।

हमारा निरीक्षण केवल द्रव्य के रूप-रंग और गुणों ही तक सीमित नहीं रह सकता था। हम देखते हैं कि सारी द्रव्यमय सृष्टि भाँति-भाँति के परिवर्त्तनों द्वारा परिचालित

और हवा, पानी और खाद के परिवर्त्तनमय संयोग से पेड़ पौधो का कलेवर बन जाता है। इस परिवर्त्तन-शीलता पर दार्शनिक व साहित्यिक उद्गार प्रकट करने के बाद मनुष्य मे उसके वैज्ञानिक कारणों को जानने की जिज्ञासा पैदा हुई, और बडी ही कठिनाइयों और असफलताओं के बाद वह इन परिवर्त्तनों के रहस्य का ठीक-ठीक वैज्ञानिक उद्घाटन कर सका। इसके फलस्वरूप अब हम जानते हैं कि प्रत्येक मूल तत्त्व, जिससे भाँति-भाँति के द्रव्य बनते हैं, बहुत ही छोटे-छोटे कणो के समूहों से बना है। यह कण इतने छोटे होते हैं कि तेज़-से-तेज़ सूक्ष्मदर्शक यंत्र द्वारा भी हम उन्हे नही देख सकते। ससार के अनेकानेक परिवर्त्तन इन्ही परमाणुओं की विभिन्न क्रियाओं, संयोग अथवा वियोग द्वारा हुआ करते हैं। कुछ उदाहरण लीजिए। कोयला जलता है तो कहाँ चला जाता है? वह ग़ायब नही होता और न उसका नाश ही होता है। वैज्ञानिक तथ्य तो यह है कि द्रव्य का नाश होता ही नही। वह कोयला तो ऐसे गैसीय पदार्थ मे परिणत हो जाता है, जिसको हवा मे मिलते हुए हम देख नही सकते। इस गैस का नाम 'कार्बन डाइआक्साइड' (carbon dioxide) है। 'कार्बन' मूल तत्त्व के एक परमाणु और हवा के 'आक्सिजन' मूल तत्त्व के दो परमाणुओ के सयुक्त होने से यह गैस बनती है और इस प्रतिक्रिया मे गर्मी के रूप मे इतनी शक्ति की उत्पत्ति होती है, जिससे हम पानी उबाल सकते हैं, खाना पका सकते हैं, या मशीन चला सकते हैं। कोयले मे जो न जल सकनेवाली चीज़े रहती हैं, वही राख के रूप मे शेष रह जाती हैं। हमारे कुछ पाठको को यह जानकर आश्चर्य हो सकता है कि ठीक इसी प्रकार से हमारे शरीर को गरमी और काम करने की शक्ति मिलती है। ऊपर यह बताया जा चुका है कि खाद्य पदार्थों, जैसे आटा और शकर मे 'कार्बन' रहता है। यह 'कार्बन' हमारे रुधिर मे सयुक्त होकर हमारे फेफड़ो मे पहुँचता है। फेफड़े मे साँस लेने से हवा पहुँचती है और उसकी 'आक्सिजन' 'कार्बन' से मिलकर 'कार्बन डाइआक्साइड' बना देती है, जो साँस छोड़ने पर बाहर निकल आती है। इस प्रतिक्रिया मे जो गर्मी पैदा होती है, वही हमारे शरीर को गर्म रखती है और हमे इजिन की तरह काम करने की शक्ति देती है। जिस प्रकार इंजिन को परिचालित करने के लिए कोयले और पानी की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार शरीर को जीवित रखने के लिए ऐसे खाद्य पदार्थों की ज़रूरत होती है, जिनमे कोयला (कार्बन) और पानी के
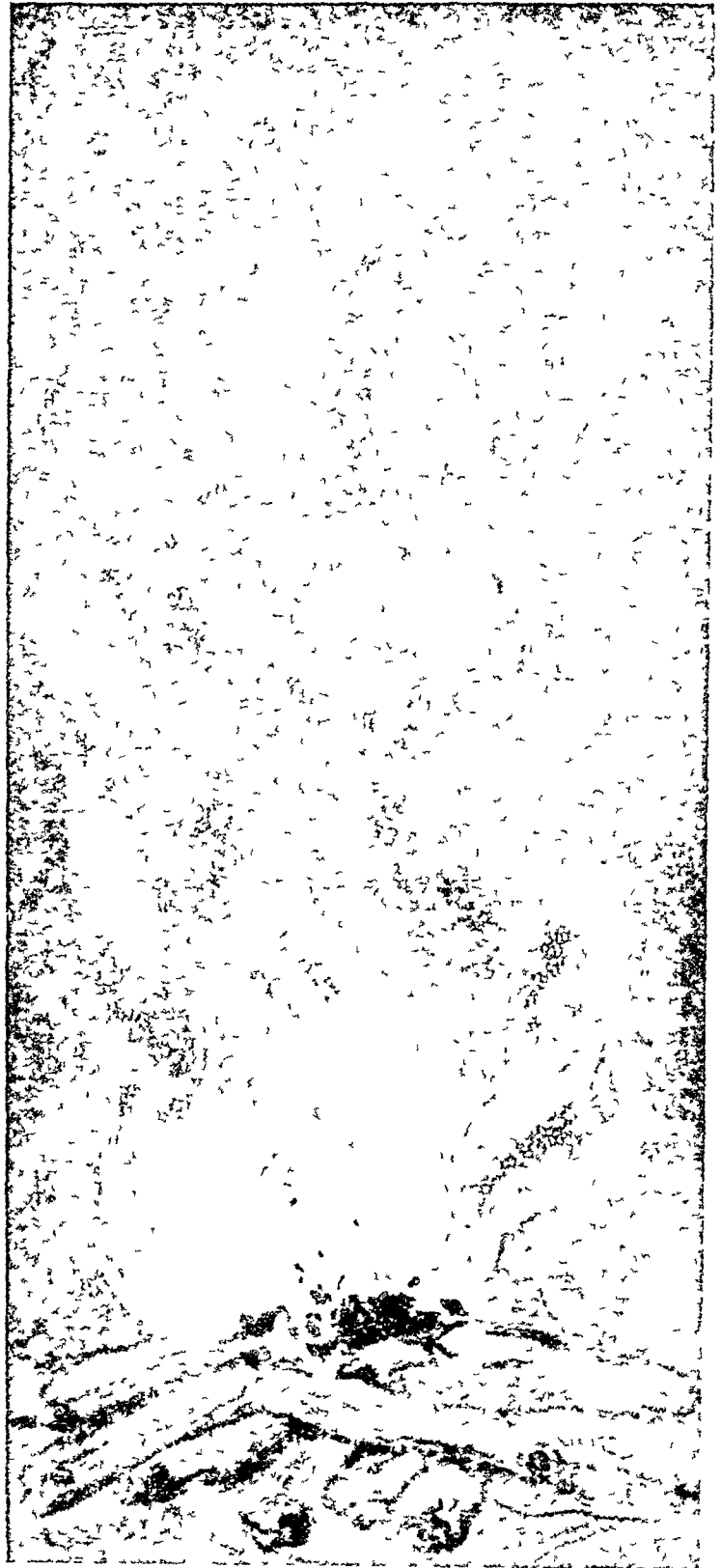
क्या द्रव्य का विनाश भी होता है?

जब लकडी या कोयला जलता है, तो केवल थोडी राख बच रहती है। तो बाकी का अंश कहाँ चला गया? वैज्ञानिक तथ्य यह है कि द्रव्य का नाश कभी नहीं होता। लकडी या कोयला के जलने में एक विशेष रासायनिक क्रिया मात्र होती है, जिससे उसका कुछ अंश ऐसे गैसीय पदार्थ में परिणत हो जाता है जिसे हम हवा में मिलते हुए देख नहीं सकते।

सयोग से बने हुए पदार्थ रहते है। चावल, आटा, शकर, आलू, साबूदाना, मक्खन आदि मे मुख्यतः 'कार्बन' और पानी ही सयुक्त रूप मे रहते हैं। अतर केवल यही होता है कि मशीनों के पुर्जे कारीगर लोग बदलते रहते है, लेकिन शरीर के इस अभाव की स्वय भोजन ही, प्रोटीन आदि अपने अन्य अशो द्वारा, पूर्त्ति किया करता है। लकडी के जलने की क्रिया उतनी सादी नही है, जितनी कोयले की। लकडी मे जो 'कार्बन' होता है, वह 'कार्बन डाइ-आक्साइड' गैस मे परिणत होकर हवा मे मिल जाता है, उसका पानी भाप के रूप मे परिवर्त्तित होकर उड़ जाता है और उसकी 'हाइड्रोजन' भी हवा की 'आक्सिजन' से मिल-कर जल-वाष्प मे बदल जाती है। लकडी यदि थोडी हवा देकर ही जलाई जाती है, तो वह कोयले मे बदल जाती है, क्योकि इस कोयले को जलाने के लिए पर्याप्त 'आक्सि-जन' नही मिलती। पृथ्वी के अदर कोयले की खानो की उत्पत्ति इसी प्रकार हुई है, अतर केवल इतना ही है कि पहला परिवर्त्तन शीघ्रता से होता है, किंतु दूसरा 'आक्सिजन' और गर्मी की कमी के कारण युगो मे समाप्त होता है।

इस प्रकार मनुष्य और जतुओं के फेफडों से और कोयला, लकडी आदि जलने से जो 'कार्बन डाइआक्साइड' गैस निकलती है, वही वनस्पतिवर्ग का भोजन हो जाती है। पेड़ अपनी पत्तियो के छिद्रों (stomata) से सॉस लेते है और जो 'कार्बन डाइआक्साइड' हवा के साथ मिलकर उनकी हरी पत्तियो मे पहुँचती है, उसका कार्बन वे ले लेते हैं और 'आक्सिजन' बाहर निकाल देते हैं। इस कार्य को करने के लिए शक्ति उन्हे सूर्य की किरणो से मिलती है। और जिस यत्र द्वारा यह कार्य होता है, वह पत्तियो का हरा पदार्थ 'क्लोरोफिल' (chlorophyll) है। इस 'कार्बन' का सयोग पेडों की जड द्वारा आये हुए पानी से होता है, जिससे पेडों मे पाये जानेवाले पदार्थ—मैदा (मॉडी), शकर, रेशे आदि—बन जाते हैं। जड द्वारा पानी के साथ साथ जिस खाद का शोषण वृक्ष करते हैं, उससे उनके कलेवर के 'प्रोटीन', लवण आदि बनते है।

अब कुछ छोटे-छोटे परिवर्त्तनों को लीजिए। लोहा हवा और पानी मे छोड देने से एक भूरे-लाल मोर्चे में बदल जाता है। इसका कारण यह है कि लोहे के दो परमाणु हवा और नमी के सपर्क से 'आक्सिजन' के तीन परमाणुओ से सयुक्त हो जाते हैं, और इस प्रकार जो सयुक्त पदार्थ बनता है, उसी को लोहे का मोर्चा अथवा 'फेरिक आक्साइड' (लैटिन, फेरम=लोहा, फेरिक=लोहे का) कहते हैं। 'मैग्नेशियम' धातु के रिबन के एक टुकडे को चिमटी से पकड़कर जलाइए। वह चकाचौंध करनेवाले उजाले और सफेद धुओं के साथ जल उठता है और 'मैग्नेशियम' की जगह पर एक सफेद बुकनी बन जाती है। यह परि-वर्त्तन कैसे हुआ और यह कौन-सी वस्तु बन गई? यह सिद्ध है कि यह परिवर्त्तन 'मैग्नेशियम' धातु और 'आक्सिजन' गैस के योग से होता है। 'मैग्नेशियम' का एक परमाणु 'आक्सिजन' के एक परमाणु से सयुक्त होता है और 'मैग्ने-शियम आक्साइड' का एक कण बन जाता है। इस प्रकार के, जैसे—'कार्बन डाइआक्साइड', पानी, 'फेरिक आक्साइड', 'मैग्नेशियम आक्साइड'—के कणों को अणु (molecule) कहते हैं। मूलतत्त्वो के भी अणु होते हैं। जैसे, आक्सिजन गैस के प्रत्येक अणु मे दो परमाणु सयुक्त रूप मे रहते हैं। साधारण दशाओं मे 'आक्सिजन' गैस का अस्तित्व इन्ही अणुओं मे होता है।

यहॉ कुछ उदाहरणो द्वारा मैने यह सक्षेप मे बता दिया है कि वैज्ञानिक मनुष्य ने किस प्रकार सफलता के साथ पदार्थो के परिवर्त्तन के रहस्यो का उद्घाटन किया है। हम देखते हैं कि इस प्रकार के परिवर्त्तन द्रव्य के विभिन्न प्रकारो के सपर्क अथवा पृथक् होने से हुआ करते है। रसायन विज्ञान का तीसरा कार्य द्रव्य की इन क्रियाओं अथवा पारस्परिक प्रतिक्रियाओ पर प्रकाश डालना है।

अतः रसायन मनुष्य का वह वैज्ञानिक प्रयास है, जो द्रव्य के विभिन्न प्रकारो के वर्गीकरण, उनकी रचना, तथा उनकी क्रियाओं और पारस्परिक प्रतिक्रियाओ से सबध रखता है।

इस युग मे रसायन विज्ञान का एक बहुत महत्त्वपूर्ण अग है। विभिन्न धातुओ, मशीनो और यत्रो का बनाना इसी विज्ञान के प्रयोग से सभव है। सोना, चॉदी, लोहा, तॉबा, 'प्लैटिनम', 'रेडियम', 'अलुमीनियम', रॉगा आदि बहुमूल्य धातुएँ, शीशा, साबुन, रग, रासायनिक खादे, शकर, औषधियॉ, सीमेट, चूना आदि अनेकानेक उपयोगी चीजे, मनुष्य के लिए नितात उपयोगी, किन्तु साथ-ही-साथ मानव युद्ध को भीषण रूप देनेवाले विस्फोटक पदार्थ आदि, इस युग की सहस्रो वस्तुएँ इसी विज्ञान के द्वारा मनुष्य को उपलब्ध हो सकी है। मनुष्य का ऐसा कोई निर्माणात्मक कार्य नहीं है, जिसमे इस विज्ञान का प्रयोग न होता हो। यदि इस विज्ञान का विकास न हुआ होता, तो मनुष्य, वास्तव मे, अब भी पत्थर के युग मे ही पडा होता।

जिज्ञासा

एक अद्भुत पहेली की तरह हज़ारो वर्षों से मनुष्य के मस्तिष्क को उलझन में डाले हुए अचरज-भरे सृष्टि-प्रपच के वास्तविक रहस्य के संबंध में अब तक के संचित तत्त्व-ज्ञान का विवेचन।

मैं कौन हूँ, यह सृष्टि क्या है, इसका बनानेवाला कौन है, यह कब बनी और कब इसका अन्त होगा, मै स्वय भविष्य मे रहूँगा या नही, इससे पूर्व मेरा अस्तित्व था या नही, मैं सुखी क्यो हूँ, प्राणी दुःखी क्यो हैं, उनके कर्मो का फल होता है या नही, सच्चा सुख क्या है, मनुष्य का प्रकृति के साथ क्या सबध है, इद्रियो से होनेवाला ज्ञान विश्वास के योग्य है या नहीं—इस प्रकार के असख्य प्रश्नो की जिज्ञासा से दार्शनिक विचार का जन्म होता है। मनुष्य को जब से अपने इतिहास का ज्ञान है, तब से आज तक कोई समय ऐसा नही हुआ, जब उसकी मनना-त्मक प्रवृत्ति ने उसे चैन से बैठने दिया हो। विचारो का बवंडर न केवल संसार के दुःखो से पीडित प्राणी को ही झकझोरता है, वरन् कभी-कभी सब प्रकार से सुखी मनुष्य के मन मे भी उथल-पुथल मचा डालता है। यह आँधी जितनी बलवती होती है, उतनी ही गहराई से मनुष्य विचार करने पर विवश होता है। 'कस्त्व कोऽहम्' की मीमासा मनुष्य के लिए उतनी ही आवश्यक है, जितनी कि अन्नवस्त्रादिक के द्वारा उसकी सामान्य रहन-सहन। गौतम बुद्ध के जीवन से हम इस नियम की सत्यता को समझ सकते है। एकछत्र राज्य का अपरिमित वैभव जिस विलास की सामग्री को उपस्थित कर सकता है, उसके बीच सुकुमारता से पले हुए राजकुमार सिद्धार्थ को कोई भी प्रलोभन विषयोपभोग के बधन मे बाँधकर नही रख सका। जिस समय मनुष्य के मन मे ऊपर कहे हुए विचारो का चक्र चलता है, विषयो का मधुर आस्वाद उसे विष के समान जान पडता है। विचारो की वह झझावात ही सच्ची जिज्ञासा है। इस प्रकार की जिज्ञासा ही दर्शन की जननी है। यह जिज्ञासा दिव्य अग्नि के समान है। इसमे दग्ध मनुष्य का हृदय ही सत्य की प्राप्ति का एकमात्र पुण्य-स्थल है।

भारतीय दर्शन का सूत्रपात करनेवाले मनीषियो ने जिज्ञासा को बडा महत्त्व दिया है। 'जिज्ञासु' पद हमारे यहाँ एक विशेष अधिकार को सूचित करता है। जो जिज्ञासु नही है, जिसमे 'जानने' की भूख नही है, वह दार्शनिक ज्ञान का अधिकारी नही माना जा सकता। बहुधा जब हम अपने सबंध से अथवा अन्य किसी के सबध से मृत्यु के नाटक के अति सन्निकट होते है, तब हमारी जिज्ञासा-वृत्ति जागरूक हो उठती है और उस समय 'कस्त्व कोऽहम्' के प्रश्न हमे सच्चे और आवश्यक जान पडते हैं। हमारे साहित्य मे जिज्ञासा-वृत्ति का सर्वोत्तम उदाहरण नचिकेता* है। उसकी जिज्ञासा का उदय भी यम के सान्निध्य मे होता है। नचिकेता [न+चिकेतस्] शब्द का अर्थ ही यह है कि जिसके अदर जानने की उत्कट इच्छा हो परतु जो जानता न हो। जिज्ञासा के वर को नचिकेता सर्वश्रेष्ठ समझता है:—

नान्यो वरस्तुल्य एतस्य कश्चित् [कठ उपनिषद् १। २२]

*इसका उपाख्यान कठ उपनिषद मे है। यह वाजश्रवा ऋषि का पुत्र था। एक बार ऋषि ने दक्षिणा मे अपना सर्वस्व दे डाला। तब पिता से यह बार-बार पूछने लगा कि 'मुझे किस को दे रहे हैं?' पिता ने रोष में कह दिया कि मै तुम्हे मृत्यु को अर्पित करता हूँ। इस पर नचिकेता यम (मृत्यु) के पास चला गया। यम से उसने 'ब्रह्म' के सम्बन्ध मे कई प्रश्न किये। यम ने तरह-तरह के प्रलोभन देकर इस जिज्ञासा को छोड़ देने के लिए उसे फुसलाया, किन्तु नचिकेता ने अपनी टेक न छोड़ी और तीन दिन तक निराहार रहकर कठोर सत्याग्रह किया। अंत मे यम ने उसे 'ब्रह्मज्ञान' का उपदेश दिया।

अर्थात् मृत्यु के बाद मनुष्य का अस्तित्व है या नहीं, प्राणी का स्वरूप क्षणभंगुर है अथवा नित्य तत्त्ववाला है—इस प्रश्न के समान अन्य कोई प्रश्न नहीं है, इसीलिए इस शका के समाधान का वरदान ही सर्वातीत है। नचिकेता के प्रलोभन के लिए यमराज उसके सामने अनेक कामनाएँ रखता है—चिरजीवी पुत्र-पौत्र, बहुत-से पशु-सवारियाँ, अमित धन-राशि, पृथ्वी का राज्य, सुदर स्त्रियाँ, कल्पांत आयु—जितने भी मर्त्यलोक के दुर्लभ काम हैं, हे जिज्ञासु, उनको अपनी इच्छानुसार तुम चुन सकते हो। यही वैभव तो गौतम बुद्ध के सामने भी था। परंतु दार्शनिक प्रश्नों की मीमासा इस लौकिक सामग्री से कभी सभव नहीं। नचिकेता ने जो उत्तर दिया था, वह उत्तर दार्शनिक ससार के प्रमुख तोरणद्वार पर आज भी अमिट अक्षरों मे लिखा हुआ है—यदि मनुष्य का मरण ध्रुव है, तो उसके लिए ये अनित्य पदार्थ किस काम के हैं? इनसे इद्रियों का तेज क्रमशः क्षीण होता रहता है। जीवन की अवधि स्वल्प है, इसमें नृत्य-गीत के लिए स्थान कहाँ? चाँदी और सोने के रुपहले-सुनहले टुकड़ों से कब मनुष्य का पेट भरा है*? सुनहरी दलदल मे पड़ने से पहले ही उस महान् प्रश्न का समाधान ढूँढने का प्रयत्न करना उचित है।

यह मनःस्थिति ही सच्ची जिज्ञासा है। हमारे दार्शनिक साहित्य मे कठ उपनिषद् का नचिकेता-उपाख्यान इसीलिए महत्त्वपूर्ण है। जितने ज्वलत रूप मे दार्शनिक जिज्ञासा का परिचय हमे यहाँ मिलता है, उतना अन्यत्र कहीं नहीं। इस बात मे सदेह है कि ससार के दार्शनिक इतिहास मे अन्य किसी भी देश मे जिज्ञासा के महत्त्व और स्वरूप को समझने का ऐसा सुन्दर प्रयत्न किया गया हो। जिज्ञासा के साथ दार्शनिक विचारों की उद्भावना व्योमविहारी पक्षिराज गरुड की उड़ान के सदृश है। बिना सच्ची जिज्ञासा के तत्त्वज्ञान की उधेड-बुन बुद्धि का कुतूहल-मात्र रह जाता है। दिमाग़ की पैंतरेबाज़ी से जिस दर्शन का जन्म होता है, उसे भारतीय परिभाषा के अनुसार 'दर्शन' कह सकना कठिन है। हम यह नही कहते कि इस प्रकार दिमाग पर ज़ोर डालकर दर्शन की सृष्टि यहाँ कभी नही की गई; हमारा आशय तो इतना ही है कि जिज्ञासा के बाद जो तत्त्व ज्ञान की मीमासा की जाती है, उसके और शुष्क दर्शन के भेद को ठीक तरह समझ लिया जाय।

यदि उपरोक्त दो प्रकार की परिस्थिति मे पनपनेवाली दार्शनिक विचारधाराओं के भेद की गहरी छानबीन की जाय तो हम दो परिणामों पर पहुँचते हैं। पहला भेद तो दर्शन की परिभाषा से सबंध रखता है और दूसरा उसके फल से। यहाँ पर हमको दर्शन के लिए जो अँगरेजी शब्द है, उसके साथ भी परिचय प्राप्त करना चाहिए। अँगरेज़ी मे दर्शन को philosophy (फिलासफी) कहते हैं। पश्चिम की अन्य भाषाओं में भी प्रायः यही शब्द व्यवहृत होता है। जिस प्रकार पाश्चात्य दर्शन का आरंभ सर्वसम्मति से यूनान में हुआ, उसी प्रकार 'फ़िलासफी' शब्द भी यूनानी भाषा से लिया गया है। यूनानी शब्द philo-sophia का अर्थ है ज्ञान (*sophia*=wisdom) का प्रेम (*philo*=love)। ज्ञान का तात्पर्य बुद्धिकृत मीमासा से है। तत्सबधी रुचि ही philosophy है। इसके विपरीत भारतीय शब्द है 'दर्शन', जिसका अर्थ है 'देखना' अर्थात् तत्त्व का साक्षात्कार करना। ज्ञान के जिस विवेचन मे सत्य या तत्त्व को स्वय न देखा जाय, उसे 'दर्शन' कहना कठिन है। वही तत्त्व सत्य है, जिसके सबंध में हम यह कह सके कि वह हमारा साक्षात्कृत है, यह हमारे अनुभव का विषय है अर्थात् यह हमारा 'दर्शन' है। बुद्ध भगवान् अपने उपदेशों में इस बात पर बहुत ज़ोर दिया करते थे कि मैं जिस मार्ग का शास्ता हूँ, मैंने उसे स्वय देख लिया है। जब तक किसी उपदेष्टा या ज्ञानी की ऐसी विश्वस्त स्थिति न हो, तब तक वह मानव जीवन के लिए असंदिग्ध या महत्त्वपूर्ण तत्त्व का व्याख्यान नही कर सकता। दर्शन का सबध जीवन के साथ अति घनिष्ट है। जीवन मे आत्मकृत अनुभव के बिना तेजस्वी दर्शन का जन्म नहीं होता। इस देश मे तो जिस समय भी दर्शन की पहली ज्ञान-रश्मियाँ प्रस्फुटित हुई थी, उसी समय यह बात जान ली गई थी कि दर्शन का अर्थ साक्षात्कार है। हमारी परिभाषा मे प्राचीनतम ज्ञानियो का नाम ऋषि है। सस्कृत-भाषा मे जो अद्भुत् निरुक्तशास्त्र की सामर्थ्य है, उसके द्वारा 'ऋषि' शब्द 'दार्शनिक' के अभिप्राय को यथार्थ रूप से प्रकट कर देता है। यास्काचार्य ने लिखा है:—

ऋषिर्दर्शनात् (निरुक्त २।११)

अर्थात् ऋषि शब्द का अर्थ है द्रष्टा (देखनेवाला)। शुष्क ऊहापोह करनेवाला तार्किक भारतीय अर्थ मे 'दार्शनिक' की पदवी का अधिकारी नही बनता। दार्शनिक बनने के लिए 'दर्शन' होना चाहिए, अथवा और भी पवित्र शब्दों मे कहे, तो 'ऋषित्व' होना आवश्यक है। इस देश की परिपाटी के अनुसार जो व्यक्ति अपने आपको ज्ञान का

* न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्य (कठ उपनिषद् १।२७)

नचिकेता और यम

इस बात मे संदेह है कि संसार के दार्शनिक इतिहास में अन्य किसी भी देश मे जिज्ञासा के महत्त्व और स्वरूप को समझने का ऐसा सुन्दर प्रयत्न किया गया हो, जैसा कि हमारे दार्शनिक साहित्य मे कठ उपनिषद् के नचिकेता-उपाख्यान में मिलता है। वास्तव मे यह एक रूपक है। 'नचिकेता' शब्द यथार्थ जिज्ञासु का सूचक है और यह जिज्ञासा-वृत्ति मनुष्य में प्रायः मृत्यु (यम) के सन्निकट होने अर्थात् मृत्यु का भय उपस्थित होने पर जागरुक हो उठती है। [विशेष विवरण के लिए देखो पृष्ट २१ के नीचे दिया हुआ नोट]

अधिकारी कहे, उसे यह कहने का सामर्थ्य पहले होना चाहिए कि 'मैने ऐसा देखा है।' यजुर्वेद के शब्दों मे सच्चा दार्शनिक वही है, जो यह कह सके—*'वेदाहमेत पुरुष महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्'* अर्थात् 'मै इस महान् पुरुष को जानता हूँ, जो आदित्य के समान भास्वर और तम से अतीत है।' 'एव मयाश्रुत' कहनेवाले के पास स्वय अपने दर्शन का अभाव है। जीवन तो आत्मानुभव का नाम है। दूसरे के दर्शन से अपनी तृप्ति त्रिकाल मे भी सभव नहीं।

हमारे साहित्य मे दर्शन के लिए प्राचीन शब्द 'आन्वीक्षिकी' प्रतीत होता है। चाणक्य के अर्थशास्त्र मे विद्याओं का वर्गीकरण करते समय आन्वीक्षिकी पद का ही प्रयोग किया है। आन्वीक्षिकी शब्द मे भी [अनु+ईक्ष्] ईक्षण या देखने का भाव है। डॉ० बेटी हाइमान ने भारतीय विचार-प्रणाली की विशेषता का अध्ययन करते हुए इन परिभाषात्मक शब्दों के विषय मे ठीक ही लिखा है—

"यदि हम पाश्चात्य शब्द philosophy और उसके सस्कृत पर्याय पर विचार करे, तो दोनो का मौलिक भेद तुरत प्रकट हो जाता है। यूनानी शब्द *philo-sophia* का शब्दार्थ है 'ज्ञान का प्रेम' अर्थात् मानव तर्क, उसका क्षेत्र, व्यवसायात्मक निश्चय एव विशेषता की परख। इसके प्रतिकूल सस्कृत शब्द 'आन्वीक्षिकी' का तात्पर्य है पदार्थों का ईक्षण, अर्थात् सृष्टि के जितने पदार्थ हैं, उनके मार्ग से चलकर तत्त्व वस्तु की खोज या तत्त्व-निदिध्यासन। ससार के पदार्थ हमारे ईक्षण का विषय इसलिए बनते हैं कि हम उनके द्वारा तत्त्व का ध्यान कर सके केवल पदार्थों की छानबीन या वर्गीकरण ही हमारा ध्येय नही।"

सच्ची जिज्ञासा के कारण जो 'कस्त्व कोऽहम्' प्रश्नो की मीमासा की जाती है, उसके अनुसार 'दर्शन' शब्द की परिभाषा का ऊपर स्पष्टीकरण किया गया है। दर्शन का मानव जीवन पर जो परिणाम या फल होता है, उसका भी जिज्ञासा के साथ गहरा सबध है। जिज्ञासु के लिए दर्शन बुद्धि का कुतूहल नही। वह कमरे के भीतर बद होकर कुर्सी पर बैठा हुआ अपने कर्त्तव्य की इतिश्री नहीं समझता। उपनिषद् मे जो यह कहा है कि यह आत्मतत्त्व केवल 'मेधा' या बहुत विद्या पढने (बहुश्रुत होने) से नही मिलता, वह जिज्ञासु-मनोवृत्ति की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करने के लिए है। महाकवि जायसी ने इसी बात को सीधे-सादे शब्दों मे यों कहा है—

का भा जोग-कथनि के कथे।
निकसै घिउ न बिना दधि मथे॥

अर्थात् योग की कथा कहने-सुनने से क्या फल है? बिना दही को मथे घी नहीं निकल सकता। इसलिए भारतीय परम्परा के अनुसार दर्शन या साक्षात्कार की विधि ऐसी ही है, जैसे स्वय दही मथकर घी निकालना। इस उक्ति से एक जीवन-क्रम का परिचय मिलता है। दूसरे शब्दो मे दर्शन का फल 'साधना' है। साधना के ही नामान्तर 'तप' या 'व्रत' या 'दीक्षा' हैं। इसीलिए उपनिषदो ने कहा है—

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा
सम्यक् ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।

अर्थात् सत्य, तप, सात्विक ज्ञान और नित्य निर्विकार रहने से ही आत्मतत्त्व का दर्शन हो सकता है।

ये बातें साधना की ओर सकेत करती हैं। जीवन मे दर्शन का फल है साधना का उदय। साधना की भावना से सात्विकी श्रद्धा का जन्म होता है। प्रश्नात्मक जिज्ञासा को अश्रद्धा या श्रद्धा का अभाव नहीं समझना चाहिए। जिज्ञासा का अभाव अश्रद्धा है। जिज्ञास्य विषय को अपने अध्यवसाय की क्षमता से अनुभव का विषय बना सकना यही श्रद्धा का लक्षण है। आत्मविश्वास ही श्रद्धा है। जिज्ञासु को अपनी दृढता मे विश्वास होता है। यही उसका पाथेय है।

अपने मे अविश्वास का होना यह अश्रद्धा का रूप है। प्रश्नों का उत्पन्न न होना तो तम या मूर्च्छा है। सदेह या प्रश्नों को परास्त करने की शक्ति ही जिज्ञासु की श्रद्धा कहलाती है। जिज्ञासा उत्पन्न हो जाने पर यदि जीवन के क्रम मे परिवर्त्तन नहीं होता, तो मानो जिज्ञासु 'दर्शन' या साक्षात्कार के साथ अपना सीधा सबध जोडने से बचना चाहता है। इस दृष्टि से दार्शनिक का जीवन एकान्ततः नैतिक बन जाता है।

दार्शनिक कैंट ने एक स्थान पर कहा है:—

'नीतिमय जीवन का प्रारभ होने के लिए विचार-क्रम मे परिवर्त्तन तथा आचार का ग्रहण आवश्यक है।'

भारतीय परिभाषा मे इस प्रकार के जीवन-क्रम की सज्ञा तप है। इसीलिए तो यहाँ का प्रत्येक दार्शनिक सम्प्रदाय जीवन की एक-न-एक साधना की शिक्षा देता है। ज्ञान, कर्म, उपासना अथवा वेदात-साख्य-योग सबके साथ एक जीवन-मार्ग का घनिष्ट सबध है। इसी कारण भारतवर्ष मे जीवन से विरहित कोई दर्शन नहीं पनप सका। जिस दर्शन का जीवन के साथ सबसे घनिष्ट सबंध था, वही विचार यहाँ सबसे अधिक फूला-फला।

पृथ्वी
की कहानी
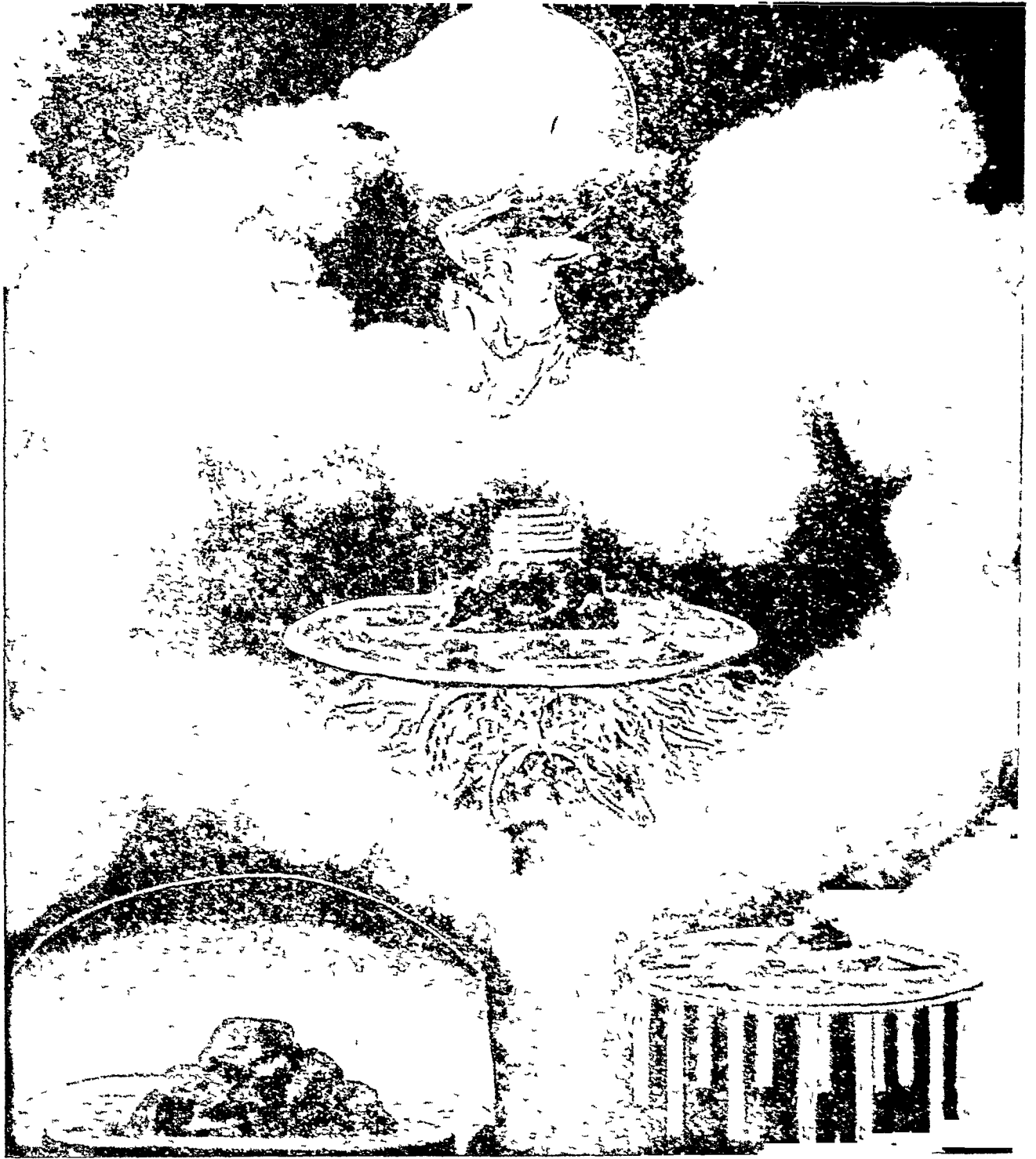
पृथ्वी के सम्बन्ध में कुछ धारणाएं

आरंभ में मनुष्य के पास आज की तरह पृथ्वी के इस छोर से उस छोर तक जाने के साधन नहीं थे कि वह इस सम्बन्ध में प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त कर लेता, अतएव उसने कल्पना का सहारा लिया और पृथ्वी के आकार और आधार के सम्बन्ध में तरह-तरह की धारणाएँ प्रचलित हो गईं। प्राचीन भारतवासियों का विश्वास था कि पृथ्वी ईश्वर की कला शेषनाग के मस्तक पर टिकी हुई है और उसके बीचोबीच सुमेरु नामक कई लाख योजन ऊँचा पर्वत है। इस पर्वत के आस-पास थाली की तरह वलयाकार क्रमशः सात द्वीप और उनको घेरनेवाले सात सागर हैं। यूनानियों का विश्वास था कि पृथ्वी एक बड़ी चपटी छत की भाँति है जो बारह खंभों पर टिकी हुई है, ये खंभे 'हरक्यूलीज़ के खंभे' कहलाते थे। एक मत यह भी था कि शाप के वश एटलस-नामक एक दैत्य पृथ्वी को उठाये हुए है। प्राचीन यहूदियों द्वारा पृथ्वी अण्डाकार विश्व का निचला भाग मानी जाती थी। इसी तरह और भी कई मत प्रचलित हो गए।
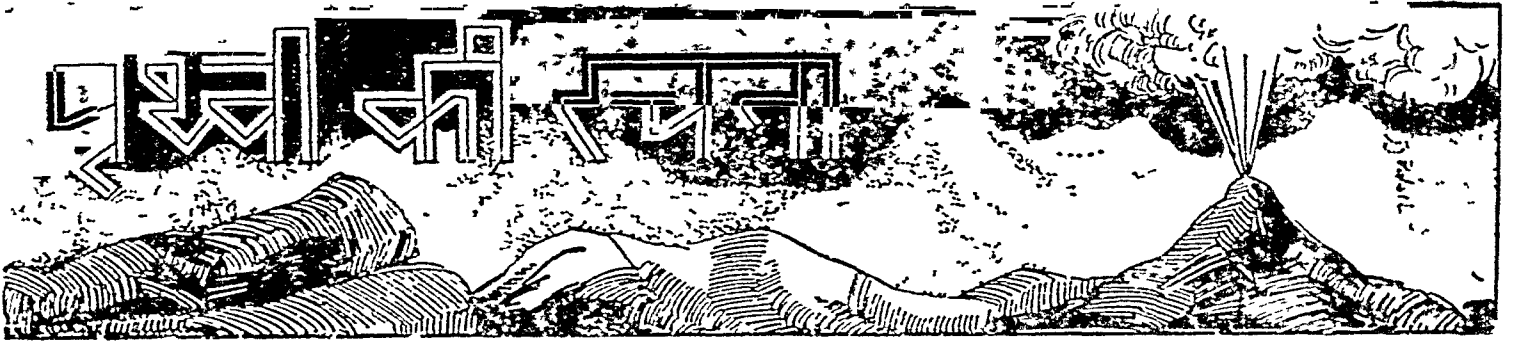
पृथ्वी के आधार और आकार का दर्शन

उस ग्रह की कहानी जिस पर पैदा होते, मरते, खेलते-कूदते और तरह-तरह के खिलौने बनाते-बिगाड़ते हुए हम इस ब्रह्माण्ड में अनंत शून्य की यात्रा कर रहे हैं।

अपनी क्रीडाभूमि पृथ्वी के संबंध मे मनुष्य सदैव ही से कौतूहलपूर्ण प्रश्न करता आया है। पृथ्वी कितनी लंबी और चौड़ी है? उसका धरातल कितना गहरा है और उसके भीतर क्या है? पृथ्वी कहाँ और कैसे स्थिर है? वह कब और कैसे उत्पन्न हुई? उसके जन्मकाल से लेकर आज तक उसमे क्या-क्या परिवर्त्तन हुए हैं? आकाश, तारे और नक्षत्र क्या हैं? सूर्य और पृथ्वी तथा अन्य नक्षत्रों में क्या सम्बन्ध है? आदि प्रश्नों के उत्तर पाने के लिए मनुष्य अपनी स्वाभाविक जिज्ञासा वृत्ति के कारण आदि काल ही से प्रयत्नशील रहा है। प्रकृति की लीलाओं के अध्ययन और मनन के फलस्वरूप मनुष्य का उपरोक्त विषयों संबंधी ज्ञान नित्य प्रति बढ़ता गया और धीरे-धीरे वह स्वयं ही अपनी अनेकों शंकाओं का समाधान करने योग्य हो गया। परन्तु उसकी शंकाओं का कभी अन्त न होने आया। जैसे-जैसे उसका ज्ञान बढ़ा जिज्ञासा भी बढ़ती गई।

पृथ्वी के सम्बन्ध मे मनुष्य ने जो ज्ञान प्राप्त किया उसे हम 'भूगर्भ-विज्ञान' के नाम से पुकारते हैं। इस विज्ञान का जन्म मनुष्य की पृथ्वी-सम्बन्धी जिज्ञासा के फलस्वरूप हुआ। इसमे सन्देह नहीं कि पौराणिक काल के विद्वानों ने इस विज्ञान के प्रारम्भिक सिद्धान्तों का निर्माण किया और पृथ्वी-सम्बन्धी कुछ महत्त्वपूर्ण प्रश्नों के उत्तर प्राप्त किये, परन्तु भूगर्भ विज्ञान के आधुनिक स्वरूप और सिद्धान्तों का विकास प्रारम्भ हुए अभी थोड़ा ही समय व्यतीत हुआ है। पृथ्वी-सम्बन्धी समस्त बातों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिए इसी विज्ञान की सहायता ली जाती है। आधुनिक विज्ञान के जन्म और विकास के साथ-ही-साथ इस विज्ञान का भी विकास हुआ है, और इसका महत्त्व भी बढ़ता जा रहा है।

भूगर्भ-विज्ञान को अन्य विज्ञान से तो सहायता मिली ही है परन्तु सबसे बड़ी सहायता उसे मिली खानों की खुदाई से। जिस प्रकार खानों की खुदाई से भूगर्भ-विज्ञान

पृथ्वी के गर्भ की ओर

पृथ्वी के गर्भ में छिपी धातुओं की खोज में मनुष्य उसके धरातल के नीचे खानें आदि खोदकर यद्यपि अभी डेढ़ दो मील ही की गहराई तक पहुँच पाया है, फिर भी इसी प्रयत्न में उसे पृथ्वी के भीतर की रचना के सम्बन्ध में काफी ज्ञान प्राप्त हुआ है।

को सहायता पहुँची है, उसी प्रकार मनुष्य को भूगर्भ-विज्ञान ने सहायता पहुँचाई है। मनुष्य ने इस विज्ञान की बदौलत इस 'रत्नगर्भा' पृथ्वी से जो सम्पत्ति प्राप्त की है, वह अतुल और अनन्त है। आधुनिक विज्ञान को भी भूगर्भ-विज्ञान ने यथेष्ट सहायता पहुँचाई है और सभ्यता के विकास मे तो उसका प्रधान हाथ रहा है। कल युगी सभ्यता का आधार लोहा, कोयला आदि खनिज पदाथा तथा धातुओ पर किस प्रकार निर्भर है, यह हम सब भली भाँति जानते है। हमारे पैरो के नीचे, पृथ्वी के भीतर क्या है, इसी का उत्तर खोजने की धुन मे मनुष्य ने इस अपार धनराशि को पाया है। यदि यह कहा जाय कि मानवीय सभ्यता का जन्म पृथ्वी-सम्बन्धी जिज्ञासा तथा भूगर्भ-विज्ञान के जन्म और विकास के साथ-ही-साथ हुआ, तो असगत न होगा।

यद्यपि मनुष्य ने पृथ्वी के सम्बन्ध मे खोजबीन अति प्राचीन काल से ही आरम्भ की, तथापि उसका ज्ञान पृथ्वी की थोडी-सी गहराई तक ही सीमित है। गहरी-से-गहरी खान जो मनुष्य खोद पाया है एक या डेढ मील से अधिक गहरी नही है। इसका अर्थ यह है कि मनुष्य का ज्ञान पृथ्वी की इस नगण्य गहराई तक ही सीमित है। वह आज भी यह नहीं जान पाया है कि पृथ्वी के भीतर इस गहराई के बाद क्या है? उसने इस गहराई तक पहुँचने और वहाँ कार्य करने के जो प्रयत्न किये है, उनसे उसको यह ज्ञान अवश्य हो गया है कि पृथ्वी का पिण्ड किस पदार्थ का बना है। गहराई मे जाने पर इस पदार्थ मे किस प्रकार परिवर्त्तन होता जाता है, यह भी उसने सीखा और इसी आधार पर उसने, 'पृथ्वी के गर्भ मे क्या हो सकता है, इसकी कल्पना की है।

आधुनिक वैज्ञानिको के मतानुसार पृथ्वी का पिण्ड ७६०० मील व्यास के एक विशाल गोले के रूप मे है, जिसके नीचे और ऊपर के सिरे चपटे हैं। इस पृथ्वी-पिण्ड के चारो ओर वायुमण्डल का २०० मील के लगभग गहरा पर्त चढा हुआ है। पृथ्वी का क्षेत्रफल लगभग उन्नीस करोड सत्तर लाख वर्ग मील है। इसका ७१ प्रतिशत भाग महासागर, समुद्र आदि के रूप मे जलमग्न है। शेष भाग भूतल है। भूतल का भाग कई प्रकार के पदार्थों से मिलकर बना है। इन पदार्थो मे से कुछ तो सर्वत्र पाये जाते है और कुछ किसी विशेष स्थान पर ही। मुख्यत तीन प्रकार के पदार्थ है, जो भूतल को बनाते हैं। एक तो वे जो पर्वत-श्रेणियो मे पाये जाते हैं। हिमालय आदि

ज्वालामुखी का उद्गार

जो प्रचण्ड आग, धुँआ और पिघली हुई लावा उगल-उगलकर पृथ्वी के गर्भ मे छिपी हुई भीषण अग्नि और उसकी लीला की कहानी हमे सुनाता है।

पर्वतों की चट्टानें परतीले शिलाखण्डों की बनी हैं। इन शिलाओं के पर्तों पर कहीं-कहीं ऐसे चिह्न पाये जाते हैं, जिन्हें देखकर अनुमान होता है कि ये प्रस्तरखण्ड किसी समय जल के भीतर रहे होंगे। ये शिलाखण्ड मिट्टी तथा बजरी-जैसे पदार्थ के बने हैं और जमकर गर्मी के दबाव अथवा अन्य किसी कारण से कठोर हो गये हैं। इसके पदार्थ, जो भूतल के बनाने में लगाये गये हैं, वे हैं जो आग्नेय चट्टानों के रूप में कहीं-कहीं पाये जाते हैं। दक्षिण भारत का पठार इसी प्रकार की चट्टानों से बना है। इन चट्टानों के देखने से यह प्रतीत होता है कि किसी समय ये द्रव पदार्थ के रूप में बहती हुई थीं और जमकर कठोर हो गई हैं। तीसरे प्रकार के पदार्थ मिट्टी, बालू, कंकड़ आदि हैं, जो लगभग सारे भूतल में पाये जाते हैं।

धरती खोदने से भी हमें विचित्र प्रकार के अनुभव होते हैं। कहीं तो चट्टानें इतनी कठोर हैं कि उन्हें साधारण औज़ारों की मदद से खोदना असम्भव हो जाता है और विस्फोटक पदार्थों द्वारा उनको तोड़कर खोदना पड़ता है। कहीं पर चट्टानें बहुत ही नरम हैं तथा कहीं पर थोड़ा खोदते ही जल निकलने लगता है। कुछ भागों में खोदने पर केवल मिट्टी-ही-मिट्टी निकलती है और कहीं पर कोयला तथा लोहा-जैसा काला पत्थर। कहीं पर स्फटिक की शिलायें और कहीं पर खनिजभरी चट्टानें। कहीं गन्धक-मिश्रित जल और कहीं मिट्टी का तेल आदि द्रव पदार्थ।

पृथ्वी के धरातल पर भी विचित्र दृश्य देखने में आते हैं। कहीं तो हिमालय-जैसी गगनचुम्बी पर्वत-श्रेणियाँ, कहीं गंगा-यमुना के मैदान के सदृश समतल भाग, कहीं सहारा-सा मरुस्थल, कहीं दक्षिण भारत-सी कठोर भूमि। कभी भूतल से किसी स्थान पर गरम पानी की धाराएँ बह निकलती हैं, कभी हरा-भरा मैदान मरुभूमि में परिणत हो जाता है। कभी विशालकाय भूमिखण्ड समुद्र के गर्भ में विलीन हो जाते हैं, तो कभी धराखण्ड समुद्र से निकलकर पर्वतों का रूप धारण कर लेते हैं। कभी ज्वालामुखी पर्वत आग्नेय उद्गार में पृथ्वी-मण्डल को कँपा डालते हैं, तो कभी भूचाल मनुष्य-निर्मित नगरों को तहस-नहस कर देते हैं। पर्वत-श्रेणियाँ कहीं ऊपर उठती हैं, कहीं

पृथ्वी किस प्रकार निरंतर बदल रही है

यह प्रकृति की अपनी ही क्रिया-प्रक्रिया के फलस्वरूप पर्वतखण्डों में बनी हुई इन सैकड़ों फीट लम्बी विशाल मेहराबों से अच्छी तरह समझ में आ सकता है।

नदियों द्वारा कट-कटकर मिट्टी मे मिलती जाती है। नदियाँ कहीं तो नर्मदा की भाँति सैकड़ों फीट गहरी घाटियों मे बहती हैं, कही मैदानों मे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रकृति की लीलाओं द्वारा पृथ्वी का रूप निरन्तर बदलता रहता है। कितने युगो से पृथ्वी का रूप बदलता आया है और उसका प्रारम्भिक रूप कैसा था, यह किसी ने नही देखा। आज जो शक्तियाँ उसके रूप को बनाती-बिगाडती हैं, वे आदि युग मे भी इसी प्रकार कार्यशील थी अथवा नहीं, इसका हमे पता नहीं। आदि मानव ने पृथ्वी का जो रूप देखा था, वह कैसा था, इसका भी हमे कुछ ज्ञान नही। इन्हीं बातों को जानने का प्रयत्न भूगर्भ-विज्ञान की सहायता से किया जाता है। जिस प्रकार मनुष्य अपना सामाजिक तथा राजनीतिक इतिहास जानने के लिए मानवीय सभ्यता के चिह्नों को एकत्रित करता है और उनका तात्पर्य समझने की चेष्टा करता है, उसी प्रकार भूगर्भ-विज्ञानवेत्ता पृथ्वी के इतिहास को जानने के लिए उन साधनों का आश्रय लेता है, जो प्रकृति ने उसके लिए पृथ्वी पर अंकित कर रक्खे हैं। प्रकृति ने पृथ्वी के प्रत्येक अंग पर उसका इतिहास स्वय उसी से लिखाया है। नदी तट के बालू के कणो से लेकर विशाल पर्वत-श्रेणियाँ तक अपनी कहानी सुनाने को तैयार हैं। समुद्र गरज-गरजकर अपनी गहराई और भीतर बननेवाले पर्वतों के जन्म का हाल सुनाने को तैयार है। ज्वालामुखी का उद्गार बताना चाहता है कि भूगर्भ मे क्या छिपा है। भूचाल पृथ्वी की किसी आन्तरिक उथल-पुथल का परिचय देता है। इस प्रकार इनमे से प्रत्येक पृथ्वी की आत्मकथा का एक-एक अध्याय छिपाये हुए हैं। जो कोई भी इनके पास पहुँचता है, उसी को अपने पृष्ठ खोलकर दिखाने के लिए ये तत्पर हैं। इस महान् आत्मकथा को पढने के लिए आवश्यकता है कि हम उसके प्रत्येक अंग को ध्यानपूर्वक देखें और फिर उसका मनन करें। आज जो घटनायें हो रही हैं, उन्ही की सहायता से उसके इतिहास की खोज करें। वर्त्तमान ही के पास भूतकाल की कोठरी की कुंजी है—इसी सिद्धान्त पर भूगर्भ-विज्ञान का अध्ययन निर्भर है।

पृथ्वी के विकास के इतिहास का अध्ययन मनुष्य ने आदि युग से ही आरम्भ किया था। यद्यपि हमारी आज की धारणा हमारे पूर्वजों से सर्वथा भिन्न है तथापि हमे भी यह कहने का साहस नही हो सकता कि हमारी ही बात सबसे अन्तिम है। मनुष्य का ज्ञान जैसे-जैसे बढ़ता जाता है, उसका मत भी बदलता जाता है। पृथ्वी के सम्बन्ध में मनुष्य के विचार समयानुकूल किस प्रकार बदलते रहे हैं, इसका इतिहास बहुत ही मनोरंजक है।

सभ्यता के आदि युग में जब लोगों का विचरण पृथ्वी के थोडे-से भाग तक ही सीमित था, उनका विश्वास था कि पृथ्वी चौरस है और इसकी गहराई अनन्त है। पृथ्वी की लम्बाई-चौड़ाई की कल्पना उन लोगों ने नहीं की। परन्तु जब उनके पर्यटन का क्षेत्र बढ़ा और वे समुद्र के किनारे तक पहुँचने लगे, तब पृथ्वी के बारे मे उनका विचार भी बदलने लगा। वे पृथ्वी को समुद्र में तैरनेवाली एक विशालकाय वस्तु समझने लगे। अनन्त जलसागर मे तैरनेवाली विशालकाय पृथ्वी जब उन्हे तनिक भी हिलती-डुलती न प्रतीत हुई, तब उनका विचार हुआ कि पृथ्वी तैरती नहीं है, वरन् अचल है और विशाल वृक्ष की भाँति है, जिसकी जड़ें अनन्त जलराशि के नीचे तक चली गई हैं और किसी अदृश्य स्थान पर जकड़ी हुई हैं।

यह विचार अधिक काल तक स्थिर न रह सका और लोगों के विचारों मे फिर परिवर्त्तन हुआ। उन्होंने पृथ्वी के आधार की खोज करना आरम्भ की और यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि पृथ्वी एक बडी चौरस छत की भाँति है, जो बारह खम्भों पर स्थित है। ये खम्भे किस आधार पर टिके हैं, इस सम्बन्ध मे वे चुप रहे। परन्तु कुछ लोगों ने यह सिद्धान्त फैलाना आरम्भ किया कि यज्ञ, हवन, बलिदान आदि धार्मिक कृत्यों के बल पर ये खम्भे स्थित हैं। यदि पृथ्वी पर धार्मिक कृत्य बन्द हो जायँ, तो ये खम्भे एक दिन भी स्थिर न रह सकेंगे और पृथ्वी गिरकर अनन्त पाताल के गर्भ मे विलीन हो जायगी। इसी कल्पना के आधार पर भूकम्प का सिद्धान्त ठहराया गया। अर्थात् जब धार्मिक कृत्यो मे कमी हो जाती है, तब इन खम्भों की शक्ति क्षीण हो जाती है और पृथ्वी डगमगा जाती है। इसीलिए आजकल भी धर्मात्मा लोग भूकम्प के समय धार्मिक अनुष्ठानादि करने मे लिप्त हो जाते हैं। पुराने विचारों के हिन्दुओं मे ऐसे ही कुछ विश्वास अब भी प्रचलित हैं। कैथोलिक मतावलम्बी अब भी पृथ्वी को चपटी मानते हैं। इसी विश्वास के आधार पर योरप मे कई ऐसे विद्वानों को जीवित जला तक दिया गया, जो पृथ्वी को गोल कहने का साहस करते थे।

भारतवर्ष मे भी पृथ्वी के सम्बन्ध मे विभिन्न कालों में विभिन्न मत प्रचलित रहे हैं। हमारे शास्त्रों मे पृथ्वी को अचला, अनन्ता, स्थिरा आदि नामों से पुकारा गया है।

इससे पृथ्वी की स्थिति और विस्तार का तो ज्ञान होता है, परन्तु उसके आकार और आधार का पता नही लगता। कुछ लोगों का सिद्धान्त था कि पृथ्वी गोल छिलके की भाँति है और चार हाथियो की पीठ पर अवस्थित है और हाथी एक विशाल कच्छप की पीठ पर खडे है। इसी कारण सम्भवतः इसका नाम 'काश्यपी' पडा। चीन देश मे भी इसी प्रकार का कुछ विश्वास प्रचलित था। तिब्बत के लामा पृथ्वी को मेढकों पर रक्खा हुआ मानते है।

भागवत पुराण की वाराह अवतार की कथा के प्रसग मे यह कहा गया है कि भगवान् ने पृथ्वी को रसातल से खोज निकाला और जल के ऊपर रख दिया और तब से वह वही पर रक्खी हुई है। पृथ्वी के आधार के विषय मे कहा जाता है कि वह शेषनाग के फन पर रक्खी हुई है। शेषनाग ब्रह्माजी के आदेश से परोपकारार्थ इस 'चल' पृथ्वी को अपने सिर पर बिना परिश्रम के इस प्रकार धारण किये रहते हैं कि वह तनिक भी हिलती-डुलती नहीं!

आगे चलकर कुछ विद्वानो ने पृथ्वी की अण्डाकार कल्पना की। इस धारणा के अनुसार भी पृथ्वी आधी समुद्र के भीतर जलमग्न है और शेष पर मनुष्य रहते हैं। भिन्न-भिन्न विद्वानो ने अपनी बुद्धि और तर्क के अनुसार पृथ्वी का भिन्न-भिन्न आकार सिद्ध करने की चेष्टा की। किसी ने पृथ्वी को नल के समान, तो किसी ने छः पहलवाली माना। किसी ने पृथ्वी को खरबूजे के समान माना, तो किसी ने ताम्बूलाकार। कोलम्बस ने सिद्ध करने का प्रयत्न किया था कि पृथ्वी शखाकार है।

प्रसिद्ध विद्वान् भास्कराचार्य ने बारहवी शताब्दी मे यह सिद्ध कर दिया था कि पृथ्वी गोल है और उसमे आकर्षण-शक्ति है। पृथ्वी तथा अन्य ग्रहो की परस्पर आकर्षण-शक्ति के कारण ही सब ग्रह निरन्तर निराधार घूमा करते हैं। इस मत की पुष्टि आधुनिक विद्वानो ने भी की है।
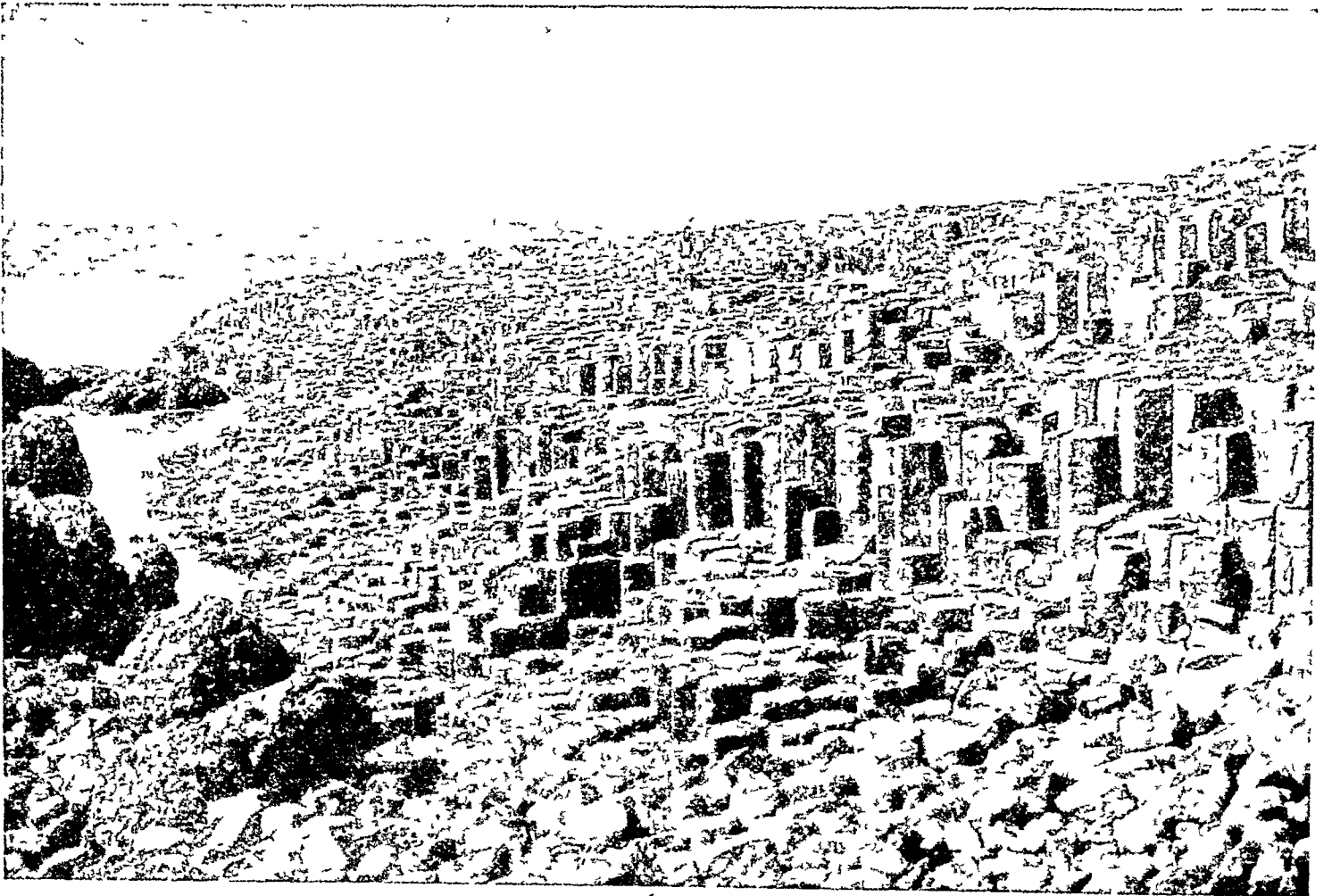
पृथ्वी की अद्भुत आत्मकथा का एक पृष्ठ

प्रकृति ने पृथ्वी के प्रत्येक अग पर उसकी जीवन-कथा स्वयं उसी से लिखवाई है। ऊपर के चित्र मे आयर्लैंड के उत्तरी समुद्रतट पर प्रकृति द्वारा रची हुई खंभो के टुकडो-जैसी शिलाओ का अद्भुत दृश्य है। ये शिलाएँ हज़ारो-लाखो वर्ष पूर्व किसी समय पिघली हुई लावा के एक विशेष रीति से जम जाने से बनी थीं। आज दिन तो ये ऐसी मालूम होती हैं, मानों किसी विशाल घाट के खण्डहर हों!

आधुनिक मतानुसार पृथ्वी नारगी के समान गोल है और उत्तरी तथा दक्षिणी ध्रुवो के पास वह चपटी हो गई है। कुछ विद्वानो की गवेषणा तथा खोज के परिणामस्वरूप पृथ्वी का एक नवीन ही आकार माना गया है, जो न पूर्णतया गोल है और न अण्डाकार। इस आकार को 'पृथिव्याकार' कहे तो ठीक है, क्योकि उसका अपना निराला ही आकार है। इस आकार की कल्पना इस कारण की गई है कि पृथ्वी का कोई भी अक्षांश—यहॉ तक कि विषवत् रेखा भी—पूर्ण वृत्त नहीं है।

पृथ्वी के आकार और आधार के विषय मे तो लोगों ने भॉति-भॉति की कल्पना की, परन्तु उसके भीतर क्या है, इसके बारे मे लोग बहुत कम जान पाये। कुछ लोगों ने पृथ्वी को खोखला और कुछ ने पृथ्वी को ठोस माना। मार्शल गार्डनर नामक भूविज्ञान के प्रसिद्ध विद्वान् के मतानुसार पृथ्वी खोखला पिण्ड है। इसका छिलका ८०० मील मोटा है। इसके भीतर भी एक सूर्य है, जो इसे गर्म रखता है। पृथ्वी के भीतर क्या है—इस सम्बन्ध मे एक प्रसिद्ध रासायनिक अरीनिउस का कहना है कि धरती धातु से बना हुआ एक भारी गोला है। इस गोले के भीतर उग्र ऑच से उत्तप्त पदार्थ भरा है और इसका गर्भ वायव्य रूप मे है। उसकी यह कल्पना ज्वालामुखी पर्वतों के उद्गार के आधार पर अवलम्बित है। उसका कहना है कि पृथ्वी के अत्यन्त गहरे भागो मे भार के खिचाव से खिंचकर सोना, चॉदी, प्लेटिनम आदि धातुऍ जमा हो गई हैं। फारसी सभ्यतावालो के मतानुसार कारूँ अपना खजाना लेकर पृथ्वी मे धॅस गया है और आज भी धॅसता जाता है। वह कारूँ का खजाना यही हो सकता है। इस अतुल धनराशि के चारो ओर वायव्य रूप मे लोहे का बहुत बडा पर्त है। पृथ्वी का लगभग आधा पिण्ड लोहे का है। वायव्य लोहे के इस अनल-मण्डल का व्यास लगभग ६ हजार मील है। इसके ऊपर ६ सौ मील मोटा चट्टानो के वायव्य का स्तर है। इसके ऊपर १६० मील धधकती ऑच से सफेद गले हुए पत्थरो का तल है। इन सबके ऊपर लगभग १०० मील मोटा वह चिप्पड है, जिस पर हम लोग रहते हैं। अरीनिउस के सिद्धान्त को आधुनिक वैज्ञानिक भी अपने मत का आधार मानते हैं।

पृथ्वी-पिण्ड वायुमण्डल से लगभग २०० मील तक घिरा हुआ है। पृथ्वी के सम्पूर्ण ऊपरी तल का क्षेत्रफल लगभग १९ करोड ७० लाख वर्ग मील है। इसमे से लगभग १४ करोड वर्ग मील भूमि महासागरों, समुद्रो, और झीलो से घिरी है। शेष भूमि में यूरेशिया, अफ्रीका, अमरीका आदि महाद्वीप फैले हैं। केवल प्रशान्त महासागर ही आधी पृथ्वी पर फैला है। इसकी औसत गहराई लगभग १४००० फीट है। धरातल के किनारों का भाग सागर मे शनैः-शनैः डूबता हुआ अचानक अतुल गहराई मे विलुप्त हो जाता है। सागर-जल की मात्रा इतनी प्रचुर है कि यदि पृथ्वी के ऊँचे-नीचे भाग सब बराबर कर दिये जायें, तो सम्पूर्ण धरातल जलमग्न हो जाय और लगभग ८६०० फीट गहरे जल का वेष्ठन (पर्त) चढ जाय।

सागर की सबसे अधिक गहराई ३५००० फीट से भी अधिक है। और भूतल के सर्वोच्च शिखर गौरीशकर की ऊँचाई २६००० फीट से कुछ अधिक है। इस प्रकार हमारे चिप्पड के ऊपरी तल पर कुल १२ मील के लगभग ऊँचाई-नीचाई है। पृथ्वी के ७६०० मील लम्बे व्यास की तुलना में १२ मील की ऊँचाई-नीचाई नगण्य-सी है। इस प्रकार आधुनिक मनुष्य का ज्ञान पृथ्वी के ऊपरी चिप्पड के भी एक छोटे अश तक ही सीमित है। पृथ्वी के चिप्पड की अपेक्षा मनुष्य को समुद्र के भीतर का ज्ञान अधिक है। समुद्र के भीतर मनुष्य आसानी से जा सका है। समुद्रतल भी पृथ्वी के धरातल की भॉति समतल नही है। धरातल की भॉति समुद्रतल पर भी नीची-ऊँची भूमि, घाटियॉ और पहाडियॉ-सी हैं।

पृथ्वी जिस रूप में आज हमे दिखाई पड रही है, वह इस प्रकार कैसे हो गई, यह जानने के लिए हमे यह जानना आवश्यक है कि पृथ्वी का जन्म कैसे और कब हुआ? जन्म के पश्चात् पृथ्वी मे क्या-क्या परिवर्त्तन हुए तथा उसका आकार किस प्रकार बदलता रहा? यह पता लगाना ही भूगर्भशास्त्र का काम है। आगे के अध्यायों मे हम बतावेगे कि किस प्रकार पृथ्वी का जन्म हुआ और फिर पृथ्वी पर धरातल तथा सागरतल का निर्माण किस प्रकार हुआ—पर्वत कैसे और कब बने, भूचाल क्यों आते हैं तथा ज्वालामुखी पहाड क्या हैं? नदियॉ कब और कैसे बनी और फिर मनुष्य पृथ्वी पर कहॉ से और कैसे आया? हम ऊपर बता चुके हैं कि इन बातो का पता भूगर्भ-विज्ञान की सहायता से इसी सिद्धान्त पर लगाया गया है कि 'जो आज हो रहा है वैसा ही कल भी हो चुका होगा।' इस सिद्धान्त, कल्पना, और तर्क के बल पर मनुष्य ने अपनी पृथ्वी-सम्बन्धी जिज्ञासा को शान्त करने की चेष्टा की है। यह आगे चलकर मालूम होगा कि वह सत्य के कितने निकट पहुँच गया है।
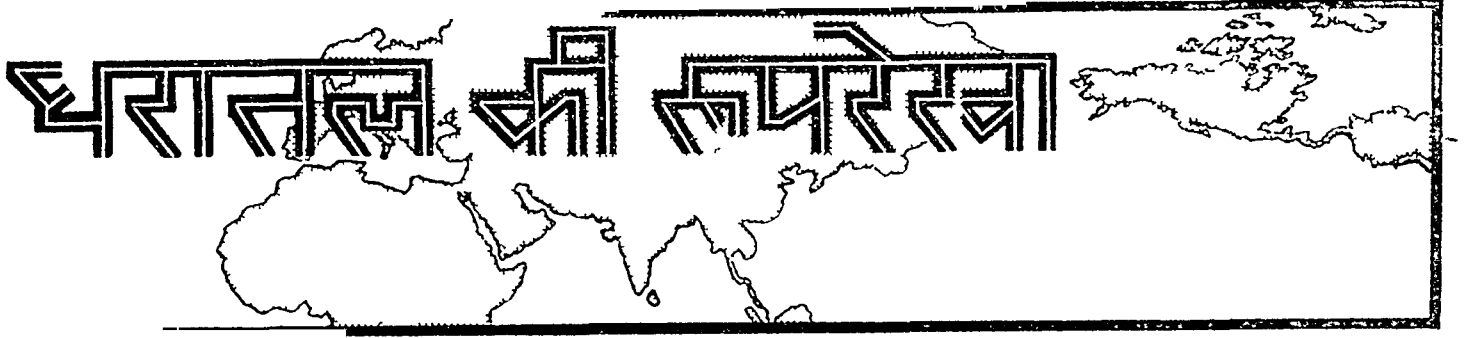
नई और पुरानी दुनिया

पृथ्वी की सतह पर के जल और स्थल के उस विशाल क्षेत्र के व्यापक भौगोलिक रूप का दिग्दर्शन, जिसे हम अपनी 'दुनिया' कहकर पुकारते हैं और जो हमारे नकशों में दो गोलार्द्धों के रूप में चित्रित किया जाता है।

अपने निवासस्थान भूपृष्ठ अथवा पृथ्वी के धरातल के विषय मे मनुष्य ने जो ज्ञान प्राप्त किया है, उसे 'भूपृष्ठ' अथवा 'भूगोल' विज्ञान के नाम से पुकारा जाता है। भूगोल के अध्ययन से हमे धरातल की प्राकृतिक बनावट का ज्ञान प्राप्त होता है। भूगोल शास्त्र के अध्ययन से हमें यह ज्ञान होता है कि धरातल का कितना भाग जलमग्न है और कितना सूखा भूखण्ड, भूखण्ड का कौन-सा भाग चौरस मैदान है और कहाँ पर विशाल पर्वत-शृंखलाएँ हैं, किस प्रकार ऋतु-परिवर्त्तन होता है और कैसे वर्षा होती है; कौन-से भाग शीतप्रधान है और कहाँ पर भीषण गर्मी पडती है, कहाँ पर नदी, झील और हरे-भरे मैदान और कहाँ पर जलविहीन मरुभूमि है? केवल इतना ही नही, हम इसके द्वारा यह भी जान सकते हैं कि भूपृष्ठ की प्राकृतिक अवस्था मे विभिन्नता क्यो है? सर्वत्र एक ही सी ऋतु, एक ही सी पैदावार, एक-सी वनस्पति तथा एक ही से पशु पक्षी और मनुष्य क्यो नही होते हैं? कही पर शीतलता, तो कही पर उष्णता की पराकाष्ठा क्यो है? समस्त भूपृष्ठ पर एक ही सी वायु क्यो नही चलती और कही पर कम और कही पर अधिक वर्षा क्यों होती है?

भूपृष्ठ शास्त्र के अध्ययन करनेवालों ने यह सिद्ध कर दिया है कि हमारी पृथ्वी एक बडा गोला है। जब हम जल या स्थल पर यात्रा करते हैं, तो ऐसा जान पडता है, मानों पृथ्वी चपटी है। पर अब से कई हज़ार वर्ष पहले ही लोग समझ गये थे कि पृथ्वी चपटी नहीं है। यह हमे चपटी इसलिए मालूम होती है कि हम एक समय मे इसका बहुत ही थोडा भाग देख सकते हैं। पृथ्वी का व्यास इतना विशाल है कि उस पर हमारी स्थिति आध मील व्यासवाली एक विशाल गेंद पर रेंगनेवाली मक्खी के समान है।

एक समय था जब लोगों की धारणा थी कि पृथ्वी चपटी है। उन दिनों लोग अपनी धारणाओं पर इतना अधिक विश्वास करते थे कि किसी प्रकार भी उनका विरोध सहन नही कर सकते थे। पृथ्वी के आकार के विषय मे जब कुछ विद्वानों ने प्रचलित मत के विरुद्ध यह सिद्ध करने की चेष्टा की कि पृथ्वी गोल है, तब लोगो ने उनका बड़ा तिरस्कार किया। कुछ लोगो को इसी कारण बडी यन्त्रणाये और कष्ट झेलने पडे। परन्तु धीरे-धीरे लोगों के विश्वास मे परिवर्त्तन हुआ और उन्हे भी यह विश्वास हो गया कि वास्तव मे पृथ्वी गोल है।

आधुनिक खोज और आविष्कारो के युग मे लोगो का ज्ञान उतना परिमित नही है जितना उन दिनों था, जब यात्राओं के साधन नही थे। उन दिनो लोगो का ज्ञान केवल देश के उसी भाग तक सीमित था, जहाँ तक वे आसानी से आ-जा सकते थे। आजकल तो लोगो ने सारी पृथ्वी की परिक्रमा कर डाली है और यह सिद्ध कर दिया है कि पृथ्वी का आकार नारंगी से मिलता-जुलता है। ज्योतिष-विज्ञान की सहायता से मनुष्य ने यह सिद्ध किया है कि पृथ्वी आकाशमण्डल के अन्य ग्रहों के समान ही एक ग्रह है और सब ग्रहों की भाँति गोले के आकार की है। पृथ्वी के गोल होने के क्या प्रमाण हैं, यह हम अगले अध्याय मे विस्तारपूर्वक सिद्ध करेंगे। यहाँ पर इतना
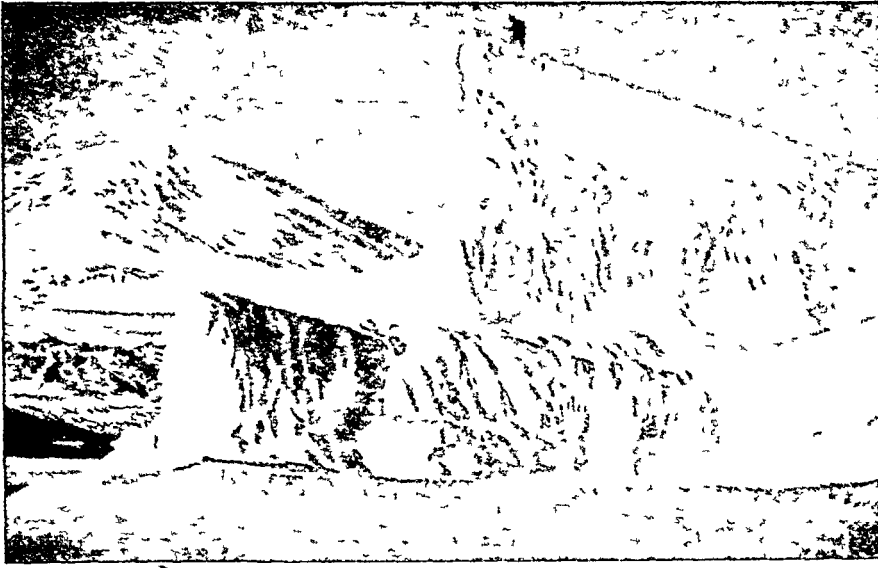
कह देना पर्याप्त है कि पृथ्वी गोल है, परन्तु इसका आकार पूर्णतया गोले के समान नहीं है। इसका कारण यह नहीं है कि उसके धरातल को ऊँचे-ऊँचे पर्वत, गहरी घाटियाँ, सागर आदि ऊबड़-खाबड़ बनाये हुए हैं। पृथ्वी के विशाल गोले के आकार के सामने यह ऊँचाई-नीचाई नगण्य-सी है। इसलिए धरातल की इस ऊँचाई-नीचाई का पृथ्वी के आकार पर तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ता।' जिस प्रकार नारंगी गोल होते हुए भी ऊपर और नीचे के सिरों पर कुछ चपटी होती है तथा पेटे का भाग कुछ अधिक गोलाई लिये होता है, उसी प्रकार हमारी पृथ्वी भी नीचे और ऊपर के सिरों पर कुछ-कुछ नारंगी के समान ही चपटी है और इसके पेटे का भाग भी कुछ अधिक गोलाई लिये है। यदि पृथ्वी की परिधि नापी जाय, तो पेटे की परिधि शेष भाग की परिधि की अपेक्षा कुछ अधिक और ऊपर-नीचे के चपटे भागों पर नापी गई परिधि शेष की अपेक्षा कुछ कम होगी।

पृथ्वी की सम्पूर्ण परिक्रमा

पृथ्वी के भिन्न-भिन्न प्राकृतिक प्रदेश (१)

(ऊपर) ध्रुवों के आस-पास का शीत-कटिबन्ध का प्रदेश, जहाँ केवल बर्फ़-ही-बर्फ़ है।

(बीच में) चीड़ के वनोंवाला प्रांत जहाँ जाड़ों में भीषण सर्दी रहती है।

(नीचे) घास के मीलों लंबे मैदान जहाँ वृक्ष नाममात्र को भी नहीं हैं, किन्तु अच्छी खेती होने लगी है।

करने में ही उसकी नाप की जा सकती है। आजकल इतनी लम्बी यात्रा करने के अनेकों साधन उपस्थित हैं। परन्तु प्राचीन काल में पृथ्वी की परिक्रमा करना सर्वथा असम्भव था। इसलिए लोग पृथ्वी के आकार और परिमाण के विषय में बहुत दिनों तक अनभिज्ञ रहे। २००० वर्ष से ऊपर हुए इराटस्थनीज़-नामक एक यूनानी विद्वान् ने सर्वप्रथम पृथ्वी के परिमाण की गणना की थी। उसकी गणना के अनुसार पृथ्वी की परिधि की लम्बाई ३००० मील है। परन्तु आधुनिक वैज्ञानिकों ने लगभग सम्पूर्ण पृथ्वीतल को कई बार नाप डाला है। उनके अनुसार पृथ्वी की परिधि की लम्बाई लगभग २५००० मील है।

पृथ्वी के चिपटे सिरों का नाम ध्रुव है। ऊपर का सिरा 'उत्तरी ध्रुव' और नीचे का सिरा 'दक्षिणी ध्रुव' कहलाता है। ध्रुवों के मध्य पृथ्वी के व्यास की लम्बाई ७८९९ मील है। मध्य में उसकी लपेट पर पूर्व-पश्चिम का व्यास ७९२६ मील के लगभग है। सम्पूर्ण धरातल का क्षेत्रफल १९ करोड़

पृथ्वी के भिन्न-भिन्न प्राकृतिक प्रदेश (२)

(ऊपर) उजाड़ मरुस्थल या हिमि-स्तानी हिस्सा, जहाँ [illegible] के कुछेक को छोड़कर न कोई पेड़-पौधा होता है, न घास ही उगती है। [illegible] [illegible] यहाँ [illegible] ढेर-के-ढेर [illegible] [illegible] बिखरे पड़े हैं। (नीचे) उष्ण [illegible] का प्रदेश, जहाँ [illegible] [illegible] रहता है, [illegible] [illegible]

७० लाख वर्ग मील है। धरातल का दो-तिहाई से अधिक भाग जल-वेष्ठित है। शेष स्थल भाग है।

आधुनिक काल मे धरातल के स्थल भाग को कई भूखण्डो मे विभाजित किया गया है। इन भूखण्डों या महाद्वीपो के नाम और क्षेत्रफल निम्न तालिका से प्रकट होगे:—

महाद्वीप	क्षेत्रफल
एशिया	१,७०,००,००० वर्ग मील
योरप	३७,५०,००० ,,
अफ्रीका	१,१५,००,००० ,,
उत्तरी अमेरिका	८०,००,००० ,,
दक्षिणी अमेरिका	७०,००,००० ,,
आस्ट्रेलिया	३०,००,००० ,,
पालीनीशिया	५,००,००० ,,
अटलाण्टिक तथा हिन्द महासागर के द्वीप	२,५०,००० ,,
ध्रुव प्रदेश	२०,००,००० ,,
सम्पूर्ण स्थल का क्षेत्रफल	५,३०,००,००० वर्गमील

जिस प्रकार स्थल भाग के खण्डो का नाम महाद्वीप रख लिया गया है, उसी प्रकार धरातल के जलमण्डित भाग के भी कई खण्ड किये गये हैं और प्रत्येक 'महासागर' के नाम से पुकारा जाता है। बडे-बडे महासागर पॉच हैं। इनके नाम, क्षेत्रफल आदि निम्न तालिका के अनुसार हैं'—

पृथ्वी के दो गोलार्द्ध—'पुरानी' और 'नई' दुनिया

महासागर	क्षेत्रफल
प्रशान्त (पैसिफिक)	६,५०,००,००० वर्ग मील
अटलाण्टिक महासागर	३,५०,००,००० ,,
हिन्द महासागर	२,५०,००,००० ,,
आर्कटिक या हिम महासागर	२५,००,००० ,,
अण्टार्टिक या दक्षिणी महासागर	३५,००,००० ,,
सम्पूर्ण क्षेत्रफल	१३,१०,००,००० वर्ग मील

इन विशाल जलखण्डो के अलावा पृथ्वीतल पर सागर आदि अनेकों और भी छोटे जलखण्ड हैं। इसी प्रकार महाद्वीपो के अतिरिक्त अनेकों छोटे स्थलखण्ड हैं, जो द्वीप या 'टापू' के नाम से पुकारे जाते हैं।

सम्पूर्ण भूपृष्ठ अथवा भूगोल को आज दो भागों में विभाजित समझा जाता है। एक भाग मे उत्तर, मध्य और दक्षिण अमेरिका हैं और दूसरे मे योरप, एशिया, अफ्रीका और आस्ट्रेलिया हैं। पहले विभाग के पूर्व मे अटलाटिक और पश्चिम मे प्रशान्त महासागर हैं। दक्षिण मे दक्षिण महासागर और उत्तर मे उत्तरीय या हिम महासागर हैं। इसी प्रकार दूसरे विभाग के उत्तर मे उत्तरीय या हिम महासागर और दक्षिण मे हिन्द तथा दक्षिण महासागर हैं और पूर्व तथा पश्चिम मे क्रमश' प्रशान्त तथा अटलाटिक महासागर हैं। आस्ट्रेलिया के ईशान कोण मे पैसिफिक महासागर के विशाल वक्ष-स्थल पर नक्शे मे कई नन्हे-नन्हें टापू देखे जाते हैं। इन सबके समूह को पालीनीशिया कहते हैं। उत्तर और दक्षिण ध्रुवों अथवा मेरुओं पर भी बर्फ से ढका स्थल का बडा विस्तार है।

एक समय था, जब एशियावाले गोलार्द्ध के लोगो का भूगोल-विषयक प्राप्त ज्ञान केवल एशिया, योरप, तथा अफ्रीका तक सीमित था। पूर्वी गोलार्द्ध के लोगों को जब अमेरिका आदि का ज्ञान हुआ, तब उन्होने उसको 'नई दुनिया' के नाम से पुकारना आरम्भ किया। तब से पूर्वीय गोलार्द्ध 'पुरानी दुनिया' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

धरातल का स्थल और जल के अतिरिक्त एक तीसरा महत्त्वपूर्ण भाग और भी है। इसे हम 'वायुमण्डल' के नाम से पुकारते हैं। वायुमण्डल पृथ्वी को दो सौ मील की ऊँचाई तक मण्डित किये हुए है। वायुमण्डल मे क्या है और धरातल से उसका क्या सम्बन्ध है, इसका विस्तीर्ण हाल हम आगे बतायेंगे।
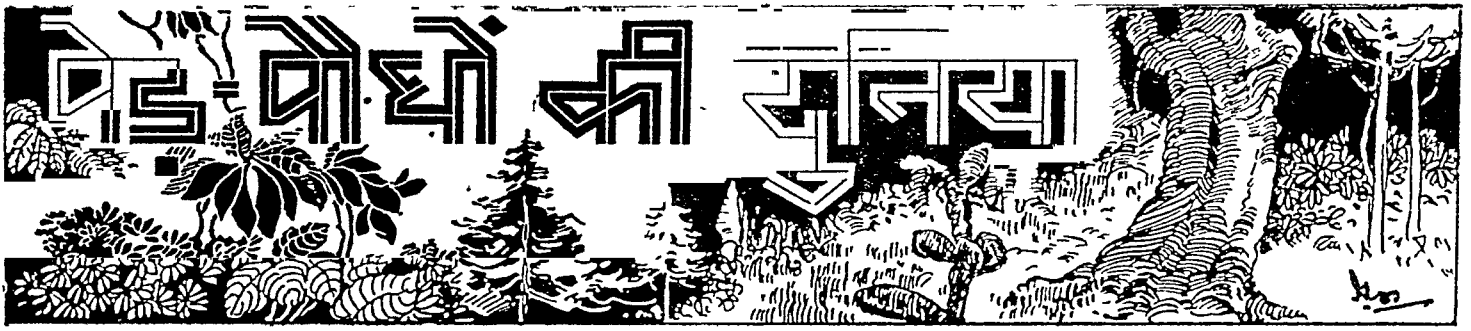
सजीव सृष्टि

जिसके बिना हमारी यह पृथ्वी एक विशाल मरुप्रदेश के समान होती और किसी भी प्राणी का उस पर पैदा होना या जीवित रहना असंभव होता, उन पेड़-पौधों की कहानी।

सजीव और निर्जीव जगत्

संसार में दो प्रकार के पदार्थ हैं—एक सजीव और दूसरे निर्जीव। मनुष्य, पशु, पक्षी, पतिंगे, वृक्ष, लता, घास, काई, फफूँदी आदि की गणना सजीव सृष्टि में, और मिट्टी, पत्थर, सोना, लोहा, अनेक धातु और उपधातु आदि की निर्जीव में है। इसी प्रकार विश्व में जितनी वस्तुएँ हैं, चाहे वे जिस काल या दशा की हों, या तो वे सजीव होंगी या निर्जीव। सम्भव है, इस विषय पर हम लोगों में कुछ मतभेद हो। प्रायः इस सम्बन्ध में हमारा अनुमान यथार्थ नहीं होता। हम में से कुछ लोग मनुष्य तथा अन्य साधारण पशुओं को ही जीवधारी समझते हैं और ऐसे लोग छोटे-छोटे अनेक जीवों को सजीव सृष्टि में सम्मिलित करने में सहमत न होंगे। वृक्षों के विषय में तो बहुतों की यही धारणा है। परन्तु यह हमारा भ्रम है। सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने से पता चलता है कि वृक्षों में केवल प्राण ही नहीं वरन् इनकी जीवनी भी उतनी ही रहस्यपूर्ण है, जितनी हमारी, आपकी अथवा किसी अन्य जीव की। इनमें भी आहार, विहार, तन्द्रा, निद्रा, संतति-समवर्धन आदि विशेषताएँ हैं। इनके भी शत्रु, मित्र, सहचारी, सहायक होते हैं। इनमें भी घोर जीवन संग्राम और शत्रु तथा आपद-काल के लिए प्रबंध और देशकालानुसार परिवर्त्तित होने की योग्यता है। यह भी ताप और तुषार का अनुभव अथवा इनसे बचने का प्रयत्न करते हैं।

लज्जावती या छुईमुई का पौधा

इनमें भी हमारी-आपकी भाँति उत्तेजना-शक्ति और प्रतिक्रियाशीलता है। लज्जावती के पौधे से कौन नहीं परिचित है? 'यथा नाम तथा गुणम्।' इसकी एक पत्ती को स्पर्श करके देखिए। आपका हाथ छू जाने की देर है, एक-एक करके अनेकों पत्तियाँ सकुचित हो जाती हैं, और यदि कहीं आघात कठोर है, तो कई डालें मूर्च्छित हो जायँगी। थोड़ी देर तक इस दशा में रहने के पश्चात् वे पुनः पूर्ववत् दशा को प्राप्त हो जायँगी। आप लोगों ने चकवड़ (*Cassia tora*) का पौधा अवश्य देखा होगा। यह वर्षा ऋतु
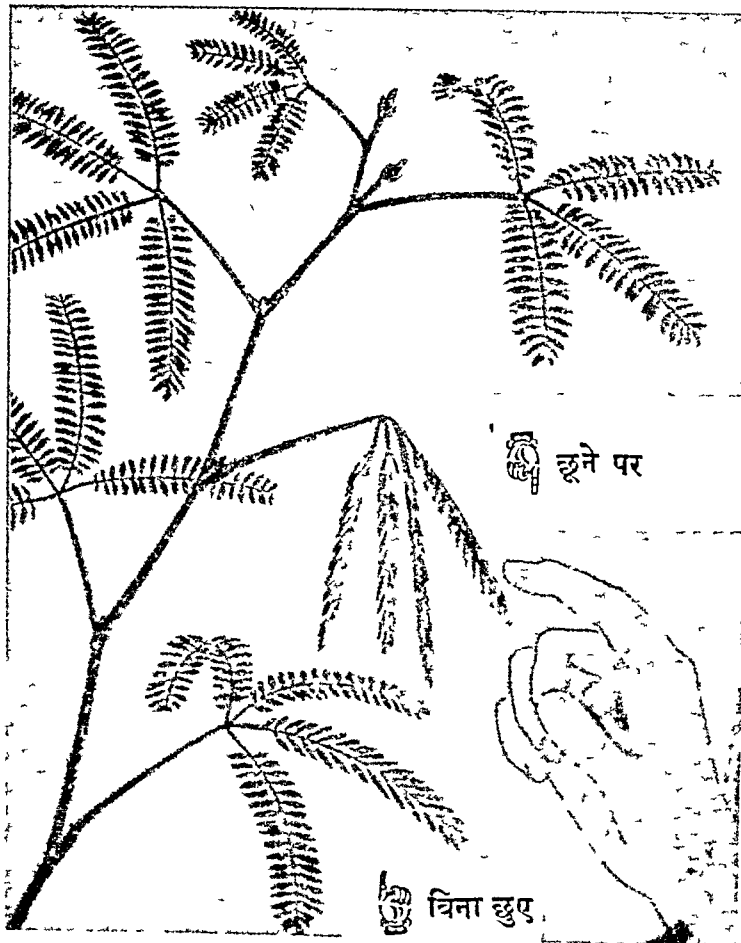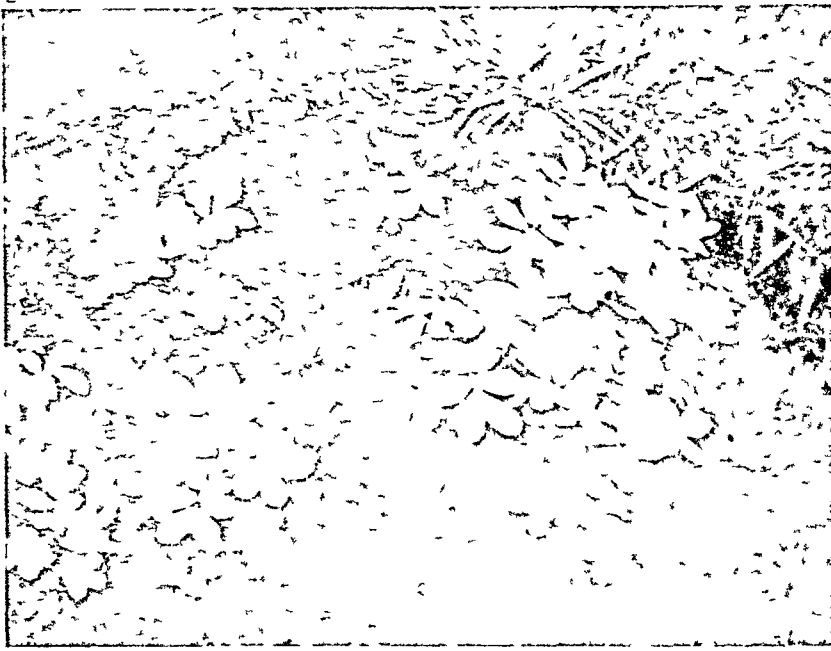
चकवड़ का पौधा

(बाईं ओर) दिन के समय, जब उसके पत्रक जाग्रत रहते हैं, (दाहिनी ओर) रात के समय, जब पत्रक निद्रित होते हैं।

में हमारे बागों तथा खेतों मे उपजता है। कदाचित् आपने इसकी विचित्रता की ओर ध्यान न दिया हो। यदि अब कभी अवसर मिले, तो जिस स्थान पर इसके पेड हों, सूर्य अस्त होने पर अवश्य जाइए। इस समय यह आपको निद्रित दशा मे मिलेगा। इसके पत्रकों (leaflets) को, जो आमने-सामने होते हैं, आप सुषुप्तावस्था मे एक-दूसरे के बाहुपाश मे देखेंगे। प्रातःकाल प्रकाश फैलते ही ये निद्रा छोड दिनचर्य्या मे लग जाते हैं।

कितने ही तो ऐसे वृक्ष हैं, जो बगुले की भाँति दूसरे जीवों का शिकार भी करते हैं। तुंबिलता (*Nepenthes*) नाम की लता जो भूमध्यरेखा के निकटवर्त्ती जगलों मे होती है, इनमें से एक है। इस लता की तुंबिकाकार बहुरंगी पत्तियों मे एक प्रकार का रस भरा रहता है। बेचारे पतिंगे इन पत्तियों के रंग से आकर्षित होकर दुर्भाग्यवश वहाँ आ पहुँचते हैं और तुंबी में प्रवेश करते ही अपनी जान से हाथ धो बैठते हैं।

तुंबियों के मुख पर एक प्रकार का ढक्कन होता है और उनके गले पर अन्दर की ओर रोयें, तथा उनकी अदर की दीवार लसलसी होती है। इस कारण पतिंगे का बाहर निकलना असम्भव हो जाता है। साथ-ही-साथ ज्यों ही शिकार अंदर पहुँचा, पत्ती से एक प्रकार के द्रव पदार्थ का संचार होता है, जैसे हमारे-आपके मुँह में किसी स्वादिष्ट पदार्थ के सामने आने पर प्रायः होता है। यह रस आगंतुक कीडे को हज्म कर तुंबिलता (*Nepenthes*) के उदर मे पहुँचाता है।

इस प्रकरण मे हम वृक्ष-सम्बन्धी कुछ प्रश्नों पर विचार करेंगे, परन्तु इस विषय का उल्लेख करने से प्रथम सजीव और निर्जीव प्रकृति की विवेचना तथा वृक्षों और पशुओं के अंतर तथा समानता की आलोचना करना अत्यंत आवश्यक है।

जीवन अथवा प्राण क्या है, यह ऐसी गूढ समस्या है जिसको आज तक कोई सुलझा नहीं सका। यह एक ऐसा प्रश्न है, जिसकी ओर मनुष्य का ध्यान परम्परा से चला आता है, परन्तु फिर भी इसका यथार्थ उत्तर नहीं मिल सका। इस प्रश्न के अन्तर्गत अनेकों वाद-विवाद, कल्पना और सिद्धान्तों पर विचार तभी किया जा सकता है, जब हम सजीव पदार्थों की विशेषता अथवा इनकी जीवनी और रहस्य से भली भाँति परिचित हों। अतः हमको सर्वप्रथम इस ओर ध्यान देना चाहिए।

सजीव सृष्टि की विशेषता

यद्यपि हम प्राण की यथार्थ व्याख्या नहीं कर सकते, तब भी हमको साधारण सजीव वस्तुओं को निर्जीवों से पृथक् करने मे विशेष कठिनाई नहीं होती। इसका कारण यह है कि सजीव प्रकृति मे कुछ विशेषताएँ हैं। इसमें कुछ बाते तो ऐसी हैं, जिनका सादृश्य निर्जीव जगत् में भी रासायनिक क्रियाओ द्वारा होता रहता है और कुछ ऐसी हैं, जिनका आधार प्रकृति-विज्ञान के नियमो पर है। परन्तु कुछ ऐसी बातें भी हैं, जो इन दोनों से पृथक् हैं।

यदि हम अपने चारो ओर वर्तमान सजीव वस्तुओं पर विचार करे, तो सबसे पहले हमारा ध्यान उनके आकार और आकृति की ओर आकर्षित होगा। भॉति-भॉति के पशु, पक्षी, वृक्ष, लता, कीड़े-मकोड़े, घास आदि, जितनी भी सजीव वस्तुएँ हम देखते है, उन सबका रूप और आकार निश्चित है। बीज बोने के पहले हम जानते हैं कि गेहूँ का पौधा किस प्रकार का होगा, अथवा मुर्गी या सारस किस प्रकार के अडे देगी, और उनमे से किस रूप के बच्चे उत्पन्न होंगे। इसी प्रकार हिरन, मोर, बिल्ली, या आम, करौदा, नीबू, गुलाब, बेला, चमेली आदि के नाम लेते ही आपके सामने इनके चित्र अकित हो जाते हैं। यही बात सारी सजीव सृष्टि के सबध मे है, चाहे वे पशु हो या वृक्ष। इनके आकार और आकृति निर्णित हैं। परन्तु निर्जीव वस्तुओ के विषय मे ऐसा नहीं है। 'मिट्टी' कहने से हमे एक वस्तु-विशेष का ज्ञान अवश्य होता है, परन्तु हम इसके आकार या आकृति के विषय मे कुछ निश्चय नहीं कर सकते। सड़क की धूल, पास की दीवाल अथवा कुम्हार के बनाये खिलौने आदि-जैसी अनेको वस्तुएँ मिट्टी की है। यही बात पत्थर, चीनी, कॉच, तॉबा, चॉदी, सोने आदि के विषय में भी है। साराश यह कि कुछ निर्जीव पदार्थ, जैसे रवा (crystal), नक्षत्र, सूर्य, चन्द्र को छोड़कर अधिकांश की आकृति या आकार परिवर्त्तनीय हैं, परन्तु जीवधारियों के रूप और आकृति अपरिवर्त्तनीय।

तुंबिलता

जो एक मांसाहारी पौधा है।

वर्धन भी जीवधारियों की एक प्रधानता है। एक छोटा-सा बालक हमारे देखते-देखते बढ़कर पूरे डील-डौल का मनुष्य हो जाता है, और आम की गुठली अथवा नीम की निबौरी अंकुरित होकर विशाल वृक्ष का रूप धारण करती है। इसी प्रकार पृथ्वी पर जितने भी जीव हैं, सब मे एक-न-एक समय बढने की शक्ति होती है। परन्तु इस क्रिया का औपम्य निर्जीव पदार्थों में रासायनिक क्रियाओं द्वारा भी हो सकता है। यदि हम पोटैशियम डाइक्रोमेट (*Pottasium-dichromate*) के डले को तूतिया के घोल मे रक्खे, तो चन्द मिनट पश्चात् तूतिया के डले के ऊपर एक छोटा खोल बन जायगा, जो धीरे-धीरे बढकर बडा हो जायगा। यदि यह आवरण किसी प्रकार फट भी जाय, तो स्वय इसकी मरम्मत भी हो जायगी। नमक, फिटकरी अथवा अन्य रवा भी बढते हैं। ऐसी दशा मे हम बडी अड़चन मे पड़ जाते हैं। हम भली भॉति जानते हैं कि कृत्रिम खोल अथवा रवा मे जीवन का नाममात्र भी लगाव नहीं, परन्तु फिर भी इनमे बढने और घाव भरने का गुण उपस्थित है। आप तर्कना कर सकते है कि आवरण की बाढ मे आहार की पाचन आदि क्रियाएँ, जिनके द्वारा शरीर की रचना और कार्य करने के लिए सामर्थ्य (energy) प्राप्त करना सजीव सृष्टि की प्रधानता है, नहीं होतीं। यह बात यथार्थ है। जीवधारियो के शरीर के अन्दर कुछ ऐसी क्रियाएँ होती रहती हैं, जिनमे भोजन की खपत होती है। और

आज से कुछ वर्ष पहले यह समझा जाता था कि ये क्रियाएँ सजीव सृष्टि की विशेषता हैं, परन्तु प्रेरक रस (enzymes) का पता लगाने से अब हम जानते हैं कि इनमे से अधिकाश शरीर के बाहर भी इन द्रव्यों द्वारा की जा सकती हैं। इससे यह स्पष्ट है कि भोजन के पचाने की क्रियाएँ कुछ नियमित अथवा अनुसधानीय प्राकृतिक तथा रासायनिक नियमों के अनुसार ही होती हैं और सजीव सृष्टि की विशेषता नही कही जा सकती।

अब आप प्रश्न करेंगे कि इस कृत्रिम लिफाफे मे सतानोत्पादन की सामर्थ्य नहीं है। यह भी सत्य है। जीवों का मुख्य ध्येय संतानोत्पादन ही है। इनमे भाँति-भाँति की विलक्षणता प्रायः वशवृद्धि के ही कारण होती हैं। फूलों का रग-बिरगा होना, उनकी अनोखी आकृति और अनेकों परिवर्त्तन, इनमे धीमी तथा तेज गध का प्रसार अथवा मधु का सचार आदि का अभिप्राय सतान-उत्पत्ति ही है। वृक्षों की भाँति पशुओं मे भी सतान-वृद्धि के अनेकों साधन वर्त्तमान हैं। परन्तु सभी प्राणी तो सतान उत्पन्न नही कर सकते। खच्चर-जैसे कितने ही जीव हैं, जिनमे यह सामर्थ्य नही होती, फिर भी इस योग्यता का अभाव उन्हे जीवधारी होने से वचित नही करता।

स्वर्गीय सर जगदीशचन्द्र बोस

जिन्होने वनस्पति-सम्बन्धी अपनी खोज से संसार के वैज्ञानिको को चकित कर भारत का गौरव बढाया है।

प्राणियों मे एक और विशेषता है, जिसे हम गति कहते हैं। आप देखते हैं कि पशु, पक्षी, मछली, मेढक, कीडे-मकोडे आदि जहाँ चाहते हैं, स्वच्छन्द विचरते हैं। आगे चलकर हम देखेंगे कि वृक्षों में भी यह शक्ति किसी सीमा तक वर्त्तमान है। परन्तु निर्जीव पदार्थ, जैसे कुर्सी, मेज़, पलग, टोपी, पत्थर, आदि मे यह शक्ति नही होती। आप तर्कना कर सकते हैं कि नदी अथवा समुद्र में जहाज और नाव, सड़क पर मोटर अथवा आकाश मे विमान और बादल आदि भी तो चलते-फिरते हैं। परन्तु इसमें भेद है। हमारे, आपके तथा पशुओं और वृक्षों के चलने और बादल आदि निर्जीव पदार्थों के चलने मे बडा अतर है। आकाश मे उड़नेवाली पतग को उडानेवाला जिस समय वायु के सहारे उसे इधर-उधर घुमाता है, उस समय हम इसको आकाश मे पक्षी की भाँति मँडलाते अवश्य देखते हैं, परन्तु यदि डोर चरखी से टूट जाय अथवा उड़ानेवाले के हाथ से छूट जाय, तो पतग के पतन को कोई शक्ति नही रोक सकती। उसे हवा और पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति जिधर चाहेगी, ले जायगी। परन्तु पतग के साथ उसी आकाश मे उडनेवाले कबूतर या बाज़ की यह हालत नही। इनको आकाश में भ्रमण करने के लिए डोर अथवा उडानेवाले की आवश्यकता नही। ये हवा के अनुकूल या प्रतिकूल स्वच्छन्द उडते हैं और जहाँ चाहते है, जाते हैं। यही हाल रेल अथवा वायुयान का भी है। रेलगाड़ी पटरी के सहारे इजिन की शक्ति पर ड्राइवर की प्रेरणा से तेजी से चली जाती है। दुर्भाग्यवश नदी का पुल टूटा है। एक धडाके की आवाज़ हुई। इजिन आगे के कई डिब्बो समेत नदी की धारा मे जा गिरा। उसके पुर्जे-पुर्जे अलग हो गए। साथ ही अनेकों मनुष्य घायल हो गए और कितने ही के प्राण गए। परतु उसी सडक पर जानेवाले मुसाफिरों अथवा गाय-बैलो की यह हालत नही होती। यह पुल को टूटा देख ठहर जाते हैं और उस रास्ते को छोड़ दूसरे मार्ग की शरण लेते हैं। इजिन मे चलने

उगता हुआ बीज

इस चित्र में क्रमशः जिस प्रकार वनस्पति का बीज अंकुरित होता और फिर धीरे-धीरे उसमें से पौधे का आरंभिक विकास होता है, यह दिखाया गया है। ये बीज मक्का और सेम के बीज हैं। गौर कीजिए, इनकी जड़ें किस तरह नीचे ही की ओर जा रही हैं।
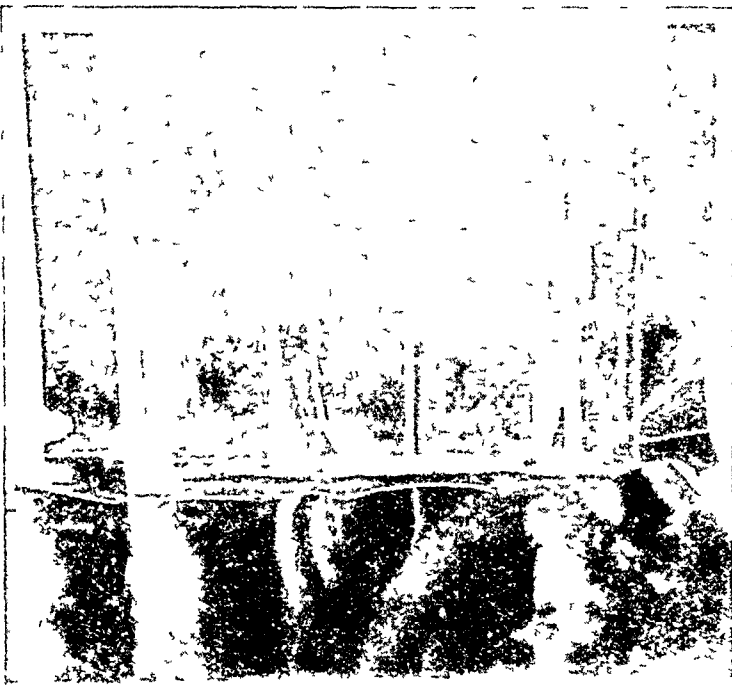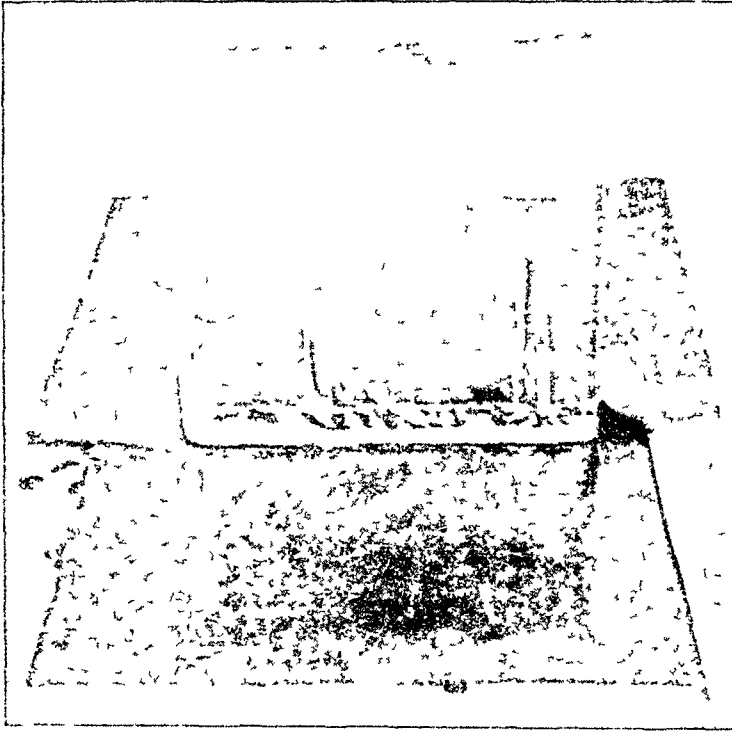
कृत्रिम उद्भिज

यह एक प्रकार के रासायनिक घोल में से आप ही आप पैदा कराया गया है।
ऊपर का चित्र प्रयोग के दो-तीन मिनट बाद का है।
नीचे का चित्र ऊपर ही के चित्र में प्रदर्शित "कृत्रिम उद्भिज" का प्रयोग आरंभ होने से १० मिनट बाद का चित्र है। गौर करने की बात है कि कितने शीघ्र यह 'उद्भिज' अपने आप बढ जाता है। फिर भी सजीव पौधे की बढती और इसकी बढती में गहरा अंतर है। सजीव पौधा अपने आप ही अपने कलेवर के भीतर होनेवाली स्वाभाविक प्रक्रियाओं के फलस्वरूप बढता है। इसके विपरीत इन चित्रों में प्रदर्शित जड पदार्थ से तैयार किया हुआ उद्भिज बाहरी क्रिया ही का परिणाम है।
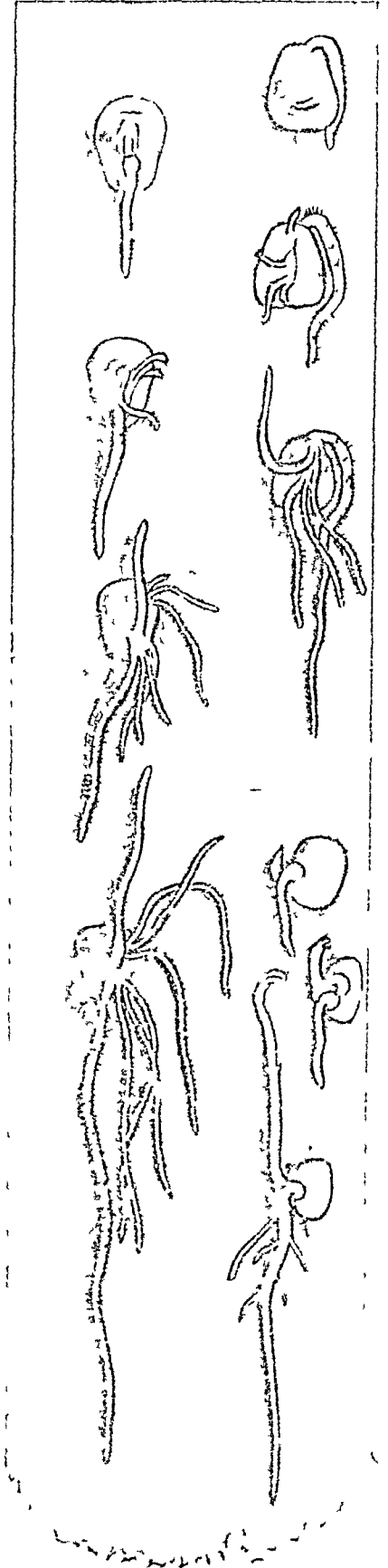
की शक्ति अवश्य है, परतु दूसरे की प्रेरणा से। वह अपने सामने उपस्थित भय को नही देख सकता और न उससे बचने का उपाय ही सोच सकता है। इसी प्रकार और भी अनेको उदाहरण हैं। साराश यह कि जीवधारी अपनी इच्छा और प्रेरणा से चलते हैं, और निर्जीव दूसरे की।

ऊपर वर्णन किया जा चुका है कि लज्जावती की पत्तियाँ स्पर्श करते ही मूर्च्छित हो जाती हैं। आप जानते हैं कि आकाश मे विद्युत् का प्रहार होते ही खेतो मे चरते हुए मृगों का झुड भयभीत होकर तितर-बितर हो जाता है। वाटिका मे विहार करते हुए विहगों मे कोलाहल मच जाता है, और खाट पर सोता हुआ अबोध बालक चौक पड़ता है। परतु खेत की मेड़, वाटिका के फौवारे अथवा बालक की खाट पर स्पष्टतया कोई प्रभाव नही पडता। ऐसा क्यों होता है? क्या कभी आपने इसकी ओर ध्यान दिया है? इन सारी घटनाओ की जड़ मे एक ही रहस्य है और यह भी सजीव प्रकृति की प्रधानता है। यह जीवों की उत्तेजना-शक्ति और प्रतिक्रिया है। यह गुण लज्जावती, हरिण, विहग, बालक अथवा अन्य जीवों मे उपस्थित है, परन्तु किसी मे कम, किसी मे अधिक। आघात के अतिरिक्त अन्य अनेक कारणों का भी प्राणियो पर प्रभाव पडता है। आप देखते हैं कि बीज बोते समय बीज चाहे कैसे फेके जायँ, उनकी जड सदैव नीचे और शाखाएँ ऊपर को जाती हैं। इसी प्रकार पत्तियाँ वायु मे फैलती हैं। आपने कदाचित् यह भी देखा हो कि खिड़की मे रक्खे हुए गमले मे लगे हुए पौधे की पत्तियाँ और बाग़ मे पत्थर अथवा अन्य वस्तु के नीचे दबी हुई घास की डाले बाहर को प्रकाश की ओर बढती हैं। इसी प्रकार अनेको उदाहरण हैं। इस सबध मे भी तर्कना की जा सकती है। हम-आप सभी जानते हैं कि वर्षा ऋतु मे शीशी मे रक्खा हुआ नमक नम हो जाता है। कैल्शियम क्लोराइड (Calcium Chloride) पिघलकर पानी हो जाता है। जगत्-सुविख्यात स्वर्गीय सर जगदीशचन्द्र बोस, एफ० आर० एम०, के प्रयोगो द्वारा तो यहाँ तक प्रमाणित हो चुका है कि पत्थर तथा ताँबा-लोहा आदि उत्तेजित भी किये जा सकते है। थोडी देर तक बराबर उत्तेजित किये जाने के पश्चात् थक भी जाते हैं और कुछ काल तक आराम करने के पश्चात् फिर उत्तेजित किये जा सकते हैं। परन्तु जीवन-शक्ति का यहाँ तृणवत् लगाव नही।

उपरोक्त वाद-विवाद से आप बड़ी अड़चन मे पडे होगे। वास्तव मे जीवो मे कोई ऐसा लक्षण नही, जिसे हम प्राणिमात्र की विशेषता कह सके। क्योकि कोई भी ऐसी प्रधानता नही, जो सभी जीवों मे उपस्थित हो और सभी निर्जीव पदार्थों मे न हो, या जिसकी हम प्रकृति-विज्ञान अथवा रसायन-शास्त्र द्वारा व्याख्या न कर सकें, अथवा जिसका अनुकरण प्रकृति-विज्ञान अथवा रासायनिक क्रियाओ द्वारा न किया जा सके। हमे सजीव वस्तुओ को निर्जीवों से पृथक् करने के लिए सभी बातो पर ध्यान देना पडता है और सभी गुणों का विचार करना पड़ता है।

अतः सजीव वस्तु वह है, जिसका निश्चित आकार और रूप हो, जिसमें बढने की सामर्थ्य हो, जो गतिवान्, उत्तेजनीय और प्रतिक्रियाशील हो। जिसमे सतानोत्पादन की योग्यता हो और जो अपने शरीर की रचना उससे भिन्न पदार्थो से कर सकता हो। जो परिवर्त्तनशील हो और अपनी स्थिति को परिस्थिति के अनुकूल परिवर्त्तित कर सके। इसके अतिरिक्त आप आगे चलकर देखेंगे कि समस्त प्राणियों के शरीर एक अथवा अनेकों सजीव कोष्ठ के बने हैं। ये कोष्ठ पूर्ववर्त्ती सजीव कोष्ठो से ही उत्पन्न हो सकते हैं, अन्य भाँति नही। इन कोष्ठो मे जीवन-रस, जिसे हम प्रोटोप्लाज्म कहते हैं, प्रवाहित रहता है, और प्राणियो की सारी विशेषताएँ इस विलक्षण वस्तु के ही गुण हैं। इस वस्तु का आज तक सश्लेषण नहीं हो सका और न इसका यथार्थ विश्लेषण ही हो सकता है। परन्तु यह अवश्य मानना पडेगा कि जीव और प्रोटोप्लाज्म अभिन्न हैं। जीव से पृथक् प्रोटोप्लाज्म और प्रोटोप्लाज्म से पृथक् जीव नही देखे गये।

शरीरतत्त्व-विद्या, वनस्पति-विज्ञान और जंतु-विज्ञान

शरीर के ज्ञान को हम शरीरतत्त्व-विद्या (Biology) कहते हैं। प्राणियों के जीवन-सबधी सभी प्रश्नो पर इससे विचार किया गया है। जीवो के भेद, आकृति, आकार, प्रसारण, इनका बाहरी जगत् से सबध, उद्भव, नाश, विकास आदि सभी बातो का इसमे उल्लेख है। इस शास्त्र के वनस्पति-विज्ञान (Botany) और जन्तु-विज्ञान (Zoology) दो अग हैं। जन्तु-विज्ञान के अन्तर्गत जानवरो की जीवन-शैली और वनस्पति-विज्ञान के अन्तर्गत वृक्ष-सबधी बातो का वर्णन है। इन दोनो ही से हमारा अत्यन्त घनिष्ट सबध है। वृक्ष और पशु सजीव सृष्टि के दो भाग हैं। ससार के सारे प्राणी इन्ही दो भागो मे विभाजित हैं। वैसे तो हम सभी जानते हैं कि आम वृक्ष है और उसकी शाखाओं पर विचरनेवाली गिलहरी पशु। परन्तु विश्व की सारी सृष्टि को इस प्रकार पृथक् करना सरल बात

जड़ और चेतन वस्तुओं में भेद और समानता

आकाश में जड पतंग और चेतन पक्षी दोनों ही उडते हैं, किंतु फिर भी दोनो में समानता नहीं है। पतंग पक्षियों की तरह अपनी इच्छा से नहीं उड सकती। इसी तरह बिजली की चमक से मृगों का झुंड सहम जाता, पर ज़मीन या पानी पर उसका ऐसा कोई असर नहीं होता है। [विशेष बातें लेख में देखिए]

नहीं। कुछ वृक्ष ऐसे हैं, जिनमे पशुओं के गुण हैं, और इसी प्रकार कुछ पशु ऐसे हैं, जिनमे वृक्षो के गुण वर्त्तमान है। इस प्रकार की विलक्षण रचना को वनस्पति-वैज्ञानिक (Botanists) वृक्षो मे और जतु-वैज्ञानिक (Zoologists) पशुओ मे सम्मिलित करते हैं। परन्तु इन जीवों के विषय मे यह निर्णय करना कि ये पशु है अथवा वृक्ष, अत्यन्त कठिन है। कुछ विद्वानो का मत है कि ऐसी रचना को तीसरी श्रेणी मे रक्खा जाय और इनके मतानुसार जीवों के तीन भाग हैं। ये तीन भाग पशु, वृक्ष और प्रोटिस्टा (Protista) ह। प्रोटिस्टा (Protista) मे ऐसे छोटे-छोटे जीवो की गणना है, जिनमे पशु और वृक्ष दोनो ही के गुण विद्यमान हैं। परन्तु ऐसे विधान से भी हमारी कठिनाई का अन्त नही होता। जितनी कठिनाई हमे वृक्षों को पशुओ से पृथक् करने मे होती है, प्रायः उतनी ही कठिनाई हमको प्रोटिस्टा को वृक्षो से और पशुओ से भिन्न करने मे भी होती है। इसलिए ऐसा करने से कोई लाभ नही। अतः हम सजीव सृष्टि के वृक्ष और पशु दो ही अग मानकर विचार करेंगे। हॉ, एक बात और है। वह यह कि यद्यपि हम जानते हैं कि सारे पशु एक ही वृक्ष की शाखाएँ हैं और इस नाते मनुष्य भी एक पशु है, परन्तु हम या आप कोई भी अपने को अन्य पशुओ मे सम्मिलित करने मे सहमत न होगा। हम स्वाभिमान और अहकार के कारण अपने को अन्य पशुओं से पृथक् मानने के लिए विवश हैं। इसीलिए हम प्राणियों के तीन भेद मानेंगे। इस प्रकरण मे हम वृक्ष-सबधी प्रश्नो पर विचार करेंगे।

पशुओं और वृक्षों मे अन्तर

ऊपर वर्णन किया जा चुका है कि पशु और वृक्ष दोनों ही मे प्राण हैं और इस कारण दोनो ही मे समानता है। परन्तु साधारण पशुओ और वृक्षो की ओर ध्यान देने से हम देखते हैं कि समानता होते हुए भी इनमे विभिन्नता है। ऐसे वृक्षो और पशुओ को हम सुगमता से अलग कर सकते हैं। सभी जानते हैं कि आम वृक्ष है और उसकी शाखाओ पर विचरनेवाली गिलहरी पशु। दोनो ही मे प्राण है, दोनों ही क्रियाशील हैं, दोनों ही को खाद्य पदार्थो की आवश्यकता है, दोनो ही सॉस लेते है, दोनो ही सतान उत्पन्न करते है। साराश यह कि जितनी भी सजीव सृष्टि की विशेषताएँ है, दोनों ही मे विद्यमान हैं। परन्तु फिर भी दोनों मे अतर है। सबसे प्रथम बात तो यह है कि आम का पेड़ स्थायी है। जिस स्थान पर इसका पेड उगा है अथवा लगा दिया गया है, वही पर उसकी सारी लीलाओ का अत भी होगा। उसे जहॉ हमने दस वर्ष पूर्व देखा था, वह आज भी वहीं है और जब तक जीवित है, वहीं रहेगा। परन्तु गिलहरी के विषय मे यह बात नही। अभी यह इस डाल पर है, पलभर मे दौड़कर दूसरी डाल पर चली जाएगी। अथवा आम के पेड़ से जामुन के पेड़ पर और फिर मैदान मे अथवा आपके मकान की छत पर पहुँच जायगी। यही बात अधिकांश पशुओं और वृक्षों के विषय मे भी है। मनुष्य, घोडा, गाय, बैल, सारस, मोर, मछली, तितली आदि एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्वय सुगमता से विचरण करते हैं। और आम, जामुन, सतरा, अनार, कचनार, चना, मटर आदि अधिकाश वृक्ष एक स्थान से दूसरे स्थान पर नहीं जा सकते। परन्तु यह बात साधारण पशुओ और वृक्षो के सबध मे ही कही जा सकती है, सर्वदा लागू नही होती। कितने ही ऐसे पशु हैं, जो चट्टानो की भॉति स्थायी हैं और इसके विपरीत कुछ ऐसे वृक्ष हैं, जो स्वच्छ विचरते हैं। कितने ही छोटे-छोटे उद्भिज, जिन्हें हम खुर्दबीन की सहायता बिना नही देख सकते, जल मे बड़ी कुशलता से तैरते रहते हैं। इसी प्रकार कुछ जानवर हैं, जो चट्टानों से चिपटे हुए समुद्रो और नदियो में पडे रहते हैं।

वृक्षो और पशुओं मे दूसरी विभिन्नता इनकी भोजन-क्रिया है। दोनों ही को खाद्य पदार्थों की आवश्यकता होती है। दोनों ही को बाढ के लिए अन्य पदार्थों के साथ कार्बन (Carbon) और नाइट्रोजन (Nitrogen) की आवश्यकता होती है। परन्तु इन दोनो तत्त्वों को प्राप्त करने की पशुओ और वृक्षों की रीति पृथक् है।

वृक्ष वायु-मण्डल की कार्बन का उपयोग करते हैं। इनमे यह विशेषता इनके हरे रग के कारण है, जो पर्णहरित (Chlorophyll) नामक पदार्थ की उपस्थिति से है। यह द्रव्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसकी बदौलत वृक्ष ही की नही, वरन् समस्त ससार की स्थिति है। वृक्षों की अगणित पत्तियों मे करोडों कारख़ानो से भी अधिक धन्धे का फैलाव है। यह नन्ही-नन्ही हरित पत्तियॉ वायु-मण्डल की कार्बन और अपनी जडो द्वारा सचित जल से सूर्य के प्रकाश मे समस्त सृष्टि के लिए भोजन तैयार करती हैं और साथ ही वायु को भी शुद्ध करती हैं। यदि ये हरित वृक्ष न होते तो असम्भव नही कि ससार की जीवन-लीला का लोप हो गया होता।

वृक्षों की नाइट्रोजन प्राप्त करने की रीति भी पशुओ से विभिन्न है। वृक्षो की सूत्रवत् जडे पृथ्वी के

अन्दर बहुत दूर तक फैली रहती हैं। इनके द्वारा ये मिट्टी मे विद्यमान नमकों से नाइट्रोजन प्राप्त करते है। परन्तु मनुष्य तथा अन्य जीव वायु की कार्बन डाइआक्साइड से (CO_2) कार्बन और पृथ्वी के नमको से नाइट्रोजन नहीं प्राप्त कर सकते। ये इन पदार्थों के लिए वृक्षों तथा अन्य पशुओ पर ही निर्भर हैं। इनको ये गेहूँ, चना, मटर, मक्का तथा अन्य अनाजों से अथवा पत्तियो और फलो से या अन्य पशुओ के मास, अडा, दूध-ऐसे पदार्थो से ही प्राप्त कर सकते हैं। कुछ वृक्ष ऐसे हैं, जो हवा की कार्बन-डाइआक्साइड अथवा नमको की नाइट्रोजन का उपभोग नही कर सकते। इनको ये वस्तुएँ इसी रूप मे मिलनी चाहिएँ, जैसे पशुओ को। इनमे से तुम्बिलता (*Nepenthes*) के विषय मे ऊपर बताया जा चुका है। अमरवेल (*Cuscula*) भी इन्ही मे से एक पौदा है। प्रायः आपने इसको अन्य वृक्षो पर जाल फैलाये देखा होगा। न इसमे जड होती है, न पत्तियाँ, फिर भी इसे सब प्रयोजनीय वस्तुएँ मिल जाती हैं। यह वस्तुएँ इसे अन्य वृक्षों से, जिन पर यह फैली रहती है, मिलती हैं। इसका उल्लेख आगे चलकर किया जायगा।

भोजन प्राप्त करने की विभिन्नता ही पशुओं और वृक्षों के सारे भेदों की जड़ प्रतीत होती है। वृक्षो को खाद्य पदार्थ वायु और पृथ्वी के नमकों से मिलते हैं, जो उन्हे सर्वत्र सुगमता से मिल सकते हैं। इसलिए इनको भोजन की खोज मे इधर-उधर भ्रमण करने की आवश्यकता नही होती। इसके विपरीत पशु कार्बनिक पदार्थो का ही उपयोग कर सकते हैं, जिनकी खोज मे इन्हे इधर-उधर जाना पडता है। इसी कारण वृक्ष स्थायी और पशु भ्रमणशील होते हैं।

इसी प्रकार वृक्षो को फैलाव की आवश्यकता है, पशुओ को नही। खाद्य पदार्थों को प्राप्त करने के लिए पृथ्वी के अन्दर वृक्षो की सूत्रवत् जडे और वायुमंडल मे इनकी शाखा, उपशाखा और पत्तियाँ दूर तक फैली रहती है।

वृक्षो और पशुओं मे एक और अंतर है, जो इनकी रचना से सबध रखता है। समस्त जीवो के शरीर एक अथवा अनेक कोषों (Cells) के बने होते हैं। साधारणतः पशुओ के शरीर-कोष कोप-भित्तिकाओं (Cell walls) से घिरे नही होते, परन्तु वृक्षो के शरीर-कोष निश्चित घेरे के अदर होते हैं। परन्तु कुछ ऐसे जीव हैं, जिनमे यद्यपि अधिकाश गुण वृक्षो के हैं, तथापि उनके शरीर-कोष घेरों से परिवेष्ठित नही होते।

अमरवेल

जो दूसरे वृक्षो ही पर उपजती और उनसे अपना आहार ग्रहण करती है।

पशुओ और वृक्षों की विशेषताओ पर विचार करने से हम भली भाँति देखते हैं कि यद्यपि अधिकाश जीवो के विषय मे यह निर्णय करना कि ये पशु हैं या वृक्ष, कठिन नही है; फिर भी इनके बीच मे कोई प्राकृतिक सीमा नही है। इनमे विभिन्नता से कही अधिक समानता है। यही जीवमात्र की एकता का सर्वश्रेष्ठ प्रमाण है।

इस आरंभिक प्रकरण मे हमने सामान्य रूप से इस पृथ्वी पर विद्यमान सजीव सृष्टि पर—जिसके वनस्पति और जन्तु ये दो मुख्य अग हैं—एक विहगम दृष्टि डालने का प्रयत्न किया है, ताकि इनके सम्बन्ध मे पाठको का दृष्टिकोण विशद हो जाय और वे कुछ अधिक विस्तार के साथ इनका अध्ययन कर सके। वनस्पति-जगत् का अध्ययन हमारे लिए न केवल अपनी ज्ञान की पिपासा की तृप्ति ही की दृष्टि से, वरन् उपयोगिता की दृष्टि से भी अत्यत आवश्यक और महत्त्वपूर्ण है। भला कौन ऐसा होगा जिसे उन पेड-पौधो की रहस्यमय जीवनी के सम्बन्ध मे जानने की उत्कंठा न होगी, जो हमे अन्न, फल, फूल, कद-मूल, रस, पत्तियाँ, लकडी, रुई आदि जीवन की अनिवार्य आवश्यक ,वस्तुएँ प्रदान कर हमारे जीवन् को सरल, सुखप्रद और सुरम्य बनाते हैं?

प्रकृति की जंतुशाला के कुछ अनोखे प्रतिनिधि

(ऊपर से नीचे बाएँ से दाहिने क्रम से) सिह, मृग, गैंडा, पैग्वीन दरियाई शेर, जंगली सॉड़, कछुआ, चिंपैंज़ी, भालू, कॅगारू, जिराफा, जेवरा और दरियाई घोड़ा ।

प्राणि-जगत्

हम किसी जंतुशाला में जाकर तरह-तरह के पशु-पक्षियों को देख-देखकर अचरज से दाँतों-तले उँगली दबाते है, किन्तु क्या हमे उस अनोखी और विस्मयजनक प्रकृति की अद्भुत जंतुशाला का भी पता है, जिसे उसने सदियों से पृथ्वी पर खोल रक्खा है? कैसी विचित्र और व्यापक है यह महान् जंतुशाला! चींटी से लेकर हाथी तक और तितली से गिद्ध तक कितने विभिन्न रंग-रूप और आकार-प्रकार के प्राणी प्रकृति ने इस जंतुशाला में जुटाए हैं! इस स्तंभ में इन्हीं का चित्र-विचित्र जुलूस आपको देखने को मिलेगा।

यदि आप अपने आस-पास की परिचित वस्तुओ का ध्यान करे, तो अवश्य ही यह मान लेगे कि वे चीजे दो प्रकार की हैं। उनमे से कुछ सजीव हैं, जैसे—गाय, बैल, घोडा, बकरी, कौवा, मछली, मक्खी, कीडे आदि। दूसरी निर्जीव हैं, जैसे—मकान, कुर्सी, पलग, लोटा, थाली, घडा, सुराही, कुर्ता, धोती आदि। यही बात ससार की सभी चीज़ो के बारे मे कही जा सकती है, चाहे उन्हे आपने देखा हो या नहीं। या तो वह सजीव है या निर्जीव। दुनिया मे दो ही तरह की चीज़े हैं, सजीव अथवा निर्जीव। या यों कहा जा सकता है कि दुनिया दो भागों मे बँटी हुई है।

तीन प्रकार की जीवित वस्तुएँ

पर यह समझना भूल होगा कि प्राणि-जगत् मे केवल जानवर ही सम्मिलित हैं। आपसे यदि यह पूछा जाय कि 'आप जीवित हैं या नही?' तो आप मे से ऐसा कौन होगा जो 'हाँ' नही कहेगा? परन्तु हमे यह निश्चय नही है कि यदि आपसे पूछा जाय कि 'वनस्पति सजीव है या निर्जीव' तो आप सब एक ही उत्तर देंगे। आप मे से कुछ का यह ख़याल हो सकता है कि वनस्पति निर्जीव है, और कुछ लोग यह समझ सकते है कि वनस्पति मे उतना ही जीवन है, जितना पृथ्वी के किसी अन्य प्राणी मे। आप विश्वास करे कि पेड-पौधे भी आदमी या अन्य जानवरों की तरह खाते-पीते, बढते और सुख-दुःख की भावना करते हैं। पृथ्वी पर ऐसे भी पौधे हैं, जो मासाहारी हैं, एक स्थान से दूसरे स्थान की यात्रा करते है और बिलकुल जीवधारियो-जैसा आचरण रखते हैं।

ससार के प्रत्येक भाग मे यह बात बहुत दिनो से मान ली गई है कि पौधो मे भी उतना ही जीवन है जितना जानवरों मे, और अपने देश मे यह बात साधारण आदमियो द्वारा भी बहुत हद तक मानी जा चुकी है। आप मे से बहुतेरों को बडे-बूढो ने सूरज डूबने के बाद पौधो को छूने या फूल-फल तोडने की मनाही की होगी, क्योकि उनका विश्वास है, और वह विश्वास ठीक भी है कि सूरज डूबने पर पौधे निद्रित होते है। हमारे लिए यह गर्व की बात है कि हमारे ही एक विख्यात देशवासी स्वर्गीय सर जगदीशचन्द्र बोस ने यह अन्तिम तौर पर ससार के सामने सिद्ध कर दिया है कि पौधों के भी अनुभूति होती है। अपने बनाये हुए सूक्ष्म यन्त्रो के द्वारा उन्होंने यह दिखला दिया कि पौधो मे भी दिल-जैसा अग और स्नायु-प्रणाली होती है। इस तरह वह न केवल स्नायविक सनसनी को अनुभव करने मे ही समर्थ है, बल्कि उन्हे अन्य भागो मे भी सचरित कर सकते है। इस बात की जॉच आप सब 'छुई मुई' की तरह की किसी 'लाजवती लतिका' को छूकर कर सकते है। आप मे से जिन्होने अभी तक ऐसा कोई पौधा नहीं देखा हो उन्हे किसी जानकार या स्थानीय माली की सहायता से उसकी खोज करनी चाहिए। उसकी नन्ही-नन्ही पत्तियो को एक-एक करके छुइए और अन्त मे उसकी प्रमुख शाखाओं को हिला दीजिए। आप देखेंगे कि जैसे-जैसे उसे छूते जायँगे पत्तियाँ सिमटती-मुरझाती जायँगी और शाखाये झुकती जायँगी, मानो बिल्कुल निर्जीव हो गई हो। फिर छोड़ देने पर आप

उसे धीरे-धीरे रूप और ताजगी मे पहले जैसा ही होता हुआ और स्पर्श के धक्के के बाद पुनर्जीवन प्राप्त करता हुआ देखेगे। इसी पौधे ने सर जगदीशचन्द्र बोस का ध्यान आकर्षित किया था और 'प्रत्येक जीवधारी की मौलिक समानता' का सिद्धान्त स्थिर करने की उन्हे प्रेरणा की थी।

हम देखते हैं कि केवल मनुष्य ही को जीवन का वरदान नहीं मिला है बल्कि जीवधारियों मे पौधे, पशु और मनुष्य तीनो ही आते हैं। इनमे से प्रत्येक सजीव जगत् का एक भाग है और इसी कारण उनका वर्णन अलग-अलग किया जाता है। आपको पौधों का हाल इसके पूर्व के स्तभ ('पेड-पौधो की दुनिया') मे और मनुष्य का विवरण इसके आगे के स्तभ 'हम और हमारा शरीर' मे मिलेगा। इस भाग मे हम मुख्यतया (मनुष्य के अतिरिक्त) पशु-जीवन का ही वर्णन करेगे। अतएव मनुष्य न केवल एक पशु ही है बल्कि जीवधारी प्रकृति का एक आन्तरिक भाग भी है। वह जीवन धारण करने के मूल प्रकार मे पौधों और पशुओं का साझीदार है।

प्राणि-शास्त्र की परिभाषा और उसके विभाग

हर प्रकार के जीवधारियों के विषय में। एक नियमबद्ध प्रणाली से अध्ययन करना कि वे क्या हैं, क्या करते हैं, जो कुछ करते हैं, किस तरह करते हैं, प्राणि-शास्त्र या जीवन-विज्ञान कहलाता है। इसका उद्देश्य पाठकों के सामने जीवधारियों का एक पूर्ण चित्र उपस्थित करना होता है। यह शास्त्र न केवल प्राणियो के रग-रूप, उत्पत्ति, आकार-प्रकार, बनावट, आचरण और उनके गुण ही बतलाता है, बल्कि उनके विकास और ससार से उनका सम्बन्ध भी बतलाता है। किन्तु पौधों और पशुओ का अलग-अलग विवरण भी हो सकता है, इसलिए प्राणि-शास्त्र दो भागो में विभक्त कर दिया गया है—(१) वनस्पति-शास्त्र या पेड-पौधों का विज्ञान और (२) जन्तु-शास्त्र या जीव-जन्तुओं का विज्ञान, जिसमें वास्तव मे मनुष्य भी सम्मिलित है। मगर हम साधारणतया और स्वभावतः पशुओ के साथ अपनी चर्चा का होना पसन्द नहीं करते और हममें से अधिकाश कुछ अन्य पशुओं से दूर का सम्बन्ध और

तीन प्रकार की सजीव सृष्टि

जल-स्थल में उत्पन्न वनस्पति, जलचर, स्थलचर और नभचर जीव-जन्तु, तथा मस्तिष्क की विशेषता रखनेवाला मनुष्य।

निकट समता की बात भी आसानी से नहीं मानेंगे। इसीलिए मनुष्य के अध्ययन के लिए प्राणि-शास्त्र के तीसरे विभाग की आवश्यकता होती है।

यह सबके लिए वांछनीय है कि वे अन्य जीवधारियो के विषय में कुछ मनोरजक बाते जाने। हमारा विचार है कि वह प्रत्येक व्यक्ति जो इन पृष्ठों को पढ़ेगा इन बातों को जानने का इच्छुक होगा कि ससार में कितनी विचित्र और विभिन्न जातियो के पशु और पौधे होते हैं, कहाँ-कहाँ रहते हैं, किस तरह इस सतत परिवर्त्तनशील जगत् मे रह पाते हैं और किस तरह अपना कर्त्तव्य पालन करते हैं? अधिकतर मामलों मे इस तरह का अध्ययन हमे न केवल जीवधारियो का स्वभाव समझने मे मदद देता है बल्कि यह भी देखने मे सहायता करता है कि दुनिया मे उनकी क्या उपयोगिता है? पशुओं और पौधों के विज्ञान का अध्ययन, जैसा कि हम अन्यत्र देखेंगे, मनुष्य-जाति के लिए बीमारियों से लड़ने और फसल की रक्षा करने मे महान् लाभदायक सिद्ध हुआ है। इसके अतिरिक्त इस अध्याय मे दिये गये पशु-जीवन के साधारण पहलुओ से परिचय प्राप्त करना निश्चय ही मानव-स्वभाव और मानव-इतिहास को अच्छी तरह समझने में सहायक होगा, जिसे आप 'मनुष्य' सबंधी अगले अध्याय में पढ़ेंगे। पिछले दिनों प्राणि-शास्त्र के अध्ययन को काफी महत्व प्राप्त हुआ है और आज दिन पाश्चात्य देशों मे हर स्कूल के लड़के से इस विषय मे कुछ-न-कुछ पढ़ने की आशा की जाती है। इसके सिद्धान्तों से परिचित होने से न केवल सारे जीवधारियों की समानता अनुभव करने मे सहायता मिलती है, बल्कि सुखी और सफल जीवन बिताने मे भी मदद मिलती है।
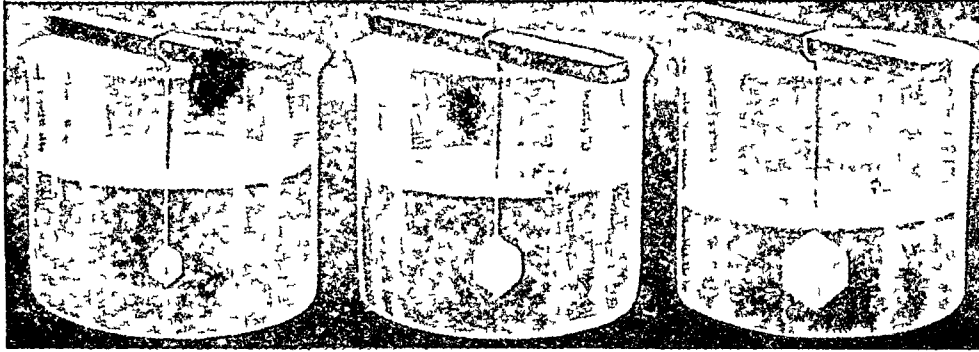
सजीव और निर्जीव पदार्थों के वर्धन की तुलना

(ऊपर के चित्र में) लवणमिश्रित घोल में बढती हुई नमक की निर्जीव डली। (नीचे) क्रमशः छोटे-से बडी होने जानेवाली बिल्ली।

सजीव और निर्जीव का भेद

इसके पहले कि हम पशुओं के विषय मे लिखें, यह उचित होगा कि साधारणतया जीवधारियों के लक्षणों के सम्बन्ध में कुछ कहे और यह बतलाये कि सजीव और निर्जीव मे क्या भेद है।

अगर आपसे पूछा जाय कि आप सजीव और निर्जीव मे भेद कर सकते हैं, तो आप तुरन्त ही उत्तर देंगे 'हाँ', पर यदि आपसे यह पूछा जाय कि सजीव होता क्या चीज़ है, तब आप संतोषजनक उत्तर नही दे सकेंगे। क्यों?

आप कह सकते हैं कि सजीव पदार्थ के निश्चित और विशेष रूप होते हैं, यानी वह लम्बाई-चौडाई में एक निश्चित सीमा के भीतर होते हैं और उनकी बनावट में एक प्रकार की निश्चितता होती है। परन्तु निर्जीव वस्तुओं की प्रकृत अवस्था ऐसी

नहीं होती, वे पदार्थ की ढेरी-सी होती हैं, जिनका रूप अनिश्चित होता है, जैसे मिट्टी, लकडी, सोना, चॉदी। इनकी लम्बाई-चौड़ाई मे बहुत भिन्नता होती है। 'पानी' शब्द से एक बूॅद पानी का भी ज्ञान हो सकता है और एक झील या समुद्र का भी। फिर भी कुछ प्राकृतिक चीज़े ऐसी हैं, जो निर्जीव होते हुए भी एक निश्चित रूप और आकार की होती हैं और जिनका आकार भी भिन्नतापूर्ण नही है। उदाहरण के लिए चीनी या नमक

के रव, सूर्य और चन्द्र बताये जा सकते हैं। इसलिए सच यह है कि पौधों और पशुओ की विभिन्न जातियो का एक बडा भाग अपने आकार के द्वारा पहचाना जाता है, मगर बहुत थोडे ही से निर्जीव प्राकृतिक पदार्थ इस प्रकार पहचाने जा सकते हैं, जैसे किसी चीज के रवे।

फिर आप कह सकते हैं कि सजीव पदार्थ बढते हैं और निर्जीव नही बढते, लेकिन क्या चीनी का रवा चीनी के सशक्त घोल मे रखे जाने पर नहीं बढता? यही बात पत्थरों और कुछ चट्टानों के बारे मे भी कही जा सकती है, जो पृथ्वी के नीचे से बढकर छोटे या बडे आकार ग्रहण कर लेते हैं। एक ओर हम आम की गुठली से एक पतली शाखा निकलते हुए देखते हैं, और इसे एक छोटे पौधे और अन्त में एक पूरे वृक्ष के रूप में बढते हुए पाते हैं, और दूसरी ओर एक पिल्ले को धीरे-धीरे बढते हुए देखते हैं और एक दिन वह पूरे कुत्ते के बराबर हो जाता है। लेकिन इन दोनों प्रकार के बढाव में अन्तर है। चीनी के रवे या पत्थर का बढाव उनकी सतह पर अधिकाधिक नये पर्त के जमाव होने की वजह से होता है, परन्तु इसके विपरीत छोटे पेड़ या पिल्ले अपने शरीर के भीतर खाद्य पदार्थों के ग्रहण करने से बढकर पूरे डील-डौल के हो जाते हैं। अतएव पशुओं और पौधों का बढाव भीतर से होता है और निर्जीव पदार्थों का बढाव यदि होता है तो बाहर से। फिर यह भी याद रखने की बात है कि प्रत्येक जीवित प्राणी आकार मे जीवन भर नही बढता रहता, उसकी बढने की शक्ति एक विशेष डील-डौल या विशेष अवस्था पाने पर समाप्त हो जाती है।

जड़ और चेतन वस्तुओं की गतिशीलता की तुलना

आप इस चित्र के एक भाग में रेलगाड़ी को खींचनेवाले इंजिन और दूसरे में बैलगाडी में जुते हुए बैलों को गतिवान देखते हैं—किन्तु इससे जड और चेतन वस्तुओं में समानता नहीं सिद्ध होती। रेल का इंजिन यद्यपि दौडता है परंतु वह बैलों की तरह अपनी निज की प्रेरणा या इच्छा से नही दौड़ या रुक सकता। (देखिए पृष्ठ ५१ का मैटर)

अब आप कह सकते हैं कि जीवधारी चलते-फिरते हैं, पर निर्जीव ऐसा नही कर सकते। जब हम घोड़े को सड़क पर दौड़ते, चील को बादलो मे मँडलाते व एक मछली को पानी मे तैरते देखते हैं तब हम कहते हैं कि वे जीवधारी हैं, लेकिन जब एक रेलगाड़ी को अपने पास से तेज़ी से निकलते हुए, पतंग को ऊपर हवा मे उड़ते हुए, व नदी को निरंतर गति से बहते हुए, या बादलों को ऊपर आकाश मे उड़ते देखते हैं तो हम एक क्षण के लिए भी नही सोचते कि उनमे जीवन है। क्यो? इसलिए कि जीवित प्राणी और निर्जीव पदार्थों के चलने-फिरने मे एक विशेष अन्तर होता है। जब जानवर एक स्थान से दूसरे स्थान को जाता है तो वह ऐसा अपनी स्वतन्त्र इच्छा ही से करता है, लेकिन बादल हवा की दिशा मे हवा द्वारा ही संचालित होते हैं और इंजिन अपने रास्ते पर मनुष्य द्वारा संचालित भाप की शक्ति से परिचालित होता है। इस तरह जहाँ जीवधारी अपने आप चलते-फिरते हैं, वहाँ निर्जीव पदार्थ अन्य शक्तियों द्वारा सचालित होते हैं।

अन्त मे आप कह सकते हैं कि जीवधारी को बाहरी प्रभाव की अनुभूति होती है, अर्थात् उनमे अनुभव करने की शक्ति होती है। जब कही दूरस्थ स्थान पर भी आकाश मे बिजली चमकती है तो हमारी पलकें बन्द हो जाती है किन्तु बन्दूक़ की तेज़ आवाज़ भी पास की निर्जीव वस्तुओं को प्रभावित नहीं कर पाती। क्या तुम किसी ऐसे निर्जीव पदार्थ के बारे मे सोच सकते हो जो बाहरी शक्तियों से प्रभावित होता हो? क्या तुमने अपनी माँ या बहिन को बरसात के दिनो मे इस बात की शिकायत करते नही सुना है कि नमक गलकर पानी हो गया? चाहे कितना ही सूखा हुआ नमक हो, बरसात मे खुला हुआ रहने पर अपने आप नम हो जाता है, और धीरे-धीरे गलकर लुप्त हो जाता है। ऐसा ही हाल बारूद का है, जो कोयले के एक जलते टुकड़े से छू जाने पर तुरन्त ही भभक उठती है। यहाँ पर भी सजीव और निर्जीव पदार्थ की अनुभूतियों मे साफ़ अन्तर है। हम बिजली की चमक से अपनी आँख बन्द कर लेते हैं तो इसका कारण यह है कि आँखे चोट न खा जायँ। और यदि हम अकस्मात् अपनी ओर किसी के फेंके पत्थर को आते देख उसकी राह से हट जाते है तो इसीलिए कि अपने को चोट से बचावे। किन्तु नमक बरसात मे खुला होने पर गलकर पानी होने से अपनी रक्षा नही कर सकता और न बारूद ही विस्फोटक वस्तु के संसर्ग से अपने को जलकर राख होने से बचा सकने मे समर्थ है। वास्तव मे वह ज्यों ही जला कि उसका अस्तित्व समाप्त हो जाता है।

इसलिए हम देखते हैं कि जहाँ साधारणतया एक व्यक्ति सजीव और निर्जीव पदार्थ मे भेद कर सकता है वहाँ कभी-कभी कोई-कोई निर्जीव पदार्थ भी ऐसा आचरण करते हैं मानो वे जीवधारी हो। पर क्या आपने कभी इस बात पर ध्यान दिया है कि इन दो प्रकार के पदार्थों मे अन्तर की कौन-सी बात है? ऐसा क्यों होता है कि एक बिल्ली चल-फिर सकने, खाने-पीने, बढने और अपनी जैसी अन्य बिल्लियाँ पैदा कर सकने मे समर्थ है और क्यो एक कोयले का टुकड़ा या ईंट इनमे से कुछ भी कर सकने मे असमर्थ है? इनका जवाब आसान नही है। यह सच है कि कोयले और ईंट के मूल पदार्थ साधारण हैं अतः उनमे क्रियाशीलता नही है, इसके विपरीत बिल्ली विचित्र मिश्रित पदार्थों से बनी हुई है जिनसे उससे कई कार्य्यों का बन पाना संभव है। साथ ही यह भी उतना ही सत्य है कि जीवधारियो का निर्वाह करनेवाले पदार्थ निर्जीव जगत् से लिये गये रसायन ही हैं और तमाम पशु-पक्षी रोज़ अपने शरीर को उस भोजन और पानी से भरते हैं, जो जीव-विहीन वस्तुओ से बना है। अन्त मे **जीव-सम्बन्धी** कार्य करने के कारण सजीव शरीर का मिश्रित ढाँचा टूट जाता है। अपना मौलिक गुण खो देता है और अन्ततः अक्रिय स्थिति मे पहुँच जाता है। इस अवस्था मे पहुँचने पर वह निर्जीव या मृत हो जाता है और यही हर प्राणी का अनिवार्य अन्त है।

जीवित और निर्जीव में समता

इस तरह साफ ही सजीव और निर्जीव पदार्थों में एक दूसरे से विभिन्नता है, पर साथ ही इनमे कुछ समानता भी है और उनके बीच मे जो बाँध-सा है वह ऐसा नहीं कि कभी टूट न सके, चाहे देखने मे यह दोनों कितने ही अलग प्रतीत होते हो। तथापि एक गुण ऐसा है जो ससार के सभी सजीव पदार्थों मे मिलता है, परन्तु किसी निर्जीव पदार्थ मे नही पाया जाता। वह गुण यह है कि उनका निर्माण विभिन्न ढंगो से होते हुए भी उनमे अपनी बनावट को जीवन की हर परिस्थिति के अनुसार बना लेने की शक्ति है। उदाहरण के लिए विभिन्न परिस्थितियों मे पैदा होनेवाले पौधों की पत्तियो को लीजिए। रेगिस्तानी पौधों की पत्तियाँ बहुत छोटी होती हैं, जिससे कि उनकी सतह पर से बहुत कम पानी भाप बनकर उड़ पाये और जो कुछ थोड़ा-बहुत पानी वे सूखी ज़मीन से पावे, वह उनकी आवश्यकताओं की पूर्त्ति के लिए बचा रहे। ऐसे

पौधे जो झीलों के शान्त जल मे होते हैं, जैसे कमल, उनके पत्ते बहुत चौडे होते हैं और पानी पर तैरा करते हैं। परन्तु ऐसे पौधे जो सागर ऐसे अशान्त जल मे रहते हैं, उनके पत्ते केवल तेज़ हवा के झोंके सहनेवाले पेड़ों के पत्तों की तरह कटे ही नही होते बल्कि चमडे की तरह चीमड़ होते हैं, ताकि वे लहरों के धक्को से आसानी से फट न सकें। पशुओं मे भी अपने को परिस्थिति के अनुसार बना लेने के बहुत उदाहरण पाये जाते हैं। मेढक के बच्चो के, जो पानी मे पैदा होते हैं, मछलियो की तरह पानी मे सॉस लेने के लिए गलफडे होते हैं। और तैरने के लिए चौडी दुम होती है। किन्तु जब वे बडे हो जाते हैं और स्थल पर रहने लगते हैं, उनकी दुम नष्ट हो जाती है और कूदने के योग्य अग निकल आते हैं तथा गलफडे की जगह सॉस लेने के लिए फेफडे भी बन जाते हैं। एक और अच्छा प्रमाण दॉत का है। गाय, घोडे, बकरी आदि वनस्पति खानेवाले जानवरों के दॉत चौडे होते है और कुचलनेवाली सतह नीची-ऊँची होती है, ताकि मुलायम वनस्पति को कुचलकर चबा सकें, लेकिन शेर, कुत्ते, बिल्ली आदि मांसाहारी जानवरों के दॉत बहुत मज़बूत, पतले और नुकीले होते हैं जिससे वे मास को सहज में फाड़ और हड्डियों को चबा सकें। इसी तरह के अनेकों उदाहरण पौधों और पशुओं के दिये जा सकते हैं, जिससे प्रकट होता है कि जिन विभिन्न परिस्थितियो मे उन्हे रहना होता है, उसी के अनुसार उनकी बनावट भी बदल जाती है। या यों कहिये कि उनमे यह शक्ति पाई जाती है कि वे अपने आपको उसी परिस्थिति के योग्य बना लेते हैं, जहॉ वे रहना चाहे या जहॉ उन्हे रहना पडे। इस तरह की बात किसी निर्जीव पदार्थ के बारे मे नहीं कही जा सकती।

सजीव और निर्जीव की समानताओ और असमानताओं के बारे मे हमने थोडा-सा ज्ञान प्राप्त कर लिया। अब केवल सजीव पदार्थों की ओर ध्यान देना चाहिए और देखना चाहिए कि हम तीन प्रकार के जीवधारियों मे कैसे भेद कर सकते हैं।

वनस्पतियों और जीव-जन्तुओं मे भेद

हम पहले ही कह चुके है कि पौधे और पशु दोनो जीवधारी हैं, और एक मुर्दा तथा जिन्दा पेड़ या फूल मे भेद करना उतना ही आसान है, जितना एक मृत और जीवित पशु मे। किन्तु देखा जाय कि एक जीवित पौधे और एक जीवित पशु मे भेद कर सकना सदा सम्भव है कि नहीं? आप एक आम के पेड़ को देखते हैं और उसे पौधा कहते हैं, उसी पेड के नीचे चरती हुई भैंस को देखते हैं और उसे पशु कहते हैं। लेकिन शक्ल के अतिरिक्त वे दोनों और किस तरह भिन्न है? आम का पेड़ जिस प्रकार लंबाई-चौड़ाई मे बढता है, अपने भीतर खाना और पानी खींचता है और बीज पैदा करता है, जिनसे उसी की तरह के और पौधे उगते है, उसी प्रकार भैंस भी अपने आस-पास के पेड़-पत्तों को खाकर बड़ी होती है और सन्तानोत्पत्ति करती है। अन्य वृक्षों के ढग भी आम के वृक्ष की ही भॉति होते हैं और बहुतेरे पेड़ों मे चलने की भी शक्ति होती है। वे प्रकाश और धूप की ओर झुकते हैं या सहारे के चारो ओर घूमते हैं, जैसे कि गुलाब, चमेली, या सेम की बेलें, और कुछ छुईमुई (लाजवती) की तरह एक अर्थ मे चेतना और इच्छा भी रखते हैं। फिर भी पौधे पशुओं से भिन्न हैं।

पौधो की गति अधिकाश पशुओ के चलने फिरने के समान नही होती। मेढक, मछलियॉ, सॉप, तोते, ऊँट, बन्दर, और आदमी जैसे जीवधारी इच्छानुसार इस जगह से उस जगह अपना स्थान-परिवर्त्तन किया करते हैं। केला, नीम और बरगद की तरह के वृक्ष जहॉ उपजते हैं वहीं स्थिर रहते हैं। वे अपनी इच्छानुसार अपना स्थान नहीं बदल सकते। किन्तु ससार के सभी जीवधारी ऊपर बताये गये पशुओं की तरह एक जगह से दूसरी जगह आ-जा सकने मे समर्थ नही हैं, जैसे समुद्री पिचक्के (ऐसीडियन्स), मूॅगे (कोरल्स), स्पज (स्पजेज़) तथा अन्य दूसरे जतु जो पठारों पर या पानी के नीचे और पदार्थों मे जमे रहकर ही पौधों की ही तरह अपना जीवन व्यतीत करते हैं। इसी तरह बहुत-सी छोटी-छोटी वनस्पतियॉ हैं जो जमी नही होतीं वरन् पानी पर तैरा करती हैं। इसलिए वास्तव मे ठीक-ठीक हम यही कह सकते हैं कि जीव-जन्तुओ का बहुत बडा भाग इच्छानुसार चल-फिर सकता है परन्तु वनस्पतियॉ बहुत कम ऐसी हैं जो ऐसा कर सकें। ये स्थायी शाखायुक्त जतु जो देखने मे पेडों की भॉति प्रतीत होते हैं, हमारे देश की प्राणिशास्त्र की प्रयोगशालाओं मे देखे जा सकते हैं। उनमे से एक, एनीमोन, जो समुद्र के तल मे होता है और वनस्पति की तरह एक स्थान पर स्थिर रहता है, अगले पृष्ठ पर दिये गये चित्र मे आप देख सकते हैं। ऊपर जिन वनस्पति-जैसे जन्तुओं का उल्लेख किया गया है वे न केवल पेडो की तरह बढते और शाखाये ही फैलाते हैं वरन् उनमे से कई जीवन नष्ट किये बिना ही टुकडों में काटे जा सकते हैं। ठीक वैसे ही जैसे एक बडे आलू के टुकडे करके बोने से हर एक टुकडे से नया पौधा उग आता है,

जीवित स्पंज के कटे टुकड़े भी यदि समुद्र में बिखेर दिये जायॅ तो बढ़कर पूरे स्पंज हो जाते हैं ! जैसे कि तुम गुलाब या नीम की डालियाॅ काटते हो तब भी उसमें से नई टहनियाॅ निकलती रहती हैं और पौधा बढा करता है, उसी तरह छिपकली की दुम भी काटे जाने के बाद फिर बढ़ जाती है। इस तरह हमे मालूम होता है कि केवल ऊॅची या बड़ी जाति के पशु और पेड़ ही सरलता-पूर्वक एक दूसरे से भिन्न करके पहचाने जा सकते हैं। नीची जातियो मे, जो बिलकुल छोटी हैं या इतनी छोटी कि ऑखो से देखी भी नहीं जा सकती—भेद अधिक नही है और बहुत नीची जातियो मे यह भेद केवल नाममात्र के लिए या नही के बराबर है। उनके बारे मे यह कहना भी कठिन है कि वे वनस्पति हैं या जंतु।

वनस्पति और जानवरो के भोजन ग्रहण करने के ढगों मे भी एक स्पष्ट अन्तर है। दोनों ही को जीने और बढ़ने के लिए कार्बन और नाइट्रोजन की आवश्यकता होती है, परन्तु वे उसे भिन्न रीतियो से प्राप्त करते हैं। वनस्पति अपना कार्बन पत्तो से श्वास द्वारा गैस के रूप में हवा मे मिले हुए कार्बन डाइआक्साइड से लेते हैं। इसके बाद अपने हरे रंगवाले पदार्थ, पर्णहरित (क्लोरोफिल), की सहायता से सूर्य के प्रकाश की उपस्थिति मे वे उसे अपने तन्तुओ मे विषम संयोजित (Complex Compound) के रूप मे परिवर्त्तित कर लेते हैं। वनस्पति को जितने नाइट्रोजन की आवश्यकता होती है, वह उसे पृथ्वी के नाइट्रेट से मिलती है। यह नाइट्रेट पृथ्वी के अन्दर पानी मे घुला हुआ रहता है और पेड़-पौधे अपनी जड़ो द्वारा उसे अपने मे खींच लेते है। जानवर अपना कार्बन और नाइट्रोजन सीधे पृथ्वी से नही प्राप्त कर सकते। वे उसे शाक या मांस के आहार के रूप में पाते हैं, जो कार्बन और नाइट्रोजन के बने-बनाये मिश्रण (कम्पाउण्ड) हैं। हम लोग या तो अनाज (जैसे गेहूँ, चना, बाजरा) या फल जैसे (अगूर, संतरे, केले, आम) या पत्ते (जैसे भॉति-भॉति के शाक) खाते हैं। इनके लिए हम पौधों पर निर्भर हैं। इसके अतिरिक्त दूध या शहद की तरह के पदार्थों के लिए हमे जानवरो पर निर्भर होना पड़ता है। इसी भॉति पशु अपने खाने के लिए पौधो पर या अन्य जानवरों पर निर्भर हैं। ये अन्य जानवर उसी तरह दूसरे पेडो पर निर्भर है। इससे विदित होता है कि पृथ्वी पर जन्तुओं से पहले पेड-पौधो का जन्म अवश्य हुआ होगा।

शक्ल-सूरत में वनस्पति-जैसा जंतु एनीमोन
जो समुद्र के तले की चट्टानो पर स्थायी रूप से चिपका रहता और मछलियों का आहार करता है।

आदमी और अन्य जीवों में अन्तर

अब कुछ आदमी तथा अन्य पशुओं के बारे मे विचार किया जाय। मनुष्य और अन्य जानवरों मे भोजन और भोजन करने के ढंग मे कोई ख़ास अन्तर नही है, जैसा कि जानवरो और पेड़-पौधो मे पाया जाता है। बन्दर, गाय, कुत्ते और तोते उनमे से अधिकांश चीज़ों को खा सकते हैं, जिन्हे हम खाते है और वे बहुत-सी अन्य बातों मे हमारा-जैसा आचरण करते है। वे एक चीज़ पसन्द करते है और दूसरी नापसन्द। वे एक चीज़ की खोज मे रहते हैं और दूसरी से बचते रहते है। दूसरे शब्दों मे मनुष्यो की तरह ही उनकी अनुभूति होती है, चेतना होती है और इच्छा होती है। प्रत्येक व्यक्ति जिसने जानवर पाले हैं, जानता है कि वह भी सुख-दुःख का अनुभव करते हैं। कौन ऐसा होगा जिसने घर की बिल्ली का दुःखद रुदन न सुना होगा! वे चिड़ियाॅ और जानवर, जो स्वतन्त्र होते हैं, कैद किये जाने पर कभी-कभी दुःख से मर जाते हैं। तब क्या ऐसी कोई चीज़ है, जो हम मे और हमारे पशु-साथियो मे भेद कर

सके? यह सच है कि बहुत-से काम जो हम कर सकते हैं, पशु नहीं कर सकते, पर यह भी सच है कई काम ऐसे भी हैं जिन्हे वे कर सकते है और हम नही। चिड़ियाँ बिना किसी यन्त्र की सहायता के उड़ सकती है। उनमे से कई तो लगातार घन्टों तक उड़ सकती हैं मानों वे थकती ही नही। इसके विपरीत हम लोगों का दम इसी ठोस पृथ्वी पर थोड़ी-सी दौड लगाने पर ही फूलने लगता है। बन्दर एक छत से दूसरी छत पर, एक डाल से दूसरी डाल पर आसानी से कूद जाता है, यद्यपि मनुष्य यह नहीं कर सकता। यहाँ तक कि नन्हीं मकड़ी ऐसा जाला बुन सकती है, जो मनुष्य के आज तक के कौशल द्वारा बनाये हुए किसी भी सूत से बढकर होता है। किन्तु ऐसे बडे बन्दरों के अतिरिक्त जो आदमी के सम्पर्क मे रहते हैं, अन्य बडे जानवर भी उचित और अनुचित का भेद नहीं जानते। उनमे चेतना है, पर निर्णयात्मक बुद्धि नही। कदाचित् अधिकाश जानवरों और मनुष्य मे यही प्रमुख भेद हो।

दूसरा और अतिम भेद मनुष्य की भाषण-शक्ति का महान् विकास प्रतीत होता है। सारे जंतु-जगत् मे यह मनुष्य को ही प्रकृति से प्राप्त विशेष देन है। यह सच है कि प्रकृति ने पशुओ, पक्षियो, यहाँ तक कि छोटी-छोटी चीटियों को भी अपनी-अपनी बोली दी है। किन्तु मनुष्य की बोली और अन्य पशुओं की बोली मे एक विशेष अतर है। पशुओ को कुछ गिने-चुने स्वर ही प्रकृति से प्राप्त हुए हैं और वे उन्हे ही बार-बार दोहराया करते हैं। यह कहना कठिन है कि उनकी बोली में कोई अर्थ भी रहता है या नही। पर मनुष्य की भाषा का निरतर विकास होता रहा है और देश-देश मे उसका नया-नया रूप प्रस्फुटित हुआ है। इस भाषा के ही द्वारा मनुष्य को प्रकृति ने अपने विचार व्यक्त करने की क्षमता प्रदान की है।

जंतु-जगत् में मनुष्य का सबसे निकट सम्बन्धी—चिम्पेंज़ी
जिसका स्वाभाविक बर्त्ताव मनुष्य से इतना अधिक मिलता है कि यह कहना कठिन है कि जंतु-जगत् में मनुष्य ही केवल एक ऐसा प्राणी है जो बुद्धि से युक्त हो। अनेक बातों मे इसका आचरण मनुष्य से मिलता-जुलता है। यह एक अजीब तरह की गुनगुनाने की ध्वनि निकालता हुआ मनुष्य के बोलने की नक़ल-सी करने लगता है, अपने बच्चो को मनुष्य की तरह छाती या गोद से चिपका लेता है—यहाँ तक कि थोडा-सा सिखाने पर कपडे पहनकर और मेज-कुर्सी पर बैठकर छुरी और काँटे या चम्मच के द्वारा बिलकुल आदमी की तरह खाना खाना भी सीख जाता है।
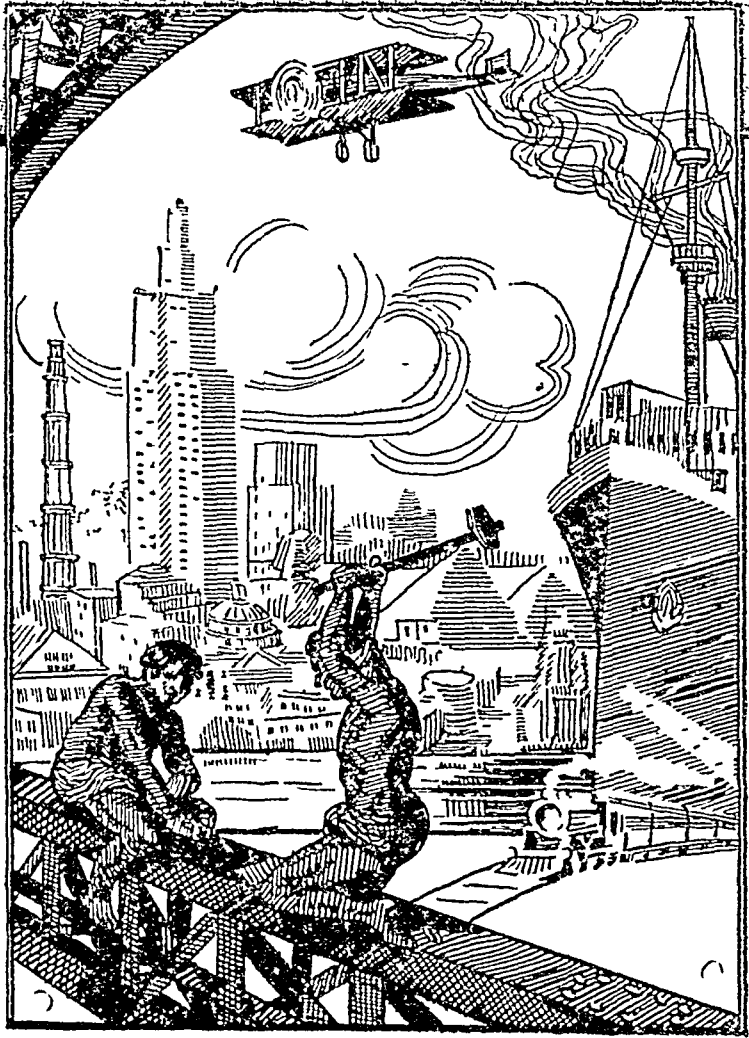
मनुष्य
की कहानी

मनुष्य और उसके निकटतम संबंधी मानवसम वानर

(ऊपर से नीचे बाएँ से दाहिनी ओर के क्रम से) पहली पंक्ति मे —मैड्रिल नामक वानर, चिम्पैंजी, और लंगूर। दूसरी पंक्ति मे—औरङ्गउटाङ्ग, मनुष्य, और गोरिल्ला। तीसरी पंक्ति मे—सफ़ेद हाथोवाला गिबन, लीमर और लंबो नाकवाला बबून।
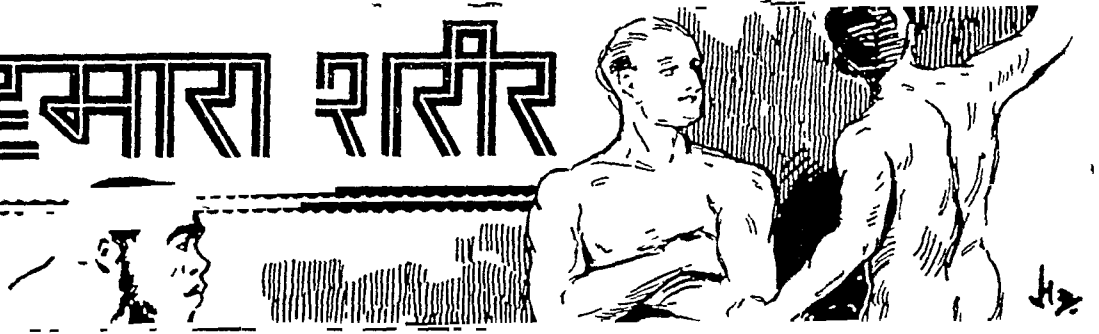
हम कौन और क्या हैं ?

हममें और अन्य जीवों में समता

विश्व और पृथ्वी, तथा पृथ्वी पर दिखाई दे रही निर्जीव और सजीव सृष्टि का सामान्य रूप से अध्ययन करने के बाद स्वभावतया हमारी आँखे स्वयं अपने आप ही की ओर मुड़ती हैं, क्योंकि सृष्टि की सारी महिमा, उसका सारा महत्त्व ही, इस बात में है कि हम उसके प्रधान खिलाड़ी हैं। यह विभाग हमारी अपनी उस कहानी का प्रथम अध्याय है। अपना यह अध्ययन आरंभ करने पर सर्वप्रथम हमारा ध्यान जिस पहलू पर जाता है, वह है हमारा अपना स्थूल भौतिक स्वरूप, जंतु जगत् में हमारा स्थान, हमारी शरीर-रचना और उसके विकास का इतिहास, हमारे शरीर के अवयव या भाग, उनमें होनेवाले रोग और उनका निदान, आदि, आदि। इस विभाग में इन्हीं महत्त्वपूर्ण विषयो का विवेचन आप पायेगे।

मनुष्य भी जंतु-जगत् का सदस्य है

यदि तुमसे कोई पूछे, "तुम आदमी हो या जानवर" तो अवश्य तुम यही उत्तर दोगे, "हम आदमी हैं, जानवर नहीं।" लेकिन चाहे तुम मानो या न मानो, और चाहे तुम्हे यह बात अच्छी न लगे, हम तुम्हे यह बताना चाहते हैं कि हम, तुम और सब आदमी अन्य जीवधारियों की तरह जानवर ही हैं। इसमे कोई घबडाने या परेशान होने का कारण नही। यह सच है कि हम लोग और जन्तुओं से भिन्न हैं। मनुष्य की-सी बुद्धि और बोलचाल दूसरे जीवो मे नही पाई जाती, उसके शरीर का आकार और रहन-सहन के नियम भी उनसे भिन्न हैं। पर हाथी व घोडे, मक्खी और मच्छरों से उसी प्रकार भिन्न हैं, जैसे हम-तुम और जानवरों से। लेकिन इस भिन्नता के होते हुए भी तुम उन सबको जानवर ही कहते हो। फिर यह मान लेना क्यो अखरता है कि अन्य जीवधारियो की तरह प्रकृति की गोद मे तुम भी पैदा हुए हो, और जैसा कि पिछले स्तभ मे बतलाया गया है जन्तु-जगत् के एक मुख्य भाग हो।

इसी पृथ्वी पर हम और सब ही प्राणी रहते-बसते है। हमारी ही तरह वे भी पैदा होते, खाते-पीते, बढ़ते और अन्त मे मर जाते है। जैसे सर्दी, गर्मी, पानी, धूप इत्यादि हमको सताती हैं वैसे ही अन्य प्राणियों को भी और जैसे हम उनसे बचने के उपाय करते हैं वैसे ही वे भी। अपने बाल-बच्चो के पालन-पोषण का प्रबन्ध जैसे आदमी करते है वैसे ही दूसरे जानवर भी। अपनी और अपने परिवार की रक्षा के लिए मनुष्य एक-दूसरे से लडते-झगड़ते और मार-पीट करते है, उसी प्रकार अन्य जीवधारियो मे भी आपस मे द्वन्द्व होता है, लडाई-झगडे चलते रहते हैं, और मार-काट होती रहती है। हमारी तरह और जीवो को भी पेट भरने के लिए भोजन और रहने के लिए सुरक्षित स्थान चाहिए। इन सब बातो से स्पष्ट है कि हमारी और अन्य जानवरों की मुख्य-मुख्य आवश्यकताएँ एक ही सी है, और हमारा व उनका रहन-सहन भी अधिकांश मे मिलता-जुलता है। कदाचित् यही कारण है, जो हम बहुत-से प्राणियो को देखकर ख़ुश होते हैं, और उनमे से बहुतो को अपने घरों मे पालते भी हैं। कुत्ता, बिल्ली, तोता, मैना, लाल और कबूतर इत्यादि और उनके बच्चे हमे ऐसे प्यारे लगते हैं कि हम उन्हे अपने साथ रखना और खिलाना-पिलाना पसंद करते हैं। उनके शरीर, रूप-रंग, चलना-फिरना, खेलना-कूदना देखकर हमारे बच्चे कैसे प्रसन्न होते है और उनकी बोली को ध्यान से सुनने और बड़ी उत्कंठा से नक़ल करने की कोशिश करते हैं।

मनुष्य के प्राचीन इतिहास से पता चलता है कि किसी समय वह अन्य जीवधारियों को भी अपना ही सा प्राणी मानता था और उनकी उत्तम बल-बुद्धि को पूजनीय समझकर

उनके शरीर के अनेक अंग, सींग, पर, दाँत, नाखून इत्यादि अपने शरीर पर धारण कर रोग और आपत्तियों से बचने का प्रयत्न करता था। बहुत-सी प्राचीन जातियों का विचार था कि उनके वंश की उत्पत्ति किसी पशु या पक्षी विशेष से हुई थी इसलिए वे उसकी मूर्त्ति चिह्नस्वरूप अपने घर मे रखतीं और उसकी पूजा करती थीं। आज तक भारतवर्ष मे हिन्दुओं मे वाराह अवतार, नृसिंह अवतार, आदि कई पूरे और आधे जानवर व आधे मनुष्य के शरीरवाले देवताओं के अवतार माने जाते हैं, और उनकी मूर्त्तियाँ पूजन के लिए बनाई जाती हैं। जैसे-जैसे समय बीतता गया, आदमी की बुद्धि में परिवर्त्तन होता गया। वह अपने को पशुओं से बिलकुल भिन्न समझने लगा और उनसे सारा नाता तोड़ दिया। परन्तु एक बार फिर आदमी की मति ने पलटा खाया। आधुनिक विज्ञान के अध्ययन से यह स्पष्ट होने लगा कि रूप, कार्य्य, उत्पत्ति, वृद्धि और बुद्धि में आदमी और जानवरों मे बड़ी समता है। हमारे शरीर की रचना उच्च श्रेणियों के प्राणियों की-सी ही है। जब हमने उनके और अपने शरीर के अंगों की तुलना की तो पता चला कि उनके आँख, कान, नाक, जिगर, फेफड़े, उँगलियाँ और नाखून आदि हमारे अंगों से बहुत-कुछ मिलते-जुलते हैं। बहुत-से बाहरी और भीतरी अंग निःसन्देह बिलकुल एक ही से बने हैं। इसलिए मानना ही पड़ता है कि मनुष्य भी जन्तु-जगत् का एक सदस्य है। अपने अहंकार और अज्ञानता के कारण मनुष्य अपने आप को जानवरों से भिन्न और अलग मानने लगा है। अब भी बहुत-से लोग हैं, जो अपनी असली उत्पत्ति को सुनकर चिढ़ते हैं। हम अपने वंश के बारे मे बहुत कम ध्यान दिया करते हैं। मामूली तौर से हमको अपने दादा, परदादा या यों कहिए कि केवल दो-तीन पीढ़ियों ही का हाल मालूम रहता है। यदि हम पचीस-तीस पीढ़ियों का हाल मालूम कर सकें, तो हमें अच्छी तरह ज्ञात हो जाय कि हम सबके पूर्वजों मे सभी प्रकार के मनुष्य थे। कुछ होशियार, कुछ बेवकूफ, कुछ अमीर, कुछ गरीब, कुछ चंगे, कुछ रोगी, कुछ विद्वान्, कुछ पागल, कुछ नेक, कुछ मनुष्य-जैसे और कुछ जंगली जानवर-से। तो भी हम इस बात से सन्तुष्ट नहीं कि हमें जानवरों के बादशाह की पदवी मिले। हम तो अपने को जानवरों से कोसों दूर समझना उचित जानते हैं! किन्तु यह हमारी भूल है।

कुछ लोग कहेंगे कि यह उचित नहीं कि हम अपनी श्रेष्ठता का ध्यान न रखते हुए यही प्रकट करें कि मनुष्य जानवरों के अधिक समान है, और उन्हीं का एक अति उत्तम और श्रेष्ठ रूप है। लेकिन कुछ विद्वानों का विचार है कि अगर किसी को हर घड़ी उसकी अच्छी बातों और बड़प्पन का ही ध्यान दिलाया जाय, और उसकी कमी, बुराइयों व त्रुटियों को उससे छिपाया जाय, तो उसे अपने ऊपर झूठा गर्व हो जाने की सम्भावना है। परन्तु दोनों प्रकार की बातों से अपरिचित रहना और भी बड़ी भूल है। अतः यह उचित जान पड़ता है कि हम अपने पाठकों पर अपनी असलियत अवश्य प्रकट कर दें, उन्हें यह बता दें कि हम और जीवधारियों की तरह हैं तो एक प्राणी ही, लेकिन बहुत-सी बातों में उनसे भिन्न भी हैं, और अपने ऊँचे स्वभाव व लक्षणों के कारण, सब जीवों से अलग, मनुष्य की श्रेणी मे गिने जाते हैं। इस अध्याय में यही बताया जायगा कि आदमी और अन्य जानवरों में क्या समता है, और कौन-से जन्तु उसके निकट सम्बन्धी हैं। इसके पीछे दूसरे भाग में यह दिखाया जायगा कि मनुष्य अपने से मिलते-जुलते प्राणियों से किन-किन बातों मे भिन्न हैं, और उसमें क्या श्रेष्ठता है।

मनुष्य व अन्य प्राणियों की आत्मा एक है

यूनान देश के प्रसिद्ध दार्शनिक और प्रकृतिवादी पियेगोरस ने, जो ईसामसीह से कई शताब्दी पहले इस संसार मे था, पहले पहल यह समझाने की कोशिश की थी कि जानवरों मे भी आदमी के भाई-बन्धु होते हैं। कहावत यह है कि एक समय उसने किसी आदमी को अपने कुत्ते को निर्दयता से पीटते देखा तो उससे कहा, "कुत्ते पर दया करो और उसे न मारो, क्योंकि इस कुत्ते के चिल्लाने में मुझे अपने एक स्वर्गीय प्यारे मित्र की आवाज़ सुनाई देती है।" तब उस आदमी ने कुत्ते को मारना बन्द कर दिया। पियेगोरस का मत था कि आत्मा अमर है, केवल शरीर बदलती रहती है। आत्मा एक जीव के शरीर को त्याग कर दूसरे के बदन मे प्रवेश कर लेती है। जब समय आने पर वह जीव भी मर जाता है तब उसे छोड़कर किसी दूसरे जीव मे जा पहुँचती है। वही आत्मा मनुष्य से जानवर के शरीर में और फिर जानवर से मनुष्य के शरीर मे आ जाती है। हिन्दुओं का भी ऐसा ही विश्वास है कि आत्मा जन्म-जन्मान्तर तक शरीर धारण कर इस संसार मे आती रहती है, कभी किसी प्राणी का और कभी किसी का रूप धारण कर लेती है। जब तक मुक्ति प्राप्त नहीं होती, इसी प्रकार आवागमन होता रहता है। तुमने भी अख़बारों मे पढ़ा या सुना होगा कि कभी-

कभी ऐसे बालक पैदा हो जाते हैं जो अपने पहले जन्म की बातें याद रखते हैं, और उन्हें जल्दी नहीं भूलते।

हमारे शरीर में भी वही अवयव हैं, जो ऊँची श्रेणी के जन्तुओं में हैं। जैसे उनमे सोचने के लिए मस्तिष्क, रक्त-संचालन के लिए हृदय, साँस लेने के लिए फेफड़े, भोजन कुचलने को मुँह मे दाँत, और पाचन करने के लिए पेट मे थैली और आँते तथा शरीर का रूप क़ायम रखने के लिए हड्डियाँ होती हैं, वैसी ही सब अग आदमी मे भी पाये जाते हैं। जैसे उनमे सब अंग मिल-जुलकर शरीर के पालन और रक्षा के लिए अपना-अपना कर्त्तव्य करते रहते हैं, उसी तरह हमारे अंग भी एक-दूसरे से हिल-मिल अपना कार्य्य करते हुए शरीर का पालन करते हैं। जैसे अन्य प्राणियों के अग कोषों के बने हैं, वैसे आदमी के अग भी बहुत-से छोटे-छोटे कोषो के बने हुए हैं और इन सब कोषों में वही जीवन-मूल पाया जाता है जो समस्त जीवन का मूल है। इससे साफ़ पता लगता है कि हमारे शरीर की ऊपरी व भीतरी रचना ही वैसी नहीं, जैसी और ऊँची श्रेणी के प्राणियों की, किन्तु हमारे अंगों का कार्यक्रम भी एक ही सा है। यही नहीं, अगर हिन्दुओं का मत ठीक है, तो आत्मा भी वही है। इन बातों को जानकर कोई यह कैसे न मानेगा कि मनुष्य भी एक जन्तु ही है?

जन्तु-जगत् में मनुष्य का स्थान क्या है?

यदि आदमी जानवरों मे सम्मिलित है ही, तो हमे यह देखना है कि जीवधारियो मे उसका क्या स्थान है। दुनिया के सारे जीव दो मुख्य भागों में विभाजित हैं—१. एक कोषवाले, जो बहुत छोटे-छोटे होते हैं और जिनका पूर्ण शरीर एक ही कोष का बना होता है; २. बहु-कोषवाले, जिनमें छोटे-छोटे से लेकर बड़े से बड़े जीव पाये जाते हैं। क्योंकि मनुष्य का शरीर अगणित कोषों का बना हुआ है; अतएव वह बहुकोषक प्राणियों के समूह में गिना जाता है। परन्तु वह कीड़ो, मकोड़ो, मक्खी, मच्छरों, बिच्छुओं से भिन्न है, क्योंकि उसकी पीठ मे हाथी, घोड़े, कुत्ते, बिल्ली, तोते, साँप, मेढक, मछली के समान रीढ़ की हड्डी होती है। इसलिए हम सब पृष्ठवंशी श्रेणी के जीव हुए। लेकिन इस वंश में भी बहुत प्रकार के जीव हैं। उनमे कुछ ऐसे हैं, जिनकी खाल पर बाल होते हैं और जिनकी माताएँ बच्चों को अपने स्तन द्वारा दूध पिलाती हैं, जैसे गाय, बकरी, बन्दर, लंगूर, ऊँट, घोड़ा, चूहा, चमगादड़ इत्यादि। किन्तु बहुत-से ऐसे हैं, जिनमें न तो शरीर के ऊपर बाल ही होते हैं और न माताओं के स्तन पाये जाते हैं, जैसे चील कौआ, सर्प छिपकली, मछली, मेढक, इत्यादि। अब तुम स्वयं समझ सकते हो कि क्यों मनुष्य गाय-बैल की तरह पृष्ठ-वंशियों के स्तनपोषित समुदाय मे सम्मिलित है। परन्तु इस समुदाय में भी नाना प्रकार के प्राणी हैं। उनमे से वनमानुष, बन्दर और लीमर ऐसे हैं जो आदमी से सबसे अधिक मिलते हैं और उनमे आदमियो के कुल लक्षण पाये जाते हैं—जैसे हाथ व पैरों मे वस्तुओं के पकड़ने की शक्ति, उँगलियों और अँगूठों मे पंजों की अपेक्षा चपटे, चौड़े नाख़ून, पेट पर सामने की ओर दो स्तन, गले मे हँसली की हड्डी, खोपड़ी के भीतर अन्य स्तनपोषी जीवो की अपेक्षा बड़ा और पेचदार मस्तिष्क। इसलिए मनुष्य और वानर वर्ग, अन्य स्तनपोषी जन्तुओं से भिन्न, एक ही श्रेणी मे शामिल किये जाते हैं। इस श्रेणी को अँगरेज़ी भाषा मे 'प्राइमेट' और अपनी भाषा में "प्रधानभागीय" कहते हैं।

हमारे शरीर के भिन्न-भिन्न अगो से विदित होता है कि हम वानरवंश के वंशज हैं। सब देशों के मनुष्य और सारी जातियो के वानर एक ही ढाँचे पर बने हुए हैं। किन्तु वानरवंश मे भी अन्य समूहों की भाँति कई श्रेणियाँ हैं। नई दुनिया, अर्थात् उत्तरी व दक्षिणी अमरीका, के बन्दर पुरानी दुनिया, अर्थात् एशिया, योरप और अफ़्रीका, के बन्दरों से भिन्न हैं। वे अपनी दुम से वृक्षों की डालियाँ पकड़ लटक जाते हैं और उसी के सहारे डाली-डाली कूदते फिरते हैं। परन्तु इन नई दुनिया के दुम से लटकने-वाले बन्दरों मे पुरानी दुनिया के बन्दरों की तरह गले मे खाना एकत्रित करने के लिए थैलियाँ नहीं होतीं। इन दो प्रकार के वानरों के अतिरिक्त एक और भी जाति है जिसमें दुम नहीं पाई जाती और जो आदमी की तरह थोड़ा-बहुत खड़े होकर चल-फिर सकती है। इनको हम 'मानवसम' वानर या वनमानुष कहते हैं। इन ऊँची जातिवाले बन्दरों और मनुष्यों की जटिल बनावट में अपूर्व समानता है। बदन की हर एक हड्डी, पेशी, नाड़ी, रक्त-प्रणाली इत्यादि दोनों मे बिल्कुल एक ही सी बनी हुई हैं। हमारी-तुम्हारी तरह न तो इन वनमनुष्यों के दुम होती है, न खाना भरने को गले मे थैली और न नितम्बो पर बैठने में सहायता देने वाली गद्दियाँ। लेकिन जिस प्रकार मानवसम वानरों और नई व पुरानी दुनिया के बन्दरों में एक दूसरे से भेद है और जैसे अफ़्रीका देश और उसके निकट मेडागास्कर टापू में रहनेवाले अर्द्ध-वानर या 'लीमर' बाक़ी सब असली बन्दरों से अपनी विभिन्नता द्वारा सहज में पहचाने जा सकते

उनके शरीर के अनेक अग, सींग, पर, दाँत, नाखून इत्यादि अपने शरीर पर धारण कर रोग और आपत्तियों से बचने का प्रयत्न करता था। बहुत-सी प्राचीन जातियों का विचार था कि उनके वश की उत्पत्ति किसी पशु या पक्षी विशेष से हुई थी, इसलिए वे उसकी मूर्त्ति चिह्नस्वरूप अपने घर मे रखतीं और उसकी पूजा करती थी। आज तक भारत-वर्ष मे हिन्दुओं मे वाराह अवतार, नृसिंह अवतार, आदि कई पूरे और आधे जानवर व आधे मनुष्य के शरीरवाले देवताओं के अवतार माने जाते हैं, और उनकी मूर्त्तियाँ पूजन के लिए बनाई जाती है। जैसे-जैसे समय बीतता गया, आदमी की बुद्धि मे परिवर्त्तन होता गया। वह अपने को पशुओं से बिलकुल भिन्न समझने लगा और उनसे सारा नाता तोड़ दिया। परन्तु एक बार फिर आदमी की मति ने पलटा खाया। आधुनिक विज्ञान के अध्ययन से यह स्पष्ट होने लगा कि रूप, कार्य्य, उत्पत्ति, वृद्धि और बुद्धि मे आदमी और जानवरों मे बड़ी समता है। हमारे शरीर की रचना उच्च श्रेणियों के प्राणियों की-सी ही है। जब हमने उनके और अपने शरीर के अगों की तुलना की तो पता चला कि उनके आँख, कान, नाक, जिगर, फेफड़े, उँगलियाँ और नाखून आदि हमारे अगों से बहुत-कुछ मिलते-जुलते है। बहुत-से बाहरी और भीतरी अग निःसन्देह बिलकुल एक ही से बने हैं। इसलिए मानना ही पड़ता है कि मनुष्य भी जन्तु-जगत् का एक सदस्य है। अपने अहकार और अज्ञानता के कारण मनुष्य अपने आप को जानवरों से भिन्न और अलग मानने लगा है। अब भी बहुत-से लोग हैं, जो अपनी असली उत्पत्ति को सुनकर चिढते हैं। हम अपने वश के बारे मे बहुत कम ध्यान दिया करते हैं। मामूली तौर से हमको अपने दादा, परदादा या यो कहिए कि केवल दो-तीन पीढियों ही का हाल मालूम रहता है। यदि हम पचीस-तीस पीढियों का हाल मालूम कर सके, तो हमे अच्छी तरह ज्ञात हो जाय कि हम सबके पूर्वजों मे सभी प्रकार के मनुष्य थे। कुछ होशियार, कुछ बेवकूफ, कुछ अमीर, कुछ गरीब, कुछ चगे, कुछ रोगी, कुछ विद्वान्, कुछ पागल, कुछ नेक, कुछ मनुष्य-जैसे और कुछ जगली जानवर-से। तो भी हम इस बात से सन्तुष्ट नही कि हमे जानवरों के बादशाह की पदवी मिले। हम तो अपने को जानवरों से कोसो दूर समझना उचित जानते है। किन्तु यह हमारी भूल है।

कुछ लोग कहेंगे कि यह उचित नहीं कि हम अपनी श्रेष्ठता का ध्यान न रखते हुए यही प्रकट करें कि मनुष्य जानवरों के अधिक समान है, और उन्हीं का एक अति उत्तम और श्रेष्ठ रूप है। लेकिन कुछ विद्वानों का विचार है कि अगर किसी को हर घड़ी उसकी अच्छी बातों और बड़प्पन का ही ध्यान दिलाया जाय, और उसकी कमी, बुराइयों व त्रुटियों को उससे छिपाया जाय, तो उसे अपने ऊपर झूठा गर्व हो जाने की सम्भावना है। परन्तु दोनो प्रकार की बातों से अपरिचित रहना और भी बड़ी भूल है। अतः यह उचित जान पड़ता है कि हम अपने पाठकों पर अपनी असलियत अवश्य प्रकट कर दें, उन्हे यह बता दें कि हम और जीवधारियों की तरह हैं तो एक प्राणी ही, लेकिन बहुत-सी बातों में उनसे भिन्न भी हैं, और अपने ऊँचे स्वभाव व लक्षणों के कारण, सब जीवों से अलग, मनुष्य की श्रेणी मे गिने जाते हैं। इस अध्याय में यही बताया जायगा कि आदमी और अन्य जानवरों मे क्या समता है, और कौन-से जन्तु उसके निकट सम्बन्धी हैं। इसके पीछे दूसरे भाग मे यह दिखाया जायगा कि मनुष्य अपने से मिलते-जुलते प्राणियों से किन-किन बातों मे भिन्न हैं, और उसमे क्या श्रेष्ठता है।

मनुष्य व अन्य प्राणियों की आत्मा एक है

यूनान देश के प्रसिद्ध दार्शनिक और प्रकृतिवादी पिथे-गोरस ने, जो ईसामसीह से कई शताब्दी पहले इस ससार मे था, पहले पहल यह समझाने की कोशिश की थी कि जानवरो मे भी आदमी के भाई-बन्धु होते हैं। कहावत यह है कि एक समय उसने किसी आदमी को अपने कुत्ते को निर्दयता से पीटते देखा तो उससे कहा, "कुत्ते पर दया करो और उसे न मारो, क्योंकि इस कुत्ते के चिल्लाने मे मुझे अपने एक स्वर्गीय प्यारे मित्र की आवाज़ सुनाई देती है।" तब उस आदमी ने कुत्ते को मारना बन्द कर दिया। पिथेगोरस का मत था कि आत्मा अमर है, केवल शरीर बदलती रहती है। आत्मा एक जीव के शरीर को त्याग कर दूसरे के बदन मे प्रवेश कर लेती है। जब समय आने पर वह जीव भी मर जाता है तब उसे छोड़कर किसी दूसरे जीव मे जा पहुँचती है। वही आत्मा मनुष्य से जानवर के शरीर में और फिर जानवर से मनुष्य के शरीर मे आ जाती है। हिन्दुओ का भी ऐसा ही विश्वास है कि आत्मा जन्म-जन्मान्तर तक शरीर धारण कर इस ससार मे आती रहती है, कभी किसी प्राणी का और कभी किसी का रूप धारण कर लेती है। जब तक मुक्ति प्राप्त नही होती, इसी प्रकार आवागमन होता रहता है। तुमने भी अखबारों मे पढा या सुना होगा कि कभी-

कभी ऐसे बालक पैदा हो जाते हैं जो अपने पहले जन्म की बाते याद रखते हैं, और उन्हे जल्दी नही भूलते ।

हमारे शरीर मे भी वही अवयव हैं, जो ऊँची श्रेणी के जन्तुओं मे हैं । जैसे उनमे सोचने के लिए मस्तिष्क, रक्त-संचालन के लिए हृदय, सॉस लेने के लिए फेफडे, भोजन कुचलने को मुँह मे दॉत, और पाचन करने के लिए पेट मे थैली और ऑतें तथा शरीर का रूप क़ायम रखने के लिए हड्डियॉ होती है, वैसी ही सब अग आदमी मे भी पाये जाते हैं । जैसे उनमे सब अग मिल-जुलकर शरीर के पालन और रक्षा के लिए अपना-अपना कर्त्तव्य करते रहते हैं, उसी तरह हमारे अग भी एक-दूसरे से हिल-मिल अपना कार्य्य करते हुए शरीर का पालन करते हैं । जैसे अन्य प्राणियो के अग कोषो के बने हैं, वैसे आदमी के अंग भी बहुत-से छोटे-छोटे कोषों के बने हुए हैं और इन सब कोषों मे वही जीवन-मूल पाया जाता है जो समस्त जीवन का मूल है । इससे साफ पता लगता है कि हमारे शरीर की ऊपरी व भीतरी रचना ही वैसी नही, जैसी और ऊँची श्रेणी के प्राणियों की, किन्तु हमारे अगो का कार्यक्रम भी एक ही सा है । यही नही, अगर हिन्दुओं का मत ठीक है, तो आत्मा भी वही है । इन बातो को जानकर कोई यह कैसे न मानेगा कि मनुष्य भी एक जन्तु ही है ?

जन्तु-जगत् में मनुष्य का स्थान क्या है ?

यदि आदमी जानवरो मे सम्मिलित है ही, तो हमे यह देखना है कि जीवधारियो मे उसका क्या स्थान है। दुनिया के सारे जीव दो मुख्य भागों मे विभाजित है—१. एक कोषवाले, जो बहुत छोटे-छोटे होते हैं और जिनका पूर्ण शरीर एक ही कोष का बना होता है ; २ बहु-कोषवाले, जिनमे छोटे-छोटे से लेकर बडे से बडे जीव पाये जाते हैं । क्योंकि मनुष्य का शरीर अगणित कोषो का बना हुआ है ; अतएव वह बहुकोषक प्राणियों के समूह मे गिना जाता है । परन्तु वह कीडो, मकोडो, मक्खी, मच्छरो, बिच्छुओं से भिन्न है, क्योंकि उसकी पीठ मे हाथी, घोडे, कुत्ते, बिल्ली, तोते, सॉप, मेढक, मछली के समान रीढ़ की हड्डी होती है । इसलिए हम सब पृष्ठवशी श्रेणी के जीव हुए । लेकिन इस वंश मे भी बहुत प्रकार के जीव हैं । उनमे कुछ ऐसे हैं, जिनकी खाल पर बाल होते है और जिनकी माताएँ बच्चों को अपने स्तन द्वारा दूध पिलाती हैं, जैसे गाय, बकरी, बन्दर, लंगूर, ऊँट, घोड़ा, चूहा, चमगीदड़ इत्यादि । किन्तु बहुत-से ऐसे हे, जिनमे न तो शरीर के ऊपर बाल ही होते हैं और न माताओ के स्तन पाये जाते हैं, जैसे चील कौआ, सर्प छिपकली, मछली, मेढक, इत्यादि । अब तुम स्वयं समझ सकते हो कि क्यो मनुष्य गाय-बैल की तरह पृष्ठ-वंशियो के स्तनपोषित समुदाय मे सम्मिलित है । परन्तु इस समुदाय मे भी नाना प्रकार के प्राणी हैं । उनमे से वनमानुष, बन्दर और लीमर ऐसे हैं जो आदमी से सबसे अधिक मिलते हैं और उनमे आदमियो के कुल लक्षण पाये जाते हैं—जैसे हाथ व पैरों मे वस्तुओ के पकड़ने की शक्ति, उँगलियों और अँगूठो मे पंजो की अपेक्षा चपटे, चौडे नाख़ून, पेट पर सामने की ओर दो स्तन, गले मे हॅसली की हड्डी, खोपड़ी के भीतर अन्य स्तनपोषी जीवो की अपेक्षा बड़ा और पेचदार मस्तिष्क । इसलिए मनुष्य और वानर वर्ग, अन्य स्तनपोषी जन्तुओ से भिन्न, एक ही श्रेणी मे शामिल किये जाते है । इस श्रेणी को अँगरेज़ी भाषा मे 'प्राइमेट' और अपनी भाषा मे "प्रधानभागीय" कहते हैं ।

हमारे शरीर के भिन्न-भिन्न अगो से विदित होता है कि हम वानरवश के वशज हैं । सब देशो के मनुष्य और सारी जातियो के वानर एक ही ढॉचे पर बने हुए हैं । किन्तु वानरवश मे भी अन्य समूहो की भॉति कई श्रेणियॉ हैं । नई दुनिया, अर्थात् उत्तरी व दक्षिणी अमरीका, के बन्दर पुरानी दुनिया, अर्थात् एशिया, योरप और अफ़्रीका, के बन्दरो से भिन्न हैं । वे अपनी दुम से वृक्षों की डालियॉ पकड़ लटक जाते हैं और उसी के सहारे डाली-डाली कूदते फिरते हैं । परन्तु इन नई दुनिया के दुम से लटकने-वाले बन्दरो मे पुरानी दुनिया के बन्दरो की तरह गले मे खाना एकत्रित करने के लिए थैलियॉ नही होतीं । इन दो प्रकार के वानरो के अतिरिक्त एक और भी जाति है जिसमे दुम नही पाई जाती और जो आदमी की तरह थोड़ा-बहुत खडे होकर चल-फिर सकती है । इनको हम 'मानवसम' वानर या बनमानुष कहते हैं । इन ऊँची जातिवाले बन्दरों और मनुष्यो की जटिल बनावट मे अपूर्व समानता है । बदन की हर एक हड्डी, पेशी, नाडी, रक्त-प्रणाली इत्यादि दोनों मे बिल्कुल एक ही सी बनी हुई हैं । हमारी-तुम्हारी तरह न तो इन बनमनुष्यो के दुम होती है, न खाना भरने को गले मे थैली और न नितम्बों पर बैठने मे सहायता देने वाली गद्दियॉ । लेकिन जिस प्रकार मानवसम वानरो और नई व पुरानी दुनिया के बन्दरों मे एक दूसरे से भेद है और जैसे अफ्रीका देश और उसके निकट मेडागास्कर टापू मे रहनेवाले अर्द्ध-वानर या 'लीमर' बाक़ी सब असली बन्दरों से अपनी विभिन्नता द्वारा सहज मे पहचाने जा सकते

हैं, उसी प्रकार मनुष्य अपनी शारीरिक बनावट ही के अनुसार मानवसम वानरो और दूसरे बन्दरों के वश से अलग किये जाते है। इन भेदो का वर्णन इस अध्याय के दूसरे भाग मे किया जायगा। इस भाग मे हम केवल यही बताना चाहते हैं कि मनुष्य और उससे मिलते-जुलते जीवो अर्थात् अन्य 'प्रधान भागीयों' मे क्या समता है।

मनुष्य के शरीर के मुख्य स्मारक-चिह्न

इंगलिस्तान के नामी प्राकृतिक सर जे० ए० टौमसन साहब का कहना है कि मनुष्य का शरीर स्मारक-चिह्नो का चलता-फिरता अजायबघर है, अर्थात् उसके बदन मे ऐसे बहुत-से चिह्न हैं, जिनसे उसकी वशावली का पता चलता है। इनमे से कुछ चुने हुए मुख्य प्रमाण निम्नलिखित हैं।

१. नीची श्रेणी के स्तनपोषित जीवो की आँख मे दो पलको के अतिरिक्त एक और अच्छी खासी झिल्ली भीतरी कोने मे होती है, जो पुतली के आगे के भाग को साफ रखती है, मानो यह एक प्रकार की तीसरी पलक है। यह झिल्ली वनमानुषों और बन्दरो की आँख मे भी होती है, किन्तु उतनी बड़ी नहीं जितनी अन्य स्तनपोषित प्राणियो मे। अपनी आँख के भीतरी कोने को ध्यान से दर्पण मे देखो तो तुम्हे भी इस तीसरी पलक का बचा हुआ चिह्न दिखाई देगा। किसी-किसी मनुष्य-जाति मे यह औरों से अधिक बडा रहता है। प्राचीन समय मे यह चिह्न समस्त मनुष्य-समाज मे कदाचित् अब से बड़ा रहा होगा। ज्यों-ज्यों मनुष्य का रहन-सहन जगली और नगे जानवरो के रहन-सहन की रीति से बदलता गया, इस झिल्ली की आवश्यकता हमारे नेत्रों को न रही और वह छोटी होने लगी। अब तो हम लोग नित्य सवेरे आँख-मुँह पानी से धोकर साफ कर लेते हैं और जो चिह्न बचा रह गया है सम्भव है कि आगे चलकर वह बिलकुल लुप्त हो जाय।

२. तुमने हाथी को चलते समय कानो को पखे की तरह झलते हुए अवश्य देखा होगा, किन्तु यह भी जानते हो कि नही कि अधिकतर स्तनपायी हाथी की तरह अपने कान आगे-पीछे हिला सकते हैं। कानों को हिलाने के लिए इन सब जन्तुओं मे विशेष पुट्ठे होते हैं। मनुष्य-जाति में कान हिलाने की शक्ति क़रीब-क़रीब बिलकुल नही रही, परन्तु कान हिलाने वाले पुट्ठ अभी तक बहुत छोटे रूप मे कान
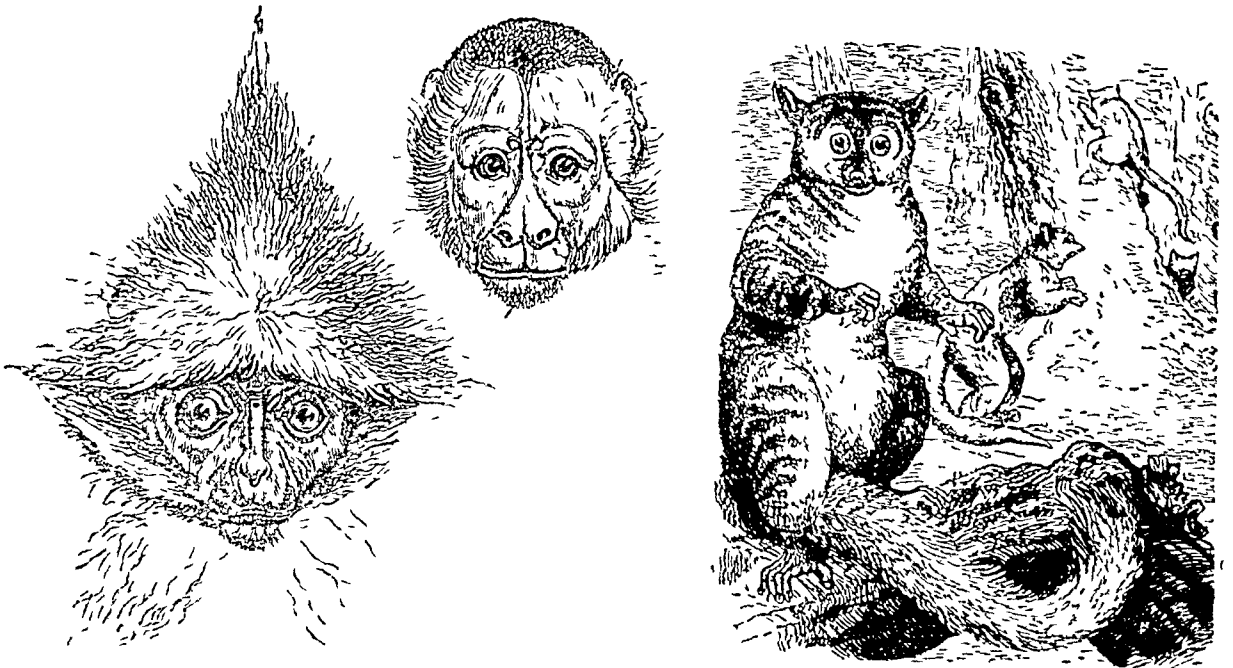
'नई' और पुरानी दुनिया' के वानर

(दाहिनी ओर) नई दुनिया अर्थात् अमेरिका मे पाया जानेवाला बन्दर जो दुम से डालियाँ पकड़कर लटक जाता है और जिसके गले मे खाना इकट्ठा करने की थैलियाँ नहीं होतीं। (नीचे) पुरानी दुनिया का वानर।

लीमर

जो बहुत अंशो मे वानर-वंश से नाता रखता है। इसका अब पृथ्वीतल पर से लोप-सा होता जा रहा है यह अफ्रीका के पास मैडेगास्कर द्वीप मे मिलता है।

के पीछे मौजूद हैं और कभी-कभी ऐसे मनुष्य देखे गये हैं जो अपने पूरे कान या केवल ऊपरी ही भाग को आसानी से हिला लेते हैं। प्रयाग-विश्वविद्यालय में सन् १६३३ में एक विद्यार्थी था जो अपने कान को पूरा और ऊपर नीचे का हिस्सा अलग-अलग हिला सकता था। तुम भी देखो कि अपने कान हिला लेते हो कि नही!

अब एक और स्मारक-चिह्न तुम्हे बताते हैं। सितम्बर १६३७ की 'विज्ञान-पत्रिका' मे ठाकुर शिरोमणिसिंह का इस विषय मे एक लेख प्रकाशित हुआ था। उस लेख का कुछ संशोधित भाग इस प्रकार है—

मनुष्य की दुम क्या हुई?

बालक—क्या मनुष्य के भी कभी दुम थी?

गुरू—हॉ, आजकल तो नही होती है, परन्तु अपने पूर्वजों के तो अवश्य थी।

बालक—मैंने तो आज तक ऐसा नही सुना और न यह मेरी समझ ही मे आता है कि हम "बेदुम के बन्दर हैं।" भला कहॉ हम और कहॉ जगली बन्दर? हमारा और उसका कैसा सम्बन्ध। गुरुजी, मै कभी उनको अपना पुरखा नही मान सकता।

गुरुजी—क्या जो बात तुम्हारी समझ मे न आवे या जिसको कोई पूर्ण रूप से न समझा सके, वह ठीक ही नहीं हो सकती? अभी कल ही हम पढ रहे थे, एक समय विद्वान् लोग भी कहते थे कि सूर्य पृथ्वी के चारो ओर घूमता है और पृथ्वी अपनी जगह अचल है। वह यह मानते थे कि नित्य सवेरे सूर्य पूरब मे निकलकर सध्या-समय पश्चिम मे जा डूबता है और रात भर मे पृथ्वी की दूसरी ओर का चक्कर पूरा कर फिर सवेरे पूर्व से ऊपर की ओर आते दीख पड़ता है। किन्तु अब साधारण लोग भी यह जानते हैं कि सूर्य अपने स्थान पर स्थिर है और पृथ्वी अपनी कीली पर एक रात-दिन मे पूरा चक्कर लगा लेती है और उसके इस घूमने के कारण सूर्य पूर्व से पश्चिम की ओर जाता हुआ दिखाई देता है। जो बात किसी समय ठीक जान पड़ती थी, वास्तव मे बिलकुल ग़लत थी। इसी प्रकार बहुत-सी बातें हैं, जो पहले सही मानी जाती थी पर पीछे चलकर ग़लत सिद्ध हुईं और कितनी ऐसी भी हैं, जो अभी असंभव जान पड़ती हैं, किन्तु आगे चलकर, भविष्य में, सम्भव हो जायँगी।

बालक—जी हॉ, यह तो मै मानता हूँ कि बहुधा बहुत-सी बातों के समझने मे धोखा हो जाता है और अज्ञानता के कारण जो बात समझ मे नही आती ज्ञान पा जाने पर वही बात ठीक जान पड़ने लगती है।

गुरू—तो फिर यह भी मान लो कि पृथ्वी के आरम्भ मे प्राणियों का आकार, रग-रूप ऐसा न था जैसा हम आजकल देखते हैं। ज्यों ज्यों समय बीतता गया, उनमे परिवर्तन होता गया और आजकल जो-जो अपार जीव-जतु सृष्टि मे दीख पड़ते हैं सब उन्हीं प्रारम्भिक सीधे-सादे प्राणियों से ही विकसित हुए हैं।

बालक—तो वह प्रारम्भिक जीव हमारे और बन्दरो के भी दूर के पुरखे हुए?

गुरू—अवश्य! जन्तु-जगत्वाले भाग मे इस विषय पर बहुत कुछ लिखा जायगा। यहॉ तो केवल दुम ही की बात है। पृष्ठ ६२ का चित्र देखो, जिसमे मनुष्य व चारो प्रकार के मानवसम बन्दरों की ठठरियॉ हैं। इन बन-मानुषों मे भी आदमी की तरह बाहर पूँछ नहीं दिखाई देती, परन्तु इस चित्र मे सबकी रीढ की हड्डी मे मणि-माला सी चार छोटी-छोटी गुरिया एक-दूसरे से मिली हुई दुम की तरह लटक रही हैं। इन हड्डियो को पुच्छ-स्थियॉ कहते हैं। परन्तु मनुष्य मे यह दुमवाली हड्डियॉ सब उतनी बड़ी नही होती जितनी मानवसम बन्दरो मे। बनमानुषो मे ऊपरी दो या तीन बडी होती हैं, मनुष्य मे केवल एक ही।

बालक—जब हमारे और इन वानरों के दुम है ही नहीं तो ये हड्डियॉ कहॉ से आई?

गुरू—यही समझने की बात है। ऊपर बताये हुए स्मारक-चिह्न की तरह ये भी एक अवशिष्ट अग है, जो शायद घटते-घटते किसी समय मानव-जाति से बिल्कुल लुप्त हो जाय। अभी तो गर्भावस्था मे जब बच्चा मॉ के पेट मे होता है तो ख़रगोश या बिल्ली के भ्रूण की तरह दोनों टॉगो के बीच मे पैरों से बडी, मुडी हुई, पीछे को निकली दुम मौजूद होती है (देखो पृष्ठ ६४ के चित्र मे मानव भ्रूण) सब बनमानुषों के भ्रूणो मे भी ऐसी ही दुम पाई जाती है किन्तु जैसे इन प्राणियो का भ्रूण बढता जाता है उनकी बाहरी पूँछ घटती जाती है और माता के पेट से बाहर होने के समय तक लुप्त हो जाती है। केवल उसकी जड़ की हड्डियॉ मांस के भीतर बनी रहती हैं। कभी-कभी मनुष्य मे ऐसा भी होता है कि बालक के पैदा होने के बाद भी यह भ्रूणवाली दुम बनी रह जाती है और टॉगों के बीच मे लटकती हुई दिखाई देती है। भारतवर्ष ही मे ऐसे-ऐसे बालक उत्पन्न हुए हैं (देखो पृष्ठ ६४ का चित्र)। कहा जाता है कि महाराज शिवाजी के गुरू रामदास
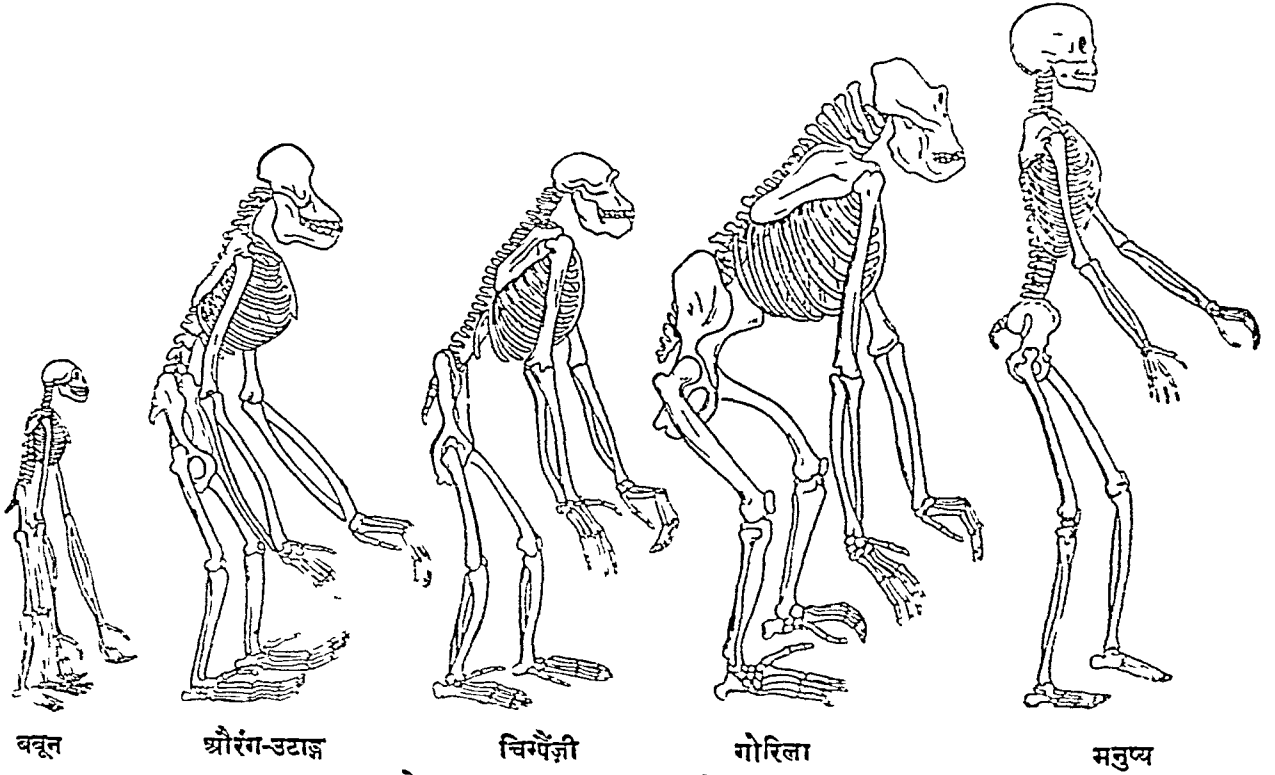
मनुष्य और अन्य मानवसम वानरों के ढाँचे की तुलना

इन सबके अस्थिपंजरो में रीढ़ के निचले सिरे की ओर निकली हुई दुम की हड्डी का बचा हुआ हिस्सा आप स्पष्ट रूप से देख सकते हैं।

के भी छोटी-सी दुम थी। इतना ही नहीं, जैसे कान हिलाने की शक्ति जाती रहने पर भी हिलानेवाले पुट्ठे बाक़ी रह गये, वैसे ही न पूँछ रह गई और न दुम हिलाने की शक्ति, परन्तु जड की हड्डियाँ और हिलाने में सहायता देनेवाले स्नायु अब भी हममे बाक़ी हैं।

बालक—यह सुनकर मानना ही पडता है कि हममे भी 'बेदुम के बन्दर' ही नहीं, बल्कि कभी-कभी दुमदार मनुष्य भी पाये जाते हैं, और यह कि हम और हमारे पुरखों के भी प्राचीन समय मे दुम रही होगी।

गुरू—बस इसी प्रकार किसी दिन यह भी मान लोगे कि बन्दरों और आदमियों के पुरखे एक ही थे।

ऊपर के तीनों प्रमाण शरीर के बाहरी अंगों के हैं। अब हम आपका ध्यान शरीर के भीतरी अंगों की ओर ले जाना चाहते हैं।

आदमी के पेट मे छोटी और बड़ी आँतों के मिलने के स्थान से एक उँगली के समान नलिका पाई जाती है। इसको उपाहित अंग या आँत कहते हैं। घास चरनेवाले प्राणियों में यह अंग लम्बा और पाचन-क्रिया में उपयोगी होता है। किन्तु आदमी में वह व्यर्थ ही नहीं वरन् कभी-कभी हानिकारक होता है। जब किसी कारण से वह सूज जाता है या जब कोई कडा भोजन पदार्थ उसमे जा अटकता है तो पीडा होने लगती है और यदि वह पक जावे तो जान जोखों मे आ जाती है और पेट चीरकर डाक्टर उसे काटकर बाहर फेंक देते हैं। बनमानुषों मे भी यह उपाहित आँत पाई जाती है, परन्तु मनुष्य की आँत से बडी और अन्य स्तनपोषित जीवों की से छोटी होती है।

इनके अतिरिक्त मनुष्य के शरीर मे और भी स्मारक-चिह्न हैं, जिनका वर्णन करना यहाँ उचित नहीं जान पडता। प्रोफ़ेसर वीडर शैम ने अपनी एक पुस्तक में ऐसे पचास अग गिनाये हैं। परन्तु इनमे से कई इतने छोटे हैं कि केवल हर एक के ज्ञान मे नहीं आ सकते।

मनुष्य व अन्य स्तनधारियो की गर्भावस्था

अब हम मनुष्य, बन्दर, व अन्य जीवों में और दूसरी प्रकार की समताएँ बताते हैं, जिनके पढने से तुम यह जान लोगे कि कैसे जन्तु एक दूसरे से आपस मे रिश्ता रखते हैं और कैसे यह जान पड़ता है कि यह रिश्ता निकट का है या दूर का। अगले पृष्ठ के चित्र को ध्यान से देखिये। इसमें कुछ जानवरों के भ्रूण बनाये गये हैं। जिनको देखने से पता

लगता है कि मानव-गर्भ की वृद्धि अन्य जतुओ के गर्भ की वृद्धि से कितनी मिलती-जुलती होती है। सब प्राइमेटो के भ्रूण अपनी प्रारम्भिक अवस्था में एक से ही नही जान पड़ते बल्कि अपने से बहुत नीचे जीव, जैसे मछली या मेढक के भ्रूण से भी समता रखते हैं। आरम्भिक अवस्था मे सब प्राइमेटों के गर्भ का हृदय दो कोठरियों ही का होता है जैसा कि मछलियों का। लेकिन थोड़ा और बढ़ने पर उसमे मेढक के हृदय की तरह तीसरी कोठरी भी बन जाती है। कुछ और वृद्धि होने पर चौथी कोठरी भी बन जाती है और भ्रूण का हृदय ऊँची श्रेणीवाले जन्तुओं के हृदय का-सा हो जाता है। इसके अतिरिक्त गर्भ-शास्त्रियो ने (यानी उन लोगों ने जिन्होंने बहुत-से जीवो के भ्रूणो का और उनके गर्भ मे बढने का अध्ययन किया है) सिद्ध कर दिया है कि सब (मनुष्य सहित) प्राणियों के गर्भ का आरम्भ एक ही कोष्ठ से होता है, इसी कारण उन सबमे कुछ अवस्था तक अधिक समानता रहती है। ज्यों-ज्यो गर्भ बढता जाता है, एक समूह का भ्रूण दूसरे समूह के भ्रूण से भिन्न होने लगता है और गर्भ की अन्तिम अवस्था मे साफ मालूम होने लगता है कि वह किस श्रेणी के जीव का भ्रूण है। इससे यह भी समझ लोगे कि निकट के समूहो के भ्रूण मे अधिक समय तक बहुत समता रहती है, और जितना एक जीव दूसरे जीव से दूर के समूह का होता है, उतने ही शीघ्र उनके भ्रूण एक दूसरे से भिन्न जान पड़ने लगते हैं। इसी प्रकार मनुष्य
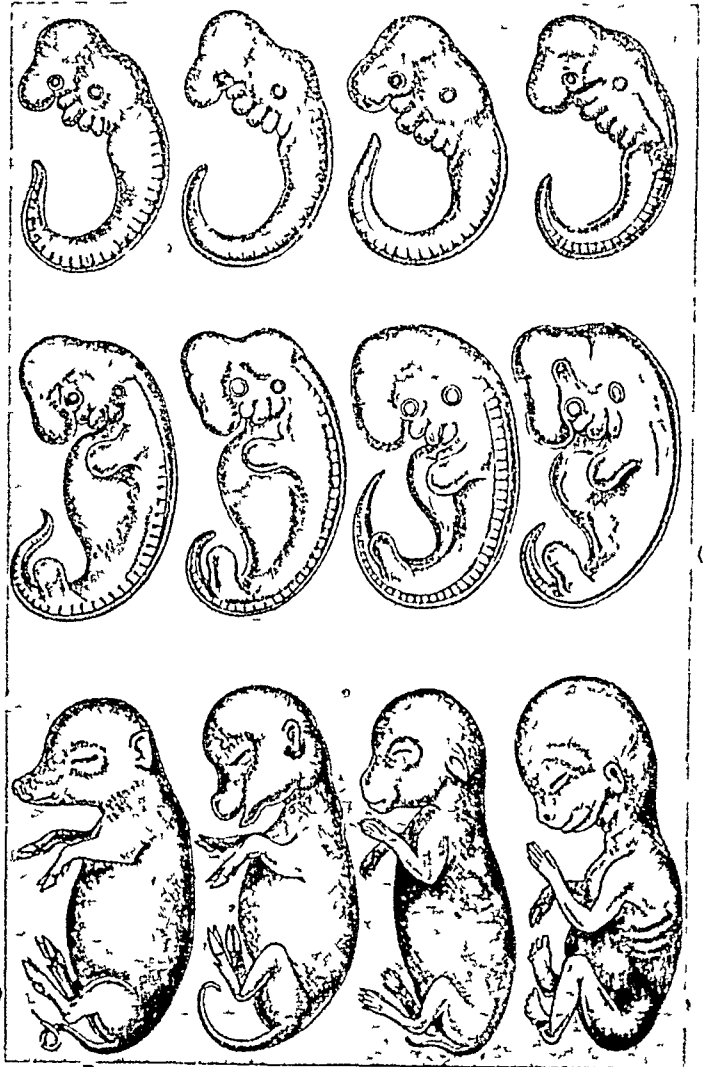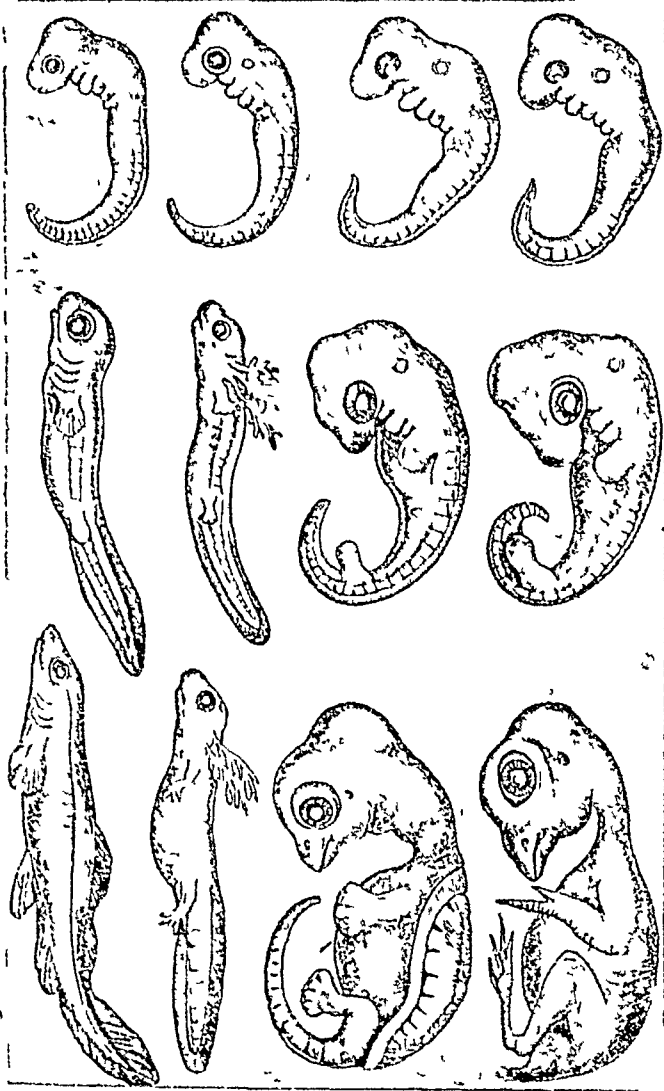
मनुष्य और अन्य जानवरों के भ्रूणों का तुलनात्मक चित्र

देखिए, आरंभिक अवस्था में इन सभी भिन्न-भिन्न जानवरो के भ्रूण एक-दूसरे से कितने मिलते-जुलते हैं !

का भ्रूण बिल्कुल शुरू में अन्य जीवों, और फिर अन्य स्तनधारियों के भ्रूण के समान होता है। उसके बाद वह प्राइमेट का भ्रूण मालूम होने लगता है, और थोड़ा और बढने पर यह मालूम होने लगता है कि वह आदमी ही का भ्रूण है। छः मास की आयु तक मनुष्य के भ्रूण पर बन्दर की तरह घने बाल होते हैं और जैसा ऊपर लिखा है, छोटी-सी दुम भी होती है।

रक्त की बनावट व लक्षण मे समता व भिन्नता

इससे भी अधिक मनोरंजक पहचान परमात्मा ने जीवों के रक्त की बनावट और उसके लक्षण या गुणों मे रक्खी है। इनका हाल सक्षेप मे लिखा जाता है, क्योंकि विषय काफी लम्बा हो चुका है।

रक्त मे जो लाल कण हैं, उनका व्यास नापने से पता चला है कि सबसे नीचे श्रेणी के प्रधानभागीय लीमर मे रक्तकण सबसे छोटे हैं, बन्दर मे उससे बडे, बन्दर से बडे बनमानुप मे और मनुष्य मे क्रमानुसार सबसे बडे हैं। इससे अमेरिका देश के हारवर्ड विश्वविद्यालय के प्रोफेसर हूटन साहब ने नतीजा निकाला है कि लीमर इस बात का सकेत करता है कि मनुष्य से उसका दूर का सम्बन्ध है। बन्दर हमसे नातेदारी का दावा करता है और बनमानुष पेड़ों की चोटीपर बैठा ढिंढोरा पीटता है कि वह हमारा निकट सम्बन्धी है।

दुमदार बालक
जो भारतवर्ष ही मे उत्पन्न हुआ था। [फोटो इस लेख के लेखक की कृपा से प्राप्त।]

थोडे ही वर्ष हुए इन्द्रियों के कार्य-क्रम पर खोज करनेवालों ने पता लगाया कि अगर किसी जन्तु का खून अपने से क़रीब के रिश्तेवाले प्राणी के रक्त में मिलाया जावे तो दोनों का ख़ून मिलकर एक समान हो जाता है। यदि वह ऐसे जीव के रक्त मे डाला जाय कि जिससे उसकी घनिष्टता नहीं है तो वह उसके ख़ून से अच्छी तरह न मिलेगा। मनुष्य और चिम्पैंजी में अधिक घनिष्टता होने के कारण दोनो का ख़ून आपस मे बिल्कुल घुल-मिल जाता है। परन्तु आदमी का रक्त बन्दर या घोडे के रक्त मे भरा जाय तो वह उनके ख़ून से मिलता ही नहीं वरन् उनके लाल रक्त-कणों को नष्ट कर देता है।

एक इससे भी अद्भुत् उदाहरण सुनिये। एक जीव का रक्त किसी अन्य समूह के जन्तु के रक्त मे सुई द्वारा भरा जाय और जो रक्तरस (सीरम) उसके रक्त से निकले, उसे पहले समूह के और किसी जानवर के ख़ून या ख़ून के घोल मे मिलाया जाय तो तुरन्त ही उसमे तलछट बैठ जाता है। अगर वही रक्तरस और दूसरे समूह के प्राणियों के रक्त या रक्त-घोल मे मिलाया जाय तो क्रमानुसार जितने ही दूर के समूह के जीव का रक्त होगा, उतना ही कम और देर मे तलछट बनेगा। किन्तु अधिक दूर के सबधी जन्तुओ के ख़ून मे डालने से नाम-मात्र या बिल्कुल तलछट न बनेगा। इससे यह स्पष्ट है कि इस तलछट द्वारा जीवों के पारस्परिक सबध की घनिष्टता और विलगता का ज्ञान हो सकता है। आदमी का रक्त खरगोश के रक्त में भरकर जो रक्तरस बने, उसमे से कुछ किसी दूसरे आदमी के ख़ून या खून के हलके घोल मे ही मिलाया जाय तो शीघ्र तलछट फेक देगा। किन्तु वही रक्तरस बनमानुष, बन्दर, लीमर और घोडे के खून मे छोड़ा जाय तो देखा जावेगा कि बनमानुष के ख़ून मे तलछट बनेगा। किन्तु आदमी के खून के मुक़ाबले मे कम और देर से। बन्दर के रक्त मे नाम-मात्र या अधिक समय रक्खा रहने पर उसमे हलका धुँधलापन आ जायगा, लीमर के मे उतना भी नहीं। और घोडे या अन्य स्तनपोषित जीवो मे तो बिल्कुल ही प्रभाव न दीखेगा। हममे और बनमानुषों मे घनिष्ट सम्बन्ध होने का तुम्हे इससे भी पक्का प्रमाण और क्या चाहिए—दोनों का रक्त तक एक ही सा है।

ऊपर के दृष्टांतों से यह पूर्ण रूप से स्पष्ट है कि मनुष्य निस्सन्देह अपने शरीर के अगों मे अन्य प्राइमेटों से सम्बन्धी होने के काफी चिह्न अभी तक रखता है। यदि हमे न्याय करना है तो अवश्य मानना पडेगा कि मनुष्य भी जानवरों ही मे से एक है। यह जरूर है कि जानवर होते हुए भी उसमे ऐसी विशेषतायें हैं कि जिनके कारण वह ऊँचे से ऊँचे बनमानुष और अन्य जन्तुओं से भी उच्च और भिन्न है। अत में यही कहेंगे कि मनुष्य मनुष्य ही है।

संसार का सबसे बड़ा आश्चर्य—मानव मस्तिष्क

मनुष्य के शरीर का अध्ययन करने के बाद जिस वस्तु पर हमारी निगाह जाती है, वह है उसका अद्भुत मस्तिष्क, जिसकी बदौलत वह आज दिन अन्य जीवधारियों को पीछे ढकेलकर पृथ्वी का एकमात्र स्वामी बन बैठा है। वास्तव में मस्तिष्क की विशेषता ही के कारण मनुष्य अन्य जानवरो से भिन्न है। रेल, हवाई जहाज़, बिजली, पुलें, इमारतें, नगर, गाँव, खेती, कल-कारख़ाने, व्यापार, उद्योग, साहित्य, कला, सब मनुष्य के मस्तिष्क की उपज हैं, उसी की करामात हैं। सच पूछिए तो मनुष्य के मस्तिष्क से अधिक आश्चर्यजनक वस्तु दुनिया में और कोई नही है। यह मस्तिष्क क्या वस्तु है?

हर जीवधारी अपनी परिस्थितियों के अनुसार आचरण करता है, यहाँ तक कि सूक्ष्म कीटाणु भी विपरीत परिस्थितियों से भागते हैं और अनुकूल परिस्थितियों की ओर बढते चलते हैं। जीवन की हर दिशा मे हम देखते हैं कि आसपास की इन्ही स्थितियों के अनुसार आचरण करना जीवन का चिह्न है, जिसकी ही अभिव्यक्ति हमारी अनुभूति, विचारशक्ति और कर्तृत्व-शक्ति के रूप मे होती रहती है। किन्तु यह सारी अनुभूति, विचारशक्ति और कर्तृत्व-शक्ति आती कहाँ से है, इनका केन्द्र कहाँ है?

आपने मरे हुए प्राणियों को देखा होगा। उनके हाथ-पैर, अग-प्रत्यग सब कुछ जीवित प्राणियों की तरह ही होते हैं। पर उनमे अनुभूति नही होती। विचार-शक्ति नही होती। गति अथवा कर्तृत्व-शक्ति नही होती। जीवित प्राणियों पर यदि कोई सामने से डडा ताने, तो वे अवश्य उसका प्रतिकार करेंगे। या तो वे भागेंगे या प्रत्याक्रमण करेंगे, पर मृत प्राणी ऐसा नही कर सकते। जीवित प्राणी के शरीर मे अगर कोई कहीं सुई चुभावे तो या तो वह वहाँ से टल जायगा या प्रतिकार करेगा, पर मृत प्राणी ऐसा नहीं कर पाता, इसलिए कि उसकी प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष, इच्छित और अनिच्छित, दोनो तरह की अनुभूति, विचार-शक्ति और कर्तृत्वशक्ति मर चुकी हुई होती है। इससे आगे बढकर यदि आप किसी सोए हुए प्राणी को देखे तो डडा तानने पर तो वह प्रतिकार नही करेगा, पर सुई चुभाने पर अवश्य प्रतिकार करेगा, क्योंकि उसकी प्रत्यक्ष और इच्छित अनुभूति, विचार-शक्ति तथा कर्तृत्व-शक्ति मात्र ही इस समय उसमे मौजूद नही है। इसके विपरीत एक चलते-फिरते और जागते प्राणी पर यदि डडा ताना जाय तब भी वह प्रतिवाद और प्रतिकार करेगा और चुपके से सुई चुभाई जाय तब भी प्रतिकार करेगा, क्योंकि उसकी इच्छित-अनिच्छित, प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष हर तरह की अनुभूति, विचार-शक्ति और कर्तृत्वशक्ति जागरूक रहती है, जीवित रहती है। पर ऐसा क्यों? इस अनुभूति, विचारशक्ति तथा कर्तृत्वशक्ति का केन्द्र कहाँ है, उसका स्रोत कहाँ है?

हम आँख से देखते हैं कि कोई हमारे ऊपर डडा तान रहा है, और आँखे इस ज्ञान की अनुभूति एक ऐसी इन्द्रिय को कराती हैं, जो स्थिति को सोचती है और तत्काल ही गतिशील होने या कार्य करने (Action) के लिए प्रेरणा या आज्ञा देती है, जिसके फल-स्वरूप या तो हम भागते हैं या हम भी प्रतिकार के लिए डडा-पत्थर या अन्य कोई चीज़ उठा लेते हैं। इसी तरह अगर कोई हमारे शरीर मे सुई चुभावे तो हमारी त्वचा को एक तरह की अनुभूति होगी और वह उस अनुभूति को उस इन्द्रिय तक पहुँचा-वेगी, जो उस पर अविलम्ब सोचेगी और हमें या तो वहाँ से टल जाने की या बदले में सुई चुभानेवाले को तमाचा जमा देने अथवा काट खाने को प्रेरित करेगी। इस तरह हम देखते हैं कि हमारी हर अनुभूति, हर चिन्तन तथा हर

क्रियाशीलता अथवा गतिशीलता का केन्द्र कोई ऐसी वस्तु है, जिससे हम अनुभव करते हैं, सोचते हैं। जो हमारी सारी क्रियाओं की प्रेरक है, और हम से सारे कार्य कराती है। पर आखिर वह क्या वस्तु है? साफ ही है कि वह वस्तु प्राणी के मन या मस्तिष्क के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

कहा जा सकता है कि अनुभव कर सकने, या गतिशील अथवा क्रियाशील हो सकने की इतनी शक्ति तो जानवरों में भी होती है। गदहे पर भी डंडा ताना जाय तो वह भगेगा, दुलत्तियाँ झाड़ेगा और कुत्ते के शरीर में भी यदि सुई चुभा दी जाय तो वह भागेगा का काटने दौड़ेगा, फिर जानवर के मस्तिष्क और आदमी के मस्तिष्क में अंतर ही क्या है? आदमी और जानवर के मस्तिष्क में अन्तर यह है कि आदमी का मस्तिष्क प्रगतिशील है और जानवरो का अगतिशील। इसका प्रमाण यह है कि आदमी अपनी प्रारंभिक अवस्था से उठते-उठते आज सभ्यता का शिखर लाँघने जा रहा है। वृक्षों में घोंसले बनाकर रहनेवाला यह वनचर आज महलों और बड़े-बड़े नगरो का अधिवासी तथा स्वामी बन गया है, पर जानवर जिस अवस्था में आदिम युग में थे उसी अवस्था में सदियों और लाखो वर्षों से रहते आते हैं, और आज भी रह रहे हैं। मानव-मस्तिष्क की प्रगतिशीलता का एक यह भी प्रमाण है कि वह शारीरिक दृष्टि से अन्य अनेकों जीवधारियो से दुर्बल और निकृष्ट होते हुए भी आज सृष्टि के सभी प्राणियो में अधिक शक्तिशाली बना हुआ है। यदि ऐसा न होता तो आदमी जाने कब खत्म हो चुका होता, और एक एक को चुनकर शेर, भेड़िये आदि हिंस्र पशु खा गये होते। पर इसके विपरीत आदमी पेड़ों से कन्दराओं और कन्दराओं से मैदानो तथा मैदानों से विशाल वैभवशाली नगरो का निवासी और अध्यक्ष बना, उसने सभ्यताये रची, और वह एक नई सृष्टि का नियन्ता बन गया।

आदमी और जानवर के मस्तिष्क में यह अंतर होता है कि आदमी के मस्तिष्क में प्रत्यक्ष और परोक्ष हर तरह की अनुभूतियाँ हो सकती हैं, हर तरह का चिन्तन वह कर सकता है, पर जानवरों को केवल प्रत्यक्ष अनुभूति ही हो सकती है, प्रत्यक्ष ज्ञान ही हो सकता है। उदाहरण के लिए अगर कोई आँख के सामने ही डंडा ताने तो उसका ज्ञान या उसकी अनुभूति आदमी को भी हो सकती है और जानवर को भी, पर आदमी का मस्तिष्क इसके अतिरिक्त भी इतना सोच या अनुभव कर सकता है कि अमुक व्यक्ति से उसके पिता की लड़ाई थी और वह वैर उसके दिल में इतना गहरा होकर बैठा है कि वह उसे किसी समय भी मार सकता है या उसका अहित कर सकता है। आदमी यह भी बैठे-बैठे ही सोच ले सकता है कि आज चीन के नगरों पर जिस तरह जापान द्वारा बम बरसाये जा रहे हैं उसी तरह अगर हमारे नगरो पर भी कोई करे तो जीवन कितना अरक्षित हो जायगा, अथवा जब नादिरशाह ने दिल्ली में कत्लेआम कराया था, तो आदमी किस तरह असहाय होकर मरे-कटे होंगे, आदि।

इस तरह हम देखते हैं कि आदमी का मन या मस्तिष्क वह चीज है, जिसने आज उसे अन्य जीवधारियो से ऊँचा उठा रक्खा है। मस्तिष्क ही की बदौलत आदमी अपनी प्रारंभिक अवस्था से ऊँचे उठकर आज सभ्य बन पाया है। वह हवा में उड़ता है, समुद्र की छाती पर रादता हुआ चलता है, सात समुद्र पार बैठे हुए अपने मित्रों से बातचीत करता है, यहाँ तक कि उन्हे उतनी ही दूरी पर बैठे-बैठे देखने भी लगा है। उसने प्रकृति पर विजय पा ली है, वह बीमारी और मृत्यु तक पर विजय पाने को तुला बैठा है। और यह सब कुछ मस्तिष्क ही के द्वारा है। सक्षेप में मस्तिष्क वह मशीन है जिसके द्वारा आदमी सोचता है, अनुभव करता है, नतीजा निकालता है, तौलता है, आदि।

यो तो यह आश्चर्यजनक मन या मस्तिष्क हमेशा से आदमी के पास रहा है, पर उसके भी अध्ययन की जरूरत हो सकती है, या उसके अध्ययन का कोई महत्व भी है, यह हम विज्ञान-युग के उदय के पहले नहीं जानते थे, यद्यपि दर्शन-शास्त्र के अध्ययन के सिलसिले में भारतीय ऋषियों ने मन का भी अध्ययन एक विशेष रूप और एक खास हद तक किया है। पर मस्तिष्क या मन के अध्ययन को एक अलग विज्ञान के रूप में खड़ा करने का श्रेय विज्ञान-युग और आज के सामाजिक विकास को ही है। आधुनिक सामाजिक विकास ने हमे इसके प्रति विश्वस्त कर दिया है कि इस विज्ञान के—मन या मस्तिष्क के—वैज्ञानिक अध्ययन से मानव-सभ्यता में क्रान्तिकारी और हितकारी परिवर्त्तन किये जा सकते हैं। असल में इस विज्ञान के समुचित अध्ययन के बाद ही शिक्षण का कोई कार्य ठीक दिशा में चल सकता है, क्योंकि शिक्षण का अर्थ है मस्तिष्क बनाना और गढना, जो सभ्यता अथवा सस्कृति का मूल है।

अब देखना है कि मनुष्य के मन या मस्तिष्क का अध्ययन किस तरह किया जा सकता है? यद्यपि मस्तिष्क मे स्थित ज्ञान-ततुओ तथा उन्हे चेतना प्रदान करनेवाली नसो की विद्युत्-शक्ति का अध्ययन शरीर-शास्त्र का विषय है तथापि कोई भी मनोविज्ञान-शास्त्री उस विशेष अध्ययन को मनोविज्ञान के अध्ययन के दायरे से बाहर करने का साहस नही कर सकता। लेकिन इसके बावजूद भी मस्तिष्क कोई इस तरह की ठोस चीज़ नही है जिसे शरीर-शास्त्री की तरह हम चीर-फाड़कर अध्ययन करे। दिमाग़ कही सिर मे एक जगह बन्द है, ऐसा समझने की भूल भी साधारणतया लोग करते हैं, पर सिर को चीर-फाड कर देखने पर भी वह कही ठोस पदार्थ की तरह नही मिलेगा। मस्तिष्क-विज्ञान का विद्वानों (जिनमे भारतीय पडित भी शामिल हैं) का मत है कि प्राणीमात्र मे जीव होता है, जिसे आत्मा कहकर पुकारा जाता है। प्राणी मे जो एक चेतना (consciousness) है, वह मात्र इस आत्मा के कारण ही है और इसी के कारण प्राणी मे क्रोध, क्षोभ आदि भाव पैदा होते रहते हैं। इसके विपरीत नवीन शास्त्रकारों का मत है कि इस विज्ञान के अध्ययन मे आत्मा और जीव के झमेले को खड़ा करने की कोई ज़रूरत नही है। आत्मवाद और अनात्मवाद मनोविज्ञान शास्त्र के नही, बल्कि दर्शनशास्त्र के विषय हैं। मनोविज्ञान शास्त्र का अध्ययन इन झगड़ो मे पडे बिना भी हो सकता है। कदाचित् यही कारण है कि हमारे यहाँ मनोविज्ञान का दर्शनशास्त्र मे ही समा-

तब और अब

इतिहास के आरंभ-काल में चारो ओर से जंगली हाथियों और खूँख्वार जानवरों द्वारा त्रस्त मानव आज उन्ही हाथियो से अपनी बेगार कराता है। किसके बल पर? केवल अपने मस्तिष्क की देन की बदौलत।

अध्ययन करने के लिए उसकी गतियो तथा उसकी क्रियाओं का अध्ययन करना होता है। मनुष्य किन परि-स्थितियों मे क्या और कैसे सोचता है, समझता है, किस तरह तर्क करता है, कब उसे क्रोध आता है, कब उसे क्षोभ उत्पन्न होता है, किन उपादानो के उपस्थित होने पर उसके मन मे स्मृति जागती है, कल्पनाएँ उठती हे, पुलक होता है, यही बाते और यही मानसिक क्रियाएँ मनोविज्ञान अथवा मन या मस्तिष्क के विज्ञान के अध्ययन का आधार और विषय हैं।

इस विषय का अध्ययन शुरू करने के पहले यह जान लेना ज़रूरी है कि इस विज्ञान के पुराने और नवीन आचार्यों के विचारों मे कितना मौलिक भेद है। प्राचीन वेश करते हैं, उसे अलग विज्ञान करके यहाँ नहीं माना गया है। आधुनिक मनोविज्ञान-शास्त्रियो का मत है कि प्राणियों के शरीर मे स्नायु-ततुओं का एक जाल है, जिसके सहारे और जिसकी गतिशीलता के कारण चेतना उत्पन्न होती है। आँख, कान, नाक, जिह्वा, त्वचा आदि के द्वारा जो ज्ञान हमे प्राप्त होता है, वह इन्हीं स्नायु-ततुओ के सहारे ही होता है। इसके अतिरिक्त भय, साहस, तर्क, क्रोध, क्षोभ आदि आंतरिक भावों का उदय भी इन्हीं स्नायु-ततुओं और मस्तिष्क की सम्मिलित क्रियाओं और प्रवृत्तियों के द्वारा होता है। यह विचार अधिक वैज्ञानिक और अधिक व्यावहारिक जॅचता है, अतएव हम इसी विचार के अनुसार इस शास्त्र का अध्ययन करेगे।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, इस विज्ञान के अध्ययन का आधार है मन की विभिन्न क्रियाएँ। परन्तु प्रश्न यह है कि हमे उन क्रियाओं का बोध किस तरह होता है?

उनका बोध हमे दो प्रकार से होता है। एक तो इस तरह कि हम स्वयं अनुभव करते हैं और सोचते हैं, दूसरे इस तरह कि हम दूसरों की कई प्रकार की क्रियाओं से यह परिणाम निकालते हैं कि वह अमुक प्रकार की बात अनुभव कर रहा है, अमुक प्रकार की मनोवृत्ति मे है। किसी व्यक्ति के मस्तिष्क का सीधा ज्ञान हमे नहीं होता, पर हम उस व्यक्ति के रहन-सहन से, उसकी मुख-मुद्रा से, उसकी मुसकुराहट से, उसकी त्योरियों पर बल आने से, यह परिणाम निकालते हैं कि वह क्या अनुभव कर रहा है अथवा सोच रहा है।

मान लीजिये कि आप जाड़ों की रात मे कम्बल से मुँह ढके अँधेरे कमरे में सोये हुए हैं और तभी कमरे में कुछ आहट-सी मालूम होती है, और उसके द्वारा आपके कानों मे एक प्रकार की अनुभूति होती है। आपको एक ऐसा ज्ञान होता है जो अनिच्छित होते हुए भी प्रत्यक्ष है, वास्तविक है। फिर आपके मन मे एक जिज्ञासा पैदा होती है कि आख़िर यह किस चीज की आहट है? फिर आप सोचते हैं कि शायद घर का पालतू कुत्ता आ रहा है। तभी आपके मन मे प्रतिवाद उठता है कि कुत्ते के पैर की आहट इतनी भारी नही हो सकती है और आप तर्क करने लगते हैं।

फिर सोचते हैं, शायद नौकर किसी काम से आया हो, अथवा चोर तो नहीं है? चोर का ख़याल आते ही आपके मन मे एक भय का सचार होता है, और साथ ही ख़याल दौड़ जाता है उस घटना की ओर कि जब गत मास आपके अमुक पड़ोसी को चोरों ने इसी तरह सोये मे मारा था। फिर आपके मन मे एक भाव उठता है कि उठकर देखा जाय कि क्या बात है, किस चीज की आहट है? इस तरह आपके शरीर के समूचे स्नायु-जाल और स्नायु-ततुओं में एक चेतना-प्रवाह, एक जागरूकता की लहर-सी फैल जाती है और आप उस आहट के सभव कारण का निश्चय करने के विचार से अपनी चित्तवृत्तियों को एकाग्र करने की कोशिश करते हैं, पर आपकी कल्पना इधर से उधर फिरती रह जाती है और आप किसी निर्णय पर नहीं पहुँच पाते हैं। तब आपकी इच्छा-शक्ति आपको प्रेरणा देती है कि उठकर देखा ही जाय। अत में आप साहस के साथ झट से उठते हैं और आपके ज्ञान-ततु आपसे बिना किसी पूर्व-निश्चय के ही एक स्वाभाविक निर्णय कराते हैं और आपका हाथ फौरन् ही स्विच की तरफ बढ़ जाता है। आप स्विच दबा देते हैं, जिससे तत्काल ही कमरे मे प्रकाश फैल जाता है।

रोशनी होने पर आप पाते है कि यह तो वही बुड्ढा है, जिसके लड़के को आपने गत वर्ष जज की हैसियत से फाँसी की सज़ा दी थी! इस तरह आपको एक ऐसा ज्ञान आँखों के द्वारा होता है, जो प्रत्यक्ष होने के साथ-ही-साथ इच्छित भी है। तब आपकी स्मृति मे उस मुक़दमे की दौरान की बहुतेरी बाते आने लगती हैं। इतने मे आप उसके हाथ मे एक चमकता हुआ छुरा भी देखते हैं, देखते ही आप मे एक भयाकुल वृत्ति पैदा होती है और आप काँप उठते हैं। पर तत्काल ही आप एक साहसिक निर्णय करके उस पर टूट पड़ते हैं, और वह वार करे-न-करे कि आप छुरा उसके हाथ से छीन लेते हैं।

इसके बाद उस विफल-मनोरथ बूढे आदमी मे एक स्वाभाविक प्रतिक्रिया पैदा होती है और उसके मन की बदले की भावना पराजय और निराशा की भावना में बदल जाती है। वह अपने फाँसी पाये हुए पुत्र से सम्बन्ध रखनेवाले स्मृति प्रेरक शब्द चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगता है। आपके मन में भी प्रतिक्रिया होती है और एक-एक बात को याद करके आप अपने फाँसी की सज़ा देनेवाले काम पर मन ही मन पश्चात्ताप करने लगते हैं।

अब इन सारी बातो पर ग़ौर कीजिए कि ये सब क्या हैं? इन सारी बातों से हमे मन की विभिन्न दशाओं और विभिन्न क्रियाओ का बोध होता है। यही क्रियाएँ हमारे अध्ययन की भूमि हैं, विषय हैं और उपकरण हैं। इन्हीं को हम आगे चलकर लम्बे-लम्बे पारिभाषिक शब्दों की सीमा मे बाँधकर देखेगे। जिस तरह व्याकरण-शास्त्र का विषय है शब्द, अक-शास्त्र का अक, तर्क-शास्त्र का वाक्य, उसी तरह हमारे इस विज्ञान का विषय है मन। इस विज्ञान के अध्ययन से हम जान पाते हैं कि अमुक विचार, अमुक भावना हमारे मन मे क्यो पैदा हुई, उसके पहले कौन विचार या कौन भावनाये हमारे मन मे चक्कर काट रही थीं, फिर किस क्रम से अन्य विचार और भावनाये आयीं। उन सबमे क्या सम्बन्ध है? अथवा कोई सम्बन्ध है ही नहीं? इत्यादि-इत्यादि।

इन्ही बातों का वैज्ञानिक अध्ययन मनोविज्ञान कहलाता है। अगले प्रकरणों मे इसी स्तभ मे हम क्रमशः विस्तार-पूर्वक इस विषय की आरभिक बातों को लेकर इसका अध्ययन आरभ करेंगे।

सामाजिक या आर्थिक जीवन का श्रीगणेश

मनुष्य को प्रकृति ने एकाकी नहीं बनाया—वह स्वभाव ही से एक सामाजिक जीव है। इस स्तंभ में उसके जीवन के इसी पहलू—उसके सामाजिक रूप—की विवेचना क्रमशः की जायगी।

व्यक्ति के रूप मे मनुष्य के दो पहलू—शरीर और मस्तिष्क—का अध्ययन हम पिछले दो स्तभों में कर चुके। अब इस विभाग मे हमें उसके सामुहिक स्वरूप का दिग्दर्शन करना है, क्योंकि मूल रूप मे मनुष्य एक सामाजिक जीव है। आज दिन हमारी जो सभ्यता है, वह किसी एक व्यक्ति के परिश्रम का फल नहीं है, वरन् सारी मानव जाति के सामुहिक प्रयत्न का परिणाम है। हमारा आज का जीवन हमारी इस सामुहिक एकता का सबसे बढ़िया उदाहरण है। यदि मनुष्य का सामाजिक रूप बिल्कुल मिट जाय तो हमारी यह सभ्यता की इमारत एकबारगी ही ताश के महल की तरह ढह पडेगी। आज दिन हम सब सामुहिक रूप से एक-दूसरे की आवश्यकता-पूर्त्ति में लगे हैं—हमारे कल-कारखाने, बाजार, रेल और जहाज़, सडके, नगर, म्युनिसिपेलिटियाँ, शासन-सत्ताएँ आदि हमारे इस जटिल आर्थिक जीवन के ही भिन्न-भिन्न रूप हैं। वह कौन-सी अद्भुत् व्यवस्था है जिसके अधीन रोज़ सुबह दूधवाला हमारे यहाँ दूध, अखबारवाला अखबार, डाकिया चिट्ठी-पत्री, और फेरी वाला खाने-पीने का सामान दे जाता है? किस व्यवस्था के अनुसार माता-पिता अपने बालकों को पालते-पोसते, परिवार का स्वामी अपने परिवार के व्यक्तियों के लिए कमाकर लाता, मज़दूर हज़ारों की संख्या मे जुटकर तरह-तरह की चीज़ें कल-कारखानों और खेतों में उत्पादन करते, और वे चीज़ें संसार के एक कोने से दूसरे कोने तक मानो जादू की लकड़ी घुमाते ही पहुँच जाती हैं? समाज क्या है, किस तरह मनुष्य के सामाजिक जीवन का विकास हुआ? परिवार क्या वस्तु है? स्त्री और पुरुष का क्या संबध है? रीति-रिवाज़ और सामाजिक रूढ़ियों का कैसे जन्म हुआ? किस प्रकार राज्यों और शासन-तंत्रो का विकास हुआ? आज दिन जिनकी चर्चा हमारे दैनिक जीवन का एक अंग-सी बन गई है, वे साम्राज्यवाद और पूँजीवाद क्या हैं? मनुष्य-जाति सामुहिक रूप से किस लक्ष्य की ओर बढ रही है, आदि, आदि, महत्त्वपूर्ण बातों की जिज्ञासा होना हमारे लिए स्वाभाविक है। इस स्तंभ मे हम इन्हीं बातो पर विचार करेंगे।

मनुष्य ने सामुहिक रूप मे शिकार खेलना या पशु पालना आरंभ करके अपनी भावी सामाजिक या आर्थिक जीवन की नींव डाली, इसके बहुत पहले ही से उसके आर्थिक विकास की प्रारभिक दशा से मिलती जुलती अवस्थाएँ कई छोटे-छोटे अन्य जीवधारियों के जीवन में मौजूद थीं। चींटी उनमें से एक है। यह पाया गया है कि चींटियों में बहुत पहले से मिलकर आखेट करने तथा सामाजिक व्यवस्था बाँधकर रहने की दशा का विकास हो गया था। चींटियो की जातियाँ अपने पूर्वजो के बनाये हुए निवासस्थान को पैतृक सम्पत्ति की तरह ग्रहण करती थीं और निर्माण किये हुए निवासस्थान, चरागाह तथा आखेट स्थान के लिए परस्पर युद्ध भी करती थीं। बहुधा यह भी देखा गया है कि चींटियों के समूह युद्ध की आकांक्षा करनेवाली सेना लेकर बन्दियों को पकड़ने के लिए भी जाते थे! इसी प्रकार भेड़ियों के झुण्ड भी आपस में मिलकर अच्छा शिकार कर लेते थे और अपने से अधिक बली तथा बड़े जानवरों को भी परास्त कर देते थे। एक स्थान से दूसरे स्थान पर भ्रमण करनेवाले पक्षियों के जीवन

में भी उनकी नियमित ऋतु-सम्बन्धी सुदूर यात्राओं मे पारस्परिक सहयोग, नेतृत्व तथा सगठन का अच्छा परिचय मिलता है। इसी प्रकार मकडियों की कुछ जातियाँ मिलकर कताई व बुनाई का कार्य अच्छा करतो हैं। इन जन्तुओं की प्राचीन काल से विकसित कलाएँ अब भी कभी-कभी किसी-किसी बात मे मनुष्यों के नियमित आर्थिक प्रयत्नों से उच्च तथा श्रेष्ठ सिद्ध होती हैं। चींटियों और अन्य छोटे जन्तुओं के आर्थिक जीवन मे सामुहिक प्रकार से कार्य करने की सुन्दर प्रणाली, तथा समाज-सगठन इतने उच्च श्रेणी के हैं कि उन्हे मनुष्य-समाज मे प्रचलित करने के लिए बहुत-से समाज सुधारकों को हताश होना पडा है।

यह बताना कठिन है कि मनुष्य के सामाजिक जीवन का प्रारभ आज से कितने वर्ष पूर्व हुआ होगा। किन्तु इसमें सदेह नहीं कि चूँकि मनुष्य स्वभाव ही से एक सामाजिक जीव है, अतएव उसके भावी आर्थिक विकास के सूक्ष्म बीज उसके प्रत्येक कार्य और प्रवृत्ति मे आरभ ही से रहे होंगे। मनुष्य को केवल चीजों का बनाना और उनका उपयोग करना ही नहीं, वरन् उनको बचाकर भविष्य के लिए जमा करना भी आता था। उसके खेती करने, कपडा बुनने और छोटे-छोटे उद्योगों के सादे औजार, उनके पालतू पशु और जीवन-निर्वाह के लिए आवश्यक अन्य पदार्थ अब परिवार के अन्य सामान के साथ इकट्ठा किये जाने लगे।

मनुष्य के आर्थिक जीवन का आरंभ

नुकीले दाँतोवाले मैमथ हाथी, गैंडे, सिह आदि से रक्षा तथा जीवन-निर्वाह के लिए मृग, सूअर आदि जंतुओ के शिकार की आवश्यकता ने इतिहास के आरंभकाल ही में मनुष्य को पारस्परिक सहयोग का पाठ पढ़ाकर एक समूह बाँधकर रहने को विवश कर दिया। इस प्रकार आज की हमारी जटिल सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था की नीव पडी।

क्रमशः यही मनुष्य की स्थायी सामाजिक सम्पत्ति हो गई, जिसने भोजन प्राप्त करने और इसे बचाकर रखने मे उसे सुगमता प्रदान की और जिसके कारण अपने निवासस्थान की रक्षा करना उसके लिए अनिवार्य हो गया। मनुष्य के परिवार की सख्या अब बढ सकती थी। इस प्रकार धीरे-धीरे परिवार सम्बन्धी जनसमूह अथवा जाति मे परिवर्तित हो गया।

गृहस्थी के सामान की ओर जाति और सम्बन्धी जनों की सामूहिक अथवा व्यक्तिगत सम्पत्ति का भाव उत्पन्न हुआ और यह भाव यहाँ तक ही सीमित न रहा। पृथ्वी के भागो पर भी अधिकार समझा जाने लगा और इस अधिकार को सुरक्षित रखने की चेष्टा भी होने लगी। समाज के भाव से प्रेरित जन्तुओ और झुण्ड मे रहनेवाले पशुओ की अनेक जातियां, जैसे चरागाह के मैदानो मे रहनेवाले कुत्तो और उदबिलाव इत्यादि, की स्थायी सामाजिक वस्तुओं और उनकी जुटाई हुई पैतृक सम्पत्ति ने उन्हे सासारिक सघर्ष मे सफल होने मे बहुत सहायता दी है। किन्तु ऐसे पशुओं की उक्त प्रकार की सम्पत्ति एक ही विशेष प्रकार की और अस्थायी होती थी, परन्तु मनुष्य की सामाजिक सम्पत्ति बहुत प्रकार की और अधिक स्थायी हे और इस सम्पत्ति को घोर संघर्ष होते हुए भी स्थायी बनाये रक्खा गया है।

मनुष्य केवल औज़ार बनानेवाला ही नही वरन् परिस्थितियो के अनुसार औज़ार बदलनेवाला पशु भी है। उसके औज़ारो का भिन्न-भिन्न प्रकार के कार्यो मे प्रयोग किया जा सकता है। हिरन के टूटे हुए सींग, हल, ट्रैक्टर, एक पहिये की गाड़ी, बैलगाड़ी, मोटर, और हवाई जहाज़—सबका ही मनुष्य ने युग-युग मे विविध परिस्थितियो मे प्रयोग किया है। पृथ्वी के अनेक भागो की विभिन्नता और उनकी विशेषताओ के अनुरूप मनुष्य के आर्थिक जीवन के परिवर्त्तन के साथ-साथ इन नाना प्रकार के औज़ारो का रूप और कार्य भी आवश्यकतानुसार बदला है। क्रमशः वनो से चरागाहो, चरागाहो से उपजाऊ मैदानो और नदियों के मुहानो के आसपास की भूमि तक के कष्टप्रद भ्रमण ने मनुष्य के लिए भिन्न भिन्न आर्थिक परिस्थितियाँ उपस्थित की, जिनके अनुसार उसे अपना आर्थिक कार्यक्रम समय-समय पर बदलना पड़ा और उसको पूरा करने के लिए नवीन तथा उपयोगी औज़ार बनाने पड़े।

इन प्रयोगो से मनुष्य को अनेक लाभदायक अनुभव प्राप्त हुए और उनके फलस्वरूप अनेक प्रथाएँ, विश्वास और सस्थाएँ पैदा हो गई। मनुष्य की चेष्टाओ
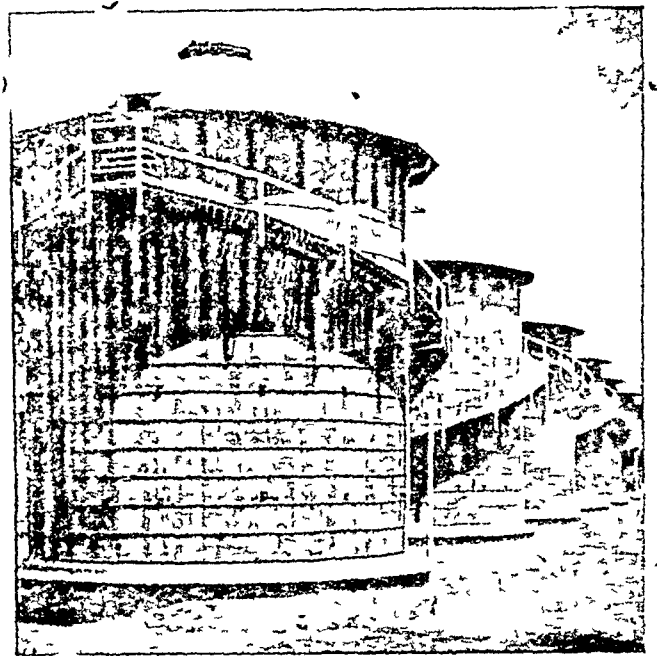
संपत्ति को बचाकर जमा करने की मनुष्य की आदिम और वर्त्तमान प्रवृत्ति
जिसके फलस्वरूप उसके सामाजिक जीवन में आर्थिक असमानता ने दृढ नीव जमा ली है। ऊपर के चित्र में एक ओर आदिम अवस्था में रहनेवाली जंगली जातियो की और दूसरी ओर सभ्य संसार की अनाज की बड़ी-बड़ी बखारें हैं, जो मनुष्य की सामाजिक व्यवस्था की तह में जड जमाये हुए उपरोक्त मनोवृत्ति के मूर्त्तिमान प्रतीक के समान हैं।

को इन अनुभवों से बहुत लाभ और सहायता मिली। पशुदेव का पूजन, पवित्र अग्नि का उपयोग, सूर्य-चन्द्रमा की आराधना आदि कार्य अधिकाश सभ्यताओं के अग बन गए।

इसी प्रकार घोडे, बैल और पृथ्वी की आराधना का भी सभ्यताओ मे समावेश हो गया। मनुष्य के बनाये हुए औजार और मकान आदि अब इतने अधिक शक्तिशाली और सुखप्रद हो गये कि वह धीरे-धीरे भूभाग के प्राकृतिक प्रतिबन्धनो से मुक्त हो गया। अब उसकी सभ्यता अधिकाधिक मिश्रित हो चली। जलवायु और भोजन, स्पष्ट अथवा अस्पष्ट रूप से, मनुष्य के मस्तिष्क के आकार-प्रकार, देह के रग और जाति की विशेषताओं पर गहरा प्रभाव डालते हैं। जातियो के परस्पर मिश्रण से मनुष्य की जातीय विशेषताएँ इतनी घट-बढ जाती हैं कि उसके आदिम स्वरूप को निश्चित रूप मे पहचानना भी कठिन हो जाता है। दूसरी ओर, जातियो मे पारस्परिक विवाह-सम्बन्ध कभी-कभी शारीरिक तथा मानसिक विकास मे भी सहायक हो जाते हैं। और यही विकास साहसपूर्ण चेष्टा, आविष्कार और अन्वेषण की जड़ है। इन्हीं से उत्तेजना और बल पाकर मनुष्य पृथ्वी के ऊपर आर्थिक प्रभुत्व स्थापित करने के लिए अग्रसर होता है। मनुष्य के दो विशेष आविष्कार जिनका कि परिणाम उसके जीवन पर बहुत प्रभावशाली हुआ है केवल उदाहरण के लिए यहाँ लिखे जा सकते हैं। पहला दक्षिणी-पश्चिमी एशिया के रहनेवाले चरवाहो द्वारा ईसा से पूर्व तीसरी सहस्राब्दी के मध्यकाल मे घोडे पर विजय पाना और दूसरा ईसा के बाद उन्नीसवीं शताब्दी मे उत्तरी-पश्चिमी योरप के निवासियो द्वारा उन्हे युद्ध मे विजय देनेवाले भाप से चलने के जहाजो का आविष्कार। ससार मे मनुष्य-जाति के बडे-बडे समूहो का भ्रमण, आर्थिक तथा राजनीतिक उथल-पुथल, और अन्य अनेक महत्त्वपूर्ण सामाजिक परिवर्तन इनके ही द्वारा हुए हैं।

मनुष्य की आधुनिक सभ्यता मे शिकारी का बल और पराक्रम, चरवाहो की सगठित कार्य-शैली और वाटिका के माली का परिश्रम और दूरदर्शिता मिश्रित है। आज के व्यापार और उद्योग के क्षेत्र मे पुराने समय जैसा विशेष वर्ग के व्यक्तियो का भिन्न-भिन्न नौकरियो और व्यवसायो पर आधिपत्य है।

मनुष्य का आर्थिक जीवन अन्य पशुओं के जीवन की अपेक्षा कहीं अधिक पेचीदा और सुसगठित है। इन पेचीदी सामाजिक व्यवस्था मे मनुष्य की व्यक्तिगत उन्नति और समाज-सगठन, दोनों ही, एक साथ सभव है।

परन्तु भारतवर्ष की तरह जहाँ जाति और वर्ग की भिन्नता के कारण परस्पर विवाह-सम्बन्ध वर्जित है और जहाँ बहुत बड़ी जनसख्या आर्थिक और सामाजिक उन्नति के सुअवसरों से वञ्चित है, वहाँ सम्पूर्ण समाज की आर्थिक सम्पत्ति प्रत्येक मनुष्य को लभ्य नहीं है और न वहाँ मनुष्य अन्य जन्तुओं की तरह सबके सम्मिलित परिश्रम से उपार्जित धन राशि अथवा कमाई का लाभ समाज के प्रत्येक व्यक्ति मे वितरण करने ही को राजी होता है। भारतवर्ष का परम्परागत जातिभेद आज मनुष्य की सामाजिक एकता को निर्बल कर रहा है। इसी प्रकार आजकल की दूषित आर्थिक व्यवस्था मे अविवाहित बालिकाएँ और विधवाँ स्त्रियाँ एक बड़ी सख्या मे औद्योगिक कारखानो और अन्य व्यवसायो मे काम करती हैं, जहाँ प्रति दिन का कठोर परिश्रम और कार्य-विशेषज्ञता उन्हे अपने मातृत्व या पत्नित्व को समाज की वेदी पर बलिदान करने के लिए बाध्य कर देती है। यह इस बात का उदाहरण है कि किस तरह कार्यनिपुणता और विशेषज्ञता शारीरिक और सामाजिक उन्नति की हानि पर होती है।

आज इस नवीन आर्थिक समाज मे महाजन और पूँजीपति पुरातन काल के शिकारी मनुष्यों की मनोवृत्ति से अपने को वचित नहीं कर सके हैं। वास्तव मे वे इन्ही लोगो का प्रतिनिधित्व आज के समाज मे कर रहे हैं। पुराने समय के शिकारी मनुष्य का सम्पत्ति बचाकर रखने का भाव, उसकी चतुरता और अधिकार जताने अथवा अनुचित लाभ उठाने की मनोवृत्ति ने आज सामाजिक विरोध उत्पन्न कर दिया है और यह भाव आज मनुष्य की नई आर्थिक उन्नति मे बाधक हो रहा है। मनुष्य अब एक समान असख्य पदार्थों को पैदा करनेवाले बडे और बहुमूल्य यत्रों पर प्रभुत्व कर रहा है और उन्हें अपने वर्ग-लाभ के लिए कार्य मे लाता है, जिससे वर्ग-विशेष और समस्त समाज के हित मे घोर असमानता पैदा हो गई है।

यदि मनुष्य को आर्थिक उन्नति की ओर अग्रसर होना है तो उसे अपना समाज-सगठन सामुहिक हित और न्याय की नीव पर करना चाहिए, जिसमे व्यक्ति द्वारा व्यक्ति के शोषण का अत हो जाय और प्रत्येक व्यक्ति सब के हित ही मे अपना कल्याण समझे।
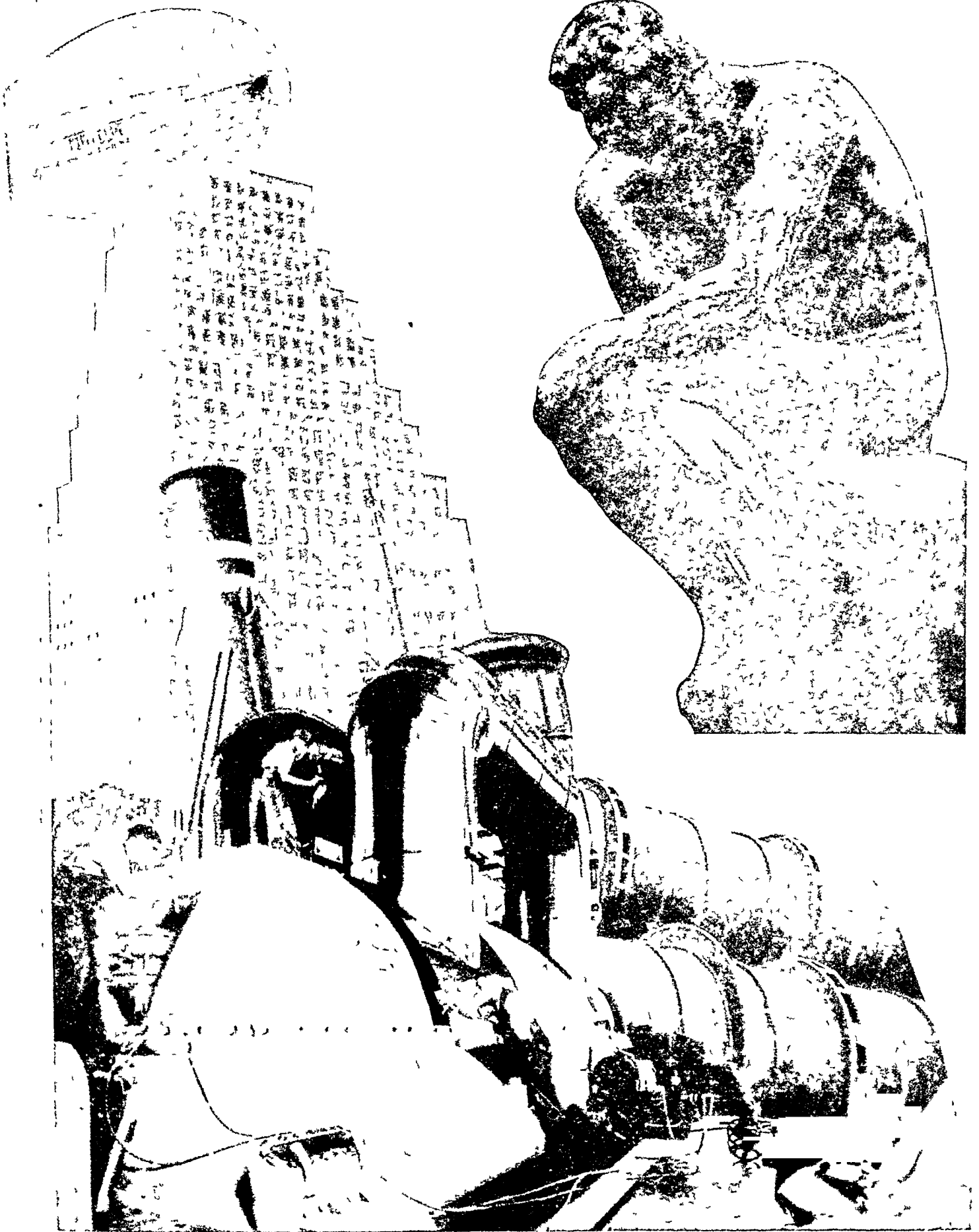
मनुष्य और उसकी विज्ञानमय यंत्र-सृष्टि

जो क्रमश: आर्थिक असाम्य और वर्ग-शोषण के शस्त्र का रूप ग्रहण करती हुई मानव के लिए वरदान के बदले क्रूर अभिशाप-स्वरूप होती जा रही है।

दस लाख वर्ष पूर्व का हमारा पूर्वज

अब तक जो प्राचीन मनुष्य की खोपड़ियाँ मिली हैं, उनमें सबसे पुरानी विद्वानों द्वारा दस लाख वर्ष की मानी जाती है।

मनुष्य की लंबी यात्रा का आरंभ

मनुष्य का इतिहास उसकी यात्रा का इतिहास है । आज जब हम युगो और महाकल्पो को लाँघकर चली आ रही अपने इतिहास की टेढी-मेढी पगडंडी को घूमकर देखते हैं, तो कुछ ही हज़ार या लाख साल पीछे तक नजर दौडा पाते हैं, उसके बाद वह पगडडी निरंतर क्षीण होते-होते प्रागैतिहासिक युग के धुंधलेपन मे लीन हो जाती है। किंतु इससे क्या ? हमारी यात्रा का आरंभ तो निस्संदेह आज से लाखो वर्ष पहले हुआ होगा। अनादि काल से जिस पगडंडी पर हम चलते चले आ रहे हैं, उसके किनारे-किनारे के हमारे युग-युग के पडावो के जो थोडे-बहुत ध्वंसावशेष आज दिन हमे मुडकर देखने पर मिलते हैं, वे हमें विगत युगो की कैसी अद्भुत् कहानी सुना रहे हैं !

यद्यपि वैज्ञानिको ने तरह-तरह की खोजे की और अट-कल लगाये, किन्तु अभी तक कोई दावे के साथ यह नही सिद्ध कर सका कि अब तक पृथ्वी की कितनी आयु बीत चुकी है। अधिकाश वैज्ञानिकों का मत है कि पृथ्वी को प्रकट हुए चालीस करोड से पन्द्रह करोड वर्ष बीत चुके। पृथ्वी पर जीव का प्रस्फुरण लगभग तीन करोड वर्ष हुए, सबसे पहले उथले जल अथवा दलदलों मे हुआ था। उस समय जीवधारी का स्वरूप चिपचिपे जलकीट की तरह हुआ। इन्हीं से आगे चलकर मेढक आदि निकले। बहुत समय बीतने पर जीव को रेंगनेवाले और सरककर चलने-वाले जन्तुओ का शरीर मिला। इस समय वनस्पतियो की भी उत्पत्ति हो चुकी थी, जिनसे आगे चलकर घने जगल हो गये। इन्हीं जगलों मे पतगो और उडनेवाले कीटो का जन्म हुआ। इनके बाद पशुओ की उत्पत्ति हुई। पशुओ के लाखो भेद थे। उन्ही मे से बन्दर भी थे। बन्दरो की अनेक जातियाँ हैं। बाज-बाज बन्दरो—जैसे चिम्पैंजी, गोरिला, एप आदि—की शरीर-रचना मनुष्य की शरीर-रचना से इतनी मिलती-जुलती है कि कुछ लोगो की राय मे उन्ही से मनुष्य का विकास हुआ। आदि वानरों को मनुष्य की तरह पत्थर, लकडी, लताओं और पत्तियो से काम लेने का ढंग मालूम हो चला था। मनुष्य के शरीर के समान शरीरवालो के चिह्नो का अब तक जो पता लगता है, उससे अनुमान किया जाता है कि शायद मनुष्य की उत्पत्ति अब से लगभग दस लाख वर्ष पहले हुई। चीन मे एक मनुष्य की-सी खोपडी मिली है, जिसे लोग दस लाख वर्ष की पुरानी मानते हैं। जावा मे प्राप्त खोपडी की आयु चार लाख पचहत्तर हजार वर्ष की आँकी गई है। जर्मनी की सबसे पुरानी खोपडी तीन लाख वर्ष की है। फ्रास और इँगलैंड मे जो खोपडियाँ मिली हैं वे एक लाख पचीस हजार वर्ष से लेकर दस हज़ार वर्ष की हैं।

भूगर्भवेत्ताओ के अनुसार पृथ्वी का पिछला जीवन कई युगो मे विभक्त किया जाता है। इनमे एक युग ऐसा है, जिसका पृथ्वी पर बर्फ के पडने से आरम्भ होता है। बर्फ के युग के उन्होंने कई भाग किये हैं, जिनमे सबसे पहला अब से पाँच लाख वर्ष के पहले माना जाता है, और सबसे आखिरी (चौथे) का आरम्भ अब से पचास या पचीस हज़ार वर्ष पहले हुआ था। आजकल वही युग चल रहा है। इस गणना के अनुसार मनुष्य बर्फ के युग के आरम्भ से ही चला आ रहा है। अधिकतर विद्वानों का मत है कि मनुष्य सबसे पहले एशिया मे ही पैदा हुआ, किन्तु मतभेद इस बात मे है कि वह एशिया के किस भाग मे उत्पन्न हुआ।

यह ध्यान रखना चाहिए कि पृथ्वी का जो नक़शा आजकल है, वह हमेशा से ऐसा ही नहीं रहा। उसमें

चीन में मिली आदि मानव की खोपड़ी

जो दस लाख वर्ष पुरानी मानी जाती है। यह पेकिंग के समीप मिली थी। (नीचे के चित्र मे) उक्त खोपडी के आधार पर १० लाख वर्ष पूर्व के मनुष्य के पुरखे के रूप की कल्पना।

अनेक फेरफार हो चुके हैं। उदाहरण के लिए एक ऐसा समय था जबकि जावा, सुमात्रा, मलय अन्तरीप एक साथ मिले हुए थे। एशिया, अफ्रीका, योरप आपस में मिले हुए थे। अब से तीस हजार वर्ष पहले ब्रिटेन योरप से मिला हुआ था। स्पेन और इटली अफ्रीका से जुडे हुए थे, बल्कान अन्तरीप एशिया से मिला हुआ था। उस समय सीलोन हिन्दुस्तान से जुडा हुआ था, सिन्ध प्रदेश और बगाल का कहीं पता न था, काला समुद्र, कैस्पियन सागर और तुर्किस्तान के ऊपर का हिस्सा जल मे डूबा हुआ था। कहने का साराश यह है कि उस समय आने-जाने के रास्ते आजकल के रास्तों से भिन्न थे। इन्ही कारणों से मनुष्य और पशु आदि बिना जलयान की सहायता के एक द्वीप से दूसरे और एक महाद्वीप से दूसरे महाद्वीप में पहुँच जाते थे।

मनुष्यों के अनेक समूह हो गये हैं। उनमे से कुछ उपजातियों का लोप हो गया है और कुछ अभी तक बहुत पिछड़ी पड़ी हैं और कुछ ने अच्छी उन्नति और सभ्यता प्राप्त कर ली है। वस्तुतः मनुष्य अन्य पशुओ से इस बात मे अधिक भाग्यवान् है कि वह उन्नतिशील है और उसकी उन्नति किसी-न-किसी अश मे बराबर होती चली आ रही और हो रही है। मनुष्य अन्य पशुओ से कई बातो मे भिन्नता रखता है। पहली बात यह है कि वह सीधा खड़ा होकर दो पैरो से चलता है, दूसरी यह कि उसके हाथ और अँगूठे की रचना दूसरे ही ढग की है। तीसरी यह कि वह अपने और दूसरों के अनुभवों से लाभ उठा सकता है। चौथी यह कि वह स्मरण, मनन और चिन्तन से अपनी कृतियो को सुधार सकता तथा अपनी इच्छा की पूर्त्ति के लिए अनेक उपाय और साधन निकालकर अपना सुधार और उन्नति कर सकता है। पाँचवी यह कि वह अपने विचारों और भावो को वाणी और सकेतो के द्वारा प्रकट करने की शक्ति रखता है। इन्ही सब गुणो के कारण वह निरन्तर उन्नति करता जा रहा है। इन शक्तियो का विकास एक साथ ही अथवा पूर्ण रूप से नही हुआ। इनके विकास होने मे बहुत-सा समय लगा और शायद अभी तक उसकी गुप्त अथवा प्रकट शक्तियों का पूरा-पूरा विकास नही हो पाया है।

मनुष्य को जो शक्तियाँ प्रकृति ने दी हैं वे उसकी उन्नति में सहायक हैं, किन्तु अपनी निजी शक्तियों के अलावा उसको अन्य जीव-जन्तुओं की तरह बाहरी प्रकृति से सहायता अथवा विरोध मिलता रहता है। पशु-पक्षी तो प्रकृति के अनन्य अनुचर रहते हैं, किन्तु मनुष्य प्रकृति पर दिनोदिन अपना अधिकार जमाता चला आ रहा है। वह प्रकृति का दास नहीं बल्कि वह प्रकृति को ही अपनी अनुचरी बनाने की कोशिश करता चला आ रहा है। आरम्भिक पूर्व काल मे वह प्रकृति के वश मे अधिक था, इसलिए उसकी उन्नति बहुत धीरे-धीरे हुई। किन्तु जैसे-जैसे उसके साधन बढते गये, वैसे ही उसकी उन्नति शीघ्रता के साथ होने लगी और प्रकृति के ऊपर उसका प्रभुत्व बढ़ने लगा। मनुष्य का इतिहास इन्ही बातों की रग-बिरंगी कहानी है।

अब से क़रीब एक लाख वर्ष पहले मनुष्य का जीवन पशु का-सा था। अपने हाथों के सिवा उसके पास रक्षा करने का कोई साधन न था। उसको शरीर ढॉकना तक नहीं आता था, झोपड़ी बनाना भी वह नहीं जानता था, उसके पास गाय, भैंस, बकरी, भेडी, कुत्ता कुछ भी न था। उसने अनाज का स्वप्न तक नही देखा था, और बर्त्तन आदि उसके ख़याल के बाहर थे। कन्द-मूल, जंगली फल, पत्तियाँ अथवा मरे जानवरों या जल-जन्तुओं का मांस उसका आहार था। भाग्यवश उसे आग पैदा करना मालूम हो गया। लकड़ियों को ज़ोर के साथ रगड़कर वह

पौने पाँच लाख वर्ष पूर्व का मनुष्य
यह चित्र जावा मे प्राप्त खोपडी के आधार पर बनाया गया है।
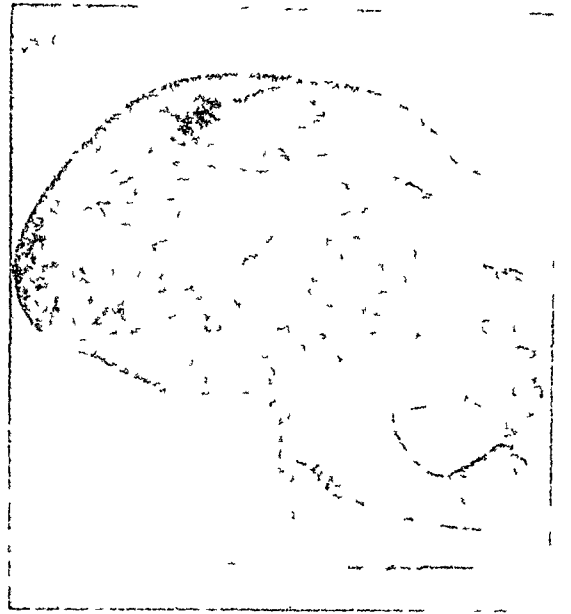
पचास हज़ार वर्ष की पुरानी खोपड़ी
यह फ्रांस में पाई गई थी।

आग पैदा कर लेता था। आग जलाकर उसके चारों ओर बैठकर लोग तापा करते थे। धीरे-धीरे उसने लकडी के नुकीले और चिपटे हथियार बनाना, मांस को भूनना और खाल अथवा पत्तियों से तन को ढकना सीख लिया। किन्तु इस थोडे-से ज्ञान प्राप्त करने मे उसे हज़ारो वर्ष लग गये। मनुष्य की उस समय की दशा बड़ी दयनीय है, किन्तु उस समय मे भी आग पैदा करके और हथियार की रचना करके उसने सभ्यता की जड़ जमा दी। उसको अपनी आवश्यकताओं का अनुभव होने लगा, जिसके कारण उन्नति का रास्ता खुलने लगा। कहा जाता है कि मनुष्य इसी दशा में लाखो वर्ष तक टक्कर खाता रहा। इस समय भी टस्मेनियॉ मे कुछ जगली जन-समूह हे, जो आज दिन भी आदिम दशा मे रहते हैं।

क़रीब सवा लाख वर्ष हुए जब मनुष्य ने ऊपर वर्णित दशा से कुछ उन्नति करना आरम्भ कर दिया। उसी समय से पत्थर के युग का आरम्भ होता है। उसे पत्थर का युग इसलिए कहते हैं कि उसमे लोग पत्थर के औज़ारो और हथियारो से काम लेते थे। वह युग आज से क़रीब सवा लाख वर्ष पहले आरम्भ हुआ और क़रीब छः हजार वर्ष पूर्व तक (१२५०००—६०००) चलता रहा। पत्थर के युग के दो भाग माने जाते हैं, एक पूर्व भाग और दूसरा उत्तर भाग। इस युग के पूर्व भाग मे आदमी पत्थर के ऐसे औज़ार बनाने लगे, जिन्हें मुट्ठी में पकडकर वे काम मे ला सकें। वे नुकीले और चिपटे औज़ार बनाने लगे। उस समय के बने हुए हथौडे, घन, खरोंचने की चीज़े, तीर,
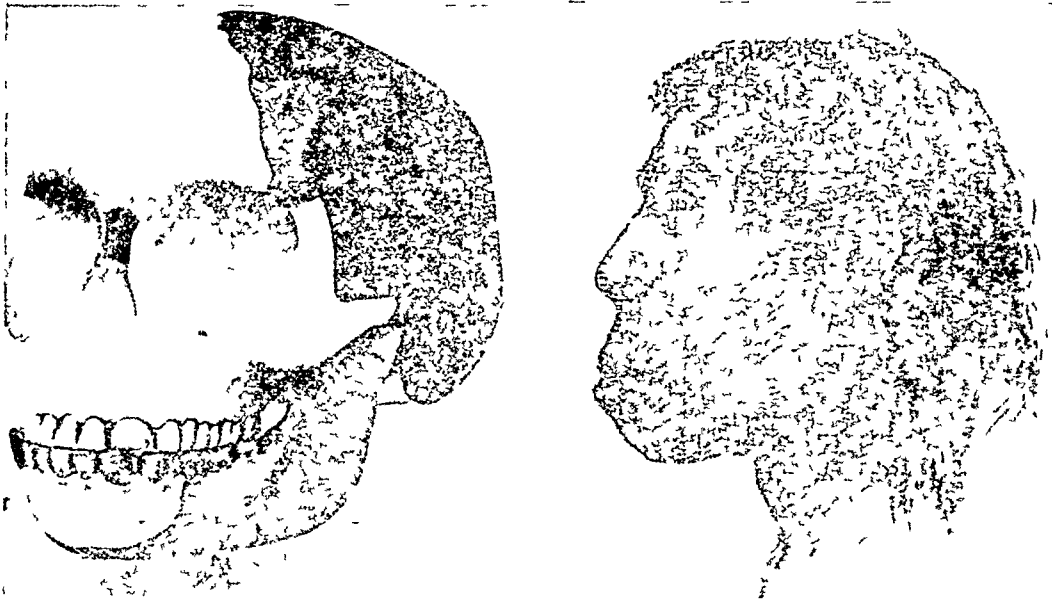
एक लाख वर्ष का आदिम मानव

यह खोपड़ी इँगलैंड के पिल्टडाउन नामक स्थान में मिली थी। इसी के आधार पर साथ का चित्र कल्पना से बनाया गया है। यह ५० हजार से १ लाख वर्ष के लगभग पुरानी मानी जाती है।

बरछी के फल और चाकू वगैरह अमेरिका, योरप, अफ्रीका और एशिया के देशो मे अब तक पाये जाते हैं। इसी तरह एक लाख वर्ष बीत गये। फिर उन्होंने हड्डी की चीजे, जैसे पिन, घन, पालिश करने के औज़ार वगैरह, बनाना शुरू कर दिया। धीरे-धीरे उन्हे बरमा, आरी, बरछी, भाले आदि बनाना और उनमे हत्थे लगाना भी आ गया। इनके अलावा वे सीग और हड्डी के मूजे-मूजियॉ भी बनाने लगे। अब से सिर्फ सोलह हजार वर्ष की बनी हुई हाथी दॉत और सीग की ख़ासी अच्छी चीजे मिलती हैं। इस प्रकार पत्थर-युग के पूर्व काल मे लकड़ी, पत्थर, हड्डी या सीग से वे लोग हथौडे, घन, रन्दे, बरमे, रुखानी, कन्नी, खुरपी, बसूले, कुल्हाडी, फरसे, छोटे-बडे चाकू, बरछे, खजर, कटिया, पिन, दिये वगैरह बनाने लगे। किंतु सब से अचरज की बात तो यह है कि वे लोग पहाड की गुफाओं मे, जहॉ वे रहने लगे थे, कभी-कभी दीवार पर चित्र भी बनाते थे। स्पेन के अल्टामिरा नामक स्थान मे अब से सोलह हजार वर्ष पहले के गुफाओ मे बने हुए काफी सुदर सजीव रगीन चित्र मिलते हैं, जिनको देखकर यह मानना पड़ता है कि पत्थर के युग मे भी मनुष्य मे कला-कौशल का स्वाभाविक अनुराग प्रकट हो गया था। ये चित्र प्रायः बारहसिंघों, हाथियों, घोड़ों, भैंसों, रीछों और सुअरों आदि के हैं। कहीं-कहीं मोटी स्त्रियों के भी अनेक चित्र मिलते हैं। इसके अलावा चेकोस्लोवेकिया मे हाथी, जगली घोडे और बारहसिंघो की पत्थर की बनी मूर्त्तियॉ भी मिलती हैं।

पत्थर-युग के उत्तरकाल मे, जिसका आरम्भ अब से यदि दस हजार वर्ष नहीं तो सात हजार वर्ष पहले माना जाता है, कुछ मार्के के परिवर्तन हो गये। इस समय पत्थरों को रगड़कर औज़ार बनाये जाने लगे, क्योंकि उन पर पालिश मिलती है। लोगों को पशुओं के पालने और उनसे लाभों का ज्ञान होने लगा। गाय, बैल, बकरी, भेड़, घोडे कुत्ते और सुअर पाले जाने लगे। पहले लोग केवल शिकार करके मास लाते और खाते थे किन्तु अब पले जानवरो को वे काम मे लाने लगे। उनका दूध पीते और मास खाते और उनसे खेती वगैरह के काम लेते थे। जौ, गेहूँ और बाजरा की वे खेती करते थे। वे मिट्टी के बरतन बनाने लगे। मिट्टी की ईटे भी बनने लगीं। इसी काल मे लोगों को बुनने का कौशल मालूम हो गया। वे पत्तियो, घासों और बॉसों से बुनकर डलिया, झौआ आदि बनाने लगे। सन को पैदा करके उसको बटकर रस्सियॉ बनाने लगे। उन्हे पहियो और गडारियों के बनाने और उनसे काम लेने का ज्ञान होने लगा। किन्तु शायद बरतन बनाना उन्हे नही आता था। पहियों की सहायता से बोझ उठाकर ले जाने मे उनको सुविधा होने लगी। यही नहीं उनको मिट्टी की दीवाले, घास-फूस, झाऊ, बॉस आदि से
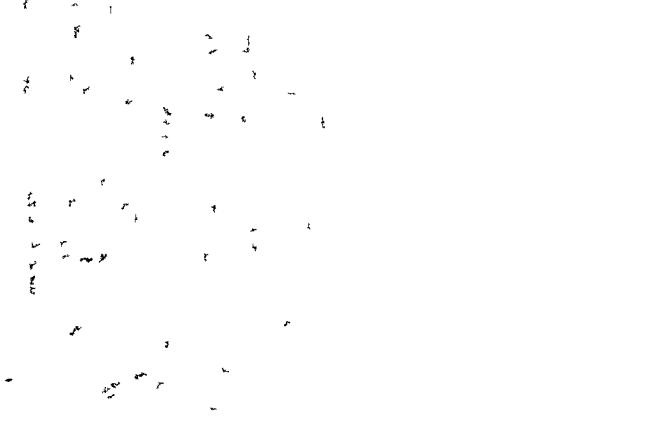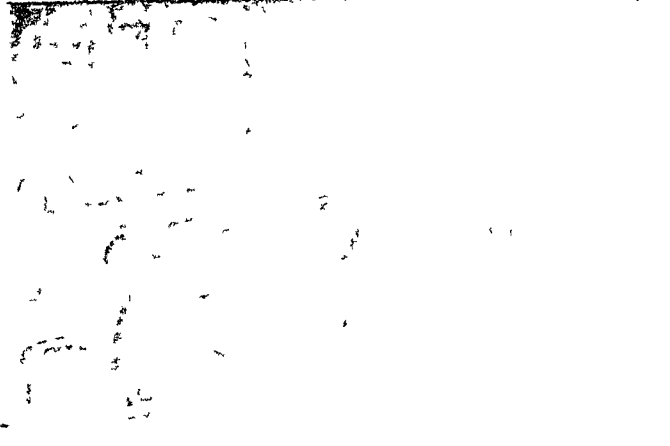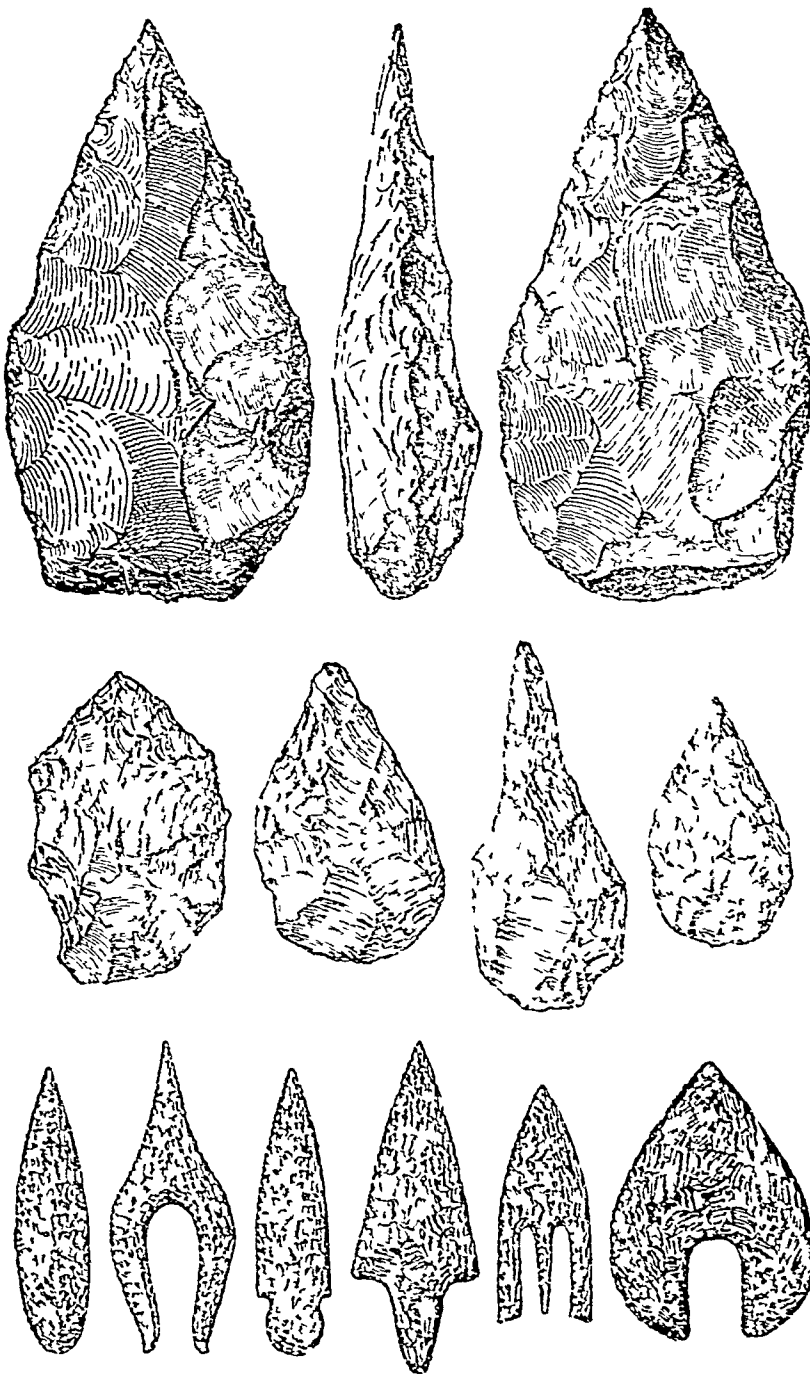
पत्थर-युग के मनुष्यों के पाषाण के औज़ार

(ऊपर से नीचे) पहली पंक्ति मे—मुट्ठी में पकडकर काम मे ला सकने योग्य पत्थर के औज़ार जो रगडकर बनाये गये थे। ये ट्यूनिस मे पाये गये हैं।

दूसरी पंक्ति मे—ऊपर ही की तरह के और औजार। ये उत्तरी अमेरिका में पाये गये हैं।

तीसरी पंक्ति मे—पत्थरों के बने भालों या तीरों के फल। ये भिन्न-भिन्न स्थानों मे पाये गये हैं।

टट्टर और छप्पर आदि बनाना आ गया। इसलिए अब वे गुफाओं को छोड़कर झोपडों में रहने लगे। उनको पेडों के तनों को खोलकर नावे बनाना भी आ गया। नावों और पहिये के ठेलों आदि की बदौलत वे थोडा व्यापार भी करने लगे।

रहने के लिए झोपडे, खेती, पशुपालन आदि का प्रभाव यह हुआ कि मनुष्य के कुछ समूह खानाबदोशी छोड़कर स्थान विशेष के निवासी बन गये और किसानी करने लगे। इस नये प्रकार के रहन-सहन से सभ्यता की नींव ही बदल गई और आगे बढने का रास्ता और भी साफ हो गया। लोगों को सम्पत्ति का ज्ञान और उससे लाभ उठाने की तरकीब भी मालूम हो गई, जिसका आगे चलकर व्यापार और समाज की रचना पर बहुत गहरा असर पडा। मनुष्यों मे अमीर-गरीब सभ्य और असभ्य का भेद पैदा होने लगा, और समाज मे पेशों की श्रेणियाँ बनने लगी। गाँवों और बस्तियों का आरम्भ हो गया। बस्तियों के चारो ओर रक्षा के लिए या तो वे लोग मिट्टी की दीवारे बना लेते, खाई खोद लेते अथवा वे लकडी के कुन्दों की बाढ बना लेते थे। पत्थर-युग के उत्तर काल मे मनुष्य के आचार-विचार, रहन-सहन, भाषा और कलाओं को ठीक-ठीक जानने के काफी साधन नहीं मिलते, इस कमी को पूरा करने के लिए वैज्ञानिकों ने जगली जातियों के जीवन की छानबीन करके कुछ बाते निकाली हैं। वे कहते हैं कि कुछ आधुनिक जगली जातियाँ अभी तक पत्थर के युग मे हैं, अतएव सम्भव है कि उनके आचार-विचार भी उसी सभ्यता के हों। हो सकता है; किन्तु इस

प्रस्तर-युग में मनुष्य का जीवन

मानव इतिहास के आरंभिक युगो मे प्रस्तर-युग या पत्थर का युग सबसे महत्त्वपूर्ण है, क्योकि इस युग मे मनुष्य की आविष्कारक प्रवृत्तियो का बड़ा अद्भुत् विकास हुआ। पत्थर, सीग, हड्डी आदि से औजार बनाना, आग का उपयोग करना, सामुहिक रूप से शिकार खेलना तथा एक प्रकार की बस्तियो मे रहना प्रारंभ करके मनुष्य ने इसी युग में हजारो वर्ष के अपने भावी जीवन और सभ्यता की नीव डाली थी।
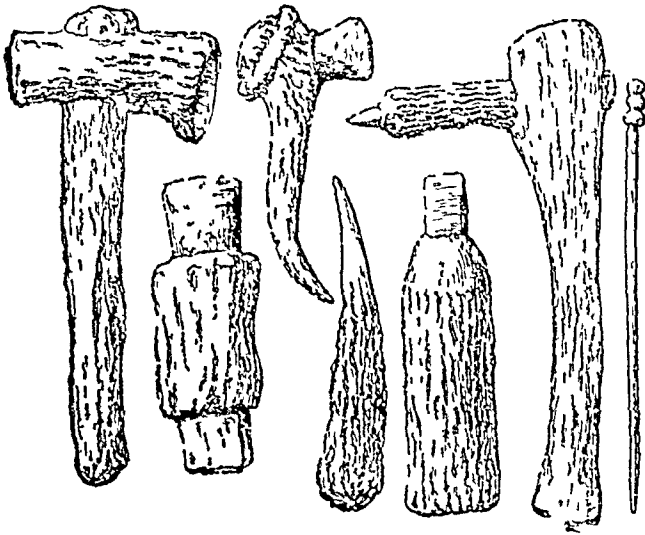
पत्थर युग के उत्तरकाल के औज़ार
हड्डी-सींग आदि से बने कुल्हाडी, बसूला, रुखानी आदि।

ढग की खोज कुछ कच्ची ही माननी पडेगी। अनुमान किया जाता है कि पत्थर के युग मे भी मनुष्य भाषा का व्यवहार करते थे और उनको नाच और गाने का शौक था। उनकी भाषा मे लिङ्गभेद पर ज़ोर दिया जाता था। उनका शब्द-भण्डार भी अच्छा खासा था। यद्यपि उनके गाने-बजाने मे मधुरता न थी, किन्तु उनके कोलाहल मे ताल था। गाने-बजाने का प्रभाव उन पर गहरा पड़ता था, जिससे कि वे अत्यन्त उत्तेजित अथवा बीमार हो जाते थे। उनके बाजे ढोल, पिपिहरी या तुरही या तारोवाले यत्र थे। नाचने मे भी उन पर ऐसी मस्ती छा जाती थी कि वे शल हो जाते और थक जाते थे। वे साधारण कामो को भी यदि देर तक करना चाहते थे तो गाने-बजाने की सहायता लेते थे। जगली जातियों को भी साज-सिगार का शौक़ था। वे अपने बदन पर रग लगा लेते थे और आभूषण पहनते थे। उनके विचार और विश्वास तथा कहानियॉ बच्चों और मूर्खों-जैसी होती थीं। पेड़, पत्थर, पशुओं आदि मे वे मनुष्य के-से व्यक्तित्व और जीवन की धारणा रखते थे। उनमे वे विचित्र शक्ति मानते थे। तावीज, जादू, झाड-फूॅक, टोटकों और टोनों मे वे बडा विश्वास रखते थे। उनमे इन बातो के जाननेवाले सयाने आदि होते थे जो रोगोंकी दवा भी जड़ी, पत्ती, हड्डी, खाल, पत्थर आदि से करते थे। गा-बजाकर, मार-पीटकर, गालीख्वारी करके वे रोग दूर करने का दावा रखते थे। वे जादू के बल से शत्रुओं या आदमियो मे रोग ही नही बल्कि मृत्यु फैला देने की ताक़त मानते थे। जल बरसाने, ऋतु बदलने, मनुष्य या खेती मे पैदावार बढ़ाने, देवता बुलाने, और भविष्य मे होनेवाली बातों को जानने के लिए अनेक प्रकार के विधान रचते थे। भूत-प्रेत, मृत आत्माओं, देवी और देवों को तो वे बहुत मानते थे, किन्तु साथ ही मे उनको एक परम पिता अथवा महादेव का भी ज्ञान होने लगा था। उनमे अनेक दन्तकथाऍ और अलौकिक गाथाऍ भी प्रचलित थी। उनमे विवाह-प्रथा भी थी और प्रायः एक पति या एक पत्नी का नियम-सा था। विवाह के कुछ नियम भी, जो सब समूहों मे एक से न थे, प्रचलित थे। यद्यपि स्त्रियॉ पुरुषों से उतरकर समझी जाती थी और वे बराबरी का दावा नहीं कर सकती थी तथापि उनको काम करने की बहुत आज़ादी थी। कुछ लोगों मे वश पिता के नाम से न चलकर माता के नाम से ही चलता था। उनमे कुल, कुटुम्ब, जाति, भैयाचारा, बिरादरी के भेद और प्रभेद पैदा हो गये थे। उन्हे नृशसता और बेरहमी दिखाने मे तनिक भी सकोच न था। वे लकीर के फ़क़ीर और पुरानी प्रथा के बडे भक्त थे। नयेपन से वे बहुत घबराते थे। उनमे थोडे बहुत क़ानून भी चलते थे, जो किसी सिद्धान्त की बुनियाद पर न थे। बदला चुकाने के लिए वे बडे तैयार रहते थे। शपथ दिलाकर अथवा अग्निपरीक्षा आदि से वे सत्य या असत्य का निर्णय करते थे। जाति-अपमान या बिरादरी से बाहर कर दिये जाने से उनको बहुत भय रहता था।

ऊपर के वर्णन से यह साफ मालूम होगा कि पत्थर के युग के समाप्त होने तक मनुष्य ने सभ्यता और उन्नति के अनेक साधन जमा कर लिये थे। फिर भी उनके पास तीन चीज़ों की भारी कमी रह गयी थी। उनको न तो धातुओं का पता था, न उन्हे लिखना आता था और न उन्हे राज-

कॉसे के औज़ार
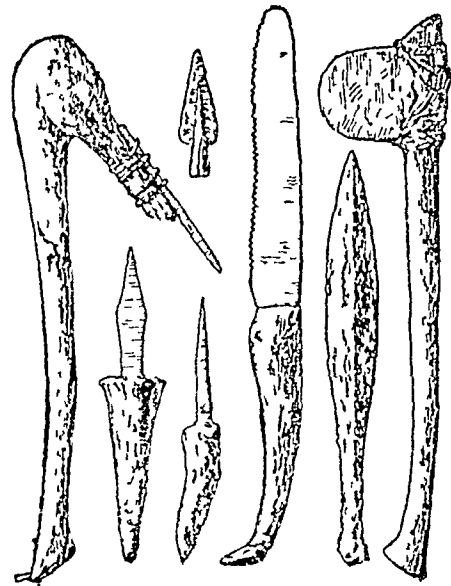
ये मिस्र मे पाये गये हैं। इनके बेंट पत्थर, हड्डी आदि के हैं इसी तरह के औज़ार दूसरे स्थानों मे भी मिले हैं।

नीतिक सगठन आता था। आगे चलकर इन तीनों चीज़ों का ज्ञान जब मनुष्यों को हुआ, तब सभ्यता और उन्नति में बड़ी शीघ्रता आ गयी। विद्वानों का अनुमान है कि पत्थर का युग क़रीब पचास हज़ार वर्ष तक चलता रहा।

सबसे पहली धातु जो मनुष्य को मिली वह शायद सोना थी, किन्तु उसने सबसे पहले ताँबे का ही उपयोग करना सीखा। क़रीब आठ हज़ार वर्ष से ताँबे का उपयोग होना शुरू हो गया था। स्विटज़रलैंड, मसोपटेमिया, मिस्र, हिन्दुस्तान और अमेरिका मे ताँबे के औज़ारों के अवशेष मिलते हैं। किन्तु इससे यह नतीजा न निकालना चाहिए कि पत्थर के युग के बाद ताम्रयुग का आगमन हुआ। वस्तुतः ताम्रयुग केवल काल्पनिक है, उसके होने का कोई प्रमाण नहीं है। पोलीनेशिया, फिनलैंड, उत्तरी रूस, मध्य अफ्रीका, दक्षिण भारत, आस्ट्रेलिया, जापान और उत्तरी अमेरिका मे पत्थर के युग के बाद ही लोहे का प्रयोग आरभ हो गया। उन देशों मे भी जहाँ ताँबे का प्रचार माना जाता है, थोड़े ही मनुष्य शौक़िया उसे काम मे लाते थे। सर्वसाधारण पत्थर का ही प्रयोग करते थे। हथियारो के बनाने के लिए ताँबे के मुक़ाबले मे पत्थर ज्यादा मजबूत है। मनुष्य को काँसे का पता भी लग गया, किन्तु काँसा काफी मात्रा मे न मिलने के कारण और धातुओ को मिलाकर काँसा बनाने की विधि न जानने के कारण वह काँसे का उपयोग अधिक न कर सका। किन्तु जिनको काँसा काफी मात्रा मे मिल सका वे लड़ाई मे दूसरों से अच्छे रहे और शक्तिशाली बन बैठे। कोई छः हजार वर्ष से लोहे का भी उपयोग हो रहा है। उत्तरी रोडेशिया मे अब से क़रीब छः हजार वर्ष की लोहे की चीज़े मिली हैं। ढाई तीन हजार वर्ष की पुरानी लोहे की चीजे मिस्र और बेबीलन मे मिलती हैं। किन्तु ढले हुए लोहे की सबसे पुरानी चीज़ फिलिस्तीन मे प्राप्त चाकू का फल है, जिसे लोग साढे तीन हजार वर्ष का मानते हैं। आस्ट्रिया (योरप) मे क़रीब तीन हज़ार वर्ष हुए लोहे का उपयोग आरम्भ हो गया था। कहते हैं कि हिन्दुस्तान मे लोहे का आरम्भ सिकदर के समय से हुआ है।

आदि मानव की कला

यह स्पेन के अल्टामिरा नामक स्थान की गुफा में दीवार पर अंकित कम से कम सोलह हज़ार वर्ष पुराने चित्रो मे से एक है।

लेखनकला का आरम्भ भी कोई सात या छः हज़ार वर्ष से हुआ है। पहले सुमेरिया, मिस्र और मेडिटरेनियन समुद्र के आस-पास लोग चित्रों अथवा रेखाओं द्वारा अपने विचार अकित करते थे। किन्तु वे अक्षर न थे। अक्षरों का आरम्भ क़रीब पाँच हजार वर्ष हुए मिस्र मे हुआ। वे चौबीस अक्षरों से काम लेते थे। वहाँ से अथवा क्रीट से उत्तरी अफ्रीका के निवासी फोनीशियन लोग उसे अपने व्यापार के साथ देश-देशान्तरों मे ले गये। अक्षरों मे सबसे पहले लिखे लेख सिनाई की शिला पर मिलते हैं। इनको क़रीब साढे चार हज़ार वर्ष का पुराना विद्वान् लोग मानते हैं।
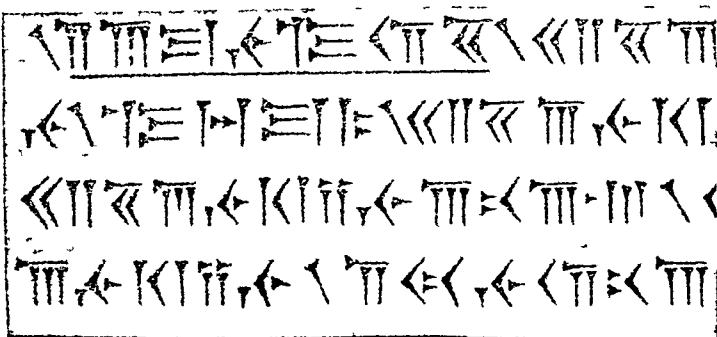
हज़ारों वर्ष पूर्व के अक्षर

ये अक्षर कील के आकार के हैं और बैबीलोनिया और फारस के प्राचीन लेखों मे पाये गये हैं।
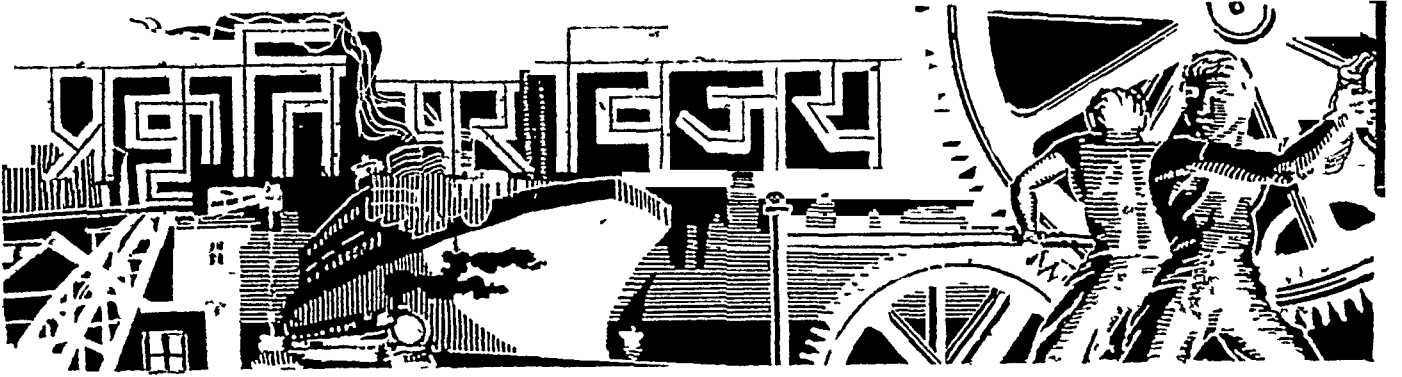
एक नई दुनिया का निर्माण

हमने ईश्वर और प्रकृति की बनाई हुई अद्भुत् सृष्टि की अचरज-भरी कहानी पिछले स्तंभों में पढ़ी; किन्तु क्या उससे कम आश्चर्यजनक है स्वयं मनुष्य द्वारा रची गई उस दूसरी अनोखी सृष्टि की कहानी, जिसका निर्माण करके मनुष्य दूसरा विधाता बनने जा रहा है? पृथ्वी को अपने एक खेल का मैदान-सा बनाकर रेल, मोटर, जहाज़ आदि दौड़ाते हुए आज एक से दूसरे कोने तक यह उसे रौंद रहा है। मनुष्य ने पहले-पहल जिस दिन पत्थरों को तोड़कर उनसे औज़ार बनाना सीखा, उस दिन से हवाई जहाज़, रेडियो, और टेलीवीज़न के इस युग तक की प्रकृति पर विजय पाने तथा एक नई सृष्टि रच डालने की पूरी कहानी इस स्तंभ में क्रमशः आपके लिए फिर से शुरू से दोहराई जा रही है।

हम अपने को भाँति-भाँति की वस्तुओं से घिरा हुआ पाते हैं। पत्र लिखना हुआ तो मेज पर से फाउन्टेनपेन उठाया, पन्ने के पन्ने भर दिये। बग़ल से टेलीफोन लिया, सात समुन्दर पार बैठे हुए मित्रों से बात कर ली। कमरे से बाहर निकले, दो मिनट भी इन्तज़ार नहीं करना पड़ा कि ट्राम आयी, और बात-की-बात में आप आफिस पहुँच गये। बाहर जेठ की लू चल रही है, किन्तु आप आफिस में बैठे बिजली के पंखे के नीचे ठण्डी हवा का आनन्द ले रहे हैं। जिधर आँख उठाएँ, आपको हैरत में डाल देने-वाली चीज़ें नजर आएँगी। जरा-सा स्विच दबाया और लन्दन-पैरिस के गाने आपको सुनाई देने लगे। घर-बैठे सैकड़ों कोस दूर की घटनाएँ भी टेलीवीज़न की सहायता से अब आप देख सकते हैं।

क्या आपने कभी सोचा है कि जादू ऐसी काम कर दिखानेवाली ये वस्तुएँ कैसे बनी हैं? निस्सन्देह पेड़-पौधों की तरह प्रकृति में ये स्वयं तो उत्पन्न नहीं होतीं। तो आख़िर उनका निर्माण मनुष्य ने कैसे कर डाला? बड़े-बड़े वायुयान, विशालकाय रेल व इंजिन, इन सबको क्या मनुष्य ने किसी दैवी प्रेरणा से बना डाला या ये निरंतर अनेक पीढ़ियों तक इन समस्याओं के हल करने की उसकी कठोर लगन और साध का प्रसाद हैं।

आदिकाल में मनुष्य तत्कालीन जीवधारियों में सबसे अधिक अरक्षित और असहाय था। ख़ूँख्वार जानवरों से अपनी रक्षा करने के लिए उसके पास न तो मज़बूत पंजे, न सींग और न सुदृढ टाँगें ही थीं कि उनकी सहायता से वह शत्रुओं का मुक़ाबला कर सकता। किन्तु शायद वह ही अकेला प्राणी था, जो सोचने की शक्ति रखता था। अपनी रक्षा के निमित्त प्रति क्षण उसे तरह-तरह के उपाय सोचने पड़ते थे। इस तरह पृथ्वी पर अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए मनुष्य को बरबस आविष्कारकर्त्ता बनना पड़ा। उसके शरीर पर बाल नहीं थे कि वह ठण्ड से बच सके, निदान यहाँ भी उसे मस्तिष्क से ही काम लेना पड़ा— उसने पत्तों को जोड़कर शरीर ढकने के लिए परिधान बनाया। आधुनिक पुतलीघरों तक पहुँचने के लिए नवीन मार्ग उसी दिन खुला। इस वल्कल-वस्त्र से आधुनिक पुतलीघरों तक पहुँचने में फिर मनुष्य को कुछ विशेष कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ा—इस श्रृंखला में आविष्कारों की कड़ियाँ एक के बाद दूसरी जुड़ती ही गईं।

व्यर्थ के परिश्रम से बचने के लिए उसने सदा से ही नई-नई तरकीबें ढूँढी हैं। जंगल से ईंधन सिर पर लादकर लाने में उसे तकलीफ होती थी। उसने इस परेशानी से बचने के लिए सोचा-विचारा और तब चक्की के पाट-जैसे लकड़ी के टुकड़े काटकर उसने पहिये तैयार किये। और इस बेढंगी गाड़ी पर बोझा ढोने का काम वह लेने

लगा। पहियेदार गाड़ी के विकास का यहीं से प्रारभ होता है। मनुष्य की आविष्कारक प्रवृत्तियाँ बराबर काम करती रहीं। भद्दे पहियेवाली गाड़ियों के युग से हजार-दो हजार वर्षों के भीतर ही मनुष्य लम्बी-लम्बी रेलगाड़ियों के इस आधुनिक युग तक आ पहुँचा। इस दिशा मे अभी मनुष्य की प्रगति रुकी नहीं है। भविष्य मे क्या निहित है, इस प्रश्न के उत्तर देने का किसमे सामर्थ्य है?

कन्दराओं और अँधेरी गुफाओं से बाहर निकलकर मनुष्य ने ठूँठ से घेरकर अपने लिए घास-फूस की झोपड़ी तैयार की। इस तरह जाडे और धूप से उसने अपनी रक्षा की। फिर लाखों वर्ष तक इस झोपड़ी के सँवारने-सुधारने का काम जारी रहा और आज उसके लिए ताजमहल-जैसी सुंदर या न्यूयार्क की गगनचुंबी अट्टालिकाओं-जैसी इमारतों का निर्माण करना बाये हाथ का खेल हो रहा है। इसी प्रकार साधारण डोंगी से आधुनिक जहाजों तक पहुँचने मे मानव-समाज को एक लम्बी मजिल तै करनी पड़ी है। एक ओर आप बैलगाड़ी खड़ी कर देवें और दूसरी ओर हवा से बातें करनेवाली मोटरगाड़ी। लाख प्रयत्न करने पर भी आप यह न जान सकेंगे कि मोटर बैलगाड़ी का ही परिष्कृत रूप है! और साधारण गुब्बारों से ज़ेप्लिन तक पहुँचने की कहानी भी क्या कुछ कम आश्चर्यजनक है?

इस प्रकार आविष्कारों के बल पर मनुष्य एक-एक इंच करके सभ्यता की ज्योति की ओर बढता गया—और उसके हमजोली जगल के अन्य जानवर और ख़ासकर उसके निकटतम सबधी बदर बहुत दूर पीछे जहाँ-के-तहाँ रह गये।

निस्सदेह प्रकृति के रहस्य का पता लगाने का हमारे पुरखो ने सराहनीय प्रयत्न किया था, किन्तु वे अधिक गहराई तक पहुँच न सके। क्योंकि उनके पास उपयुक्त साधन मौजूद न थे। अपनी इन्द्रियों द्वारा ही वे बाह्य ससार का ज्ञान प्राप्त कर सकते थे—किन्तु केवल इन्द्रियाँ ही मस्तिष्क को इस रास्ते पर दूर तक नहीं ले जा सकतीं। मनुष्य का दृष्टिक्षेत्र, उसकी सुनने की शक्ति और सूँघने की क्षमता अनेक जानवरों की अपेक्षा कहीं कम है। अतएव इन घटिया क़िस्म के साधनो को लेकर प्रकृति की भूलभूलैया मे मनुष्य एक भूले हुए पथिक की तरह लाखों वर्ष तक भटका किया। आँख उठाकर उसने आसमान की ओर देखा, तो मुश्किल से हजार-दो हज़ार तारे नज़र आये। उसने भी समझा, बस आकाशपिंडों की सख्या इतनी ही है। किंतु उस समय भी अरबों और खरबों की सख्या मे आज ही की तरह आकाश मे तारे टिमटिमाते थे। फिर जब वह अपने पैरों की ओर धरती पर नज़र डालता, तो शायद एकाध चींटियाँ उसे दिखाई दे जातीं—उसे स्वप्न मे भी ख़याल नहीं था कि उस मिट्टी मे करोड़ों पिस्सू और क्षुद्र कीटाणु बिलबिलाते रहते हैं। रास्ता चलते समय उसके पैरों से जब ठोकर लगती, तो आज की भाँति उन दिनों भी ककड़ों मे विद्युत् का सचार हो आता—किंतु इन सब बातों से अनजान, वह अपनी पुरानी चाल से मुद्दतों तक चलता रहा, वह तो इस ख़याल में था कि आँख मूँदे हुए समाधि लगाकर ही वह प्रकृति के रहस्य का पता लगा सकेगा!

लेकिन इतिहास बताता है, इन जटिल गुत्थियों की दो-एक गाँठ भी खोलने के पहले, मनुष्य को हजारों सैकड़ों आविष्कार अपनी इन्द्रियों की परिमित शक्ति

मानव जाति के भविष्य का निर्माता—वैज्ञानिक

प्रयोगशालाओं में रात दिन यंत्रों द्वारा छान-बीन करनेवाले वैज्ञानिक की लगन और तपस्या ही के फलस्वरूप आज हमें रेल, मोटरें और हवाई जहाज़ आदि मिले हैं।
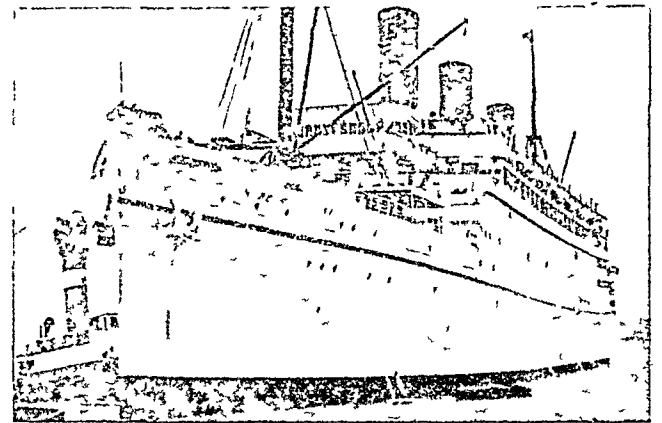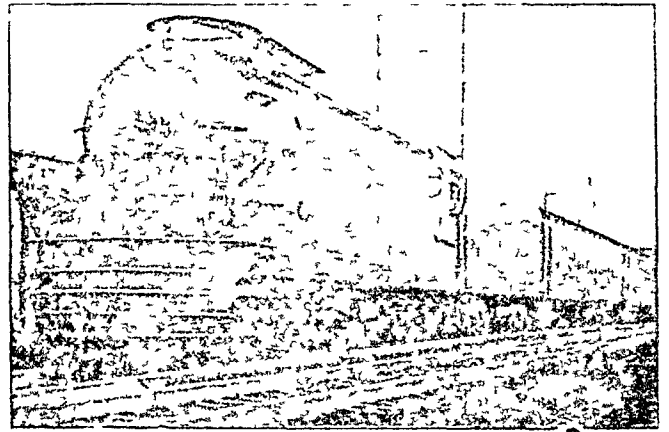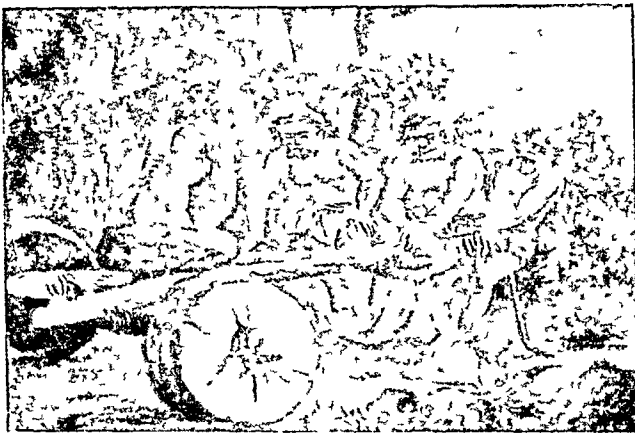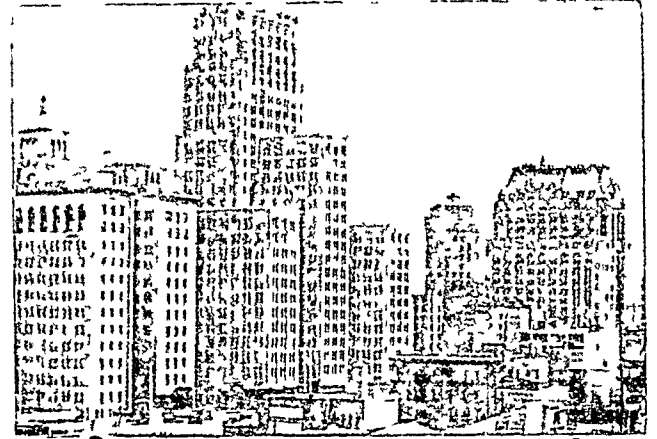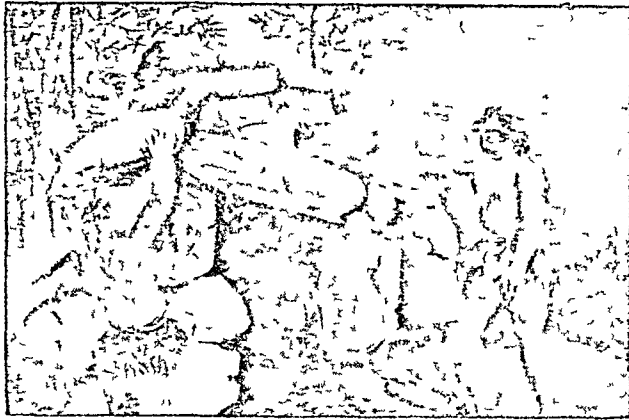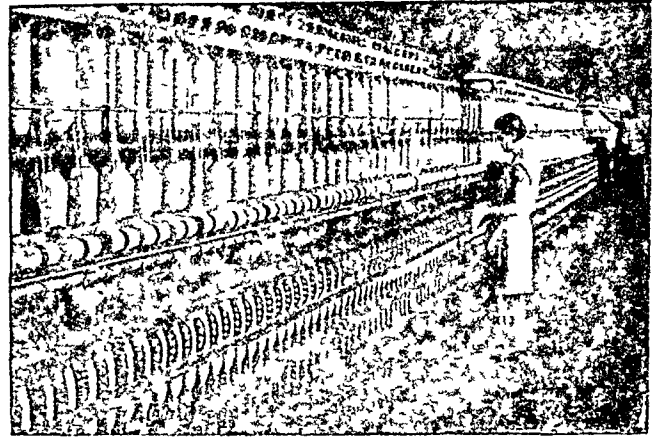
मनुष्य की आविष्कारक प्रवृत्ति का विकास

(ऊपर से नीचे) पहली पंक्ति में—आदि मानव का पहले-पहल पत्तों से शरीर ढकने का प्रयत्न, और आज का पुतलीघर; दूसरी पंक्ति से—आदिम कुटिया की रचना, और आज की गगनचुंबी अट्टालिकाएँ; तीसरी पंक्ति मे—आदिम पहियोंवाली गाड़ी, और आज का रेल का इंजिन, चौथी पंक्ति में—आदिम डोंगी की रचना और आज का जहाज़।

बढाने के लिए करने पडे—आजकल के यत्रयुग की नींव भी तभी पडी।

आँखों की शक्ति बढाने के लिए उसने दूरदर्शक और सूक्ष्मदर्शक यत्रों का निर्माण किया और तब अनन्त अन्तरिक्ष म प्रवेश करने मे वह सफल हो सका। दूरदर्शक की सहायता से उन आलोक-रश्मियों का उसे पहली बार परिचय मिला, जो हजारो वर्ष पहले पृथ्वी तक पहुँचने के लिए रवाना हो चुकी थी। जगत् की विशालता का मनुष्य को पहली बार सही पैमानों पर अन्दाज मिला। सूक्ष्मदर्शक की सहायता से सूक्ष्म दृष्टि भी उसने प्राप्त की—अदृश्य वस्तुओं को भी देखने मे वह समर्थ हुआ। उसने इन सूक्ष्म पदार्थो का अध्ययन किया और इस तरह पदार्थ के मूल तत्त्वो तक पहुँचने के लिए वैज्ञानिक को रास्ता दिखाई पडा। अणु-परमाणुओं की समस्या वह हल कर सकेगा, इस आशा का उसके मन मे सचार हुआ।

किंतु मनुष्य की जिज्ञासा बड़ी ही बलवती है, वह तृप्त होनेवाली वस्तु नहीं है। मनुष्य अपने दृष्टिक्षेत्र को बढाने का प्रयत्न करता ही गया और अब उसके लिए घर बैठे दूरदर्शन (टेलीविजन) भी लभ्य है। टेलीविजन के आविष्कार ने मनुष्य की इस चिरसचित अभिलाषा को भी पूरा कर दिखाया।

कानो की शक्ति बढाने के लिए भी उपयुक्त यत्रों की रचना की गई। टेलीफोन ने तार के ज़रिये हजारों कोस की दूरी पर बैठे हुए व्यक्तियो से बात करने की शक्ति मनुष्य को प्रदान की। किंतु इस क्षेत्र मे भी मनुष्य यहाँ रुका नहीं, वह निरन्तर आगे ही बढता गया, और आज वह लाखों मील की दूरी पर बैठे मित्रों से 'रेडियो' द्वारा एकदम शून्य मे बातचीत करने लग गया है।

ताप का अनुभव करने की शक्ति भी मानव शरीर मे कुछ अधिक नही है—कभी-कभी तो ताप के ज्ञान में उसे धोखा भी हो जाता है। अतएव इस काम के लिए भी उसने आश्चर्यजनक यत्र बनाये। वैज्ञानिक अपने थर्मामीटर से मील भर की दूरी पर रक्खी हुई मोमबत्ती की गर्मा को भी नाप सकता है। यही नहीं, प्रयोगशालाओं मे अनेक यत्र ऐसे भी मिलेंगे, जिनकी सहायता से वैज्ञानिक दिव्य दृष्टि प्राप्त कर आकाशीय नक्षत्रों के बारे में जानकारी हासिल करता है। अमुक नक्षत्रों मे कौन से पदार्थ मौजूद हैं—वे वाष्प के रूप मे वहाँ हैं या द्रव रूप मे? उस नक्षत्र का वजन क्या है? उसका तापक्रम कितना है? इन सब प्रश्नों का उत्तर प्रयोगशाला मे बैठा हुआ वैज्ञानिक खोजता रहता है। यदि आपको उसकी बात में किसी प्रकार का सदेह है, तो आप खुशी से प्रयोगशाला मे चले आइए और स्वय अपनी आँखों से इन प्रयोगो का निरीक्षण कीजिए—एकदम सचाई का सौदा, एकदम खरा व्यवहार। अध श्रद्धा, विश्वास—इन सब चीजों की दुहाई वैज्ञानिक नहीं देता।

प्रकृति का विश्लेषण कर उसके रहस्य को वैज्ञानिक ने भलीभाँति पहचाना, और इस तरह प्रकृति के ऊपर उसने अपना प्रभुत्व भी जमाया। समुद्र की उत्ताल तरगो से वह अब भय नहीं खाता, वरन् विशालकाय जहाजों पर वह स्वच्छन्दतापूर्वक समुद्र के वक्षःस्थल के ऊपर तैरा करता है। दूरी भी अब उसे नही खलती। पहले जो मजिले महीनों मे तै होती थी, उन्हे अब वह पाँच मिनट में तै कर लेता है। शीघ्रगामी मोटरों पर वह बिजली की भाँति तीव्र गति से एक स्थान से दूसरे स्थान को डोलता फिरता है। आकाश में भी पक्षी की भाँति वह निर्द्वन्द विचरने लगा है। घटे मे ४०० मील की गति तो उसने प्राप्त कर ही ली है, और वह आशा करता है कि शीघ्र ही ५०० मील प्रति घटे की गति से आकाश मे उडेगा। आश्चर्य नही, कुछ ही दिनों मे जलपान हम बम्बई मे करे और दोपहर का भोजन लन्दन मे! समूची पृथ्वी सिकुड़कर मानो वैज्ञानिक के लिए एक छोटा-सा प्रदेश बन गया है। पनडुब्बियो मे बैठकर वैज्ञानिक समुद्र के गर्भ मे भी प्रवेश करता है। इस तरह रत्नाकर की तह मे भी वह पैठ रहा है।

प्रकृति की किसी रुकावट के सामने वह हार मानने को तैयार नही है। अनेक मोर्चे उसने फतह कर लिये हैं और जो बाक़ी हैं उन पर भी वह विजय प्राप्त कर लेगा, इसका उसे दृढ विश्वास है। हर प्रकार से वैज्ञानिक प्रकृति पर हावी हो रहा है—जो बाढ सहस्रों गाँवों को नष्ट-भ्रष्ट कर देती थी आज उसी का जल बाँध से घेरकर रेगिस्तानों के सींचने के काम आता है। जहाँ चारों ओर बालू-ही-बालू थी, वहाँ अब हरे-हरे धान के खेत लहलहाते नजर आते हैं। ऊँचे ऊँचे पहाडी झरनो से पजाब, बम्बई, युक्तप्रान्त सब कहीं विद्युत्-शक्ति प्राप्त की जा रही है। सस्ती लागत पर इन झरनों से प्राप्त की गई विद्युत्धारा मोटे-मोटे तारों के जरिये पावरहाउस मे पहुँचती है, और फिर वहाँ से शहर या गाँव के प्रत्येक घर मे उसका वितरण होता है। रात को सड़के, गली और मकान का अधकार यह दूर करती है, आधुनिक चूल्हो पर वह खाना भी पकाती है। नगर के निवासियों को टेलीफोन और तार के ज़रिये एक घनिष्ट सूत्र

में वह बाँधती भी है। कारख़ानों मे आपकी मशीनों का परिचालन करती, आपके लिए आटा पीसती, खेत सीचती तथा अन्य सभी छोटे-मोटे काम करती है। इस नई शक्ति ने पहाड़ी प्रान्तों को, जो अब तक कारोबार की दृष्टि से पिछड़े हुए थे, एक अद्‌भुत् महत्त्व प्रदान कर दिया है। लोहे के कारख़ानो मे भट्टियों को प्रज्ज्वलित रखने के लिए कोयले के बजाय विद्युत् का प्रयोग हो रहा है—विद्युत् शक्ति की सहायता से चूना, सोडा तथा अमोनिया-जैसी काम की चीज़ें हवा से पैदा की जा रही हैं।

अपने बाहुबल बढाने के उद्देश्य से मनुष्य ने सैकड़ों प्रकार की मशीनें ईजाद की हैं, जिनकी मदद से वह तरह-तरह की वस्तुएँ तैयार करता है। प्राचीन युग मे लाखों की सख्या मे लोग चींटियों की तरह जुटकर किसी भारी काम को पूरा कर पाते थे। कहा जाता है, मिस्र के स्तूपों के निर्माण मे एक लाख से अधिक मज़दूरों की आवश्यकता पड़ी थी; किंतु वैज्ञानिक युग की इस बीसवीं शताब्दी मे अस्सी-अस्सी तल्ले की गगनचुम्बी इमारतें मशीनों की सहायता से थोड़े-से व्यक्ति बात-की-बात मे तैयार कर लेते हैं। मशीनों की बदौलत अकेला व्यक्ति हज़ारों आदमियों से ज़्यादा काम कर लेता है।

आज दिन हमारे पास पाँच ही नहीं, वरन् सैकड़ों इन्द्रियाँ हैं—और उनकी सहायता से मनुष्य प्रति दिन चमत्कारपूर्ण कृतियाँ उत्पन्न कर रहा है। मशीनो के बल पर वह पर्वतों और नदियों की परवा नही करता। पर्वत-श्रेणी के उस पार जाना है तो वैज्ञानिक २॥ दिन का रास्ता ६ दिन मे नही चलेगा, वह सीधे पहाड़ को छेदकर अपने लिए इस पार से उस पार तक सुरंग बनाएगा। नदी के उस पार जाना है, तो वह ऊँचे-ऊँचे मीलो लम्बे पुल बना डालेगा, जिन्हें देखकर स्वयं विश्वकर्मा भी लज्जित हो जायँ, या नदी के नीचे सुरंग खोदकर वह अपने लिए रास्ता बनाएगा। लदन की सड़कों पर उसने बेहद भीड़ देखी, फ़ौरन् ज़मीन के नीचे सुरंगें बनाई गईं, और उनमें विशालकाय लोहे की ट्यूबों के जाल बिछा दिये गये। रात-

प्रकृति का विजेता—मनुष्य
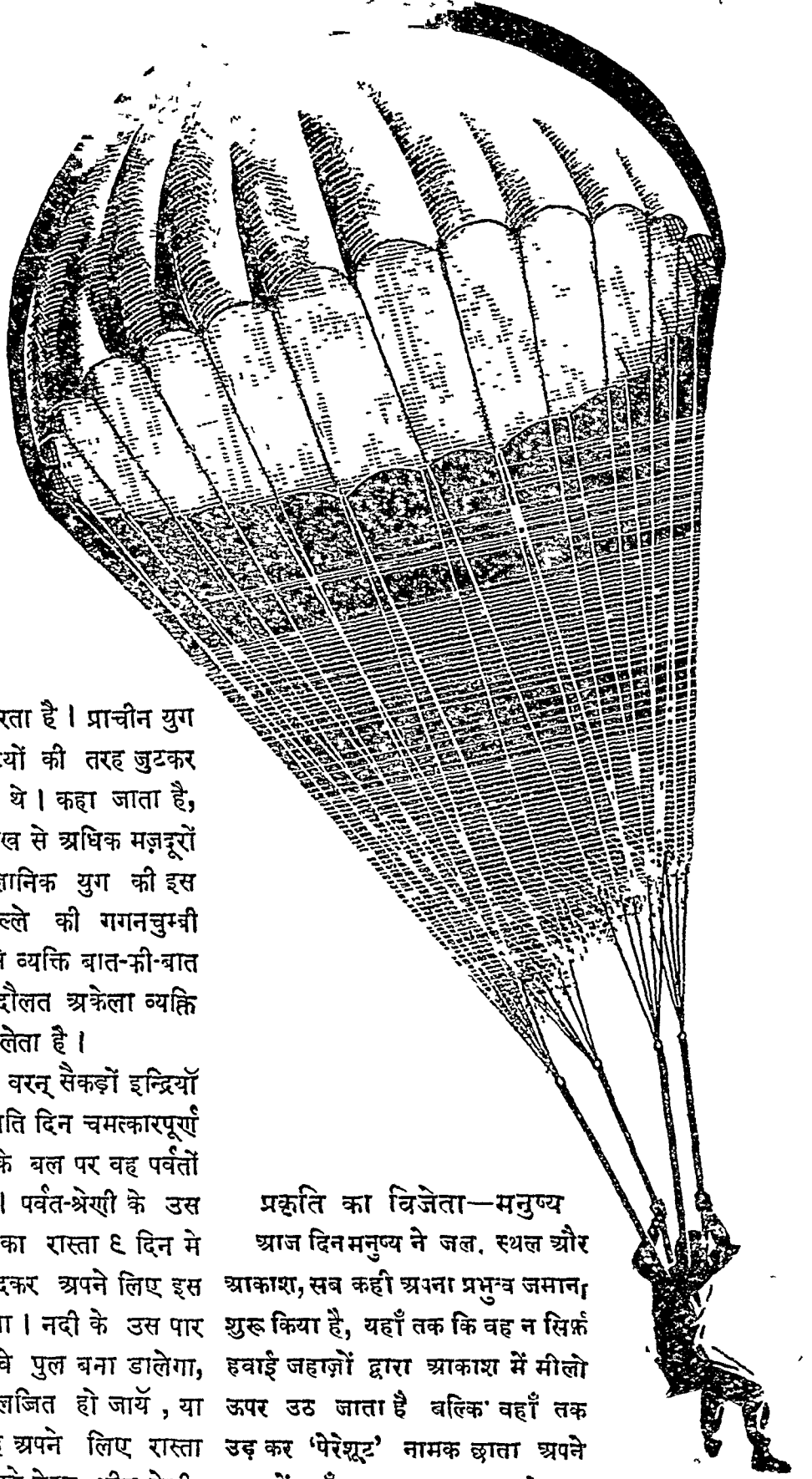
आज दिन मनुष्य ने जल, स्थल और आकाश, सब कहीं अपना प्रभुत्व जमाना शुरू किया है, यहाँ तक कि वह न सिर्फ़ हवाई जहाज़ों द्वारा आकाश में मीलो ऊपर उठ जाता है बल्कि वहाँ तक उड़ कर 'पेरेशूट' नामक छाता अपने बदन में बाँधकर शून्य आकाश मे कूद पड़ता है और धीरे-धीरे धरती पर आ जाता है। ऊपर इसी का चित्र दिया गया है।
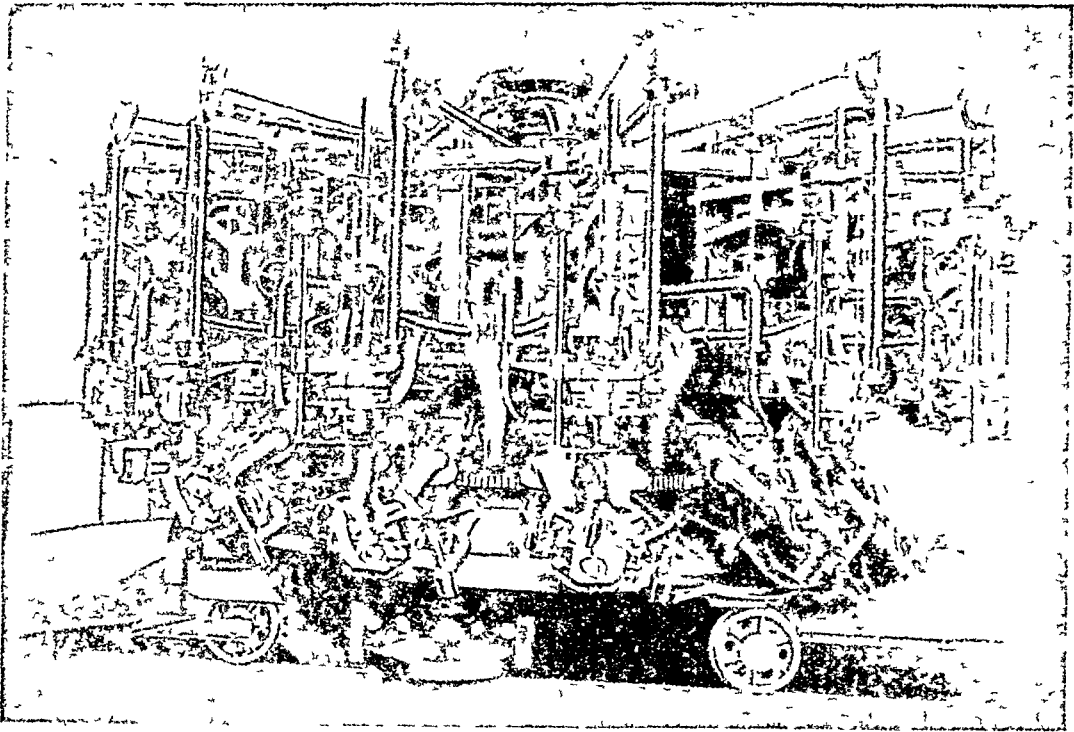
आज के मनुष्य की जादू की लकड़ी—मशीन

जिसे घुमाते ही अब उसके काम आप ही आप होने लगते हैं। ऊपर एक ऐसी ही शैतान की आँत-जैसी पेचीदा मशीन का चित्र है। इसमे १० हज़ार से अधिक पुर्जे हैं। यह शीशे की बोतलें बनाने का काम करती है और इतनी बुद्धिमानी, सावधानी और कोमलता के साथ इस काम को करती है कि कागज की तरह पतले शीशे मे भी इससे खरोच तक नही लग पाता। फिर भी इसमें इतनी शक्ति है कि ५० हाथियो को यह उनकी पूँछ पकड़कर एक साथ ही घुमा सकती है ! इससे ११५ बोतल प्रति मिनट तैयार होती हैं।

मनुष्य की नई शक्ति—विद्युत्

जिसको पाकर अब छोटे से बडे तक सभी काम वह केवल ज़रा-सा स्विच या बटन दबाकर ही करा लेता है। बिजली आज दिन मनुष्य की सभ्यता की नींव हो रही है। प्रकाश, तार, टेलीफ़ोन, कल कारख़ाने, रेडियो आदि सभी कुछ मनुष्य को बिजली की देन है।

[फ़ोटो 'फ़ोर्ड मोटर कंपनी आफ़ इण्डिया' की कृपा से प्राप्त।]
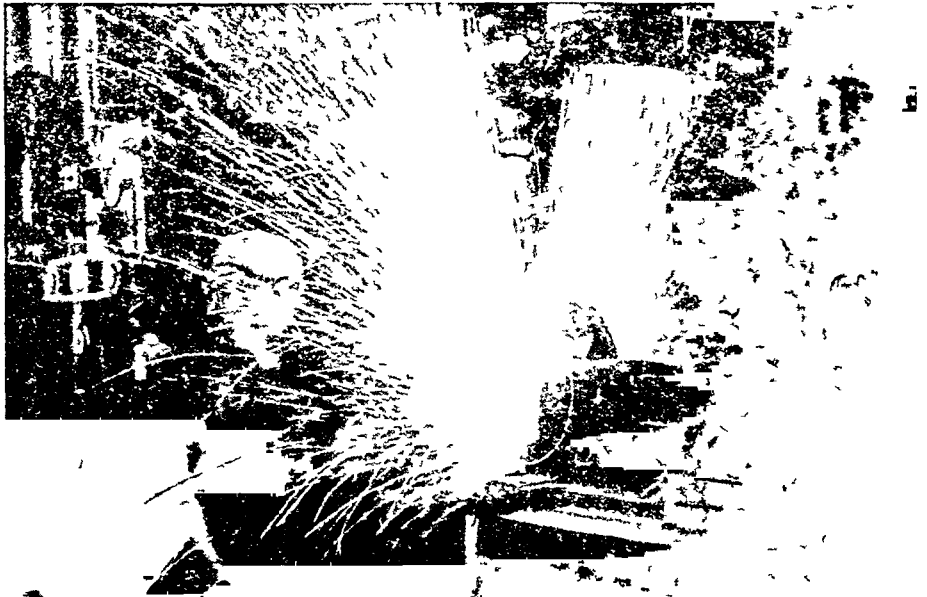
दिन अब वहाँ शहर के कोलाहल से परे रेलें दौड़ा करती हैं।

विज्ञान के महारथियो ने तो अब कृत्रिम रेशम, कृत्रिम रबड, इत्र, सेन्ट आदि भी बनाना आरभ कर दिया है। ये वस्तुएँ नक़ली होने पर भी असली चीज़ो से किसी भी तरह घटिया नही उतरती। नक़ली रेशम इतने बढिया किस्म का आपको मिल सकता है कि डेढ सेर धागे से समूची पृथ्वी को आप एक बार घेर सकते हैं।

पिछले सौ वर्षों में अनेक काम मशीनो द्वारा सपादित होने लग गये हैं। और ये मशीनें न तो कभी ग़लती करती हैं, न थकती ही हैं। कोई कह नही सकता कि इनकी बदौलत वैज्ञानिक निकट भविष्य मे क्या न कर दिखाएगा। ५० वर्ष पूर्व जब एक्स-रे का पहली बार पता चला था, किसी के मस्तिष्क मे यह ख़याल भी न आया था कि एक दिन इन किरणो का प्रयोग हमारे अस्पतालों मे भी होगा। लेकिन आज छोटे-बडे सभी अस्पतालों मे एक्स-रे फोटोग्रामी का सामान आपको मिलेगा—फेफडे मे कोई ख़राबी तो नही है, या शरीर के भीतर कही हड्डी तो नही टूट गई है? इनका पता आप एक्स-रे से लिये गये फोटोग्राफ से फौरन् लगा सकते हैं। चर्मरोगों की चिकित्सा मे भी एक्स-रे का प्रयोग प्रचुरता से होता है। जब डायनमो के सिद्धांत पर विद्युत्धारा उत्पन्न करने की प्रणाली का सर्वप्रथम आविष्कार प्रो० फैरेडे ने किया, तो एक सम्भ्रान्त कुल की महिला ने फैरेडे से प्रश्न किया—'आखिर तुम्हारे इस नवीन आविष्कार से समाज को क्या लाभ है?' फैरेडे ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया—'श्रीमती जी, क्या आप बता सकती हैं कि आपकी गोद का यह बच्चा बडा होने पर क्या कर दिखाएगा?' आज फैरेडे के उक्त आविष्कार के सौ वर्ष के भीतर ही डायनिमो द्वारा उत्पन्न की हुई बिजली सडको या
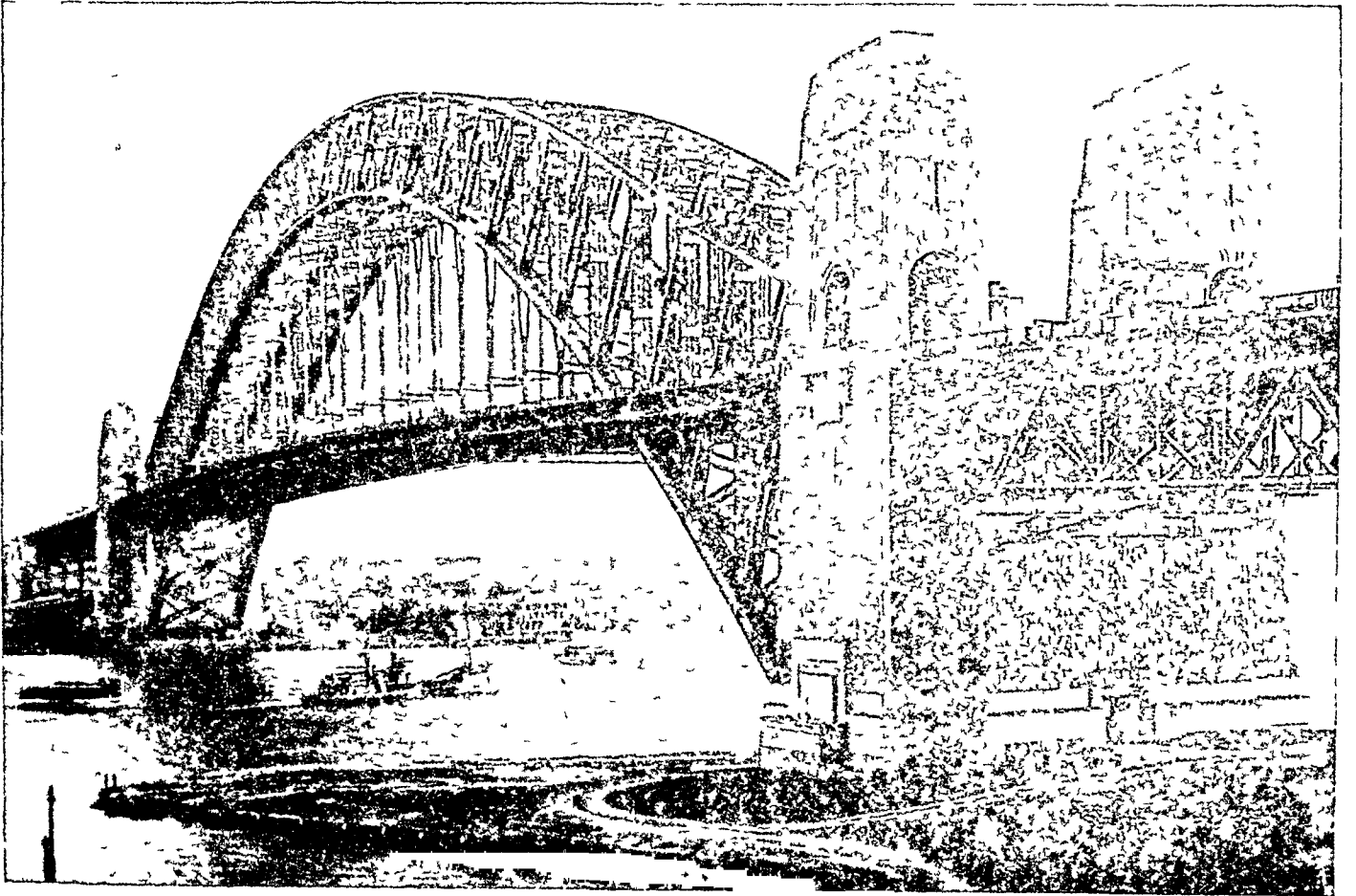
विश्वकर्मा को भी लज्जित करनेवाली मनुष्य की भीमकाय कृतियों का एक नमूना—सिडनी वन्दरगाह का पुल

जो दुनिया का सबसे लंबा तो नहीं, किन्तु एक मेहराववाले पुलों में सबसे विशाल और भारी है। इसकी बीच की मेहराब १६५० फीट लंबी और पानी से १७० फीट ऊँची है। बडे-बडे जहाज आसानी से इसके नीचे से निकल जाते हैं। इस पुल मे कुल १४ लाख मन लोहा लगा है। लंबाई मे सबसे लंबा पुल सेन फ्रांसिस्को का 'गोल्डन ब्रिज' है, जो १२ मील लंबा है।

कारखानों मे और आपके घरों मे इस्तेमाल की जा रही हैं। बिजली की रेलगाड़ियाँ सवारी और माल ढो रही हैं। बिजली द्वारा परिचालित क्रेन अपने जबड़ो मे बडे-बड़े इजिनों को तिनके की भाँति एक स्थान से दूसरे स्थान पर उठाकर रख देते हैं। न तो कही धुआँ है न कोयले की राख। सूर्य को भी मात करनेवाली सर्चलाइट बिजली ही की बदौलत हमे प्राप्त हुई है। टेलीफोन और वायरलेस भी विद्युत्शक्ति ही द्वारा सचालित होते हैं।

पेड़-पौधो की दुनिया में भी विज्ञान ने कमाल कर दिखाया है। कृषि-विज्ञान के आचार्य सर्वथा नवीन प्रकार की वनस्पतियाँ उत्पन्न कर रहे हैं। इन नये फूलों के रग और आकार-प्रकार पहले के फूलो से कही बढ-चढकर हैं। नये फूल पत्तों के उत्पादन के साथ-ही-साथ वैज्ञानिक इस बात का भी प्रयत्न कर रहा है कि ठण्डे देश के पौधे गर्म देशो मे और गर्म देश के पौधे ठण्डे देशों मे उगाये जा सके। सोवियट रूस इस क्षेत्र मे सबसे आगे बढा हुआ है। उत्तरी रूस के बर्फीले प्रातों में नये उपनिवेश बसाए जा रहे हैं, वैज्ञानिक रीति से वहाँ फल और तरकारियों की कृषि एक भारी पैमाने पर की जा रही है। कल जहाँ वीरान था, आज वहाँ नगर बस गये है, चारों ओर चहल-पहल है। जर्मनी मे तो शाकभाजी, बिना मिट्टी और धूप के, प्रयोगशाला के भीतर ही रासायनिक द्रव्यों की सहायता से उत्पन्न की जाने लगी है। आश्चर्य नहीं, इस रीति से लोग फैक्टरियो के भीतर ही निकट भविष्य मे टोपी और छतरी की तरह शाकभाजी भी पैदा करने लगें। और तब किसी भी फल या शाकभाजी को पैदा करने के लिए विशेष ऋतु की हमे प्रतीक्षा नहीं करनी पडेगी। आधुनिक बाग-बानी और कृषि-प्रणाली मे एक ज़बर्दस्त क्राति उत्पन्न हो जायगी।

आधुनिक चिकित्सा-शास्त्र पर भी विज्ञान की गहरी छाप लग चुकी है। 'सर्जरी' को ही लीजिए। क्लोरोफार्म-जैसी औषधियो की सहायता से डाक्टर आश्चर्यजनक करतब कर दिखाते हैं। साधारण फोड़े की चीरफाड़ की बात जाने दीजिए, वह तो डाक्टरों के बाएँ हाथ का खेल है। अब तो सार्जरी का उपयोग आपके शरीर की काट-छाँट के लिए भी होने लगा है। सर्जरी की बदौलत योरप की कितनी ही कुरूप स्त्रियाँ आज सौंदर्य प्रतियोगिताओ मे भाग ले रही हैं। जिनकी नाक चिपटी थी उन्होंने शरीर के अन्य अगों से चमडा कटवाकर उसे सुडौल करा लिया। किसी ने अपने अधर ठीक कराये। घंटों आपरेशन होता रहे, किंतु रोगी को कोई कष्ट नहीं। इस प्रकार शल्य-चिकित्सा विज्ञान एक नवीन युग मे पदार्पण कर रहा है—मनुष्य दूसरा सृष्टिकर्त्ता बनने जा रहा है। प्रयोगशाला में बैठा हुआ डाक्टर मानव-शरीर के किसी भी ख़राब पुर्जे को बदलकर उसकी जगह नया और स्वस्थ पुर्जा लगा सकने का स्वप्न देख रहा है। अभी हाल मे अमेरिका के एक डाक्टर ने एक मरते हुए व्यक्ति की आँख मृत्यु के कुछ मिनट पहले निकालकर एक अधे पादरी की आँखों में लगा दी है। अधा पादरी अब बख़ूबी देखने लग गया है। पैरिस के एक डाक्टर ने कृत्रिम हृदय बनाने का भी प्रयत्न किया है। इसकी मदद से उसने एक मुर्गी के शरीर से निकाले हुए गुर्दे और जिगर को लगभग तीन सप्ताह तक जीवित बनाये रक्खा था। इस प्रकार मृत्यु पर भी विजय प्राप्त करने का निरतर उद्योग हो रहा है।

किंतु जितने भी आविष्कार आज आप देखते हैं उनका निर्माण वैज्ञानिक ने अचानक एक दिन मे नहीं कर डाला है वरन् प्रत्येक आविष्कार के पीछे एक लबी और परिश्रम से भरी कहानी है। हरएक नई खोज मे उच्च त्याग और लगन निहित है। एक महान् तपस्या—एक अटूट साधना की इसमे आवश्यकता होती है। इस वैज्ञानिक सृष्टि के निर्माण का श्रेय सहस्रों छोटे-बडे वैज्ञानिकों को है, जिनमे से प्रत्येक ने अपने हिस्से की दो दो चार-चार ईटे रक्खी हैं, प्रत्येक ने अपने हिस्से का त्याग किया है। किसी ने रेडियम के प्रयोग मे अपना हाथ गला डाला, तो कोई सूक्ष्मदर्शक के सग उलझकर अधा बन बैठा।

इस तरह हम देखते हैं कि मनुष्य ने आविष्कारों के पथ मे एक लबी मजिल पार कर ली है, और अब वह ब्रह्मा से होड़ लगाकर अपने लिए एक नवीन ससार का निर्माण करने मे दत्तचित्त है। कदाचित् लाखो वर्ष तक वह अज्ञान के गहरे खड्ड मे पडा-पड़ा प्रकृति पर क़ाबू पाने की कोशिश करता रहा, और अब इतने दिनों उपरान्त वह प्रकृति के रहस्योद्घाटन मे सफल हो सका है। विज्ञानरूपी अलाउद्दीन का चिराग उसे मिल गया है—और इससे भरपूर फायदा उठाने का वह प्रयत्न कर रहा है।

पलक मारते-मारते मनुष्य चीटी से हाथी बन गया। विज्ञान की बदौलत उसने ससार की कायापलट कर दी है। तरह-तरह के आविष्कारो द्वारा चारों ओर उसने चकाचौध पैदा कर दी है। उसके हाथों मे शक्ति के अक्षुण्ण भण्डार की कुंजी आ गई है।
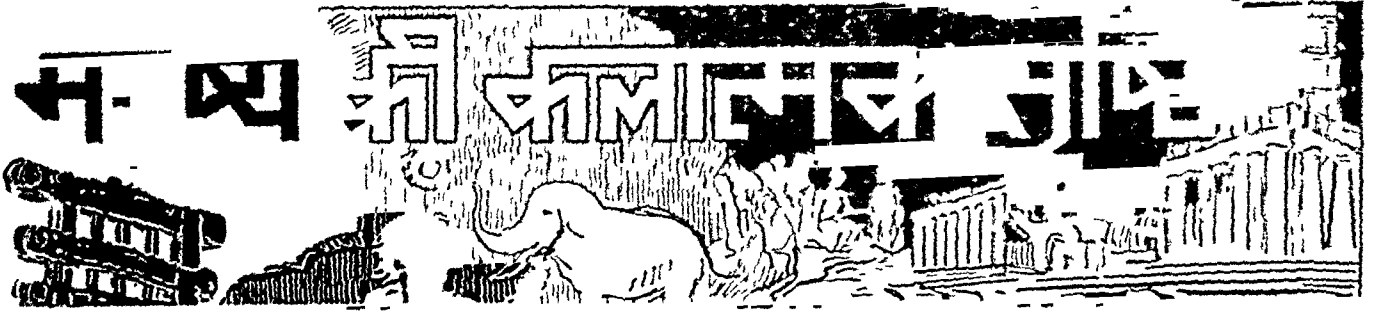
कला का आरंभ

मनुष्य की जिस नवीन सृष्टि का हमने पिछले स्तंभों में उल्लेख किया है, उसका उद्देश्य केवल उसकी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति ही रहा है। किन्तु इसके अतिरिक्त हम मनुष्य को एक और अद्भुत सृष्टि के निर्माता के रूप में भी देखते हैं, जो उसकी आध्यात्मिक भूख का परिणाम है, जिसकी तृप्ति के लिए वह अपने इतिहास के प्रभातकाल ही से बेचैन रहा है। उसकी यह पिपासा उसके बनाये हुए चित्रों, मूर्तियों, कारीगरी की वस्तुओं, इमारतों, गीतों तथा नृत्य के हावभावों के रूप में प्रति युग में प्रकाशित होती रही है। इस स्तंभ में मनुष्य की जीवनी के इसी विशेष अध्याय की कहानी है।

जब हम अपने चारों ओर देखते हैं, तो हमें निःसंशय रूप से दो प्रकार की वस्तुएँ दिखाई पड़ती हैं—एक तो ईश्वर की बनाई हुई, अर्थात् प्राकृतिक; दूसरी मनुष्य की बनाई हुई या कृत्रिम। सूर्य, चंद्र आदि आकाश के कौतुक; ऊँचा सिर उठाये विशाल पर्वतमालाएँ; तरंगाकुल महासागर और छोर-हीन मरुप्रदेश; जाति-जाति के पशु-पक्षी और मनुष्यों के विभिन्न रंग-रूप और बोलियाँ; फूलों का सौंदर्य, इठलाती और बल खाती हुई नदियों का बाँकापन—संक्षेप में, जो भी वस्तु प्रकृति में हमें दिखाई पड़ती हैं, वे सब उस ईश्वर की महिमा का गुण गान और उसकी कारीगरी का प्रदर्शन करती हैं। इसके विपरीत, घर्राटे के शब्द के साथ मानो आकाश की छाती को चीरते हुए वायुयान, पहाड़ों को छेदकर लाँघती हुई रेल-गाड़ियाँ, महासागर की अनन्त जल-राशि पर तैरते हुए जहाज़, रेगिस्तानों को भी हरा-भरा बना देनेवाली नहरें और बाँध, गगनचुम्बी अट्टालिकाओं से युक्त संसार के बड़े-बड़े नगर, तथा इसी प्रकार की अन्य हजारों वस्तुएँ, जिनकी कि बदौलत मानव-जीवन को आज का रूप मिला है, मनुष्य की युग-युग-व्यापी सृजन-शक्ति के कौशल का परिचय दे रही हैं। वास्तव में, आज के हमारे नित्य उपयोग की सामान्य-सी प्रतीत होनेवाली वस्तुओं की भी आज का आविष्कार करने तथा उन्हें आज के इस पूर्ण रूप तक पहुँचाने में मनुष्य को सदियों तक कठोर तपस्या करनी पड़ी है। उदाहरण के लिए, बर्तन बनाने या कातने-बुनने की कला का उद्भव इतिहास के प्रभातकाल से भी बहुत पहले के युग में हो चुका था, और सच पूछिए तो हम में से कोई भी नहीं जानता कि कब और कहाँ हमारे पूर्वजों ने कुम्हार के चाक, या हाथ के करघे के प्राथमिक मोटे रूप का आविष्कार किया। इसी प्रकार, खनिज कच्ची धातुओं से शुद्ध धातु निकालने, लकड़ी से भिन्न-भिन्न वस्तुएँ बनाने, और ऐसे अन्य सभी छोटे-बड़े कारीगरी के कामों की आरंभिक प्रक्रियाओं के श्रीगणेश की कहानी, जिसके कि बारे में आज-कल के इस सभ्यता के युग में क्षण-भर के लिए भी कोई सोचने-विचारने का कष्ट न करेगा, प्रागैतिहासिक युग की भूली हुई शताब्दियों के धुँधले कुहरे में विलुप्त हो गई है।

ऊपर जो-जो वस्तुएँ हमने गिनाई हैं, उनसे तुम्हें ज्ञात होगा कि मानव द्वारा बनाई हुई अधिकांश वस्तुएँ उसके उपयोग की ही वस्तुएँ हैं, जो प्रकृतिजन्य आपदाओं से रक्षा कर पृथ्वी पर उसके जीवन को अधिक सुगम बनाती हैं। किन्तु इन उपयोग की वस्तुओं के अतिरिक्त मनुष्य की बनाई हुई कुछ और भी वस्तुएँ हैं—जैसे सजावट की चीज़ें, चित्र और मूर्तियाँ आदि, जिनका उसकी शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति से कोई सम्बन्ध नहीं, फिर भी जो एक प्रकार से उसके आध्यात्मिक कल्याण के लिए उतनी ही अनिवार्य रूप से आवश्यक हैं, जितना कि उसके खाने के लिए भोजन, पहनने के लिए वस्त्र और रहने के लिए मकान। इन्हीं वस्तुओं, अर्थात् चित्रकला, शिल्प, स्थापत्य, आदि के

क्षेत्रों में मनुष्य की रचनात्मक कृतियों—का विवेचन इस और आगे के प्रकरणों में हम करेंगे।

जिस प्रकार कि यह ठीक-ठीक कहना असम्भव है कि कब पहले-पहल मनुष्य ने कुम्हार के चाक, या हाथ के करघे का आविष्कार किया, उसी तरह किसी दूर के युग में इसकी भी ठीक-ठीक शताब्दी या तिथि निश्चित करना असम्भवप्राय है कि कब मनुष्य की ललित कलाओं का यथार्थ में आरम्भ हुआ। कोई भी निश्चित रूप से इस बात को नहीं बता सकता कि वह कौन-सी भावना थी जिसने हमारे आदिम पुरखों को उन दूर के युगों में अपने थोड़े-बहुत घरेलू औजारों पर नक्काशी करके उन्हें सजाने का प्रयत्न करने के लिए प्रेरित किया, न यही कोई बता सकता है कि पृथ्वी के किस विशेष भाग में मनुष्य-जाति की कलाओं की सर्वप्रथम किरणें फूटीं। शनैः-शनैः एक के बाद एक आनेवाली शताब्दियों और महाकल्पों के प्रवाह में मनुष्य की कलात्मक और रचनात्मक कृतियों के सबसे पूर्व के स्मारक सदा के लिए लुप्त हो गए और जो कुछ थोड़ा-बहुत बच पाया है, उसका भी बहुत-कुछ पता लगाना अभी बाकी है। यही कारण है कि हमारे लिए निश्चयात्मक रूप से यह निर्णय करना असम्भव-सा ही है कि मनुष्य की आदिम कलात्मक प्रक्रियाओं का ठीक रूप क्या था या किस युग में इनका सर्वप्रथम आरंभ हुआ था; यद्यपि प्रागैतिहासिक युग की कला के जो टूटे-फूटे स्मारक हमें प्राप्त हुए हैं, उनसे स्पष्टतया हम थोड़ा-बहुत निष्कर्ष अवश्य निकाल सकते हैं और उनके आधार पर बहुत-कुछ कल्पना भी कर सकते हैं।
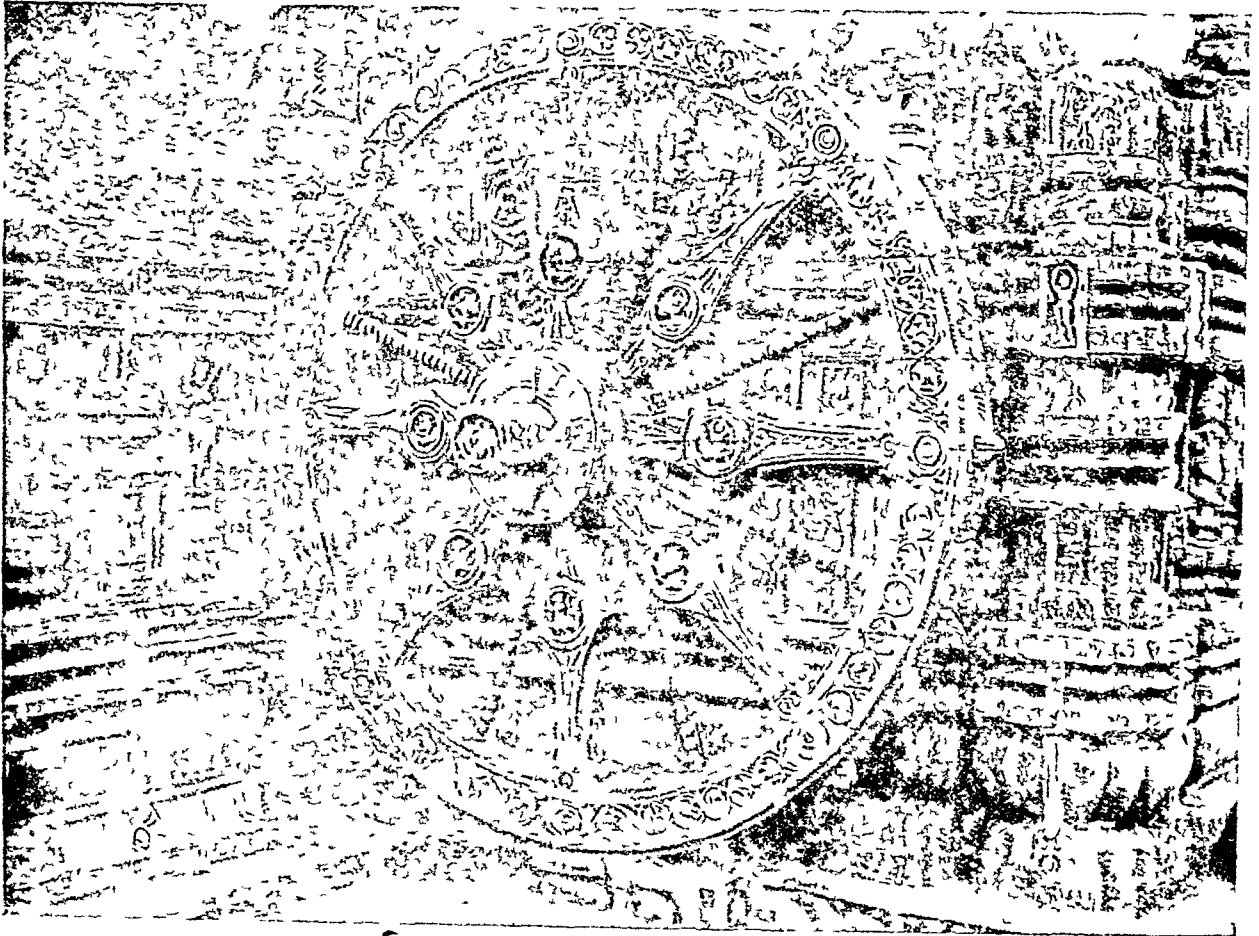
मनुष्य की सौन्दर्योपासना और कला की भूख का एक उत्कृष्ट उदाहरण

उड़ीसा के कोनार्क नामक स्थान में कई शताब्दियों पूर्व के पाषाण में बने हुए सूर्य के रथ का एक चक्र, जो इस बात को पुकार-पुकार कर कह रहा है कि चिरकाल ही से भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ-साथ अपनी आध्यात्मिक भूख मिटाने के लिए भी मनुष्य सदैव प्रयत्नशील रहा है—और इसका एक मुख्य क्षेत्र कला का क्षेत्र है।

अल्टामीरा की गुफाओं के कुछ चित्र

कला के लिए मनुष्य की स्वाभाविक चिर पिपासा के बारे मे धुरधर विचारकों और दार्शनिको द्वारा सदियों से बहुत-कुछ कहा जा चुका है। इस विषय की बहुत-सी बातो पर, चाहे वे कितनी ही उपयोगी या मनोरजक क्यो न हो, यहाँ इस समय कुछ कहना व्यर्थ है। यहाँ तो इतना ही कहना पर्याप्त है कि जब से मनुष्य का इस पृथ्वी पर आविर्भाव हुआ, तब से ही उसकी आत्मा मे मज़बूती से जड जमाये हुए सौन्दर्य्य-दर्शन की एक तीव्र भावना सदैव विद्यमान रही है, जिसे वह स्वनिर्मित ध्वनि, आकार और रग के माध्यम द्वारा अभिव्यक्त करने का सतत प्रयत्न करता रहा है। यह सौन्दर्य्य-तत्त्व क्या है, इसकी कोई भी ठीक-ठीक शब्दों मे परिभाषा नही दे सकता, यद्यपि हममे से अधिकाश किसी भी सुन्दर वस्तु को देखने पर अपनी आन्तरिक स्वाभाविक प्रेरणा ही से हृदय मे उसका बोध या अनुभूति कर लेते हैं। जिस प्रकार कि हम अपनी बाह्य इन्द्रियो द्वारा देखते, सुनते, सूँघते, स्पर्श का अनुभव करते, और स्वाद ले सकते हैं, उसी तरह अपनी आत्मा की स्वाभाविक बोधवृत्ति द्वारा हम किसी सुरीले स्वर, सलोनी रूप-रेखा या रगों के सुरम्य मेल की भी अनुभूति कर सकते हैं।

जो सोलह से बीस हज़ार वर्ष तक पुराने माने जाते हैं। इनको मनुष्य ने तब बनाया था, जब कि वह प्रागैतिहासिक युग के धुंधले क्षितिज से प्रकट हो रहा था। किन्तु इस समय तक तो उसकी कला का काफी विकास हो चुका था। वास्तव मे, मनुष्य में कला का आविर्भाव इससे भी कई हजार या संभवतः लाखो वर्ष पूर्व हुआ होगा। (दाहिने ओर के चित्र मे) अल्टामीरा की गुफाओं मे दीवारो पर तत्कालीन जानवरो के चित्र बनाते हुए आज से बीस हजार वर्ष पूर्व के मनुष्य का एक काल्पनिक चित्र जिससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि जहाँ तक इतिहास की पहुँच है उस युग में भी मनुष्य के मन में कला द्वारा सौन्दर्य्य की अभिव्यक्ति की भावना कितनी तीव्र थी। उन दिनों पृथ्वी के अधिकाश भागों मे बर्फ-ही-बर्फ का साम्राज्य था, अतएव मनुष्य प्राय. गुफाओं ही मे रहकर जीवन बिताते थे।

आदिम मनुष्य के मन में भी सौंदर्य्य की भावना के ये झिलमिलाते अस्थिर स्वप्न अवश्य ही उठते रहे होंगे, और अपनी अपरिपक्व अवस्था के अध, अपूर्ण तथा त्रुटिपूर्ण निराले ढग से सौंदर्य्य की इन अस्पष्ट अस्थिर मानसिक मूर्तियों को स्पष्ट और स्थिर रूप देने की आकुल प्रेरणा भी उसमे अवश्य ही जाग्रत हुई होगी—ठीक उसी तरह जिस तरह कि आज हम एक अस्थिर किन्तु मनोरजक दृश्य विशेष का चित्र फोटो के कैमरे द्वारा उतार लेने का प्रयत्न करते हैं।

सौंदर्य्य की एक अस्पष्ट-सी चाह की तृप्ति तथा अपने आपको अभिव्यक्त करने की आकाक्षा की पूर्त्ति के लिए मनुष्य के आदिम सघर्ष और आज के उसके कला के उच्च जीवनादर्श के बीच विगत युगों और महा-कल्पों की एक लम्बी-चौड़ी खाई है, जिसको उसके युग-युगव्यापी सहस्रों प्रकार के प्रयोग और कठोर परि-श्रम व तपस्या सेतु की तरह जोड रहे हैं।

आरम्भ मे जो एक अस्पष्ट आन्तरिक पिपासा-मात्र थी, वही क्रमशः ध्वनि, आकार और वर्ण के लय, सतुलन और सामजस्य के माध्यम द्वारा अपने को अभिव्यक्त करने की एक अतृप्त आकाक्षा या कभी न बुझनेवाली पिपासा के रूप मे परिणत हो गई।

भारत की प्राचीन चित्रकला का एक उत्कृष्ट नमूना

अजंता की गुफा का एक चित्र जो ढाई हज़ार वर्ष पुराना माना जाता है।

मनुष्य की आत्माभिव्यक्ति का सबसे आदिम रूप वस्तु के बाह्य रूप के आकार का प्रदर्शन है। प्रकृतिजन्य आपदाओं से बचने के लिए उसने अपने रहने को मकान बनाना सीखा, या अपने उपयोग के लिए कपड़ा बुनने अथवा अक्षरों का आविष्कार किया, या इसी तरह की नित्य उप-योग की हजारों दूसरी चीजों को बनाने की योग्यता प्राप्त की, इसके बहुत पहले ही वह रेखाओं से चित्र बनाने लग गया था। इस बात की कल्पना करना कठिन है कि सबसे पहले उसने किस वस्तु का चित्र बनाने का प्रयत्न किया होगा, लेकिन इसमें तनिक भी सदेह नहीं कि वह कोई ऐसी ही वस्तु होगी, जिससे उसको बहुत प्रेम रहा होगा। नि'सदेह इस बात को समझने मे उसे सैकड़ों वर्ष लग गये होंगे कि तालाबों या पोखरों के शात स्थिर जल पर तथा प्राकृतिक चट्टानों आदि की चिकनी सतहों पर दिखाई पड़ने-वाले स्वय उसके और दूसरो के प्रतिबिंब न तो वानरों-जैसे उसके हाव-भावो की हँसी उड़ाते हुए भूत-प्रेत हैं, न स्वय उसी की मानसिक भ्राति के फलस्वरूप उत्पन्न छल-नाएँ ही साथ ही यह कि ये अस्थिर प्रतिबिंबित चित्र जल के अतिरिक्त अन्य किसी भी वस्तु पर उनकी छाया की आकृति के आस-पास रेखा खींचकर चिरस्थायी बनाये जा सकते हैं। उसके अपरिपक्व मस्तिष्क मे धीरे-धीरे यह बात जमी होगी कि स्वय अपने तथा अपने अन्य प्रिय व्यक्तियो के चित्र बनाने का सबसे सरल ढग यही है कि पहले सूर्य्य की रोशनी से पड़नेवाली अपनी या किसी की छाया की बाहरी रूप रेखा अकित कर दी जाय, और फिर उन रेखाओं से घिरे हुए भाग को किसी ठोस रूप देनवाले पदार्थ से भर दिया जाय, जिससे कि एक छायाचित्र-सा बन जाय और असली वस्तु का रूप-रग स्थाई रूप से अकित हो जाय।

यही मेरे विचार में चित्रकला के आरम्भ का सर्वप्रथम रूप रहा होगा और इसकी तुलना मे "बारहसिंगा युग" के अथवा अल्टामीरा की गुफाओं या और स्थानों मे पाये गये प्राचीन मनुष्यों के चित्रकला के नमूने निस्सदेह बहुत अधिक बाद के युग के हैं।

साहित्य क्या और कैसे ?

मनुष्य की सभ्यता और उन्नति का चरम विकास और उसका सबसे अद्भुत् आविष्कार न तो रेल और हवाई जहाज़ ही हैं, न पेचीदा यंत्रो से भरे हुए उसके वे कल-कारख़ाने ही जिनका हाल आप ऊपर वर्णित स्तंभो में पढ़ चुके हैं। उसकी सबसे अद्भुत् सृष्टि वास्तव में उसकी साहित्य-सृष्टि है । वह कौन-सा साधन है जिसकी बदौलत आपको आज से हज़ारों वर्ष पूर्व या हज़ारों मील दूर की बातो या घटनाओ का हाल आज घर बैठे मालूम हो जाता है ? इसी समय आप इस पुस्तक द्वारा मानव-जाति के अब तक के संचित ज्ञान की जो झलक पा रहे हैं, वह मनुष्य के भाषा और अक्षरो के अद्भुत् आविष्कार ही का फल है । ज्यो-ज्यों हम अपनी पुस्तको के पन्ने उलटते हैं, वर्त्तमान और भूतकाल के एक-से-एक बढकर गंभीर विचारको को मूर्त्तिमान होकर अपने साथ कल्पना के मधुर लोक की सैर कराने के लिए हम तत्पर पाते हैं। यह विभाग इन्हीं सब साहित्यकारों और उनकी रचनाओं का चित्रपट है ।

मैं अपने कमरे की खिड़की से एक दृश्य देख रहा हूँ; अमीरों के प्रासाद और अट्टालिकाऍ, ग़रीबों की झोपड़ियाँ, मोटर, तॉगे, इक्के, विविध रग की रेशमी साड़ियाँ पहने हुए महिलाऍ, चीथडे लपेटे भीख मॉगते हुए भिक्षुक, इत्यादि ।

इस दृश्य को देखकर मेरे मन मे भाव जाग्रत हो रहे हैं, एक प्रतिक्रिया हो रही है । मै विचार कर रहा हूँ अमीरो-ग़रीबों के आर्थिक असाम्य पर । ग़रीबों की दयनीय दशा देख मेरी ऑखों मे ऑसू छलछला आये हैं । अमीरों का ऐश्वर्य देख मै क्रोध से दॉत पीस रहा हूॅ । मै इस जीवन के वैषम्य का दोषी भाग्य को न ठहराकर मानव की स्वार्थान्धता को ठहरा रहा हूँ ।

मै इस जगत् को दो प्रकार से देख रहा हूॅ । एक प्रकार है, इद्रियों की अनुभूति द्वारा; दूसरा, विचार द्वारा । यह दोनों ही प्रकार मुझे वस्तुस्थिति समझाने मे सहायक हैं । अतर केवल इतना ही है कि प्रथम प्रकार से मै बाह्य पदार्थ-ससार को देख भर लेता हूँ, और दूसरे प्रकार से मै बाह्य पदार्थ-ससार पर मस्तिष्क का प्रयोग करके समाज के हिताहित को देखता—समझता हूँ ।

मनन करने पर हमको यह समझने मे देर न लगेगी कि दूसरा प्रकार ही अधिक विस्तृत तथा उपादेय है। इद्रियों द्वारा तो मुझे केवल अपने कमरे या कमरे से बाहर के सीमित जगत् का ही ज्ञान उपलब्ध होता है, पर विचार द्वारा तो मै विश्व भर का भ्रमण एव दर्शन कर आ सकता हूँ ।

दूसरे प्रकार द्वारा ही साहित्य का बीजारोपण हुआ है । मानव को जब अपने विचारों, रीति-रस्मों और अनुभवों को एक स्वरूप देने एव सुरक्षित रखने की आवश्यकता प्रतीत हुई, तो वह ईश्वर की सृष्टि से भी अधिक सुन्दर सृष्टि-रचना की खोज मे अग्रसर हुआ । यही खोज कला एव साहित्य की जननी है ।

जीवन के प्रभात मे मानव कितना सबलहीन होगा, इसका अनुभव हम अपनी सभ्यता के मध्याह्नकालीन प्रकाश मे बहुत-कुछ कर सकते हैं । जब अकाल पड़ता है और मानव भूख से तडपता फिरता है, तब हमारी ऑखों के सामने एक दारुण दृश्य उपस्थित हो जाता है । उस आदि काल मे, जब पहले-पहल मानव हृदय मे अपने साथी को कष्ट से चीख़ते हुए सुन और देखकर करुणा का सचार हुआ होगा, तब हृदय सहानुभूति के दो शब्द कहने को कैसा तडपा होगा ! जी ने कितने अभाव का अनुभव किया होगा !

मेरे पड़ोस मे एक गूँगा रहता है । वह बहरा भी है ।

जब उसे भूख लगती है, थाली लाकर रख देता है। प्यास लगती है तो गिलास हाथ मे ले लेता है। जब थाली नहीं होती मुँह मे झूठमूठ को कौर बनाकर रखता है। गिलास नहीं मिलता तो ओक करके बैठ जाता है। जीवन के उषा-काल मे भाषा के अभाव में मानव का व्यवहार इस गूँगे के व्यवहार से मिलता-जुलता ही रहा होगा, यह निश्चय-पूर्वक कहा जा सकता है। इगितों का प्राधान्य रहा होगा। आवश्यकताओं के आधिक्य मे पारस्परिक विचार-विनिमय के समय प्रकृति के विविध दृश्यों एव पदार्था से काम निकाला गया होगा। उनके अभाव मे उनके चित्र बनाये गये होंगे। यही प्रथम चित्र बदलते-बदलते सहस्रो वर्ष बाद आधुनिक अक्षरो के रूप मे हमारे सम्मुख उपस्थित हैं।

प्रत्येक अक्षर जो हम पढते लिखते हैं, कल्पना की नीव पर अवस्थित है। कहारिन जैसे बर्त्तनों को जूने-मिट्टी से माँजकर स्वच्छ कर देती है, वैसे ही मानव ने भी कल्पना के जूने-मिट्टी से भोंडे-बदसूरत चित्रों एवं चिह्नों को माँज-माँजकर आधुनिक रूप दिया है। प्रत्येक अक्षर एक अमिट स्मृति है—मानव के कृत्यों को अमर बनाने का साधन है—मानव को मानवता के सूत्र में बाँधने का, जीवन की विभिन्नता मे एकता सपादन करने का एक अमूल्य उपाय है। यह वह अमर ज्योति है, जिसके अभाव मे मानव मानवता की परिधि से बाहर रह जाता और सदैव अज्ञान के लोक मे कालयापन करता रहता।

ज्ञान और विज्ञान की विविध स्रोतस्विनियों के वर्तमान स्वरूप का श्रेय अक्षर ही को है। अक्षर 'अक्षर' है। यदि ऐसा न होता तो वेद और उपनिषद्, कुरान और इजील,

आदि काव्य का जन्म

ससार के साहित्य के इतिहास में साहित्य के उद्गम पर प्रकाश डालनेवाला इससे अधिक ज्वलंत उदाहरण हमें शायद ही और कही मिलेगा, जैसा कि हमारे साहित्य मे आदि कवि वाल्मीकि की प्रथम काव्यधारा के प्रस्फुटन संबंधी उपाख्यान में मिलता है। कहते हैं, व्याध के बाण से हत क्रौंच (कुररी) पक्षी की तडपन से आदि कवि का हृदय करुणा से आर्द्र हो उठा था और उसी समय उनके मुख से आप ही आप अनुष्टुप छद में कविता की धारा फूट पडी थी। ऋषि ने इसी छंद मे बाद में अपने महाकाव्य 'रामायण' की पूरी रचना कर डाली।

रामायण और महाभारत, होमर की वीर-गाथाएँ, सुक़रात और प्लैटो के अमर वचन, कबीर और सूर के अमर पद आज कभी के मिट गये होते और इन सबके अभाव मे आधुनिक साहित्य का, हमारी सभ्यता का, निश्चय ही दूसरा स्वरूप हुआ होता।

अक्षर को 'अक्षर' या अक्षुण्ण बनाये रखने का श्रेय मुद्रणालय को है। मुद्रणालय के आविष्कार के पहले पुस्तकों का उत्पादन-क्षेत्र बहुत हो सकुचित तथा सीमित था। कही वर्षो मे एक पुस्तक लिखी जाती थी। पाठकों की सख्या भी सीमित ही थी। ज्यों-ज्यो ज्ञानेषणा बढती गई, उत्पादन-क्षेत्र भी विस्तृत होता गया। पर उत्पादन-कार्य मे वास्तविक प्रेरणा उन बालकों द्वारा मिली, जो खेल के लिए उद्यान मे छाल पर अक्षर काटकर छाप रहे थे। हमारा आधुनिक मुद्रणालय उसी खेल का मार्जित स्वरूप है।

साक्षरता एव सभ्यता के प्रसार में मुद्रणालय का प्रमुख भाग है। यदि कहा जाय कि हमारी सभ्यता की प्रगति अधिक-से-अधिक पुस्तकों एव समाचारपत्रों के उत्पादन पर अवलम्बित रही है, तो अत्युक्ति न होगी। सफल सामाजिक जीवन के लिए साक्षरता अनिवार्य है। जिस प्रकार भोजन और आच्छादन हमारे जीवन के लिए परमावश्यक हैं, उसी प्रकार साक्षर होना है। साक्षरता के अभाव में मानव कदरा-निवासी पूर्वजों के ही युग मे श्वासे भरता दृष्टिगोचर होता है। प्रातःकाल बिस्तरे पर से उठते ही सर्व-प्रथम समाचारपत्र चाहिए। उसका अभाव आज उतना ही खलता है, जितना भोजन का। मानव का हित बहुत अंशों मे साक्षरता पर निर्भर है। साक्षरता की उन्नति पर ही साहित्य की उन्नति अवलम्बित है। ज्यो ज्यों मानव को अपने हित का ज्ञान बढता जायगा, उसी अनुपात से सुन्दर साहित्य की रचना होगी। साहित्य शब्द तभी सार्थक होगा। यह समझ लेना आवश्यक है कि साहित्य शब्द उन्ही ग्रन्थों पर लागू होता है, जिनमे सार्वजनीन हित-संबंधी विचार सुरक्षित हैं। साहित्य मे प्राकृतिक दृश्यों, नगरों, वनस्पतियों, महलो, झोपडियों, खेतों, वृक्षों, नदियों, पुलों इत्यादि का वर्णन केवल वर्णन के लिए नही होता; वरन् इस दृष्टि से कि इन सबकी मानव के लिए क्या उपादेयता है, इनसे मानव का क्या बनता-बिगडता है। जहाँ तक इनका संबंध मानव से है, वही तक इनका साहित्य मे स्थान है। साहित्य के लिए मानव मुख्य है, इसीलिए साहित्य का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। साहित्य के अंतर्गत मानव-जीवन से सबंध रखनेवाली समस्त प्रकट एवं गुप्त बातें और प्रकृति की समस्त ज्ञान-क्रियाएँ हैं। जो कुछ मानव ने किया, कहा और विचारा है, उस सबका समावेश साहित्य मे है। इसी कारण मानव-जीवन पर साहित्य का पूर्ण प्रभाव रहा है। साहित्य को ही हमारी सभ्यता का सर्वाधिक श्रेय प्राप्त है।

जो सबध विश्वास और प्रेम का है, वही साहित्य और सभ्यता का है। यह सबध थोडा विचारणीय है। आप और हम वर्तमान मे रहते हैं, पर निरे वर्तमान के लिए नहीं, भविष्य के लिए भी। बर्बर और सभ्य मे यही तो अतर है। बर्बर वर्तमान के लिए जीवित है; सभ्य वर्तमान के लिए और भविष्य के लिए भी। हमारी सभ्यता का आधुनिक स्वरूप मेरे इस कथन को प्रमाणित करता है। जीवन एक विकास है। मानव का वर्तमान स्वरूप विकास का प्रति-फल है। हम एकदम वृद्ध नहीं हो जाते—शिशु, बालक, युवा, प्रौढ—इनके पश्चात् कही वृद्ध होने की नौबत आती
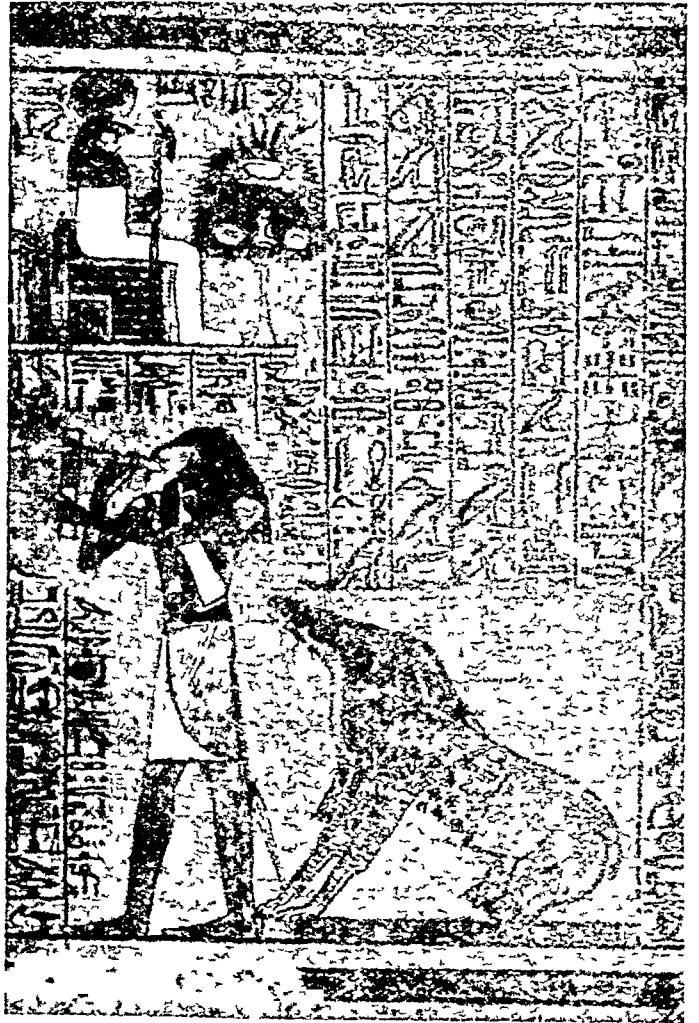
हज़ारों वर्ष पूर्व के अक्षर

यह कई हज़ार वर्ष पूर्व के मिस्र के सम्राटो के समाधि-स्तूप से प्राप्त लेखों के एक अंश का चित्र है। इनमे से अधिकांश अक्षर वस्तुओ के चित्र के रूप में होते थे। इन्हीं से आगे चलकर आधुनिक ग्रीक आदि की वर्णमालाओं का विकास हुआ।

है। यही दशा सभ्यता की है। ज्यों-ज्यों विचारशीलता बढ़ती गई, स्वार्थांधता की अपेक्षा निःस्वार्थ भावना मान्य समझी जाने लगी। साथ-ही-साथ साहित्य का दृष्टिकोण भी बदलता गया और सभ्यता विकसित होती गई।

साहित्य की तुलना सरिता से की गई है। सरिता सदैव प्रवाहित रहती है। साहित्य की भी यही दशा है। कारण मानवता इसके सतत प्रवाहित रहने में ही है। जीवन परिवर्तनशील है। जिस जगत् मे हम रह रहे हैं, उसका अर्थ ही है चलते रहना। साहित्य यदि सरिता न होकर एक तलैया अथवा पुष्करिणी जैसा होता, तो मनुष्य बर्बर ही रहता और जिसको हम सस्कृति अथवा सभ्यता कहते हैं, उसका अस्तित्व ही न होता।

साहित्य द्वारा ही हम ऋषियों की अमृत वाणी, जो वेदों, उपनिषदों, ब्राह्मणों, दर्शनों और पुराणों मे सुरक्षित है, सुन सकते हैं—वेदव्यास, वाल्मीकि, तुलसी, सूर, जायसी, महात्मा बुद्ध, मीरा बाई, प्लैटो, सुक़रात, कबीर, शेक्सपीअर, गेटे, दाँते, ह्यूगो, वाल्ट विट्मैन, कीट्स, शैली इत्यादि महान् कवियों, दार्शनिकों, इतिहासकारों, औपन्यासिकों, आदि से वार्तालाप कर सुख पा सकते हैं। साहित्य का महत्त्व ही यह है कि वह महान्-से-महान् और छोटे-से-छोटे व्यक्तित्व को हमारे निकटतम कर देता है। साहित्य द्वारा हम बाह्य जगत् को भली प्रकार समझने मे समर्थ होते हैं। जितना भी हमारा निजी अथवा व्यक्तिगत दृष्टिकोण मार्जित होगा, उतना ही हम मानवीय एव प्राकृतिक जीवन को समझने मे सफल हो सकेंगे।

सक्षेप मे साहित्य मानव-जाति का एक बृहत् मस्तिष्क है। जिस भाँति व्यक्तिगत रूप से हम निज के अनुभव का लेखा अपने मस्तिष्क मे सुरक्षित रखते हैं और इस पूर्वानुभव के द्वारा नवीन ज्ञान और अनुभव प्राप्त करना चाहते हैं, उसी भाँति समष्टि रूप में मानव-जाति का अब तक का अर्जित ज्ञान एव अनुभव साहित्य मे सुरक्षित है। मानव अपनी वर्तमान परिस्थिति को समझने के लिए इसी पूर्वार्जित ज्ञान पर पूर्णतया निर्भर है। निरी इंद्रियो द्वारा अर्जित अनुभव मस्तिष्क के सहयोग के अभाव में निरर्थक हो जाते हैं।
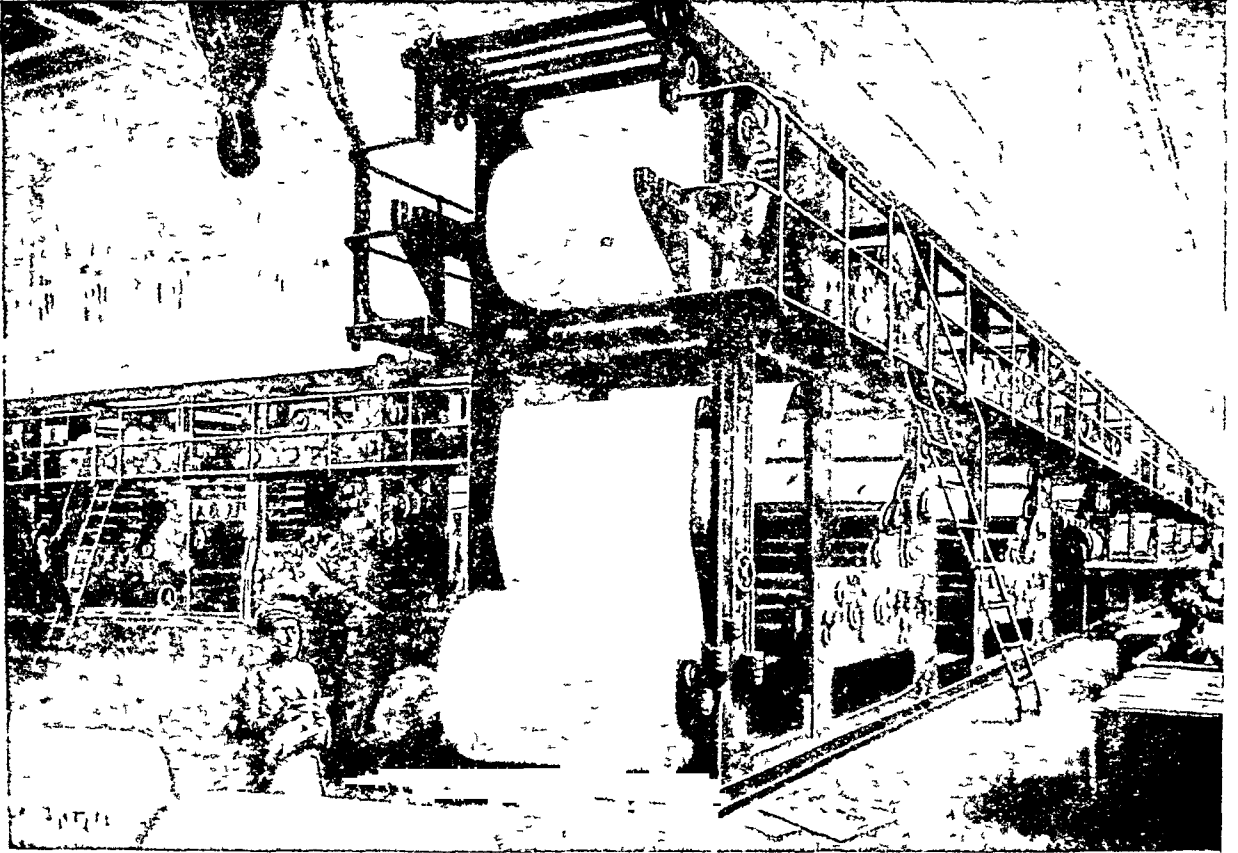
मुद्रण-यन्त्र या छापे की कल

जिसने 'साहित्य' का सदेश पृथ्वी के इस ओर से उस छोर तक पहुँचा दिया है। [फोटो 'टाइम्स ऑफ इण्डिया प्रेस' की कृपा से प्राप्त]

पृथ्वी के देश और उनके निवासी

पृथ्वी के भिन्न-भिन्न भागों में बिखरी हुई भिन्न-भिन्न विशेषताओं से युक्त मनुष्य की जातियों और उनकी निवासभूमि का दिग्दर्शन ।

पृथ्वी पर अपना एकछत्र शासन जमाये हुए मनुष्य और उसकी आश्चर्यजनक, उपयोगी तथा कलात्मक कृतियों का परिचय आपको पिछले स्तभों में मिल ही चुका है। अब यह देखना है कि साहित्य, कला आदि के क्षेत्रों में पुरातन काल से अब तक इतनी आश्चर्यजनक उन्नति करनेवाली तथा अपने सतत् परिश्रम और उद्योग से ज्ञान का भण्डार भरनेवाली मानव-जाति किन-किन देशों में किस-किस रूप में निवास करती है। पृथ्वी का तीन-चौथाई भाग जल और एक चौथाई भाग स्थल है। ससार की आबादी लगभग एक अरब और बीस करोड़ है। इस आबादी का आधे से ज्यादा हिस्सा एशिया के भिन्न-भिन्न देशों में बिखरा पड़ा है और शेष भाग योरप और अमेरिका में। जैसे कि पृथ्वी की सतह पर अनगिनत जातियों के पेड़-पौधे, जीव जन्तु पाये जाते हैं—वैसे ही पृथ्वी के भिन्न-भिन्न देशों में मनुष्य की भी भिन्न-भिन्न जातियाँ पाई जाती हैं। भारत के बम्बई या कलकत्ता-जैसे बड़े नगरों में एक ही साथ चीनी, हब्शी, काबुली, तुर्क, ईरानी, अमेरिकन, जापानी आदि भिन्न-भिन्न देशों के लोग देखने में आते हैं। चीनी काग़ज़, मिट्टी आदि के रंग-बिरंगे खिलौने बेचते हुए, अफ़ग़ान-"हींग लो, हींग" चिल्लाते हुए या किसी ग़रीब हिन्दुस्तानी से रुपयों का तक़ाज़ा करते हुए दिखाई देते हैं। एक ही देश के भिन्न-भिन्न प्रान्त में भिन्न-भिन्न रहन-सहन, वेश-भूषा और भाषावाले लोग पाये जाते हैं। भारतवर्ष को ही लीजिये। बगाली महाशय धोती और कुर्ता पहनते हैं, सिर पर टोपी नदारद! चपकन और चूड़ीदार पायजामा पहने, दुपल्ली टोपी लगाये युक्त-प्रान्त के लखनौआ भाइयों को भी देखिये। इसी तरह गुजरात, महाराष्ट्र, सिन्ध, पजाब, कश्मीर आदि में भी विभिन्न भाषा-भाषी और भिन्न - भिन्न

उत्तरी ध्रुव के बरफ़ीले प्रदेशों में रहनेवाले 'एस्किमो' जो बर्फ़ की बड़ी-बड़ी शिलाओं के घर बनाकर उनमें रहते हैं!

संसार में बसनेवाली विभिन्न रंग-रूप की जातियाँ
(बाएँ से दाहिनी ओर) बरफीले ध्रुव प्रदेशों के निवासी एस्किमो, अमेरिका के लाल चमड़ीवाले मनुष्य पीली चमड़ीवाले चीनी और जापानी, मोटे होंठ और काली चमड़ीवाले हब्शी, रेगिस्तानों के निवासी खानाबदोश अरब, अधिकतर गाँवों में बसनेवाले और खेती पर बसर करनेवाले भारतीय, तथा योरप-अमेरिका में बसनेवाले गोरी जाति के लोग।

वेश-भूषावाले लोग रहते हैं। एक ही देश में कितनी जातियाँ, कितनी भाषाएँ, कितनी विभिन्न रहन-सहन की रीतियाँ, कितने भिन्न धार्मिक विश्वास मिलते हैं। इससे यह मालूम हो सकता है कि संसार के अन्य देशों में भी कितनी भिन्न प्रकार की संस्कृति वेश-भूषा, भाषा और चाल-ढाल वाले जन-समुदाय होंगे। इन सब विभिन्नताओं का एक प्रमुख कारण प्रत्येक देश की भौगोलिक स्थिति भी है। प्रत्येक देश का वातावरण मनुष्य के रंग-रूप, रहन-सहन, तथा सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक, ऐतिहासिक विकासों पर बहुत प्रभाव डालता है। अफ्रीका के हब्शी काले-काले और मोटे-मोटे होठवाले क्यों? योरप-निवासी गोरे रंग और नीली-नीली आँखवाले क्यों? चीनी और जापानी पीले रंग और छोटी-छोटी आँखवाले क्यों? यह सब अलग-अलग देशों के वातावरण का ही प्रभाव है। संसार के विशाल चित्रपट पर मानव-जाति की हज़ारों तरह की जुदा-जुदा चलती-फिरती तस्वीरें नज़र आती हैं। यदि संसार को एक बड़ा भारी पिंजड़ा मान लें तो विभिन्न जन-समुदाय रंग-बिरंगे पक्षियों-से मालूम होते हैं। विद्वानों का यह मत है कि सबसे पहले मनुष्य पश्चिमी एशिया के दक्षिण में रहते थे, जहाँ कि हरे-भरे मैदान थे। धीरे-धीरे वे लोग भिन्न-भिन्न दिशाओं की ओर बढ़ते गये। एक समुदाय सुदूर दक्षिण अफ्रीका की ओर गया और तेज़ गर्मी के कारण उक्त समुदाय के लोग काले पड़ते गए। इसी तरह दूसरा समुदाय चीन, जापान और पैसिफ़िक के द्वीपों में जा बसा। इस समुदाय के लोग पीले रंगवाले होते हैं। योरप की ओर जो लोग गये वे शीत-प्रधान वातावरण के कारण गौर वर्ण के हो गये। इन मनुष्य-समुदायों का भ्रमण जारी रहा और

भिन्न-भिन्न देशों के वातावरण के अनुसार उनकी आकृतियाँ और रहन-सहन आदि में परिवर्तन होते गए। जैसे-जैसे मनुष्य की बुद्धि का प्रकृति के सम्पर्क से विकास होता गया और जैसे-जैसे उसने प्रकृति की छिपी हुई शक्तियों तथा भूतल पर बिखरी हुई वस्तुओं के उपयोगों का ज्ञान प्राप्त किया, वैसे-वैसे वह उत्तरोत्तर सभ्यता की सीढ़ियों पर चढ़ता गया। पशु-पालन, खेती-बारी, परिवार, छोटे-छोटे वर्ग-समुदाय, समाज, राष्ट्र आदि सब क्रमशः उसके विकास के ही रूप हैं। आज भी यदि एक ओर अफ्रीका की जंगली जातियाँ छोटे-छोटे झोपड़ों में निवास करती हैं तो दूसरी ओर अमेरिका की साठ-साठ, अस्सी-अस्सी मंजिलोंवाली अट्टालिकाओं में गौर वर्ण की जाति रह रही है। कहीं जनता सामाजिक और राजनीतिक नियमों से बद्ध है तो कहीं बिल्कुल मुक्त।

कितना आश्चर्यजनक है यह संसार! दुनिया के नक्शे पर कितनी रेखाएँ खिंची और मिटीं—कितनी संस्कृतियाँ निर्मित हुईं और नष्ट हो गईं—कितनी सभ्यताएँ और साम्राज्य कायम हुए और आखिर इस सृष्टि के विराट् रेतीले मैदान में अपने पद-चिह्नों को छोड़कर सब विलीन हो गये! और आज की दुनिया के नक्शे पर टेढ़ी-मेढ़ी रेखाओं ने दुनिया को भारत, चीन, तिब्बत, बर्मा, लङ्का, इंगलैण्ड, फ्रांस, जर्मनी, इटली, अरब, स्विट्ज़रलैण्ड, हालैण्ड, हंगरी, आस्ट्रिया, ऑस्ट्रेलिया, नॉरवे, स्वीडन, अमेरिका आदि-आदि देशों में विभाजित कर रक्खा है। आइये, हम लोग दुनिया के इन्हीं में से कुछ देशों पर एक विहंगम दृष्टि डाल लें।

ये लोग जमे हुए बर्फ के बड़े-बड़े टुकड़ों से छोटे-छोटे स्तूप-जैसे घर बनाते हैं तथा ह्वेल की चर्बी को विचित्र क़िस्म के दीयों में जलाते हैं, जिससे कि रोशनी रहती है। ये लोग बड़े पेटू होते हैं। जब इनको बहुत-सा माँस मिल जाता है, तो इतना खा लेते हैं जितना कि एक अंग्रेज सात दिन में खाता है।

उत्तरी अमेरिका में बसनेवाली लाल चमड़ीवाली जाति भी विचित्र है। अब यह जाति बहुत-कुछ सभ्य हो चली है। जब तक यूरोपियन यहाँ नहीं आये थे, तब तक ये लोग आदिम अवस्था में ही थे। तीर-कमान आदि ही इनके हथियार थे। भैंसे के चमड़े के बने हुए तम्बुओं में ये लोग रहते थे और इधर-उधर घूमा करते थे। ये लोग बड़े लड़ाके होते थे और जब अपने से विरुद्ध गिरोह पर चढ़ाई करना चाहते थे तो गाँव-गाँव में लड़ाई के लिए तय्यारी करने का संदेश दूतों द्वारा भिजवाया करते थे। संदेश पाते ही सब लोग एक स्थान पर इकट्ठा हो जाया करते थे, फिर युद्ध-नृत्य करते थे और रण-

रेगिस्तानों के निवासी अरब
जिनका जीवन ऊँटों पर और खेमों ही में बीतता है।
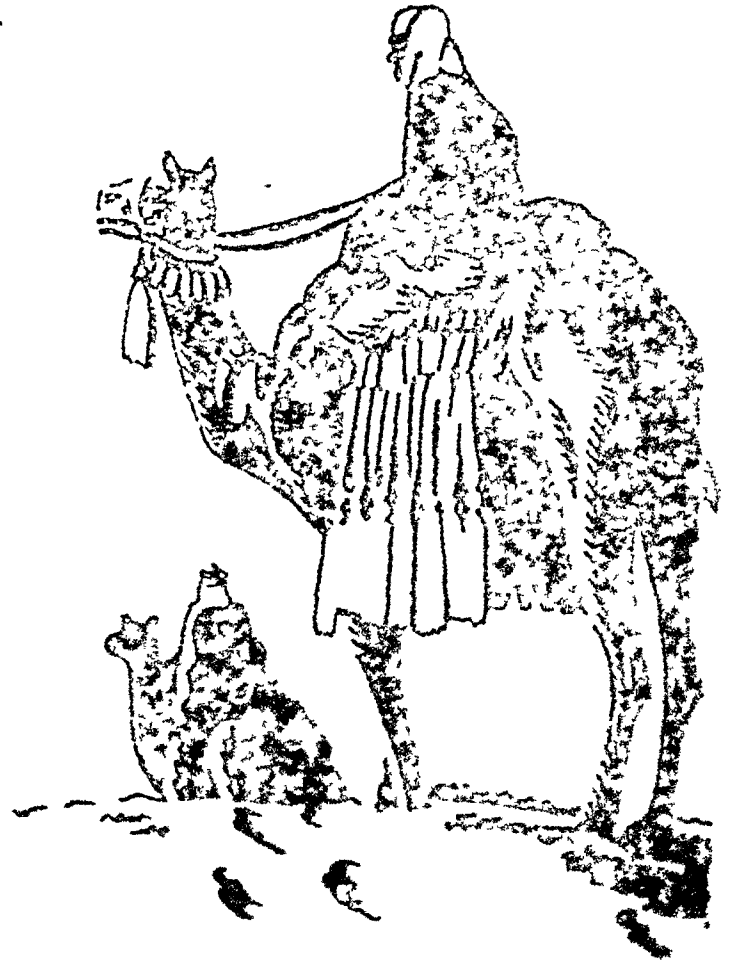
चीन के पेकिंग शहर की एक गली का दृश्य

दूकानों पर लगे आकर्षक साइनबोर्डों और स्त्री-पुरुषों की विचित्र वेश-भूषा की छटा देखिए।

यात्रा के लिए चुपचाप चल पड़ते थे। यदि कहीं बीमारी फैलती थी या अकाल पड़ता था तो कई लोग नृत्य करने के बाद भारी-भारी गुँथे हुए एक प्रकार के डण्डे लेकर 'हाकी' के खेल-सा मिलता-जुलता एक खेल खेलते थे। अन्तर इतना ही था कि इनके 'गोल' एक-एक मील की दूरी पर होते थे। गेंद हवा में उछाल दी जाती थी और खेल प्रारम्भ हो जाता था। फिर क्या था—डण्डों से वे एक-दूसरे के हाथ-पाँव तक तोड़ डाला करते थे और कभी-कभी तो भीषण प्रहारों से लोग मर भी जाते थे। अब ये लोग सभ्य बन रहे हैं।

आधुनिक जापान-निवासियों ने यद्यपि पिछले सौ-सवा सौ वर्षों में आश्चर्यजनक उन्नति कर ली है, किन्तु इससे पहले तक ये लोग संसार के शेष भागों से बिल्कुल कटे हुए से थे। अब तो जापान संसार का एक शक्तिशाली राष्ट्र है। यह "फूलों का देश" कहा जाता है—क्योंकि यहाँ के लोग बहुत पुष्पप्रेमी होते हैं।

भारत के पड़ौसी चीन, तिब्बत और बर्मा के लोग बौद्ध धर्म के माननेवाले हैं। चीन-जापान के लोगों की आकृतियों में बहुत-कुछ समानता है। ये लोग पीले वर्ण के होते हैं। चीन की सभ्यता बहुत प्राचीन है। यहाँ की मीलों लम्बी प्राचीन "चीनी दीवार" संसार के आश्चर्यों में से है। चीन के किसी शहर में चले जाइये। छोटी-छोटी तङ्ग सड़कें, आकर्षक दूकानें, बाढ़ की तरह उमड़ता हुआ जन-समुदाय आप देखेंगे। इन दूकानों के साइनबोर्ड कैसी आकर्षक भाषा में दूकानों की ख़ूबियाँ बतलाते हैं! चाहे कोयले की दूकान हो, पर नाम होगा "सोने की खान"! दूकानों में स्त्रियों के लिए छोटे-छोटे एड़ीदार बूट टँगे हैं। जिस स्त्री के जितने ही छोटे पैर हों वह सौन्दर्य की दृष्टि में उतनी ही बढ़ी-चढ़ी मानी जाती है। लोहे के जूतों में इनके पैर छुटपन से फँसा दिए जाते हैं, जिससे कि वे बढ़ने नहीं पाते। अब यह दुःखदायी रिवाज दूर हो रहा है। लुङ्गी लगाये और कभी-कभी टोपी के अन्दर से लम्बी गुँथी हुई चोटी लटकाए हुए चीनी इधर-उधर आते-जाते दिखलाई पड़ते हैं। कोई-कोई घुटी खोपड़ी भी रखते हैं। भारत में भी चीनी लोग सायकिल पर क़ीमती

रेशमी कपडो के गट्ठर रखे हुए सम्पन्न व्यक्तियों के बंगलों पर चक्कर लगाते हुए दिखाई पड़ते हैं। चीन में अब बहुत-कुछ जाग्रति हो गई है। प्रगति की दृष्टि से एशिया में जापान के बाद चीन का ही नम्बर आता है।

भारतवर्ष के उत्तर-पश्चिम मे बसे हुए अफग़ान अपने लम्बे-चौड़े डील-डौल के लिए प्रसिद्ध हैं। अफ़ग़ानिस्तान एक पहाड़ी देश है। यहाँ ख़ून-पसीना एक करने पर, कहीं-कहीं पहाड़ी स्थलों मे अन्न पैदा होता है। प्रकृति की कठोरता ने अफग़ानों को ताक़तवर, बहादुर और ख़ूँख्वार बना दिया है। ये लोग बन्दूक़ को प्राणों से भी प्यारी वस्तु समझते हैं। इनका निशाना अचूक रहता है। इन्हीं के पड़ौसी अफरीदी लोग सीमा-प्रान्त की अँग्रेज़ी सेना को तङ्ग किये रहते हैं। पहाड़ों मे छिपे हुए ये दनादन गोलियाँ दागते हैं। ये बड़े स्वतन्त्रता-प्रेमी हैं। इनको वश मे लाना बहुत मुश्किल है।

अब अपने भारत को ही लीजिये। भिन्न-भिन्न वेषभूषा और भाषाओंवाले ३५ करोड नर नारियों की यह शस्य-श्यामला जादूभरी भूमि! उत्तर मे ससार का सबसे ऊँचा हिमाच्छादित गिरिराज हिमालय, मध्य मे विंध्य-सतपुड़ा की श्रेणियाँ, उनके बीच सिंध, ब्रह्मपुत्र, गगा, यमुना, नर्मदा आदि बड़ी-बड़ी नदियाँ! विश्व मे सर्वप्रथम सभ्यता के सर्वोच्च शिखर पर पहुँचनेवाला यह देश आज भी अजन्ता के विश्व-विख्यात चित्र, एलोरा के पाषाण-मंदिर, बौद्धकालीन स्तूप और ससार के भवनो के मुकुट अद्वितीय ताजमहल को लेकर अपना सिर ऊँचा उठाये हुए है। यही महाकवि वाल्मीकि, कालिदास, व्यास, तुलसीदास आदि की जन्म-भूमि है। यही है राम, कृष्ण, बुद्ध, गाधी आदि महापुरुषो की कर्म-भूमि! तीन हज़ार जातियों का यह देश! हल चलानेवाले, झोपड़ियों मे रहनेवाले तीस करोड किसानों का यह देश! यही एक ज़माने मे साहित्य, कला, विज्ञान, दर्शन आदि का केन्द्र-स्थल रहा है। इस देश के वक्षःस्थल पर कितनी विदेशी जातियो, सभ्यताओं ने क्रीड़ाएँ की! कितने साम्राज्य बने और मिटे! पिछले कुछ सौ वर्षों से यह महादेश अपने आपको मानो भूलकर पीछे की ओर ढुलकता हुआ गुलामी और अज्ञान की ज़ंजीरों से जकड़ गया था। किंतु अब फिर से कैसी जाग्रति की लहर उठ चली है! आज इसकी झोपड़ियों मे कैसी स्वतन्त्रता की भावना जाग उठी है! भारत मे हिन्दी, बंगला, मराठी, तामिल, तेलगू, मलयालम, कनाड़ी, गुजराती आदि प्रमुख भाषाएँ बोली जाती हैं। बोल-चाल की भाषाएँ हज़ारों हैं। प्रति डेढ सौ मील पर भाषाओं मे कुछ-कुछ परिवर्त्तन दृष्टिगोचर होता है। ससार का यह सबसे अधिक धर्मप्राण देश है। भिन्न-भिन्न रूप-रग के मन्दिर, मस्जिद, गिरजे जहाँ के भिन्न-भिन्न धर्मों का अस्तित्व बतलाते हैं।

भारत के दक्षिण-पश्चिम मे स्थित अफ्रीका महाद्वीप घने-घने जंगलों, जगली जातियों, और विचित्र रीति-रिवाजों का प्रदेश है। यह योरप से तिगुना बड़ा है, फिर भी सभ्यता की किरणे इसके घने जगलो में दूर तक नहीं पहुँच सकीं। अब भी यहाँ कहीं-कहीं शेर आदि भयानक जन्तु दहाड़ते हैं, तो कहीं ढोल बजा-बजाकर बर्बर मनुष्य भय-उत्पादक युद्ध-नृत्य करते रहते हैं। अफ्रीका के "बुशमैन" या बौने लोग जो कि पाँच फीट से अधिक लम्बे नहीं होते, बड़े स्वतन्त्रता-प्रेमी हैं। ये लोग मुख्यतः शिकार करते हैं। ज़हरीले तीरो से

अमेरिका के आदिम निवासियों का एक प्रतिनिधि

ये लाल वर्ण के होते हैं और पंख आदि की बनी बड़ी आकर्षक रंग-बिरंगी वेप-भूषा धारण करते हैं।

बड़े-बड़े जानवर मार डालते हैं। ये भागने मे बड़े तेज होते हैं। कभी-कभी तो दौड़कर ही दौड़ते हुए जगली जानवरों के पास पहुँचकर उन्हे मार डालते हैं। कपडे तो नाममात्र को ही पहनते हैं। गरम राख पर युवकों को सुलाकर उनकी परीक्षा ली जाती है। यदि नौजवान गरम राख पर कुछ समय तक पडा रह सके और पीठ की चमडी जल जाने पर भी चूँ तक न करे, तो वह परीक्षा मे उत्तीर्ण माना जाता है।

अफ्रीका की अन्य जातियाँ झोपडियों मे रहती हैं। मनुष्य तीर-कमान और भाले लेकर शिकार को जाते हैं। स्त्रियाँ अन्न और तरकारियाँ पैदा करती हैं। दक्षिणी अफ्रीका की "जूलू" जाति के लोगों के झोंपडे बडे-बडे और साफ सुथरे होते हैं। इनके गाँव 'क्राल" कहलाते हैं। ये लोग अन्न पैदा करते, ढोर आदि पालते और घरेलू काम के लिए कुछ हथियार बनाते हैं। अब यहाँ अग्रेजी सभ्यता के ससर्ग से कुछ जागृति हो रही है। अफ्रीका के कई भागो पर विदेशियो का अधिकार है। व्यापार आदि की बागडोर उन्ही के हाथों मे है। अफ्रीका के कुछ निवासी "हब्शी" कहलाते हैं। ये लोग काले-काले और मोटे-मोटे होठोंवाले होते हैं। जगली जाति के लोग शरीर पर विचित्र रगों से चित्रकारी किये रहते हैं, और कौड़ियो और जानवरों के दाँतो की बनाई हुई मालाएँ पहनते हैं। आस्ट्रेलिया और उनके आसपास के द्वीपों मे भी जगली जातियाँ पाई जाती हैं।

अफ्रीका के उत्तर मे स्थित योरप महाद्वीप के देशो के निवासियो ने आज विज्ञान मे आश्चर्यजनक उन्नति की है। रेडियो, हवाई जहाज, मशीनगन, बडे-बडे कारखाने, मोटर, रेलगाड़ी आदि-आदि वस्तुएँ इसी महाद्वीप मे उत्पन्न सभ्यता के चकाचौंध करनेवाले आविष्कार हैं।

योरप के पश्चिम मे अटलांटिक महासागर के उस पार अमेरिका महाद्वीप मे भी गोरी जातियो के उपनिवेश हैं, जिनमे से एक "सयुक्त राष्ट्र" आज धन-सपत्ति और शक्ति मे सबसे बढकर है। अमेरिकन इस बीसवीं शताब्दी की सभ्यता का प्रतीक है। योरप से पैदा हुई सभ्यता का केंद्र अब धीरे-धीरे पेरिस, लदन या बर्लिन से हटकर और भी पश्चिम मे न्यूयार्क या लास एजिल्स की ओर जा रहा है।

अफ्रीका की जंगली जातियों का एक प्रतिनिधि

इसकी वेश-भूषा और शरीर-रचना अब भी मनुष्य की अपनी यात्रा के आरंभिक युगो की याद दिलाती है, जब वह सभ्यता के बन्धन मे नही बँधा था और निर्द्वन्द विचरता था।

हमने ऊपर पृथ्वी पर बसनेवाली मनुष्य-जाति के चित्र-विचित्र जमघट पर एक विहगम दृष्टि डाली, अब आगे के अध्यायों मे हम क्रमशः एक-एक देश—जैसे चीन, तिब्बत, ब्रह्मा, जापान, रूस, ईरान आदि को—अलग-अलग लेकर विस्तारपूर्वक उनमे बसनेवाली मनुष्य-जाति का हाल बतावेंगे।

'सुजलां सुफलां....शस्य श्यामलां'

जीते-जागते ३५ करोड भारतीयो के सजीव जाग्रत राष्ट्र का मूर्त्तिमान् चित्र ।

भारतवर्ष का नाम सुनते ही हमारे हृदय मे कितने विचित्र भाव उठने लगते हैं ? ससार के सबसे पहले मानव-सभ्यता को जन्म देनेवाले देशों मे इसका विशिष्ट स्थान है। हजारो वर्ष पहले ही साहित्य, दर्शन, विज्ञान, शिल्प-कला, सगीत, चित्र-कला, ज्योतिष आदि विद्याएँ यहाँ उन्नत अवस्था को पहुँच चुकी थी। आज भी बची-खुची देव-भाषा सस्कृत की हज़ारो पुस्तके, प्राचीन मन्दिर, क़िले, खँडहर आदि अनेक भग्नावशेष इस बात की साक्षी दे रहे हैं। महापुरुषों, कलाकारों, ज्ञानियो, महात्माओ की यह जन्म-भूमि, अनेक सभ्यताओं, संस्कृतियों, साम्राज्यों, भाषाओं का यह "सुजला, सुफलां, शस्य श्यामलाम्" जादू-भरा देश, अपने हज़ारो वर्ष के विचित्र इतिहास को लिये हुए एशिया महाद्वीप के दक्षिण मे स्थित है।

दुनिया के सात बडे-बडे जमीन के टुकडे मान लिये गये हैं—जिन्हे कि महाद्वीप कहते हैं। भारतवर्ष दुनिया के सबसे बडे महाद्वीप एशिया का एक भाग है। भारतवर्ष एक बड़ा भारी देश है—जादू की पिटारी है—रग-बिरगे पक्षियो का एक पिजड़ा है, प्रकृति और पुरुष का अजायब-घर है। भारतमाता के सिर पर पश्चिम से पूर्व तक फैला हुआ, दो हजार मील लम्बा हिमालय पर्वत का, बर्फ की चाँदी से बना हुआ, मुकुट रखा है। इसकी हरी-भरी छाती पर गगा-यमुना, मोती और नीलम की मालाओ-सी, झूल रही हैं। इसकी बिखरी हुई केश-राशि के समान सिध, चिनाब, झेलम, व्यास, ब्रह्मपुत्र आदि सरिताएँ लहरा रही हैं। इसकी कमर पर करधनी के समान विंध्या और सतपुडा पर्वतो की श्रेणियाँ शोभित हैं। नर्मदा नदी भी इसके मध्य-भाग मे कल-कल करती हुई बह रही है। कृष्णा, कावेरी आदि नदियाँ आँचल-सी फहरा रही हैं। पद-प्रान्त के पास कमल कली सी लका सुशोभित है। हिंद-महासागर इसके चरण को पखार रहा है। यह बहुत बड़ा देश है। इसकी आबादी ३५ करोड़ से भी अधिक है यानी इँगलैंड से क़रीब ७ गुनी आबादी है। काश्मीर के उत्तर से लगाकर दक्षिण तक यह दो हज़ार मील से भी अधिक लम्बा है। भारत का दक्षिणी भाग तीनो ओर से समुद्र-जल से घिरा हुआ है। पश्चिम की ओर अरब सागर, पूर्व की ओर बगाल की खाड़ी और दक्षिण की ओर हिंद-महासागर है। दक्षिणी भाग एक बड़ा भारी पठार है। इस पठार के पश्चिम और पूर्व के उठे हुए भाग पश्चिमी घाट और पूर्वी घाट कहलाते हैं। पश्चिमी घाट और पूर्वी घाट पहाड़ो की श्रेणियाँ नही हैं वे केवल पठार के ऊँचे उठे हुए किनारे हैं। यह पठार पश्चिम से पूर्व की ओर ढलुआँ है। भारत के समुद्र-तट अधिकतर कटे हुए नहीं हैं, एव समुद्र का पानी दूर तक ज़मीन के अन्दर नहीं घुस पाता, इसलिए यहाँ प्राकृतिक बन्दरगाह नही हैं और यही कारण है कि भारतवासी हमेशा से समुद्र से दूर ही रहे हैं। वे अच्छे मल्लाह नहीं हो पाये। अधिकाश मनुष्यों ने तो समुद्र के दर्शन भी नहीं किये। दूसरे देशों मे, जैसे इगलैंड मे, अच्छे-अच्छे प्राकृतिक बन्दरगाह हैं। वहाँ समुद्र का पानी दूर तक अन्दर घुस आया है। उन देशों के बहुत-से नगर समुद्र के पास ही हैं, इसलिए वहाँ के लोग समुद्र के पास रहने के कारण समुद्र-प्रेमी और अच्छे मल्लाह हैं।

भारत की ज़मीन, ख़ासकर गङ्गा और यमुना के बीच की ज़मीन बड़ी उपजाऊ है। इस देश मे घने जङ्गल भी हैं।
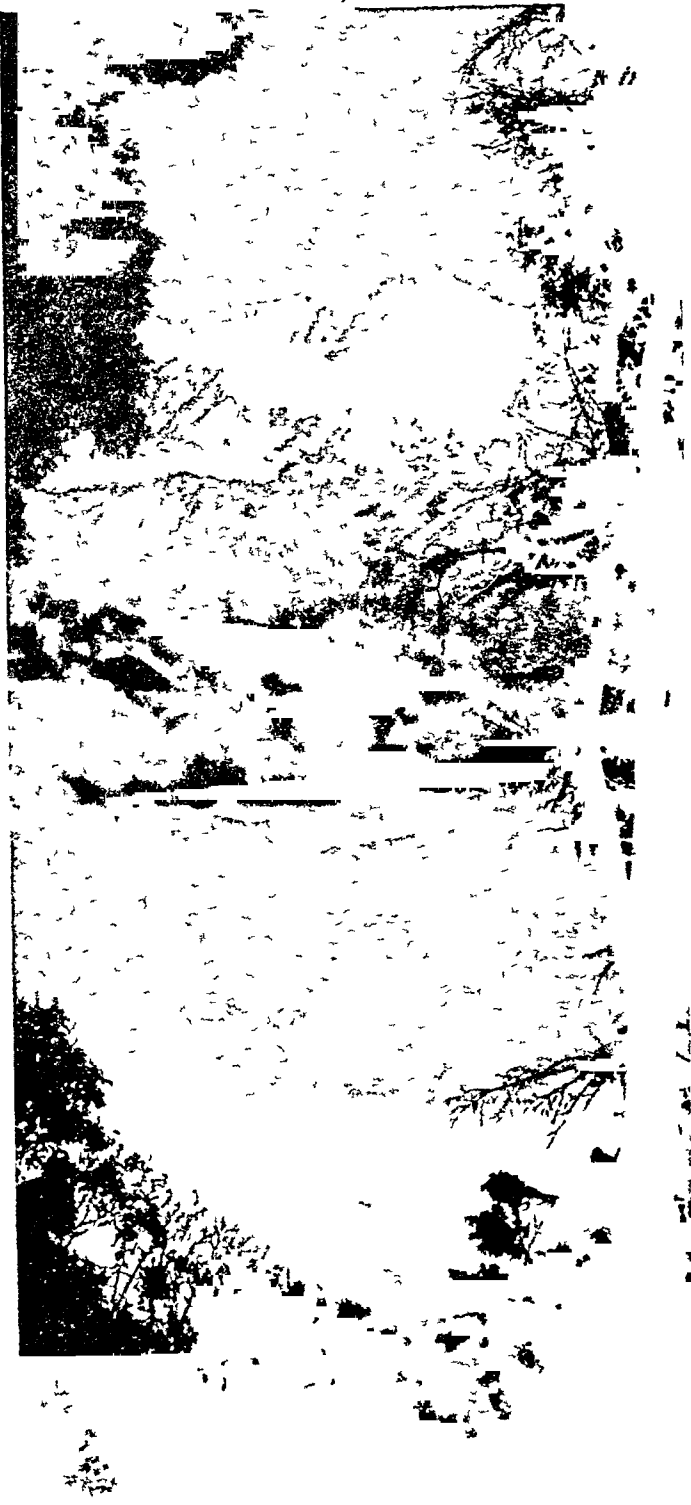
दक्षिण भारत के पाँच हज़ार फीट से अधिक ऊँचे पहाड़ों पर और हिमालय की तीन हजार फीट ऊँचाई पर सदैव हरे रहनेवाले जङ्गल पाये जाते हैं। हिमालय के ऊँचे भागों में कोई वनस्पति पदा नहीं होती, क्योंकि वहाँ हर दम वर्फ जमी रहती है। गङ्गा के मुहाने पर "सुन्दर वन" नामक एक वन है। ब्रह्मा के जगलों तथा भारतवर्ष के जगलों मे अच्छे-अच्छे वृक्ष पाये जाते हे जिनकी कि लकड़ी बहुत उपयोगी होती है। इन दरख्तों को काट-काटकर बडे-बडे लट्ठे भैंसों या हाथियों के द्वारा खिचवाकर, गर्मी के दिनों में सूखी हुई नदियों की धाराओं मे डाल दिये जाते हैं। जब बरसात मे नदियो मे पानी आ जाता है तब वे लट्ठों के गट्ठे बह-बहकर अपने निश्चित स्थान तक पहुँच जाते हैं। ब्रह्मा प्रान्त मे लट्ठों को सिलसिले से एक के ऊपर एक जमाने का काम हाथी करते हैं। ये चतुर हाथी अपनी सूँड़ से लट्ठों को उठा-उठाकर जमा कर देते हैं।

भारत में ज्वार-बाजरा, गेहूँ, दाल, सन, कपास, नारियल, चाय, काफी, तमाखू, रबर, चावल आदि चीजों की पैदावार होती है तथा रुई, सन, रेशम, ऊन, आदि से उपयोगी वस्तुएँ भी बम्बई, कलकत्ता, अहमदाबाद, कानपुर आदि की मिलों मे तैयार की जाती हैं। मुर्शिदाबाद, बनारस, अमृतसर, अहमदाबाद और सूरत रेशमी काम के लिए प्रसिद्ध हैं। अभी कुछ वर्ष पहले ही भारत के गाँवों मे रेशम की साड़ी आदि बनानेवाले बड़े होशियार कारीगर पाये जाते थे। काश्मीर के गलीचे प्रसिद्ध हैं। जमशेदपुर मे लोहे की वस्तुओं को तैयार करने का बड़ा भारी कारख़ाना है। बनारस, बम्बई, पूना आदि की चाँदी की वस्तुएँ तथा जयपुर और दिल्ली की सोने की वस्तुएँ प्रसिद्ध हैं। पीतल के बर्त्तन तो हर जगह बनाये जाते हैं, और गाँवो में मिट्टी के बर्त्तन तो कुम्हार आदि बनाते ही हैं।

गगनचुम्बी हिमालय

यह दार्जिलिंग से दिखाई पडनेवाली हिमालय के एक उत्तुग शिखर कचनजघा का चित्र है। यह चोटी २८,१५६ फ़ीट ऊँची है।

भारत की उर्वरा भूमि पर हरी-भरी प्रकृति सदैव लहलहाया करती है। प्राकृतिक सौंदर्य्य की दृष्टि से गगन-चुम्बी हिमालय की वर्फ़ से ढकी हुई चोटियाँ बेजोड़ हैं। काश्मीर तो प्राकृतिक सौंदर्य्य का स्वर्ग है। यहाँ तो मानो प्रकृति स्वय ही अपना साज-सिगार किया करती है। तरह-तरह के सुन्दर जीव-जन्तुओ की भी इस देश मे कमी नही है। भारतवर्ष वास्तव में गाँवों ही मे बसा हुआ है। यहाँ योरपीय देशों के समान न तो अधिक सख्या मे बड़े-बड़े नगर हैं और न उतने बिजली और लोहे के कारखानो की हलचल। आधुनिक भारत जब से ब्रिटिश साम्राज्य के अतर्गत आया तब से यहाँ भी पश्चिमी हवा चल पड़ी है। भारत के बड़े-बड़े नगरों मे आलीशान इमारतें, मोटरें, सायकलें, रेडियो, सिनेमा, ट्राम-गाडियाँ आदि की अब धूम है। तो भी सच पूछिए तो भारत के छः-सात लाख गाँवों के बीच मे बीस-पचीस बड़े-बड़े नगरो का अस्तित्व नगण्य सा-ही प्रतीत होता है। असली भारत तो गाँवों ही मे है। यहाँ के पचहत्तर या अस्सी प्रतिशत लोग किसान हैं। किन्तु ये किसान—अपने पसीने से देश को अन्न-वस्त्र देनेवाले ये भारत के असली प्राण—आज असहाय ग़रीबी मे डूबे हुए हैं। वह भारतवर्ष जिसने कि सभ्यता, सस्कृति और ज्ञान के क्षेत्र मे किन्हीं दिनो आश्चर्य्यजनक प्रगति की थी, आज निरक्षरता का शिकार बना हुआ है। सदियों की गुलामी ने भारत को बहुत नीचे गिरा दिया है। फिर भी आज के भारत मे महात्मा गाधी ऐसे महापुरुषो ने फिर नवजागृति उत्पन्न कर दी है। असहयोग आन्दोलन मे सैकडो स्त्री-पुरुषों ने जेल जाकर और देश-प्रेम के लिए प्राणों की बाज़ी लगाकर सिद्ध कर दिया है कि यह राष्ट्र अब भी जीवित है।

आइये, अब जरा गाँवो मे चलकर सच्चे भारत का दर्शन करें। आपको यहाँ कही मिट्टी और फूस की बनी हुई साफ सुथरी तो कही टूटी-फूटी छोटी-छोटी झोपड़ियाँ मिलेंगी। इन्ही मे किसान अपने परिवार के साथ रहता है। गाँव के
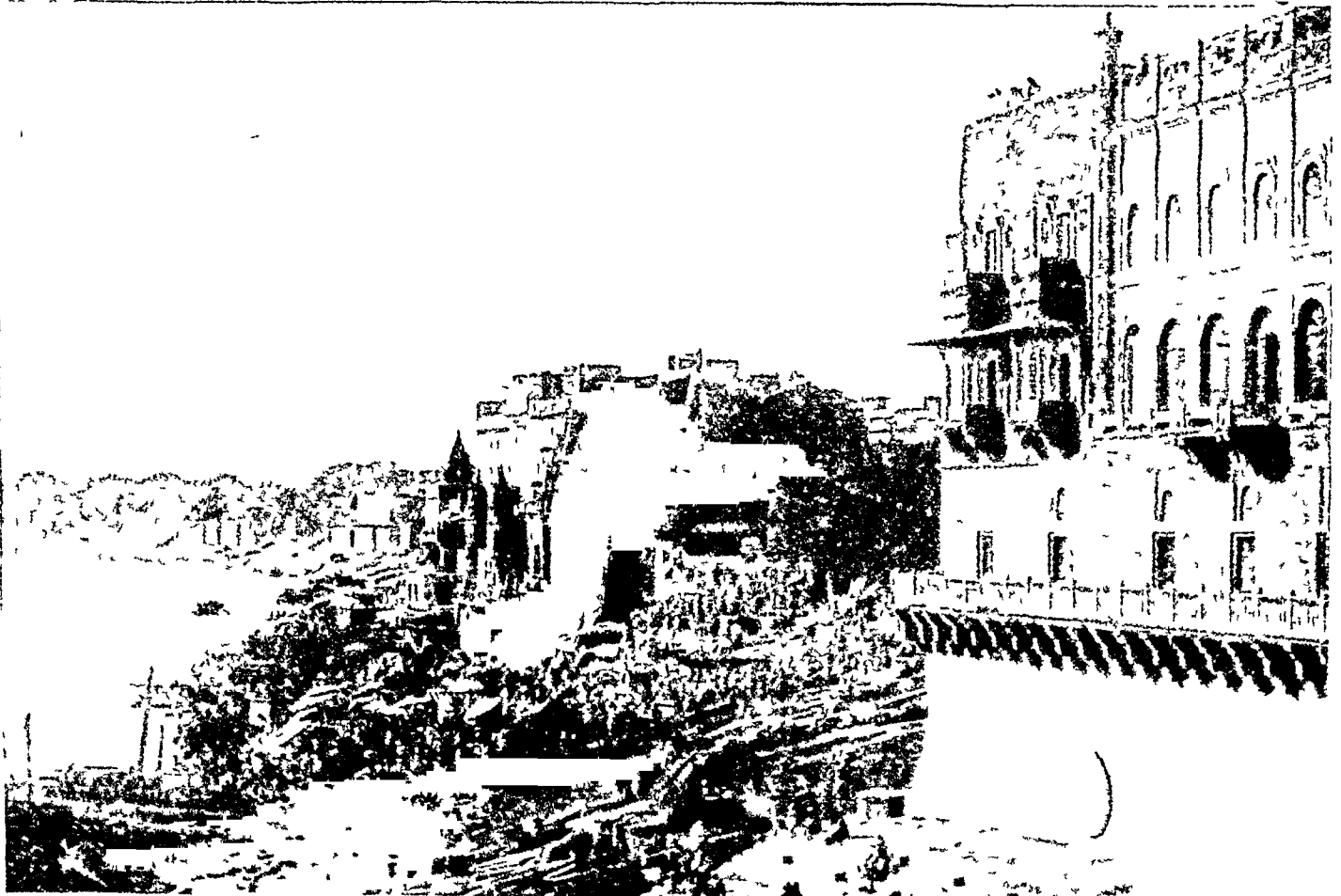
भारत के गौरवशाली अतीत की साक्षी—गंगा

जिसके तटों पर भारतीय सभ्यता का जन्म और विकास हुआ और जिसका नाम तक प्रत्येक भारतवासी के लिए एक पुनीत श्रद्धा की वस्तु है। गंगा इस देशवासियों के लिए एक जड वस्तु नहीं, वरन् एक अलौकिक मूर्त्तिमान देवी के रूप में विद्यमान है।

आस-पास छोटे-छोटे जमीन के टुकडे हैं। उन्ही टुकड़ों पर किसान अपना देशी हल चलाकर खेती करता है। चाहे गर्मी हो, चाहे जाडा, चाहे बरसात हो, पर बेचारा गरीब किसान चिथडे लपेटे हुए अपने दुबले-पतले बैलों को हल मे जोतकर, सुबह से शाम तक खेतो की छाती पर हल चलाता है। मिट्टी से जो कुछ अन्न पैदा होता है, उसी से उसको साल भर तक अपना और अपने परिवार का पेट भरना पड़ता है। कभी वर्षा मे बाढ आने के कारण सैकडो गॉव जल-मग्न हो जाते हैं। गाय-बैल आदि मवेशी पानी मे बह जाते हैं। कभी अकाल पडता है, तो कभी अति वृष्टि, और कभी अनावृष्टि। प्रकृति की सब क्रूरताओं को किसान सहता है और किसी तरह जीवन यापन करता है। किसी-किसी गॉव मे सौ दो सौ या इससे भी ज्यादा घर होते हैं तो किसी-किसी मे दो-चार झोपड़ियॉ ही। बगाल मे किसान अधिकतर दो-दो चार-चार झोपड़ियॉ डालकर ही अपने खेतो के पास रहते हैं।

एक ग्रामीण भारतीय

जिसकी भावभङ्गी और वेषभूषा इस बात की साक्षी हैं कि इसकी नसो मे अब भी प्राचीन आर्यो का रक्त सुरक्षित है।

प्रत्येक गॉव मे एक-न-एक कुआँ अवश्य होता है। इन कुओ पर पानी भरने के लिए किसानो की स्त्रियॉ, अपने-अपने प्रात के रस्म-रिवाज के अनुसार पोशाक पहने, सुबह-शाम इकट्ठा होती हैं। ये स्त्रियॉ कुएँ के पनघट पर इकट्ठी होकर सुख-दुःख की बाते करती हैं। कभी घर-गृहस्थी से सबध रखनेवाली बातों की चर्चा होती है, तो कभी किसी की मॉ या बहू आदि की शिकायत या तारीफ होती है। सुबह कुएँ से पानी खीचकर घडे सिर पर रखे और बगल मे दबाये ये घर की ओर जाती हे, चूल्हा जलाती हे और अपने पति तथा बाल-बच्चों के लिए रूखा-सूखा भोजन तय्यार

(बाईं ओर) ग्रामीण भारत

जिसे प्रकृति ने तो हर तरह के साज-सिंगार से सजा रक्खा है, किन्तु मनुष्य को असाम्य व्यवस्थाओ के फलस्वरूप जहॉ आज प्राय टूटी झोपडियाँ, दुबले-पतले चौपाये और दीन-हीन किसान ही दिखाई देते हैं।

नवीन भारत

पिछले कई सौ वर्षों से अकर्मण्यता और अज्ञान की निद्रा में अचेत सा भारत इस कालावधि में जकड़ी गई पराधीनता की बेड़ियों को झकझोरता हुआ आज नया शरीर धारण कर उठ खड़ा हुआ है। केवल राजनीतिक और सांपत्तिक दासता ही नहीं बल्कि उससे भी अधिक भयंकर निरक्षरता और अज्ञानांधता की बेड़ियों से भी मुक्ति पाने की साध उसमें अब जग उठी है। पिछले कई वर्षों से उठा हुआ स्वतंत्रता का आंदोलन तथा अभी हाल में उपज साक्षरता के प्रसार का आंदोलन इस बात के साक्षी हैं। एक नवीन भारत का जन्म हो रहा है। नूतन जागृति की यह लहर अब केवल शहरों या शहर-वालों ही तक सीमित नहीं है, प्रत्युत गांवों में भी जहाँ कि असली भारत बसता है, फैल रही है। पिछले आंदोलन के समय स्वतंत्रता का संदेश सुनने के लिए लाखों की संख्या में किसानों का इकट्ठा होना इस बात का सजीव प्रमाण है।

करती हैं। किसान ज्वार या बाजरा की मोटी-मोटी रोटियाँ प्याज या तरकारी के साथ खाकर सुख-सतोष की सॉस लेता है और सुबह होते ही फिर हल चलाना शुरू कर देता है।

भारत ससार का सबसे अधिक धर्मप्राण देश है। धर्म की भावना ही ने इस देश को अब तक जीवित रक्खा है। परतु लोगों की सरल श्रद्धा से बहुत-कुछ अनुचित लाभ भी उठाया जा रहा है और जगह-जगह धर्म के व्यापारी उठ खडे हुए हैं। गॉवों में जाइए, किसी चबूतरे पर बैठे कोई साधु महाराज आप अवश्य पायेंगे। ये महात्मा गॉजे की दम लगाते हुए लोक-परलोक की लम्बी-चौडी डींग हॉकते हैं। कभी पीपल या बरगद के दरख्तों के नीचे सेंदुर से पुते हुए गोल-गोल पत्थर रखे रहते हैं जो भॉति-भॉति के देवताओं का प्रतिनिधित्त्व करते हैं। ग्रामीण स्त्री-पुरुष बडी श्रद्धा और विश्वास के साथ उन देवताओं पर जल-धारा डालकर पत्र-पुष्प चढाते हैं। यदि कोई बीमार पडता है तो लोगों को झट भूत-प्रेत का अन्देशा हो जाता है। झाड़-फूॅक करनेवाले, भूत-प्रेत को शरीर से निकालनेवाले, "ओझा" नामक महापुरुष बुलाये जाते हैं या किसी भगतजी या औघडपथी के शरीर पर किसी देवना या सीतला माई आदि की आत्मा बुलाई जाती है। घृत का दीपक रात-भर जलता है। धमाधम टोल बजते हैं और देवता धोती-मात्र पहने हुए भगत के शरीर पर धावा बोलते ह। भगतजी का शरीर हिलने-कॉपने लगता है। शराब की बोतल खुलती है। देवता बोतल गटागट साफ कर जाते हैं, फिर भभूत बॉटते हैं तथा बीमार आदमी के भूत-प्रेत को डरा-धमकाकर निकाल बाहर करते हैं। तब कॉपते स्वर मे भविष्यद्वाणी कर, सरलहृदय ग्रामीणों को चकित और आतङ्कित कर देते हैं।

भारत मे भिन्न-भिन्न धार्मिक विश्वास रखनेवाले लोग पाये जाते हैं। जातियॉ भी यहॉ कई हैं। हिन्दुओं मे मुख्य ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार जातियॉ हैं जो कि बहुत पुराने ज़माने से अपना अस्तित्त्व बनाये हुए हैं। इन जातियों की भी कई शाखाएँ और उपशाखाएँ हो गई हैं जैसे वृक्ष की डालियॉ और पत्ते। रेलगाडी के प्रसार से या शहरों मे पाश्चात्य सभ्यता के ससर्ग से जाति-बन्धन ढीले पड़ चले हैं, फिर भी अधिकाश लोग सस्कार, विवाह आदि के मामलों मे जात-पॉत के भेद-भाव का पालन करते हैं। अपनी ही जातिवालों में आपस मे विवाह-सबध होते हैं। एक ब्राह्मण क्षत्रिय या वैश्य या शूद्र की जाति में शादी नहीं कर सकता और न अन्य जातियॉ ही अपनी सीमा के बाहर जाती हैं। हॉ, आज-कल के कुछ नवयुवक अन्तर्जातीय विवाह भी करने लगे हैं। देश के नेतागण भी इन जातियो को एकाकार बनाने मे प्रयत्नशील हैं। पर गॉवों मे यह जाति-प्रथा दृढ है। कहा जा चुका है कि भारत की आबादी ३५ करोड से भी ऊपर है। इसमे हिन्दू-धर्म के माननेवाले क़रीब २३,६५,६५,००० अर्थात् ६८-६६ प्रतिशत मनुष्य हैं। शेष सिख, जैन, बौद्ध, पारसी, मुसलमान, ईसाई आदि भिन्न-भिन्न मुख्य धर्मों के माननेवाले हैं। कुछ जगली जातियॉ भी पहाड़ों में रहती हैं, जो भूत-प्रेत आदि की पूजा करती हैं। मुग़ल शासन-काल मे कई हिन्दू मुसलमान बना लिये गये। अब भारत का एक-चौथाई हिस्सा, यानी लगभग आठ-नौ करोड़ मनुष्य मुसलमान हैं। ईसाई पादरियों ने भी तिरसठ या चौसठ लाख या इससे भी ज्यादा लोगों को ईसाई बना लिया है। इतनी सब विभिन्नताएँ होते हुए भी भारत का प्रत्येक भाग एक विशेष सस्कृति मे बॅधा हुआ है। अन्य बातों में विभिन्नता होते हुए भी सास्कृतिक दृष्टि से यहॉ ऐक्यता है। मुसलमान भी यहीं पैदा होकर और बरसों यहॉ रहकर यहीं के हो गये हैं। हिन्दी, बगला, पजाबी, कश्मीरी, तेलगू, मलयालम, कनाडी, तामिल, गुजराती, मराठी, उर्दू ये यहॉ की मुख्य भाषाएँ हैं। इन भाषाओं के भी अनेक भेद हैं। बोल-चाल की भाषा या 'बोली" तो प्रत्येक बारह मील मे कुछ-कुछ परिवर्त्तित-सी दिखाई पडती है। इनमें हिन्दी या हिन्दुस्तानी भाषा मुख्य है और यही यहॉ की राष्ट्र-भाषा बनती जा रही है।

यह भारत नगरों, गॉवों, धर्मों, सस्कृतियों, भाषाओं, जातियों, पहाडों, नदियों, प्राकृतिक दृश्यों, जीव-जतुओं आदि का विचित्र अजायबघर है। इन विचित्रताओं के बीच भारतीय सस्कृति के श्रेष्ठ कलात्मक प्रतीक-स्वरूप प्राचीन इमारते इस देश के अतीत को वर्त्तमान से सबधित कर देती हैं। सॉची के बौद्धकालीन भव्य स्तूप, चित्तौड़, ग्वालियर, आदि के किले, मथुरा, वृन्दावन, बनारस आदि के मन्दिर और सदियों से अटल खडे हुए अन्य सैकड़ो स्मारकों के अवशेष आर्य्य-सभ्यता की पुरातन महिमा का गौरव-गान कर रहे हैं। आगरे का ताजमहल, फतहपुर सीकरी, दिल्ली, लाहौर, लखनऊ आदि की मुगलकालीन इमारते, मीनारे और समाधियॉ मध्यकालीन संस्कृति की रगीन तस्वीरे खीच देती हैं। सम्राट् शाहजहॉ के अमर ऑसू विश्व-विख्यात "ताजमहल" के रूप में जमकर काल के कपोल पर मानो लटक गये हैं। "ताजमहल" और एलोरा का प्रसिद्ध "कैलाश-मन्दिर"

संसार की भवन-निर्माण-कला के सर्वोत्कृष्ट उदाहरणों में से हैं, इसमें संशय नहीं। उधर राजपूताने के बूढ़े खण्डहर राजपूतों की नङ्गी तलवारों को आज भी झनकार रहे हैं।

अब पाश्चात्य सभ्यता ने भारत के नगरों को बहुत-कुछ आधुनिक बना दिया है। सैकड़ों कल-कारख़ाने देखने में आते हैं। सुबह और शाम काम पर जाते हुए तथा छुट्टी के बाद वापस आते मिल-मज़दूरों का झुण्ड दृष्टिगोचर होता है। मोटर, सायकिल, इक्के आदि इधर से उधर भागते हुए दिखलाई पड़ते हैं। नये-नये पाश्चात्य रग-ढग के बँगले, स्कूल, कालेज, प्रेस, मोटर, रेडियो, टेलीफोन आदि हज़ारों क़िस्म की चीज़ें देखने को मिलती हैं। फिर भी जैसा कि कहा जा चुका है, ऐसे बड़े-बड़े शहर जहाँ कि पाश्चात्य वैज्ञानिक सभ्यता की चकाचौंध नज़र आती हो, भारत मे बहुत कम हैं। कलकत्ता और बम्बई भारत के सबसे बड़े शहर हैं। इनकी आबादी लगभग तेरह या चौदह लाख है। परन्तु योरप-अमेरिका मे इनसे कहीं बड़े-बड़े शहर हैं।

यद्यपि भारत में आज रेलगाड़ियाँ रेंगती हैं, बिजली और भाप के जादू का वैभव देखने में आता है—फिर भी गाँव में बसा हुआ असली भारत अभी ग़रीबी की ही दुनिया में कालयापन कर रहा है। हाँ, उसकी इन झोपड़ियों के दाएँ-बाएँ कुछ पुरातन भग्नावशेष बिखरे पड़े हैं, जिनको देखकर उसकी पुरातन गौरव की याद से जी भर जाता है और मस्तिष्क श्रद्धा से झुक जाता है।

आइए, इस स्तभ के आगे के प्रकरणों मे इस अद्भुत् महादेश के प्रत्येक अग को अलग अलग लेकर विस्तार-पूर्वक उनका अध्ययन करें—देखें, अतीत के भव्य पटल पर दिव्य अक्षरों मे अपना इतिहास लिखानेवाले इस अप्रतिम राष्ट्र का आज दिन कैसा स्वरूप है—किस प्रकार एक नवीन युग का यहाँ धीरे-धीरे आविर्भाव हो रहा है?
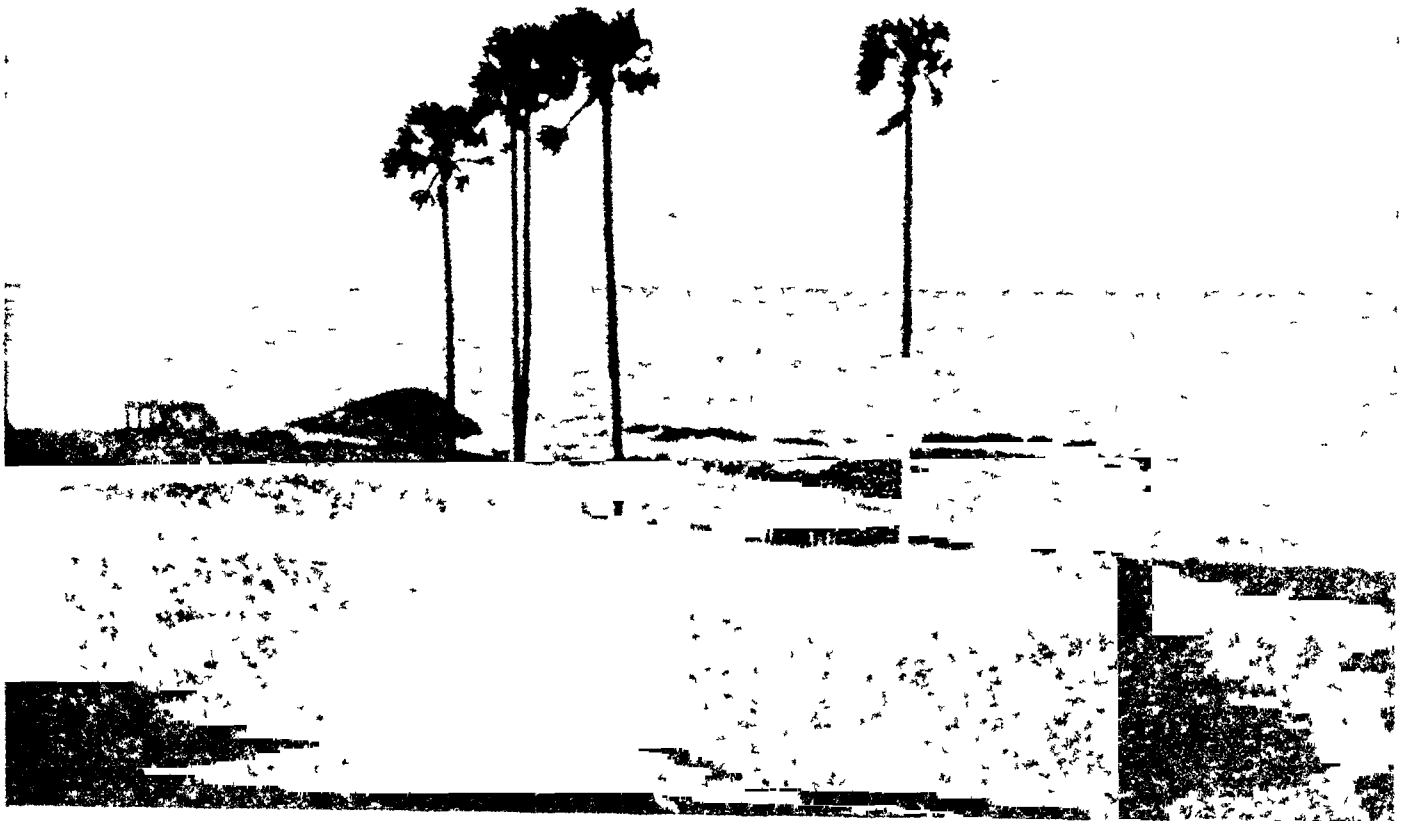
भारत का अंतिम दक्षिणी सिरा—कुमारी अंतरीप

जहाँ हिन्द महासागर की लहरें उछल-उछलकर मानो भारतभूमि के चरण पखारने के लिए होड़ करती रहती हैं।
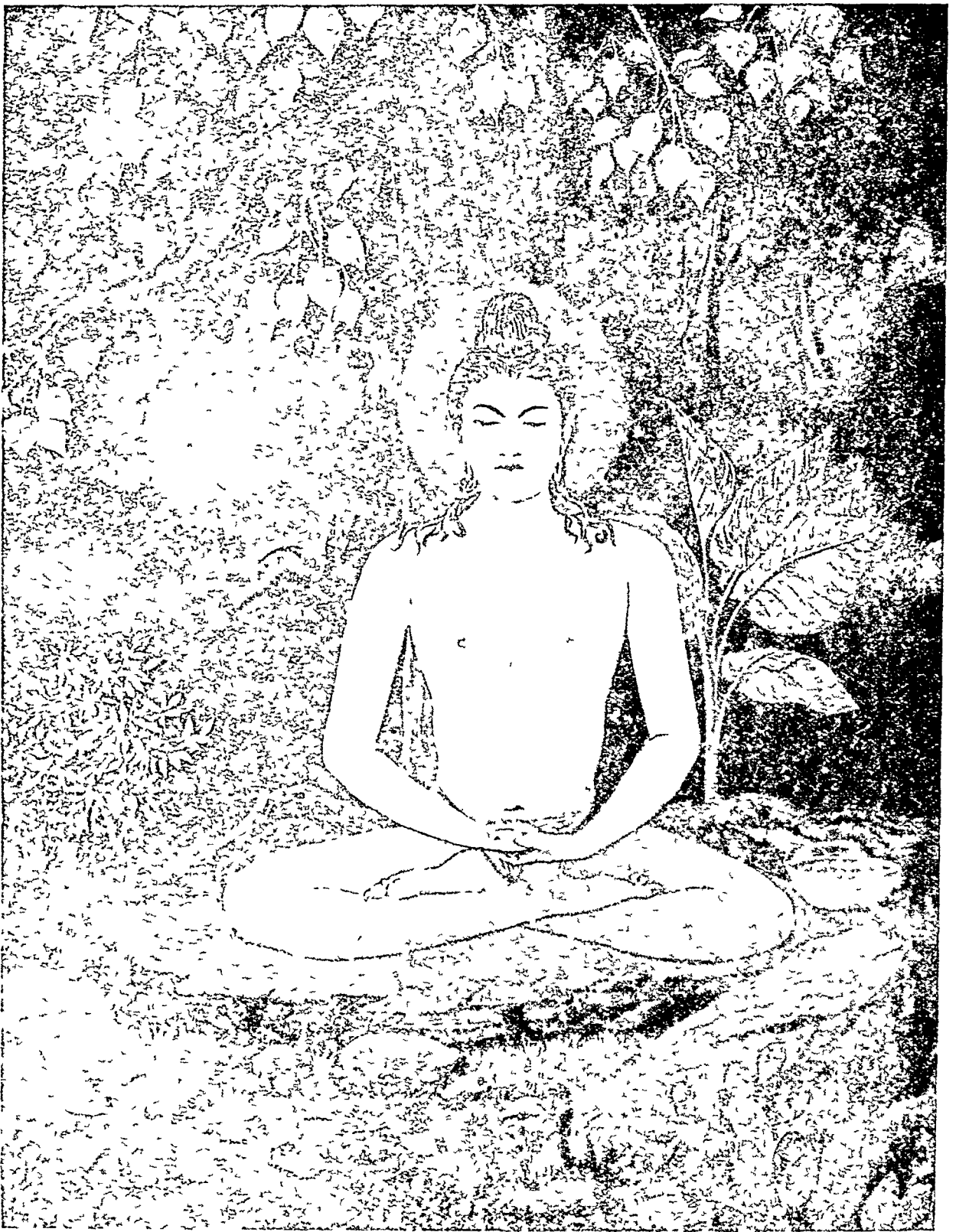
महात्मा बुद्ध

संसार के दुःखों से मानव की मुक्ति की खोज में जिन्होंने सब-कुछ त्याग दिया और अंत में गया के समीप एक पीपल के वृक्ष के नीचे वह आत्मज्ञान या बोध प्राप्त किया, जिसका प्रकाश आज भी करोड़ों नर-नारियों को इस अंधकार में मार्ग दिखा रहा है।
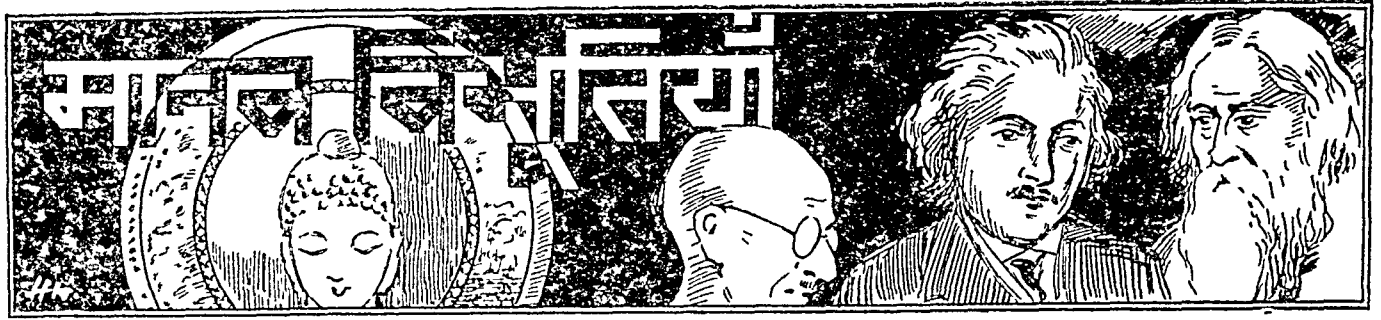
गौतम बुद्ध

इस स्तम्भ मे हमें क्रमश. मनुष्य-जाति के उन सुदृढ आधार-स्तम्भो का परिचय मिलेगा, जिन्होने हमारी इस सभ्यता की इमारत में समय-समय पर सहारा देकर इसे असमय ही ढह पडने से बचाया और इसको ऊँचा चढाकर भविष्य का निर्माण किया है।

एकछत्र राज्य के अपरिमित वैभव के बीच जो पैदा हुआ—जिसके चारों ओर सुख ही सुख का वातावरण हो—वह एक अपाहिज को देखकर, एक बीमार की कराहें सुनकर, इतना प्रभावित हो उठे कि इन सारे दुःखो के निवारण का मार्ग खोजने के लिए अपने विलास वैभव को छोड़कर दुःख का कँटीला रास्ता पकड ले, स्त्री-पुत्र को बिलखते छोडकर स्वेच्छापूर्वक जङ्गलो की खाक छाने—ये हमारे कल्पना मे आ सकनेवाली बाते नही हैं, क्योंकि हम नित्य ही अपाहिजों को देखते, दुखियों की पुकार सुनते, बीमारों को कराहते पाते और उनकी करुण पुकार को इस कान से सुनकर उस कान से निकाल देते हैं। पर हम मे और महापुरुषो मे—युग-निर्माण करनेवालों मे—यही तो अन्तर है कि जो हम नही देख सकते उसे भी वे देख सकते हैं, और जो हम नहीं कर सकते वह भी वे कर सकते हैं।

आज से लगभग ढाई हजार वर्ष पहले की बात है। कपिलवस्तु के राजमार्ग पर एक रथ चला जा रहा है और रथी कुछ हकाबका सा इधर-उधर ताक रहा है। चारों ओर सन्नाटा है, सिवा इसके कि रथ के चलने की आवाज आ रही हो, जिसके कि अभ्यस्त रथी और सारथी दोनों ही है। अकस्मात् किसी ओर से एक कराहने की आवाज़ आई और रथी बोल उठा—'सारथी, रथ रोक दो! देखो, यह कौन कराह रहा है!"

रथ रुके-रुके कि सामने ही पडा एक व्यक्ति, जिसके अग-प्रत्यंग मे पीडा हो रही थी, बुरी तरह तडपते दिखाई दिया। रथी तुरन्त ही रथ पर से कूद पडा और उस बीमार आदमी के पास जा खडा हुआ। वह उसे बड़े ग़ौर से देखने लगा और उसके मन मे एक विचार उठा—'अरे, यह आदमी किस कष्ट मे है? क्यो यह कराह रहा है? मै तो नहीं कराहता, मेरे भी तो हाथ-पैर इसी आदमी की तरह है!' और उसके मन मे इन प्रश्नो और शंकाओ का समाधान ढूँढने की एक आकुल उत्कठा जग उठी। वह उदास मन से आकर रथ मे बैठ गया। पीछे-पीछे सारथी भी आकर अपनी जगह पर बैठ गया, और रह-रहकर वह रथी की ओर देखने लगा, मानो आज्ञा की राह देख रहा हो कि रथ हॉके या न हॉके और हॉके तो किधर हॉके। रथी के मन मे एक बेचैनी होने लगी। वह बार-बार सोचता था कि आख़िर आदमी कराहे क्यों? क्यों वह इतना परवश है कि इस कराहने पर उसका काबू नही है?

रथी सारथी की ओर मुडा—"सारथी, यह आदमी हमारी-तुम्हारी तरह क्यों नही बोलता? इसकी ऑखो मे क्या हो गया है कि वह हम लोगों की तरह देखता नहीं? यह अन्तर क्यो?"

"वह बीमार है, राजकुमार।"

"बीमारी क्या वस्तु होती है, सारथी?"

"उसके शरीर की रचना जिन अवयवों से हुई है, उनमें कुछ अव्यवस्था पैदा हो गई है, कुमार! इसी को बीमारी कहते हैं।"

रथी के शरीर मे एक कॅपकॅपी-सी दौड गई। वह एकाएक बोल उठा—"तो क्या मै भी इसी तरह बीमार पड सकता हूँ?"

"इस पर किसी का क़ाबू नहीं है, प्रभु।"

रथी ने रथ को वापस करने की आज्ञा दी। लगातार वह बेचैनी के साथ सोच रहा था कि आख़िर इस जीवन

का उपयोग ही क्या, जिसमे इतनी परवशता, इतनी लाचारी भरी पडी है ? एक राजा है, एक भिखारी है, एक स्वस्थ है, एक बीमार है ! और इन सब दु:खों के निराकरण का कोई साधन मनुष्य के हाथ मे नही है !

युवावस्था के आगमन तक भी, राजमहल या रनवास के वैभव और आराम को छोड़कर, बाहर की दुनिया मे कैसा सुख दुःख है इसकी हवा भी जिसे न लगी हो वह बार-बार एक-पर एक इसी तरह की घटनायें देखने लगा और उसके विचारों मे क्रान्ति की एक आँधी उठ खडी हुई। उसके मन में अपने चारों ओर के प्रति विद्रोह का एक प्रबल भाव जाग उठा। वह यह भी देखने लगा कि उसकी चिन्ता को बदल देने को और उसकी विचारधारा की गति दूसरी दिशा मे मोड देने को उसके स्वजनों ने लक्ष्मी की सारी शक्ति लगा रक्खी है। और यह देखकर उसके मन का विद्रोह और भी प्रबल हो उठा। वह अब कोई भी बन्धन मानने को तैयार नहीं था। उसके मन में एक दृढता आ गई। इन सब अनिवार्य कहलानेवाले दुःखों का निवारण अवश्य होना चाहिए। पर तब मन में यह भी विचार उठता था कि—'कैसे ?' पर इस शका को उसकी दृढता मानने को तैयार नहीं थी। उसकी तो पुकार थी कि चाहे जैसे भी हो, मानव के उद्धार और सुख की दवा खोजना आवश्यक है। यह अब उसके लिए असह्य था कि मनुष्य इसी तरह परवशता मे पैदा होता रहे और मरता जीता रहे। ऐसे जन्म और जीवन से लाभ ही क्या ?

और इसी तरह के अतर्द्वन्द्व के फलस्वरूप एक दिन रात को उसका विद्रोह इतना प्रबल हो उठा कि उसने सब कुछ छोड देने का कठोर निश्चय कर लिया। सोते से वह उठ बैठा। जी में एक अजीब कडुवाहट सी पैदा होने लगी। पास ही सरल भोले विश्वास को लिये सो

गौतम का महाभिनिष्क्रमण

मानव के कल्याण तथा सत्य की खोज के लिए सर्वस्व बलिदान कर देने का इससे अधिक ज्वलंत उदाहरण संसार के इतिहास में शायद ही कोई दूसरा मिलेगा।

रही पत्नी और उसकी छाती से चिपटे हुए अबोध नन्हे शिशु का मायामय सुन्दर मुखडा उसके चित्त को रह-रहकर अपनी ओर खींच रहे थे। पर वह अतिम निर्णय कर चुका था। अब वापस फिरने की गुंजाइश न थी। माया के पाश को उसने अपने आभूषणों या केश-पाशों ही की तरह काट फेका। द्वार तक पहुँचते-पहुँचते ममता उसके जी मे फिर दबकी-दबकी-सी उठने लगी। उसे मालूम हुआ मानो उसकी यशोधरा उसे पुकार रही है, उसका राहुल हाथ फैलाये उसकी ओर दौडा आ रहा है, और चलते-चलते वह ठिठक गया। मन की इस उथल-पुथल को वह सँभाल नही पाया और फिर शयन-कक्ष मे वापस आ गया। किन्तु मन मे फिर आँधी उठी—ना, ना, इस बंधन को तोडना ही होगा, वरना मनुष्य के दुःखों का निराकरण कैसे हो पायगा? और मन की सारी शक्ति लगाकर एक झटके के साथ वह चल दिया।

उसे निर्वाण चाहिए, दरिद्रता, रोग और मृत्यु से छुटकारा चाहिए—और इसी को खोजने वह निकला। पर राजमहल छोड़ते ही उसके सामने यह प्रश्न विकराल रूप मे उठ खड़ा हुआ कि आख़िर वह कहाँ खोजे यह निर्वाण? कहाँ जाय उसकी तलाश मे? उसे याद आई तीर्थस्थानो की, बडे बडे धर्मस्थानों की और अपने प्रश्नों के समाधान के लिए काशी, प्रयाग आदि सब-कुछ उसने छान डाला। पर उसके जी मे विद्रोह की आग और भी अधिक प्रचण्ड हो उठी जब उसने देखा कि निर्वाण का मार्ग बताने का दावा लेकर खडे इन देवस्थानों और धर्मस्थानो मे बलि की होड़ चल रही है, और दुराचार का बाज़ार गर्म है। उसने देखा कि पुरातन वैदिक धर्म अपने उच्च आदर्शों से बहुत नीचे गिर चुका है। पुरोहितशाही ने तरह-तरह के पूजा-पाठ और पाखण्ड फैला रक्खे हैं। जातियों का बन्धन मानवता के विकास मे बाधा बनकर अड रहा है। मन्त्र-तन्त्र और जादू-टोना आदि अन्ध विश्वास घर करते जा रहे हैं। इस प्रकार पुरोहित लोग मिथ्या धारणाओ और आडम्बर के सहारे जनता के दिमाग़ो पर शासन कर रहे हैं और मानव-कल्याण का मार्ग बताने की अपेक्षा वे राज्य-शक्ति प्राप्त करने की ओर अधिक प्रवृत्त हैं।

और यह सब देखकर उसे बड़ी निराशा हुई। इन धर्मध्वजियो की दूकानों से दूर हटकर निर्जन वन के एकान्त की शरण लेने ही मे उसे एकमात्र सही राह दिखाई दी। वर्षो तक उसने इसी तरह जंगलों की ख़ाक छानने के बाद तब एक दिन गया के समीप एक पीपल के वृक्ष के नीचे समाधि लगा ली। कहते हैं कि वर्षो की तपस्या, कष्ट-सहन, उपवास और तरह-तरह की अन्य साधनाओं के द्वारा जो वस्तु नहीं प्राप्त हुई थी वही थोडे दिनो की उस समाधि से सिद्ध हो गई। उसे प्रकाश मिल गया, बोध हुआ, बुद्धत्व की प्राप्ति हुई और उसी दिन से कपिलवस्तु का वह राजकुमार ससार मे 'बुद्ध' के नाम से प्रख्यात हो गया। जिस वृक्ष के नीचे उसे 'बोध' हुआ था, वह भी ससार मे 'बोधि वृक्ष' के नाम से अमर हो गया।
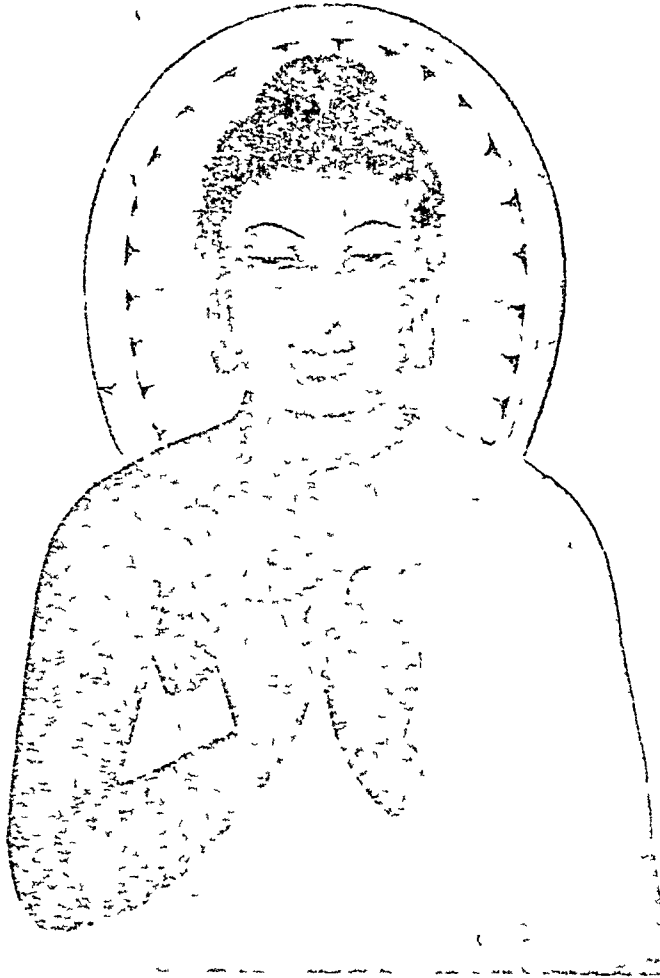
एशिया के सूर्य—महात्मा बुद्ध

अब इस खोजी को, जो एक दिन दुःखों का निराकरण और सत्य ढूँढने निकला था, अन्य ऐसे खोजियों की आवश्यकता हुई, जो उसकी खोज और ज्ञान से लाभ उठा सकें। वह सोचने लगा कि किस प्रकार वह

अपना प्राप्त ज्ञान संसार मे फैलाए। इसी समय अचानक उसे याद आई उन पाँच साथियों की जो कि उसका साथ छोड़कर इसलिए चलते बने थे कि उसका विश्वास शरीर को उपवास आदि द्वारा व्यर्थ कष्ट देकर कठोर तप करने की प्रणाली से उठ गया था। उसे उन साथियों की याद करके उनकी बुद्धि और समझ पर तरस आई और उनकी खोज में वह निकल पड़ा।

बुद्धत्व-प्राप्त वह सन्यासी राजकुमार जगह-जगह घूमते-फिरते बनारस पहुँचा, जहाँ इसिपत्तन (ऋषिपत्तन) या वर्तमान सारनाथ के मृगवन मे उक्त पाँचों साथी निवास कर रहे थे। उन पाँचो सन्यासियों ने उसे दूर से आते देखते ही आपस मे सलाह करनी शुरू की। कोई कहता—'देखो मित्र, वही पथभ्रष्ट सन्यासी गौतम आ रहा है, जो अपनी आदतों से विवश होने के कारण तप से च्युत हो गया था! जिसने सुजाता-नामक एक स्त्री के हाथ का दिया भोजन ग्रहण कर लिया था, और तप तथा कठोरता का जीवन छोड़कर सुख के जीवन की ओर जो प्रवृत्त हो गया था।' दूसरा कहता—'हाँ, हाँ, वही है! इधर ही आ रहा है। आओ, हम लोग मुँह फेर ले।' पर ज्योंही वह बुद्धत्व-प्राप्त सन्यासी पास आया, सबके पूर्व निश्चय बदल गए। किसी ने उसका कमण्डलु लेकर एक ओर सँभालकर रक्खा, तो किसी ने आसन बिछाया। कोई पैर धोने को पानी लाने दौड़ा तो कोई खड़ाऊँ लाने गया। इस तरह स्वागत के बाद जब वह सन्यासी अपने लिए बिछाये गए आसन पर बैठा तब उक्त पाँचो सन्यासियों ने उससे बात करने के लिए मुँह खोला। वे उसे 'मित्र' कहकर सम्बोधित करने लगे।

बुद्ध ने कहा—'सन्यासियो, तथागत को उसके नाम से अथवा 'मित्र' कहकर मत पुकारो। वह तुम्हें शिक्षा देगा, धर्म का उपदेश करेगा। अगर तुम उसकी बातों पर ध्यान दोगे तो दीर्घजीवी होवोगे, अपने आपको पहचान सकोगे, जीवन का रहस्य जान सकोगे।'

वे बार-बार शका करने लगे। पर अन्त मे उनकी सब शकाओं का समाधान हो गया, और उन लोगों ने शिक्षा ग्रहण करना शुरू कर दिया। प्रबुद्ध सन्यासी बोले—जिन्होंने ससार को त्याग दिया है, उन्हे दो प्रकार की अति से बचना चाहिए। यह दोनों अति क्या हैं? एक तो है सुख और विलास मे प्रवृत्त जीवन, जो मनुष्य को नीचे ले जानेवाला है। दूसरा, व्यर्थ के बलिदान का जीवन, जो कष्टप्रद और उपेक्षणीय है। सन्यासियो, इन दोनों अति के मार्ग को छोड़कर तथागत ने एक मध्यम मार्ग पाया है, जो बुद्धि, शान्ति, ज्ञान, सम्बोधि और निर्वाण का मार्ग है। यह मध्यम मार्ग क्या है? यह है अष्टाङ्गिक सन्मार्ग, अर्थात् सम्यक् दृष्टि, सत्सङ्कल्प, सद्वचन, सदाचरण, साधु-जीविकावलम्बन, आत्मसयम, सत्विचार और सच्चिन्तन।

और यही शिक्षा अपने जीवन के शेष पैंतालिस वर्षों मे कौशल से विदर्भ और राजगृह तक घूम-घूमकर वह देते रहे। शिक्षार्थियों और ज्ञान-पिपासुओं की भीड़ उनके पास लगने लगी। खबर फैलते देर न लगी कि एक नवीन सन्यासी समता का उपदेश करता है और कहता फिरता है कि ज्ञान प्राप्त करने का प्रत्येक प्राणी को अधिकार है। अभी तक मठ और राज्य ने ज्ञान प्राप्त करने के अधिकार को एक वर्ग-विशेष तक सीमित कर रक्खा था, अतएव इस विद्रोही वाणी पर निम्न श्रेणी के लोग प्रसन्नता से नाच उठे।

इस नई आवाज को सुनकर पुरोहितों और मठाधीशों के कोप की आग भड़क उठी। राजों की भी भृकुटियाँ तन गई और इस नवीन सन्यासी की राह मे रोड़े अटकाने के लिए तरह तरह के षड्यन्त्र रचे गए। पर कोई सफल नहीं हुए। उन दिनों शिक्षा संस्कृत मे होती थी, जिससे साधारण जनता लाभ नहीं उठा सकती थी। बुद्ध ने अपनी शिक्षा जनता की भाषा मे देना प्रारभ किया। अतएव इस धार्मिक प्रजातत्र के सम्मुख एकतत्र का पुराना क़िला जड़-मूल से काँप गया और सभी विरोधी एक-एक करके आकर इस नवीन धर्म मे दीक्षित होते गए।

अन्त मे एक दिन राजा शुद्धोदन की राजधानी कपिलवस्तु का शृङ्गार होना शुरू हुआ। उनका प्रवासी पुत्र गौतम (राजकुमार सिद्धार्थ) बुद्धत्व प्राप्त कर लोक-शिक्षक के रूप में आज वापस आ रहा है। उसकी पत्नी यशोधरा—पिछले कितने वर्षों से पति की प्रतीक्षा के पथ पर आँखे बिछाये रहनेवाली यशोधरा—खुशी और मान की भावना से आज भरी जा रही है। वह आए। पर सभी को नवीन धर्म मे दीक्षित कर फिर चले गए।

इस तरह पैंतालिस वर्ष लगातार धर्म-प्रचार करते करते एक दिन कुशीनगर (वर्तमान गोरखपुर जिले का 'कसया' नाम का क़स्बा) की राह मे 'पावा' नाम के एक गाँव मे अन्त मे निर्वाण पद को प्राप्त हुए।

अब तक उनके लाखो अनुयायी हो चुके थे। उनके भस्मावशेष आठ भागो मे विभक्त किये गए। उन्हें गाड़कर उसके ऊपर आठ स्तूप बनाये गए। और इस तरह एक महान् जीवन, एक युगान्तरकारी व्यक्तित्व का अन्त हुआ।
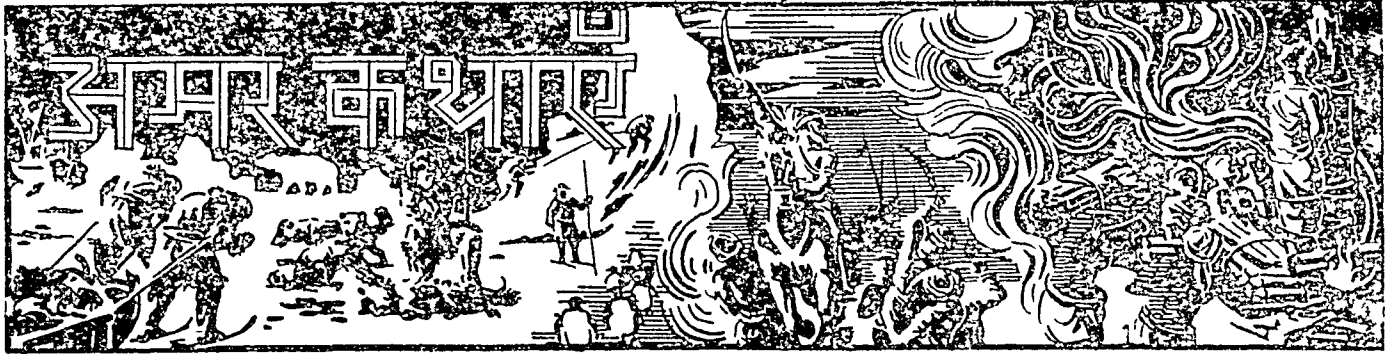
उत्तरी ध्रुव की विजय

मनुष्य को सदैव ही कहानी सुनने का बडा चाव रहा है, और इन कहानियो में सबसे अधिक रोचक शिक्षाप्रद और दिल दहलानेवाली कहानियाँ स्वयं उसी की इस कठोर यात्रा के मार्ग मे पडनेवाले समय-समय के खतरों तथा उस समय उसके द्वारा प्रदर्शित साहस, वीरता, उदारता, त्याग और बलिदान की कहानियाँ हैं। इस स्तंभ में वही अमर कथाएँ—मानव जाति की आत्मकथा के पन्नो पर अमिट अक्षरों में लिखी हुई सच्ची घटनाएँ—चुन-चुनकर आपको सुनाई जा रही हैं।

पूरे छः फीट लबे डीलडौल और उन्नत विशाल मस्तक-वाला एक युवक सयुक्त राष्ट्र (अमेरिका) की राजधानी वाशिङ्गटन की कबाडियों की गली मे स्थित एक किताबो की दूकान पर नई-पुरानी किताबो के पन्ने उलट रहा है। साहित्य, विज्ञान, दर्शन, इतिहास, जीवनियाँ—सभी कुछ पर उसकी आँखे गड़ सी जाती हैं। मानो उसकी निगाह मे इन सबमे कोई विशेष अतर नहीं है, उसके लिए इस बात से कई फर्क नही पड जाता कि वह किस किताब को उठा रहा और किसको हटा रहा है। दूकानवाला पास आता है। पूछता है—'किस विषय की पुस्तक आपको चाहिए?' पर कोई उत्तर उसे नहीं मिलता। वह कुछ अज-रज-भरी निगाह से युवक की ओर देखता है—सोचता है, सनकी तो नहीं है। पर युवक का एक किताब को हटाकर दूसरी के पन्ने उलटना पलटना त्यो का-त्यों जारी है।

यह बात भी नहीं है कि अभी वह इतनी कच्ची उम्र का हो कि छोकरों की तरह बिना किसी लक्ष्य के इधर-उधर भटकता और व्यर्थ की उलट-पुलट में समय गँवाता रहता हो। उन्तीस साल का हट्टा-कट्टा पूरा नौजवान—फिर बाक़ायदा सयुक्त राष्ट्र के नौ-सेना-विभाग की वरदी पहने हुए, और उस पर स्पष्ट रूप से इस बात को सूचित करने-वाला चमचमाता पदक या चिह्न लगाए हुए कि वह उक्त विभाग का एक इजीनियर है। तब कौन इस बात की शका करने की धृष्टता कर सकता है कि उसे कम-से-कम इस बात का भी ज्ञान नही है कि वह किस ओर जा रहा है?

किन्तु बात दर असल कुछ ऐसी ही थी कि युवावस्था के साहसपूर्ण भाव से प्रकाशित राबर्ट पेरी की इस ओजपूर्ण मुखमुद्रा की तह मे रह-रहकर इस बात का भाव उठता रहता था कि आखिर वह किधर की ओर जा रहा है? उसे अपना लक्ष्य ज़रा भी स्पष्ट नही था। केवल जीवन मे धडाके का—ससार की आँखे चकाचौंध कर देनेवाला—कोई काम कर दिखाने की एक धुँधली-सी महत्त्वाकांक्षा भीतर ही भीतर रहकर उसे आगे की ओर ठेलती रहती थी, और मानो कहती रहती थी कि यदि तुम्हे अपने कार्य पर जुट पडना है, तो यही वक्त है।

यह बात नही थी कि एक अस्पष्ट-सी आशा की डोर के सहारे रास्ता टटोलकर बढनेवाले इस नवयुवक को अपनी शक्तियों पर किसी प्रकार का अविश्वास रहा हो। अपने जन्म-स्थान की पहाड़ियो के ककड-पत्थरो की नित्य की छानबीन और छोटी-सी डोगी मे समीप की समुद्री खाड़ी की सैर ने बचपन ही मे उसके मन मे दृढ आत्मविश्वास की जड जमा दी थी। किन्तु वह भी उसी प्रात और स्थान मे पैदा हुआ था, जहाँ पचास वर्ष पूर्व उसके देश के राष्ट्रीय कवि लाङ्गफैलो ने वनो की सघन छाया मे स्वप्नो की माला गूँथते हुए अपना बचपन बिताया था। अतएव उन पहाडियो और वृक्षों के प्रभाव से

वह भी नहीं बच पाया। वह भी स्वप्नों की जाल बुनने लगा। किसी ने कहा ही है कि किशोर अवस्था की आकाक्षाएँ और स्वप्न आँधी की तरह बलवती होते हैं। ये स्वप्न हमारे इस चरितनायक को भी अपने उस पहाड़ियों से घिरे छोटे-से प्रदेश से दूर कहाँ-से-कहाँ उड़ा ले गये। और उसके बाद तो क्या स्कूल और कालेज मे, और क्या नौ-सेना-विभाग के साहसपूर्ण अनुभवों से पूर्ण नौकरी के दिनों मे—सब कहीं उन स्वप्नों का ताँता बँधता ही गया और धीरे-धीरे ये स्वप्न महत्वाकाक्षा का रूप लेने लगे। नौ-सेना-विभाग की कुछ ही दिनों की नौकरी मे उसने अपनी योग्यता की काफी धाक जमा दी। जगी जहाजो के लिए एक घाट बन रहा था। उस काम का एक लाख रुपये मे ठेका लेने पर भी एक ठेकेदार उसे अधूरा ही छोड़कर भाग गया था। राबर्ट पेरी ने उसे अठारह हज़ार रुपये ही मे बनवा दिया। किन्तु यह सब-कुछ होने पर भी उसको अपने मन मे चैन नहीं था। वास्तव मे हमारे चरितनायक की दशा उस व्यक्ति की तरह थी, जिसके मन मे भारी आकाक्षाएँ हों, किन्तु जिसे यह न सूझ पडे कि किस ओर उन्हे वह प्रेरित करे। यही कारण है कि ऊपर हम उसे कबाडियों की दूकानों पर अनमने भाव से किताबों के पन्ने उलटते देख चुके हैं।

आखिर एक मैली सी पुस्तिका के शीर्षक पर पेरी की आँखे गड गई। यह एक साहसी अन्वेषक के सुदूर उत्तर की साहसपूर्ण यात्राओं की कहानी थी। शीर्षक था "ग्रीनलैंड (हरित द्वीप) का भीतरी हिम-प्रदेश।" यह कोई विशेष उत्तेजनापूर्ण शीर्षक तो नहीं था, किन्तु फिर भी इस पर नज़र पडते ही पेरी का दिल बाँसों उछलने लगा। उसने वह पुस्तिका ख़रीद ली। इसमे वर्णित सुदूर हिम-प्रदेश ने केवल इसी एक बात पर उसका ध्यान जोरो से अपनी ओर खींच लिया कि अब भी पृथ्वी की सतह पर सयुक्त राष्ट्र अमेरिका से भी अधिक लबा-चौड़ा एक विशाल भू-भाग विद्यमान है, जहाँ अभी तक किसी गौर वर्ण के मनुष्य का क़दम भी नहीं पड़ा है!

उसकी आकाक्षा भडक उठी। वाशिङ्गटन नगर के बडे-से-बडे पुस्तकालयों की अलमारियाँ उसने छान डालीं और रात दिन उत्तरी ध्रुवप्रदेश की खोज तथा उत्तर-पश्चिम की राह से एशिया को जाने का रास्ता निकालने की सदियों पुरानी समस्या पर वह मसाला ढूँढने लगा। किन्तु इन सब किताबों से उसे जो मसाला मिला वह कोई बहुत आशाप्रद नहीं था। एक के बाद एक साहसी अन्वेषक पिछले तीन सौ वर्षों से इस प्रयत्न में उत्तर की बर्फीली दीवारों से हार खाकर अपना बलिदान चढा चुके थे। १८४५ मे सर जान फ्रैंकलिन दो ब्रिटिश जगी जहाजों को लेकर पहले पहल ध्रुवप्रदेश की ओर गये थे। पर हिम-पर्वतों ने इन दोनों जहाजो सहित फ्रैंकलिन और उनके दल को निगल लिया और इस बात का पता कहीं चौदह साल बाद लगा, जब एक दूसरा दल ध्रुव की खोज मे वहाँ पहुँचा। इसी तरह क्रमशः कई साहसी अन्वेषक गये और हार मानकर लौट आए या वहीं ख़त्म हो गये। ये बाते किसी की भी हिम्मत पस्त कर सकती थीं। लेकिन पेरी को तो निराशा के बदले इनसे उत्तेजना ही मिली।

उसकी कल्पना उत्तेजित हो उठी। यदि ग्रीनलैंड का भीतरी भाग अभी सचमुच ही खोजने को बाक़ी है तो क्यों न वहाँ जाकर अपने साहस और भाग्य की परीक्षा की जाय? सभव है, वह ठीक उत्तरी ध्रुव ही तक फैला हो।

बस, उसने फौरन ही नौ-विभाग को छः महीने की छुट्टी की दरख्वास्त लिख भेजी। अधिकारी गण राजी न थे, पर उसकी दृढता के आगे उनकी एक भी न चली। आख़िरकार ह्वेल मछली का शिकार करनेवाले एक जहाज ने १८८६ के जून मास मे उसे ग्रीनलैंड के पूर्वी किनारे पर डिस्को नामक द्वीप मे जा उतारा। वहाँ डैनिश लोगों की बस्ती है। पेरी ने किसी तरह डैनिश जाति के एक नौजवान को अपने साथ चलने के लिए राजी कर लिया।

दस घटे की कठोर यात्रा के बाद ये लोग जहाँ बर्फ शुरू होती थी, वहाँ पहुँचे। अब बदन को कँपा देनेवाली ठडी हवाओ, आँखो को चौंधिया देनेवाली सूर्य की रोशनी, घने कुहरे, और बर्फ की बौछार का सामना होने लगा। इस तरह दिन पर-दिन उस बर्फ की मरुभूमि को पार करते और चढाई करते हुए ७५०० फीट की ऊँचाई पर ये लोग पहुँचे। पर यहाँ हिसाब लगाने पर पेरी को मालूम हुआ कि वह अपने रवाना होने की जगह से १२० मील आ पहुँचा है और अब उसके पास केवल छः दिन का खाना बचा है! हिसाब के ये आँकडे साधारण आँकडे न थे। अब और आगे बढने का अर्थ था भूखों मरना! तो क्या उसे वापस लौटना पडेगा? क्या इतने दूर तक आने का यह परिश्रम, यह कष्ट, व्यर्थ ही होगा? श्लेत-नील झाईवाले ध्रुवप्रदेश की ओर सतृष्ण आँखे गड़ाये पेरी चुपचाप खड़ा था और साथ का डैनिश नौजवान एक अचरज-भरी दृष्टि से उसकी ओर निहार रहा था।

पेरी की ध्रुवप्रदेश की भिन्न-भिन्न यात्राओं के मार्गों का मानचित्र

इस नकशे में राबर्ट पेरी की १८८६ की ध्रुव-प्रदेश की प्रथम चढाई से लेकर १६०६ मे अंतिम विजय तक के विभिन्न जाने और आने के मार्ग कटावदार रेखा द्वारा प्रदर्शित किये गये हैं। जिस स्थान पर वह जिस सन् मे पहुँचा था, अथवा जिस सन् मे जिस मार्ग से गया था, इसका भी उल्लेख आपको इस नकशे में स्थान-स्थान पर लिखे गये सन् के अंकों से मिलेगा।

(बाईं ओर के चित्र में) उत्तरी ध्रुव का विजेता, राबर्ट पेरी।
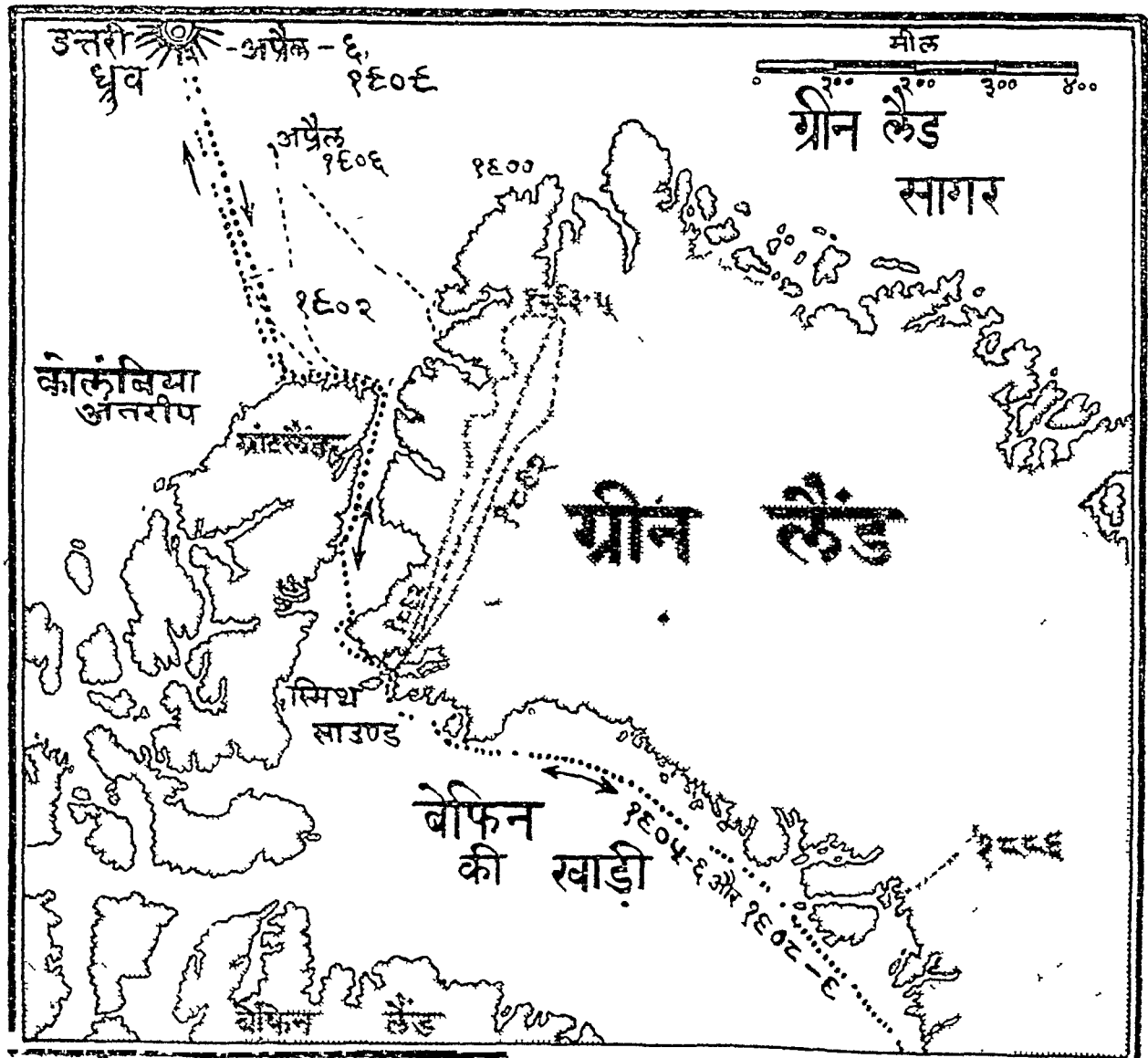
इस तरह अपने पूर्वगामी अन्वेषकों की तरह इसका भी यह पहला प्रयास विफल ही रहा।

१८९१ में न्यूयार्क से फिर एक दल उत्तरी बर्फीले प्रदेश की खोज के लिए रवाना हुआ। पर लोगों ने इस पर कोई खास ध्यान न दिया। हाँ, एक बात कुछ लोगों के लिए जरूर खटकनेवाली थी। वह यह कि इस दल के साथ पेरी की नवविवाहिता स्त्री जोजफाइन भी थी।

मेल्वील नामक खाडी में जाकर जहाज सामने बर्फ आने के कारण रुक गया। पर पेरी ने डायनामाइट से बर्फ तोड़कर रास्ता बना लिया। अब जहाज आगे चला। एकाएक बर्फ की एक चट्टान का एक टुकड़ा उछलकर पेरी के पैर में लगा और टॅखने की ऊपर की उसकी दोनों हड्डियाँ टूट गई। वह लॅगड़ा हो गया, पर उसका साहस नहीं टूट पाया। जहाज किनारे लगाया गया। तट पर बसनेवाले 'सील' के शिकारी 'एस्किमो' लोगों से जान-पहचान बढाई गई। जाडा काटने के लिए झोंपड़े तैयार किए गए। और ध्रुव-प्रदेश की लंबी 'छः महीने की रात' काटकर फिर धावा बोल दिया गया।

पेरी ने केवल दो आदमी और सोलह कुत्तों को अपने साथ लिया। फिर वही बदन को काटनेवाली हवा, बर्फ की वर्षा, कुहरे का अंधकार, सूर्य की किरणों की चकाचौंध! पर अब वह हार माननेवाला न था। हफ्तों बीत गए। अंत में एक ऊँचे पठार के कगार पर जाकर वे रुक गए। और एक अपूर्व दृश्य मानो नीचे से उठकर उनके सामने फैल गया। मीलों लंबा बर्फ का धवल मैदान! और उसके बीच, आज तक मनुष्य की आँखें जिन पर न पड़ी थीं, वे हरित झाईंवाले जल के असंख्य नाले, नदियाँ, सरोवर और झरने!! साथ के कुत्ते तक खुशी से मानो पागल हो उठे।

१८९२ की चौथी जुलाई को वह ग्रीनलैंड को लाँघकर उत्तरी महासागर की बर्फीली चादर के किनारे जा खड़ा हुआ। किंतु अब भी ध्रुव कितना अधिक दूर था, कितना अगम्य!

विवश हो उसे इस बार भी बर्फ की शिलाओं से हार मानना पड़ी। न्यूयार्क में वापस आने पर नौ-विभाग के मंत्री ने कहा—"बस करो, पेरी! अब फिर से इस बेवकूफी को न दोहराना। अपनी नौकरी का काम सॅभालो। बोलो, कहाँ तुम्हारी ड्यूटी बाँधी जाय?"

उत्तर मिला—"उत्तरी ध्रुवप्रदेश में, श्रीमन्!"

और जून, १८९३, में वह फिर चल दिया। इस बार भी जोजफिन साथ थी। वहीं उसका पहला पुत्र भी पैदा हुआ! किंतु फिर वही आपदाएँ, फिर वही विफलता!

१८९३, १८९५, १९००, १९०२, १९०५—साल पर साल बीतते गए और एक एक इंच करके वह अपनी इस कठोर यात्रा पर आगे बढता गया। बार-बार वह रवाना होता, फिर वापस न्यूयार्क आता। फिर से आलोचकों के ताने सुनकर उसका दिल फटने-सा लगता और अपने साथी एस्किमों और कुत्तों को लेकर वह फिर से बार बार उस बर्फ की चादर को पार करने के लिए दौड़ने लगता था। पर अब उसकी भी आशा की डोर टूटने लगी, साहस का बाँध खिसकता नजर आया। पर विधाता ने तो उसकी मस्तिष्क की रेखाओं पर 'ध्रुव का विजेता' ये शब्द अंकित कर रक्खे थे। १९०८ के जून में वह अपने देश के राष्ट्रपति के आशीर्वाद के साथ फिर रवाना हुआ। इस बार ध्रुव निश्चय किया कि बिना लक्ष्य तक पहुँचे वापस न आऊँगा। छः हफ्तों बाद स्टीमर "रूजवेल्ट" बर्फ की शिलाओं के बीच रास्ता काटते हुए ध्रुव महासागर के तट पर जाकर रुक गया। 'छः महीने की रात' बीती, और फरवरी २२, १९०९, को जब थर्मामीटर का पारा शून्य से ३१ अंश नीचे था, पेरी और उसके साथी ने अपनी अंतिम चढ़ाई शुरू की। वही बर्फीली चादर फिर सामने थी। किन्तु २० वर्ष का अनुभव भी तो साथ था। अब वह आँधी, वह बौछार, वह अनशन मामूली बातें थी।

थर्मामीटर का पारा शून्य से ६० अंश नीचे आ पहुँचा है। फिर भी ध्रुव अभी १३३ मील दूर है। १३३ मील! ज़रा सोचिये, एक शहर से दूसरे शहर तक रेल या मोटर की सड़क के १३३ मील नहीं—ध्रुवप्रदेश के कुहरे, आँधी, बर्फ के १३३ मील! पर उधर थर्मामीटर का पारा ज्यों ज्यो क्रमशः नीचे-से-नीचे उतरता जा रहा है, पेरी के दिल की आग भड़ककर तेज होती जा रही है। अब वह लक्ष्य से सिर्फ ३५ मील की दूरी पर है। पर ज्यों-ज्यों ध्रुव समीप आता जाता है, हाथ-पैर ढीले पडते जा रहे हैं।

अंत में अप्रैल ७ का वह प्रातःकाल, और पृथ्वी की छत—उत्तरी ध्रुव—का वह अद्भुत् दृश्य! चारों ओर बर्फ ही बर्फ—कुहरा और अंधकार! पेरी को अपने पर विश्वास नहीं हो रहा था। क्या इसी के लिए सदियों से देश-देश के लोग अपनी बलि चढ़ाते रहे?

बर्फ की शिलाओं की एक टेकड़ी सी बनाकर उस पर संयुक्त राष्ट्र का झंडा उसने खड़ा किया और एक अतृप्त दृष्टि से उसे निहारते हुए वापस दक्षिण का रास्ता पकड़ा।

क्या, क्यों और कैसे ?

अपने इतिहास के आरंभिक काल ही से मनुष्य अपने आस-पास की इस अद्भुत दुनिया के बारे में तरह-तरह के प्रश्न करता आया है। उसकी यह जिज्ञासा-वृत्ति ही उसे आगे बढ़ने की ओर प्रेरित करती है। हजारों प्रश्न नित्य ही हमारे मन में उठते हैं और उनका समाधान सहज ही में हम नहीं कर पाते। इस विभाग में क्रमशः उन्हीं प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयत्न किया जायगा।

हमारे शरीर में हड्डियाँ क्यों हैं ?

यदि हम एक ऐसे आदमी की कल्पना कर सकें, जिसमें एक भी हड्डी न हो और जो केवल मांस का ही बना हो तो उस आदमी की क्या दशा होगी? वह पृथ्वी पर एक मांस के लोथड़े की तरह निर्जीव पड़ा रहेगा, क्योंकि पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण से बचाकर उसके मांस के शरीर को खड़ी रखनेवाली चीज केवल हड्डी ही है। इस पृथ्वी के खिंचाव से रक्षा करने के अलावा हमारी हड्डियों का ढाँचा हमारे शरीर की एक खास आकृति भी बनाता है।

क्या सूर्य की तरह पृथ्वी का भी अपना प्रकाश है ?

इसमें सन्देह नहीं कि पृथ्वी का भी अपना प्रकाश कभी था, पर अब नहीं है। सृष्टि के क्रमिक विकास के साथ पृथ्वी भी पहले सूर्य की तरह गर्म और दाहक थी, पर धीरे-धीरे ठंडी हो गई है। अतः उसका अपना प्रकाश समाप्त हो गया है। अब वह केवल सूर्य के प्रकाश को ही प्रत्यालोकित करती रहती है।

हमारे शरीर में कितना रक्त है ?

आदमी के शरीर में उसके शरीर के वजन का बारहवाँ [illegible] रक्त का है। इस रक्त का एक चौथाई भाग कलेजे में और तीन चौथाई शेष शरीर में रहता है। कलेजे की बायीं ओर की नस से होकर बहने-वाले [illegible] एक मिनट में [illegible] होती है, [illegible]

तार के खंभों से सन सन शब्द क्यों निकलता है ?

[illegible] निरन्तर पड़ता [illegible] सन-सन-ध्वनि [illegible] स्वाभाविक कम्पन से पैदा हुई यह ध्वनि आकाश में उन पोपले खंभों में प्रतिध्वनित होती रहती है, जिससे मालूम होता है कि खंभों से शब्द निकल रहा है। बहुत से लोग इन खंभों से निकलने-वाली ध्वनि के आधार पर मौसम का भविष्य बतला सकने का दावा करते हैं। कहते हैं कि ऊँची चीत्कारपूर्ण ध्वनि से खूब गहरी वर्षा होने की संभावना का बोध होता है।

आकाश नीला क्यों है ?

सुनने में यह कुछ अजीब-सा जरूर लगेगा, पर आकाश को यह नीला रंग सूर्य से मिला है। तुम्हें आश्चर्य होगा कि इतने प्रकाशमान सूर्य में नीला रंग कहाँ से आ गया! बात असल यह है कि सूर्य का प्रकाश विभिन्न रंगों की किरणों का समूह है जो सब मिलकर उज्ज्वल प्रकाश उत्पन्न करते हैं, और हवा में धूल के अनगिनत कण सदा ही उड़ते रहते हैं जो सूर्य की किरणों से टकराकर नीले रंग को छोड़कर और सभी रंगों को अपने में घुला लेते हैं। जो नीला रंग धूल द्वारा नहीं घुल पाता, वही समस्त आकाश का रंग हो जाता है। इसी से आकाश नीला दीखता है।

रात को अँधेरा क्यों होता है ?

अगर तुम अपने एक हाथ में एक गेंद लो और दूसरे हाथ में एक दीपक, तो देखोगे कि गेंद के जिस भाग की ओर प्रकाश है उस भाग में उजाला है और शेष की ओर अँधेरा है। इसी तरह पृथ्वी [illegible] सूर्य के चारों ओर घूमती है और जिस तरफ सूर्य रहता है उस तरफ उजाला और बाकी ओर अँधेरा रहता है। हम जिस स्थान पर रहते हैं वह इस बड़े गेंद पर किसी एक निशान की तरह है और जब सूर्य इस पृथ्वी-रूपी गेंद के दूसरी ओर प्रकाश देता है तो हमारे हिस्से में अँधेरा हो जाता है और इसे ही हम रात कहते हैं।

चन्द्रमा मे धब्बे क्यों दिखाई देते है ?

अगर तुमने कभी चन्द्रमा की ओर ग़ौर से देखा होगा, तो तुम्हे उसके ऊपर काले काले धब्बे भी जरूर दिखलाई दिए होंगे। भला इतने प्रकाशमान नक्षत्र पर यह दाग क्यो ? विज्ञान के पंडितों का कहना है कि चन्द्रमा भी इस पृथ्वी की तरह मैदान, घाटियों और पहाड़ों से भरा एक लोक है। दूरबीन से देखने पर इन सबके चिह्न साफ साफ दिखलाई पडते हैं। और यह जो काले-काले धब्बे दीखते हैं उनमे से अधिकाश बडे-बडे ज्वालामुखियो के मुहानो के चिह्न हैं, जो बहुत ही विस्तृत और बडे हैं। इनमे से कई एक तो बीसियो मील के घेरे मे हैं। इसके अलावा वहाँ जो पहाड हैं, उनकी छाया भी इन धब्बों मे शामिल है। दूरबीन से देखने पर इन पहाडो की छाया और रोशनी के मिलने की जगहे साफ-साफ दिखलाई पडती हैं।

जाड़े मे मुँह से भाप क्यों निकलती है ?

हमारे शरीर के अन्दर पानी का अश काफी मात्रा मे है, जो साँस द्वारा भाप बनकर बाहर निकला करता है। इसे गर्मियो मे हम नही देख पाते, पर जाडों मे देख पाते हैं। इसका कारण यह है कि गर्मियो मे बाहर की हवा गर्म रहती है, इसलिए हमारे मुँह से निकलनेवाली भाप भी उसमे आसानी से मिल जाती है और उसमे कोई विकार नही पैदा होता। जाडों मे चूँकि बाहर की हवा ठढी रहती है इसलिए हमारे मुँह से जो भाप निकलती है वह उससे टकराकर घनी हो जाती है। इसी कारण जिस भाप को हम गर्मी मे नही देख पाते, उसे जाडे मे देख सकते हैं।

क्या आकाश का कहीं अत भी है ?

ज्योतिष-विज्ञान के जानकर लोगो ने कई तारो की जो दूरी बतलाई है उसी से अन्दाज लगाया जा सकता है कि आकाश अनत है। बहुतेरे तारे जो दिखलाई देते हैं, उन्ही की दूरी इतनी बतलाई गई है कि उन्हे मीलो की सख्या मे व्यक्त करने मे हम असमर्थ हैं। उनकी दूरी बतलाने के लिए 'प्रकाश-वर्ष' का प्रयोग किया जाता है, जिसका मतलब होता है, उतनी दूरी जितनी कि प्रकाश वर्ष भर मे तै करता है। इस पर भी आकाश का अन्त नही पाया जा सका है। यदि मनुष्य जितनी बड़ी दूरबीने अब तक बना सका है, उनकी लाख गुना बड़ी दूरबीनें भी बना सके और उन अगणित तारागणो को उनके द्वारा देख सके, जिनकी दूरी हमारी कल्पना से भी परे है, तब भी शायद आकाश के छोर से वह उतना ही दूर रहेगा, जितना कि आज है, क्योकि शून्य मनुष्य के माप की हर व्यवस्था से परे है।

तेल पानी की सतह पर क्यों तैरता है ?

सुनने मे यह बात एक अजीब-सी मालूम होती है कि एक द्रव पदार्थ दूसरे द्रव पदार्थ पर तैर सके। पर कोई चीज पानी की सतह पर तैरती है या नहीं, यह एक या दो बातो पर निर्भर है। पहली बात तो यह है कि वह चीज पानी मे घुल जायगी या नही ? दूसरे, पानी से उसका वजन कम है या ज्यादा। अगर नमक का एक टुकडा पानी मे छोड़ दिया जाय तो वह फौरन् गायब हो जायगा, क्योंकि नमक पानी मे घुल जाता है। अगर हम लकडी का एक हल्का टुकडा पानी मे डाले तो वह तैरता है क्योकि वह पानी मे घुल नहीं सकता और लकडी का तौल भी पानी के तौल से हल्का है। यही बात तैल के साथ भी है। तैल और चर्बी पानी में घुलते नहीं और चूँकि तैल उतने पानी से हल्का है जितने पानी मे वह तैरता है इसीलिए उसका तैरना सम्भव होता है।

रेल मे खतरे की ज़ंज़ीर कैसे काम करती है ?

रेल के हर डिब्बे मे ऊपर एक जजीर लगी होती है जो खतरे की जजीर कही जाती है और जिसका उपयोग कोई सकट उपस्थित होने पर किया जाता है। उसे खीच देने पर ट्रेन खड़ी हो जाती है, इतना तो लगभग सभी जानते हैं, जिन्हे रेल मे सफर करने का कभी भी मौक़ा मिला है। पर ऐसा किस तरह होता है और क्योंकर होता है, इसे बहुत कम लोग जानते होंगे। जानने की कोशिश भी शायद ही कोई करता हो। यह होता यों है कि जब जजीर खींची जाती है तो उससे सबधित एक यत्र ट्रेन को धीमी कर देता है, जिससे ड्राइवर समझ जाता है कि कही-न-कही कुछ खराबी है। इजिन मे लगा हुआ एक पुर्जा उसे इसकी चेतावनी देता है। अर्थात् जजीर खींचने से एक प्रकार का ब्रेक-सा लगता और साथ ही गाडी के दोनो सिरो के डिब्बो मे एक प्रकार का चेतावनी का इशारा भी मिलता है। अगर जजीर ऐसे समय मे खींची जाय जब कि ड्राइवर ब्रेक का उपयोग कर रहा हो तो उसका कोई असर न होगा।

विश्व
की कहानी
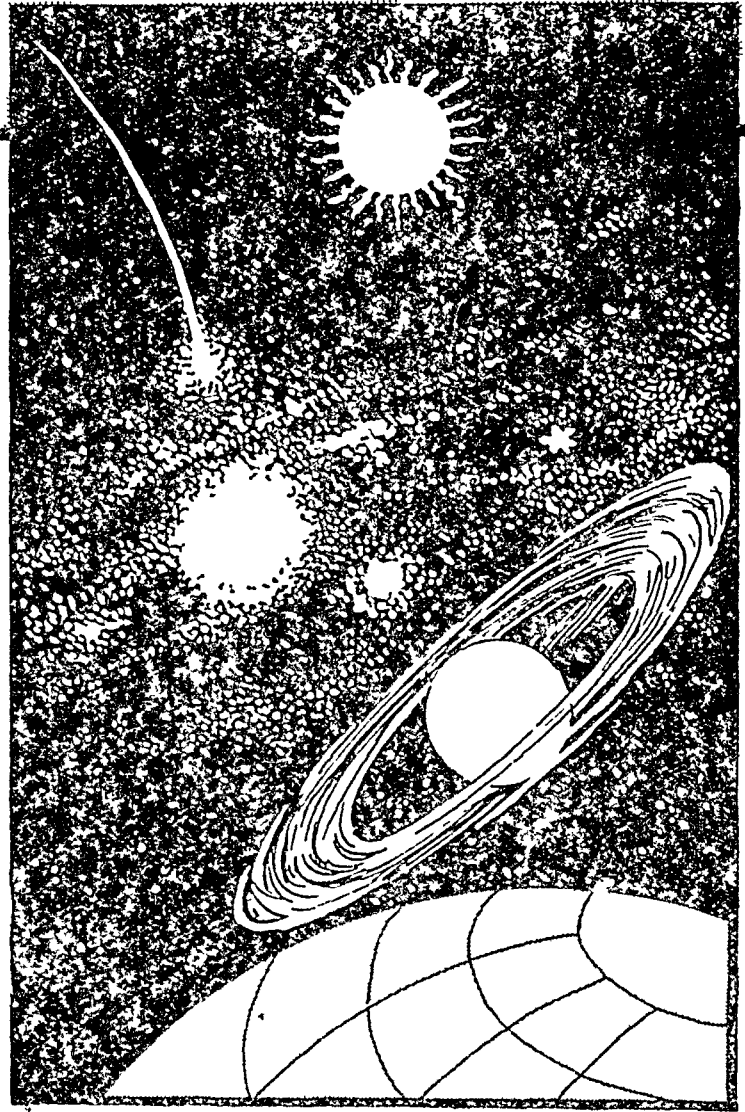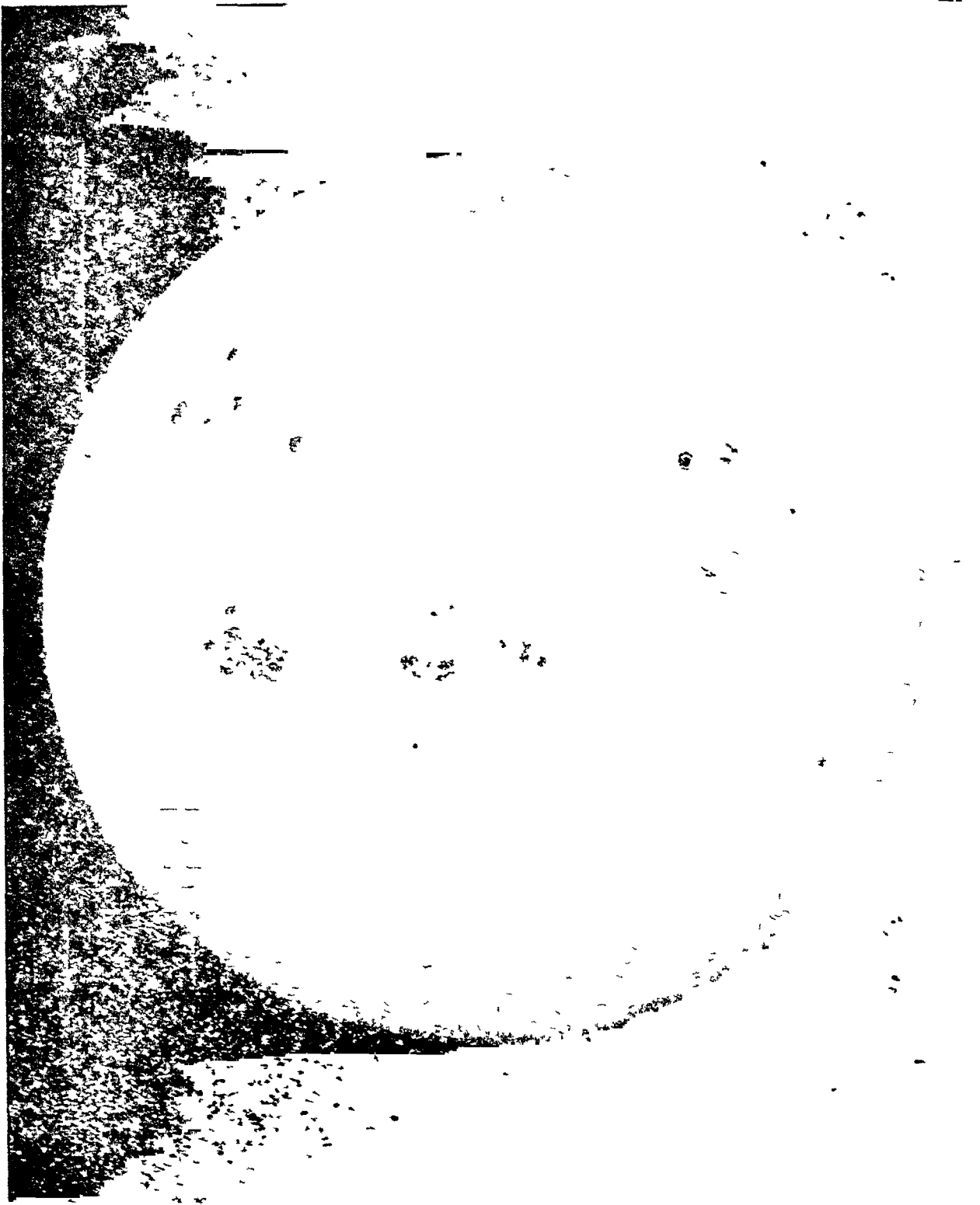
हमारे जीवन का अवलम्ब—सूर्य

विश्व की अनन्त व्यापकता में एक-से-एक बढ़कर तेजस्वी और विशाल नक्षत्र बिखरे पड़े हैं, किन्तु हमारे लिए तो सूर्य ही सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। यदि सूर्य मिट जाय तो तीन ही दिन में पृथ्वी से जीवन विलुप्त हो जायगा। ऊपर का चित्र माउण्ट विल्सन वेधशाला में लिया गया सूर्य का एक फ़ोटो है। इसमें बीच-बीच में छोटे-छोटे काले धब्बे 'सूर्य-कलंक' हैं, जिनके बारे में विस्तृत हाल आप आगे पढ़ेंगे। इनमें से कई आकार में पृथ्वी से भी बड़े हैं। इसीसे आप सोच सकते हैं कि सूर्य कितना अधिक बड़ा होगा। [फ़ोटो 'माउण्ट विल्सन वेधशाला' से प्राप्त।]
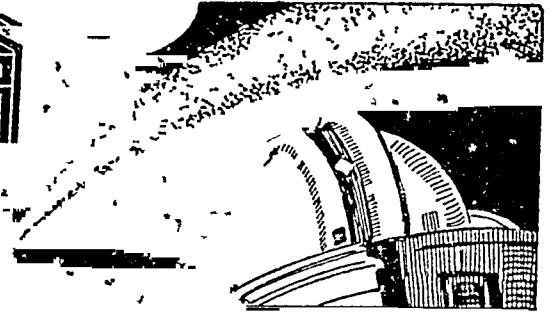
परम तेजस्वी सूर्य

आकाश के कौतुक-भरे पिण्डो और प्रकाशपुञ्ज नक्षत्रो की ओर आँखे उठाने पर सर्वप्रथम सूर्य ही पर— जिसके साथ हमारा सबसे अधिक घनिष्ट सम्बन्ध है—हमारा ध्यान खिचता है। इस और आगे के अध्यायों में आप इसी परम तेजस्वी नक्षत्र की कहानी पढ़ेंगे।

आकाश के विभिन्न पिण्डो मे सूर्य ही परम तेजस्वी है। चद्रमा, तारे, ग्रह—ये सभी मिट भी जायॅ तो हमारी कुछ हानि न होगी, परतु सूर्य पर हमारा जीवन ही निर्भर है। सूर्य ही की शक्ति से पौधे उगते हैं, अन्न उत्पन्न होता है, हम जीवित रहते हे। सूर्य जब दक्षिण चला जाता है और उसकी रश्मियॉ तिरछी होकर आती हैं, तो सरदी पड़ने लगती है। उस ऋतु मे चार दिन धूप न मिले तो सरदी खूब बढ जाती है। ध्रुव-प्रदेशो मे, जहॉ सूर्य की किरणे बहुत तिरछी ही होकर पहुॅच सकती हैं, गरमी के दिनो मे भी बर्फ के पहाड समुद्र पर तैरा करते हैं और अनेक स्थान बर्फ से ढके रहते हैं। जाडे मे तो वहॉ बर्फ ही बर्फ दिखलाई पडती है। इसी से हम अनुमान कर सकते हें कि सूर्य हमारे लिए कितना आवश्यक है। वैज्ञानिको ने गणना द्वारा पता लगाया है कि यदि आज सूर्य मिट जाय तो तीन दिन के भीतर ही पृथ्वी के जीव, चर और अचर सभी, मर जायॅगे, सूर्य के मिटने के दो दिन के भीतर ही वायुमडल का कुल जलवाष्प ठढा होकर पानी या बर्फ के रूप मे गिर पडेगा और फिर ऐसी सर्दी पडेगी कि कोई भी जीवित न रह सकेगा। तब क्या कोई आश्चर्य है कि प्राचीन लोग सूर्य की पूजा किया करते थे।

परम पूजनीय सूर्य

जीवन के लिए सूर्य का महत्त्व प्राचीन जातियों में आर्यों ही ने सबसे अधिक समझा था। तभी तो सूर्य को हमारे यहाँ 'जगत् का आत्मा या चक्षु' कहा गया और सूर्योपासना को नित्य कर्मों में प्रधान स्थान दिया गया है।

आरभ से ही मनुष्य के हृदय मे यह जिज्ञासा उठी होगी कि सूर्य है क्या, कैसे इससे इतनी गरमी और रोशनी बराबर आया करती है? प्रति दिन प्रातःकाल नियमित समय पर यह कैसे उदय होता है, ऋतुऍ नियमानुसार कैसे हुआ करती हैं? हजारो वर्ष तक इन रहस्यो के भेद का पता न चल सका। ऐसे-ऐसे भ्रमपूर्ण सिद्धान्त भी कहीं-कहीं प्रचलित थे कि प्रत्येक दिन एक नवीन सूर्य उदय होता है और सायकाल के

समय वह समुद्र मे डूब जाता है, या यह सिद्धान्त कि दो सूर्य हैं, दो चद्रमा हैं, दो नक्षत्र-समूह हैं, इत्यादि, परतु मनुष्य अत मे अपने बुद्धि-बल से इन सबका भेद पा ही गया। आधुनिक विज्ञान ने तो यहाँ तक सफलता प्राप्त की है कि सूर्य आदि की सच्ची नापतौल, दूरी और रासायनिक बनावट का भी पता लगा लिया है। कुछ बाते बडी ही आश्चर्यजनक निकली। इस लेख मे सूर्य की महान् शक्ति और उसके सबध की अन्य भौतिक बातो का परिचय दिया जायगा। आगामी लेखो मे सूर्य की रासायनिक बनावट की जाँच की जायगी।

दूरी आदि

पहले सूर्य की दूरी ही पर विचार करो। नापने से पता चला है कि सूर्य पृथ्वी से लगभग सवा नौ करोड मील पर है। एकाई, दहाई, सैकडा गिनने पर करोड, दस करोड, क्षण भर मे आ जाता है, पर सवा नौ करोड की दूरी वस्तुत कल्पनाशक्ति के परे है। पृथ्वी कितनी बडी जान पडती है! परतु इसके एक सिरे से दूसरे सिरे तक की सीधी दूरी केवल आठ हजार मील है। पृथ्वी की एक बार परिक्रमा करने मे केवल २५ हजार मील की यात्रा करनी पडेगी। सवा नौ करोड मील चलने म पृथ्वी की प्रदक्षिणा क़रीब पौने चार सौ बार हो जायगी! और समय? इतना चलने मे समय कितना लगेगा? यदि हम ६० मील प्रति घटे के हिसाब से दिन-रात चलते रहें तो सवा नौ करोड मील चलने मे १७५ वर्ष से कम नहीं लगेगा! डेढ पाई प्रति मील के हिसाब से तीसरे दरजे का रेल से सूर्य तक आने-जाने का खर्च सवा सात लाख रुपया हो जायगा। इस यात्रा के लिए यदि स्टेशन मास्टर नोट लेना न स्वीकर करे तो हमको लगभग साढे ग्यारह मन सोना किराया मे देना पडेगा! सवा नौ करोड तक केवल गिनती गिनने मे तुम्हे ग्यारह महीना लगेगा, और शर्त यह कि तुम दिन-रात बराबर गिनते रहो, कभी न सोओ, और न खाने-पीने के लिए रुको, और प्रति मिनट २०० तक गिन डालो!

एक दूसरे लेखक ने सवा नौ करोड मील की कल्पना करने की युक्ति यह दी है कि मान लो तुम क्षण भर मे अपना हाथ इतना बढा सकते हो कि सूर्य को छू सकते हो।
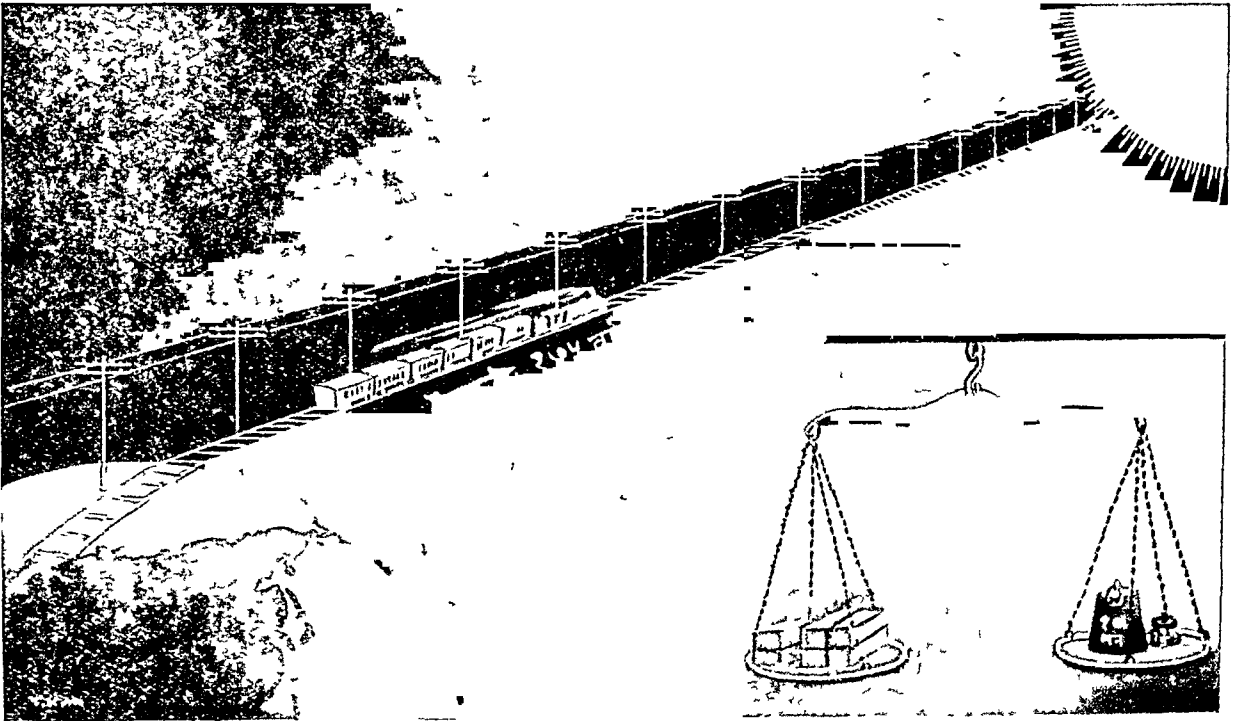
सवा नौ करोड मील की दूरी!

पृथ्वी से सूर्य इतना अधिक दूर है कि यदि हम ६० मील प्रति घटा की गति से चलनेवाली रेलगाड़ी में बैठकर सूर्य तक बिना कहीं रुके लगातार यात्रा करें तो १७५ वर्ष से कम समय न लगेगा। इतनी लबी यात्रा के लिए अपने देश के रेल के किराये की दर से हमें सवा सात लाख रुपया या साढे ग्यारह मन सोना किराये में देना होगा!

सूर्य की दूरी की एक और कल्पना

यदि हम अपना हाथ इतना फैला सकते कि हमारी अँगुली सूर्य को छू लेती, तो जिस गति से संवेदना की सूचना हमारे शरीर में मस्तिष्क तक पहुँचती है, उस गति से अँगुली जलने की सूचना सूर्य से हमारे मस्तिष्क तक पहुँचने में लगभग १६० वर्ष का समय चाहिए। सूर्य इतना अधिक दूर है॥

सूर्य के छूने पर तुम्हारी अँगुली जलेगी। इसकी सूचना तुम्हारे मस्तिष्क तक यदि उसी वेग से दौड़े जिस वेग से साधारण मनुष्यों में दौड़ती है तो अँगुली के जलने का पता तुम्हें १६० वर्ष बाद चलेगा। सूर्य पर यदि कोई घोर शब्द हो और शब्द शून्य को भेद करता हुआ पृथ्वी तक उस वेग से पहुँचे जिस वेग से यह पृथ्वी पर चलता है तो सूर्य पर शब्द होने के चौदह वर्ष बाद पृथ्वी पर सुनाई देगा—सूर्य इतना दूर है!

सूर्य की नाप (डील-डौल) भी कुछ कम आश्चर्यजनक नहीं है। सूर्य का व्यास पृथ्वी के व्यास का प्रायः १०६ गुना है, और इसलिए उसका घनफल पृथ्वी की अपेक्षा १०६×१०६×१०६ गुना है। १३,००,००० (तेरह लाख) पृथ्वियों को एक में मिला दिया जाय तब कहीं सूर्य के बराबर गोला बन सकेगा।

परंतु सूर्य की घनता पृथ्वी की अपेक्षा लगभग चौथाई ही है। पृथ्वी, कुल मिलाकर, अपनी ही नाप के पानी के गोले से लगभग साढ़े पाँच गुना भारी है, परंतु सूर्य अपनी नाप के पानी के गोले से केवल सवा गुना ही भारी है। यदि सूर्य थोड़ा-सा और हलका होता तो पानी में तैर सकता। तो भी, बहुत बड़ा होने के कारण सूर्य पृथ्वी से ३,३०,००० गुना भारी है।

आकर्षण-शक्ति

भौतिक भूगोल के अध्ययन से तुम जानते हो कि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है। तागे में लंगर बाँधकर घुमाने से तुम जानते हो कि लंगर के घुमाने में तागा तन जाता है। यदि तागा कमजोर हो तो वह टूट जायगा और लंगर छटककर दूर चला जायगा। पृथ्वी के घूमने में भी यही सिद्धान्त लागू है, अंतर केवल इतना ही है कि यहाँ तागे के बदले सूर्य का आकर्षण रहता है। यदि सूर्य का आकर्षण बंद हो जाय तो पृथ्वी तुरंत छटककर सीधी दिशा में चल पड़ेगी, यह सूर्य की प्रदक्षिणा न करेगी।

पृथ्वी की तौल और दूरी को ध्यान में रखते हुए तुम शायद इतना अंदाज कर सकते होगे कि सूर्य का आकर्षण अत्यंत बलवान् होता होगा, तभी तो वह इतनी भारी पृथ्वी को नचा सकता है। परंतु वास्तविक आकर्षण से तुम्हारा अनुमान कहीं कम होगा। पृथ्वी पर सबसे मजबूत चीज फौलाद है। गणना से पता चलता है कि पृथ्वी को आकर्षण के बदले केवल बाँधकर घुमाने के लिए फौलाद के लगभग छः हजार मील व्यास के मोटे डंडे से बाँधना पड़ेगा। इससे कम मजबूत चीज तुरंत टूट जायगी।

सूर्य के पृष्ठ पर आकर्षण-शक्ति पृथ्वी के पृष्ठ पर वर्तमान आकर्षण-शक्ति की अपेक्षा २८ गुनी अधिक है। जो पत्थर पृथ्वी पर एक सेर का जान पड़ता है वह सूर्य पर २८ सेर का जान पड़ेगा। आकर्षण-शक्ति की कल्पना करने के लिए मान लो कि सूर्य इतना ठंढा कर दिया गया कि उस पर मनुष्य बिना जले रह सकता है। यह भी मान लो कि कोई व्यक्ति वहाँ पहुँचा दिया गया, तो क्या वह व्यक्ति वहाँ खड़ा हो सकेगा? कभी नहीं। वह डेढ़ मन का आदमी ४२ मन का हो जायगा और उसकी टाँगों में इतनी शक्ति ही नहीं रहेगी कि वह खड़ा हो सके। वह

वहाँ अधिक आकर्षण के कारण उसी प्रकार चिपटा हो जायगा जिस प्रकार यहाँ किसी के ऊपर ४२ मन का बोझ लाद देने से !

तापक्रम

सूर्य कितना गरम है, उसका तापक्रम क्या है, यह भी प्रायः कल्पनाशक्ति के परे है। विचार करो कि सूर्य हमको कितना छोटा-सा दिखलाई पड़ता है—आकाश में सैकड़ों सूर्य के लिए स्थान मिल सकता है--तो भी सूर्य से इतनी गरमी आती है ! अनुमान किया गया है कि गरमी के दिनों में सूर्य की किरणों द्वारा जितनी गरमी दो वर्ग गज पर आती है उतने में एक अश्व-बल (Horse Power) के समान शक्ति रहती है । यदि सूर्य की गरमी से इंजन चलाने का कोई सुगम उपाय होता तो हम बिना मिट्टी का तेल या कोयला खर्च किये बड़े-बड़े इंजन सहज में केवल धूप से चला सकते ।

अब इस बात पर विचार करो कि साधारण अग्नि से हमको कितनी कम गरमी मिलती है। होलिका जलते समय, पास खड़े होने पर, आँच का अनुभव तुमने किया होगा । कुछ अधिक दूर खड़े होने पर आँच की मात्रा बहुत कम पड़ जाती है। क्या ऐसी भी होलिका की कल्पना तुम कर सकते हो जिससे एक मील की दूरी पर आँच लगे ? सूर्य तो सवा नौ करोड़ मील पर है। वहाँ कितनी गरमी होगी कि उसके कारण हमें पृथ्वी पर भी खूब गरमी लगती है !

वैज्ञानिकों ने ठीक इन्हीं सब बातों को ध्यान में रखकर सूर्य के तापक्रम की गणना की है। इससे उनको पता चला है कि शतांश ताप-मापक (सेंटीग्रेड थर्मामीटर) से सूर्य का तापक्रम ६००० डिगरी होगा । अपने शरीर के तापक्रम से चार-पाँच डिगरी अधिक तापक्रम का अनुभव प्रायः सभी को होगा। यह तेज़ बुखार का तापक्रम है। १०० डिगरी के तापक्रम पर पानी खौलता है। १००० डिगरी पर सोना भी पिघल चलता है। बिजली की भट्ठी में मनुष्य ३००० डिगरी की गरमी पैदा कर सकता है। इससे अधिक तापक्रम मनुष्य किसी रीति से उत्पन्न नहीं कर सकता है, परन्तु सूर्य का तापक्रम ६००० डिगरी है !

गणना से पता चलता है कि सूर्य की सतह के प्रत्येक वर्ग इंच से ५४ अश्व-बल की शक्ति निकलती है। अँगूठी के नग के बराबर सूर्य की सतह से लगभग तीन अश्व-बल की शक्ति रात-दिन बराबर निकला करती है।

सूर्य का प्रचण्ड आकर्षण

पृथ्वी अदृश्य रूप से सूर्य की प्रचण्ड आकर्षण-शक्ति से बँधे होने के कारण ही सूर्य के आस-पास लट्टू की तरह नाच रही है। यदि इस आकर्षण शक्ति के बदले हमें पृथ्वी को सूर्य के आसपास इसी तरह बाँध रखने का कोई और साधन काम में लाना पड़े तो छः हजार मील व्यासवाले और सवा नौ करोड़ मील लंबे फौलाद के एक मोटे डंडे को काम में लाना होगा। इससे कम मजबूत चीज़ होने पर पृथ्वी सूर्य का बन्धन तोड़ छूटकर सीधी दिशा में चल पड़ेगी।
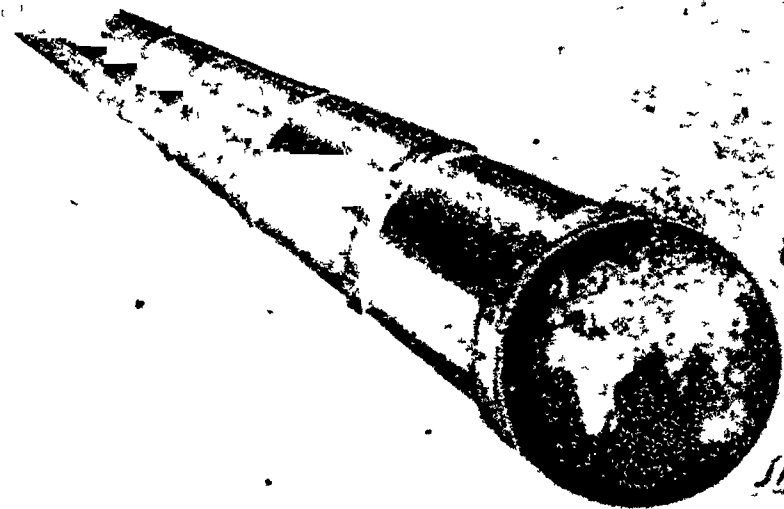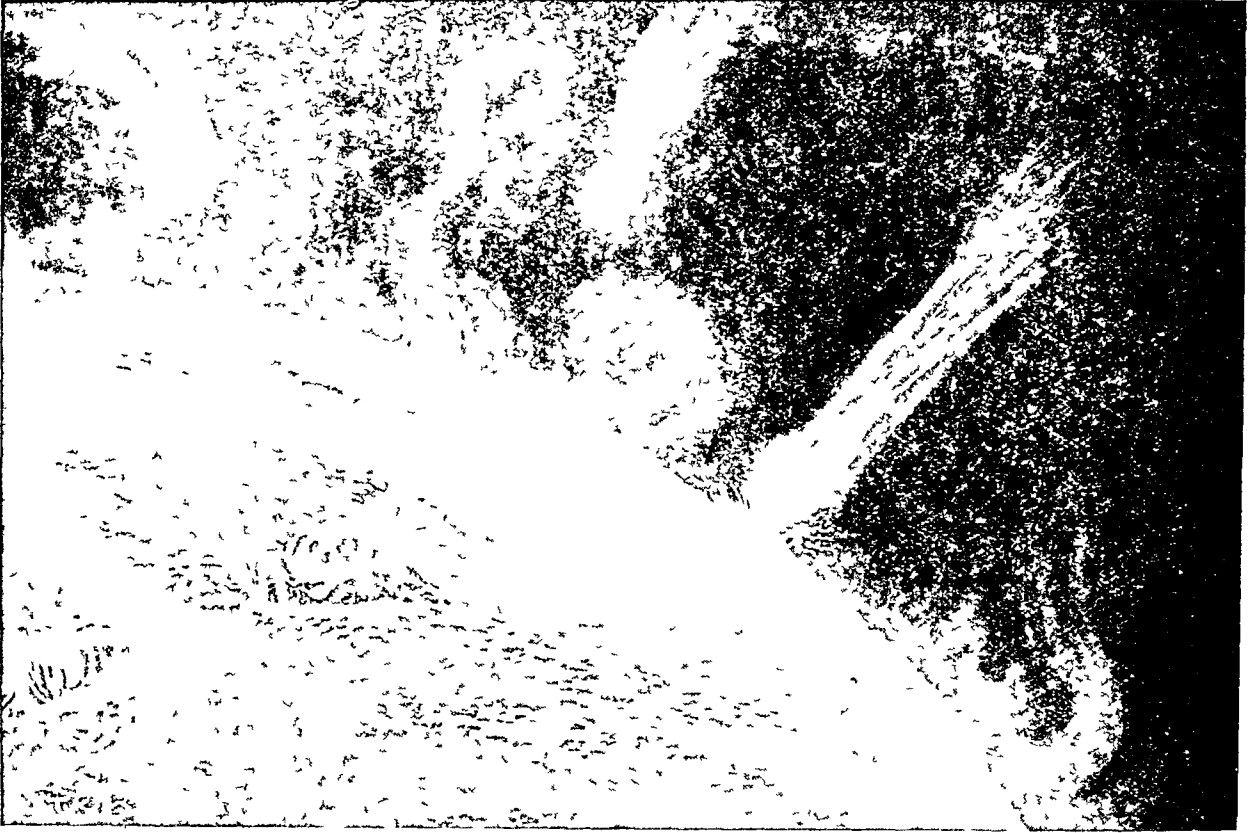
सूर्य पर निरंतर उल्कापात की धारणा

सूर्य कैसे गरम बना हुआ है, इस प्रश्न के उत्तर की खोज में वैज्ञानिकों ने तरह-तरह की कल्पनाएँ की हैं। इनमें से एक यह है कि सूर्य पर निरंतर उल्काएँ बरसती रहती हैं, इसी से वह गरम रहता है। पर अब यह निर्मूल प्रमाणित हो चुकी है।

सूर्य के प्रत्येक वर्ग इंच से लगभग ३,००,००० मोमबत्ती की रोशनी निकलती है।

सूर्य मे गरमी कहाँ से आती है?

विज्ञान का एक प्रसिद्ध सिद्धान्त यह है कि विश्व मे जितनी भी शक्ति है, उतनी ही रहती है। यह कहीं उत्पन्न नही होती, इसका कही लोप नही होता। शक्ति की नाप कार्य से होती है। किसी वस्तु में जितना ही अधिक कार्य करने का सामर्थ्य रहता है उसमे उतनी ही अधिक शक्ति मानी जाती है। दबी हुई कमानी मे शक्ति होती है, क्योंकि खुलने मे कमानी कुछ काम कर सकती है, जैसे बोझ उठा सकती है या खिलौने के पहिये चला सकती है। कोयले मे शक्ति होती है, क्योंकि जलने पर गरमी उत्पन्न होती है, जिससे इंजन चल सकता है, जो काम कर सकता है। बहते हुए वायु मे शक्ति है, क्योंकि बहते हुए वायु से हवाचक्की चल सकती है, इत्यादि। गरमी स्वय ही शक्ति है, क्योंकि इससे इंजन चल सकता है। चाहे गरमी इतनी कम भी क्यों न हो कि इससे कोई वास्तविक इंजन न चल सके, परन्तु सिद्धान्ततः इंजन का चलना संभव तो है। इसलिए गरमी अवश्य शक्ति है।

अब इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि सूर्य से बराबर गरमी बिखरा करती है, इसलिए सूर्य से बराबर शक्ति निकला करती है। यह शक्ति आती कहाँ से है? यदि सूर्य केवल तप्त पिण्ड है, तो गरमी के निकलते-निकलते अवश्य ही यह कुछ दिनों मे ठंढा हो जायगा, ठीक उसी प्रकार जैसे आग मे रखकर तपाया हुआ लोहा बाहर निकालने पर कुछ समय मे ठंढा हो जाता है। यदि सूर्य केवल तप्त पिण्ड होता, तो यह कभी ही ठंढा हो गया होता। इससे अवश्य ही इसमे कोई ऐसी बात है, जिससे गरमी बराबर पैदा होती रहती है।

वैज्ञानिकों का ध्यान सर्वप्रथम अग्नि की ओर आकर्षित हुआ। सोचा गया कि जिस प्रकार कोयले के जलने से गरमी पैदा होती है, उसी प्रकार सूर्य पर भी किसी वस्तु के

जलने से गरमी पैदा होती होगी, परन्तु जब इस बात की गणना की जाती है कि सूर्य से कितनी रोशनी और गरमी बिखरती है और उतने के लिए कितने पदार्थ के जलने की आवश्यकता पडेगी, तो पता चलता है यदि कुल सूर्य बटिया पत्थर के कोयले का बना होता, तो उसे इतनी गरमी पैदा करने के लिए, जितनी वस्तुतः पैदा होती है, कुल डेढ हजार वर्ष मे ही जलकर भस्म हो जाना पडता। परन्तु इतिहास से हमे ज्ञात है कि सूर्य हजारों वर्षो से सम भाव से चमकता चला आ रहा है।

हाल मे कुछ वृक्ष ऐसे मिले हैं, जिनको काटकर रेशो की जॉच करने से पता चला है कि उनकी आयु ३२०० वर्ष है। वसत मे वृक्ष शीघ्र बढते और मोटे होते हैं, जाडे मे उनकी वृद्धि प्रायः रुक जाती है। वसत की लकडी नरम और जाडे की कडी होती है। और इस प्रकार प्रति वर्ष नरम और कडी लकडी की तहे तने पर (छिलके के नीचे) जमती चली जाती है। इससे वृक्ष की लकडी देखने से तुरत पता चल जाता है कि वृक्ष की आयु क्या है। प्राचीन वृक्षों की जॉच करने से पता चलता है कि आज से ३२०० वर्ष पहले भी एक वर्ष मे ये वृक्ष उतने ही बढते थे, जितना इन दिनो। इससे प्रत्यक्ष है कि उस समय भी प्रायः उतनी ही गरमी पडा करती थी, जितनी अब। सूर्य इन सवा तीन हज़ार वर्षो मे इतना ठढा नही हो गया है कि कोई विशेष अतर ज्ञात हो। तीन हजार क्या, भूगर्भ-विद्या के बल पर—पृथ्वी के पत्थरो की जॉच से—पता चलता है कि सूर्य की आयु करोडो-करोड वर्ष होगी।

क्या बात है कि सूर्य इतने वर्षो मे भी ठढा नही हुआ? सन् १८४८ मे एक वैज्ञानिक ने यह सिद्धान्त उपस्थित किया कि सूर्य पर लगातार उल्काओ की वर्षा होती होगी, इसी से सूर्य गरम रहता है। यह बात तो अवश्य सच है कि यदि किसी पदार्थ को बराबर पीटते रहा जाय, तो उसमे गरमी उत्पन्न हो जायगी। यदि तुम लोहे को हथौडे से दनादन दस मिनट तक पीटते रहो, तो तुम देखोगे कि लोहा गरम हो गया। इसलिए यदि उल्काओ की वर्षा सूर्य पर होती हो, तो अवश्य ही गरमी पैदा होती होगी। उल्का वे आकाशीय पिण्ड हैं, जो हमको रात्रि के समय गिरते हुए तारे के रूप मे दिखलाई पडते है। विश्व मे प्रायः असख्य उल्काये होगी। हमे वे तभी दिखलाई पडती हैं, जब पृथ्वी इनके समीप पहुँच जाती है या ये पृथ्वी के समीप पहुँच जाती हैं। उस समय पृथ्वी के आकर्षण के कारण वे इतनी जोर से पृथ्वी की ओर खिच आती हैं कि वे चमक उठती है। परन्तु जब उपरोक्त सिद्धान्त की जॉच गणित से की गई, तो पता चला कि यह सिद्धान्त भी टिक नही सकता। गणना से यह परिणाम निकलता है कि यदि पृथ्वी की तौल के बराबर उल्काये सूर्य मे जाकर गिरे, तो केवल १०० वर्ष भर के लिए ही गरमी उत्पन्न हो सकेगी। अवश्य ही विश्व मे उल्काये इतनी घनी न बिखरी होगी कि सूर्य पर इतनी उल्काये गिर सके, अन्यथा पृथ्वी पर भी प्रत्येक रात्रि बराबर उल्काओ की वर्षा होती दिखलाई पडती। फिर, यदि वस्तुतः इतनी उल्काये सूर्य पर गिरा करती, तो उनके कारण सूर्य तीन ही करोड वर्ष मे दुगुना बडा हो जाता।

सन् १८५३ मे प्रसिद्ध जरमन वैज्ञानिक हेल्महोल्ट्ज ने यह सिद्धान्त उपस्थित किया कि सूर्य मे सिकुडने के कारण गरमी उत्पन्न होती है। यदि साइकिल-पप का मुँह बद करके हवा को खूब दबाया जाय, तो हवा गरम हो जायगी, यह प्रयोग तुम स्वय करके देख सकते हो। इसी प्रकार जब कभी वायु को सकुचित किया जाता है, तो गरमी पैदा होती है। हेल्महोल्ट्ज का सिद्धान्त यह था कि सूर्य गैस के रूप मे है और आकर्षण के कारण बराबर अधिकाधिक सकुचित होता जा रहा है। इसलिए उसमे बराबर गरमी पैदा होती रहती है। यही कारण है कि सूर्य ठढा नही हो रहा है। परन्तु ३० वर्ष बाद जब लार्ड केल्विन इस बात की गणना करने मे सफल हुए कि अनन्त विस्तार से वर्त्तमान सकुचित अवस्था तक पहुँचने मे सूर्य मे कितना ताप उत्पन्न होगा, तब हेल्महोल्ट्ज का सिद्धान्त भी झूठा सिद्ध हुआ, क्योकि गणना से पता लगा कि इस क्रिया मे केवल इतना ही ताप उत्पन्न होगा, जितना सूर्य से दो-ढाई करोड वर्ष मे बिखरता है। परन्तु जैसा हम ऊपर देख चुके है, सूर्य अवश्य ही इससे कही अधिक वर्षो से चमकता आ रहा है।

इस प्रकार वैज्ञानिक बहुत दिनों से चक्कर मे पडे हैं। अब भी इसका ठीक-ठीक पता नही चला कि सूर्य मे गरमी कहाँ से आती है, परन्तु गरमी पैदा होने की एक नवीन रीति का पता अभी हाल मे लगा है। आइन्स्टाइन का प्रसिद्ध 'सापेक्षवाद' कहता है कि पदार्थ और शक्ति वस्तुतः एक हैं। एक का रूपान्तर दूसरा है। सापेक्षवाद—थिअरी ऑफ रिलेटिविटी—वही सिद्धान्त है जिससे वैज्ञानिक ससार मे कुछ वर्ष हुए बडा उथल-पुथल मच गया था। सूर्य के ताप से सापेक्षवाद का कोई विशेष संबध नही था,

उसका सबध केवल गति से था। परन्तु इस सिद्धान्त का एक परिणाम यह भी निकला कि पदार्थ और शक्ति दोनो एक ही जाति के हैं, और वे एक-दूसरे मे परिवर्त्तित हो सकते हैं।

परतु आश्चर्यजनक बात तो यह है कि नाममात्र पदार्थ से भयानक शक्ति उत्पन्न हो सकती है। राई के बराबर कोयले से, यदि यह सापेक्षवाद के अनुसार शक्ति मे परिवर्त्तित हो सके, सैकडो मन कोयले के जलने के बराबर शक्ति उत्पन्न होगी। कोयला जलने पर तो राख बच जाती है और गैस उत्पन्न होती है, परन्तु सापेक्षवाद के अनुसार परिवर्त्तित होने मे न राख बनेगी न गैस। उस राई भर कोयले का रूपान्तर किसी अन्य पदार्थ मे नही होगा, उसका रूपान्तर विशुद्ध शक्ति मे होगा। अभी वैज्ञानिको को पता नही है कि पृथ्वी पर यह रूपान्तर कैसे सफल किया जाय, परन्तु वे आशा करते हैं कि एक दिन ऐसा सभव हो जायगा। तब न रेल चलाने के लिए कोयले की आवश्यकता पडेगी और न मोटर चलाने के लिए पेट्रोल की। तब तो केवल राई भर किसी भी पदार्थ का शक्ति मे रूपान्तर करके हम इलाहाबाद से कलकत्ता या करॉची से लदन पहुँच सकेंगे!

वैज्ञानिकों का विचार है कि यद्यपि पृथ्वी पर अभी पदार्थ का शक्ति मे रूपातर करना सम्भव नहीं है, तो भी हो सकता है, भयानक गरमी के कारण सूर्य पर यह रूपान्तर कदाचित् बराबर हो रहा हो। सभव है, यही कारण है कि सूर्य ठढा नही हो रहा है। हॉ, इस सिद्धान्त के अनुसार भी पर्याप्त समय के पश्चात् सूर्य ठढा हो जायगा या लुप्त हो जायगा, परतु गणना से पता चलता है कि इसमे अरब-खरब वर्षों से भी अधिक समय लगेगा—यह इतना अधिक लबा काल है कि वास्तव मे हमारी कल्पना के परे है।
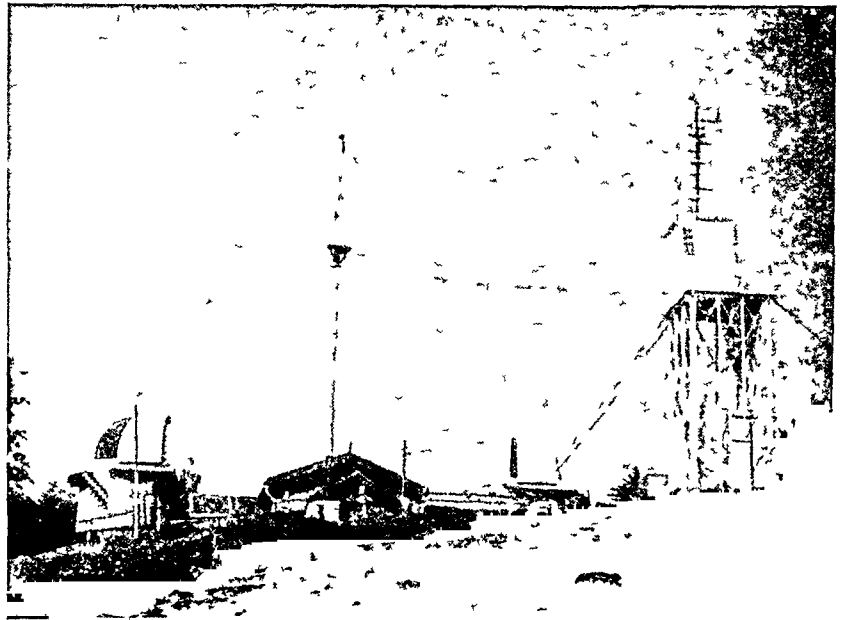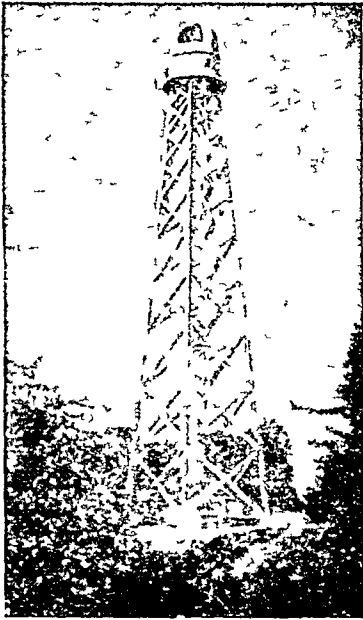
सूर्य के अध्ययन के लिए निर्मित दो प्रसिद्ध वेधशालाएँ

(बाईं ओर) अमेरिका की सुप्रसिद्ध माउण्ट विलसन वेधशाला में सूर्य का अध्ययन करने के लिए बनाई गई डेढ़ सौ फीट ऊँची एक मीनार। इसके सिरे पर एक वेधशाला है, जिसमें प्रति दिन सूर्य के फ़ोटो लिये जाते हैं। इस मीनार पर दूरदर्शक कैमेरा लगा है, उसके द्वारा सूर्य का साढे सोलह इच व्यास का फ़ोटो लिया जा सकता है। इस वेधशाला में लिया गया सूर्य का एक फोटो इस लेख के मुख-चित्र के रूप में दिया गया है। [फ़ोटो माउण्ट विलसन वेधशाला, अमेरिका, की कृपा से प्राप्त।]

(दाहिनी ओर) दक्षिण भारत में नीलगिरि पर्वतश्रेणी के अचल में कोदाईकनाल नामक स्थान में स्थापित सरकारी वेधशाला, जहाँ सूर्य का विशेष रूप से अध्ययन किया जाता है। आगे के अकों में हम इन वेधशालाओं में लिये गये सूर्य के भिन्न-भिन्न फ़ोटो प्रकाशित करेंगे। [फ़ोटो कोदाईकनाल वेधशाला (दक्षिण भारत) की कृपा से प्राप्त।]

गुरुत्वाकर्षण शक्ति

उस अद्भुत रहस्यमय शक्ति की कहानी जिसके पाश में साधारण अणु-परमाणु से लेकर विशाल ग्रह-नक्षत्र तक विश्व की सभी वस्तुएँ बँधी हुई हैं—जो मानो सारे विश्व के कण-कण में प्रवेश करके उसे बिखर पड़ने से रोकते हुए उसका नियत्रण कर रही है।

हम सब इस बात का अनुभव करते हैं कि हम पृथ्वी से बँधे हुए हैं। पृथ्वी पर हम चारो ओर घूम सकते हैं, पहाड़ो पर भी ऊँचे चढ सकते हैं, गुब्बारो की सहायता से मीलो ऊपर आकाश मे हम जा सकते हैं। किंतु स्वय पृथ्वी से नाता तोडकर हम दूर भाग नही सकते। जमीन से ऊपर ५-६ फीट कूदते हैं, तो फिर नीचे आ गिरते हैं। गुब्बारे और हवाई जहाज मे बैठकर आकाश मे दो-चार मील ऊपर हम चढते हे, किंतु पेट्रोल समाप्त होते ही हमे फिर बरबस ज़मीन पर ही आना पडता है।

जीवधारी ही नही, वरन् निर्जीव पदार्थो की भी यही दशा है। जोर लगाकर ढेला आप आसमान मे फेकते हैं, कुछ दूर जाकर वह भी नीचे ही को गिरता है। तोप से गोला छूटने पर आकाश मे मीलो ऊपर पहुँच जाता है, किंतु वह भी ज़मीन ही पर वापस आ गिरता है। कोई भी वस्तु पृथ्वी के बधन को तोडकर भाग नही सकती। रस्सी मे लोहे का टुकडा बॉधकर मेज़ पर से नीचे खिसका दीजिए, तो लोहा एक-दम नीचे आ गिरेगा, और रस्सी तन उठेगी, मानो ज़मीन के अदर से कोई शक्ति उस लोहे के टुकडे को अपनी ओर खीच रही है। रबर की गेटिस को ज़ोर से खीचिए, तो बढकर वह लबी हो जायगी। अब पुनः उसके एक सिरे पर ढेला बॉधकर लटकाइए, तो इस अवस्था मे भी रबर की गेटिस बढ जाती है, मानों कोई अदृश्य शक्ति इसे भी नीचे पृथ्वी की ओर खीच रही है! यदि आप सीधे ऊपर को गेद उछाले, तो वह ज्यो-ज्यो ऊपर जायगी, उसकी गति कम होती जायगी। यहाँ तक कि एक विशेष ऊँचाई पर उसकी गति एकदम शून्य हो जायगी, और अब इसके उपरात गेद सीधे नीचे की ओर लबवत् गिरने लगेगी, मानो किसी अदृश्य लचकीले धागे द्वारा इसे पृथ्वी पर से कोई खींच रहा हो!
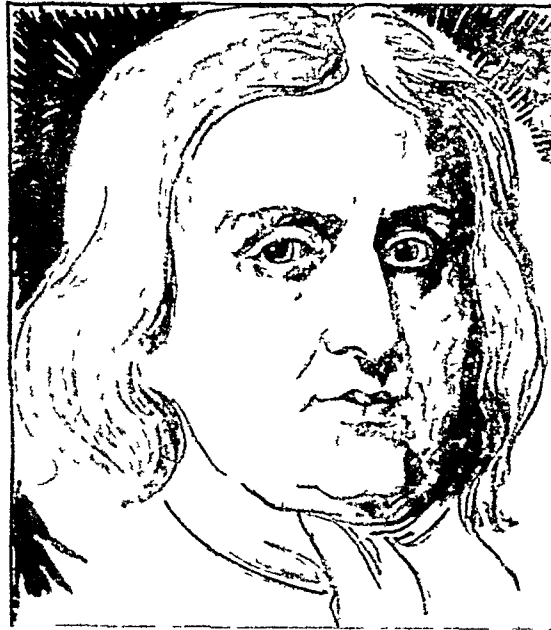
सर आइज़क न्यूटन (१६४२-१७२७)
जिन्होंने पेड़ पर से फल को गिरते देखकर गुरुत्वाकर्षण के महान् सिद्धान्त की सर्वप्रथम खोज की।

यह आकर्पण-शक्ति पृथ्वी के धरातल की वस्तुओं तक ही सीमित नहीं है, वरन् हज़ारो मील दूर के चद्रमा पर भी यह शक्ति काम करती है। पृथ्वी के चारो ओर चद्रमा २,२८७ मील प्रति घटा की गति से परिक्रमा कर रहा है। अतः जिस तरह रस्सी में ढेला बॉधकर घुमाने से ढेला रस्सी को तुड़ाकर दूर भागने की कोशिश करता है,

उसी तरह चद्रमा भी तीव्र गति से घूमने के कारण दूर भागना चाहता है, किंतु पृथ्वी उसे अपनी जबर्दस्त आकर्षण-शक्ति की सहायता से बॉधे हुए है। गणितज्ञों ने हिसाब लगाया है कि आज यदि पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति दैवयोग से लुप्त हो जाय, तो पूर्ववत् पृथ्वी के चारों ओर परिक्रमा कराने के लिए चद्रमा को पृथ्वी से ३७० मील चौडे लोहे के डडे द्वारा बॉधना होगा! केवल पृथ्वी ही चद्रमा को अपनी ओर खींचती हो, सो बात नही है। चद्रमा भी पृथ्वी को अपनी ओर खीचता है। ज्वार-भाटा इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। यह आकर्षण-शक्ति पृथ्वी और चद्रमा तक ही सीमित नही है, वरन् विश्व के सभी पदार्थो मे यह शक्ति मौजूद है। इस सर्वव्यापी आकर्षण-शक्ति को 'गुरुत्वाकर्षण' कहते ह। सूर्य और पृथ्वी के बीच भी यही आकर्षण-शक्ति काम करती है।

वास्तव मे यह आकर्षण-शक्ति है क्या, इस प्रश्न का उत्तर देना बडा कठिन है। वैज्ञनिको ने अनुसधान करके इसका पता तो लगा लिया है कि यह रहस्यमय शक्ति किन नियमो से आबद्ध है, किंतु इस शक्ति के मूल मे कारण क्या है, इसका उत्तर वे अभी तक नही ढूँढ पाये हैं।

दो वस्तुओं के बीच की दूरी चाहे एक-आध इच हो या दो-चार लाख मील, उनके बीच आकर्षण-शक्ति हर हालत मे काम करेगी। हॉ, दूरी के बढ जाने से यह आकर्षण-शक्ति कम अवश्य हो जाती है। परस्पर का यह आकर्षण वस्तुओं के भार और उनके बीच की दूरी पर निर्भर रहता है। ग्रीक दार्शनिकों ने पदार्थो के परस्पर के आकर्षण की कुछ थोडी-बहुत कल्पना की, किंतु कल्पना के जगत् से उनके विचार आगे न बढ सके। फिर केप्लर नामक वैज्ञानिक सौर परिवार के ग्रहों की गति का विश्लेषण करने के उपरात इस नतीजे पर पहुँचा कि सूर्य अपने सभी ग्रहों को अपनी ओर खीचता है। विज्ञान के क्षेत्र मे सर आइजक न्यूटन ने पहली बार इस आकर्षण-शक्ति की व्यापकता को पहचाना था। बगीचे मे पेड पर से फल को नीचे गिरते देखकर सहसा न्यूटन के मन मे जिज्ञासा उठ खडी हुई कि ऐसा क्यो होता है? क्यो फल पेड ही पर टिका नहीं रह जाता? वह कौन-सी शक्ति है, जो उसे खींचकर जमीन पर गिरा देती है। यही नहीं, सभी चीजे इसी तरह खिचकर जमीन की ओर क्यों गिरती हैं? क्या पृथ्वी ही इन सब वस्तुओं को अपनी ओर खींचती रहती है? इन प्रश्नो की उधेडबुन मे न्यूटन ने गुरुत्वाकर्षण के उस महान् सिद्धान्त की खोज की, जिसके फलस्वरूप विज्ञान के क्षेत्र मे एक नवीन युगान्तर हो गया। वैज्ञानिको द्वारा निर्धारित इस गुरुत्वाकर्षण शक्ति की व्याख्या निम्नलिखित शब्दो मे की जा सकती है—"विश्व का प्रत्येक पदार्थ एक-दूसरे को अपनी ओर खींचता है। यह आकर्षण-शक्ति पदार्थों के द्रव्य की मात्रा के अनुपात मे बढती है और उनके बीच की दूरी के वर्ग के अनुपात मे कम होती है।"

उपरोक्त नियम की सत्यता की जॉच अच्छी तरह की गयी है। मनुष्य की प्रयोगशाला से लेकर प्रकृति की प्रयोगशाला मे, सब कही यह नियम लागू होता है। सूर्य के चारो ओर भिन्न-भिन्न ग्रह अपनी कक्षा मे इसी शक्ति के भरोसे टिके हुए हैं। सौर परिवार ही नहीं, वरन् आकाश के अन्य नक्षत्र भी एक दूसरे से आकर्षण-शक्ति द्वारा आबद्ध हैं। थोडे मे हम कह सकते हैं कि हमारे ब्रह्माण्ड को यही शक्ति सँभाले हुए है।

और इसी नियम के अनुसार आम पेड पर से टूटते ही जमीन पर आ गिरता है। यदि ध्यानपूर्वक हम देखे, तो पायेगे कि पदार्थो के भार का मूल कारण भी पृथ्वी की आकर्षण शक्ति ही है। जिस वस्तु मे द्रव्य की मात्रा अधिक होती है, उसका भार भी अधिक होता है, क्योंकि पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति द्रव्य की मात्रा के अनुसार बढ जाती है। इसी कारण भार की परिभाषा मे हम कहते हैं कि किसी वस्तु का भार वह आकर्षण-शक्ति है, जिसके द्वारा पृथ्वी उस वस्तु को अपनी ओर खीचती है। यदि इस वस्तु मे द्रव्य की मात्रा दूनी कर दी जाय, तो पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति भी तुरन्त दुगनी हो जायगी। अत उसका भार भी दूना हो जायगा।

पृथ्वी से दूर हटने पर उसकी आकर्षण-शक्ति कम होती जाती है। गुरुत्वाकर्षण इसी के वर्ग के अनुपात मे घटता है। धरातल पर पृथ्वी के केन्द्र से हम ४००० मील की ऊँचाई पर हैं। यदि किसी तरह हम आसमान मे ४००० मील की ऊँचाई तक पहुँच जायॅ, तो पहले की अपेक्षा पृथ्वी के केन्द्र से हमारी दूरी दुगुनी हो जायगी। अत. हमारा वजन भी पहले से चार गुना कम हो जायगा। यदि जमीन पर हमारा वजन १ मन २० सेर है, तो ४००० मील ऊपर आकाश मे हमारा वजन केवल १५ सेर ही उतरेगा!

इस रहस्यमय शक्ति मे आप किसी प्रकार का फेर-बदल नहीं कर सकते। लोहा, लकडी, शीशा, पीतल, आदि दुनिया की कोई भी चीज इस अद्भुत शक्ति के काम मे दखल नही
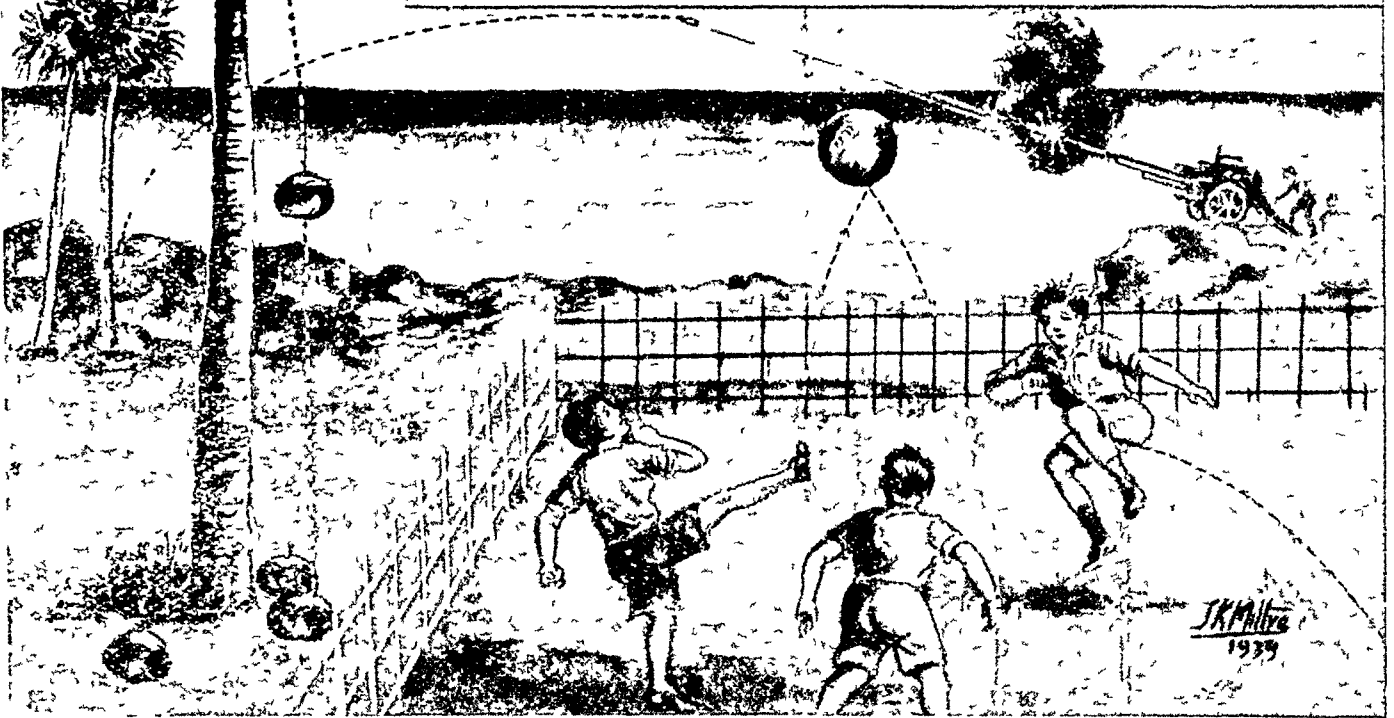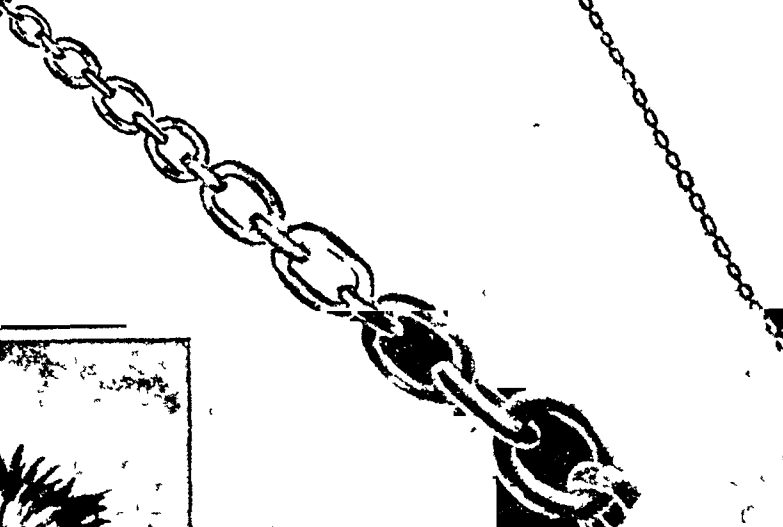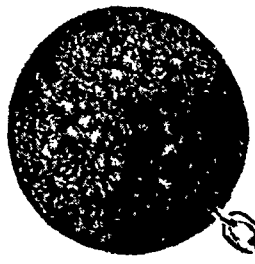
पृथ्वी का प्रबल पाश

हम धरती से कुछ फ़ीट उछलते, हवाई जहाज में कुछ मील ऊपर जाते, तोप से काफ़ी ऊँचाई तक गोला फेंक सकते हैं, पर अंत में सभी को वापस धरती पर आना पड़ता है। हम ही नहीं, पृथ्वी से लाखों मील दूर चन्द्रमा भी हमारी ही तरह पृथ्वी से बँधा हुआ है। यह कैसा विचित्र पाश है? पेड़ से फल धरती पर क्यों गिर पड़ता है? फुटबाल ऊपर उछलकर भी क्यों वापस जमीन पर आ गिरता है?

दे सकती। सब ठौर आपका वजन एक समान ही होगा। गर्मी-सर्दी का प्रभाव भी इस आकर्षण शक्ति पर नहीं पडता, और न रासायनिक क्रियाओं का ही कोई असर होता है।

किसी भी साधन से आप इस गुरुत्वाकर्षण को अपने वश मे नहीं कर सकते। यदि किसी तरह हम इस शक्ति को मिटा या रोक सकते, तो वायुयान को आकाश मे उडने के लिए पेट्रोल और एंजिन की जरूरत न पडती। आसमान मे हम ढेला फेंकते, तो वह रास्ते मे कभी रुकता ही नहीं, बराबर ऊपर को बढ़ता चला जाता। किंतु पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति यदि आज लुप्त हो जाय, तो सचमुच आफत हो जायगी। साइकिल के पहिए की कीचड तेज गति से घुमाने पर पहिए से दूर जाकर गिरती है। पृथ्वी भी अपनी कीली पर तेज़ी के साथ घूम रही है। अत इस के धरातल पर की वस्तुएँ हमारे मकान, स्वयं हम और हमारी कुरसी-मेज आदि सब-कुछ—जमीन पर से अलग छटक जाना चाहती हैं। किन्तु पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति उन्हें ऐसा करने से रोके हुए है। जिस घडी पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति न रहेगी, पृथ्वी पर की सभी वस्तुएँ ज़मीन से अलग शून्य में जा गिरेंगी!

पृथ्वी नारंगी की तरह ध्रुवों पर चिपटी है। अत पृथ्वी के केंद्र से विषुवत् रेखा पर स्थित स्थान ध्रुवों की अपेक्षा अधिक दूर हैं। इस कारण पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति ध्रुवों पर ज्यादा और विषुवत् रेखा पर कम होती है। किंतु ऐसा होने का एक
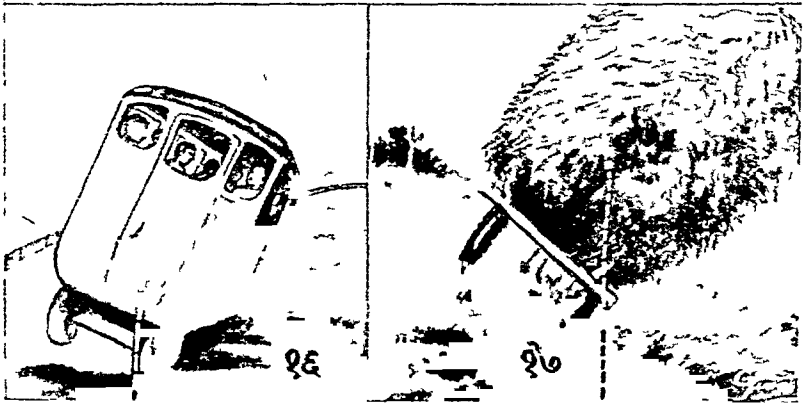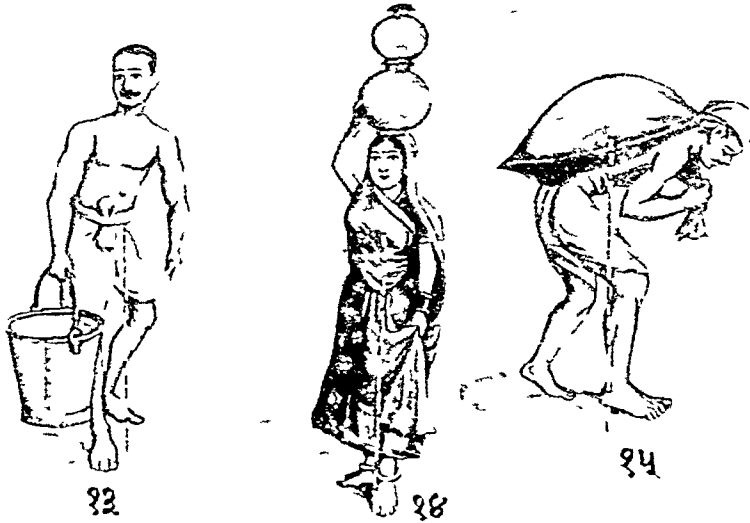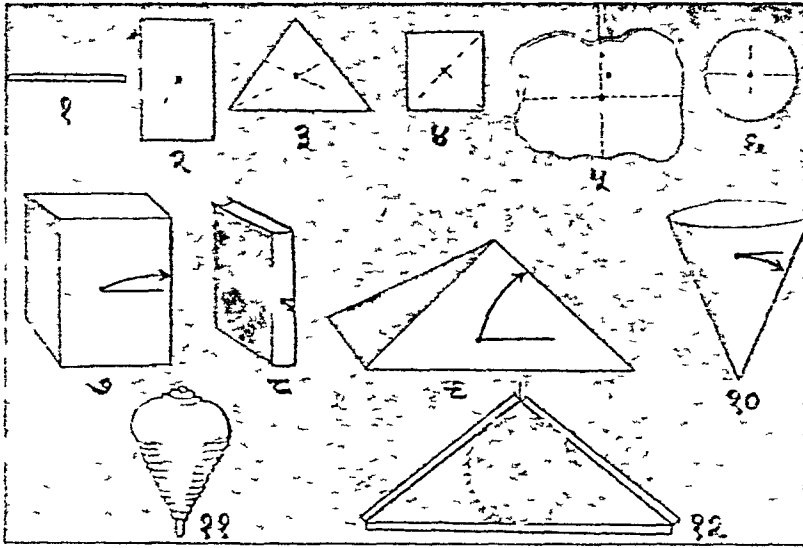
विभिन्न वस्तुओं के गुरुत्वाकर्षण केन्द्र (देखो पृष्ठ १२७)

ऊपर नं० १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११ और १२ में क्रमश गोल डंडा, चतुर्भुज, त्रिभुज, आदि विभिन्न आकृतियों के गुरुत्वाकर्षण केन्द्र बिन्दु द्वारा दिखाये गये हैं। नं० १३, १४ और १५ में दैनिक जीवन में गुरुत्वाकर्षण केन्द्र के प्रयोग के उदाहरण दिये गये हैं। नं० १६ और १७ में दिखाया गया है कि किस तरह गाडी का गुरुत्वाकर्षण केन्द्र झुकाव में पहियों से बाहर निकलते ही वह लुढ़क पड़ती है।

और भी कारण है। पृथ्वी की काल्पनिक धुरी, जिस पर वह घूमती है, ध्रुवो से होकर गुजरती है। अतः विषुवत् रेखा पर के स्थान ध्रुवों की अपेक्षा ज्यादा तेजी से घूमते हैं। विषुवत् रेखा की परिधि २५००० मील है। अतः २४ घटे मे विषुवत् रेखा पर स्थित स्थानो को २५००० मील का रास्ता तै करना पडता है, जब कि ध्रुव के निकट के स्थानों को चलकर पूरा करने मे कम ही दूरी तै करनी होती है। विषुवत् रेखा पर के स्थानो की गति १००० मील प्रति घटा है। अतः विषुवत् रेखा के समीप के पदार्थो मे ध्रुवो की अपेक्षा बाहर की ओर के लिए खिचाव (सेंट्रीफूगल फोर्स) अधिक पैदा होता है। अतः इस कारण भी इन पदार्थों पर काम करनेवाली पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति कम पड जाती है।

किसी भी चीज को आप लें, उसके हर एक अणु को, पृथ्वी अपने केंद्र की ओर खीचती है। यदि आप एक पुस्तक को मेज़ के किनारे रखे—इस तरह कि पुस्तक का कुछ हिस्सा बाहर निकला हुआ हो, तो वह पुस्तक मेज पर से गिरती नही है। अब आप उस पुस्तक को और बाहर की ओर खिसकाइये, ज्यो ही पुस्तक का आधे से ज्यादा हिस्सा मेज से बाहर आया, पुस्तक एकदम जमीन पर आ गिरेगी। ऐसा क्यो होता है? पुस्तक का कुछ भाग तो अब भी मेज पर ही है, तो फिर यह क्यो नीचे को लुढक गई? ऐसा जान पडता है कि पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति, जो पुस्तक के अणु-अणु पर काम कर रही है, मिलकर पुस्तक के बीचोबीच के बिंदु पर काम कर रही है। जब तक वह बिंदु मेज पर था, मेज ने पुस्तक को नीचे गिरने से रोका, किंतु ज्यो ही वह बिंदु मेज के बाहर पहुँचा, पृथ्वी ने समूची पुस्तक को फौरन् नीचे खीच लिया। इस बिंदु को, जिस पर पृथ्वी की सपूर्ण आकर्षण-शक्ति काम करती है, 'गुरुत्वाकर्षण केंद्र' कहते हैं। दूसरे शब्दो मे हम यह भी कह सकते हैं कि ऐसा जान पडता है, मानो उस वस्तु का समस्त द्रव्य उसी बिंदु पर आकर केंद्रित हो गया हो। आयताकार वस्तुओ का केंद्र आसानी से मालूम किया जा सकता है। उदाहरण के लिए गोल सुडौल डडे का केंद्र उसके मध्य भाग मे होता है। आयताकार वस्तुओ का गुरुत्वाकर्षण केंद्र उस बिंदु पर होगा, जहाँ उनके कर्ण एक-दूसरे को काटते हैं (देखिए पृष्ठ १३६ के चित्र मे न० १ से १२)।

ऐसे पदार्थों का केंद्र, जिनका आकार ज्यामिति की आकृतियो जैसा नही होता, गणित द्वारा आसानी से नही निकाला जा सकता, वरन् प्रयोग करके देखना पडता है। उस चीज के एक किनारे मे धागा बॉधकर उसे लटकाइए। चूॅकि कुल आकर्षण-शक्ति एक केंद्र से होकर गुजरती है, और आपके धागे की सीध मे लम्बवत् नीचे की ओर पृथ्वी उस चीज़ को खीच रही है, इसलिए गुरुत्वाकर्षण केंद्र भी अवश्य उस धागे की सीध मे ही स्थित होगा। अतः धागे की सीध मे उस वस्तु पर आप एक सीधी रेखा खीच दीजिए। उस वस्तु का केंद्र उसी रेखा पर कही स्थित है। फिर धागे को दूसरे किनारे पर बॉधिए और उसे पूर्ववत् लटकाइए। इस बार भी धागे की सीध मे ही उस वस्तु पर रेखा खीचिए। गुरुत्वाकर्षण केंद्र इस रेखा पर भी है। अतः यह रेखा पहली रेखा को जिस बिंदु पर काटेगी, वही उस वस्तु का गुरुत्वाकर्षण केंद्र होगा।

चीजो के समतुलन के लिए उनके गुरुत्वाकर्षण केंद्र की जानकारी रखना नितात आवश्यक है। मान लीजिए यात्रियो से भरी हुई एक मोटर लारी एक ढलुवे रास्ते पर जा रही है। ढाल पर लारी एक ओर को झुकी हुई है पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति मोटर के गुरुत्वाकर्षण केंद्र को लबवत् नीचे की ओर खीच रही है। किंतु जब तक मोटर लारी एक तरफ को इतनी नही झुक जाती कि उसके गुरुत्वाकर्षण केंद्र से खीची गई लबवत् रेखा लारी के दोनो पहियो के नीचे से बाहर नही निकल जाती, तब तक लारी के उलटने का तनिक भी डर नही है (देखिए पृष्ठ १३६ के चित्र मे न० १६)। गुरुत्वाकर्षण केंद्र से खीची गई लबवत् रेखा जब तक उस वस्तु के आधार (जिस पर वह टिकी हुई है) के अदर रहती है, उस वस्तु का समतुलन स्थिर रहता है। किंतु ज्योही लब रेखा आधार से बाहर गई, वह चीज़ फौरन् लुढक पडती है।

ट्राम गाडी तथा मोटर लारी का निचला भाग एजिन के कारण बहुत भारी होता है। अतः उसका गुरुत्वाकर्षण केंद्र भी जमीन की सतह से अधिक ऊपर नही होता। फल यह होता है कि अगर गाडी एक ओर काफी झुक भी जाय, तो गुरुत्वाकर्षण केंद्र से खीची गई सीधी लबवत् रेखा पहियो के बीच से बाहर नही जाने पाती। अतः ऐसी हालत मे भी गाडी का समतुलन स्थिर रहता है। किंतु उसके प्रतिकूल हमारे देहात की बैलगाडी के निचले हिस्से मे कोई ख़ास भारी चीज नही रहती। नतीजा यह होता है कि पुरसो ऊँचे तक पुआल लाद लेने पर गाडी का गुरुत्वाकर्षण केंद्र काफी ऊँचाई पर पहुँच जाता है। तनिक-सी भी ऊँची-नीची सडक मिली कि गाडीवान के साथ ही समूची गाडी उलट गई (देखिए उक्त चित्र मे न० १७)।
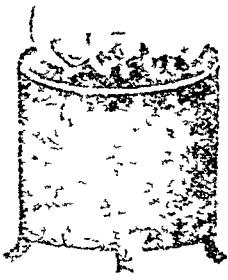
जब कोयला जलता है तो

कार्बन का प्रत्येक परमाणु ... आक्सिजन के दो परमाणुओं ... से संयुक्त होकर ... कार्बन डाइ-आक्साइड का एक अणु बन जाता है

गंधक के जलने पर
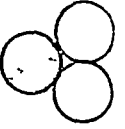
गंधक का प्रत्येक परमाणु ... आक्सिजन के दो परमाणुओं ... से संयुक्त होकर ... सल्फर डाइ-आक्साइड का एक अणु बन जाता है

मैग्नेशियम के जलने पर

मैग्नेशियम का प्रत्येक परमाणु ... आक्सिजन के एक परमाणु ... से संयुक्त होकर ... मैग्नेशियम आक्साइड का एक अणु बन जाता है

जब लोहे से मोर्चा लगता है तो
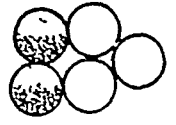
लोहे के दो परमाणु ... आक्सिजन के तीन परमाणुओं ... से संयुक्त होकर ... फेरिक आक्साइड (मोर्चा) के एक अणु में बदल जाते हैं

सोडियम धातु के टुकड़े पानी में 'तैरकुआ' कीड़ों की तरह तीव्रता से इधर-उधर दौड़ते हैं और शीघ्र ही रासायनिक क्रिया के कारण समाप्त होकर लुप्त हो जाते हैं। इस प्रतिक्रिया में—
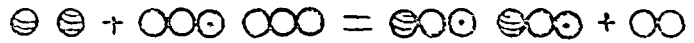
सोडियम के दो परमाणु और पानी के दो अणु मिलकर कास्टिक सोडा के दो अणुओं और हाइड्रोजन का एक अणु बन जाते हैं

जो साँस हम छोड़ते हैं उसमें कार्बन डाइआक्साइड गैस रहती है। इसलिये जब हम चूने के पानी में फूँकते हैं तो प्रतिक्रियास्वरूप—
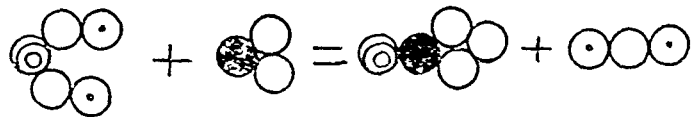
चूने का एक अणु और कार्बन डाइआक्साइड का एक अणु से खड़िया (कैल्शियम कार्बोनेट) का एक अणु और पानी का एक अणु बन जाते हैं

रासायनिक परिवर्त्तन के कुछ उदाहरण (देखिए पृष्ठ १४०)

पदार्थों के भौतिक और रासायनिक गुण

सृष्टि के भिन्न-भिन्न पदार्थों की ठीक-ठीक परख, उपयोग तथा वर्गीकरण की पहली सीढ़ी उनके गुणो की जानकारी है, जिनके कारण वे एक दूसरे से भिन्न दिखाई देते है। इस अध्याय में हम पदार्थों के सामान्य रासायनिक और भौतिक गुणो तथा क्रियाओं का दिग्दर्शन करेंगे।

किसी भी पदार्थ के रसायन का अध्ययन करने के लिए हमे क्रमशः निम्न बातो का ज्ञान प्राप्त करना पड़ता है—(१) उस पदार्थ के आविष्कार, नामकरण आदि का इतिहास, (२) वे स्थान अथवा वस्तुएँ जिनमे वह पदार्थ पाया जाता है, (३) उस पदार्थ के उत्पादन और निर्माण की विभिन्न रीतियाँ, (४) उसके गुण, (५) उसके परखने की रीतियाँ, (६) उसके उपयोग, तथा (७) उसकी अणु-रचना का निर्धारण। यहाँ पर हमे अन्य बातो के सम्बन्ध मे कुछ कहने की आवश्यकता नही है, केवल यह जानना है कि पदार्थों के गुण कितने प्रकार के और कौन-कौन होते हैं, और उनका अध्ययन किस प्रकार किया जाता है।

किसी भी पदार्थ के गुण दो प्रकारों मे विभक्त किये जा सकते हैं—भौतिक गुण और रासायनिक गुण। जब हम कहते हैं कि सिंदूर लाल है, शीशा पारदर्शी है, पानी तरल है, शक्कर मीठी है, लोहा भारी है, नमक घुलनशील है, ताँबा गर्मी और बिजली का अच्छा सचालक है, गधक गर्म करने पर पिघल जाता है, तो हम इन विभिन्न वस्तुओं के एक-न-एक ऐसे गुण का उल्लेख करते हैं, जिसका सबध उन वस्तुओं के बाहरी रूपरग अथवा आचरण से है और जिससे हमे न उन वस्तुओं के अणुओं की बनावट अथवा उनमे हो सकनेवाले किसी परिवर्त्तन का कुछ भी बोध नहीं होता। ऐसे गुणो को हम 'भौतिक गुण' कहते हैं क्योकि ये गुण पदार्थों की भौतिक अवस्थाओं के ही परिचायक होते हैं। किन्तु यदि हम कहे कि लोहे मे मोर्चा लगने का गुण है, कोयले मे जल जाने का गुण है, अथवा कार्बन डाइऑक्साइड गैस मे चूने के पानी को सफेद कर देने का गुण है, तो हम कुछ ऐसे गुणो का वर्णन करते है, जिनमे हमे उन वस्तुओं के अणुओं मे होनेवाले परिवर्त्तनो का बोध होता है। अतएव इन गुणो को हम 'रासायनिक गुण' कहते हैं।

इसी प्रकार, हम किसी पदार्थ मे हो सकनेवाले सारे परिवर्त्तनों को भी दो प्रकारो मे विभाजित करते हैं—भौतिक परिवर्त्तन और रासायनिक परिवर्त्तन। अगर हम ताँबे की एक छड को लचाएँ तो लच जायगी, पानी को खूब ठढा करे तो जमकर ठोस बर्फ हो जायगा, प्लैटिनम के तार को गर्म करे तो लाल होकर चमकने लगेगा और शक्कर को पानी मे डाले तो घुल जायगी। इन सब बातो मे कुछ-न कुछ परिवर्त्तन अवश्य होता है, लेकिन किसी मे भी ऐसा नही होता कि वह पदार्थ ही किसी बिलकुल नये प्रकार के पदार्थ मे परिणत हो जाय, अर्थात् उस पदार्थ के अणु ही किसी दूसरे पदार्थ के अणुओं मे परिवर्त्तित हो जायँ। जिस शक्ति अथवा कारण द्वारा यह परिवर्त्तन हुए हैं, यदि हम उसे हटा ले अथवा विपरीत दिशा मे उस शक्ति का उपयोग करे, तो हमे अपने प्रथम रूप मे ही वह वस्तु फिर मिल जायगी। ताँबा दूसरी ओर झुकाकर फिर सीधा किया जा सकता है, बर्फ गर्म करके पानी मे फिर बदली जा सकती है, प्लैटिनम का तार ठडा करके फिर अपनी पहली हालत मे लाया जा सकता है और पानी को सुखाकर फिर वही शक्कर निकाली जा सकती है। स्पष्टतः, ये सारे परिवर्त्तन अधिक अस्थायी होते हैं। इन परिवर्त्तनों को जिनमें द्रव्य वही बना रहता है, अर्थात् वह

किसी अन्य प्रकार के द्रव्य मे परिणत नही होता, 'भौतिक परिवर्त्तन' कहते हैं। इनको भौतिक इसलिए कहते हैं कि ये परिवर्त्तन पदार्थो की भौतिक अवस्थाओ मे ही होते हैं।

लेकिन कोयले अथवा गधक के जलने, सोडियम धातु और पानी मे प्रतिक्रिया होने अथवा कार्बन डाइआक्साइड गैस द्वारा चूने के पानी के सफेद हो जाने मे हमे कुछ ऐसे परिवर्त्तनों के उदाहरण मिलते हैं जिनमे एक प्रकार का द्रव्य बदलकर किसी दूसरे प्रकार के द्रव्य मे परिणत हो जाता है—एक पदार्थ के अणु किसी दूसरे ही पदार्थ के अणुओ मे बदल जाते हैं। ऐसे परिवर्त्तनों को हम 'रासायनिक परिवर्त्तन' कहते हैं। ये परिवर्त्तन अधिक स्थायी होते हैं और बिना किसी विशेष रासायनिक रीति के हम नयी बनी हुई वस्तुओं से मूल वस्तुओं को नहीं निकाल सकते। कोयला जलकर एक बिलकुल भिन्न पदार्थ कार्बन डाइआक्साइड गैस मे परिणत हो जाता है, लेकिन कार्बन डाइआक्साइड गैस को ठढा करने से हमे कोयला (कार्बन) कदापि न मिलेगा, उस से कार्बन निकालने के लिए हमे रासायनिक रीतियों का ही सहारा लेना पडेगा।

मैग्नेशियम कार्बन डाइआक्साइड मैग्नेशियम आक्साइड कार्बन
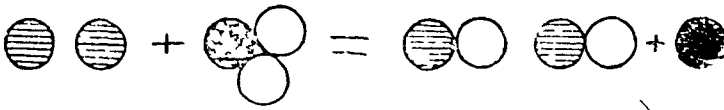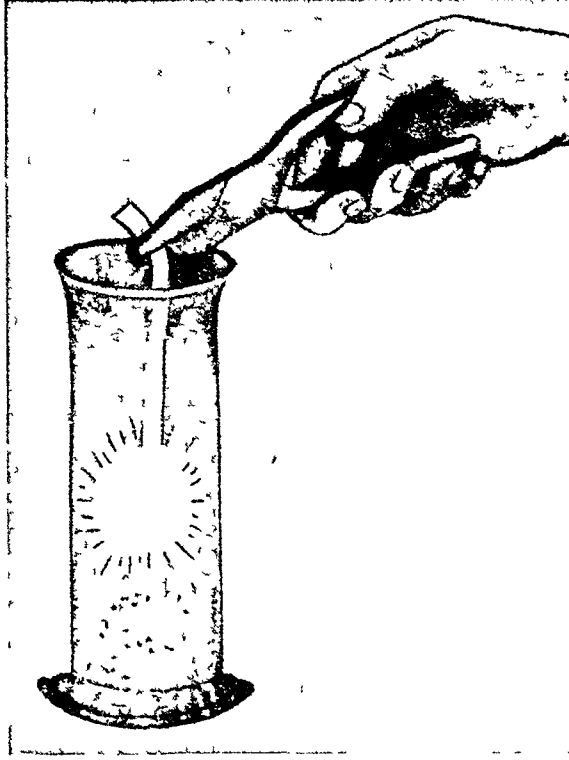
अगर हम कार्बन डाइआक्साइड में मैग्नेशियम को जलाएँ तो इस रासायनिक क्रिया द्वारा कार्बन के छोटे-छोटे टुकडे निकल आते हैं और मैग्नेशियम कार्बन डाइआक्साइड की आक्सिजन से मिलकर मैग्नेशियम आक्साइड बन जाता है। इस प्रकार रासायनिक क्रिया द्वारा ही कार्बन डाइआक्साइड से कार्बन निकल सकता है किसी भौतिक परिवर्त्तन द्वारा नहीं।

किसी वस्तु के रसायन का अध्ययन करने में हमें उसके भौतिक और रासायनिक दोनों ही गुणो की परीक्षा करनी पडती है। भौतिक गुणों के अध्ययन के बिना न पदार्थ सरलता से पहचाने ही जा सकते हैं, न उनका वर्गीकरण ही हो सकता है और न ठीक-ठीक उपयोग ही। अतएव उनका अध्ययन करना आवश्यक है। भौतिक गुणो की परीक्षा एक स्वाभाविक क्रमबद्ध रीति से ही की जाती है। जब कोई अपरिचित पदार्थ हमारे ध्यान को आकर्षित करता है तो हम अपनी ज्ञानेन्द्रियो द्वारा उसके साधारण भौतिक गुण जानने का प्रयत्न करते हैं—हम स्वभावतः पहले उसे देखते हैं, फिर प्रायः सूँघते हैं अथवा यदि चखने योग्य हुआ तो चखते हैं, फिर झुकाते, मरोडते या तोडते हैं, और फिर अपने दैनिक जीवन की साधारणतम वस्तुओ, अर्थात् पानी, आग (गर्मी), हवा, बिजली आदि के ससर्ग म लाते हैं और इनका उस पदार्थ पर प्रभाव देखते हैं। पदार्थों के साधारण गुणो का अध्ययन अथवा उनका वर्णन हम इसी क्रम के अनुसार करते हैं। कुछ विशेष भौतिक गुणों को निर्धारित करने के लिए हमे विशेष प्रकार के उपकरणो की भी सहायता लेनी होती है और कुछ विशेष प्रकार के प्रयोग भी करने पडते हैं। किसी भी वस्तु को केवल देखकर ही हम उसके रग, चमक, अवस्था, पारदर्शित्व और आकार इन सब गुणो से परिचित हो जाते हैं। द्रव्य का अस्तित्व तीन अवस्थाओ मे होता है—ठोस, द्रव और गैस। जो वस्तु किसी जगह रखने पर अपने आयतन और रूप को नहीं बदलती अर्थात् जिसका अपना ही आयतन और रूप होता है, उसे 'ठोस' कहते हैं। हमारे चारों ओर अधिकतर ठोस वस्तुएँ ही दिखाई देती हैं। पत्थर, लोहा, कोयला आदि वस्तुएँ साधारण दशाओं में ठोस ही होती हैं। लेकिन पानी, दूध, तेल, पारा आदि वस्तुएँ जिस बर्तन में डाली

इसी प्रकार, पारदर्शित्व के अनुसार हम पदार्थों को तीन वर्गों मे विभक्त कर सकते हैं। शीशा, हवा, पानी आदि को हम 'पारदर्शी' कहते हैं, क्योकि इनके भीतर से प्रकाश आ-जा सकता है और इनमे से हम दूसरी वस्तुओ को स्पष्ट देख सकते हैं। कुछ वस्तुएँ, जैसे घिसा शीशा, तेलिया कागज आदि, ऐसी होती हैं, जिनमे से थोडा-सा ही प्रकाश आ-जा सकता है और जिनके पार की वस्तुओं को हम धुँधला ही देख सकते हैं। ऐसी वस्तुओं को 'अल्प पारदर्शी' कहते हैं। तीसरे प्रकार की वस्तुओ, जैसे लोहा, लकडी, पत्थर आदि के पार हम बिल्कुल नहीं देख सकते, कारण, उनमे प्रकाश की किरणे बिल्कुल प्रविष्ट नही हो सकती। ऐसी वस्तुओ को निष्पारदर्शी कहते हैं।

आकार की दृष्टि से पदार्थ दो प्रकारो मे विभाजित होते हैं। कुछ पदार्थ, जैसे नमक, शक्कर, फिटकरी आदि, ऐसे होते हैं जिनके कण अथवा टुकडे एक नियत आकार के और जिनके तल सीधी रेखाओ से घिरे होते हैं। ऐसे कणो अथवा टुकडो को 'रवा' अथवा 'स्फटिक' कहते है, और जो वस्तु इस रूप मे रहती है उसे रवादार अथवा स्फटिकरूप कहते हैं। इसके विपरीत कुछ वस्तुएँ ऐसी भी होती हैं, जिनके कणो मे कोई नियत रूप नही रहता। कोयला, शीशा, चूना, मैदा आदि वस्तुएँ इसी प्रकार की होती है। इन वस्तुओं को बेरवादार कहते हैं।

सूँघने अथवा चखने से हम वस्तुओं की गध और स्वाद को जान लेते हैं और फिर स्पर्श द्वारा यह ज्ञात करते हैं कि वह वस्तु खुरदरी है या समतल, अथवा कठोर है या कोमल। इसके बाद हम उस वस्तु को तोडने, मरोडने, झुकाने अथवा खीचने का प्रयत्न करते हैं। जो वस्तुएँ हथौडे आदि द्वारा पीटने से टुकडे-टुकडे हो जाती हैं, उन्हें 'भजनशील' कहते हैं, किन्तु जो वस्तुएँ टूटती नही वरन् बटकर फैल जाती हैं, उन्हें 'आघातवर्द्धनीय' (malleable) कहते हैं। नमक, खडिया और शीशा भजनशील हैं, किंतु सोना, चाँदी और ताँबा आघातवर्द्धनीय हैं। कुछ वस्तुएँ विशेषत. सोना, चाँदी, ताँबा आदि धातुएँ, ऐसी होती हैं जिनके हम तार खींच सकते हैं, ऐसी वस्तुओ को हम 'तातव' (ductile) कहते हैं। कुछ वस्तुएँ झुकाने से झुक जाती हैं, किंतु छोड देने पर वे फिर अपनी पहली दशा और रूप मे आ जाती हैं। ऐसी वस्तुओं को 'लचकीली' अथवा 'लचकदार' कहते हैं। बेत, घडी की कमानी, तलवार का फल आदि वस्तुएँ लचकदार होती हैं। परतु कुछ वस्तुएँ ऐसी होती हैं, जो झुकाने से तो

कुछ भौतिक परिवर्त्तन

(न० १) वाष्पीकरण (Evaporation)—द्रव के अणु बराबर गति में रहते हैं और इस प्रकार तल के कुछ अणु हवा के अणुओं में जा मिलते हैं। हवा के बहाव में यह भीगी हुई हवा हट जाती है और दूसरी शुष्क हवा वही कार्य करने के लिए उसके स्थान में आ जाती है। हम देखते हैं कि पानी के अणुओं में कोई रासायनिक परिवर्त्तन नहीं होता। (न० २) ऊर्ध्वपातन (Sublimation) अगर हम एक परीक्षानली में थोडा सा नौसादर (अमोनियम क्लोराइड) लेकर गर्म करें तो वह बिना पिघले ही वाष्परूप में परिणत हो जायगा और ऊपर ठंडी सतह पर फिर जम जायगा। (न० ३) घनीकरण—अगर हम किसी धातु या शीशे के बरतन में बर्फ भरकर रख दें तो थोड़ी ही देर में बाहरी सतह भीग जाती है और उस पर पानी की बूँदें दिखाई पडने लगती हैं। ये बूँदें हवा में मिली हुई जलवाष्प के घनीकरण द्वारा उत्पन्न होती हैं।

झुक जाती हैं, लेकिन छोड देने पर झुकी ही बनी रहती हे, पहले आकार मे नही आती। ऐसी वस्तुओं को 'नम्य' कहते हैं। सोना, चॉदी, सीसा आदि धातुओ के तारो व पत्रों मे यही गुण होता है। वे वस्तुएँ जो खीची, झुकाई अथवा बढाई जा सकती हे, लेकिन छोड देने पर तुरत सिकुडकर अपना प्रथम रूप और आकार ले लेती ह, 'स्थितिस्थापक' अथवा 'इलास्टिक' (elastic) कहलाती हैं। कुछ रबडो मे यह गुण मिलता है और कुछ फीतों को इलास्टिक इसीलिए कहते हैं कि उनमे यह बढने-घटने का गुण रहता है। जो पदार्थ सरलता से किसी भी रूप मे ढाला अथवा परिणत किया जा सके और वही रूप वह बनाये भी रक्खे उसे 'ढलनशील' (plastic) कहते ह। प्लास्टर और पानी मिली चिकनी मिट्टी इसके उदाहरण हैं।

किसी वस्तु को पानी मे डालने से हमे यह पता चलता है कि वह वस्तु पानी सोखती है अथवा नही,अर्थात् वह'छिद्र-मय' (porous) है अथवा 'छिद्रहीन' (impervious)। वह वस्तु पानी मे तैरती है अथवा नीचे बैठ जाती है, इस बात से हमे पानी की अपेक्षा उसके हलकेपन अथवा भारी-पन का पता चलता है। यदि हम चाहे तो भौतिक रीतियो से यह भी निकाल सकते ह कि कोई वस्तु पानी से कितनी गुनी भारी है। जिस सख्या से यह प्रकट होता है, उसे 'आपेक्षित घनत्व' कहते हे। गैसो के घनत्व की तुलना हम पानी के घनत्व से नहीं, वरन् हाइड्रोजन अथवा हवा के घनत्व से करते हे। इसके अलावा, पानी मे छोडने से हमे यह भी पता चलता है कि वह वस्तु पानी मे घुलती है अथवा नही, अर्थात् 'घुलनशील' है अथवा 'अघुलनशील'। भौतिक रीतियो द्वारा हम यह भी निकाल सकते हैं कि कौन वस्तु किस द्रव मे कितनी घुल सकती है।

किसी वस्तु को गर्म करने से हमे यह मालूम होता है कि वह वस्तु गर्मी की अच्छी सचालक है अथवा बुरी। इसके अतिरिक्त, उसे गर्म अथवा ठढा करने से हमे उसके पिघलने, उबलने, जमने आदि के विषय मे भी ज्ञान प्राप्त होता है। जिस तापक्रम पर कोई ठोस पिघलता है, उस उसका 'द्रवणाक' कहते हैं, और ठढा करने से जिस तापक्रम पर कोई द्रव जम जाता है उसे उस द्रव का 'हिमाक' कहते हैं। एक ही पदार्थ का द्रवणाक और हिमांक एक ही होता है। बर्फ ०°c पर पिघलती है और पानी उसी ताप-क्रम पर जमता है। जिस तापक्रम पर कोई द्रव उबलता है उसे उस द्रव का 'क्वथनाक' कहलाते है। उबलने की क्रिया मे द्रव शीघ्रता से वाष्परूप मे परिणत होता रहता है। जब कोई गैस काफी ठडी की जाती है अथवा उस पर काफी दबाव डाला जाता है तो वह द्रवरूप मे परिणत हो जाती है। इस परिवर्त्तन को 'द्रवीकरण' (liquefaction) कहते हे। द्रवीकरण का तापक्रम भी निकाला जा सकता है। हाइ-ड्रोजन गैस साधारण दबाव मे—२५३°c के नीचे द्रवरूप मे रहती है। इसी प्रकार किसी वाष्प के द्रवरूप मे परिवर्त्तित
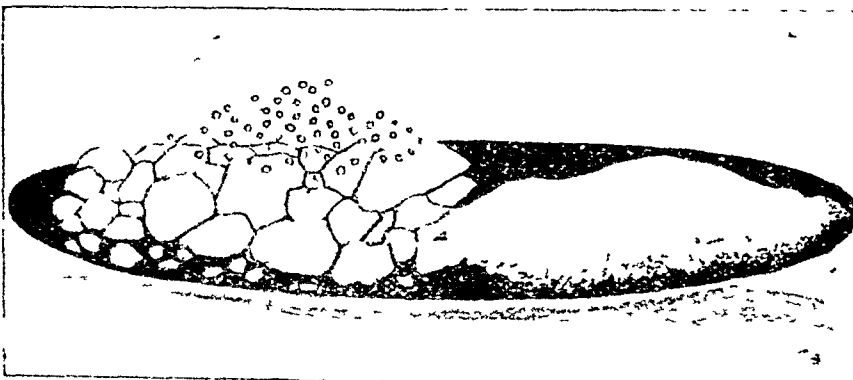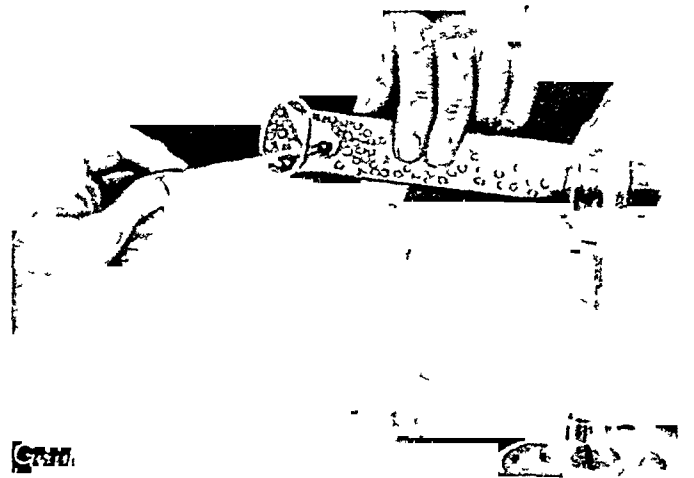
रासायनिक विच्छेदन

यदि हम परीक्षानली में पारद आक्साइड को गर्म करें तो आक्सिजन गैस बाहर निकलने लगती है और पारद के छोटे-छोटे गोल कण परीक्षानली की ठढी सतह पर घनीभूत हो जाते हैं। यदि हम सुलगती दियासलाई परीक्षानली के मुँह के पास ले जायँ तो वह भक से जल उठती है, जिसमे प्रगट होता है कि निकलती हुई गैस आक्सिजन ही है।

(वाइ ओर) प्रस्फुटन

रवादार धोनेवाला सोडा जब हवा में खुला छोड दिया जाता है तो उसका पानी धीरे-धीरे उड जाता है और सोडा खिलकर पाउडर का रूप ग्रहण कर लेता हे।

होने को 'घनीकरण' (condensation) कहते हैं। प्रायः सभी द्रव साधारण दशाओं मे भी अपने तल से धीरे-धीरे वाष्परूप मे परिणत होते रहते हैं। इस परिवर्त्तन को 'वाष्पीकरण' (evaporation) कहते हैं। कुछ द्रव, जैसे स्पिरिट और ईथर, शीघ्रता से वाष्परूप मे उड जाते हैं। ऐसे द्रवों को 'उडनेवाले द्रव' कहते हैं। नौसादर और आयडीन जैसे कुछ ठोस द्रव्य गर्म करने पर द्रवित नही होते, किन्तु सीधे वाष्प-रूप मे बदल जाते हैं और ठढक पाने पर वह वाष्प फिर सीधे ठोस रूप मे परिणत हो जाती है। इस प्रकार के परि-वर्त्तन को ऊर्ध्वपातन (sublimation) कहते हैं। कुछ वस्तुएँ, जैसे नमक, गर्म करने पर चटचटाने की आवाज करके छोटे-छोटे टुकडो मे टूट जाती हैं। इसको 'चटखना' (decrepitation) कहते हैं।

इसके बाद हम उस वस्तु पर हवा का प्रभाव देखते हैं। हवा मे रखने से कुछ वस्तुएँ पानी सोखती हैं। ऐसी वस्तुओं को 'जलग्राही' (hygroscopic या deliquescent) कहते हैं। कास्टिक सोडा या कैल्शियम क्लोराइड के एक टुकडे को खुली हवा मे यदि हम छोड रक्खे तो वह इतना पानी सोखेगा कि स्वय उसमे घुल जायगा!

इस प्रकार, भौतिक गुणों का अध्ययन करने के बाद हम पदार्थ के रासायनिक गुणों का अध्ययन करते हैं। रासायनिक गुणों का अध्ययन करने मे भी हम पहले उन रासायनिक परिवर्त्तनो को देखते हैं जो उस वस्तु मे हमारी दैनिक जीवन की साधारणतम वस्तुओं—आग (गर्मी), हवा, पानी आदि के ससर्ग से होते हैं। जो वस्तु लौ मे गर्म करने से जल उठती है, उसे 'जलनशील' कहते हैं। जल जाने पर हम यह देखते हैं कि कौन-सी नई वस्तु बन गई। जो वस्तुएँ नही जलती, उन्हे 'अज्वलनशील' कहते हैं। कुछ पदार्थों को गर्म करने से वे दो या अधिक प्रकार की नई वस्तुओं मे पृथक् हो जाते हैं। इसको 'विच्छेदन' (decomposition) कहते हैं। जैसे, पारद आक्साइड (mercury oxide) को गर्म करने से आक्सिजन गैस निकलती है और एक नया पदार्थ, पारद धातु, बन जाता है। कुछ वस्तुओं मे केवल हवा मे रखने से ही रासायनिक परिवर्त्तन हुआ करते हैं, जैसे लोहा, ताँबा आदि धातुओं मे मोर्चा लगता है, चूना बहुत दिन रखने पर खडिया मे परिवर्त्तित हो जाता है, और तूतिया, सोडा सरीखे कुछ स्फटिक पदार्थों के रवो का पानी (water af crystallisation) उड जाता है, जिसके कारण ये वस्तुएँ बेरवादार रूप मे रह जाती हैं। इस प्रकार रवों के बेरवादार हो जाने को खिल जाना अथवा 'प्रपुष्पण' (efflorescence) कहते हैं। पानी के ससर्ग से भी बहुत सी वस्तुओ मे रासायनिक परिवर्त्तन होते हैं। चूना पानी मे डालने से उससे सयुक्त होता है और 'बुझ' जाता है और इस रासायनिक क्रिया मे इतनी गर्मी की उत्पत्ति होती है कि पानी बहुधा उबलने तक लगता है। शुष्क तूतिया (anhydrous copper sulphate) जैसे कुछ बेरवा-दार पदार्थ पानी से सयुक्त होकर अपने रवे बनाते हैं, और सोडियम धातु की पानी के साथ ऐसी प्रतिक्रिया होती है, जिसमे हाइड्रोजन गैस निकलती है और कास्टिक सोडा बन जाता है।

इन साधारणतम बातों के प्रभाव का अध्ययन करने के बाद हम पदार्थों पर अन्य वस्तुओं की रासायनिक क्रियाओं अथवा प्रतिक्रियाओं का अध्ययन करते हैं।

रवो का पानी

जब नीला तूतिया परीक्षानली में गर्म किया जाता है तो उसके रवों का पानी निकल जाता है और एक सफेद पाउडर बच रहता है। पानी की बूँदें परीक्षानली की ठडी सतह पर घनीभूत हो जाती हैं और नीचे गिरकर इकट्ठा की जा सकती हैं। यदि इस बचे हुए सफ़ेद पाउडर या बुकनी में हम फिर पानी डालें तो वह फिर से नीला हो जाता है।

ऋषिभिर्बहुधा गीतम्*

जानने की भूख जागरूक होने पर जब हम अंधकार के पर्दे के उस पार हाथ बढाकर तत्त्ववस्तु को टटोलने का प्रयत्न करते हैं तो हमारे दृष्टिकोण की विविधता के अनुसार हमे उस वस्तु के स्वरूप की विविध अनुभूतियाँ होती है। किन्तु इसमे कोई विरोधाभास नही है। वास्तव मे उस मूल वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। तभी तो तत्त्वदर्शी विद्वानो ने उस एक ही तत्त्व का अनेक तरह से बखान किया है।

प्रथम लेख मे कहा जा चुका है कि दर्शन का उद्देश्य तत्त्व का साक्षात्कार करना है। साक्षात्कार या अनुभव का स्वरूप साक्षात्कर्त्ता की जिज्ञासा और साधना पर निर्भर है। इसको एक उदाहरण से देखना चाहिए। मेघ को देखकर एक ऐतिहासिक या पुराणकार के मन मे जो भाव उठता है वह यह है—

जात वंशे भुवनविदिते पुष्करावर्तकानाम्।

(मेघदूत)

अर्थात् पुष्कर और आवर्तक नामक मेघो के विशाल वंश मे इस सामने देख पडनेवाले मेघखण्ड का जन्म हुआ है। इस प्रतिक्रिया मे प्रत्यक्ष वस्तु के पूर्व अतीत को ढूँढने की प्रवृत्ति है। एक कृषक, जिसने अपने जीवन के अस्तित्व के लिए प्रकृति के वरदानो के प्रति कृतज्ञ होना सीखा है, सोचता है—

त्वय्यायत्त कृषिफलमिति। (मेघदूत)

अर्थात् यह जो लहलहाती हुई सस्य सम्पत्ति है, हे मेघ, इसका श्रेय तुम्हारे वरद जलकणों को है।

प्रकृति के रहस्य को तत्त्वो की शल्य-प्रक्रिया के द्वारा जो जानना चाहते हैं, उन वैज्ञानिको से यदि आप पूछिए कि मेघ क्या है, तो उनका उत्तर कुछ इस प्रकार होगा—

धूमज्योतिः सलिल मरुता सन्निपात'—क्व मेघ.

(मेघदूत)

अर्थात् धुआँ, आग, पानी और हवा—इन्हीं के जमघट का नाम मेघ है। यह भी ज्ञान का एक मार्ग है, जिसमे मस्तिष्क की ऊहापोह प्रधान है। इस मार्ग के द्वारा सृष्टि की चीर-फाड करके कुछ विशिष्ट पदार्थों मे इसका बँटवारा करके मानव-मस्तिष्क अपने आपको सन्तोष देना चाहता है। यह भी एक साधना है। परन्तु वैज्ञानिक का अनुभव कवि की दृष्टि मे बहुत निकृष्ट कोटि का है। इसीलिए 'धूमज्योतिः सलिल मरुता सन्निपातः'— इस परिभाषा के सामने उसने 'क्व मेघः' ये दो पद रक्खे हैं, अर्थात् इस प्रकार धुएँ, आग, पानी और हवा का जमघट जो मेघ है, वह हमारे किस काम का? कहाँ एक ओर मेघ का यह निकृष्ट स्वरूप, और कहाँ दूसरी ओर कवियो की कल्पना से प्रसूत मेघ का उदात्त रूप! कवि की भी एक साधना और स्वतन्त्र जिज्ञासा है। उसके अनुसार कल्पना के पंख पर बैठकर जब वह मेघ के स्वरूप का अनुभव करता है, तब वह सोचता है—

जानामि त्वा प्रकृतिपुरुष कामरूप मघोनः

(मेघदूत)

अर्थात् 'हे मेघ, मै यथार्थतः तुम्हारे स्वरूप को जानता हूँ, तुम इस प्रकृति के कामरूप पुरुष हो।' इस प्रकार का कामरूप पुरुष प्रकृति मे जब यक्ष को मिलता है, तभी वह उसके हृदय की सूक्ष्म व्यञ्जनाओ को समझने के योग्य होता है।

साक्षात्कार या अनुभव की पृथक्ता या वैचित्र्य को उदाहरण के द्वारा स्पष्ट करने के लिए हमने जान-बूझकर भारतीय महाकवि कालिदास की काव्यगत मीमासा का अवतरण

---

* ऋषिभिर्बहुधा गीत छन्दोभिर्विविधैः पृथक्

—गीता

अर्थात् विविध छदो में पृथक्-पृथक् ऋषियों ने एक ही तत्त्व का अनेक तरह से बखान किया है।

दिया है। कालिदास के मेघदूत के ये सारगर्भित वाक्य इस देश के दर्शनशास्त्र के एक महान् तत्त्व को प्रकट करते हैं। दृश्य वस्तु का स्वरूप देखनेवाले के दृष्टिकोण पर निर्भर है, अतएव उस अनुभव मे विविधता का होना अनिवार्य है। उन अनुभवों मे कौन सच है और कौन मिथ्या, यह प्रश्न मस्तिष्क की उधेड़बुन के लिए भले ही महत्त्वपूर्ण हो, अनुभवकर्त्ता की दृष्टि से इसका कोई महत्त्व नहीं है।

यदि जिज्ञासु की साधना सच्ची है, तो उसके साक्षात्कार का ध्रुवबिन्दु भी अटल है। समस्त ब्रह्माण्ड भी यदि उसका प्रतिपक्षी हो, तब भी उसके अनुभव की सत्यात्मक प्रतीति टस से मस नहीं की जा सकती। वैरागी राजकुमार सिद्धार्थ से कौन, इस बात मे सहमत था कि राजकीय प्रासाद का देवभोग्य वैभव त्यागने योग्य है? पर गौतम अपने अनुभव से तिल भर भी नहीं डिग सके। अथवा जोगी रतनसेन की माता का एक ओर यह कहना—

'बिनवै रतनसेन कै माया।
माथे छात, पाट निति पाया॥
बिलसहु नौ लख लच्छि पियारी।
राज छाँडि जिनि होहु भिखारी॥'

(पद्मावत)

और दूसरी ओर रतनसेन का यह वाक्य—

'मोहिं यह लोभ सुनाव न माया।
काकर सुख, काकर यह काया?
जो निआन तन होइहि छारा।
माटिहि पोख मरै को भारा?'

(पद्मावत)

दोनो बराबर महत्त्व रखते हैं। रतनसेन की साधना ने तत्त्व का दर्शन इसी रूप में किया था। एक को सत्य और दूसरे को मिथ्या मानना बुद्धि का लड़कपन है।

दार्शनिक विमर्श के पनपने के लिए अनुकूल क्षेत्र की तैयारी इसी बात पर निर्भर है कि हम अपनी विचारशैली मे ऊपर दिखाये हुए दृष्टिकोण को कहाँ तक आदर के योग्य समझते हैं। यदि तत्त्व को जानने के लिए यह आवश्यक है कि हममें से प्रत्येक व्यक्ति स्वय जिज्ञासु बनकर साधना करे, तो साथ ही यह भी आवश्यक हो जाता है कि उस जिज्ञासा के अन्त में हम जिस परिणाम पर पहुँचे उसको 'प्रतिष्ठित' माना जाय। 'प्रतिष्ठित' का तात्पर्य यह है कि ज्ञान-प्राप्ति का जो सर्वसम्मत मार्ग है वही उस अनुभव का भी आधार या प्रतिष्ठा है।

इस प्रकार अनेक ऋषियों के अनुभव सब प्रतिष्ठित हैं। ऋषि वह है जिसने स्वय तत्त्व का अनुभव किया है जिसने स्वय तत्त्व को मथा है, वही दर्शन का अधिकारी है। भगवान् बुद्ध कहा करते थे कि गन्तव्य स्थान तक जो स्वय नहीं गया, जिसने मार्ग को केवल दूसरों से सुनकर घोख रक्खा है, उसका वचन प्रमाण के योग्य नहीं है।

भारतीय विचारकों ने अपने वाङ्मय के उष काल से ही इस महत्त्वपूर्ण तत्त्व को समझकर उसका प्रचार किया है। ज्ञान-सिद्धि ऋषि-महर्षियों का जो साक्षात्कार था, उसको उन्होंने 'श्रुति' कहा है। श्रुति का जन्म प्रज्ञा से होता है। प्रज्ञा (Intuition) ज्ञान-प्राप्ति का सबसे सूक्ष्म और मूल्यवान् साधन है। योग-समाधि के द्वारा चित्त को सस्कृत करने का फल हमारे ज्ञान-यत्र के लिए पतञ्जलि ने निम्नलिखित सूत्र मे बताया है—

ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा

अर्थात् अध्यात्म दर्शन की उच्चतम अवस्था मे ऋतम्भरा प्रज्ञा का उदय होता है। ऋत जिसमें भरता हो, ऐसी बुद्धि ऋतम्भरा प्रज्ञा है। मस्तिष्क की तर्क-वितर्क के द्वारा प्राप्त होनेवाला ज्ञान सत्य है। हृदय की अनुभूति या तत्त्व-साक्षात्कार से मिलनेवाला अनुभव 'ऋत' है। योगी की प्रज्ञा (Intuition) ऋतात्मक ज्ञान का भरण करती है। दर्शनशास्त्र के विद्यार्थी की बुद्धि प्रमाणों के ऊहापोह से तत्त्व-विनिश्चय का प्रयास करती है। पिछले प्रकार के आयोजन से उत्तरकालीन भारतीय दर्शनों का जन्म हुआ है, जिनकी गणना शास्त्रकोटि मे की जाती है। भारत मे मस्तिष्क के तर्क की पराकाष्ठा नव्य न्याय के रूप मे हुई, जिसके परिष्कारों की अवच्छेदकावच्छिन्न रूपी तीक्ष्ण धार के आगे टिक सकना दिग्गज विपक्षियों के लिए भी कठिन हो गया। इस शास्त्र के सामने मस्तिष्क की हार अवश्य होती है, हृदय की नहीं। इससे ठीक उलटी प्रज्ञा की कोटि है। ऋतम्भरा प्रज्ञा से जिस दर्शन का जन्म हुआ, वह उपनिषद् और वैदिक मन्त्रो मे उपनिबद्ध है। यहाँ दर्शन ने काव्य का रूप धारण किया है। ऋषि को वेदो मे 'विप्र' (ज्ञानी) की पदवी के साथ-साथ 'कवि' भी कहा है। ऋषियो के अनुभव जिन श्रुतियों मे हैं, वे दैवी काव्य हैं, जो कभी जीर्ण और मृत नहीं होते—

देवस्य पश्य काव्य न ममार न जीर्यति।

श्रुतियों मे कहीं भी नियमबद्ध विवेचन करने (systematisation) का आयोजन नहीं है। प्रज्ञा की वायु मलयानिल की तरह स्वच्छन्द होकर जिधर चाहती है, बहती है। इसी

कारण उपनिषदों के उद्गार नव्य नवनीत की भाँति आज भी हरे-भरे मालूम होते हैं। उनके संगीत में बासीपन या मृत्यु की जड़ता का सम्पर्श कभी नहीं होता, जो प्रमाण-प्रमेयों के चौखटे में कसे हुए तथाकथित दार्शनिक विमर्शो का अभिशाप है। भारतीय दर्शनकारों ने श्रुति और शास्त्र की प्रामाणिकता में सदा अन्तर किया है। शास्त्र को प्रमाण-कोटि में लाने के लिए बुद्धि पर कसना पड़ता है। श्रुति तो ज्ञान और अनुभव का मथा हुआ घृत है। शंकर आदि दार्शनिक श्रुति के सामने नतमस्तक होकर श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं। जब उन्हें ऋषिअनुभूत ज्ञान का नवनीत मिल जाता है, तब वे तर्क के पचड़े में नहीं पड़ते। इस प्रकार का दृष्टिकोण केवल तर्कसम्मत पैंतरों के बल चलनेवालों को भले ही अखरनेवाला मालूम पड़े, पर जिनके लिए दर्शन जीवनमरण की पहेली को सुलझाने के लिए है, उन्हें ऋतम्भरा प्रज्ञा (Intuition) से पनपनेवाला अध्यात्म अनुभव बड़ा मूल्यवान् प्रतीत होता है। कोरा बुद्धिवाद मनुष्य को राजा नृग की तरह अन्धकार के गर्त में ले जाकर छोड़ देता है। वही प्रज्ञा के साथ मिलकर न केवल 'ऊर्ध्वमूलमधःशाख' अश्वत्थ की तरह युग-युगान्तर तक टिक सकता है, बल्कि पक्षिराज गरुड की भाँति व्योम में सूर्य से आलोकित प्रदेशों का साक्षात् दर्शन भी कर सकता है।

इस विवेचन से इस बात का कुछ आभास मिलता है कि सत्य और श्रद्धा के साथ जीवन को बाजी लगाकर तत्त्ववस्तु को टटोलने की पद्धति को इस देश में कितना मूल्यवान् माना गया है। अध्यात्म-ज्ञान के पनपने की यही उर्वरा भूमि रही है, जिसके लिए भारतीय दर्शन आज भी जगत् में विख्यात है। इस क्षेत्र की एक विशेषता रही है—विचार की बहुविधता। विचार की सहस्रमुखी प्रवृत्ति के द्वारा ही भारतीय दर्शन ने वैदिक काल से लेकर आज तक अपने पनपने के लिए विशेष अनुकूल परिस्थिति का निर्माण किया है। प्रज्ञा कभी नियमजटित शिकञ्जों के भीतर फूल-फल नहीं सकती, उसको स्ववश विहार के लिए अनन्त क्षेत्र चाहिए। भारतीय मस्तिष्क की विशेषता का अध्ययन करते हुए डा० बैटी हाइमान ने ठीक ही लिखा है कि:—

'In short, the West has elaborated the best systematic framework of thought, while India's natural task is to keep this framework sufficiently elastic to embrace all possibilities of thought, equally those already realised and those not yet foreseen'
[Indian and Western Philosophy, p 26]

अर्थात् 'संक्षेप में हम कह सकते हैं कि विचार करने का जो सर्वोत्तम क्रमबद्ध विधान है, उसका पूर्ण विकास करने में पश्चिमी विद्वान् सफल हुए हैं। किन्तु भारतवर्ष के मनीषियों ने जो ध्येय अपने सामने रक्खा, वह यह था कि मनन करने की स्वाभाविक सरणि या प्रणाली सदा ऐसी लचीली बनी रहे कि उसमें सब प्रकार के भूत और भावी विचारों के पनपने की गुंजाइश हो।'

मनन के आदि युग में ही मेधावी ऋषि ने घोषणा की—

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति ।

ऋग्वेद १।१६४।४६

अर्थात् प्रज्ञावान् मनीषी लोग एक सद्वस्तु का अनेक प्रकार से बखान करते हैं।

ये अमर अक्षर आज भी भारतीय ज्ञान-मन्दिर के तोरण-द्वार पर लिखे हुए हैं। उनका कल्याणप्रद आश्वासन इस ज्ञानमन्दिर के भक्तों का अमोघ स्वातन्त्र्य पद है। वेदों का व्यास करनेवाले भगवान् द्वैपायन कृष्ण ने इसी सत्य को अनेक स्थानों पर दुहराया है—

एकधा च द्विधा चैव बहुधा स एव हि ।
शतधा सहस्रधा चैव तथा शतसहस्रशः ॥

—महाभारत अनुशासन० १६०।४३

भगवान् देवकीपुत्र कृष्ण ने काव्यमय ढंग से इसी बात का समर्थन किया है—

ऋषिभिर्बहुधा गीतं छन्दोभिर्विविधैः पृथक् ।

—गीता

अर्थात् विविध छन्दों में पृथक्-पृथक् ऋषियों ने एक ही तत्त्व का बहुधा बखान किया है। सर्वत्र 'बहुधा' पद महत्त्व-पूर्ण है। अनेक ऋषियों को अनेक प्रकार से तत्त्व का अनुभव हुआ है। सबने अपनी-अपनी प्रतिभा के अनु-सार उसका वर्णन किया है—

भाँति अनेक मुनीसन्ह गाए ।

(तुलसीदास)

उस अज्ञेय रहस्य को 'ठीक ऐसा है' कहना कठिन है—

इदमित्थं कहि जाय न सोई ।

अथवा कवि ने कितनी सुन्दर कल्पना की है कि ज्ञान-रूपी महान् अश्वत्थ की दिग्दिगन्तव्यापिनी शाखा-प्रशाखाओं पर आश्रित सहस्रों पक्षी अपने-अपने संघों में रात-दिन अमृततत्त्व का गान करते रहते हैं। वही ज्ञान विश्वभुवन का पालक है। उसी का एक पक्वकण आज

हमारे अन्दर प्रविष्ट हुआ है।. काव्यमय ढग से उन पक्षियों को 'मध्वद' अर्थात् शहद का चखनेवाला कहा गया है। क्या सत्य ज्ञान के अन्वेषक विश्व के समस्त ज्ञानियों की गिनती इसी प्रकार के मध्वद सुपर्णो मे नही है? अनन्त काल से ये पक्षी विशाल ज्ञान-अश्वत्थ की शाखाओ पर बैठते आये हैं, आज भी अपने-अपने स्वर मे उनका गान जारी है, और आगे भी चलता रहेगा। उनके स्वरो की बहुविधता ही इस सगीत का वास्तविक भूषण है। उसकी सुन्दरता को पहचानने के लिए दृष्टि-कोण ठीक होना चाहिए। कितने व्यक्ति हैं, जो सगीत की नीचे लिखी विशेषता को श्रद्धा के साथ मानते हैं—

सुपर्णं विप्रा· कवयो वचोभिरेकं सन्त बहुधा कल्पयन्ति।

कवि और विप्रो के वचनो मे, चाहे वे इस देश के हो चाहे विदेश के, एक तत्त्व की बहुधा कल्पना सर्वत्र उपलब्ध होती है। इसमे विरोध देखना दृष्टिदोष है। श्रुतियों का 'बहुधा' पद उनके मौलिक समन्वय की ओर हमारा ध्यान खीचता है। इस विश्व के एक छोर से दूसरे छोर तक एक महती प्राणधारा (मधुकण) ओत-प्रोत है। उसी का विकास यह सब कुछ है, उसी के स्वरूप का अध्ययन वैज्ञानिक लोग करते हैं, एव उसी के रहस्य की मीमासा ज्ञानी करते हैं। जब उसका ही चरित अनेक प्रकार का है, तब ज्ञानियों का अनुभव भी अनेक प्रकार का हो, इसमे कौन-सा आश्चर्य है। वे जैसा समझ पाते हैं, वैसा प्रकट करते हैं—

पश्यन्त्यस्याश्चारत पृथिव्या
पृथङ् नरो बहुधा मीमासमाना।

अर्थात् अनेक प्रकार से मीमासा करते हुए ज्ञानी विश्व मे उसके व्यापार की विचित्रता का दर्शन करते हैं। यम ने नचिकेता से कहा है कि अनेक प्रकार से चिन्त्यमान वह तत्त्व अल्पबुद्धि मनुष्यों के लिए बड़ा दुर्ज्ञेय है। सत्य-श्रुति लोग ही उसका अनुभव कर पाते हैं।

यहाँ पर यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या श्रुतियों की और शास्त्रों की बहुविध मीमासा बुद्धि का कौशलमात्र नही है? इस प्रकार के विभ्रम से क्या कभी कोई परिणाम निकल सकता है? इसके उत्तर मे वृत्त और केन्द्र के प्रसिद्ध उदाहरण की कल्पना कीजिए। केन्द्र ही वृत्त और विश्व की समस्त आकृतियों का मूल है। अथवा यों कहें कि यद्यपि नामरूप की दृष्टि से केन्द्र की सत्ता सिद्ध नहीं की जा सकती, फिर भी यथारुचि उससे त्रिभुज, चतुर्भुज, पचभुज आदि आकृतियाँ बनती रहती हैं। यही तो 'एक सन्त बहुधा कल्पयन्ति' वाली प्रक्रिया है। सृष्टि की रचना मे ही इसका मूल अन्तर्निहित है। 'एक बीज बहुधा य· करोति'—अर्थात् सृष्टिकर्त्ता ने एक मूल बीज से बहुविध प्रपञ्च का विस्तार किया है। जब मूल वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है, तो मानव बेचारा उसमे क्या हस्तक्षेप करे? श्रुतियों मे स्पष्ट कहा है कि प्रजापति सृष्टि के गर्भ में रम रहा है। उसके उस स्वरूप को जो केन्द्र की ही तरह है, ज्ञानी लोग देखते हैं। वही बहुत प्रकार से अभिव्यक्त हो रहा है। उसी मे समस्त लोक प्रतिष्ठित हैं—

प्रजापतिश्चरात गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा विजायते।
तस्ययोनि परिपश्यन्ति धीरास्तस्मिन्ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा।

[यजुर्वेद ३१।१९]

आर्य श्रुति ज्ञान अथवा ऋतम्भरा प्रज्ञा के अनुभव वाक्यो के अतिरिक्त अर्वाचीन विज्ञान की साक्षी भी इसी ओर है। प्रकृति के बानवे तत्त्वो का पार्थक्य आज परमाणु के न्यूट्रन, प्रोट्रन, इलेक्ट्रन आदि अणोरणीयान् विद्युत्-अशों की खोज के कारण विलीन होता जा रहा है। सहस्राशु सूर्य की असख्य किरणों और उनके रग-बिरगे चमत्कारो का आपसी भेद भी केवल गणित की कृपा पर अवलम्बित माना जा रहा है। निदान यह कि दृश्यमान जगत् के पीछे एक ही मूल बीज या प्रेरणा काम कर रही है। वही अनेक रूपो मे प्रकट हो रही है। 'एकं बीज बहुधा यः करोति' नियम के अधीन वैज्ञानिक की भी सृष्टि है। जिन ऋत्विजो ने कहा था—'एक व इद विबभूव सर्वम्' वे वैज्ञानिकों के दृष्टिकोण से बहुत दूर हटे हुए नहीं थे।

ऊपर निर्दिष्ट बहुधा-सम्बन्धी दृष्टिकोण को मानने का परिणाम भारतीयो के व्यावहारिक जीवन पर बहुत सुन्दर हुआ है। इसी के कारण यहाँ अद्भुत विचार-सहिष्णुता पनप सकी है। प्रतीत होता है कि गगा का तट चार्वाक से लेकर शकर तक, सबके लिए शीतलवाही है। आकाश से बरसा हुआ जल जैसे समुद्र मे मिल जाता है, वैसे ही चाहे जिस देवता को नमस्कार करो, सब प्रणाम ईश्वर मे जाकर एक हो जाते हैं, यह नितान्त रमणीय भाव है जो विश्व मे अन्यत्र कहीं प्रकट नही हुआ। इसी भाव ने समस्त भारतीय सस्कृति और राष्ट्र को एक अटल समन्वय के सूत्र में सदा के लिए बाँध रक्खा है।

---

* यत्रा सुपर्णा अमृतस्य भागमनिमेष विदथाभिस्वरन्ति।
इनः विश्वस्य भुवनस्य गोपाः स मा धीरः पाकमत्रा विवेश॥
ऋ० १।१६४।२१

पृथ्वी की कहानी

पृथ्वी के शैशवकाल का प्रलयकर दृश्य

जन्म के लाखों वर्ष बाद जब पृथ्वी के ऊपर की पपड़ी जमने लगी, तब उस पर प्रकृति का भीषण ताण्डव आरम्भ हुआ। गली हुई धातुओं के उस धधकते महासागर में ज्वालामुखियों के भयानक उबाल आते थे। ऊपर से पिघली हुई धातुओं और पत्थरों की मूसलाधार अग्निवर्षा होती थी और घनघोर आकाश में दिल दहलानेवाली बिजली कड़कती रहती थी। [देखिए पृष्ठ १५८]
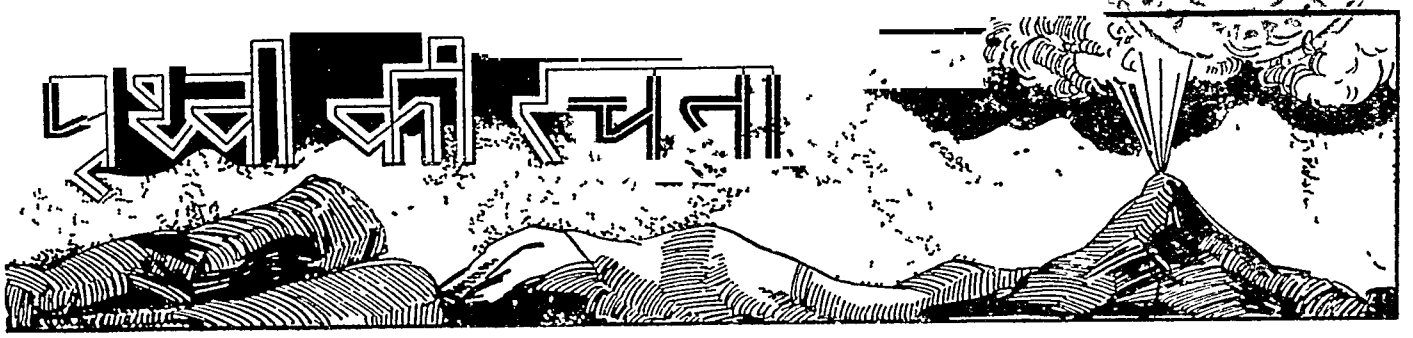
पृथ्वी कहाँ से और कैसे ?
उसकी आरंभिक रूपरेखा

पृथ्वी के संबंध में हमारी अब तक क्या-क्या धारणाएँ रही है और आज का उसका रूप कैसा है, इसका सामान्य रूप से पिछले प्रकरण मे हम विवेचन कर चुके। इस प्रकरण मे हमें देखना है, पृथ्वी कहाँ से और कैसे आई, और उसके शैशवकाल का रूप कैसा रहा।

हमारी पृथ्वी सौर मण्डल का एक अंश है और सौर मण्डल इस अखिल ब्रह्माण्ड मे विचरनेवाले करोडो नक्षत्र-मण्डलो मे से एक है। अनन्त ब्रह्माण्ड मे हमारे सौर मण्डल के सूर्य-सरीखे उससे कई गुना बडे असख्य नक्षत्र तो हैं ही, विशालकाय पुच्छल तारे, सर्पिल नीहारिकाओ की दूर तक पसरी हुई कुण्डलियाँ तथा बडे-बडे उल्का और उल्काकण भी निरन्तर घूमा करते हैं। पृथ्वी सौर मण्डल का ही एक भाग होने के कारण, वैज्ञानिको का विश्वास है कि पृथ्वी का जन्म भी सौर मण्डल के जन्म के साथ हुआ। ज्योतिष या खगोल विद्या के अध्ययन करनेवालो का विचार है कि सौर मण्डल का जन्म एक ऐसे वायव्य पिण्ड से हुआ जो किसी कारण से सूर्य तथा सूर्य से भी बडे एक विशाल नक्षत्र के परस्पर बहुत अधिक निकट आ जाने से उत्पन्न हो गया था। किस प्रकार इस महापिण्ड से सौर मण्डल की सृष्टि हुई, इसके विषय मे वैज्ञानिकों मे मतभेद हैं। लोगो ने कल्पना और तर्क के बल पर अनेको सिद्धान्त बनाये, परन्तु अभी तक कोई निश्चित् सिद्धान्त ठहराया नही जा सका है। भूगर्भ-विज्ञान द्वारा, पृथ्वी के विभिन्न स्तरो की बनावट, खानो के भीतर के अनुभव, ज्वालामुखी पर्वतों का विस्फोट आदि के अध्ययन द्वारा बहुत से वैज्ञानिको ने इस पहेली को सुलझाने की चेष्टा की है, परन्तु आधुनिक विद्वान् सहज ही किसी भी सिद्धान्त को ग्रहण करने के लिए तैयार नही है। उल्कापात के रूप मे जो सदेश हमे अन्तरिक्ष से मिलते हैं, वैज्ञानिक उनके द्वारा भी पृथ्वी और सौर मण्डल के जन्म की कल्पना करना चाहते हैं। कुछ वैज्ञानिको ने यह सिद्ध करने की भी चेष्टा की है कि उल्कापात के द्वारा ही सौर मण्डल की सृष्टि हुई है।

लाप्लेस
सौर मण्डल की उत्पत्ति सम्बन्धी जिसका मत बहुत दिनों तक मान्य रहा है।

लाप्लेस का सिद्धान्त

अठारहवी शताब्दी मे लाप्लेस नामक एक फ्रेञ्च वैज्ञानिक ने यह सिद्धान्त उपस्थित किया कि सौर मण्डल के जन्म से पहले उसके स्थान पर धधकते वायव्य का एक महापिण्ड आकाशमण्डल मे वेग से घूमता हुआ चक्कर लगाता था। यह पिण्ड उस समय इतना लबा-चौडा था कि वर्त्तमान सौर मण्डल के सबसे दूरवाले ग्रह नेपचून के परिक्रमाक्षेत्र से भी बाहर तक पसरा हुआ था। वेग से घूमने के कारण इसके ऊपरी भाग की उष्णता आकाश-मण्डल मे फैल गई और वह ठण्ढा होने लगा। ठण्ढा होने के कारण उसका बाहरी वायव्य पदार्थ घनीभूत होने लगा, परन्तु भीतर का पदार्थ अभी उत्तप्त वायव्य अवस्था

ही मे था। ऊपर का घनीभूत भाग घूमने की गति मे केन्द्रीय भाग का साथ न दे सकने के कारण उससे अलग हो गया। और उसके ऊपर तेजी से उसकी परिक्रमा करने लगा। कालान्तर मे बाहर घूमनेवाली यह वलयाकार कुण्डली एक पिण्ड के रूप मे सिमट गई और केन्द्रीय पिण्ड के चारो ओर पूर्वावस्था मे परिक्रमा लगाने लगी। इस प्रकार उस महापिण्ड से एक-एक करके नौ पिण्ड अलग हो गये, जो सौर मण्डल के ग्रहों के रूप मे—जिसमे हमारी पृथ्वी भी एक है—आज भी केन्द्रीय पिण्ड सूर्य के चारो ओर उसी भॉति परिक्रमा लगा रहे हैं। सूर्य तो अभी तक उसी प्रकार उत्तप्तावस्था मे है, यद्यपि उसकी प्रचण्डता जन्मकाल की अपेक्षा अब कम है, किंतु उसके आसपास चक्कर लगानेवाले ये छोटे पिण्ड या ग्रह अब बहुत ठढे हो गये हैं।

इस मत के अनुसार पृथ्वी एक वायव्य पिण्ड से घनीभूत होकर, तरलावस्था को पार करके, धीरे-धीरे कठोर हुई है। अब भी यह पूर्णतया ठढी नही हो पाई है, केवल इसके ऊपर का पिण्ड, जिस पर हम लोग रहते हैं, जमकर कठोर हो गया है। इसके भीतर अभी तक लावा की भॉति पिघला हुआ पदार्थ भरा है, जो धीरे-धीरे सिकुडता हुआ ठढा हो रहा है। इस मत के अनुसार पृथ्वी का पिण्ड आरम्भ मे इतना बडा न था जितना आज है, वरन् इससे कई गुना बडा—लगभग सूर्य जैसा ही—था।

दो आकाशीय महापिण्डो की टक्कर की कल्पना

एक मत के अनुसार हमारे सौर मण्डल की उत्पत्ति किसी अतीत काल मे ऐसे ही दो महापिण्डों के आपस में टकरा जाने से उत्पन्न नीहारिका मे हुई है।

उल्काओं की उत्पत्ति

लोगो ने बहुत दिनों तक ऊपर के सिद्धान्त पर विश्वास किया और कुछ लोग अब भी इसको ही ठीक मानते हैं। परन्तु थोडे दिनो के बाद वैज्ञानिको ने एक नया सिद्धान्त निकाला। इस सिद्धान्त का प्रतिपादन सर नार्मन लाकयर नामक वैज्ञानिक ने किया। इस सिद्धान्त का मूल तत्त्व यह है कि अखिल ब्रह्माण्ड मे जितने भी पिण्ड हैं, वे सब उल्काओं के बने हुए हैं। अर्थात् आकाशमण्डल मे दिखाई पडनेवाले ग्रह, नक्षत्र, सूर्य, धूम्रकेतु और नीहारिकाये आदि सब पिण्ड उसी प्रकार के उल्कापिण्डो तथा उल्काकणो की धूल से मिलकर बने हैं, जो नित्यप्रति हमारी पृथ्वी पर टूटनेवालों तारो के रूप मे गिरते रहते हैं। इस मत के अनुसार सौर मण्डल का जन्म उल्का और नन्हे उल्काकणों के समूह से मिलकर बने हुए एक विशाल पिण्ड से हुआ है, वायव्य पिण्ड से नही।

इन उल्काओ की उत्पत्ति के विषय मे वैज्ञानिक यह विश्वास करते हैं कि आकाशमण्डल के कुछ पिण्डो के परस्पर टकरा जाने से वे छिन्न-भिन्न होकर ब्रह्माण्ड मे इधर-उधर छिटक जाते हैं। छिटके हुए ये पिण्ड किसी बडे पिण्ड के आकर्षण से उसके अधिक समीप पहुँचकर उसी मे मिल जाते हैं। हमारी पृथ्वी के समीप भी जो पिण्ड आ जाते हैं, वे पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण से इतने वेग से इसमे आ मिलते है कि मालूम होता है कही से टूटकर गिर रहे हैं।

इस सिद्धान्त के अनुसार हमारे सौर मण्डल की उत्पत्ति उल्कापिण्डो से बनी एक नीहारिका से हुई है। दो महापिण्डो के परस्पर टकरा जाने से इतनी भीषण ज्वाला उत्पन्न हुई होगी कि इन महापिण्डो के छिन्न-भिन्न अंशो मे से अधिकाश उसमे गलकर तरल हो गये होगे। कुछ वायव्य रूप मे भी परिणत हो गये होगे और बादल की भॉति छा गये होंगे। परन्तु आकर्षण-शक्ति के वश तरल और वायव्य पदार्थ बडे-बडे पिण्डो से अलग नही हो सके होंगे। वरन् वायव्य पदार्थ ठोस और पिघले हुए पिण्डो को पूर्णतया मण्डित किये होगा और इस प्रकार पूरा पिण्ड वायव्य के महापिण्ड के रूप मे दिखाई पडता होगा। सहस्रों उल्कापिण्डों के वेग से इधर-उधर परस्पर टकराने से तथा रगडने से वेगवती ज्वाला और उससे प्रकाश उत्पन्न होता था, जो सारे वायव्य पिण्ड को प्रकाशित किये था। इस अवस्था मे सहस्रों उल्कापिण्ड रगडकर चूर हो गये होंगे

और इस चूर ने वही काम किया होगा, जो ईंटो की जुडाई मे चूना करता है। अर्थात् बडे-बडे उल्कापिण्डो को एकत्रित करके एक बडे पिण्ड के रूप मे परिणत कर दिया होगा।

उल्कापिण्डों की नीहारिका

टक्कर की पीडा के कारण यह महापिण्ड निरन्तर नाचता रहा होगा और कालान्तर मे सर्पिल नीहारिका के रूप मे परिणत हो गया होगा। नीहारिका का बाहरी भाग ठण्ढा होकर केन्द्रीय भाग से अलग होकर एक पिण्ड के रूप मे सिकुड गया होगा। कहते हैं, इस प्रकार धीरे-धीरे नीहारिका से कई पिण्ड अलग हो गये, जो सौर मण्डल के ग्रहो के रूप मे केन्द्रीय पिण्ड सूर्य के चारो ओर चक्कर लगाते घूमते हैं। एक उल्लेखनीय बात यह है कि पृथ्वी का चिप्पड जिन पदार्थो से मिलकर बना है, वे ही पदार्थ उल्काओ मे भी पाये जाते हैं। वैज्ञानिको का अनुमान है कि मगल आदि अन्य ग्रहो पर भी हमारी पृथ्वी की भॉति ही निरन्तर उल्कापात होता रहता है।

सर्पिल नीहारिका

शक्तिशाली दूरदर्शक से कोटि-कोटि मील की दूरी पर ऐसी कुण्डलाकार नीहारिकाएँ दिखाई पडती हैं। कहते हैं, इसी प्रकार के ज्योतिपुज से हमारे सौर मण्डल और पृथ्वी का जन्म हुआ। [फोटो 'लिक वेधशाला' की कृपा से प्राप्त।]

प्रोफेसर सी नामक वैज्ञानिक ने यह सिद्धान्त ठहराया है कि अखिल ब्रह्माण्ड उल्काओ तथा उल्काकणो की महीन धूल से निरन्तर छाया हुआ है। कभी-कभी ऐसा होता है कि इस धूल का कुछ अंश एकत्रित होकर एक पिण्ड बन जाता है। यह पिण्ड हमे आकाश मे नक्षत्रो के रूप मे दिखाई देता है। उल्काओ तथा उल्काकणो की नीहारिकाये भी आकाशमण्डल मे बनती रहती हैं। इन नीहारिकाओ मे नक्षत्रो-जैसे उल्कापिण्ड भी आकर फॅस जाते हैं। इस प्रकार वेग से घूमती हुई नीहारिकाओ मे उल्का, उल्काकणो की धूल, इनके परस्पर के घर्षण से उत्पन्न वायव्य पदार्थ तथा नक्षत्र-जैसे बडे-बडे उल्का रहते हैं। बडे-बडे विशाल पिण्ड अन्य छोटे पिण्डो को भी आकर्षित कर लेते हैं। इस प्रकार हमारे सौर मण्डल के ग्रह सूर्य की प्रारम्भिक नीहारिका के चक्कर मे आकर फॅस गये, उसी से उत्पन्न नही हुए, और आज भी आकर्षण के कारण सूर्य की परिक्रमा करते रहते हैं।

आधुनिक सिद्धान्त

सौर मण्डल की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे ज़ैफरे नामक वैज्ञानिक ने कुछ वर्ष हुए जो सिद्धान्त ठहराया है, वह अन्तिम हो या नही, परन्तु उसके अनुसार पृथ्वी का जन्म अन्य ग्रहो के समान अतीत मे सूर्य की एक विशाल नक्षत्र से टक्कर होने से हुआ। इस टक्कर के फलस्वरूप सूर्यपिण्ड का तथा दूसरे नक्षत्र का बहुत कुछ अश आकाशमण्डल मे छितरा गया और पीछे से इस छितराये हुए पदार्थ के घनीभूत हो जाने से पृथ्वी आदि ग्रहपिण्डों का जन्म हुआ। आरम्भ मे ये पिण्ड पिघली

हुई दशा मे थे और प्रचण्ड अग्नि से तप्त थे। सर जेम्स जीन्स नामक एक विद्वान् ने कुछ वर्ष हुए गणित द्वारा यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि सौर मण्डल जिस नीहारिका पिण्ड से आरम्भ हुआ है, वह घूमते-घूमते नासपाती की-सी शक्ल का हो गया होगा। नासपाती के अन्य भाग की अपेक्षा नुकीला भाग जल्दी ठण्डा हो गया होगा और सिकुडकर घना हो जाने के कारण नासपाती का साथ न दे सका होगा और टूटकर अलग हो गया होगा। टूट जाने पर भी यह उस बडे पिण्ड के साथ-ही-साथ घूमता रहा होगा। बडा पिण्ड सिकुडकर छोटा होता गया और इस प्रकार यह टूटा हुआ पिण्ड उससे दूर हो गया। साथ-ही-साथ बडे पिण्ड से इस प्रकार कई पिण्ड टूटकर अलग हुए। यही पिण्ड सौर मण्डल के ग्रह हैं और केन्द्रीय पिण्ड सूर्य। जो पिण्ड नासपाती के नुकीले भाग के रूप मे टूट गये थे, वे भी आरम्भ मे पिघली हुई तप्त अवस्था मे थे और बराबर वेग से नाचते हुए केन्द्रीय पिण्ड की परिक्रमा करते थे। कालान्तर म इन पिण्डो की शक्ल भी नासपाती जैसी ही हो गई और फिर इनके नुकीले भाग भी टूटकर इनसे अलग हो गये। ये भाग इन ग्रहों के चन्द्रमा के रूप मे हो गये। हमारी पृथ्वी का भी नुकीला भाग टूटकर इससे अलग हो गया और चन्द्रमा बन गया। इस भाग के टूटने से जो स्थल खाली हुआ, उसमे पृथ्वी के ठंडी हो जाने पर पानी भर गया और गहरा समुद्र बन गया।

सर जेम्स जीन्स

जिनके द्वारा प्रतिपादित सौर मण्डल की उत्पत्ति-सम्बन्धी सिद्धान्त आज दिन प्राय: सर्वमान्य है।

पौराणिक धारणा

इस सम्बन्ध मे हमारी पौराणिक कथा भी बडी महत्त्वपूर्ण है। सृष्टि के आरम्भ में अनन्त भगवान् शेषनाग की कुण्डली पर शयन करते हुए क्षीर सागर मे विचरण करते थे। भगवान् की नाभि से कमल उत्पन्न होता है, जिसके दल चारो ओर फैले हुए हैं। भगवान् के नाभिकमल पर बैठे ब्रह्मा इस विचार में मग्न होते हैं कि मै कौन हूँ, कहाँ हूँ और किसलिए आया हूँ? इतने मे भगवान् के कानों के मैल से दो विशाल शरीरवाले दानव उत्पन्न होते हैं। ये दोनों दानव आपस में लडने लगते हैं और लडकर दोनो मर जाते हैं। उनके शरीर का मैल उसी क्षीर सागर मे बहता है और उसी से मेदिनी बनती है। मगल नामक ग्रह कुछ काल पर्यन्त मेदिनी के पुत्र के रूप मे जन्म लेता है। कालान्तर मे मेदिनी के समुद्र-मन्थन से चन्द्रमा की उत्पत्ति होती है। ब्रह्मा ने मरीचि और भृगु नामक दो मानसिक पुत्र उत्पन्न किये। इनके द्वारा सूर्य आदिक ग्रह उत्पन्न हुए।

पौराणिक और आधुनिक धारणाओं की तुलना

ऊपर जिन वैज्ञानिक सिद्धान्तो का वर्णन किया गया है, उनमे तथा पौराणिक रूपक मे बहुत कुछ सामञ्जस्य है। अनन्त भगवान् को इस अनन्त ब्रह्माण्ड के रूप मे माना जा सकता है। क्षीर सागर दूध-सरीखे उस चमकदार पदार्थ को कह सकते हैं, जो आकाशमण्डल मे नीहारिकाओं और आकाशगगाओ मे देख पडता है। शेषनाग की कुण्डली अनन्त ब्रह्माण्ड मे पसरी हुई नीहारिकाओं की कुण्डली है। कान के मैल से दो दैत्यों का उत्पन्न होना अनन्त देश की किसी गुहा से दो मरे हुए बृहताकार पिण्डों का निकलना हो सकता है। दोनो का टक्कर खाना दोनो का लडना है। लडते-लडते दोनो नष्ट हो जाते हैं और उनके शरीर का मैल एक वायव्य पिण्ड के रूप मे परिणत हो जाता है, जिसे मेदिनी के नाम से पुकारा गया है। इस मेदिनी के मगल ग्रह नामक पुत्र हुआ। कौन कह सकता है कि प्रोफेसर जीन्स की गणना के अनुसार मगल ग्रह भी पृथ्वी की नासपाती-सी शक्ल का नुकीला भाग नहीं है? चन्द्रमा के सम्बन्ध मे तो सभी वैज्ञानिक यह स्वीकार करते हैं कि वह पृथ्वी से टूटकर अलग हो गया है।

वास्तव मे सौर मण्डल की उत्पत्ति कैसे हुई, यह अभी तक कोई प्रमाणित रूप से सिद्ध करने मे सफल नहीं हो सका है। सबने अपनी धारणाओं के अनुसार अपने सिद्धान्त बनाये हैं। हम यह नहीं कह सकते कि ये सिद्धान्त ठीक नहीं हैं, परन्तु तर्क और वास्तविकता की कसौटी पर अभी तक कोई सिद्धान्त पूर्ण रूप से अन्तिम नहीं हो पाया है। हमें इस सम्बन्ध मे यह देखना है कि पृथ्वी की कथा, जो उसकी चट्टानों तथा उसके विभिन्न स्तरों आदि मे प्रकृति की क़लम द्वारा लिखी हुई है, इस सम्बन्ध मे क्या कहती है। भूगर्भ-विज्ञान उसी बात को ग्रहण करने को तैयार
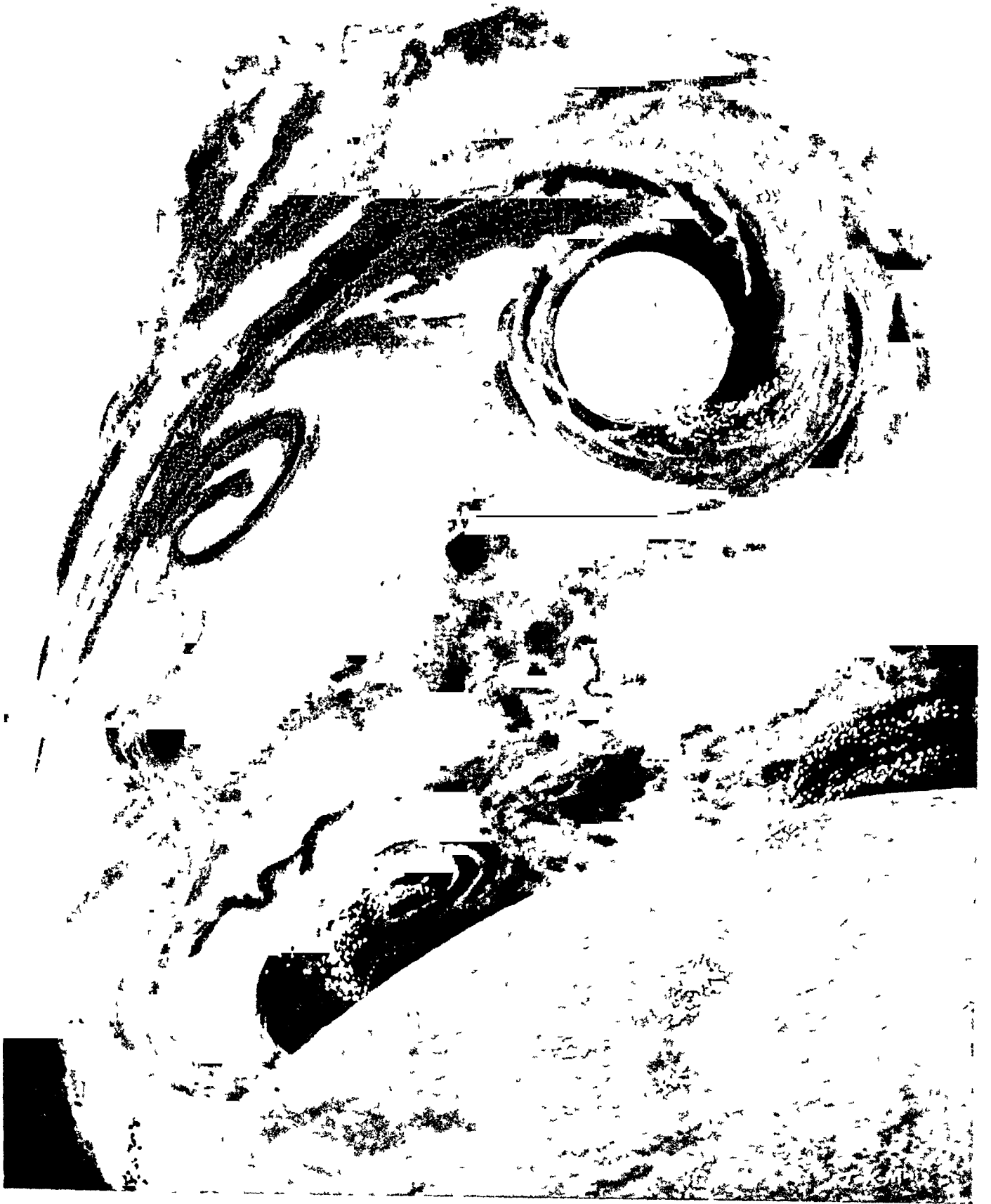
पृथ्वी का जन्म

सुदूर अतीत में किसी नक्षत्र के आकर्षण से सूर्य में से बहुत-सा उत्तप्त वायव्य अंश टूट कर अलग हो गया था। इसी नीहारिका जैसे जलते वायव्य पदार्थ ने चक्कर लगाते-लगाते विभिन्न पिण्डों का रूप ग्रहण कर लिया। हमारी पृथ्वी इन्हीं में से एक थी। इस चित्र में उन दिनों की लपटों से घिरी पृथ्वी के रोमांचकारी रूप की एक झलक है।
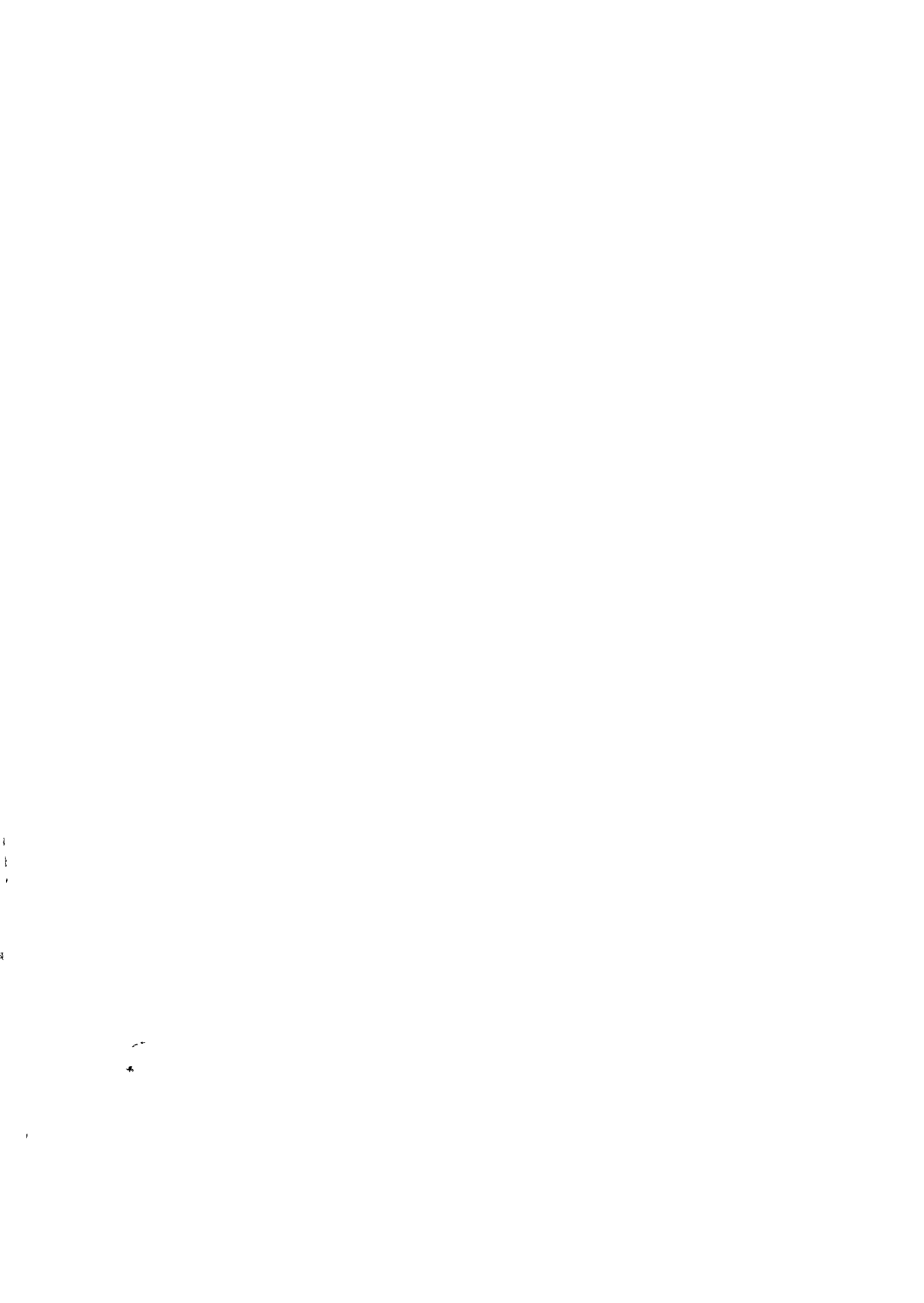
होगा जो उसे धरती स्वय बनायेगी। भूगर्भ-विज्ञान के खोजियो ने तो यही सिद्ध करने की चेष्टा की है कि पृथ्वी चाहे जैसे उत्पन्न हुई हो, एक समय उसकी दशा उत्तप्त लोहे के समान पिघले हुए पदार्थ की-सी अवश्य रही होगी। पृथ्वी जैसी आज हमे देख पडती है, आरम्भ मे वह ऐसी न थी। उस समय न इस पर जीव-जन्तु थे न मनुष्य। वृक्ष आदि का होना भी उस समय असम्भव था। पर्वत, समुद्र, मैदान, घाटियाँ आदि का भी पता न था। वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि जन्म के समय पृथ्वी पिघले हुए पदार्थों का पिण्ड था, जिसको धातु, पत्थर आदि पदार्थों की घनी वाष्प चारों ओर से घेरे हुए थी। इसलिए यह बादल के महापिण्ड के रूप मे अनन्त देश मे भयानक वेग से नाचते हुए सूर्य की परिक्रमा करता देख पडता होगा। सूर्य के चारों ओर वेग से घूमने के कारण इस पिण्ड की उष्णता ब्रह्माण्ड में फैलती जाती होगी और अत्यन्त उत्तप्त यह धधकता बादल धीरे-धीरे घनीभूत होकर सिमिटता जाता होगा।

कहते हैं कि ज्यों-ज्यों इस पिण्ड का पदार्थ घनीभूत होने लगा, इसका आकार गोले के आकार-सा होता गया। जैसे-जैसे इस उत्तप्त महापिण्ड की आँच अनन्त देश मे बिखरती जाती थी, यह ठण्ढा होता जाता था। पत्थर, धातुएँ आदि, जो गैस के रूप मे इस पिण्ड को आच्छादित किये थे, अब द्रव रूप में परिणत होकर इस पर बरसते थे। यह द्रव रबडी के समान, आधी पिघली धातुओं का मिश्रण था।

एक पिघला हुआ आकाशीय पिण्ड

पृथ्वी की आरम्भिक दशा से मिलती-जुलती अवस्था का उदाहरण पृथ्वी से कई गुना बडे बृहस्पति ग्रह के रूप में हमें मिलता है, जो अब भी पिघली हुई दशा में है। [फ़ोटो 'माउण्ट विल्सन वेधशाला' से प्राप्त]

चन्द्रमा का जन्म

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, गणितज्ञों ने यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि इस प्रकार से घूमनेवाला पिण्ड धीरे-धीरे नासपाती की-सी शक्ल का हो जायगा। इस नासपाती का नुकीला भाग नाचने की तेजी मे शेष भाग का साथ न दे सकने के कारण टूटकर अलग हो जायगा। जिस प्रकार नासपाती के नुकीले भाग के रूप मे पृथ्वी सूर्य से अलग हो गई, उसी प्रकार पृथ्वी भी घूमते-घूमते जब नासपाती की-सी शक्ल की हो गई, तो इसका नुकीला भाग भी इससे टूटकर अलग हो गया। यह नुकीला भाग चन्द्रमा के रूप मे अब भी पृथ्वी से सम्बन्धित है। वैज्ञानिको का विश्वास है कि चन्द्रमा को पृथ्वी से अलग हुए लगभग एक अरब वर्ष हो गये। पृथ्वी के इतिहास मे यह घटना बडे महत्त्व की हुई। चन्द्रमा पृथ्वी का ही अंश होने के कारण पृथ्वी के आकर्षण से बँधा हुआ है और स्वय भी पृथ्वी को अपनी ओर आकर्षित किये रहता है। ज्वार भाटा इसी का फल है।

जिस समय चन्द्रमा पृथ्वी से अलग हुआ, उस समय पृथ्वी भयानक वेग से घूम रही थी। सूर्य की परिक्रमा भी पृथ्वी बडे वेग से लगाती थी। उन दिनों पृथ्वी पर बडी-छोटी रातें और दिन होते होंगे। चन्द्रमा भी पृथ्वी के साथ-साथ ब्रह्माण्ड मे घूमता फिरता था। चन्द्रमा के पृथ्वी से अलग हो जाने से पृथ्वीपिण्ड मे लगभग २७ मील गहरा गड्ढा हो गया। कहते हैं कि कालान्तर मे इस मे जल भरने लगा और यह गड्ढा गहरे सागर के रूप मे परिणत हो गया। चन्द्रमा के आकर्षण से पृथ्वी पर भयानक ज्वार आते थे। पृथ्वीपिण्ड का पदार्थ उस समय तक भी घनीभूत नहीं हो पाया था। यह अर्द्ध-द्रव धातुओं और पत्थरों का एक भीषण कड़ाहा-सा था। इस कड़ाहे मे भयानक वेग से उबाल आते थे और इस उत्तप्त रबडी-जैसे पदार्थ को मीलों तक ऊपर उछाल देते थे। चन्द्रमा के कारण जब पृथ्वी पर ज्वार आते थे, तो यह उत्तप्त पदार्थ भीषण लम्बाई-चौडाई और ऊँचाई की लहरों में

विचलित हो जाता था। यही दशा चन्द्रमा की भी रही होगी। परन्तु चन्द्रमा की यह दशा शीघ्र ही समाप्त हो गई। क्योंकि उसका पिण्ड छोटा था, इसलिए वह शीघ्र ही ठण्ढा हो गया।

चन्द्रमा के अलग हो जाने से पृथ्वी के नाचने के वेग मे सुस्ती आ गई। पृथ्वीपिण्ड के पदार्थ मे उस समय भीषण ज्वार आते थे, इसका भी पृथ्वी की नाचने की गति पर प्रभाव पड़ा और उसका वेग धीरे-धीरे कम होने लगा। पृथ्वी का पिण्ड ठण्ढा होने से पिघले हुए पदार्थ गाढे होकर जमने लगे। जिस प्रकार कटाई मे धीमी आँच मे औटनेवाले दूध पर धीरे-धीरे मलाई पडने लगती है और वह धीरे-धीरे गाढी और मोटी होती जाती है, उसी प्रकार पृथ्वीपिण्ड के खौलते पदार्थ के ठण्ढे होने और गाढा होने से उस पर मलाई-सी जमना आरम्भ हुई। यह मलाई की पपडी, जैसे-जैसे पृथ्वी ठण्ढी होती जाती थी, अधिक मोटी होती जाती थी। परन्तु आँच की भयानकता के कारण यह पपडी जमकर कडी नहीं हो पाई।

पृथ्वी की आरम्भिक दशा ठीक उसी प्रकार थी जिस प्रकार इस्पात गलाने की भट्टी मे इस्पात की होती है। इस्पात जब पिघलकर पानी-सा हो जाता है तो उसमे भीषण उबाल आते हैं और धातु बडी उछाल लेने लगती है। धीरे-धीरे यह उबाल आने बन्द होते हैं और मैला ऊपर आने लगता है। मैला हलका होने के कारण ऊपर आकर तैरता रहता है। भट्टी की आँच इतनी भीषण होती है कि यह मैला भी पिघली हुई दशा मे रहता है, परन्तु इस्पात की अपेक्षा इसमे बहने की शक्ति कम होती है। यदि भट्टी को धीरे-धीरे ठण्ढा किया जाय तो मैला जमकर मलाई के रूप मे पिघले हुए इस्पात को ढक लेता है। मैले की पपड़ी, जैसे-जैसे भट्टी ठण्ढी होती जाती है, अधिक छोटी और घनी होती जाती है। परन्तु भीतर की धातु की गर्मी और दबाव के कारण इस पपडी मे दरारें-सी पड जाती हैं और उन दरारों मे नीचे से इस्पात आकर भर जाता है। यदि भट्टी और अधिक ठण्ढी कर दी जाय तो पिघला हुआ इस्पात धीरे-धीरे ठण्ढा होकर जमने लगेगा। इस्पात के पूर्व ही मैला जमकर कडा हो जायगा और ठढा भी हो जायगा। परन्तु मैले की कडी पपडी के भीतर

चन्द्रमा का जन्म

आधुनिक वैज्ञानिकों के अनुसार पृथ्वी से चन्द्रमा का जन्म हुआ है। लगभग एक अरब वर्ष पूर्व पृथ्वी का उत्तप्त गोला घूमते-घूमते नासपाती की शक्ल का होने लगा। उसका उभरा हुआ अग टूटकर अलग हो गया और उसके आसपास चक्कर लगाने लगा। यही हमारा चन्द्रमा है।

इस्पात पिघला हुआ होने के कारण यदि कही पपडी टूट जाय तो पिघला हुआ इस्पात ऊपर आ जाता है। इस भट्टी के इस्पात को ठण्ढा होने और जमने मे कई दिन लगेंगे। धीरे-धीरे मैला तो इतना ठण्ढा हो जायगा कि आप उस पर आसानी से हाथ रख सकते हैं और चढकर घूम सकते हैं परन्तु इसको खोदने पर भीतर गर्मी रहेगी और अधिक खोदने पर बहुत सम्भव है कि किसी स्थान पर यदि इस्पात अभी ठण्ढा न हो पाया हो, तो वह अब भी धधकता-सा दीख पडेगा।

वैज्ञानिको का विश्वास है कि पृथ्वी भी इसी प्रकार धीरे-धीरे ठण्ढी होकर वर्तमान रूप को प्राप्त हो गई है। आरम्भ मे यह भी पिघली हुई धातुओं और पत्थरो का एक भीषण कडाहा-सा था। इस धातु-पिण्ड का मैला ऊपर आकर धीरे-धीरे जमकर कठोर हो गया। यही पृथ्वी के चिप्पड के रूप मे हमे दिखाई देता है। धातुएँ आदि अधिक समय तक पिघली दशा मे रही और इसलिए उनके ठण्ढे होने मे देर लगी। पृथ्वी के गर्भ मे सम्भवत. अब भी ऐसी दशा हो कि यह पिघला हुआ पदार्थ अभी पूर्णतया ठण्ढा न हो पाया हो और धीरे-धीरे ठण्ढा होकर जमकर कठोर बन रहा हो। वैज्ञानिकों ने खोज से यह सिद्ध किया है कि पृथ्वी के चिप्पड का घनत्व पृथ्वी के गर्भ के पदार्थ की अपेक्षा कम है। अर्थात् पृथ्वी का चिप्पड गर्भ के पदार्थ से हलका है। इस विषय का पूर्ण विवेचन हम आगे के किसी अध्याय मे करेंगे। यहाँ यह कह देना पर्याप्त है कि पृथ्वी के गर्भ का घनत्व बहुत कुछ लोहा, इस्पात, निकिल, प्लेटिनम आदि धातुओ के समान है और पृथ्वी के चिप्पड का घनत्व लगभग उतना ही है जितना धातुओ के मैले का अधिकाश होता है। एक उल्लेखनीय बात यह भी है कि पृथ्वी के चिप्पड के पदार्थ मे जो तत्त्व पाये जाते हैं वे अधिकाश मे वही हैं जो धातुओ के गलाने से जो मैला बनता है उसमे पाये जाते हैं। ये बाते इस सिद्धान्त की पुष्टि करती हैं कि आरम्भ मे पृथ्वी की दशा किसी बडी भट्टी मे पिघलती हुई धातु के समान ही थी।

पृथ्वी का चिप्पड किस तरह बना होगा

इसका सजीव उदाहरण हमें आज भी प्रकृति की रसायनशाला में ज्वालामुखियों द्वारा उगले हुए द्रव पदार्थ की सिकुडन और दरारों में मिलता है। इस चित्र में एक बडे ज्वालामुखी की उगली हुई लावा की जमती हुई पपडी का अश दिखाया गया है।

हम ऊपर बता चुके हैं कि जब धातु के मैले की पपडी जम जाती है तो वह चिकनी सपाट नही होती। भीतर धातु के बराबर खौलने से पपडी मे जगह-जगह फफोले और दरारे पड जाती हैं। ये फफोले और दरारे पपडी के ठढी होने और कडी होने पर वैसे ही बनी रहती हैं। दरारो के भीतर धातु आ-कर जम जाती है। वैज्ञानिकों का विश्वास है कि पृथ्वी पर जो निचाई-ऊँचाई, पर्वत-घाटियाँ, तथा सागर और मैदान दिखाई देते हैं ये सब मैले की पपडी के फफोले और दरारों के समान ही बने। पृथ्वी का चिप्पड बिल्कुल मैले के समान ही धीरे-धीरे जमकर कडा हुआ है, इसलिए इसमे भी उसी के समान आरम्भिक फफोले और दरारे बन गईं। कालान्तर में ये फफोले बडे-बडे पर्वतों के रूप में परिवर्तित हो गये और दरारों मे जल भर गया, जिससे नदियों, झीलों और सागरों तथा महासागरों की उत्पत्ति हुई। परन्तु इस अवस्था तक पहुँचते-पहुँचते

विचलित हो जाता था। यही दशा चन्द्रमा की भी रही होगी। परन्तु चन्द्रमा की यह दशा शीघ्र ही समाप्त हो गई। क्योंकि उसका पिण्ड छोटा था, इसलिए वह शीघ्र ही ठण्डा हो गया।

चन्द्रमा के अलग हो जाने से पृथ्वी के नाचने के वेग मे सुस्ती आ गई। पृथ्वीपिण्ड के पदार्थ मे उस समय भीषण ज्वार आते थे, इसका भी पृथ्वी की नाचने की गति पर प्रभाव पड़ा और उसका वेग धीरे-धीरे कम होने लगा। पृथ्वी का पिण्ड ठण्डा होने से पिघले हुए पदार्थ गाढ़े होकर जमने लगे। जिस प्रकार कड़ाई में धीमी आँच में औटने-वाले दूध पर धीरे-धीरे मलाई पड़ने लगती है और वह धीरे-धीरे गाढ़ी और मोटी होती जाती है, उसी प्रकार पृथ्वीपिण्ड के खौलते पदार्थ के ठण्डे होने और गाढ़ा होने से उस पर मलाई-सी जमना आरम्भ हुई। यह मलाई की पपड़ी, जैसे-जैसे पृथ्वी ठण्डी होती जाती थी, अधिक मोटी होती जाती थी। परन्तु आँच की भयानकता के कारण यह पपड़ी जमकर कड़ी नहीं हो पाई।

पृथ्वी की आरम्भिक दशा ठीक उसी प्रकार थी जिस प्रकार इस्पात गलाने की भट्टी मे इस्पात की होती है। इस्पात जब पिघलकर पानी-सा हो जाता है तो उसमें भीषण उबाल आते हैं और धातु बड़ी उछाल लेने लगती है। धीरे-धीरे यह उबाल आने बन्द होते हैं और मैला ऊपर आने लगता है। मैला हलका होने के कारण ऊपर आकर तैरता रहता है। भट्टी की आँच इतनी भीषण होती है कि यह मैला भी पिघली हुई दशा मे रहता है, परन्तु इस्पात की अपेक्षा इसमें बहने की शक्ति कम होती है। यदि भट्टी को धीरे-धीरे ठण्डा किया जाय तो मैला जमकर मलाई के रूप मे पिघले हुए इस्पात को ढक लेता है। मैले की पपड़ी, जैसे-जैसे भट्टी ठण्डी होती जाती है, अधिक छोटी और घनी होती जाती है। परन्तु भीतर की धातु की गर्मी और दबाव के कारण इस पपड़ी में दरारें-सी पड़ जाती हैं और उन दरारों में नीचे से इस्पात आकर भर जाता है। यदि भट्टी और अधिक ठण्डी कर दी जाय तो पिघला हुआ इस्पात धीरे-धीरे ठण्डा होकर जमने लगेगा। इस्पात के पूर्व ही मैला जमकर कड़ा हो जायगा और ठंडा भी हो जायगा। परन्तु मैले की कड़ी पपड़ी के भीतर

चन्द्रमा का जन्म

आधुनिक वैज्ञानिकों के अनुसार पृथ्वी से चन्द्रमा का जन्म हुआ है। लगभग एक अरब वर्ष पूर्व पृथ्वी का उत्तप्त गोला घूमते-घूमते नास्पती की शक्ल का होने लगा। उसका उभरा हुआ अंग टूटकर अलग हो गया और उसके आसपास चक्कर लगाने लगा। यही हमारा चन्द्रमा है।

इस्पात पिघला हुआ होने के कारण यदि कहीं पपडी टूट जाय तो पिघला हुआ इस्पात ऊपर आ जाता है। इस भट्ठी के इस्पात को ठण्ढा होने और जमने मे कई दिन लगेगे। धीरे-धीरे मैला तो इतना ठण्ढा हो जायगा कि आप उस पर आसानी से हाथ रख सकते हैं और चढकर घूम सकते हैं परन्तु इसको खोदने पर भीतर गर्मी रहेगी और अधिक खोदने पर बहुत सम्भव है कि किसी स्थान पर यदि इस्पात अभी ठण्ढा न हो पाया हो, तो वह अब भी धधकता-सा दीख पडेगा।

वैज्ञानिको का विश्वास है कि पृथ्वी भी इसी प्रकार धीरे-धीरे ठण्ढी होकर वर्तमान रूप को प्राप्त हो गई है। आरम्भ मे यह भी पिघली हुई धातुओं और पत्थरों का एक भीषण कडाहा-सा था। इस धातु-पिण्ड का मैला ऊपर आकर धीरे-धीरे जमकर कठोर हो गया। यही पृथ्वी के चिप्पड के रूप मे हमे दिखाई देता है। धातुएँ आदि अधिक समय तक पिघली दशा मे रहीं और इसलिए उनके ठण्ढे होने मे देर लगी। पृथ्वी के गर्भ मे सम्भवतः अब भी ऐसी दशा हो कि यह पिघला हुआ पदार्थ अभी पूर्णतया ठण्ढा न हो पाया हो और धीरे-धीरे ठण्ढा होकर जमकर कठोर बन रहा हो। वैज्ञानिको ने खोज से यह सिद्ध किया है कि पृथ्वी के चिप्पड का घनत्व पृथ्वी के गर्भ के पदार्थ की अपेक्षा कम है। अर्थात् पृथ्वी का चिप्पड गर्भ के पदार्थ से हलका है। इस विषय का पूर्ण विवेचन हम आगे के किसी अध्याय में करेगे। यहाँ यह कह देना पर्याप्त है कि पृथ्वी के गर्भ का घनत्व बहुत कुछ लोहा, इस्पात, निकिल, प्लेटिनम आदि धातुओ के समान है और पृथ्वी के चिप्पड का घनत्व लगभग उतना ही है जितना धातुओ के मैले का अधिकाश होता है। एक उल्लेखनीय बात यह भी है कि पृथ्वी के चिप्पड के पदार्थ मे जो तत्त्व पाये जाते हैं वे अधिकाश मे वही हैं जो धातुओं के गलाने से जो मैला बनता है उसमे पाये जाते हैं। ये बाते इस सिद्धान्त की पुष्टि करती हैं कि आरम्भ मे पृथ्वी की दशा किसी बडी भट्ठी मे पिघलती हुई धातु के समान ही थी।

पृथ्वी का चिप्पड किस तरह बना होगा

इसका सजीव उदाहरण हमें आज भी प्रकृति की रसायनशाला में ज्वालामुखियों द्वारा उगले हुए द्रव पदार्थ की सिकुडन और दरारों में मिलता है। इस चित्र में एक बडे ज्वालामुखी की उगली हुई लावा को जमती हुई पपडी का अश दिखाया गया है।

हम ऊपर बता चुके हैं कि जब धातु के मैले की पपडी जम जाती है तो वह चिकनी सपाट नही होती। भीतर धातु के बराबर खौलने से पपडी मे जगह-जगह फफोले और दरारे पड जाती हैं। ये फफोले और दरारे पपडी के ठढी होने और कडी होने पर वैसे ही बनी रहती है। दरारो के भीतर धातु आ-कर जम जाती है। वैज्ञानिको का विश्वास है कि पृथ्वी पर जो निचाई-ऊँचाई, पर्वत-घाटियाँ, तथा सागर और मैदान दिखाई देते हैं ये सब मैले की पपडी के फफोले और दरारो के समान ही बने। पृथ्वी का चिप्पड बिल्कुल मैले के समान ही धीरे-धीरे जमकर कडा हुआ है, इसलिए इसमे भी उसी के समान आरम्भिक फफोले और दरारे बन गई। कालान्तर मे ये फफोले बडे-बडे पर्वतो के रूप मे परिवर्त्तित हो गये और दरारो मे जल भर गया, जिससे नदियो, झीलो और सागरों तथा महासागरों की उत्पत्ति हुई। परन्तु इस अवस्था तक पहुँचते-पहुँचते

पृथ्वी पर जो अजीब विपत्तियाँ आई, वे उल्लेखनीय हैं।

जब पृथ्वी का पिण्ड इतना ठण्ढा हो गया कि उसके ऊपरी तल पर १२०० दर्जे की आँच रह गई, तो ऊपर की पपड़ी जमकर कठोर होना आरम्भ हुई। जब आँच घटते-घटते ३७० दर्जे तक पहुँची, तो भयानक दबाव के कारण उस समय के वायुमण्डल के जल की वाष्प कुछ-कुछ घनी होने लगी और पानी बनने लगा। ये दिन बड़े ही भीषण थे। सारी धरती गली हुई धातुओं आदि का एक महान् भीषण कड़ाहा था, जिसकी धधकती हुई आँच आकाश मे बहुत ऊँचे तक पहुँचती थी। बिजली कौंध रही थी। बादल कड़क रहे थे। धरती काँप रही थी। ज्वालामुखी उबले पड़ते थे। ज्यों-ज्यों आँच घटती जाती थी, त्यों-त्यो धातुओं के बादल द्रव बनकर बरसने लगते थे। धरती का पदार्थ आधे गले हुए पत्थरों और चट्टानों का बना था और उन्हीं धधकती लपटों के ऊपर पिघली हुई धातुओं और पत्थरों की भयानक अग्निवर्षा होती थी। आँच कुछ नरम होने पर धरती पर जलवर्षा शुरू हुई।

जल बरसते ही भाप बन जाता था और उड़ जाता था। धीरे-धीरे चन्द्रमा के स्थान पर जो गड्ढा हो गया था, उसमें जल भरने लगा। वह जल भयानक रीति से खौलता था। उसका तापक्रम १५० दर्जे से कम न रहा होगा। परन्तु उस समय का वायुमण्डल अत्यन्त घना था और उसके भीषण दबाव के कारण पानी आजकल के १०० दर्जे के बदले लगभग २०० दर्जे पर उबलकर भाप बनता था। जल से वह गड्ढा भरने लगा और उसमें खौलते पानी का भीषण सागर लहराने लगा। बढते-बढते इस सागर ने सारी धरती को ढक लिया। यह जल अत्यन्त उत्तप्तावस्था मे था। इधर भीषण उछाल और लहरें खाता हुआ यह जल पृथ्वी को पीड़ित किये था, उधर मेघ धरती पर निरन्तर छाये रहते थे। लगातार धुँआधार वर्षा होती थी। लाखों वर्ष तक इसी तरह जल के उबलने और बरसते रहने से आँच धीरे-धीरे घटती गई।

धरती के ऊपर चारों ओर जल-ही-जल था। यह जल धरती के बहुत से पदार्थों को अपने में घुलाता जाता था। बहुत से नये पदार्थ भी जमा होते जाते थे। इस प्रकार धरती के पिण्ड के बहुत से भाग का पदार्थ जल मे घुल जाने से वह स्थान खाली हो गया और वहाँ जल भर गया। बहुत-सी जगह जल मे घुल न सकी, इसलिए वह ऊँची रह गई। उस समय अनन्त देश में धरती की आँच बड़ी तेज़ी से बिखरती जाती थी। परन्तु साथ ही सिकुड़ने के कारण धरती के तल की आँच प्रचण्ड होती जाती थी। यह क्रिया आज तक जारी है। परन्तु दोनो क्रियाये उन दिनों की उग्र अवस्था से आज परिमाणत' बहुत घटी हुई हैं।

इस प्रकार धीरे-धीरे जल के ऊपर थल दिखाई देने लगा। उस समय बादल तो धरती पर निरन्तर छाये ही रहते थे और मूसलाधार वर्षा भी होती थी, साथ ही आँधी और तूफान भी बड़े वेग से चलते थे। भूकम्प और ज्वालामुखी अलग पृथ्वी को पीड़ित किये थे। धीरे-धीरे भूकम्प, ज्वालामुखी और जलवर्षा घटी और सूखी भूमि निकलने और कड़ी पड़ने लगी। धरती के निरन्तर सिकुड़ने और जल मे अनेकों पदार्थों के घुल जाने से पृथ्वी नीची-ऊँची और ऊबड़-खाबड़ हो गई। दूध पर की मलाई की तरह का चिप्पड़ कुछ मोटा हो गया। उसके भीतर दहकती हुई आग, पिघली हुई चट्टाने और बिलकुल गर्भ के भीतर की अत्यन्त घनी और उत्तप्त लोहे की वायु भरी हुई रह गई। इसमे अब भी निरन्तर महाभयानक तूफान उठते रहते हैं, जिनसे धरती का ऊपरी चिप्पड़ कहीं-कहीं और कभी-कभी आजकल भी काँप जाता है।

सूखी धरती धीरे-धीरे बढने लगी। जो भाग जल मे घुल नहीं सका, वह जमकर कड़ी चट्टानों के रूप मे रह गया। इन चट्टानों पर निरन्तर वर्षा होने से जल की धाराये बड़े वेग से नीचे की ओर बहती थीं और उसी के साथ-साथ चट्टानें कट-कटकर बालू और मिट्टी के रूप मे समुद्र मे पहुँच जाती थी। कालान्तर मे ये मिट्टी और बालू फिर कड़ी चट्टानों के रूप मे जल के बाहर पर्वत बनकर निकल आते थे। ये क्रियाये आज भी जारी हैं। आगे के अध्यायों में हम बतायेंगे कि किस प्रकार जलवायु, नदियाँ, झीलें, सागर, वायु, जल आदि पृथ्वी के चिप्पड़ को निरन्तर बनाने और बिगाड़ने की क्रिया मे सलग्न हैं, जिससे जल-स्थल का उलट-पुलट निरन्तर होता रहता है।

धरातल का विकास बहुत धीरे-धीरे और अत्यन्त सुदीर्घ काल मे हुआ। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि पृथ्वी पर एशिया या जम्बूद्वीप ही सबसे प्राचीन महाद्वीप है, जिस पर जीवन की सृष्टि आरम्भ हुई। पृथ्वी की जीवनी की लम्बी कहानी को प्रकृति स्वय चट्टानों पर अकित करती जाती है। इसीसे हमें उसका कुछ पता लगता है। इन चट्टानों पर अकित कथा को पढने के लिए इन चट्टानों की बनावट आदि का ज्ञान होना आवश्यक है। यही भूगर्भ-शास्त्र की सबसे पहली सीढी है। आगे के अध्यायों में हम इसी ओर क़दम बढायेंगे।

पृथ्वी गोल है

पिछले अध्याय मे धरातल की वर्त्तमान रूपरेखा का सामान्य रूप से दिग्दर्शन करते हुए हमने कहा था कि पृथ्वी का आकार गोल है, वह चिपटी नहीं है जैसा कि हज़ारों वर्षों से लोग मानते चले आ रहे है। धरातल के स्वरूप का अध्ययन करने के लिए निश्चित रूप से यह जान लेना आवश्यक है कि पृथ्वी का आकार कैसा है और इसके क्या प्रमाण है। इस छोटे-से प्रकरण में इसी विषय पर प्रकाश डाला गया है।

पृथ्वी का धरातल चिपटा नही है, यह कई प्रकार से सिद्ध किया जा सकता है। उदाहरण के लिए अगर हम समुद्र के किनारे पर खडे होकर सामने की ओर जाते हुए जहाज़ को देखे तो पता चलेगा कि पहले-पहल जहाज का पेदा धीरे-धीरे हमारी आँखो से ओझल होने लगता है, पेंदे के बाद जहाज के बिचले हिस्से की बारी आती है और अन्त मे ऊपरी सिरा या मस्तूल भी क्षितिज मे मिलकर अदृश्य हो जाता है। अगर पृथ्वी का धरातल गोल न होकर चिपटा होता तो पहले-पहल जहाज का पेदा हमारी नजर से गायब न होना चाहिए था। वैसी हालत मे, सबसे पतला हिस्सा होने के कारण पहले जहाज का मस्तूल ही आँखो से ओझल होता और पेंदे की बारी अन्त मे आती। जहाज़ का पेदा अदृश्य हो जाने के बाद किसी चट्टान या टीले के सिरे पर चढकर देखने से वह फिर दिखायी पडता है। ये बाते तभी हमारी समझ मे ठीक-ठीक आती हैं, जब कि हम यह मान लेते हैं कि जहाज को जिस धरातल से होकर गुजरना पडता है, उसका स्वरूप सपाट नही वर्तुलाकार है। (देखिए पृष्ठ १६० के चित्र मे न० १)

पृथ्वी के धरातल के वर्त्तुलाकार होने का दूसरा प्रमाण यह है कि धरातल से हम जितना ही अधिक ऊँचा उठते हैं, हमारा क्षितिज भी उतना ही अधिक विस्तृत होता जाता है। अगर हम समुद्र के किनारे खडे होकर अपनी आँखो को पृथ्वी की सतह से ६ फीट की ऊँचाई पर रखते हुए देखे तो हम सामने तीन मील तक देख सकते हैं, परन्तु अगर हम किसी ऐसे टीले पर चढ जाएँ जो पृथ्वी के धरातल से ६६ फीट की ऊँचाई पर हो तो हमे १० मील तक दिखायी दे सकता है। अगर हम और भी ऊँचे चढकर समुद्र के किनारे के धरातल से १८६ फीट ऊँचे किसी प्रकाशस्तम्भ पर खडे होकर सामने नज़र दौड़ाये तो क्षितिज की दूरी १५ मील की मालूम होगी। अधिक ऊँचाई पर चढकर देखने से क्षितिज का बढते जाना वर्त्तुलाकार धरातल मे ही सम्भव है, समतल मे नही।

पृथ्वी के धरातल के वर्त्तुलाकार होने का तीसरा प्रमाण हमे जल के सतह पर किये गये निम्नलिखित प्रयोग मे मिलता है। तीन खम्भो का आपस मे एक-एक मील का अतर देकर जल मे एक पंक्ति मे इस प्रकार रखिए कि जल के ऊपर निकले हुए उनके सिरे लम्बाई मे बराबर हो। अब अगर एक दूरबीन के सहारे इन्हे इस तरह देखा जाय कि पहले और तीसरे खम्भे के सिरे ठीक एक सीध मे हों तो हमे मालूम होगा कि बीच का खम्भा इन दोंनो से बडा है। इसका कारण यही है कि पानी की जिस पट्टी पर ये खम्भे खडे किये गये हैं, उसका धरातल एकदम समतल नही बल्कि वर्त्तुलाकार है। दूसरी कोई बात शका का समाधान नही कर सकती। (देखो उक्त चित्र मे न० ५)

पृथ्वी के धरातल के गोलेपन का एक सबूत यह भी है कि जब कभी भी चन्द्रग्रहण होता है तो चन्द्रमा के ऊपर पृथ्वी का जो प्रतिबिम्ब पडता है वह हमेशा गोलाकार होता है। अगर पृथ्वी का आकार गोला न होकर किसी दूसरे ढग का होता तो चन्द्रमा पर पडनेवाली उसकी छाया भी गोलाकार न दिखलायी पड़ती। (देखो उक्त चित्र मे नं० ३)

पृथ्वी के गोलाकार होने के सम्बन्ध मे यह दलील अक्सर दी जाती है कि कोई आदमी पृथ्वी के किसी भी बिन्दु से रवाना हो और सीधा चलता जाय तो वह पृथ्वी की भी परिक्रमा करता हुआ फिर उसी स्थान-बिन्दु पर पहुँच जायगा। परन्तु इससे यह सिद्ध नही होता कि पृथ्वी का धरातल नारगी की तरह गोल अर्थात् वृत्ताकार है, इससे सिर्फ इतना ही साबित होता है कि यह चिपटी न होकर वर्त्तुलाकर है। अगर पृथ्वी को लौकी की शक्ल का मान ले तो भी यह सम्भव है कि एक निश्चित बिन्दु से यात्रा आरम्भ करके सीधे चलता हुआ व्यक्ति फिर निश्चित बिन्दु पर ही लौट आए।

पृथ्वी के धरातल के गोल होने का सबसे सरल और सबसे बढिया सबूत तो यह है कि क्षितिज के धरातल में हमेशा उतने ही अश के कोण का परिवर्त्तन होता है जितना कि हमे पृथ्वी के धरातल पर एक स्थान से दूसरे स्थान की यात्रा मे लगता है। चाहे हम किसी भी दिशा को या किसी भी स्थान से चलना आरम्भ करे, जितनी दूर हम पृथ्वी की सतह पर चलेगे क्षितिज मे कोण का परिवर्त्तन ठीक उसी के हिसाब से होगा।

चूँकि तारे हमारी पृथ्वी से बहुत ही अधिक दूरी पर हैं, इसलिए यदि पृथ्वी गोल न होकर चौरस होती तो हमारे यात्रा करते समय तारे हमेशा एक ही दिशा मे बने रहते। पर चाहे जिस किसी दिशा मे भी हम यात्रा क्यों न करे, हम देखेगे कि नये नये तारे लगातार हमारी आँखों के सामने आयेगे। यह पृथ्वी की गोलाई का प्रमाण है। (चित्र मे न० ४)। अत मे रिको नामक विद्वान् ने समुद्र पर गोल सूर्य के अण्डाकार प्रतिबिम्ब को देखकर गणित द्वारा अतिम रूप से प्रमाणित कर दिया है कि पृथ्वी का धरातल गोल है, क्योंकि ऐसा होना वर्त्तुलाकार धरातल पर ही सभव है। (देखिए चित्र मे न० २)।
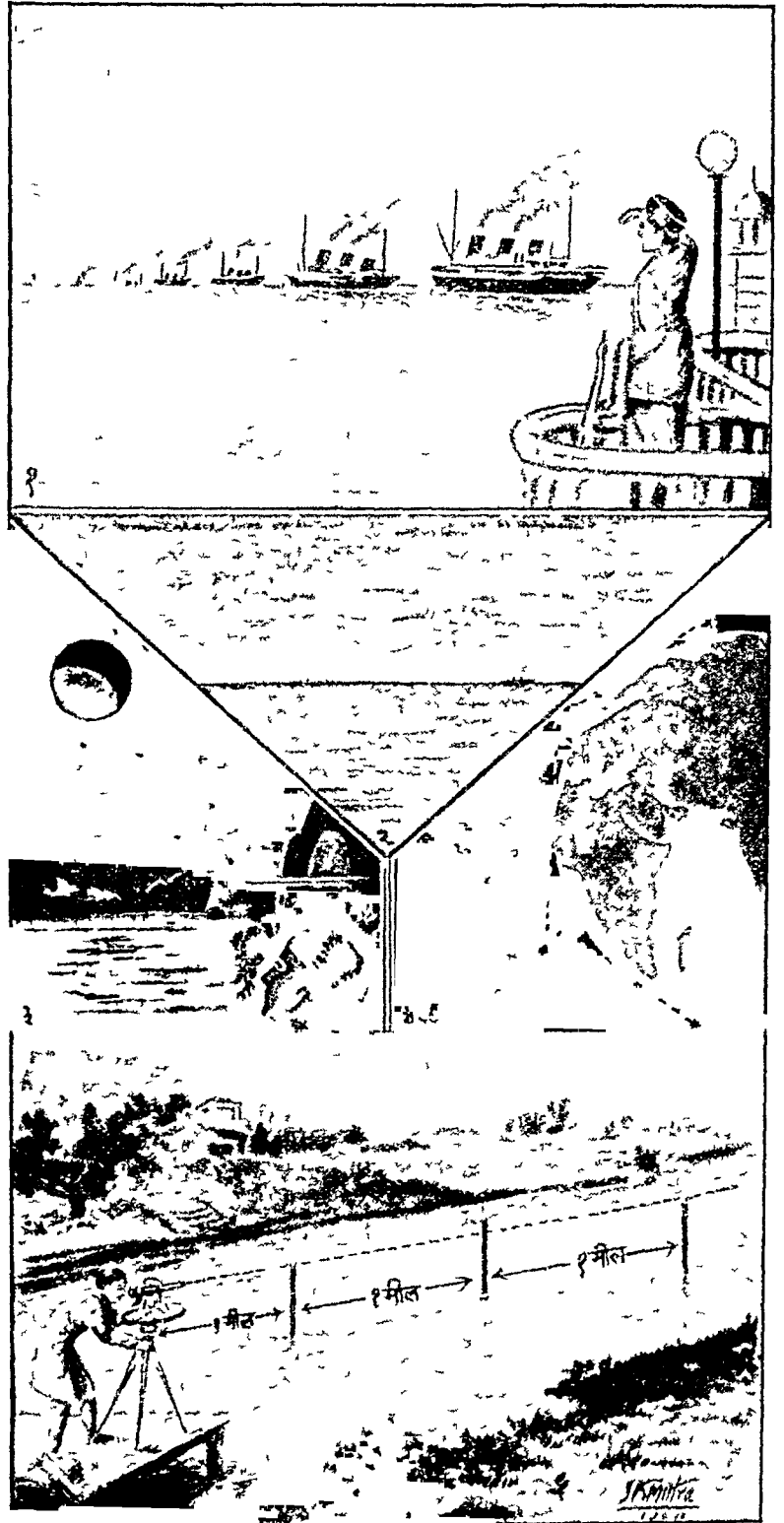
पृथ्वी के गोल होने के कुछ प्रमाण (देखिए पृष्ठ १५६-१६०)
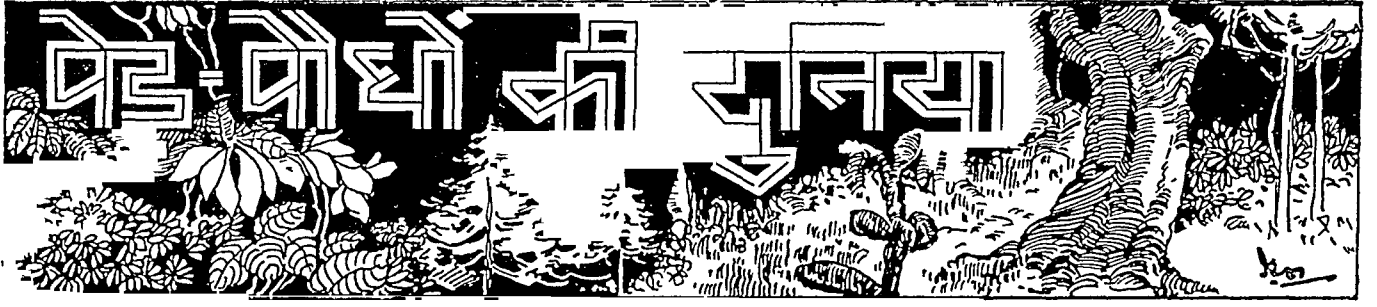
वनस्पति-संसार और उसके मुख्य भाग

पेड़-पौधों से हमारा सम्बन्ध

पिछले प्रकरण में वर्णन किया जा चुका है कि दूसरे जीवों की भाँति पेड भी सजीव हैं। इनमें भी खाने-पीने, बढ़ने और सन्तानोत्पादन की सामर्थ्य है। इस प्रकरण में आप देखेंगे कि पशुओं की भाँति इनमें भी अनेक जाति-उपजातियाँ हैं—इनमें भी कुटुम्ब और परिवार है।

वनस्पति-जगत् का विस्तार

पेड़-पौधों की दुनिया का प्रसार अत्यन्त विस्तीर्ण है। पृथ्वी पर करोडो पेड हैं। अब तक हमे लगभग तीन लाख जाति के पेडो का पता लग चुका है और दिन पर दिन नये-नये पौधो का पता लगता है। आकृति की समानता और विभिन्नता तथा जीवन-प्रणाली के अनुसार इन्हे अलग-अलग भागो मे पृथक् किया जाता है।

सबसे पहले लोगो का ध्यान साधारण पौधो की ओर ही आकर्षित हुआ। उन्होने देखा कि कितने ही पेड हैं जो अत्यन्त दृढ, बहुत ऊँचे और सैकडों क्या हजारों वर्ष जीवित रहनेवाले हैं। इसके विपरीत कितने ही पौधे अत्यन्त कोमल, नन्हे और अल्पायु होते हैं। इसी अन्तर के आधार पर उन्होने पौधो के बूटे (Herbs), झाड (Shrubs) और वृक्ष (Trees) ये तीन भेद माने।

बूटियों की शाखायें कटीली नही होतीं और इनका आकार भी बहुधा कुछ इचो से अधिक नही होता। इनमे से अधिक तो एक या दो मौसम के ही मेहमान होते हैं। कोई-कोई तो, जिन्हें अल्पायु बूटे (Ephemeral Herbs) कहते हैं, चद सप्ताहो मे ही अपनी जीवन-लीला का नाटक समाप्त कर देते हैं। ऐसे पौधे मौसम मे दो-तीन बार उगने और फूल-फल देने के बाद समूल नष्ट हो जाते हैं। कुछ वर्षीय (annual) बूटे हैं। ये मौसम मे एक बार उगते हैं और कई महीने तक जीवित रहने के बाद फिर बीज और फल को छोड विलीन हो जाते है। हमारी खेतीबारी के अनेक पौधे - गेहूँ, चना, तरोई, करेला, तथा बहारी पौधे, जैसे फ्लाक्स (*Phlox*), पेटूनिया (*Petunio*), गुलमेहदी (देखो चित्र १) इत्यादि इसी भाँति के हैं। इसी तरह कुछ द्विवर्षीय (biennial) पौधे होते हैं और कुछ ऐसे जो किसी-न-किसी प्रकार कई वर्ष तक जीवित रहते हैं। ये बहुवर्षीय बूटे हैं। बहुवर्षीय बूटो की वायुवर्त्ती शाखे कोमल होती हैं, परन्तु जमीन के अन्दर के भाग, चाहे जड़ हों या तने, कठीले होते हैं। अदरक, हल्दी, कैना, जिमीकन्द

चित्र १—गुलमेहदी
वर्षा ऋतु का एक फुलवाडियों का पौधा।
[फोटो—श्री राजेन्द्र वर्मा सिठोले]

चित्र २—जिमीकन्द या सूरन
इससे प्राय: सभी परिचित होंगे। यह कद के लिए लगाया जाता है। [फोटो—श्री रा० व० शिठोले]

चित्र ३—सावनी
गुलाबी और सफेद फूलोंवाले इस झाड को प्राय: बगीचों में किनारे-किनारे लगाते हैं। [फोटो—श्री रा० व० शिठोले]

या सूरन (देखो चित्र २) आदि की इन्ही मे गणना है।

झाड और वृक्ष दोनो ही के तने और शाखे कठीली होती हैं और इसलिए ये सर्दी-गर्मी सहन कर सकते हैं। ऐसे पौधे वर्षों जीवित रहते हैं। झाड वृक्षो से छोटे परन्तु बूटे से बडे होते हैं। चॉदनी, सावनी (देखो चित्र ३), गुलाब, अनार, अगूर, मेहदी जैसो की गिनती झाड मे है।

वृक्षों के सम्बन्ध मे कदाचित् अधिक बताने की आवश्यकता न होगी। आम, जामुन, नीम, सागौन, देवदार, बरगद, सेमर, गुलमोहर (Gold Mohar) (देखो चित्र ४) जैसे अनेक पेडों से आप परिचित हैं। इनमे से कई तो सैकडों फीट ऊँचे और हजारों साल जीनेवाले हैं। कैलीफोर्निया के सिक्रोया (*Sequoia gigantia*) के सम्बन्ध मे, जो चीड और देवदार के भाई-बन्धुओ मे है, कहा जाता है कि इस जाति के कुछ पेड चार हजार वर्ष से भी अधिक आयुवाले हैं। अमेरिका मे इसी समूह का टैक्जोडियम (*Taxodium mucronatum*) नामक एक पेड है, जिसकी आयु का अनुमान पॉच हजार वर्ष से भी अधिक किया जाता है। इस पेड के तने का घेरा ५० फीट से भी अधिक है। हमारे देश के पेडों मे देवदार, बरगद, सेमर और सागौन बहुत आयुवाले होते हैं।

उद्भिज जगत् के चार मुख्य भाग

उपर्युक्त वर्गीकरण सबसे पुराना अवश्य है, परन्तु यह पौधो की रचना तथा समानता आदि से कुछ सम्बन्ध नही रखता। इसकी नींव पेडो की आयु तथा डीलडौल पर ही है, उनके यथार्थ लक्षणों पर नही। इसलिए जैसे-जैसे वनस्पति-विज्ञान की उन्नति हुई, इसमे लोगो को दोष दिखाई देने लगे। अब वे अधिक दिनों तक दुनिया के तमाम पेडों को इन तीन मनमाने खण्डों मे विभक्त कर सन्तुष्ट न रह सके। उन्होंने भॉति-भॉति के पेडों की रचना और जीवन का अध्ययन किया और उन्हे नीचे दिये चार मुख्य भागो मे अलग किया।

सपुष्पक पौधे—नग्नबीज और गुप्तबीज

सबसे पहली श्रेणी में आम, गुलाब, सेब, मटर, घास, बॉस, चीड, देवदार जैसे हजारों पेड हैं। इनमे जड, तना, पत्ती, फूल, फल और बीज, सभी अग स्पष्ट हैं। इन्हे सपुष्पक अथवा फूलवाले (Flowering) पौधे कहते हैं। फूलों और बीजों का होना इनकी विशेषता है (देखो चित्र ५)। नग्नबीज (Gymnosperms) और गुप्तबीज या छिपे बीज (Angiosperms) इनके दो भाग हैं।

नग्नबीज के फल प्राय: शुण्डाकार (Cone) होते हैं (देखो चित्र ६)। इनमे बीज खुले रहते हैं (देखो चित्र ७)। इस समूह के प्रायः सभी पेड बहुवर्षीय, सदापत्री (evergreen) तथा कठीले होते हैं। इनकी लगभग ५०० जातियॉ हैं। चीड़ (देखो चित्र ८), देवदार,

चिलगोज़ा, सरो, सिकोया, टैक्ज़ोडियम आदि इन्ही मे हैं। इस जाति के पौधे से लोबान, तारपीन, लकडी आदि कई जरूरी चीज़े मिलती हैं।

गुप्तबीज (Angiosperms) मे रजोबिन्दु, जो पकने पर बीज हो जाते है, गर्भाशय मे बन्द होते हैं (देखो चित्र ६)। इनमे अनेक प्रकार के पेड हैं। अब तक लगभग दो लाख जाति के गुप्तबीज पौधो का पता लग चुका है। बनावट और रहन-सहन के अनुसार इनमे कई भेद हैं। निःसन्देह इस जाति के पौधो से ही हमारा अधिक प्रयोजन रहता है। वन, उपवन, खेत, ऊसर, तडाग, मैदान, पर्वत-घाटी आदि सभी स्थानों मे यही पेड दिखाई देते हैं। सच बात तो यह है कि वर्त्तमान काल मे उपयोगिता तथा प्रधानता के विचार से वनस्पति संसार मे सबसे गौरवपूर्ण यही पेड हैं। इस समूह के पौधो के डील-डौल मे बडा अन्तर है। कुछ वुल्फिया *(Wolffia)* (पानी मे रहनेवाली एक प्रकार की बूटी, जिससे हम "काई" कहते हैं, और जो वर्षा ऋतु में पोखरों मे होती है) जैसे अलपीन के मत्थे से भी छोटे होते हैं (देखो चित्र १०), और कुछ बरगद, सेमर, सागौन, यूकैलिप्टस *(Eucalyptus)* जैसे सैकडों फीट ऊँचे होते हैं। आगे चलकर हम फूलवाले पौधो के विषय की अनेक बातों पर विचार करेंगे।

चित्र ४—गुलमोहर वृक्ष

इस वृक्ष मे लाल रग के सुहावने फूल आते हैं। [फोटो—श्री रा० व० शिठोले।]

टेरीडोफ़ायटा, पर्णांग और उनके भाई-बन्धु

वनस्पति जगत् की दूसरी श्रेणी मे टेरीडोफायटा (Pteridophyta) हैं, जिनको आपने कदाचित् फुलवाडियों और पहाड पर देखा होगा। इनमे पर्णांग

चित्र ५—गुलमोहर का फूल

[फोटो—श्री विद्यासागर शर्मा]
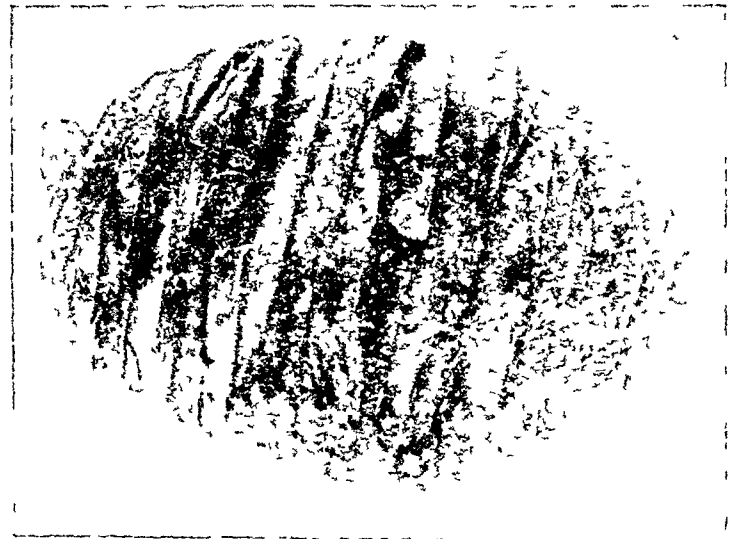
चित्र ६—देवदार का शुण्डाकार फल (Cone)

[फोटो—श्री वि० सा० शर्मा।]

चित्र ७—कुछ नग्नबीजी पौधो के बीज

इनमें बीज गर्भाशय के अदर बन्द नहीं हैं। ऊपर की पंक्ति में बाईं ओर से पहला साइकस (Cycas), दूसरा यनसिफॅलार्टस (*Encephalartus*) और तीसरा जेमिया (*Zamia*) है। नीचे के तीन चित्रों में पहले देवदार के कोन स्केल के साथ बीज दिखाये गये हैं दूसरे में आधा कोन-स्केल तोड दिया गया है और तीसरे में बीज अलग दिखाये गये हैं। [फोटो - श्री वि० सा० शर्मा।]

चित्र ८ चीड का पेड

इस चित्र में वृक्ष का सिरा ही दिखाया है।

(Fern) (देखो चित्र ११) और उनके भाई-बन्धु इक्वीजीटम (*Equisetum*), सिलैजीनेला (*Selaginella*) (दे० चित्र १२), लायकोपाड्स (*Lycopods*) आदि हैं। पर्णाङ्ग नि.सन्देह आपके बगीचो मे होंगे। इनकी पत्तियॉ बडी सुन्दर और मनोहर होती हैं। इसी कारण लोग इन्हे वाटिकाओ मे लगाते हैं। ये छाया और तरी के पौधे हैं। हिमालय व दक्षिण के पश्चिमी घाट और नीलगिरि पर्वत के जगलों मे ये अधिकता से होते हैं। दार्जिलिंग, शीलाग, नैनीताल और उटकमड जैसे स्थानों पर तो आपने सैकडों जाति के पर्णाङ्ग देखे होंगे। मैदान की लू और गर्मी ये नही सह सकते, इसलिए इन्हें यहॉ जीवित रखने के लिए इनकी ओर विशेष ध्यान देना पड़ता है। फलवाले पेडो की तरह इनमे भी जड, तना और पत्ते स्पष्ट होते हैं, परन्तु फूल, फल या बीज नहीं होते। सम्भव है, आपको इस पर कुछ आश्चर्य हो कि जब इनमे बीज नहीं होते तो बीजो का काम कैसे होता है? इन पौधों की उत्पत्ति कैसे होती है? इस विषय मे इन पौधों की जीवन-लीला अनोखी है। इनमे बीजों का काम रेणु (Spore) से होता है। अगर आप किसी भी साधारण पर्णाङ्ग की पत्तियॉ ध्यान से देखे तो एक न एक समय इनकी पीठ पर आपको नन्हें-नन्हें भूरे या हल्के हरे रग के बहुत दाने मिलेंगे (दे० चित्र १३)। खुर्दबीन से देखने पर आपको यहॉ पर एक ढक्कन के नीचे छोटी-छोटी अनेक डिबियॉ (Sporangia) मिलेंगी, जिनके अन्दर आपको एक प्रकार की धूल-सी वस्तु मिलेगी। यही धूल स्पोर्स हैं (दे० चित्र १४)। इन पेडो मे यही बीज का काम देते हैं। अन्य फर्न और उनके भाई-बन्धुओं मे भी स्पोरैंजिया और स्पोर होते हैं। इस श्रेणी के पौधे वर्तमान काल मे डीलडौल मे बहुत छोटे होते हैं और कुछ वृक्ष-पर्णाङ्गों (Tree Ferns) को छोड तीन या चार फीट से अधिक ऊँचे नही होते, परन्तु आज से करोडो वर्ष पूर्व डेवोनियन काल (Devonian Age) मे, जब इस जाति के पेडों की सख्या अधिक थी, इनमे से कोई-कोई सैकडों फीट ऊँचे होते थे। उस समय इन्हीं का राज्य था। कार्बनकाल (Carboniferous Age) मे भी बहुत से पर्णाङ्ग थे और साथ-साथ पर्णाङ्ग जैसे और भी अनेक पेड थे जिनमे बीज होते थे। हमारी खानो का कोयला इन्ही की बदौलत है। परन्तु अब ये पेड कहॉ हैं? विश्व परिवर्त्तनशील है। प्रकृति मे दिन प्रतिदिन परिवर्त्तन होते रहते हैं। करोडों वर्ष की बात है, पृथ्वी पर महान् परिवर्त्तन हुए। ये पेड अपनी रचना को परिस्थिति के अनुकूल न बना सके और इसीलिए जीवनसग्राम में पराजित हो असफल रहे। अब इनके केवल जीवावशेष (Fossils) रानीगज तथा अन्य स्थानों में रह गये हैं। लायकोपोडियम (*Lycopodium*)

चित्र ६—गुप्तबीज पौधो के कुछ फल

साथ-साथ फल को बीच से फाडकर बीज दिखला दिए गये हैं। चित्र ७ से तुलना कीजिए। इस चित्र में क्रमशः बाईं ओर से दाहिनी ओर को सेम, भिण्डी, मटर और लाल मिर्च तथा उनके बीज दिखाये गये हैं। [फोटो—श्री वि० सा० शर्मा ।]

चित्र १०

वुल्फिया

यह पानी का एक उद्भिज् है। यह चित्र खुर्दबीन की सहायता से लिया गया है। पौधे का आकार चित्र के अन्दर के सफेद चिह्नों से प्रायः कुछ ही बड़ा होगा। [फोटो—श्री वी० सा० शर्मा]

और इक्वीज़ीटम (*Equisetum*) भी एक प्रकार से पतन की ओर ही जा रहे हैं। असम्भव नही कि समय के चक्र मे ये भी विलीन हो जायँ। इन पौधों की कहानी बडी रोचक है और आगे चलकर इनके सबंध मे कुछ साधारण बातों का वर्णन किया जायगा।

नलिकायुक्त और नलिकाहीन पौधे

आप देखते हैं कि पूर्वकथित दोनों ही श्रेणी के पौधो मे जड, तना और पत्ती स्पष्ट होती हैं। इनके हर एक हिस्से मे नसे (Veins) अथवा नलिकाये हैं, जिनमे होकर खाद्य रस का सचार होता है। इन नसों को हम पत्तियों में सरलता से देख सकते है (दे० चित्र १५)। यही नली इनको दृढ बनाती हैं और इनमे पशुओं की नसो और अस्थिपञ्जर (Skeleton) का काम देती हैं। इन दोनों श्रेणी के पौधों को नलिकायुक्त (Vascular) पौधे कहते हैं। इनके अलावा आपने कुछ ऐसे पौधे भी देखे होंगे, जिनमे नसे नही होती। इन्हें हम नलिकाहीन (Non-vascular) या बिना नसो के पौधे कह सकते हैं। वनस्पति जगत् मे इनका वही स्थान है जो जन्तु जगत् मे पृष्ठवंश-विहीन (Invertebrate) पशुओं का है। शेष के दो समूह ब्रायोफायटा (Bryophyta) और थैलोफायटा (Thallophyta) इसी तरह के हैं। इनकी बनावट बडी सरल होती है।

चित्र ११—नेफ्रोलीपिस, एक पर्णाङ्ग

[फोटो—श्री वि० सा० शर्मा ।]

ब्रायोफायटा—मॉस और लिवरवर्ट

ब्रायोफायटा (Bryophyta) मे मॉस (Moss) (दे० चित्र १६-१७) और लिवरवर्ट (Liverwort) (दे० चित्र १८) दो विभेद हैं। मॉस समूह के समस्त जाति के पौधों मे और कुछ लिवरवर्ट मे पत्तियाँ होती हैं और जडो के स्थान पर महीन रोयें होते हैं, परन्तु इनमे और साधारण पेडों की पत्तियों मे बडा अन्तर होता है। कुछ लिवरवर्ट की बनावट मे पत्तियो आदि का अन्तर नहीं होता। इनके पौधे फीते या पत्ती जैसे इंच दो इंच के या इससे भी छोटे होते हैं। ऐंजियोस्पर्म्स और टेरीडोफायटस की भाँति इस समूह के पौधे भी स्थलवासी होते हैं, परन्तु तरी और छाँह के
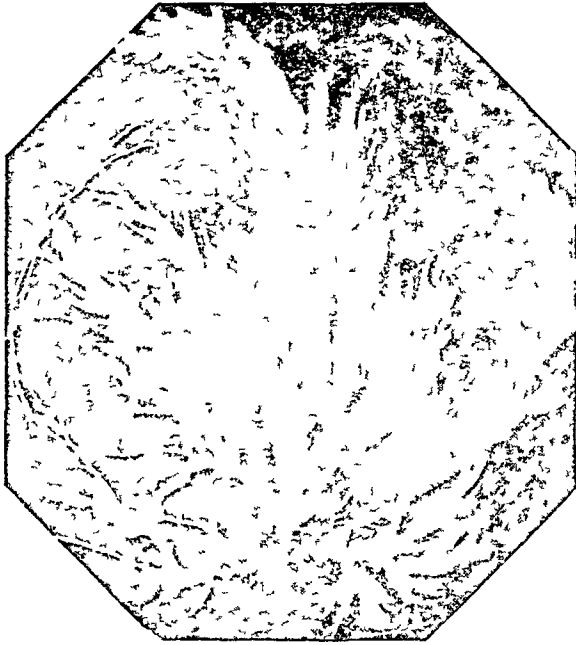
चित्र १२—सिलैजीनेला
[फ़ोटो—श्री वि० सा० शर्मा ।]

चित्र १३—नेफ्रोलीपिस की पत्रक
यह फुलवाड़ी के एक साधारण पर्णाङ्ग नेफ्रोलीपिस की पत्रक का पृष्ठ की ओर से लिया गया फोटो है। इसमें नन्हें-नन्हे काले दाने सोराई (स्पोरेंजिया का समूह) हैं, जिनके अंदर ढक्कन से सुरक्षित स्पौरंजिया होती हैं। बाईं ओर के सबसे नीचे के दाने से ढक्कन हटा दिया गया है। स्पोरेंजिया दिखाई दे रही है।
[फ़ोटो—श्री वि० सा० शर्मा ।]

प्रेमी। पर्णाङ्ग की भाँति इनके भी बीज नहीं होते और बीज का काम स्पोर से ही होता है। हमारे देश मे यह बूटे अधिकतर पहाड़ों पर ही उगते हैं। वर्षा के दिनों मे यहाँ पर यह सोतों और चश्मों के किनारे, पानी की धाराओं के निकट, पेडों की डालो व चट्टानों पर अधिकता से मिलते हैं। इनमे से कोई-कोई, विशेषकर कुछ मॉस, तो इतने घने उगते हैं कि जिस स्थान पर ये उगते हैं उसको अच्छी तरह ढक लेते हैं। पूर्वी हिमालय तथा पश्चिमी घाट के कई स्थानों पर, जहाँ साल मे १०० इच से अधिक वर्षा होती है, इस जाति के कुछ पौधे अन्य पेड़ों की पत्तियों पर भी उगते हैं। आर्थिक विचार से इस समूह के पौधे हमारे किसी भी काम के नही, लेकिन विवर्त्तन (Evolution) की दृष्टि से या पौधों की गुप्त लीलाओं को जानने के हेतु इनका स्थान अत्यन्त गौरवपूर्ण है। समय आने पर इनके गोपनीय रहस्यों पर प्रकाश डाला जायगा।

थैलोफायटा—शैवालादि, छत्राक और बैक्टिरिया

पेड़-पौधों की अन्तिम श्रेणी मे थैलोफायटा (Thallophyta) हैं। इस समूह के पेड़ों की बनावट बडी ही सरल होती है। न जड़, न तना, न पत्ती अथवा फूल-फल। कोई भी अग स्पष्ट नहीं, फिर भी खाते-पीते और जीवों की सभी लीलाएँ करते हैं। समुद्र-शैवाल (Seameeds) (देखो चित्र १६) तथा अन्य शैवाल (Algæ) तथा छत्राक (Fungi) और बैक्टिरिया (Bacteria) इसी समूह के हैं।

शैवालादि (Algæ)

आपमे से जिन्हे समुद्र के किनारे घूमने का अवसर मिला है, उन्होने कभी-कभी लाल, भूरे, हरे रग के कुछ बूटे पानी के अन्दर चट्टानो से चिपटे अवश्य देखे होगे। इनमें से अधिकतर शैवालों मे से होते हैं। हमारे पास-पडोस के तालाबों व नदियों तथा नालियों मे जो आप हरी-नीली कितनी ही जाले-सी काइयाँ देखते हैं वे भी इन्ही मे हैं। (देखो चित्र २०-२१)। वर्षा मे तो आसपास की दीवालों, पेड़ों और गुसलखानो व गमलों अथवा सडकों पर हरे-नीले रग की अनेक काइयाँ जम जाती हैं। तालाबों व पोखरो में जो आप कभी-कभी हरा पानी देखते हैं, वह भी बहुधा इस जाति के आँख से ओझल बहुत छोटे जीवो की उपस्थिति के ही कारण होता है। क्लैमाइडोमोनस *(Chlamydomonas)* नाम का उद्भिज् इनमे से एक है (देखो चित्र २२)। यह कितना छोटा होता है, आप आसानी से अनुमान नहीं कर सकते। एक बूँद पानी मे इसके असंख्य तैरते रहते हैं। कैसी निराली रचना है!
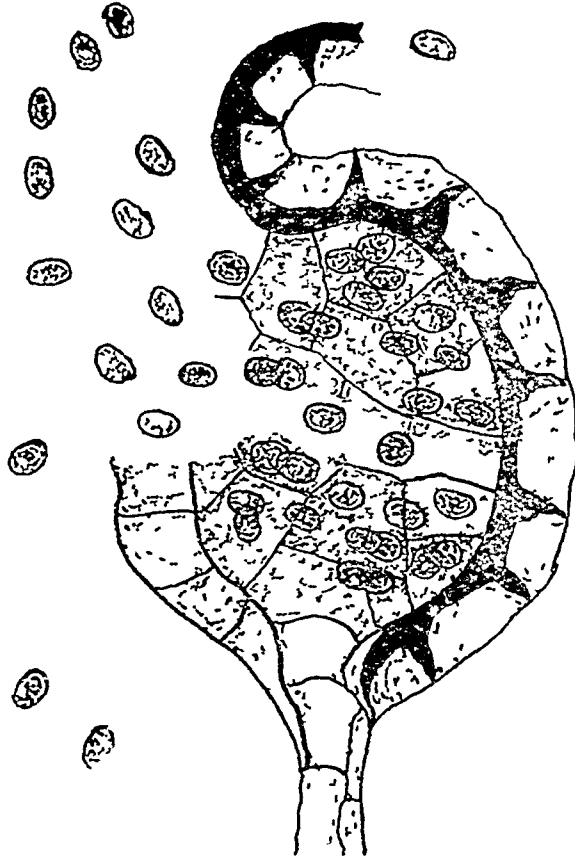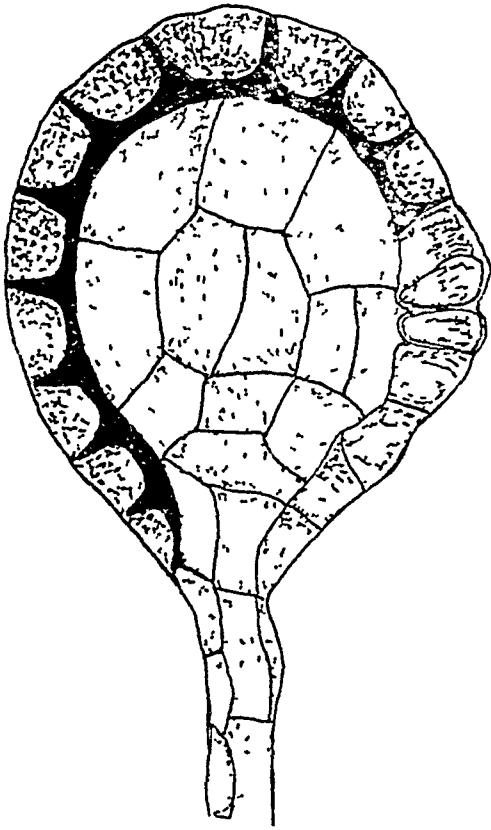
चित्र १४—स्पोरेंजिया और स्पोर्स

बाईं ओर परिपक्व स्पोरेंजियम है जो अभी चिटकी नहीं है। दाहिनी ओर चिटकी हुई स्पोरेंजियम का चित्र है। स्पोर्स या रेणु दूर-दूर बिखर रहे हैं। [चित्र—लेखक द्वारा]

फिर भी इसकी जीवनकला उतनी ही निपुण है, जितनी किसी अन्य पौधे की। समय आने पर हम इस अनोखी सृष्टि की कहानी भी बयान करेंगे।

छत्राक (Fungi)

ऊपर वर्णित काइयों के अलावा धरती के फूल (देखो चित्र २३), कुकुरमुत्ते, गुच्छी (*Morchella*), गगनधूलि (Geaster), फफूँदी, यीस्ट (Yeast), जिनकी गिनती छत्राक में है, तथा बैक्टिरिया भी थैलोफायटा में हैं। बरसात में सड़ती हुई लकड़ी, फल व अन्य वस्तुओं पर अथवा मल या गोबर, खाद आदि के ढेर पर आपने अनेक छत्राक देखे होंगे। इस जाति के बूटे बिना किसी के सहारे अपना जीवन-निर्वाह नहीं कर सकते और अन्य वृक्ष, जानवर, अथवा सड़ी-गली चीजों पर ही इनका जीवनाधार है। कितने ही परोपजीवी (Parasitic) छत्राक हमारी खेतीबारी के पौधों पर धावा करते हैं। हमारे गेहूँ की पकसिनिया (*Puccinia*) और बाजरे का स्मट (Smut) इन अनेक में से हैं। पकसिनिया की बदौलत आज हमको भारतवर्ष में लाखों रुपये की हानि पहुँचती है। अमरीका की यूनाइटेड स्टेट्स में अख़रोट की व्याधि से, जो एक प्रकार के छत्राक से होती है, लाखों रुपये का घाटा होता है। यह व्याधि न्यूयार्क के पास-पड़ोस में सबसे प्रथम १६०४ में शुरू हुई। थोड़े ही दिनों में इसका प्रकोप चारों ओर फैल गया और १६०६ तक में वहाँ की सरकार के अनुमान के अनुसार इस रोग से लगभग सात करोड़ पचास लाख रुपये का नुकसान पहुँचा। अनेक छत्राक हमारी प्रयोजनीय लकड़ी को नष्ट कर देते हैं। आप लोगों ने जंगलों में घोड़े की टाप अथवा डबलरोटी जैसे छत्राक कभी-कभी देखे होंगे (दे० चि० २४)। ये इन पेड़ों को बड़ी हानि पहुँचाते हैं। इनका अदृश्य जाल तने और शाखों के अन्दर सारे पेड़ में फैला रहता है, और भीतर-भीतर से उन्हें खोखला और निकम्मा तथा पेड़ को सुखा और गलाकर मौत के घाट उतार देता है। परन्तु यही बात नहीं; सारे छत्राक हानि पहुँचानेवाले ही नहीं होते, कुछ उपयोगी भी हैं। कई जाति के धरती के फूल और गुच्छी, जो अधिकतर पंजाब और कश्मीर में होते हैं, स्वादिष्ट होते हैं। इसके अलावा यीस्ट (Yeast) (दे० चित्र २५) शराब और अल्कोहाल (Alcohol) बनाने के काम में आती है। रोटी तथा अन्य चीज़ें बनाने में जो ख़मीर काम में आता है, यह भी यीस्ट ही है।

बैक्टिरिया

बैक्टिरिया के सम्बन्ध में तो आज हर एक व्यक्ति कुछ-न-कुछ अवश्य जानता है। ये जीव हमारे चारों ओर

चित्र १५— भिण्डी की पत्ती मे नसे
इन पत्तियों में नसें साफ दिखाई देती हैं । [फोटो—श्री रा० व० शिठोले]

विद्यमान हैं। कोई स्थान ऐसा नहीं जहाँ इनकी पहुँच न हो। सभी जगह ये असख्य सख्या और नाना रूप मे विराजमान हैं। हमारे पीने के पानी मे, हवा मे, दूध मे, दही मे, सभी चीजों में भरे रहते हैं। साधारण बाजारू दूध के एक क्यूबिक सेटीमीटर मे एक लाख से दस लाख तक बेक्टिरिया हो सकते हैं। सौभाग्यवश ये अक्सर हानिकारक नहीं होते। हमारे दाँतों के मैल मे तो हमे झुड-के-झुड बैक्टिरिया मिलेगे। इन जीवों में सबसे निराली बात तो यह है कि पल भर मे एक से अनेक हो जाते हैं और साधारण सर्दी-गर्मी का इन पर कुछ असर भी नहीं पडता। ये एककोशीय जीव जितने छोटे होते हैं, इसका आप सुगमता से अनुमान भी नहीं कर सकते। इन्हें हम केवल ख़ुर्दबीन से ही देख सकते हैं, सो भी यदि इतनी शक्तिशाली हो कि हमारे सिर के बाल जैसी महीन चीज को लट्ठे के समान मोटा कर दिखाये। इनके डील-डौल के विषय में कल्पना करना भी सरल बात नहीं। इनकी आठ-दस हजार की पल्टन एक इच लम्बे स्थान मे एक ही क़तार मे आसानी से लम्बी-लम्बी लेट सकती है, फिर भी इनके बीच मे आने-जाने के लिए जगह पडी रहेगी और यदि कोई इनके सगे-सम्बन्धी आ जायँ, तो उनके ठहरने को भी ठिकाना लग जायगा। परन्तु ये जितने छोटे हैं उतने ही खोटे भी। इनकी उपस्थिति का पता हमको प्रायः इनकी करतूत से ही चलता है। (देखो चित्र २६)

चित्र १६ १७—मॉस (Moss)
दाहिनो ओर साधारण मॉस है, जो वर्षाऋतु में प्रायः पुरानी दीवारों पर उग आती है। बाईं ओर एक विशेष प्रकार की मॉस का चित्र है जिसके सिरे पर स्पोर्गेजियम है। [फोटो—श्री बि० सा० शर्मा।]

बैक्टिरिया ससार मे सृष्टि के आदि से ही विद्यमान हैं, परन्तु ढाई सौ वर्ष से कुछ दिन पूर्व हमको इनका पता भी न था। इस विचित्र सृष्टि का सबसे प्रथम अवलोकन हालैंड-निवासी ऐण्टोनी लीवेनहुक (१६३२-१७२३) ने किया था। ससार मे एक-से-एक आश्चर्यजनक अनुसधान हुए। किसी ने नई दुनिया का पता लगाया, तो किसी ने आकाश मे दूरबीन की सहायता से ग्रह और तारे ढूँढ निकाले, परन्तु इस हालैंड के बजाज लीवेनहुक के अनुसधान के सामने इन सबकी क्या तुलना ! इसने उस अपूर्व सृष्टि का पता लगाया, जिसकी निशस्त्र सेना मानव जाति के सहार मे उनकी उत्पत्ति काल से ही तत्पर है, जिनकी करतूत से कितने ही घरों मे पानी का देवा नाम का लेवा न रह गया, जिनके प्रकोप से कितने ही गॉव उजड गये, कितनी ही बस्तियाँ वीरान हो गईं, जिनके

चित्र १८—मारकन्शिया का साधारण पौधा
यह लिवरवर्ट जाति का पौधा है।
[फोटो—श्री वि० सा० शर्मा।]
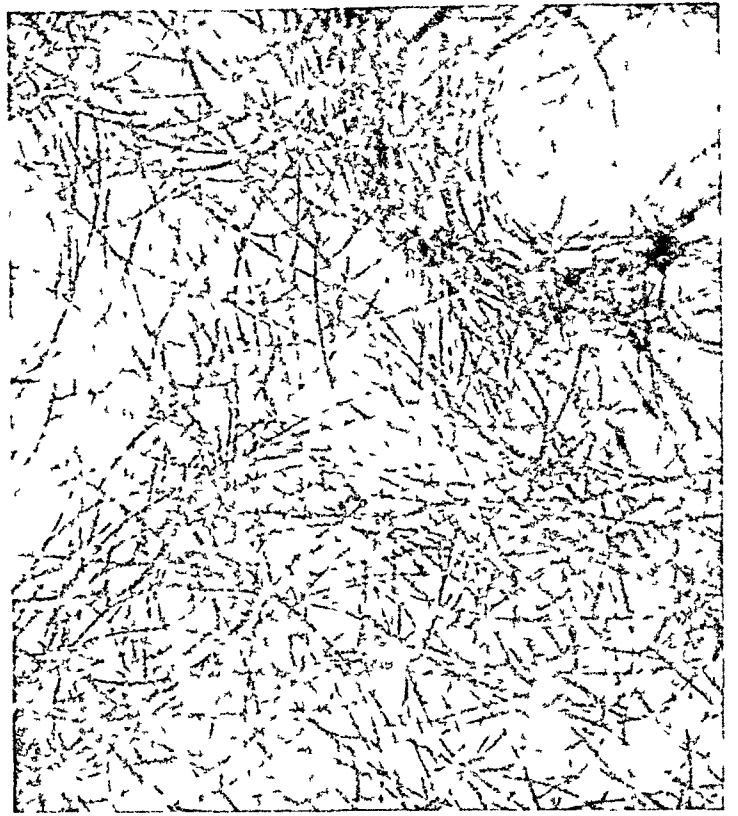
चित्र २०—स्पायरोगायरा
वर्षाऋतु में तालाबों में पैदा होनेवाला बाल से भी महीन एक शैवाल।
[फोटो—श्री वि० सा० शर्मा।]
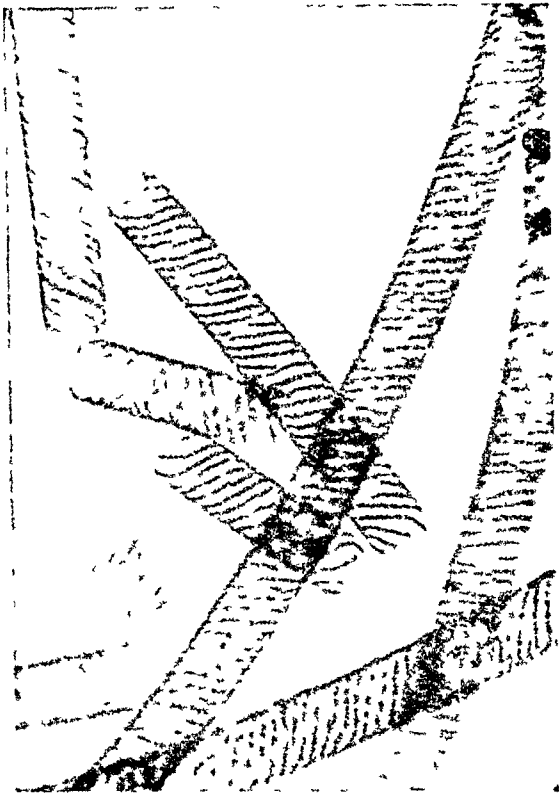
चित्र २१—स्पायरोगायरा के अन्दर की झाँकी
यह चित्र खुर्दबीन की सहायता से लिया गया है। चित्र २० में दिखाये गये बाल से भी महीन रेशे यहाँ लट्ठे जैसे दिखाई दे रहे हैं। [फोटो—वि० सा० शर्मा।]

चित्र १९—फ्यूकस
एक प्रकार का भूरी जाति का समुद्र-शैवाल
[फोटो—श्री वि० सा० शर्मा।]

चित्र २२—क्लैमाइडोमोनस
एक एककोशीय शैवाल जो हमारे यहाँ के तालाबों और पोखरों में होता है।
[चित्र—लेखक द्वारा]
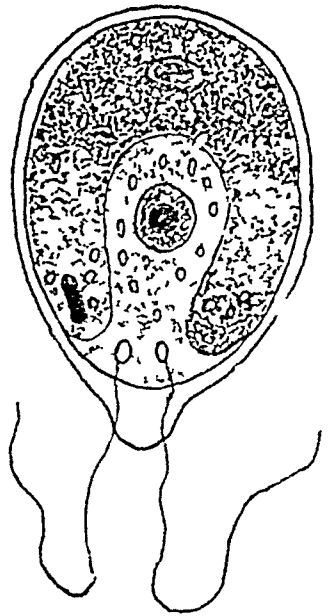
चित्र २३—बगीचे मे उगे हुए धरती के फूल
[फोटो—श्री रा० व० शिठोले ।]
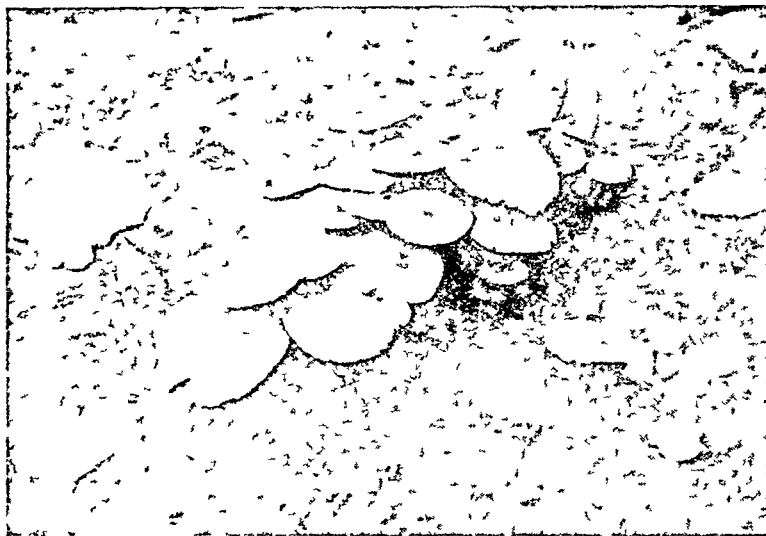
चित्र २४—पालीपोरस लकडी और पेडों पर उगनेवाला एक छत्राक । इससे वृक्षों को बड़ी हानि पहुँचती है । [फोटो—श्री रा० व० शिठोले ।]

कपट से कितने ही बादशाहों का तख्त पर बैठे-बैठे चुपचाप खून हो गया, कितने ही पालने मे झूलते-झूलते बालकों की गरदनें मरोड दी गई, कितने ही राह चलते बटोही मौत की भेंट चढ गये । ऐंटोनी ने उन निर्दयी जीवो को खोज निकाला, जो हमारे बीच मे आदि काल से ही विद्यमान हैं, जिनमे हमारे कितने ही शत्रु और मित्र हैं, जिनसे कितनी ही बीमारियाँ और सक्रामक रोग, जैसे हैजा, न्यूमोनिया (Pneumonia), तपेदिक़, मूजाक, जमौघा (Tetanus) का जन्म होता है, जिनका हमारे कितने ही व्यवसायों और धन्धो मे हाथ है, जिनकी करामात से ही दही, मट्ठा और कलाट (Cheese) तैयार होते हैं, जो मक्खन को सुस्वादिष्ठ बनाते हैं, अल्कोहाल से सिरका तैयार करते हैं और सन को सडाते हैं । यथार्थ मे जब से हमे बैक्टिरिया का ज्ञान हुआ, हमारे रहन-सहन, जर्राही (Surgery) और व्यवसायों मे बडा अन्तर पड गया है । हैजे-जैसे कितने ही सक्रामक रोगों को रोकने के लिए टीका और नश्तर का प्रचार, इनके फैलाव को रोकने के लिए रोगी को औरों से अलग रखना, आदि बाते आज साधारण समझी जाती हैं ।

वनस्पतियो से हमारा सम्बन्ध तथा वनस्पति-विज्ञान के सर्वप्रिय होने के कारण

इस वृहत् वनस्पति जगत् से हमारा क्या सम्बन्ध है, इसकी शिक्षा स्कूलों और कालिजों में क्यों दी जाती है, अनेक स्त्री-पुरुष इसकी धुन में क्यों लगे रहते हैं, आदि स्वाभाविक प्रश्न हैं, जो आपके हृदय मे उठ रहे होंगे । आदि काल से ही मानव विचारशील है । अमुक बात कैसे और क्यों हुई ? ऐसे सवालो को सुलझाने को आज छोटे-छोटे बालक भी उत्सुक रहते हैं । यथार्थ मे वैज्ञानिक उन्नति की नीव भी इन्ही प्रश्नों के समुचित उत्तर की खोज पर है । पेड-पौधो से हमारा बडा घना नाता है । पिछले प्रकरण मे आप पढ चुके हैं कि पेडो की भोजन प्राप्त करने की अनोखी रीति ही है, जिसकी बदौलत वायुमडल मे आक्सिजन की मात्रा समान बनी रहती है । अगर ऐसा न होता तो थोडे ही दिनों मे जीवो के साँस लेने के कारण हवा दूषित हो किसी भी जीव के रहने योग्य न रह जाती । तनिक विचार करने से पता चल जायगा कि जन्तु जगत् की उत्पत्ति के पहले पेड-पौधे जरूर रहे होंगे । पौधों के बिना हमारा जीवन कठिन ही नहीं वरन् असम्भव है । यही पशु जीवन का आधार है । यह बात शाकाहारी पशुओं के लिए जितनी लागू है, उतनी ही मासाहारियों के लिए भी । कहते हैं कि सृष्टि के आदि मे जब कि आदमी जगलों में विचरते थे, कद, मूल, फल ही इनके भोजन की सामग्री थी । शीघ्र

ही इन्हे जाडे और धूप से बचने की ज़रूरत हुई और पेड-पौधो की पत्तियों तथा छालों से यह काम लेने लगे। इसी समय से लकाशायर के मिलों की बुनियाद पडी। आज भी कितनी जगली जातियाँ हैं, जो छाल व पत्तों से ही वस्त्रों का काम निकालती हैं। धीरे-धीरे लोगो ने कपडे का बुनना सीखा, परन्तु फिर भी वस्त्रों के लिए हम पेडों के ही आश्रित रहे। आप जानते हैं कि हमारे अधिकतर कपडे रुई और पाट से बनते हैं और ये दोनो हमे पेडों से ही मिलते हैं। लोगों ने धीरे-धीरे उपयोगी पेडों का लगाना और उनकी रक्षा करना सीखा। यहीं से हमारी खेती और बाग़बानी की नींव पडी। जैसे-जैसे इनमे उन्नति हुई बढ़िया से बढ़िया तरकारियाँ, अनाज, फल, फूल उगने लगे। तुख़मी आमों की जगह दसहरी, सफेदे, बम्बई और लँगडे, झरबेरी बेर की जगह पैंवद। बेर और खट्टे नींबू की जगह नागपुर और सिल्हट की नारगियाँ और सतरे मिलने लगे। आज साधारण गाँव के रहनेवाले भी जानते हैं कि अगर उन्हे गेहूँ, उर्द या दूसरे किसी अनाज की अच्छी फसल तैयार करनी है तो उन्हे अमुक नम्बर का ही बीज पूसा, लायलपुर या कानपुर से मँगाकर बोना होगा। यह सब कैसे हुआ? वनस्पतियों के अध्ययन और वनस्पति विज्ञान की यथार्थ उन्नति से। आज कितने ही लोग कटिबद्ध हैं कि साधारण गेहूँ से बडे दानेवाला, थोडे समय मे पककर तैयार होनेवाला और दूसरी बातों में बढकर गेहूँ उपजावे। इसी तरह कोई गन्ने मे सलग्न है तो किसी को धान की धुन है। कोई आम की फसल को चिरस्थायी बनाकर उन्हें सुविधा से सुरक्षित और सुस्वादिष्ट सात समुद्र पार लएडन और पेरिस जैसे शहरों में बेच-कर लाभ उठाना चाहता है। मतलब यह कि हमे अपनी आर्थिक उन्नति के लिए ही पेड-पौधो का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है।

भोजन और कपडों के अलावा पेडो से हमे दूसरी अनेक ज़रूरी चीजे भी मिलती हैं। सब तरह के खाद्यपान (विटामिन A,B,C,D,E,F, आदि) जिनका हमे पता लग चुका है, या आगे चलकर लगेगा, हमारी जडी-बूटियाँ, भिन्न-भिन्न बीमारियों की सैकडों औषधियाँ, कितने ही बलिष्ठ व पौष्टिक पदार्थ, मेवे और मसाले, मधु और मिश्री, कितने ही मादक और प्राणघातक रस इन्हीं से मिलते हैं। अगर हम कमरे मे बैठे-बैठे चारों ओर निगाह दौडाये तो हम देखेंगे कि लगभग सभी चीज़े पेडों से मिलती हैं। हमारी क़लम, मेज, कुर्सी, दरवाज़े, किवाडे इन्हीं से बने हैं। हमारे लिखने का कागज़ भी पेडों ही से बनता है। जिस समय लोगों ने लिखना सीखा, वे भोजपत्र और ताडपत्र पर लिखने लगे। यही नहीं, आज कितने वर्ष बीत जाने पर भी हम लिखने के काग़ज के लिए पेडों के ही अधीन हैं। हमारे बढ़िया-से-बढ़िया कागज भी फटे-पुराने चीथडे और टाट तथा घास-बॉस से ही बनता है। तरह-तरह के रङ्ग, रबर, लाख, तेल, इत्र, सुगध आदि भी इन्हीं से मिलते हैं। इसके अलावा रस्सी, नक़ली रेशम, नाइट्रोसेलुलोज़ आदि भी पेडों से ही मिलते हैं। ऊपर कहा जा चुका है कि कितने ही पौधे हैं, जिनसे आदमी और दूसरे जानवरों की व्याधियाँ पैदा होती हैं और कितने ही ऐसे हैं, जिनका हाथ हमारे व्यवसायों मे है। इसलिए ऐसी वनस्पतियों की जीवनी और रहस्य का जानना हमारे लए कितना ज़रूरी है, आप स्वयं अनुमान कर सकते हैं।

चित्र २५—यीस्ट
जिन्हे करोडों की सख्या में ताडी पीनेवाले हर घूँट के साथ अपने उदर में पहुँचाते हैं। ये अति सूक्ष्म होते हैं।

चित्र २६—बैक्टीरिया
[विविध रूपधारी ये एककोशीय अदृश्य जीव सभी स्थानों और वस्तुओं में करोडों की सख्या में रहते हैं। [चित्र—लेखक द्वारा।]
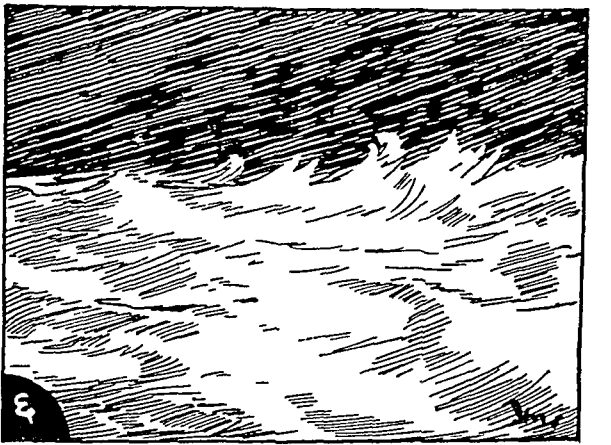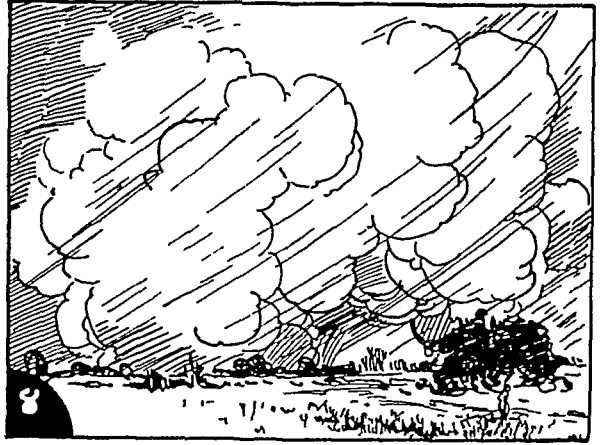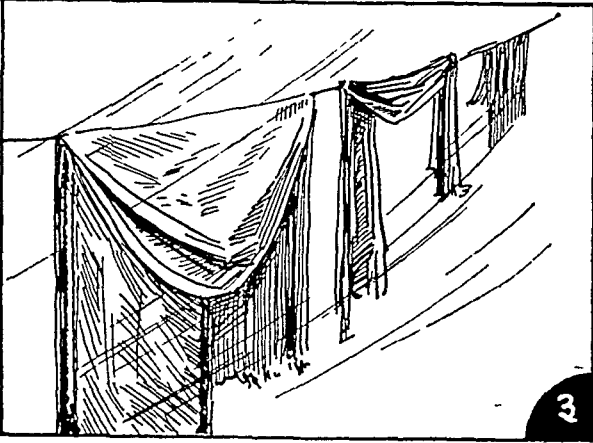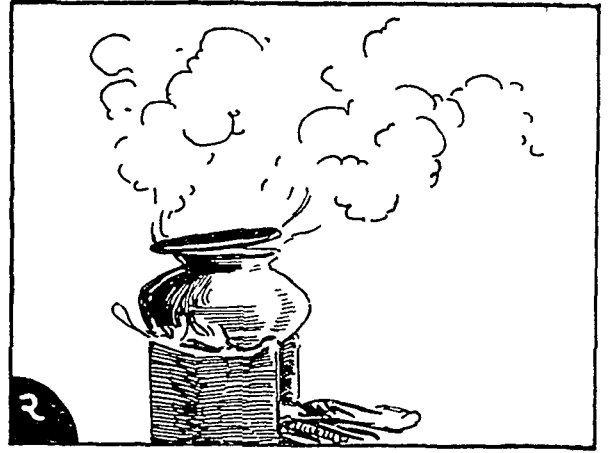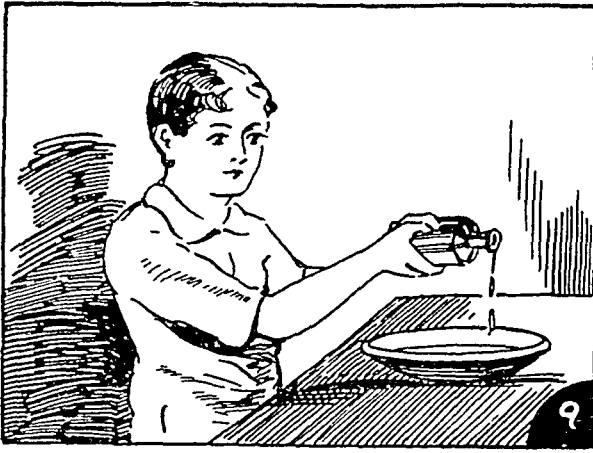
पानी की बूँद के विविध अनुभव

अपने जीवनकाल में पानी की एक ही बूँद न जाने कितने चोले बदलती और तरह-तरह के विचित्र अनुभव करती है। कभी वह अपार महासागर का एक अंश होकर रहती तो कभी भाफ बनकर बादल का रूप ग्रहण कर आकाश में इधर-उधर उड़ने लगती है। तब द्रवीभूत होकर वह फिर से पृथ्वी पर जलबिन्दु के रूप में बरस पड़ती है और किसी नदी-नाले में मिलकर फिर से समुद्र में जा मिलती है, अथवा किसी जीव या वनस्पति के शरीर में पहुँच जाती और धीरे-धीरे फिर भाफ बनकर उड़ जाती है। कभी वह ओस या कोहरा होकर फिर पृथ्वी पर आ पहुँचती है, तो कभी पहाड़ों पर या ठंढे देशों में गिरकर बर्फ हो जाती है। ऊपर के चित्र में जल के इन्हीं विचित्र अनुभवों का दिग्दर्शन कराया गया है—(नं० १) द्रव बूँद के रूप में, (२) आग की गर्मी से उबलते हुए तथा भाफ बनकर उड़ते हुए, (३) सूर्य की धूप से भाफ बनकर हवा में मिलते हुए; (४) बादलों के रूप में आकाश में उड़ते हुए, (५) बर्फ के रूप में, (६) महासागर का भाग होकर लहराते हुए। (देखिए पृष्ठ १७८-१७९)

जीवधारियों की मौलिक रचना या जीवन का सार

प्रकृति की सबसे बडी विशेषता यह है कि बाहरी रूप-रंग मे विविधता होते हुए भी उसके समस्त पदार्थो के मूल मे एक ही तत्त्व विद्यमान है। इस प्रकरण मे हमे देखना है कि वह कौन-सा तत्त्व है जिसकी मूल भित्ति पर सारे सजीव पदार्थों की सृष्टि हुई है।

पहले परिच्छेद मे यह बतलाया जा चुका है कि सजीव वस्तुएँ क्या हैं और सजीव तथा निर्जीव मे क्या भेद है। अब हम आपका ध्यान उन मुख्य पदार्थों की ओर ले जाना चाहते हैं, जिन पर सभी जीवधारियों की रचनाएँ निर्भर हैं। पेड-पौधो और जीव-जन्तु दोनो ही सजीव हैं, तब भी हममे से बहुतो को जतु वृक्षो से वैसे ही भिन्न जान पडते हैं जैसे कि सजीव वस्तु किसी निर्जीव वस्तु से। यह कैसे आश्चर्य की बात है कि वनस्पतियो और जानवरों मे, जो प्रतिदिन हमारी दृष्टि मे आते हैं, अपने आकार, प्रकार और शारीरिक रूप मे इतनी विभिन्नता होते हुए भी, वे सब विशेषतायें विद्यामान हैं, जो उनको निर्जीव सृष्टि से अलग करती हैं।

जीवन-मूल क्या है ?

इसका यही कारण प्रतीत होता है कि सारी जीवित वस्तुओ मे नन्हे से काई के पौधे से लेकर बडे से बडे बरगद के वृक्ष तक, तथा छोटे-से-छोटे पतिगे से बलवान् हाथी तक और स्वय मनुष्य मे भी एक अनोखा पदार्थ पाया जाता है, जिससे उनके शरीर का अधिकाश भाग बनता है। इसी विचित्र पदार्थ मे, जिसको **जीवन-मूल या जीवन-रस** (Protoplasm) कहा जाता है, जीवित शरीर के सब लक्षण पाये जाते हैं। यही वह तत्त्व है जो बढता है, यही वह पदार्थ है जो हिलता-डोलता है, और यही वह द्रव्य है जो उत्तेजना पैदा करता है। जीवन कभी जीवन-मूल से पृथक् नही रह सकता और न जीवन-मूल कभी जीवन से।

यह मूल पदार्थ मामूली सूक्ष्मदर्शक यन्त्र से देखे जाने पर लसदार, चिपचिपा, अडे की सफेदी या शहद की तरह गाढा नज़र आता है, किन्तु अधिक शक्तिशाली (अर्थात् और भी बडा दिखानेवाले) यन्त्र मे यह पदार्थ दानेदार मालूम होता है और कभी-कभी उसमे छोटे-छोटे बहुत-से बुलबुले दिखलाई पडते या उसमे बहुत महीन जाल-सा बना हुआ ज्ञात होता है। ध्यान देने की बात है कि सब आवश्यक बातो मे यह सारे वृक्षो और सारे पशुओ मे एक ही सा जान पडता है और सबमे ही बहुत छोटे-छोटे टुकडों या कणो मे प्रत्येक अपने पडोसी से झिल्ली या भित्तिका से बँटा हुआ रहता है। जीवन-मूल के इन झिल्ली से घिरे हुए नन्हे-नन्हे टुकडो को **कोष** या **कोष्ठ** (Cell) कहते हैं, क्योकि देखने मे ये शहद की मक्खी या बर्रे के छत्ते की कोठरियो-से लगते हैं। प्रत्येक कोष स्वय एक छोटी-सी सजीव वस्तु है। यदि आप इस बात का प्रत्यक्ष दृश्य देखना चाहते हैं कि जीवित शरीर मे बहुत-से नर्म कोष या कोठरियाँ बिना किसी सहारे के किस प्रकार एकत्रित—सब एक दूसरे से मिले हुए परन्तु फिर भी अलग-अलग—रहते हैं, तो एक बर्त्तन मे साबुन का गाढा घोल बनाकर पतली-सी नलिका से फूँकिये। आपको प्याले मे झाग उठते हुए दिखलाई देगे और सारा प्याला साबुन की छोटी-छोटी गोलाकार कोठरियो से भरा दृष्टिगोचर होगा।

नाना प्रकार के कोष और उनकी रचना

कोष मे जीवन-मूल उस सरल रूप से नही भरा होता है जैसे प्याले या ग्लास मे चाशनी, शहद या और कोई गाढा द्रव पदार्थ भरा रहता है। वह तो बडे विचित्र ढग से प्रत्येक गोले मे सजा रहता है और जब तक कोष मे प्राण रहते हैं, वह उसमें गति करता रहता है, जैसा कि हम सहज मे सूक्ष्मदर्शक यन्त्र द्वारा किसी-किसी (विशेषकर कुछ जल

मे रहनेवाले) वनस्पति के कोषों मे और पानी में रहनेवाले एककोषक अदृश्य प्राणी अमीबा या पेरामीसियम मे देखते हैं। पृष्ठ १७५-१७६ पर जो चित्र जानवरो और पेडों के भिन्न-भिन्न भागों से निकाले हुए कोषों के दिए गए हैं, उन्हे देखकर आपको ज्ञात हो जायगा कि पशुओं और वृक्षों के सब कोष न तो एक नाप के ही होते हैं और न एक रूप के। कोई सुडौल गोलाकार हैं तो कोई षटकोण, कोई डिबिया या बक्स के समान लबे चौकोर हैं, तो किसी का आकार टेढा-मेढा, चारो ओर नुकीला है, किसी मे रोयें हैं तो किसी मे नहीं, किसी की भित्ति या खलडी मोटी है तो किसी की पतली, किसी मे भाँति-भाँति के ठोस पदार्थ भीतर तैरते हुए साफ दिखलाई पडते हैं, तो किसी में बहुत कम या बिलकुल नही होते, किन्तु किसी के द्रव पदार्थ मे बडे और किसी मे छोटे बुलबुले झलकते नजर आते हैं।

अधिकाश कोषो के बीचोबीच मे अथवा एक ओर को जीवन-मूल का एक छोटा-सा भाग अधिक गाढा और दृढ होता है और इसके चारो ओर अपनी अलग कोमल झिल्ली मढी रहती है, मानो एक बडी गेद के अन्दर बहुत-सी छोटी-सी गेद रक्खी हुई हो। पारदर्शक होने के कारण कोष के इस अश को शेष जीवन-मूल से पहचानना सुगम नही। परन्तु जब कोष को उचित रगो से रँगा जाय तो वह गाढा अश आस-पास के कोषमूल (Cytoplasm) से चटक हो जाता है और तब सूक्ष्मदर्शक यत्र मे देखने से उसका साफ पता लग जाता है। इस दृढ अश को केन्द्र (Nucleus) या मीगी कहते हैं। यह कोष का राजा है और इसमे पथप्रदर्शक शक्ति पाई जाती है। मानो यह कोषरूपी कारखाने का कर्त्ता-धर्त्ता है और जो कुछ उसमे क्रिया-कर्म होते हें, उनकी देखभाल इसी पर निर्भर है।

बहुधा पेडो की कोष-भित्तियाँ जानवरों की से कुछ-न-कुछ भिन्न होती हैं। पेडों के कोषों मे भित्तियाँ बहुत निश्चित होती है और काष्ठोज (Cellulose) नामक वस्तु की बनी होती हैं, जो जीवन-मूल से अधिक दृढ होता है। परन्तु उसकी बनावट मे नोषजन (नाइट्रोजन) के अलावा सब पदार्थ वे ही हैं, जो जीवन-मूल मे। लकडी, नारियल के खोपडे, अख़-रोट के छिलके और बेर की गुठली बहुत मोटी भित्ति के कोषों से बनी होती है। इन कोषों के भीतर भी एक समय जीवन-मूल भरा था, जो भित्ति को कडा और मोटा बनाने मे चुक गया। यही कारण है कि देखने मे ऐसी सब वस्तुएँ और

जीवधारियो के कोषो की रचना का एक उदाहरण

यदि आप इस बात का प्रत्यक्ष दृश्य देखना चाहते हैं कि जीवित शरीर में बहुत-से नर्म कोष बिना किसी सहारे के किस प्रकार एकत्रित—सब मिले हुए परतु फिर भी अलग-अलग—रहते है तो एक वर्त्तन में साबुन का गाढ़ा घोल बनाकर पतली नली से फूँकिए। सारा प्याला झाग के कारण उठे हुए साबुन के गुब्बारों जैसे गोलाकार बुलबुलों से भर जायगा, जिनकी भित्तियाँ एक-दूसरे से कोठरियों की तरह जुडी हुई होंगी। शरीर के कोष भी इसी प्रकार के होते हैं।
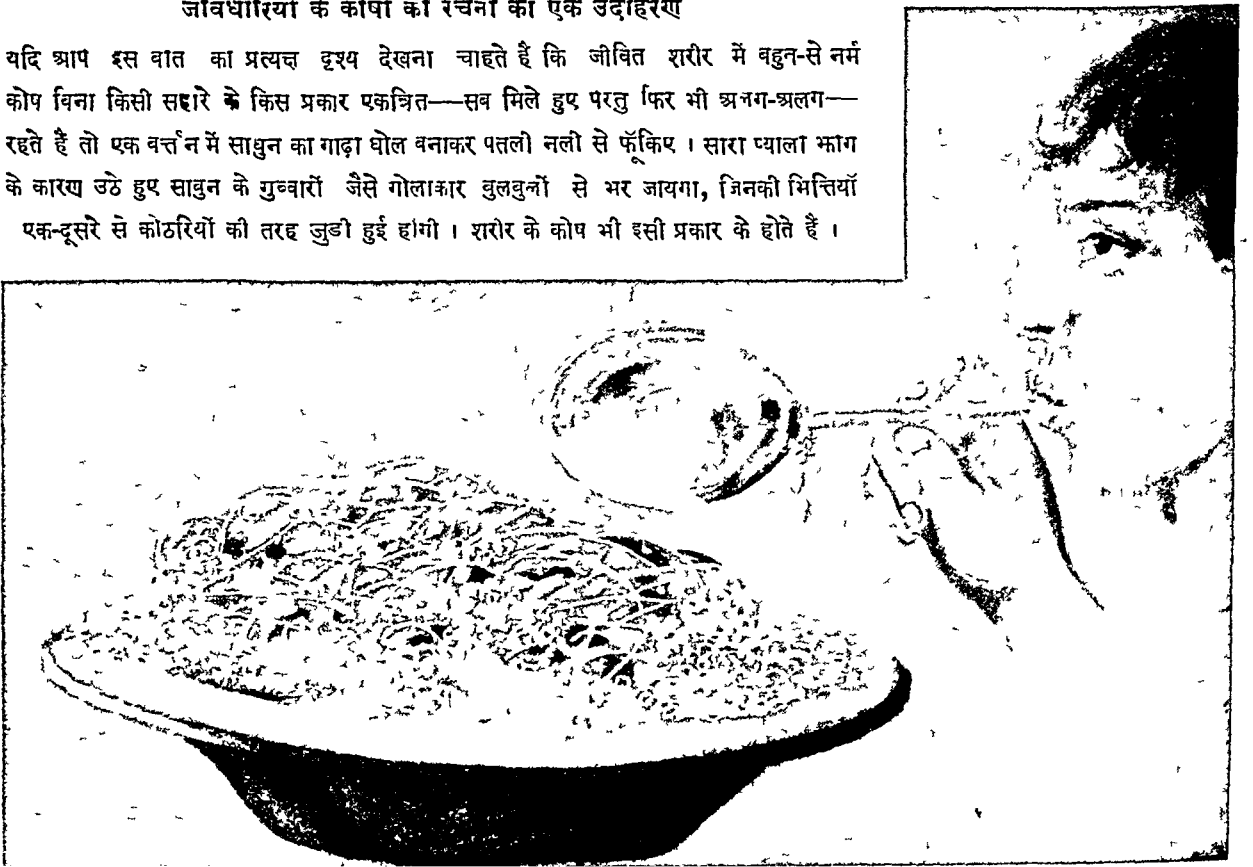
उनके साथ ठोस मालूम पड़ते हैं। अधिकांश पशुओं के कोषों में काष्ठोज की भित्तियाँ नहीं पाई जातीं, किन्तु उनमें उसकी जगह कोषमूल की ऊपरी तह कड़ी हो जाती है और भित्ति का काम देती है। किन्तु कुछ जानवरों में भी कभी ऐसे कोष पाये जाते हैं, जिनमें काष्ठोज की भित्तियाँ होती हैं।

यदि जीवन-मूल एक प्रकार का अर्द्धद्रव पदार्थ है, जो साधारण रीति से महीन झिल्लीवाले कोषों में भरा होता है, तब क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है कि कैसे बड़े डीलवाले वृक्ष या जीव सीधे चट्टान की तरह दृढ़ खड़े रहते हैं! यह बात आपको असम्भव जान पड़ती होगी, परन्तु आगे चलकर आपकी समझ में आ जायगा कि ऐसा कैसे होता है। रबड़ के गुब्बारे, जो हर एक मेले-तमाशे में बिका करते हैं, कोषों की ही तरह बहुत महीन झिल्ली के बने होने पर भी फूँकने से फूल जाते हैं और मुँह बाँध देने पर अपना रूप क़ायम रखते हैं। इनमें से कोई गोल, कोई लौकी-से लम्बे, कोई नासपाती के आकार के होते हैं और जब तक उनमें हवा भरी रहती है, तब तक वे अपना निश्चित आकार क़ायम रखते हैं। भीतर भरी हुई हवा के दबाव के कारण ही इन गुब्बारों की नर्म झिल्ली फूली रहती है और जितनी ही हवा अधिक भरी जाती है, उतना ही गुब्बारा अधिक कड़ा हो जाता है। इसी प्रकार कोषों में भरे हुए जीवन-मूल के प्रभाव से उनकी भित्तियाँ उचित रूप से फूली रहती हैं और वे अपना निश्चित रूप और कड़ापन [illegible] रखती हैं। जहाँ इसके अतिरिक्त अधिक सहायता की आवश्यकता होती है, वहाँ शारीरिक कोष [illegible] निर्जीव पदार्थों से अपने लिए यथार्थ सहारा [illegible] बना लेते हैं।

[illegible] हमारी दृष्टि किसी जीवधारी पर पड़ती है, तो हमें केवल कोषभित्तियाँ ही दिखाई देती हैं, जिनसे कि वह बना है हमें जीवनमूल नहीं दिखाई देता। बड़े वृक्षों और जानवरों में शरीर के ऊपरी पर्त (जैसे मनुष्य की खाल, पेड़ों की छाल और घोड़े का चमड़ा) के कोष इस विचार से मरे हुए कहे जा सकते हैं कि उनमें जीवन-मूल नहीं रह जाता, केवल भित्ति ही बची रह जाती है।

वनस्पतियों में मिलनेवाले कोषों में से पाँच प्रकार के कोष

(१) पत्ते की त्वचा या ऊपरी खाल के कोष। इनकी बाहरी भित्तिकायें मोटी होती हैं। (२) स्तम्भाकार कोष, जैसे पत्ती के बीच के भाग में होते हैं। (३) टाईफ़ाइड या मन्थर ज्वर के गलाणु कोष जो गति कर सकते हैं। (४) पानी की काई के स्पोर-कोष। (५) ख़मीर बनानेवाले वनस्पति कोष जिनमें से कोपलें फूटती हुई दिखाई दे रही हैं।

कोष कैसे बढ़ते हैं?

हाथी, साँप, मक्खी, आम, गुलाब के पेड़ अथवा किसी भी पेड़ या जानवर के शरीर के किसी भी भाग से पतली फाँक उतार लें और सूक्ष्म-दर्शक यन्त्र से देखें, तो हम उसको ऐसे ही कोषों से भरा पायेंगे। अतः वे हमारे शरीररूपी मकान की ईंटें और खपड़े हैं अथवा जीवित वस्तुओं का आधार हैं। हम उन्हें जीवन की एकाई (units of life) कहें तो अनुचित न होगा। परन्तु शारीरिक कोषों और मकान की ईंटों में एक भेद है। वह यह कि ईंटों और खपड़ों को एक के ऊपर दूसरी जोड़ने से मकान बनाया जाता है, लेकिन जीवों के शरीर कोषों को जमा करने से नहीं बन सकते, उनमें तो शरीर ही नित्य नये कोष बनाता रहता है। नाना प्रकार का भोजन, जो जीवधारी ग्रहण करते हैं, उनके शरीर में पहुँचकर धीरे-धीरे बदलकर नया जीवन-मूल बन जाता है और जीवन-मूल की मात्रा में वृद्धि होती है और कोष का परिमाण बड़ा होता जाता है। यदि यही चाल अनिश्चित रूप से प्रचलित रहे, तो कोष थोड़े समय में बहुत बड़े हो जायँ। परन्तु प्रकृति ने ऐसा होना उचित न समझा। इसलिए जब कोष अपना स्वाभाविक नियुक्त डील प्राप्त कर लेता है, तो उसका केन्द्र दो भागों में विभाजित होकर अपने आस-पास के जीवन-मूल को भी बाँटने लगता है। दोनों के बीच में नई भित्ति बन जाती है और एक बड़े कोष से दो छोटे-छोटे कोष उत्पन्न हो जाते हैं। यह नई कोषिकाएँ

भी पहले की भाँति बढ़ती हैं, और अपने समय पर बँटकर दो-दो हो जाती हैं। इसी प्रकार कोषों की सख्या और उनका घनफल बढने से जीवों के अग और शरीर बढते जाते हैं।

अधिकतर जानवर और पौधे जो हम देखते हैं, उनमे कोषों की सख्या अनिश्चित होती है। उनकी सख्या प्रत्येक व्यक्ति के डील के अनुसार कम या ज्यादा होती है। परन्तु ससार मे ऐसे भी पेड-पौधे और जीव-जन्तु हैं, जिनमे कोष बहुत थोडे और निश्चित होते हैं। सबसे सादे प्राणियो के शरीर केवल एक कोष के ही बने होते हैं। ये इतने छोटे होते हैं कि सूक्ष्मदर्शक यन्त्र की सहायता के बिना मनुष्य के लिए अदृश्य हैं, परन्तु कुछ ऐसे भी हैं, जिनका आँख से केवल पता भर लग जाता है। ऊँची श्रेणी के सारे प्राणियों का जीवन दो आधारों पर रचा है। प्रत्येक कोष अपना अलग-अलग कर्त्तव्य पालन करते हुए भी ऐसा प्रबन्ध करते हैं कि और सब कोषो से हिल मिलकर प्राणी के स्वस्थ जीवन को स्थिर रखते हैं। मनुष्य-जैसे जटिल-से-जटिल प्राणी भी अपने जीवन की यात्रा एक कोष से आरम्भ करते हैं। अतः हम बेखटके कह सकते हैं कि ऐसा कोई भी जीवधारी नही जो किसी-न-किसी समय एक कोष की अवस्था अथवा जीवन की एकाई मे न पहुँच जाता हो।

जानवरो के कोषो मे से पाँच प्रकार के कोष

(६) चपटे पहलदार कोष जो पेट के भीतरी अगों को मढनेवाली झिल्ली मे पाये जाते हैं, (७) अस्थि बनानेवाले कोष, (८) चर्बी में पाये जानेवाले कोष जिनमें बीच में चर्बी का बिन्दु दिखाई पडता है, (९) वायु प्रणाली की भीतरी दीवार में पाये जानेवाले महीन रोयेंदार कोष, (१०) नाड़ी और मस्तिष्क में पाये जानेवाले नुकीले कोष जिनकी नोकों से लम्बे तार निकले रहते हैं।

शरीर मे कोषों का प्रबन्ध

जिस प्रकार हम अपने नगर या बस्ती को एक निश्चित ढग से मोहल्लों या बाजारो मे बाँटते हैं, उसी प्रकार प्रकृति ने भी बहु-कोषीय प्राणियो के शरीरो के कोष भी भिन्न-भिन्न समूहों मे बाँट दिये हैं और उनके कर्त्तव्य अलग-अलग निश्चित कर दिये हैं। उचित ढग से सजाई हुई प्रदर्शनी और मेले मे हम देखते है कि एक तरह की चीजे बेचनेवाली दूकाने एक ही पक्ति या एक ही जगह होती हैं। कपडे बेचनेवालों की एक स्थान मे, बिसातियों की दूसरे स्थान मे और हलवाई तथा अन्य खाने-पीने की दूकानों का प्रबन्ध तीसरी जगह रक्खा जाता है। यही बात बडे-बडे नगरो मे भी होती है। एक प्रकार की बहुत-सी दूकानें एक जगह या एक बाजार मे रहती हैं, जैसे, सब्जीमण्डी मे तरकारी, नाज, की मण्डी में नाज ठठेरी बाजार मे बर्तन ही बिका करते हैं। इसी प्रकार हमारे शरीर मे भी भिन्न-भिन्न काम करनेवाले कोष भिन्न-भिन्न समूहों मे एकत्र हैं। हर समूह मे अधिकतर एक ही से कोष होते हैं और उनका एक विशेष काम होता है। ये समूह तन्तु (Tissues) कहलाते हैं। जिस प्रकार सब कपडों की बनावट एक-सी नहीं होती—कोई मोटे सूत के बने और खुरदरे होते हैं, कोई महीन सूत के और नर्म होते हैं, कोई बहुत चिकने और रोएँ-

दार होते हैं, किसी को हम खादी, किसी को मलमल, किसी को रेशम अथवा किसी को मख़मल कहते हैं, इसी प्रकार हमारे शरीर के सब तन्तु भी एक-से नही होते। अन्य जन्तुओं की भॉति हममे भी शरीर को ढकनेवाले तन्तु हैं; जैसे चर्म और ऑतों के भीतर अस्तर, हड्डियो और कराडराओं (Tendons) मे सहायक तन्तु, यकृत या कलेजे और वृक या गुर्दे के ग्रन्थिवाले तन्तु, मस्तिष्क और सुषुम्ना के तन्तु (Nervous tissues)। इसी प्रकार पौधों मे ढॅकनेवाले तन्तु जडो और पत्तियों की खाल मे, सहायक तन्तु तने के कठोर भाग मे और रस खीचनेवाले तन्तु नर्म गूदे मे पाये जाते हैं।

साधारण कोष का बढाकर दिखाया हुआ चित्र, और उसके मुख्य भाग

पौधों की तरह खानेवाले जानवर और जानवरों की तरह खानेवाले पौधे

जीवधारियो मे समान या भिन्न अगणित कोषों के बहुधा घनिष्ठ रूप मे इकट्ठे होने से शरीर के भिन्न-भिन्न भाग बनते हैं, जो अग या इन्द्रियॉ कहलाते हैं। प्रत्येक अग का एक विशेष कर्त्तव्य होता है। पशुओ मे कई प्रकार की इन्द्रियॉ हैं, जैसे टॉगे चलने के लिए, ऑखे देखने के लिए और कान सुनने के लिए। किन्तु आम तौर से वृक्षो मे उतने प्रकार के अग और तन्तु नही होते, जितने जानवरों मे, क्योंकि पेडो के कर्त्तव्य उतने बॅटे हुए नही हैं, जितने प्राणियों के। इसलिए हम देखते हैं वि पूर्ण जीवित वृक्ष एक घर के समान है। जिस प्रकार घर मे कमरे, दालान और ऑगन होते हैं और उसकी दीवारे और खम्भे ईटो की बनी होती हैं, जो चूना और गारा से जोडी जाती हैं, इसी प्रकार हमारे शरीर मे कई इन्द्रियॉ हैं और ये इन्द्रियॉ भिन्न-भिन्न तन्तुओ की बनी हुई हैं, जिनमे बहुत-से कोष हैं, और कोष जीवनमूल के बने होते हैं। यद्यपि जीवन-मूल की रचना वृक्षो और जीव-जन्तुओ मे बहुत-कुछ एक-सी है, तो भी ये दोनों प्रकार के जीवधारी बहुत-सी बातो मे अवश्य एक दूसरे से भिन्न हैं। इसका क्या कारण है, यह जानना असम्भव है। कदाचित् इसका कारण यह हो सकता है कि दोनो मे जीवन-मूल बनाने की रीतियॉ अलग-अलग हैं। वनस्पति अपने जीवन-मूल को सीधे पृथ्वी, जल तथा वायु से बना सकते हैं, तथा प्राणी मुख्यतया अपना जीवन-मूल उन वस्तुओं को खाकर बना-बनाया प्राप्त करते हैं, जो जीवित हैं अथवा कभी जीवित रही हो—चाहे वे पेड-पौधे हो या अन्य जीव-जन्तु। नियम तो ऐसा ही है, परन्तु कुछ पौधे और जन्तु इन नियमों को खण्डित भी करते हैं। अमरबेल की भॉति और भी ऐसे वृक्ष है, जो अपना भोजन उन वृक्षों से ग्रहण करते हैं, जिन पर कि वे उगते हैं। ऐसी भी वनस्पतियॉ हमारे ही देश मे मिलती हैं, जो कीटाहारी कही जा सकती हैं, क्योंकि वे मक्खी या अन्य पतिंगों को अपने मायारूपी जाल में फॅसाकर मार डालती हैं और उनके शरीर से अपना भोजन उसी प्रकार प्राप्त करती हैं जैसे कि पशु। इस प्रकार की एक वनस्पति तुखिलता का हाल आप पहले अक मे 'पेड-पौधों की दुनिया' वाले भाग मे पढ चुके हैं। यहॉ हम एक और मांसाहारी पौधे का दृश्य आपके सामने रखते हैं (दे० पृष्ठ १७८ के सामने का चित्र)। दूसरी ओर जानवरो में कुछ ऐसे पानी में रहनेवाले छोटे जीव मिलते

हैं, जो सूक्ष्मदर्शक यन्त्र मे देखने से वृक्षो की भाँति हरे दिखाई देते हैं, क्यो उनमे भी पर्णहरिण (Chlorophyll) होता है, जिसकी सहायता से वे पानी मे घुली हुई अनैन्द्रिक वस्तुओं मे अपना जीवन-मूल पेडो की तरह बनाते हैं। यूगलीना (Euglena) नामक ऐसे ही जीव का चित्र इस पृष्ठ के सामने दिया है। अत पेड-पौधो मे दो-चार ऐसे भी हैं, जो अपने जीवन-मूल को उसी प्रकार बना सकते हैं, जो पशुओं का लक्षण है और एक-आध पशु भी ऐसे हैं, जो अपना जीवन-मूल सच्ची वनस्पतियों की भाँति बनाते हैं। इससे यह भी विदित होता है कि वनस्पति-वर्ग और प्राणि-वर्ग के बीच ऐसा अन्तर नही है, जो पार न किया जा सके।

अब तक हमने जीवित पदार्थों की रचना और आचरण का अध्ययन एक जीवन-विज्ञान-वेत्ता की हैसियत से किया है। अब हम रसायनज्ञ की ओर बढे और देखे, वे हमे जीवन-मूल की बनावट के विषय मे क्या बतलाते हैं।

जीवन-मूल किन पदार्थों का बना है ?

सबसे पहले हमें स्मरण रखना चाहिये कि जीवन-मूल अति अस्थिर या चचल पदार्थ है और जीवित दशा मे बहुत ही सीमित ताप मे रह सकता है अर्थात् २° श० से ३५° श० तक। यद्यपि बहुत कम दशाओं मे यह बात लागू नहीं भी होती, क्योंकि न्यूजीलैंड के गर्म झरनो मे, जिनका ताप ३५° श० से बहुत ज्यादा होता है, कुछ बैक्टीरिया कीटाणु पाये जाते हैं। इसलिए उन पदार्थों या मूल वस्तुओं का पता, जिनसे जीवन-मूल बनता है, उसके बनने के बाद ही लगाया जा सकता है। आप प्रश्न कर सकते हैं कि यह कैसे कहा जा सकता है कि मृत्यु के बाद जो कुछ जाँचा गया, वह जीवन-मूल ही था। यह कहना कठिन है कि वह बिलकुल वही वस्तु है। जो कुछ भी हो हम यह जानते हैं कि जीवित पदार्थ जितनी आसानी से जल ग्रहण कर सकते हैं और बाहर निकाल सकते हैं, उतनी सरलता से और कोई पदार्थ ऐसा नहीं कर सकता। वह सदा सारे जीवधारियों के शरीर मे बहा करता है और उनके लिए बहुत लाभदायक है। इसीलिए जीवन-मूल मे ७०-९० प्रति सैकडा पानी होता है और यह कहा जा सकता है कि वास्तव मे जीवन-मूल पानी के घोल मे ही रहता है। इसलिए हम आपको सजीव पदार्थ के इस प्रधान भाग के विषय म कुछ और बतलाना उचित समझते हैं।

(२) जीव और पानी

पानी हमारी साधारण-से-साधारण चीजों में से एक है, किन्तु शुद्ध रूप में पानी कहीं नही मिलता, क्योकि वह ऐसा पदार्थ है कि उसमे पृथ्वी और वायु की बहुत-सी वस्तुएँ शीघ्र ही घुल जाती हैं। जब हम पानी को गर्म करते हैं तो बर्तन पानी से जल्द गर्म हो जाता है, क्योंकि पानी का ताप बढाने के लिए अधिक अग्नि की आवश्यकता होती है। यही कारण है कि गर्मी मे झीलों और समुद्रों का जल उतना गर्म नही होता, जितना कि आसपास की धरती। पानी का यह गुण जीवन-पदार्थ के लिए बहुत सहायक है और जीवन के आरम्भ मे इससे अवश्य सहायता मिली होगी। इसमे तो सन्देह ही नही कि जल मे रहनेवाले जीवों का जीवन स्थिर रखने के लिए पानी का जल्द अधिक न गर्म हो जाना बहुत लाभदायक है।

पानी का दूसरा मुख्य स्वभाव यह है कि वह जमने के पहले फैल जाता है और दूसरे द्रव पदार्थ ज्यों-ज्यों ठढे किये जायँ त्यों-त्यों घने (भारी) होते जाते हैं, और अन्त मे जम जाते हैं। जल मे भी ऐसा ही होता है जबकि उसका ताप ४° श० रह जाता है। इससे अधिक ठढा होने पर वह भारी होने के बदले हलका हो जाता है। इसलिए जब समुद्र, झील या नदी का पानी ४° श० से विशेष ठढा होता है तो वह नीचे से ऊपर आ जाता है और नीचे के गर्म और भारी पानी के ऊपर तैरता रहता है। यही कारण है कि बर्फ सदा पानी के ऊपरी तह से नीचे को जमता जाता है। अगर ऐसा न होता तो बर्फ पानी के तह मे बनना शुरू होता और शीत ऋतु में महासागरों का सारा पानी जम जाता और गर्मी मे भी पूरा न घुलता। ऐसा होने से पानी मे जीवन बिल्कुल असम्भव हो जाता।

इससे आपको यह विदित हो गया होगा कि मामूली ताप मे पानी द्रव होता है और ०° श० तक ठढा करने से वह बर्फ हो जाता है और १००° श० तक गर्म करने पर भाफ बन जाता है। इसलिए पानी द्रव्य के तीनों रूप धारण करता है, अर्थात् द्रव, ठोस और गैस। पानी की एक ही बूँद बहुत-से अद्भुत अनुभव कर सकती है। एक समय वह अपार सागर का भाग हो जाती, दूसरे समय भाफ बनकर उडती हुई आकाश मे बादल का अश हो जाती और वायु में इधर-उधर उडते हुए द्रवीभूत होकर पृथ्वी पर फिर पानी की बूँद होकर गिर पडती तथा बहकर किसी नदी, नाले, झील, या उसी समुद्र मे जा मिलती है। या वह ओस या कोहरा बनकर गिरती और किसी वनस्पति के शरीर मे पहुँच जाती या कोई जानवर या मनुष्य उसे पी जाता है। यह भी हो सकता है कि वह आकाश से किसी ऐसे पहाड
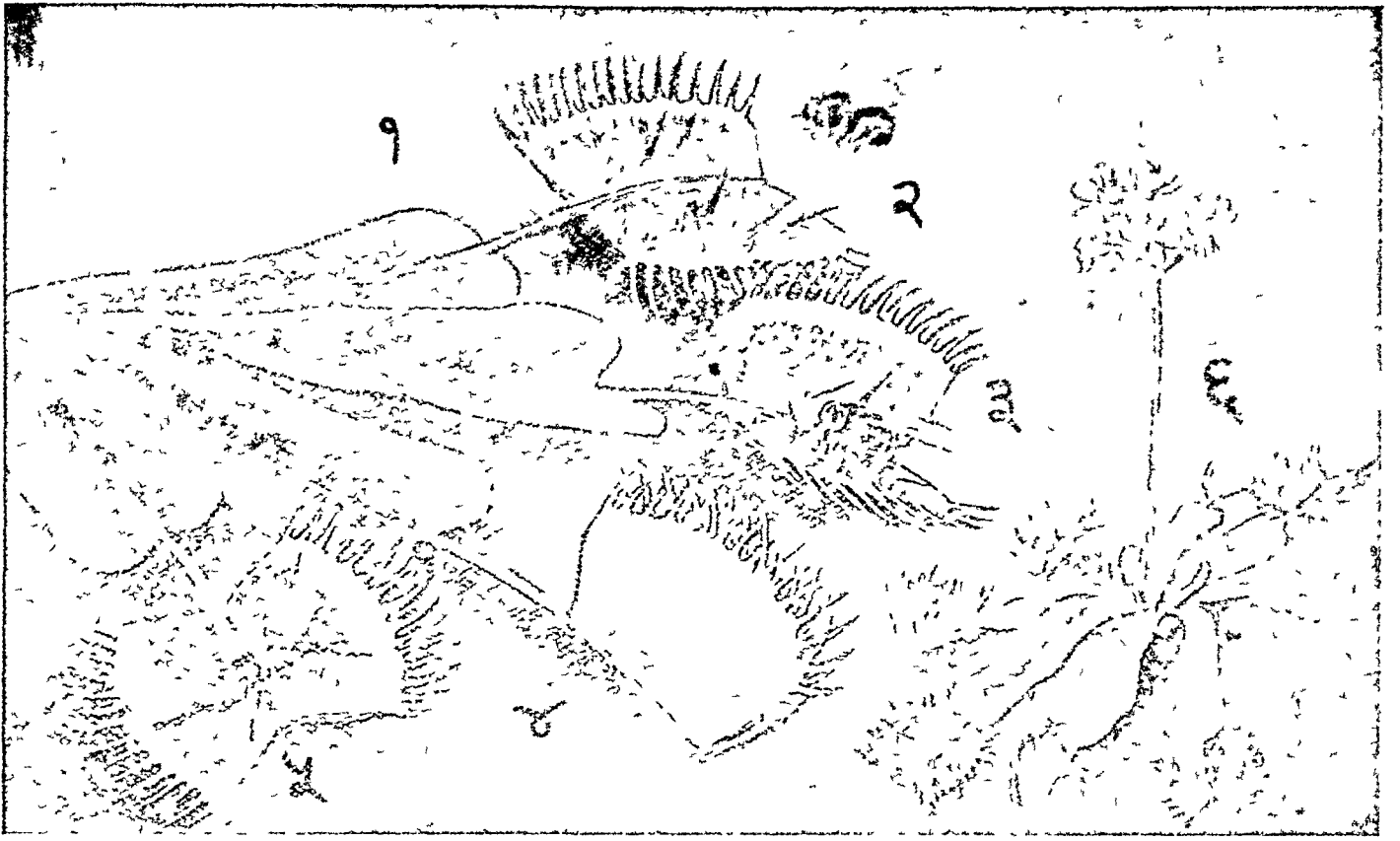
एक जीवभक्षी पौधा

पिछले अंक में हम 'तुंविलता' (Pitcher Plant) नामक एक मांसाहारी पौधे का चित्र और विवरण दे चुके हैं। यहाँ एक और ऐसे ही पौधे का चित्र है। इसको अंग्रेजी में 'वीनस फ्लाइ ट्रैप' (Venus's Fly-trap) कहते हैं। इस पौधे में इस तरह की कुछ पँखुड़ियाँ होती हैं, जिनमें पुस्तक के दो जुड़े हुए पन्नों की तरह दो भाग होते हैं। इनके कटावदार किनारों पर एक प्रकार के रोएँ होते हैं। अब इस पौधे की अद्भुत लीला का कुछ हाल सुनिए। इसकी ऊपर वर्णित पँखुड़ियाँ सामान्य दशा में खुली रहती हैं (दे० नं० १)। किन्तु ज्योंही कोई मक्खी या पतिंगा इसके समीप पहुँचता है (दे० न० २) और इनमें से किसी पँखड़ी पर आकर बैठता है (दे० न० ३), त्योंही ये पँखड़ियाँ एकदम बन्द हो जाती हैं। उनके दोनों किनारे के रोएँ एक-दूसरे में फँस जाते हैं (दे० चित्र में न० ४), और मक्खी उसमें बन्द हो जाती है। जब पौधा अपने विशेष अंगों द्वारा उस मक्खी में से आहार-तत्त्व खींच लेता है, तब पँखड़ियाँ फिर खुल जाती हैं (दे० चित्र में न० ५), और मक्खी का शव शेष रह जाता है। चित्र में दाहिनी ओर न० ६ में पूरा पौधा अलग से दिखाया गया है।
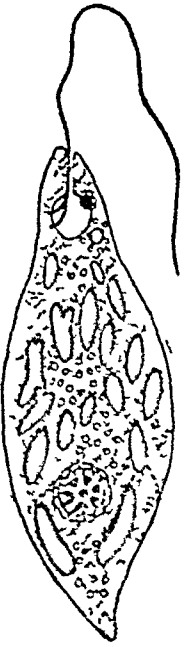
(बाईं ओर) वनस्पति-जैसा एक जीव

यह यूग्लीना (Euglena) नामक एक सूक्ष्म जंतु का (आकार में चार सौ गुना बढ़ाया हुआ) चित्र है। इस जंतु में विशेषता यह है कि यों तो हर जीवधारी की तरह यह भी मुख द्वारा आहार ग्रहण करके अपने उदर में पहुँचाता और अन्य जंतुओं ही की तरह उसे पचाता है, पर साथ ही इसमें पर्णहरिम या क्लोरोफ़िल नामक तत्त्व भी होता है, जिसके कारण इसके कुछ भाग हरे रंग के होते हैं। यह हरा पदार्थ वनस्पति-वर्ग की वस्तु है और इसकी विशेषता के कारण यह जंतु वनस्पतियों की भाँति ही अपने शरीर के तंतुओं की रचना करता है। इस चित्र में हरे भाग में क्लोरोफ़िल का अंश है।

पर या टूटे देश में गिरे और जमकर ऐसे कड़े बर्फ का रूप ग्रहण कर ले कि जन्तु-जीव उसको पैरों तले रौंदे या मनुष्यगण उस पर खेल-कूद करे। पृथ्वी, झील, पेड़, पत्ते या हमारे शरीरों से वही बूँद फिर धीरे-धीरे भाफ बनकर उठ सकती है या कोई उसे पकाने के बर्तन में खौलाकर तेजी से भाफ बना दे सकता है। इस प्रकार जल सदा भूमण्डल में चक्कर लगाता और अपना चोला बदलता रहता है। शुद्ध जल एक यौगिक वस्तु है, जो उद्जन (हाइड्रोजन) के ओषजन (आक्सिजन) में जलने से बन जाता है। दो भाग उद्जन के एक भाग ओषजन से मिलने पर पानी बन जाता है। इस सबंध में आप दूसरे विभाग में पढ़ेंगे।

(२) ओषजन और जीव

अब हम आपको कुछ थोड़ा हाल इन दो वायव्यों (Gases) का बताना चाहते हैं, जिनसे जल बनता है। ओषजन एक तत्व है, जो अपनी स्वतन्त्र अवस्था में वायु में पाया जाता है और जिसका वायु के हर पाँच भाग में एक भाग होता है। इसका सबसे मुख्य लक्षण, जो जीवन के लिए अत्यन्त जरूरी है, यह है कि वह वस्तुओं के जलने में सहारा देता है। बहुत-सी चीजें वायु की अपेक्षा ओषजन में बहुत जल्दी और तेजी से जलती हैं और जो चीजें इसमें जलती हैं उनसे मिलकर वह नये मिश्रित पदार्थ बना देता है। कभी-कभी उसमें वस्तुयें धीरे-धीरे भी जलती हैं, जैसे कि लोहा पड़ा-पड़ा मोर्चा खाने लगता है। मोर्चा लगना एक रीति से लोहे का धीरे-धीरे जलना है और मोर्चा लोहे और ओषजन का यौगिक है। लेकिन जब हम अनार और फुलझड़ी को छुड़ाते हैं, तो उसमें भरे हुए लोहे का रेत तेजी से भभक उठता है और सफेद चकाचौंध करनेवाली रोशनी पैदा करता है, क्योंकि वह उन आतिशबाजियों में भरे हुए रासायनिक वस्तुओं के ओषजन से मिलने पर तेजी से जल उठता है। जिस प्रकार आतिशबाज़ो की रासायनिक वस्तुओं में से छूटकर ओषजन उनमें महान् शक्ति पैदा कर देता है, उसी प्रकार जो भोजन हम ग्रहण करते हैं, वे शरीर में जलकर ओषजन बनाते हैं और इसी ओषजन से हम अपनी शक्ति प्राप्त करते हैं। इससे स्पष्ट विदित होता है कि ओषजन जीवधारियों के लिए कैसा आवश्यक है, क्योंकि जीवन भर सदा किसी-न-किसी प्रकार की क्रिया होती रहती है और हर काम के लिए शक्ति चाहिए। यह शक्ति ओषजन से ही प्राप्त होती है।

(३) उद्जन और जीव

पानी का दूसरा भाग उद्जन तत्त्वों में सबसे हलका है। हवा से चौदह गुना हलका होने के कारण यही गैस गुब्बारों में भरा जाता है, जिसके कारण वे हवा में ऊपर उड़ते चले जाते हैं। स्वतन्त्र अवस्था में वह आम तौर से नहीं पाया जाता, लेकिन कभी-कभी ज्वालामुखी पर्वतों से निकलनेवाले वायव्यों में मिल जाता है। मिश्रित रूप में वह बहुत-सी यौगिक वस्तुओं जैसे मिश्री, चीनी या चर्बी इत्यादि में पाया जाता है।

(४) कार्बन और जीव

दूसरी सरल मिश्रित वस्तु कार्बन-द्वयोषिद (कार्बन डाइआक्साइड) भी जीवन-मूल के लिए पानी की तरह ही आवश्यक है। इस गैस का विचित्र गुण यह है कि पानी और हवा दोनों में यह क़रीब-क़रीब एक ही मात्रा में पाया जाता है। इसलिए जीवधारी इसको दोनों ही पदार्थों से प्राप्त करते हैं। कार्बन-द्वयोषिद पानी में घुलकर कार्बोनिकाम्ल (कार्बोनिक एसिड गैस) बन जाता है। यह गैस बहुत कोमल होता है और पानी को क़रीब-क़रीब अविषम (Neutral) रखने में सहायक होता है, अर्थात् न अधिक क्षारीय न आम्लिक। यह बड़े महत्त्व की बात है, क्योंकि जब तक पानी शिथिल (Neutral) रहता है, वह अपने से संसर्ग में आनेवाली चीजों से न तो संगत करता है और न उन पर कोई प्रभाव दिखाता है। यदि पानी क्षारीय अथवा आम्लिक हो जाय, तो वह रासायनिक दृष्टि से क्रियाशील हो जाता है और शीघ्र उसमें जीवन असम्भव हो जाता है। इसलिए वास्तव में सागर और जीवन-मूल या जीवधारियों की आन्तरिक दशाएँ ऐसी सधी हुई होती हैं कि वे उनको स्थिर और अविषम बनाये रखती हैं।

यह कार्बन-द्वयोषिद भी दो तत्त्वों का बना है—अर्थात् कार्बन और ओषजन—और जीवित पदार्थों को अधिक परिमाण में जिस कार्बन की आवश्यकता होती है, उसका मुख्य साधन यही है। यथार्थ में कार्बन ही वह ठर्रा अथवा चट्टान है जिस पर सम्पूर्ण जीवन बनाया गया है। जीवधारियों का आधे से अधिक ठोस अंश इसी के द्वारा बनता है। परन्तु कार्बन शरीर का इतना आवश्यक भाग होते हुए भी किसी भी प्राणी में स्वतन्त्र अवस्था में नहीं मिलता। सच तो यह है कि यदि शुद्ध कार्बन खा लिया जाय तो जीवन-मूल उसको पचा ही नहीं सकता। अतः इसको खाने से शरीर को कुछ लाभ नहीं होता। स्वतन्त्र अवस्था में कार्बन तीन रूपों में होता है—कोयला, सुरमा और हीरा। प्राणि-जीवन और वनस्पति-जीवन की कोई भी वस्तु

जलाई जाय, तो पीछे थोड़ी काली राख ज़रूर ही बच जायगी। इससे यह सिद्ध होता है कि उसमें कार्बन भी जरूर है। यह हमारा सौभाग्य है कि प्रकृति ने हमारे लिए ऐसी अनमोल वस्तु को नाना प्रकार के भोजनों में स्वय मिला दी है जिसके कारण हमको उसे कहीं ढूँढना नही पड़ता।

(४) नोषजन और जीव

चौथा महत्त्वशील तत्त्व, जो जीवित शरीरो मे पाया जाता है, नोषजन (नाइट्रोजन) वायव्य है, जो स्वतन्त्र अवस्था मे वायु मे मिलता है। वायु के हर पॉच भाग मे चार भाग नोषजन होता है। ओषजन और कार्बन की भॉति यह वायव्य दूसरे तत्त्वो से आसानी से नहीं मिलता, तो भी सब जीवित कोषो मे यह दूसरे तत्त्वों से मिला हुआ पाया जाता है। यदि यह पदार्थ भोजन मे न हो, तो कोई वस्तु बन न सके। इसलिए जीवधारियों के लिए भी यह वायव्य आवश्यक है।

(५) अन्य तत्त्व और जीव

इन चारो तत्त्वो के सयोग से, जिनका हाल हम ऊपर बता चुके हैं, बहुत-सी ऐसी सयुक्त यौगिक वस्तुऍ बन जाती हैं कि अब तक रसायनवेत्ता उनमे से कई एक की रचना ठीक-ठीक नहीं निश्चय कर सके हैं। इन्हीं मे से एक पदार्थ प्रत्यामिन (प्रोटीन) है, जो जीवधारियों का एक जरूरी अश है। सभी प्रत्यामिन मे नोषजन, कार्बन और ओषजन के अतिरिक्त और भी तत्त्व हैं, जैसे स्फुर और गन्धक। इनकी कठिन बनावट का कुछ ज्ञान आपको इस बात से हो सकता है कि इनके एक अणु मे एक हजार से अधिक परमाणु हो सकते हैं। प्रत्यामिन जीवित पदार्थ का ऐसा सबसे ज्यादा लाक्षणिक अश है कि उसके बिना हम उनका ध्यान भी नहीं कर सकते। चैतन्य वस्तुओ मे स्फुर चूना और अन्य चीजो के साथ मिला हुआ होता है। हरएक जीवित कोष के केन्द्र का यह मुख्य भाग है और इसीलिए वह जीव के लिए सबसे आवश्यक वस्तु है। जीवधारी इसको ऐसे खाद्य पदार्थों द्वारा ग्रहण करते हैं, जैसे अडा, दूध, पनीर, और बिना छने आटे की रोटी। बहुत-से शाक-पात मे भी स्फुर पाया जाता है। गन्धक बहुत ही कम मात्रा मे केन्द्र के जीवन-मूल मे होता है।

हमारे शरीर के मूल तत्त्व

प्रतिशत ५५ भाग कार्बन (क), २३ भाग ओषजन (ओ), १४ भाग नोषजन (नो), ७ भाग उद्‌जन (उ) और १ भाग स्फुर-गधक आदि (स० ग०)।

इससे आप जान गये होंगे कि जीवन-मूल की मुख्य वस्तुऍ निम्नलिखित मात्रा मे होती हैं:—

कार्बन	(क)	५५ भाग
ओषजन	(ओ)	२३ ,,
नोषजन	(नो)	१४ ,,
उद्‌जन	(उ)	७ ,,
स्फुर, गन्धक आदि	(स० ग०)	१ ,,

उपर्युक्त वस्तुओ के अतिरिक्त और भी छोटी छोटी चीजे पोटाश (खार), चूना, सोडा, लोहा इत्यादि हैं, जिनसे प्राणियो के चैतन्य और क्रियाशील भाग नही बनते, लेकिन वे उनके शरीर मे अन्य परिस्थितियो मे लाभदायक होते हैं। हमारे शरीर मे पाचन क्रिया-सम्बन्धी कुछ कोष हमारे भोजन से चूना लेकर थोड़े से स्फुर मे सयुक्त करके हमारे शरीर को उचित स्थिति मे क़ायम रखने मे सहायक होते हैं। इसी प्रकार लोहा तथा अन्य शेष वस्तुऍ भी दूसरे तत्त्वों को सहायता देने के लिए आवश्यक हैं।
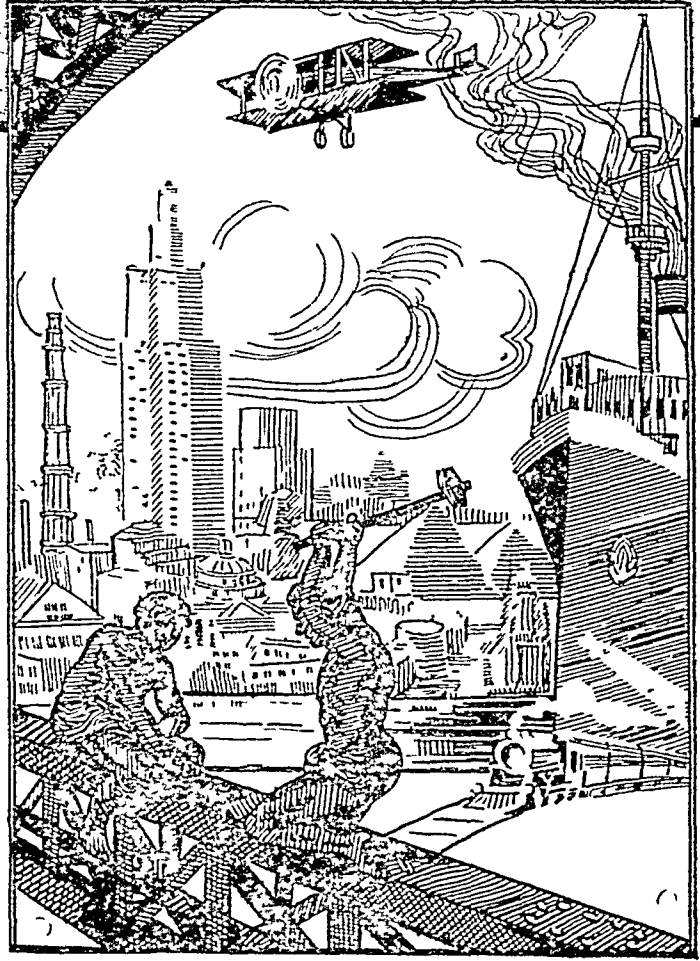
मनुष्य
की कहानी
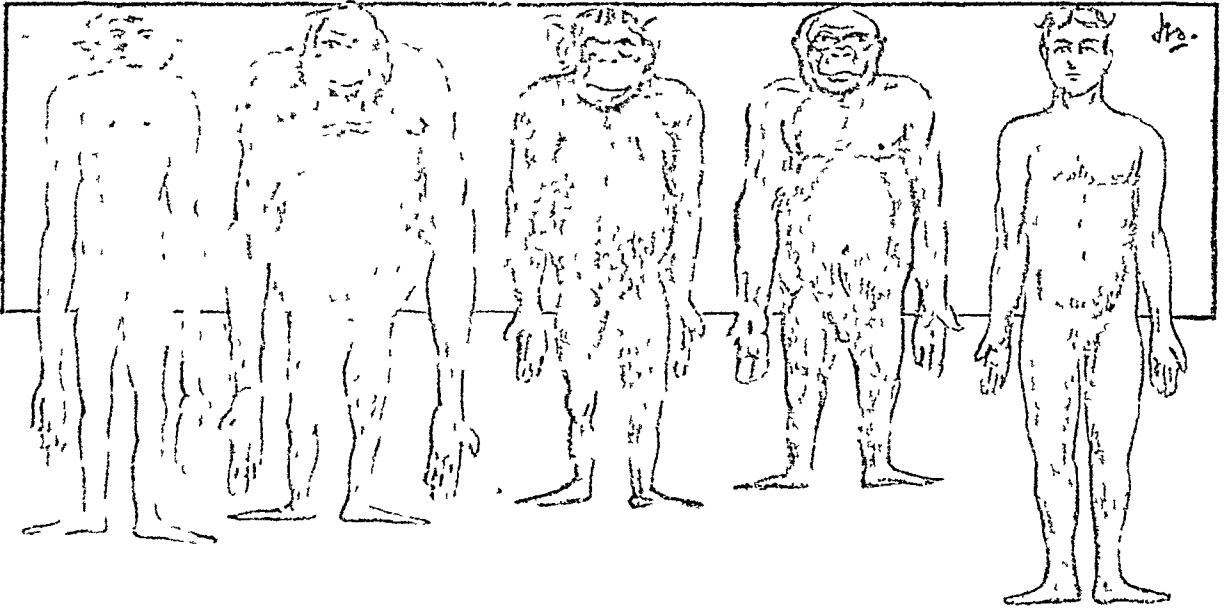
पाँचो प्रकार के मानवसम बानर

(बायीं ओर से) गिब्बन, ओरेंगउटाग, चिम्पाञ्ज़ी, गोरिल्ला और आदमी । ये सब खड़े बनाये गये हैं, जिससे धड़ के मुकाबले में उनके हाथ पैरों की लम्बाई साफ़ प्रगट हो रही है ।

(बाईं ओर) चिम्पाञ्ज़ी का बुद्धिबल

इसमें सन्देह नहीं कि चिम्पाञ्ज़ी और मनुष्य के मस्तिष्क की मौलिक रचना एक ही-सी है, यद्यपि चिम्पाञ्ज़ी का दिमाग बहुत साधारण है और बिलकुल हमारे दिमाग की तरह काम नहीं करता । यह सिद्ध हो चुका है कि वह सिर्फ़ नक़ल ही नहीं कर सकता, या जो चालाकी के काम वह एक बार संयोग से कर लेता है उनका करना याद ही नहीं रखता, वरन् अपने कार्यों का आगा-पीछा भी थोड़ा-बहुत सोच सकता है । वह कोट-पतलून पहनना, कुर्सी पर बैठकर छूरी-काँटे से खाना और चाय पीना, बाइसिकिल पर सैर करना, और सिगरेट पीना ही नहीं सीख सका है, वरन् उसके सामने कोई समस्या—जो बहुत कठिन न हो—रख दी जाय, तो वह उसे सोच-विचारकर हल कर डालता है । इस प्रकार के कठिन काम उसने कर दिखाये हैं । विलायत में एक चिम्पाञ्जी को बड़े कटहरे में बन्द कर दिया और कटहरे के बाहर केलों का एक गुच्छा काफ़ी ऊँचाई पर लटका दिया गया । कटहरे के अन्दर उसकी पहुँच के बाहर एक टेढी मूठवाली छड़ी लटका दी गई, और कोने में एक लकड़ी का बक्स रख दिया गया । उस होशियार चिम्पाञ्जी ने बिना किसी पहले अनुभव के अपने आस-पास की दशा को ताड़ लिया । बक्स को ढकेलकर वह उस पर चढ़ गया और छड़ी उतार ली, फिर छड़ी और बक्स केलों की ओर ले गया और बक्स पर खड़े होकर छड़ी से केलों को तोड़कर खा गया । तब कौन कह सकता है कि चिम्पाञ्जी मूर्ख है ?
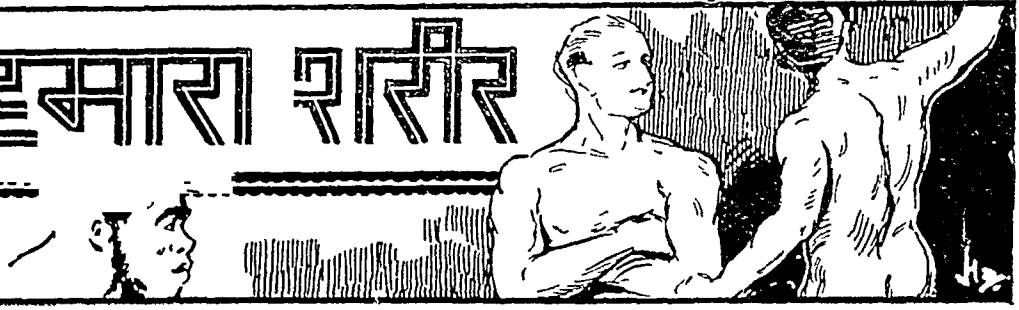
हम कौन और क्या हैं ?

अन्य प्राणियों से हमारी श्रेष्ठता

जतु-जगत् मे मनुष्य का कौन-सा स्थान है और कौन उसके निकट सगे-संबंधी हैं, यह हम पिछले अक मे देख चुके। यहाँ हमें देखना है कि एक पशु होकर भी मनुष्य मे कौन सी विशेषता है जिससे वह अन्य प्राणियो से श्रेष्ठ है ।

इस विषय के पहले लेख मे हम यह विचार कर चुके है कि मनुष्य-जाति का इस ससार-चक्र मे कौन-सा स्थान है। अन्य प्राणियो के साथ तुलना करके हमने यह देखा है कि इस व्यापक ससार के असख्य प्राणियो मे मनुष्य भी एक प्राणी है। मनुष्य की रचना जीवनशास्त्र तथा रसायनशास्त्र के नियमों की दृष्टि से अन्य जीवधारियो की शरीर-रचना से भिन्न नही है। मानव-शरीर उन्हीं मुख्य सस्थानो के समूह से बना हुआ है, जिनसे अन्य जीव बने हैं। इस रचना के साधारण तत्त्व सब प्राणियो मे एक-से ही हैं। मनुष्य के शरीर मे लगभग दो सौ स्नायु (Muscles) हैं, परन्तु उनमे एक भी ऐसा नहीं जो केवल उसके ही शरीर मे विद्यमान हो अर्थात् और कही न पाया जाय। मनुष्य तथा अन्य प्राणियो की गर्भावस्था बहुत समय तक एक-सी ही रहती है। सच तो यह है कि मनुष्य के जीवन मे जितने भी काम होते हैं, वे अन्य जानवरो की ही तरह होते हैं, किन्तु कोई बात कम है, कोई ज्यादा। न तो मनुष्य मे शेर या हाथी-जैसा बल है, न वह उनके बराबर खा ही सकता है, न उसकी आवाज ही उतनी दूर तक पहुँच सकती है, जितनी दूर तक शेर की दहाड या हाथी की चिंघाड। उसकी सुनने की शक्ति भी उतनी तेज़ नही, जितनी जगल मे रहनेवाले हिरन, बिल्ली, खरगोश इत्यादि की। उसकी दृष्टि भी उतनी तेज नहीं, जितनी चील व अन्य चिडियो की। उसके सूँघने की शक्ति गिद्ध व चींटी से भी बहुत कम है। इन सब बातो मे कम होते हुए भी मनुष्य कैसे सब जानवरों पर हावी रहता है? केवल अपनी बुद्धि और कपट से।

"आदमी का मन या मस्तिष्क वह चीज़ है, जिसने आज उसे अन्य जीवधारियो से ऊँचा उठा रक्खा है। मस्तिष्क ही की बदौलत आदमी अपनी प्रारम्भिक अवस्था से ऊँचा उठकर आज सभ्य बन पाया है। वह हवा मे उडता है, समुद्र की छाती पर रौंदता हुआ चलता है, सात समुद्र पार बैठे हुए अपने मित्रो से बातचीत करता है, यहाँ तक कि उन्हे उतनी ही दूर पर बैठे-बैठे देखने भी लगा है। उसने प्रकृति पर विजय पा ली है, वह बीमारी और मृत्यु तक पर विजय पाने को तुला बैठा है।"

वानर-कक्षा के विशिष्ट लक्षण

यह सब होते हुए भी जैसा डाक्टर त्रिलोकीनाथ वर्मा ने अपनी 'स्वास्थ्य और रोग' नामक पुस्तक मे लिखा है, "मनुष्य एक जानवर है, जिसके चार शाखाएँ होती हैं। इनमे दो शाखाएँ चीज़ों को पकडने, लड़ने और लिखने इत्यादि के काम मे आती हैं और दो शाखाएँ चलने, फिरने, भागने, दौडने के काम मे आती हैं। अर्थात् मनुष्य दो-पाया जानवर है, बचपन मे जब वह खडा होना नही जानता, मनुष्य भी चौपाया होता है, इस समय अगली शाखाएँ भी पृथ्वी पर दौडने और चलने-फिरने मे सहायता देती हैं।" प्राणिशास्त्र-वेत्ताओं अथवा विकासवादियो ने ही नही, परन्तु विकासवाद के विरोधियों ने भी शरीर की रचना का साम्य देखकर मनुष्य का समावेश स्तनधारी श्रेणी की वानर-कक्षा मे किया है। सस्कृत मे 'वानर' आधे मनुष्य को कहते हैं। जो विशेषताएँ वानर-कक्षा मे पाई जाती हैं, वे सब मनुष्य मे भी हैं। उनमे से मुख्य ये हैं। दोनों ही मे और प्राणियों की अपेक्षा खोपडी और दिमाग़

चपटा होता है। आँखें सामने होती हैं और सामने ही देखती हैं। हाथ-पाँव लम्बे होते हैं और उनमें अन्य पदार्थों को ग्रहण करने वाली पाँच-पाँच उँगलियाँ होती हैं, जो इच्छानुसार घूमती हैं। अँगूठा घूमकर सामने आ जाता है और यदि सब उँगलियों में नहीं तो कम-से-कम अँगूठे का नाखून जरूर चपटा होता है। सभी में स्त्री के वक्षस्थल पर दो स्तन होते हैं, जिनके द्वारा वे अपने बच्चों को दूध पिलाती हैं। हँसली की अस्थियाँ दृढ और पूरी तरह से बढी होती हैं। दूध के दाँत गिरकर स्थिर दाँत उगते हैं और इनकी संख्या कक्षा के सब प्राणियों में नियत होती है। इनमें गर्भावस्था में माता और गर्भ का संग नाल द्वारा होता है। हम पहले लेख में यह भी बता चुके हैं कि मनुष्य का वंश वन-मानुषों के वंश से अलग है, जैसे वन-मानुषों का वंश अन्य वानर-वंशों से। परन्तु उपर्युक्त लक्षण सभी में पाये जाते हैं। मनुष्य के सबसे निकट सम्बन्धी मानव-सम वानरों का विस्तारपूर्वक वर्णन जन्तु-जगत् के भाग में क्रमशः आपको मिलेगा। परन्तु उनके मुख्य लक्षण, जिनसे कि वे अन्य प्रधान-भागीयों से विभिन्न किये जाते हैं, हम यहाँ देते हैं। उनका अपूर्ण खडा आसन, उनके हाथ-ऐसे पैर जिनसे कि वे जमीन पर भलीभाँति नहीं चल सकते, उनका आगे को बढा हुआ सिर, मजबूत, बिना ठोढी के, आगे को निकले हुए जबडे, नीचा और पीछे को दबा हुआ माथा, भौं के ऊपर ऊँची निकली हुई हड्डी — ये उनके मुख्य लक्षण हैं। मनुष्य की खोपडी से उनकी खोपडी में आधी से कम जगह होती है। यह कहा जाता है कि वन-मानुषों का मानसिक स्वभाव दो-तीन वर्ष के आदमी के बच्चे के बराबर होता है। किन्तु शारीरिक गुणों में मनुष्य और वन-मानुषों में केवल मात्रा का ही अन्तर है।

मनुष्य-वंश और वन-मानुषों के गुणों की तुलना

जिस प्रकार उपर्युक्त गुणों से मानव सम बन्दर अन्य वानरों से पृथक् किये जाते हैं, उसी प्रकार मनुष्य भी अन्य प्रधानभागियों से कई मुख्य लक्षणों द्वारा अलग मानव-वंश (Homidæ) में रक्खा जाता है। मनुष्य बिलकुल सीधा खडा होकर घटों चलता-फिरता है, किन्तु दूसरे जीव अपनी पिछली टाँगों पर थोडे ही समय तक खडे हो सकते हैं। गोरिल्ला और चिम्पाञ्जी ही ऐसे हैं जो कमर झुकाये पिछली टाँगों पर खडे होकर दो-चार पग चल-फिर लेते हैं। बन्दर भी मदारी के सिखाने से रस्सी या छडी पकड़कर दो पैरों पर चल लेता है, लेकिन कोई प्राणी मनुष्य की तरह बिल्कुल सीधा होकर नहीं चल-फिर सकता। कहा जाता है कि मनुष्य के पूर्वजों ने जब पिछली टाँगों पर चलना सीख लिया, तो उनकी भुजाएँ और हाथ दूसरे कार्य करने के लिए खाली हो गये और उनको अवसर मिला कि हाथों को धीरे-धीरे नाना प्रकार के कामों में लगाते हुए निपुण कार्य करने योग्य बना लें। इस प्रकार हाथ और पैरों के काम अलग-अलग बँट जाने से उनके रूप में भी अन्तर हो गया। हम अपने हाथ के अँगूठे की तरह पैर के अँगूठे को उँगलियों से नहीं छुआ सकते और न बन्दरों की तरह

चिम्पाञ्जी की होशियारी

इस चित्र में तीन पालतू चिम्पाञ्जी कुर्सी और मेज पर बैठकर आदमी की तरह चाय पी रहे हैं और छुरी-काँटे से खाना खा रहे हैं।

पैरों से कोई चीज़ पकड़ने का काम ले सकते हैं। अन्य वन-मानुषों से तुलना करते हुए पता लगता है कि हमारी भुजाएँ टाँगों से अधिक छोटी होती हैं और शरीर पर बाल भी बहुत कम होते हैं। मानव-सम बन्दरों के समान न तो मनुष्य में जबड़े आगे निकले हुए हैं, न आँखों के ऊपर की हड्डियाँ उनकी-सी उभरी हुई हैं, और न उसके कुक्कुर दन्त (Canine teeth) या कीले अन्य दाँतों से लम्बे होते हैं। मनुष्य में साफ़ ठोड़ी होती है और उसकी नाक नुकीली और ऊपर की ओर गड्ढेदार होती है। ऊपरी होंठ के बीचोबीच में एक नाली भी बनी हुई है। परन्तु सबसे मुख्य विशेषता उसके मस्तिष्क में है। मनुष्य अपने शरीर की साधारण रचना से बन्दरों से इतना भिन्न नहीं किया जा सकता है, जितना कि उनकी तुलना में अपने बड़े मस्तिष्क द्वारा। उसका मस्तिष्क बड़े-से-बड़े वन-मानुष के मस्तिष्क से दो या तीन गुना बड़ा होता है। मनुष्य का मस्तिष्क वजन में १३८० माशे, गौरिल्ला का ६०० माशे, चिम्पाञ्ज़ी का ४५० माशे और घोड़े का ६५० माशे होता है।

सर आर्थर कीथ का कथन है कि मनुष्य के गुणों में से ६८ चिम्पाञ्ज़ी में, ८७ गोरिल्ला में, ८४ गिब्बन में, ६० पश्चिमी गोलार्द्ध (नई दुनिया) के बन्दरों में, ५६ उरंग-ओटांग में और ५३ पूर्वी गोलार्द्ध (पुरानी दुनिया) के बन्दरों में मिलते हैं। सर्वश्रेष्ठ वन-मानुष और सबसे प्राचीन मनुष्य में इतना मानसिक भेद है कि उनकी तुलना करना बहुत कठिन है।

मनुष्य के मस्तिष्क का चित्र
बायीं ओर से इसमें बोलने, स्वाद लेने, सुनने और देखने के केन्द्र दिखाये गये हैं।

चिम्पाञ्ज़ी की होशियारी

इसमें सन्देह नहीं कि चिम्पाञ्ज़ी और मनुष्य के मस्तिष्क की मौलिक रचना एक ही-सी है, परन्तु चिम्पाञ्ज़ी का दिमाग बहुत साधारण है और बिल्कुल हमारे दिमाग की तरह काम नहीं करता। यह सिद्ध हो चुका है कि वह सिर्फ नकल ही नहीं कर सकता, या जो चालाकी के काम वह एक बार संयोग से कर लेता है उनको करना याद ही नहीं रखता है, वरन् अपने कार्यों का आगा-पीछा भी थोड़ा बहुत सोच सकता है। वह कोट-पतलून पहनना, कुर्सी पर बैठकर छूरी-काँटे से खाना और चाय पीना, बाइसिक्लि पर सैर करना, और सिगरेट पीना ही नहीं सीख सका है, वरन् उसके सामने कोई समस्या—जो बहुत कठिन न हो—रख दी जाय, तो वह उसे सोच-विचारकर हल कर डालता है। इस प्रकार के कठिन काम उसने कर दिखाये हैं। विलायत में एक चिम्पाञ्ज़ी को बड़े कटहरे में बन्द कर दिया और कटहरे के बाहर केलों का एक गुच्छा काफी ऊँचाई पर लटका दिया गया। कटहरे के अन्दर उसकी पहुँच के बाहर एक टेढ़ी मूठवाली छड़ी लटका दी गई, और कोने में एक लकड़ी का बक्स रख दिया गया। उस होशियार चिम्पाञ्ज़ी ने बिना किसी पहले अनुभव के अपने आस-पास की दशा को ताड़ लिया। बक्स को ढकेलकर वह उस पर चढ़ गया और छड़ी उतार ली, फिर छड़ी और बक्स केलों की ओर ले गया और बक्स पर खड़े होकर छड़ी से केलों को तोड़कर खा गया। (देखो पृष्ठ १८२ का चित्र) तब कौन कह सकता है कि चिम्पाञ्ज़ी मूर्ख है? और भी बहुत-से प्राणियों में ऐसे ही उम्दा दिमाग होते हैं, लेकिन मनुष्य के निकट कोई भी नहीं पहुँच सकता। वे बहुत-से बुद्धि के काम कर दिखाते हैं, किन्तु यह कहना कि चिम्पाञ्ज़ी के बराबर भी और किसी में अपने कर्त्तव्यों का परिणाम सोचने की योग्यता है या नहीं, असम्भव है। यों तो बन्दर और रीछ नाचना, पैसा माँगना, सलाम करना, पैर छूना, मूढ़े पर बैठकर डमरू बजाना, अपनी स्त्री को प्यार करना और उससे रूठना सीख लेते हैं। गाय-बकरी अपने भोजन का समय पहचान जाती हैं। बिल्ली मिठाई खाने के लिए अलमारी की कुंडी खोलना सीख लेती है। सरकसों में शेर, हाथी घोड़े बहुत-से अनोखे काम कर दिखाते हैं।

मनुष्य कैसे वन-मानुषों से पृथक् हुआ

इन बातों से मालूम होता है कि मनुष्य और ऊँचे-से-

बढ़ा होता है। आँखें सामने होती हैं और सामने ही देखती हैं। हाथ-पाँव लम्बे होते हैं और उनमें अन्य पदार्थों को ग्रहण करने वाली पाँच-पाँच उँगलियाँ होती हैं, जो इच्छानुसार घूमती हैं। अँगूठा घूमकर सामने आ जाता है और यदि सब उँगलियों में नहीं तो कम-से-कम अँगूठे का नाखून जरूर चपटा होता है। सभी में स्त्री के वक्षस्थल पर दो स्तन होते हैं, जिनके द्वारा वे अपने बच्चों को दूध पिलाती हैं। हँसली की अस्थियाँ दृढ़ और पूरी तरह से बढ़ी होती हैं। दूध के दाँत गिरकर स्थिर दाँत उगते हैं और इनकी संख्या कक्षा के सब प्राणियों में नियत होती है। इनमें गर्भावस्था में माता और गर्भ का संग नाल द्वारा होता है। हम पहले लेख में यह भी बता चुके हैं कि मनुष्य का वंश वन-मानुषों के वंश से अलग है, जैसे वन-मानुषों का वंश अन्य वानर-वंशों से। परन्तु उपर्युक्त लक्षण सभी में पाये जाते हैं। मनुष्य के सबसे निकट सम्बन्धी मानव-सम वानरों का विस्तारपूर्वक वर्णन जन्तु-जगत् के भाग में क्रमशः आपको मिलेगा। परन्तु उनके मुख्य लक्षण, जिनसे कि वे अन्य प्रधान-भागीयों से विभिन्न किये जाते हैं, हम यहाँ देते हैं। उनका अपूर्ण खड़ा आसन, उनके हाथ-ऐसे पैर जिनसे कि वे जमीन पर भलीभाँति नहीं चल सकते, उनका आगे को बढ़ा हुआ सिर, मजबूत, बिना ठोढ़ी के, आगे को निकले हुए जबड़े, नीचा और पीछे को दबा हुआ माथा, भौं के ऊपर ऊँची निकली हुई हड्डी— ये उनके मुख्य लक्षण हैं। मनुष्य की खोपड़ी से उनकी खोपड़ी में आधी से कम जगह होती है। यह कहा जाता है कि वन-मानुषों का मानसिक स्वभाव दो-तीन वर्ष के आदमी के बच्चे के बराबर होता है। किन्तु शारीरिक गुणों में मनुष्य और वन-मानुषों में केवल मात्रा का ही अन्तर है।

मनुष्य-वंश और वन-मानुषों के गुणों की तुलना

जिस प्रकार उपर्युक्त गुणों से मानव सम बन्दर अन्य वानरों से पृथक् किये जाते हैं, उसी प्रकार मनुष्य भी अन्य प्रधानभागियों से कई मुख्य लक्षणों द्वारा अलग मानव-वंश (Homidæ) में रक्खा जाता है। मनुष्य बिलकुल सीधा खड़ा होकर घंटों चलता-फिरता है, किन्तु दूसरे जीव अपनी पिछली टाँगों पर थोड़े ही समय तक खड़े हो सकते हैं। गोरिल्ला और चिम्पाञ्जी ही ऐसे हैं जो कमर झुकाये पिछली टाँगों पर खड़े होकर दो-चार पग चल-फिर लेते हैं। बन्दर भी मदारी के सिखाने से रस्सी या छड़ी पकड़कर दो पैरों पर चल लेता है, लेकिन कोई प्राणी मनुष्य की तरह बिल्कुल सीधा होकर नहीं चल-फिर सकता। कहा जाता है कि मनुष्य के पूर्वजों ने जब पिछली टाँगों पर चलना सीख लिया, तो उनकी भुजाएँ और हाथ दूसरे कार्य करने के लिए खाली हो गये और उनको अवसर मिला कि हाथों को धीरे-धीरे नाना प्रकार के कामों में लगाते हुए निपुण कार्य करने योग्य बना ले। इस प्रकार हाथ और पैरों के काम अलग-अलग बँट जाने से उनके रूप में भी अन्तर हो गया। हम अपने हाथ के अँगूठे की तरह पैर के अँगूठे को उँगलियों से नहीं छुआ सकते और न बन्दरों की तरह

चिम्पाञ्जी की होशियारी

इस चित्र में तीन पालतू चिम्पाञ्जी कुर्सी और मेज पर बैठकर आदमी की तरह चाय पी रहे हैं और छुरी-काँटे से खाना खा रहे हैं।

पैरो से कोई चीज पकड़ने का काम ले सकते हैं। अन्य वन-मानुषों से तुलना करते हुए पता लगता है कि हमारी भुजाएँ टाँगों से अधिक छोटी होती हैं और शरीर पर बाल भी बहुत कम होते हैं। मानव-सम बन्दरो के समान न तो मनुष्य मे जबड़े आगे निकले हुए हैं, न आँखो के ऊपर की हड्डियाँ उनकी-सी उभरी हुई हैं, और न उसके कुक्कुर दन्त (Canine teeth) या कीले अन्य दाँतों से लम्बे होते हैं। मनुष्य मे साफ ठोडी होती है और उसकी नाक नुकीली और ऊपर की ओर गड्ढेदार होती है। ऊपरी होंठ के बीचोबीच मे एक नाली भी बनी हुई है। परन्तु सबसे मुख्य विशेषता उसके मस्तिष्क मे है। मनुष्य अपने शरीर की साधारण रचना से बन्दरो से इतना भिन्न नहीं किया जा सकता है, जितना कि उनकी तुलना मे अपने बडे मस्तिष्क द्वारा। उसका मस्तिष्क बडे-से-बडे वन-मानुष के मस्तिष्क से दो या तीन गुना बडा होता है। मनुष्य का मस्तिष्क वजन मे १३९० माशे, गौरिल्ला का ६०० माशे, चिम्पाञ्ज़ी का ४५० माशे और घोडे का ६५० माशे होता है।

सर आर्थर कीथ का कथन है कि मनुष्य के गुणों मे से ९८ चिम्पाञ्ज़ी मे, ८७ गोरिल्ला मे, ८४ गिब्बन मे, ६० पश्चिमी गोलार्द्ध (नई दुनिया) के बन्दरों मे, ५६ उरेंग-ओटांग मे और ५३ पूर्वी गोलार्द्ध (पुरानी दुनिया) के बन्दरों मे मिलते हैं। सर्वश्रेष्ठ वन-मानुष और सबसे प्राचीन मनुष्य मे इतना मानसिक भेद है कि उनकी तुलना करना बहुत कठिन है।

मनुष्य के मस्तिष्क का चित्र

बायीं ओर से इसमें बोलने, स्वाद लेने, सुनने और देखने के केन्द्र दिखाये गये हैं।

चिम्पाञ्ज़ी की होशियारी

इसमे सन्देह नही कि चिम्पाञ्जी और मनुष्य के मस्तिष्क की मौलिक रचना एक ही-सी है, परन्तु चिम्पाञ्जी का दिमाग बहुत साधारण है और बिल्कुल हमारे दिमाग की तरह काम नही करता। यह सिद्ध हो चुका है कि वह सिर्फ नक़ल ही नही कर सकता, या जो चालाकी के काम वह एक बार सयोग से कर लेता है उनका करना याद ही नही रखता है, वरन् अपने कार्यों का आगा-पीछा भी थोडा बहुत सोच सकता है। वह कोट-पतलून पहनना, कुर्सी पर बैठकर छूरी-काँटे से खाना और चाय पीना, बाइसिकिल पर सैर करना, और सिगरेट पीना ही नही सीख सका है, वरन् उसके सामने कोई समस्या—जो बहुत कठिन न हो—रख दी जाय, तो वह उसे सोच-विचारकर हल कर डालता है। इस प्रकार के कठिन काम उसने कर दिखाये हैं। विलायत मे एक चिम्पाञ्ज़ी को बडे कटहरे मे बन्द कर दिया और कटहरे के बाहर केलों का एक गुच्छा काफी ऊँचाई पर लटका दिया गया। कटहरे के अन्दर उसकी पहुँच के बाहर एक टेढी मूठवाली छडी लटका दी गई, और कोने मे एक लकडी का बक्स रख दिया गया। उस होशियार चिम्पाञ्ज़ी ने बिना किसी पहले अनुभव के अपने आस-पास की दशा को ताड लिया। बक्स को ढकेलकर वह उस पर चढ गया और छडी उतार ली, फिर छडी और बक्स केलों की ओर ले गया और बक्स पर खडे होकर छडी से केलो को तोड़कर खा गया। (देखो पृष्ठ १८२ का चित्र) तब कौन कह सकता है कि चिम्पाञ्ज़ी मूर्ख है? और भी बहुत-से प्राणियो मे ऐसे ही उम्दा दिमाग़ होते हैं, लेकिन मनुष्य के निकट कोई भी नही पहुँच सकता। वे बहुत-से बुद्धि के काम कर दिखाते हैं, किन्तु यह कहना कि चिम्पाञ्ज़ी के बराबर भी और किसी मे अपने कर्त्तव्यों का परिणाम सोचने की योग्यता है या नही, असम्भव है। यो तो बन्दर और रीछ नाचना, पैसा माँगना, सलाम करना, पैर छूना, मूढे पर बैठकर डमरू बजाना, अपनी स्त्री को प्यार करना और उससे रूठना सीख लेते हैं। गाय-बकरी अपने भोजन का समय पहचान जाती हैं। बिल्ली मिठाई खाने के लिए अलमारी की कुडी खोलना सीख लेती है। सरकसों मे शेर, हाथी, घोडे बहुत-से अनोखे काम कर दिखाते हैं।

मनुष्य कैसे वन-मानुषों से पृथक् हुआ

इन बातों से मालूम होता है कि मनुष्य और ऊँचे-से-

ऊँचे अन्य पशुओं की बुद्धि में इतना विशाल अन्तर होने का कारण मनुष्य के मस्तिष्क का बड़ा और भारी होना ही है। मनुष्य का औसत डील के दिमाग का बोझ भारी-से-भारी गोरिल्ला के मस्तिष्क से दुगुने से भी अधिक होता है। इसकी वृद्धि उसके सबसे विशेष भाग, वृहत् मस्तिष्क (Cerebral hemisphere) के वल्क (Cortex) में ही हुई है, जो बुद्धि, स्पर्श-ज्ञान, वाक्शक्ति, और विचार आदि का केन्द्र है। हमारे वृहत् मस्तिष्क के वात-कोषों की संख्या ६,२००,०००,००० (नौ अरब बीस करोड) है। इसी कारण वह बहुत पेचीदा हो गया है। मस्तिष्क की वृद्धि से ही जैसे वन-मानुषों ने अन्य प्राणियों की अपेक्षा उच्चता प्राप्त की, उसी प्रकार मनुष्य भी वन-मानुषों पर मस्तिष्क की अत्यधिक वृद्धि के कारण ही उच्चता को प्राप्त हुआ। मस्तिष्क की उन्नति ने उसे शारीरिक बल के स्थान पर यान्त्रिक बल प्रयुक्त करना सिखा दिया। उसमें सोचने, विचारने, पढ़ने, लिखने इत्यादि के केन्द्र अन्य जानवरों की अपेक्षा बड़े और उत्तम होते हैं। उसमे बुद्धि अधिक होती है, जो काम अन्य जानवर नही कर सकते, उन्हे वह कर सकता है। वह किसी विषय पर अपने मन में वाद-विवाद कर, उस विषय का निर्णय कर सकता है, जो और कोई नहीं कर सकता। बुद्धि की ही बदौलत वह शेर, हाथी, हेल को भी— जो उससे कहीं अधिक बलशाली हैं—सहज मे वश मे कर लेता है। शारीरिक बल के स्थान पर यान्त्रिक बल की उन्नति होने पर मनुष्य में धीरे-धीरे अग्नि, जल, भोजन के पदार्थों और वस्त्रों के आच्छादन का ज्ञान हुआ। पत्थर फेंकना, निशाना लगाना, पत्थरों के अस्त्र बनाना इत्यादि प्रारम्भिक कार्यों के पश्चात् शनैः-शनैः मकान बनाने और बीज बोकर खेती करने का ज्ञान उसने प्राप्त किया और क्रमश वन्य जीवन से सभ्य जीवन मे उसकी परिणति हुई। प्रथम अंगविक्षेपों, फिर चित्रमय संकेतों और उसके बाद अक्षरमय चिह्नों से अपनी इच्छा को प्रकट करने की शैली उसने ढूँढ निकाली। विचार करने की उसकी जैसी-जैसी शक्ति बढ़ती गई, वैसे-वैसे उसके पास भिन्न-भिन्न साधन भी इकट्ठे हो गये और इसी अनुपात मे उसमे और वन-मानुषों में बडा अन्तर पड़ता गया। प्रोफेसर सोलस, कीथ और हेक्ल के लगाये हुए हिसाब के अनुसार इस संसार म मनुष्य का प्रादुर्भाव हुए आज लगभग दस लाख (१०,००,०००) वर्ष बीत ... इतनी अवधि मे मनुष्य के बुद्धि सामर्थ्य मे उसमे ... मानुषों मे इतना अन्तर पड गया कि उसका मापना असम्भव है। वन-मानुषों से पृथक् होकर ही मनुष्य की उन्नति समाप्त नहीं हुई, उसके विकास का चक्र बराबर गतिशील रहा और अब भी है।

मानव मस्तिष्क, दृष्टि और कल्पना

मनुष्य का मस्तिष्क बडा और भारी होने पर उसमे और कौन-कौन मनुष्यत्व के गुण आ गये हैं, उनका वर्णन अब हम करना चाहते हैं। मनुष्य का मस्तिष्क प्रगतिशील है, वह किसी घटना के विषय मे आगे-पीछे दोनों की कल्पना कर सकता है, परन्तु अन्य पशु केवल अपने सामने ही की घटना की अनुभूति कर सकते हैं। आदमी ऐसा जानवर है, जो स्वय अपना अध्ययन अपने शरीर को स्पर्श करके या देखकर ही नहीं करता, किन्तु वह अपनी अभिलाषाओं और विचारों की छानबीन और इस बात का भी कुछ अनुभव कर सकता है कि अपने आस-पास की अद्भुत सृष्टि मे, जिसका ज्ञान उसके समझदार मन मे नेत्रों द्वारा होता है, वह क्यों भाग ले रहा है। देखभाल करने के अंग और उनकी शक्ति तो वन-मानुषों मे भी वैसी ही है, जैसी हममे किन्तु उनके दिमाग मे वह सामग्री बहुत कम या बिल्कुल नहीं पाई जाती, जिससे वे नेत्रों द्वारा दिखाई देनेवाली चीजों के बारे मे आगे-पीछे का नतीजा निकाल सकें। उनमे पेचीदा बातों को याद रखने की उतनी योग्यता नही है, जितनी हममे। अन्य प्राणियों मे तो यह शक्ति और भी कम है। आगे के लेख में आप देखेंगे, कैसे आदमी की दृष्टि और उसके सीधे खडे होने की शक्ति में एक घनिष्ट सम्बन्ध है, इन दोनों ने कैसे अन्य शक्तियों से मिलकर उसके मस्तिष्क को इस उच्च पदवी पर सुशोभित किया। यहाँ हम इतना ही बतलाना चाहते हैं कि जब मनुष्य ने सीधा खडा होना सीख लिया, तो उसकी दृष्टि पहले की अपेक्षा अधिक विस्तीर्ण हो गई। उसके चलने में हाथों की जरूरत न रही और वह उनसे चीजों को पकड़ने, छूने और टटोलने के काम लेने लगा। ज्यों-ज्यों हाथों द्वारा वस्तुओं को पकडने और उनका ज्ञान प्राप्त करने की शक्ति उसमें बढ़ती गई, त्यों-त्यों उसके हाथ या उँगलियों मे अनुकूलता और छूकर बोध करने की योग्यता बढ़ती गई और वह समय आ गया कि आदमी को देखभाल और छूकर अपने आस-पास की चीजों का पूर्ण ज्ञान होने लगा। जैसे-जैसे आवश्यकताएँ बढ़ती गई, यह बात जरूरी हो गई कि उसे जो ज्ञान देखकर और छूकर हुआ है, उसे वह भूल न जाय। इसलिए उसके दिमाग को स्मरण-शक्ति की अधिक आवश्यकता पडी, जिसके कारण मस्तिष्क के स्मरण-शक्ति-

सम्बन्धी स्थानों की उन्नति और वृद्धि होने लगी। ऐसा होने से ही हम एक बार जो कुछ देख लेते हैं, उसे याद रख सकते हैं। हम अपनी दृष्टि द्वारा ही एक चेहरे को दूसरे चेहरे से पहचानते हैं, एक रग को दूसरे रग से अलग कर सकते हैं, छूकर या देखकर, अथवा दोनो ही से, दूसरी वस्तुओ की बनावट मे भेद समझ सकते हैं। दूसरो के सकेत अथवा चेहरो के भावों को देखकर उनकी इच्छा और विचारो का थोडा-बहुत अनुभव प्राप्त कर लेते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि हमारे मस्तिष्क मे अपने पिछले अनुभवों अर्थात् उन वस्तुओं का, जिन्हे पहले देख या छू चुके हैं, या उन कामों का जिन्हे पहले कर चुके हैं, परस्पर मिलान करने की शक्ति है, अथवा यो कहिये कि हममे बड़ी पेचीदा स्मरण-शक्ति होना प्रकट है।

हमारी और जानवरों की भाषा

मस्तिष्क की समृद्धि होने की दूसरी आवश्यक सीढी मनुष्य मे वाक्-शक्ति का उदय होना भी है। मनुष्य मे यह शक्ति अन्य प्राणियो की अपेक्षा अधिक बढी-चढी है, किन्तु बहुत से अन्य जीवधारी भी बोलते-चालते हैं। चिड़ियाँ अपने बच्चे के चहचहाने के ढग से जान जाती हैं कि वह क्या चाहता है, बकरी का बच्चा अपनी माँ की आवाज़ दूर से ही पहचान लेता है, बिल्ली म्याऊँ-म्याऊँ करके अपने बच्चों को पास बुला लेती है। शेर, हाथी और बैल गरजते, चिघाडते और रभाते हैं, बुलबुल और लावा सुरीले और मधुर राग अलापते हैं। चिम्पान्जी भी आवाज लगाते हैं, जिससे उनकी ख़ुशी-नाख़ुशी प्रकट होती है। चीटा-चीटी बिना बोले ही अपने महीन सींगों (Antenna) द्वारा एक-दूसरे को इशारा करके समझाते-बुझाते हैं। मनुष्य भी बोलता, गाता और चिल्लाता है। फिर उसकी वाक्-शक्ति और जानवरो की बोलचाल मे क्या भेद है?

मिदनापुर के जंगलो मे मिली हुई लड़कियाँ

जो भेड़ियों के भिटे से पकड़कर लायी गयी थीं। (देखिए पृष्ठ १८९)

कहा जाता है कि मनुष्य ने उन्नति करके अपनी भाषा बना ली है, जिसमे एक शब्द से केवल एक ही अर्थ समझा जा सकता है, परन्तु पशुओ की बोलचाल मे साकार अभिप्राय के लिए नियुक्त शब्द नही हैं। लेकिन यह कहना कि उन मे अपने भाव या निर्णय को दूसरे मे प्रकट करने की योग्यता है ही नही, असभव जान पड़ता है। शायद लोगो का यह विचार कि अन्य प्राणियों मे कोई भाषा है ही नही, इसलिए हो कि उनकी बोली हमारी समझ मे नही आती। पर क्या एक देश के निवासी दूसरे देश के मनुष्य की भाषा बिना सीखे समझ लेते हैं? भारतीय चीनी या जापानी भाषाएँ बिल्कुल नही समझ पाते। जर्मन और फ्रांसीसी अंग्रेज़ों की तरह नही बोलते हैं।

बातचीत करनेवाली शहद की मक्खी और कुत्ते

जर्मनी के प्रोफेसर वी वौन फ्रिश, जिन्होने २७ वर्ष शहद की मक्खियो का स्वभाव अथवा बोल-चाल समझने का प्रयत्न किया, कहते हैं कि उनमे भी एक प्रकार की भाषा है जो उनके नाच या महक द्वारा प्रकट की जाती है (देखो दैनिक 'लीडर', ४ मई, १९३७)। जब कोई मक्खी किसी फूल पर काफी शहद देख लेती है, तो वह अपने छत्ते मे आकर चक्कर काटकर नाचने लगती है, उस नाच को देखकर और मक्खियाँ यह समझ जाती हैं कि उसने कही काफी शहद देखा है। यह समझकर वे उसके पास आकर सूँघती हैं कि किस फूल की सुगन्ध उसके शरीर मे से आ रही है, और उन्ही फूलो पर जाकर शहद इकट्ठा करती हैं। यदि शहद बहुत थोडा है अथवा कठिनता से मिलनेवाला है, तो वह मक्खी छत्ते मे आकर और मक्खियों को बुलाने के लिए नहीं नाचती। वह स्वयं बार-बार जाकर थोडा-थोडा शहद ले आती है। इन प्रोफेसर साहब ने मक्खियों के इस प्रकार एक दूसरे से बात करने की भाषा को पहचान लिया और

उनके नाच का फ़िल्म भी बना लिया है। इनका कथन है कि वह मछलियों से भी बातचीत कर सकते हैं और उनका दावा है कि जिस प्रकार हम सीटी बजाकर कुत्ते को अपने पास आना सिखा सकते हैं, उसी तरह मछलियों को भी सिखा सकते हैं।'

मुझे पारसाल महाराज जयपुर के पुराने महल के पीछे की झील को देखने का अवसर मिला। उस झील में कई मगर रहते हैं। वहाँ का चौकीदार हाथ से ताली बजाकर "आ आ, हा, हा" की आवाज लगाकर जब चाहे उन मगरों को अपने पास किनारे पर बुला लेता था। चाहे कितनी ही दूर क्यों न हों, उसकी आवाज सुनते ही मगर तैरते हुए उसकी ओर किनारे पर आ पहुँचते थे। जर्मनी के वैमर नगर में कुछ ऐसे प्रसिद्ध सिखाये हुए कुत्ते हैं, जिनको नम्बरों के द्वारा बातचीत करना सिखाया गया है। डाक्टर मैक्समुलर ने स्वयं जाकर इन कुत्तों को देखा है और उनका बड़ा ही मनोरंजक विवरण १४ दिसम्बर, सन १९३८, के 'लीडर' अख़बार में छपा है। उन्होंने लिखा है कि ये कुत्ते भूँककर और पंजों से थपथपाकर अक्षरों का ज्ञान दे सकते हैं। जैसे 'ए' के लिए एक बार भूँकना, 'बी' के लिए दो बार, 'सी' के लिए तीन बार और इसी तरह से आगे के अक्षरों के लिए भी उतने ही बार भूँकते और थपथपाते हैं, जितना उस अक्षर के लिए निश्चित होता है। इन प्रोफ़ेसर ने कुत्तों से लिखकर और ज़बानी कई प्रश्न किये, जिनका उत्तर कुत्तों ने बहुत सोच-समझकर और बुद्धिमानी से दिया। प्रोफ़ेसर मैक्समुलर लिखते हैं कि उनको इतनी आशा नहीं थी कि वैमर के कुत्ते साकार और निराकार विचारों को नम्बर द्वारा बातचीत में इतनी अच्छी तरह प्रकट कर सकते हैं और मनुष्य की बातों को समझ सकते हैं। इन कुत्तों ने हमें दिखला दिया है कि हमारे विचार इन शिक्षित पशुओं के विषय में कितने गलत हैं। इससे यह भी पता लगता है कि जितना हम जानवरों को समझ पाते हैं, उससे कहीं अधिक जानवर हमको समझ पाते हैं। इन हाल के पशु-सम्बन्धी अध्ययनों से हम यह स्वीकार नहीं कर सकते कि जानवरों में सोचने और अपने विचारों को प्रकट करने की योग्यता है ही नहीं। फिर भी जो लोग जानवरों को इस शक्ति से हीन बतलाते हैं, तो इसका कारण उनका अपना घमण्ड या हठधर्मी ही है।
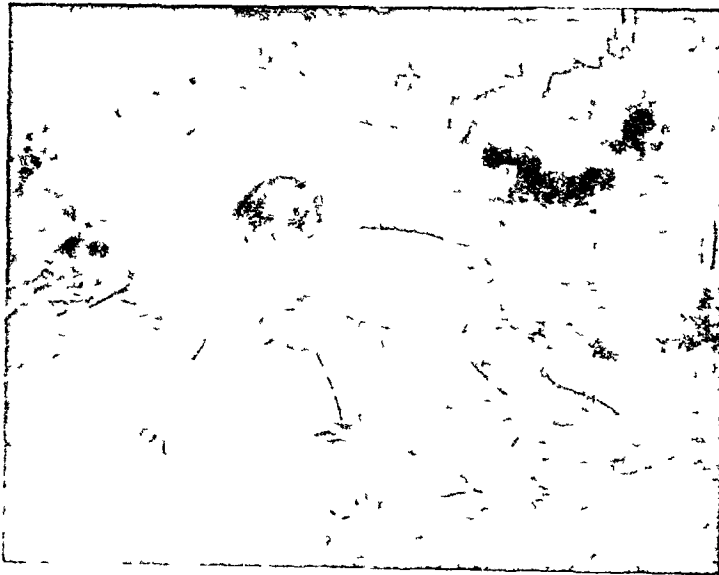
भेड़ियों द्वारा पाली गयी लड़की के चलने का ढंग

इसके सारे आचरण भेड़ियों-जैसे हो गये थे। यह उन्हीं की तरह चलती-फिरती गुर्राती और खाती-पीती थी। (देखिए पृष्ठ १८६)

मनुष्य और समाज

अपनी वाणी के ही द्वारा मनुष्य दूसरे की विद्या और अनुभव से लाभ उठाता है और इस प्रकार अपनी बुद्धि की वृद्धि करता है। वाक् और स्मृति ही ऐसी शक्तियाँ हैं जिनके कारण हम दूसरों की अनुभूतियों और अनुमानों को अपने में एकत्र कर सकते हैं और एक पीढी से दूसरी पीढी में पहुँचा देते हैं। इससे हमारी अपने आप देखने-भालने और निर्णय करने की योग्यता की तो कुछ हानि अवश्य हुई, परन्तु मानव-समुदायों में परम्परागत विचार और रूढियाँ निर्धारित हो गईं। आदमी को एक बहुत बड़ी सहायता मिली, जब उसने लिखना सीख लिया। लेखों के द्वारा आदमी ने दूसरों के अनुभवों से जिस प्रकार लाभ उठाया, वह बन्दरों के लिए बिल्कुल असम्भव है। इन्हीं शक्तियों के कारण हम अपने मस्तिष्क के ऊपर अनुचित घमंड करने लगे। कदाचित् हम कभी इतने होशियार न होते यदि हमसे कभी कोई बोला न होता अथवा हमने कभी कोई किताब न पढी होती। यदि हमको सिखाया न गया होता, तो शायद ५-६ तक की गिनती भी हमें न आती, लेकिन

ज़बानी और पुस्तकों से पढकर हम बीज-गणित और रेखा-गणित ऐसे कठिन विषय भी सीख लेते हैं ।

इन सब बातो से स्पष्ट होता है कि मनुष्य खाने-पीने, चलने-फिरने, लिखने-पढने के लिए अन्य पशुओ की अपेक्षा दूसरो पर अधिक निर्भर हैं । यूनान के प्रसिद्ध प्रकृतिवादी और दर्शनशास्त्र-वेत्ता ऐरिस्टौट्ल (अरस्तू) ने ठीक ही कहा है, कि "मनुष्य एक सामाजिक जीव है। वह न कभी अपने लिए जीता, न कभी अपने लिए मरता है।" हम ऐसे बने हैं कि हमारे लिए दूसरो के प्रभाव से अलग रहकर जीना बिल्कुल असम्भव है । सच तो यही है कि हम समाज के नियमों से ऐसे जकडे हुए हैं कि दुनिया को बजाय अपनी ऑखों के समाज की ऑखों से देखने लगे हैं । कदाचित् इसी का यह फल है कि जब हम दुनिया मे जन्म लेते हैं, बिल्कुल बेबस होते हैं । उस दशा मे हम सारे जन्तुओ या वनस्पतियो से अपनी ख़बरदारी कम कर सकते हैं । हम अन्य प्राणियों से अधिक समय तक विवश रहते हैं । मनुष्य के बच्चे यह जानने के लिए कि क्या करे और कैसे करे, अन्य जीवधारियों की अपेक्षा, दूसरो पर अधिक निर्भर हैं । अगर कोई स्वस्थ और समझदार मनुष्य अन्य आदमियो की सगत से काफी समय तक पृथक् रक्खा जाय, तो उसकी विचार-शक्ति मे अवश्य ही हीनता आ जायगी । बच्चो मे यह बात बहुधा देखी गई है । कभी-कभी अवसर पाकर भेडिये छोटे बच्चों को उठा ले जाते हैं और कभी कभी जगल मे भटके हुए बच्चे भालू और बैबून (अफ्रीका का एक बडा बन्दर) या भेड़ियों को मिल जाते हैं और वे उनका अपने बच्चों की भॉति पालन-पोषण करते पाये गये हैं। जब ये बच्चे फिर अपने जगली आश्रयदाताओं से छीन लिए गए तो देखा गया कि वे मानव-प्रकृति से बिल्कुल वञ्चित थे । वे अपने चारो हाथ-पैरो से चलते-फिरते थे और मनुष्यों की-सी बोली बोलने की अपेक्षा उन पशुओं की भॉति, जिनमे कि वे पहले रहे थे, चीख़ते, चिल्लाते और इधर-उधर कूदते-फिरते थे । किसी-किसी को आदमी की चाल और बोली सीखने मे वर्षो लग गये, फिर भी वे सदा मूर्ख ही रहे । हमारे देश मे कई बार ऐसे बच्चे सचमुच जगल से पकडे गये हैं और उनके विवरण प्रकाशित भी हुए हैं । लेखक को स्वय ही सन् १९१२ या १९१३ मे एक ऐसे बच्चे को, जो लगभग ६ वर्ष का था और भेडिये की मॉद से पकडकर लाया गया था, बनारस के अन्धाख़ाने के अस्पताल मे देखने का अवसर मिला था । यह बच्चा चारों हाथ-पैरों से चलता-फिरता था और झुके रहने के कारण उसकी खोपडी भी कुछ लम्बी-सी हो गई थी । वह आदमियो को देखकर भेडियो की तरह गुर्राता और भूॅकता था, छोटे बच्चो पर आक्रमण करने की भी चेष्टा करता था । उस समय वह मनुष्यो की बोली न तो बोल सकता था, न समझ सकता था । सन् १९३७ में बम्बई के सचित्र साप्ताहिक 'इलस्ट्रेटेड वीकली' (Illustrated Weekly of India) मे दो लडकियों का पूरा वर्णन छपा था, जिन्हे जे० एल० सिंह नामक एक पादरी साहब मिदनापुर के जगल से भेडियो के भिटे से पकडकर लाये थे । जिस समय ये बच्चे पकडे गये थे, वे भी भेडियो ही की तरह चलते-फिरते तथा खाते-पीते थे । उनकी भाषा केवल गुर्राना और भूॅकना ही थी । रात मे नित्य वे तीन बार एक विशेष प्रकार से निश्चित समय पर भूॅका करते थे । उनका यह स्वभाव धीरे-धीरे बहुत दिनो मे छूटा । दो वर्ष मनुष्यों के साथ रहने और सिखाये जाने पर भी वे "मॉ" "हू, हू" और "न, न" के सिवाय और कुछ न बोल सकते थे । चार वर्ष बीतने पर उन्होंने कुछ बोल-चाल सीख पाई थी, हालॉकि उनकी आयु ८-१० वर्ष की हो गई थी ।

नेकी और हम

उपर्युक्त बातों से स्पष्ट रूप से विदित होता है कि जानवरों और आदमियों के बीच मानसिक और आत्मिक बलों मे एक महान् खाई है । इन्ही बलों के अनुसार मनुष्यों मे भी बहुत अतर है जैसे सन्त और पापी मे, विद्वान् और मूर्ख मे । परमात्मा की सृष्टि में मनुष्य ही सर्वश्रेष्ठ है । ईश्वर ने अपने अश का जितना भाग मनुष्य को दिया है, उतना और किसी को नही । मनुष्य और पशुओं के बीच मे नेकी की एक कल्पित विभाजक रेखा है । उसके ऊपरी ओर सचाई, साहस, ईमानदारी, परोपकार, विपत्ति मे दूसरो की सहायता करना, आदि मनुष्य के गुण हैं । उसके नीचे पशुओ के-से कर्त्तव्य लडना-झगडना, मारना-पीटना, नोचना-खसोटना इत्यादि हैं । कभी-कभी मनुष्य भी जब मनुष्यत्व से गिर जाता है अथवा जब पशुत्व मनुष्यत्व के ऊपर अधिकार कर लेता है, तो मनुष्य पशुओं के-से कार्य करने लगता है । एक आदमी या राष्ट्र दूसरे आदमी या राष्ट्र के देश, धन और माल को ज़बरदस्ती छीनने को तैयार हो जाता है और घमासान युद्ध ठान लेता है; निरपराध स्त्री, पुरुष और बालकों पर अत्याचार करता है । इस समय मनुष्य अपनी सभ्यता को भूलकर लालच और घमड के नशे मे चूर होकर अपनी बुद्धि को गॅवा देता है और निर्दयी तथा जंगली हो जाता है । जब कभी पृथ्वी पर

ऐसा अत्याचार हुआ है (जैसा आजकल योरोप में हो रहा है) तब कुछ स्त्री और पुरुष ऐसे निकले हैं, जो सत्य और न्याय पर अड़े रहे हैं और इन गुणों के विरोधियों पर उन्होंने विजय पाई है। यदि ऐसा न हुआ होता, तो हम आज इस संसार को उजड़ा हुआ रेगिस्तान पाते।

सत्य और ईमानदारी

अब हम "सत्य और ईमानदारी" इन दो ही नेकियों के विषय में सोचें कि इनके बिना हमारी क्या दशा होती। अगर हमको एक दूसरे का विश्वास न होता, तो न कहीं दूकानें होतीं, न बक होते, न डाकखाने होते और न बीमा की कम्पनियाँ होतीं। हम सबको खुद ही अपना पेट भरने के लिए अनाज पैदा करना पड़ता या जीव-हत्या करना पड़ती। क्यों? इस भय से कि वह दूकानदार, जिससे हम खाना लाये हैं, झूठा या दगाबाज तो नहीं है, उसने खाने में कहीं विष तो नहीं मिला दिया है। अगर हम दूसरों को झूठा समझते तो अपने कमाये, कठिनता से बचाये हुए धन को बक में न रख सकते और न तिजारत में लगा सकते, क्योंकि हमारे जी में यह खटका लगा रहता कि कहीं बक-वाले या कम्पनीवाले हमारे धन को हड़प न जायँ। हम डाक्टर की बतलाई हुई जहरीली से जहरीली दवा दूकान से खरीदकर पीते हैं, क्योंकि हमको विश्वास रहता है कि डाक्टर का नुसखा हानिकारक न होगा और दूकानदार ने भी दवा ठीक से बनाई होगी। हम हवाई जहाज, रेलगाड़ी, आदि में बैठकर यात्रा करते हैं, क्योंकि हमें भरोसा रहता है कि इनके चलानेवाले अपनी यथाशक्ति हमको हमारे इच्छित स्थान पर पहुँचायेंगे। किन्तु अगर मनुष्य के लिए दूसरों पर विश्वास करना असम्भव हो जाय, तो उसका जीवन और सामाजिक व्यवहार तहस-नहस हो जाय। इसलिए सचाई और ईमानदारी भी मनुष्य के लिए अति आवश्यक हैं।

मनुष्य और परोपकार

मनुष्य का एक और गुण परोपकार है, जो उसे सारे जीवों से ऊँचा बना देता है। ऐसा कौन-सा और जानवर हम जानते हैं, जो अन्य को विपत्ति में देखकर अपने प्राणों की पर्वाह न कर उसकी सहायता के लिए दौड़ पड़े? यदि किसी मकान में आग लग जाती है, तो अपरिचित मनुष्य भी उसको बुझाने और मकान के प्राणियों को बचाने का यथाशक्ति प्रयत्न करते हैं, चाहे स्वय उनके प्राण सकट ही में आ जायँ। कोई बच्चा अथवा आदमी नदी में अचानक डूबने लगता है, तो दूसरा आदमी अपनी जान पर खेलकर पानी में कूद पड़ता है और उसे किनारे पर ले आता है। क्यों? इसीलिए कि वह मनुष्य है, पशु नहीं। हममें से कौन ऐसा है, जिसने किसी जानवर के बारे में यह सोचा हो कि उसके जी में भी कभी ऐसा विचार आया हो कि वह स्वय अपने उदाहरण और उपदेश से दूसरों को उनके दुःखो से मुक्ति दिला सकता है, जैसा महात्मा बुद्ध ने हजारों वर्ष पहले सोचा था। कई और मनुष्यों ने परोपकार के लिए स्वय कष्ट ही नही सहा वरन् प्राणदान भी दे दिये, जैसा ईसा मसीह ने लगभग २००० वर्ष हुए कर दिखाया था। आज भी महात्मा गाँधी जैसे व्यक्ति हैं जो दूसरो के हित के लिए खुशी से स्वय कष्ट उठाने के लिए तैयार रहते हैं।

वास्तव मे मनुष्य और अन्य प्राणियो की मानसिक और आत्मिक क्रियाओ मे एक महान् भेद है। जब प्राचीन मनुष्य विकास की सीढी पर वन-मानुषों से आगे बढा और सीधे खडा होकर चलने लगा, तब उसकी आँख की दृष्टि बढी, उसने समझनेवाले कान पाये, उसके हाथो मे निपुणता, जीभ मे वाक् और मस्तिष्क मे स्मरण-शक्ति बढी और इसके पश्चात् उसने लेखन-कला निकाली। तब वह धीरे-धीरे वन-मानुपों को नीचे छोड उन्नति की सीढी के सबसे ऊँचे डडे पर पहुँच गया, जहाँ हम उसे आज पाते हैं। अपने इतिहास के आरम्भ से ही मनुष्य का मन दृश्य और अदृश्य वस्तुओ के बारे मे सोचता और प्रश्न करता रहा है। वह जगल मे कन्द, मूल और फलों से अपना पेट भरकर सतोष की नींद नहीं सोता रहा, बल्कि सागर के तट पर खडा होकर उसकी गिरती-उठती लहरों के बारे मे भी ध्यान लगाने लगा। बादलों की गरज को सुनकर, आकाश पर सूर्य और चन्द्र को निकलते देख, उनके बारे मे भी वह सोचने लगा, जिससे उसके मस्तिष्क, ज्ञान और आत्मा की उत्तरोत्तर उन्नति होती गई। उसमे भलाई और बुराई की पहचान आ गई, जो और किसी जीव मे नहीं पाई जाती। मनुष्य के उपर्युक्त गुणों मे ऐसी उन्नति हुई कि आज हम यह कहने लगे कि मनुष्य को प्रकृति ने नेकी के लिए ही बनाया है। इस सबध मे हॉलैण्ड देश के प्रसिद्ध धर्मशास्त्रज्ञ ह्यूगो ग्रोटियस के अनमोल शब्दों को याद रखना चाहिए कि "ईश्वर को मनुष्य ही सबसे प्रिय जीव है।' जब तक वह अपने को अधिक नेक बनाने की कोशिश करता है, तभी तक वह सच्चा मनुष्य है। जिस घडी उसके मन में इस बात की पर्वाह नहीं रह जाती कि वह अच्छा है या बुरा, दोषी है अथवा निर्दोष, उसी घडी वह मनुष्य की पदवी से गिरकर पशुओ से जा मिलता है।

मस्तिष्क का स्थूल रूप

यद्यपि स्थूल मस्तिष्क का अध्ययन मनोविज्ञान का नही, बल्कि शरीरशास्त्र का विषय है, फिर भी मानसिक क्रियाओं को ठीक-ठीक समझने के लिए आवश्यक है कि मोटे तौर से हम उस यन्त्र से परिचित हो जायँ जो हमारी चेतन-शक्ति का केन्द्र है। स्थूल मस्तिष्क की रचना का विस्तारपूर्वक अध्ययन तो "हम और हमारा शरीर" शीर्षक स्तंभ ही मे हम करेगे।

हम मन या मस्तिष्क के विज्ञान का अध्ययन करने बैठे हैं और इस विज्ञान का क्षेत्र है, जैसा कि पहले लेख मे कहा जा चुका है, मनुष्य की मानसिक क्रियाओ का अध्ययन। पर इसके पहले कि हम सीधे सोचने, समझने, तर्क करने आदि मानसिक क्रियाओ का ज्ञान प्राप्त करे, हमे स्थूल मस्तिष्क के बारे मे कुछ जानकारी प्राप्त करनी होगी, अर्थात् हमे मस्तिष्क का शरीरशास्त्र के अनुसार सरसरी तौर पर दिग्दर्शन करना होगा। कुछ वर्ष पूर्व बहुत सुरक्षित ढग से कहा जा सकता था कि स्थूल मस्तिष्क का अध्ययन मनोविज्ञान का नही, बल्कि शरीरशास्त्र का विषय है, पर आज के इस वैज्ञानिक युग मे किन्ही भी दो विज्ञानों के बीच मे आसानी से विभाजक रेखा का खीचा जा सकना सभव नही है। इसलिए मस्तिष्क की क्रियाओ के अध्ययन के लिए मस्तिष्क की स्थूल बनावट आदि की मोटे तौर पर जानकारी कर लेना वाछनीय ही नही, आवश्यक भी है।

हम अनुभव करते हैं, सोचते है, तर्क करते है और यह सब कुछ मस्तिष्क के द्वारा तथा ज्ञानेन्द्रियो या ज्ञानेन्द्रियो के ततुओ के सहारे होता है। पर यह मस्तिष्क और ज्ञानेन्द्रिय के ततु है क्या? इनका स्थान कहाँ है? ये किस प्रकार कार्य करते है?

वैज्ञानिको ने बडी खोज और परिश्रम से यह परिणाम निकाला है कि हमारे शरीर का सबसे महत्त्वपूर्ण भाग मस्तिष्क हमारी खोपडी (Skull) के भीतर स्थित है। सिर के बाल और खाल के नीचे हमारी खोपडी होती है। यह हड्डियो का एक बडा पुष्ट-सा ढाँचा है, जिसका निर्माण आठ अस्थियो से हुआ है। उसके भीतर कई तरह की झिल्लियो का एक घना-सा जाल है, जिसके अन्त मे स्थूल मस्तिष्क (Brain) मिलता है। मोटे तौर पर स्थूल मस्तिष्क की शक्ल और लम्बाई-चौडाई एक आधे कटे तरबूज-जैसी होती है। वह बहुत ही मुलायम और लोहित-पीत (लाल पीला के मिश्रण से मिले रग का) होता है। उसकी ऊपरी तह मे एक भूरे रग की वस्तु भरी रहती है और भीतरी तह मे सफेद रग की। और वास्तव मे हमारे आधे तरबूज की शक्ल के स्थूल मस्तिष्क के यही दो प्रमुख उपादान हैं। हेरिक नामक शरीरशास्त्रवेत्ता का मत है कि स्थूल मस्तिष्क के निर्मायक उपादानो मे यह भूरे रग का पदार्थ तौल मे सारे मस्तिष्क का लगभग आधा होता है। मस्तिष्क मे यह सबसे अधिक महत्व की वस्तु बतलाई जाती है। इसके महत्व पर सबसे पहले फ्रैन्स जोजेफ गाल नामक एक जर्मन वैज्ञानिक ने १९वी शताब्दी के आरभ मे जोर दिया था। आधुनिक शरीरशास्त्र के प्रमुख अग शरीरततु विज्ञान (Neurology) के हाल के अध्ययन और खोजो से यह ज्ञात हुआ है कि स्थूल मस्तिष्क के इन विभिन्न निर्मायक उपादानो के अलग-अलग विशेष कार्य हैं, जिनका शरीर के सचालन के लिए सपादित होना अत्यत आवश्यक है। यह ध्यान मे रखने की बात है कि स्थूल मस्तिष्क एक चिकना पिण्ड-सा नही होता, बल्कि उसका धरातल बहुत ही असमान और उथला-पुथला-सा होता है, जैसे हल चलाने पर खेत की नालियाँ हो जाती हैं। यह पिण्ड आगे की ओर बढते-बढते ललाट तक और पीछे की ओर गर्दन के आगे तक बढा चला गया है। इसका पिछला भाग आगे के भाग की तुलना मे अधिक मोटा और चौडा होता है। इस पूरे ढाँचे के दो बडे भाग हैं—१ वह जो खोपडी को ऊपर से देखने पर दिखाई देता

निर्गीत आदेशों को भिन्न-भिन्न विभागों तक ले जानेवाले आगाकारी कर्मचारी न हो, तब तक वह उन विभागों का शासन करने में असमर्थ ही रहेगी। मस्तिष्क हमारे शरीर का केन्द्रीय शासन विभाग कहा जा सकता है। उसके राज्य-सचालन के लिए ऊपर वर्णित वात-सूत्र या तार दूत का कार्य करते हैं। ये सूत्र न सिर्फ विभिन्न अगों की सूचना या सदेश मस्तिष्क तक पहुँचा देते हैं, बल्कि मस्तिष्क की आज्ञा या आदेश को उन अगों तक पहुँचाने का काम भी उन्हीं के सुपुर्द है। इन दोनों कामो के लिए दो भिन्न-भिन्न प्रकार के सूत्र या तार हमारे नाडी-मण्डल मे हैं—१ वे जो मस्तिष्क और सुपुम्ना से विभिन्न अगो को जाते हैं, ये 'केन्द्रत्यागी' कहे जाते हैं, २ वे जो अगों से मस्तिष्क और सुपुम्ना को जाते हैं, ये 'केन्द्रगामी' कहलाते हैं। केन्द्रगामी तार सावेदनिक होते हैं अर्थात् मस्तिष्क मे उनके द्वारा किसी अग की अनुभूति की सवेदना होती है। इसके विपरीत केन्द्र-त्यागी तार मस्तिष्क के आज्ञानुसार अगो मे गति उत्पन्न करते और उनका सचालन करते हैं। ये 'मोटर नर्व्स्' (Motor Nerves) कहे जाते हैं। ये तार किस प्रकार अपना कार्य-सपादन करने मे समर्थ होते हैं, यह हम विस्तारपूर्वक आगे के लेख मे बता-येंगे। यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि केन्द्रत्यागी या गत्युत्पादक तारों के उत्पत्ति-स्थान मस्तिष्क अथवा सुपुम्ना के भीतर रहते हैं। इसके विपरीत केन्द्रगामी अथवा सावेद-निक तारों के उद्गमस्थल सुपुम्ना और मस्तिष्क से बाहर होते हैं।

अब हमे यह देखना है कि उपर्युक्त केन्द्रगामी तार मस्तिष्क मे कहाँ जाकर समाप्त होते हैं तथा केन्द्रत्यागी तार के उद्गमस्थलों का मूल मस्तिष्क से क्या सबध है। इस सबध मे अध्ययन करने पर वैज्ञानिको ने यह मालूम किया है कि बृहत् मस्तिष्क के वल्क या धूसर अश मे भिन्न-भिन्न भागों के भिन्न-भिन्न काम हैं। कोई भाग दृष्टि से सबध रखता है, तो कोई स्वाद या घ्राण से। किसी का कार्य गति उत्पन्न करना है, तो कोई शीत, ताप, वेदना आदि की सवेदना ही से सबध रखता है। ये भाग अलग-अलग कहे जाने पर भी वास्तव मे एक-दूसरे से पेचीदे ढग से जुडे हुए हैं, और परस्पर सबधित हैं। ये विभिन्न भाग 'केन्द्र' कहलाते हैं। इस प्रकार बृहत् मस्तिष्क के पृष्ठ पर दृष्टि केन्द्र, श्रवण केन्द्र, घ्राण और स्वाद के केन्द्र, गति क्षेत्र, सावेदनिक क्षेत्र आदि विभिन्न केन्द्र निश्चित हैं (देखो इसी पृष्ठ का चित्र)। यहाँ यह ध्यान मे रखना चाहिए कि किसी शासन-तत्र के विभिन्न विभागों की तरह यद्यपि ये केन्द्र या विभाग केवल अपने अपने कार्यों ही के लिए उत्तरदायी हैं, फिर भी जरूरत पड़ने पर ये एक दूसरे से मिलकर भी काम करते हैं। ये क्षेत्र केन्द्रगामी और केन्द्रत्यागी तारो द्वारा शरीर के विभिन्न भागों से सबधित हैं। मानव मस्तिष्क बड़ी पेचीदा मशीन है। उसकी क्रिया-प्रक्रिया हमारे बिजली की तार-बर्क़ी के जगल से कही अधिक गूढ और पेचीदा है। अगों से मस्तिष्क तक सवेदना की सूचना पहुँचने या मस्तिष्क से उन अगो तक प्रतिक्रिया के रूप मे आदेश पहुँचने मे यद्यपि एक पल भर लगता है, किन्तु इस क्रिया के सपादन के लिए ससार मे सबसे अधिक पेचीदा यत्र-प्रणाली हमारे इस शरीर में प्रकृति ने बनाई है। हम अगले लेख में देखेंगे कि किस प्रकार यह मशीन काम करती है। साथ ही, यह भी देखेंगे कि ऊपर वर्णित अगों के अलावा हमारे मस्तिष्क मे और कौन-कौन विशेष महत्त्व के अग स्थित हैं, जिनका हमारी मानसिक क्रिया-प्रक्रियाओं से अत्यत महत्त्वपूर्ण सबध है, जैसे लघु मस्तिष्क का क्या कार्य है, सुपुम्ना के सिपुर्द कौन-कौन-से काम हैं, एक इष्ट गति उत्पन्न करने मे कौन-कौन-सी क्रियाओ का हमारे वात-सस्थान मे होना आवश्यक है, आदि।

हमारे मस्तिष्क के विविध ज्ञान केन्द्र
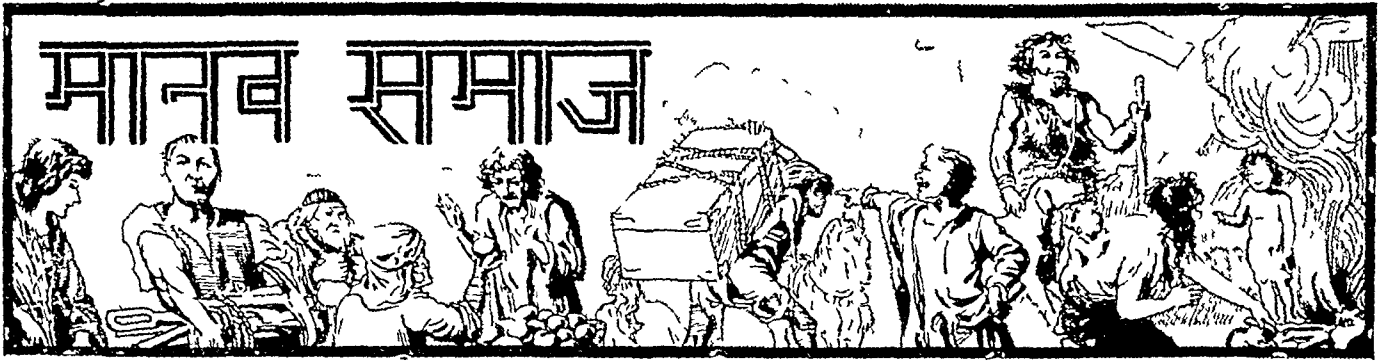
हमारा आर्थिक विकास

"मनुष्य निःसहाय होते हुए भी अपने बुद्धि-बल द्वारा संसार में सर्वविजयी हुआ है—इस विजय-यात्रा में प्रकृति और मनुष्य का प्रतिद्वन्द्व निरन्तर चलता रहा है।"

आदि काल से लेकर आज तक मनुष्य का जीवन निवासस्थान की प्राकृतिक दशा के अनुकूल ढलता रहा है। प्रकृति ने मनुष्य का आहार, वस्त्र, भूषण, रहने का घर, आचरण, आर्थिक उद्यम व राजनीतिक पद्धति को नियत किया है। पथरीले पहाडी देशों मे, जहॉ खेती दुष्कर है, वन के कन्द-फल और पशु-मांस ही मनुष्य की भोजन-सामग्री रही है। वहॉ पशुओं की खालों से मनुष्य ने शरीर को ढकने का काम लिया है। मरुप्रदेशों मे जल का अभाव होने के कारण समाज के विधान मे हम जल के उपयोग के नियम तथा उसका दुरुपयोग करने पर दण्डविधान भी पाते हैं। भिन्न-भिन्न देशों का सामाजिक सगठन व आर्थिक क्रम वहॉ की भौगोलिक दशा के अनुसार निश्चित हुआ है। कही खेती का उद्यम है, तो कही कल-कारख़ानो द्वारा वस्तुएँ बनाकर दूर देशो को भेजी जाती हैं। यदि साइबेरिया और उत्तरी शीत प्रदेश के निवासी (इस्किमो आदि) पशु-मास भक्षण करके बर्फ के मकानों मे रहते हैं, तो अफ्रीका या भारतवर्ष के निवासी खेती द्वारा पैदा किये हुए अन्न व फल का स्वाद लेते हुए सूर्य व चन्द्र के प्रकाश मे सुखप्रद जीवन व्यतीत करते हैं। अतः मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन प्राकृतिक दशा के द्वारा निर्धारित होता रहा है और नतमस्तक होकर उसे प्रकृति की आज्ञा का पालन करना पड़ा है। किन्तु इसके साथ-साथ प्रकृति से द्वन्द्व करने की भी उसने चेष्टा की है। मनुष्य का जीवन प्रकृति के साथ उसकी प्रतिद्वन्द्विता का एक रुचिकर इतिहास है। इस घोर युद्ध मे मनुष्य का एक सहकारी और प्रबल मित्र उसकी बुद्धि थी। बुद्धिबल द्वारा मनुष्य ने पशु और प्रकृति दोनो को परास्त किया और प्रकृति का दास न रहकर प्रकृति और पशु दोनो को अपना दास बना लिया।

यह बतलाया जा चुका है कि मनुष्य ने सामाजिक जीवन जन्तुओ और पशुओं के आचरण से सीखा। परन्तु वास्तव मे परिस्थिति व प्रकृति ने मनुष्य को साथ-साथ रहने व मिलकर काम करने के लिए विवश कर दिया। आर्थिक जीवन का प्रमुख कार्य भोजन एकत्रित करना है। प्रारम्भिक काल मे मनुष्य को खेती करने की कला मालूम न थी। उस समय जीवन-निर्वाह की सामग्री केवल कन्द-फल, मछली और वन के पशु थे। पर्वत-प्रदेश तथा वन के समीप रहनेवालो का जीवन-आधार आखेट था। समुद्रतट-वासी मछली खाकर उदर-पोषण करते थे। विशेष बात यह है कि इस समय मे मनुष्य का सामाजिक व आर्थिक सगठन भोजन-व्यवस्था के अनुकूल ही बन गया। आर्थिक जीवन का आदि काल 'आखेट का युग' कहलाता है। इस काल में पुरुष आखेट करने, कन्द-फल जुटाने या मछली आदि पकडने मे लगे रहते थे। स्त्रियॉ घर पर रहकर बच्चो का पालन-पोषण करती थी। पुरुष निरन्तर भोजन की खोज मे भ्रमण करता रहता था। इसलिए इस समय मे मातृसत्तावादी (Matriarchal) परिवार का सगठन हुआ। जिस दिन सुयोग से भोजन अधिक मिलता, उस दिन बडा समारोह मनाया जाता था। आखेट के बाद परिवार के लोग एक स्थान पर एकत्रित होकर आनन्द मनाते थे। मित्र-सम्बन्धियो का भोज होता था। यह एक प्रकार से उस समय का त्यौहार-दिवस था। आखेट मे अनिश्चितता होने के कारण कई दिवस ऐसे भी होते थे, जब मनुष्य को जगल अथवा जलाशय से निराश होकर ख़ाली हाथ घर लौटना पडता था। ऐसे दिन उपवास के अतिरिक्त कोई और उपाय ही न था। इस दुःखद अनिश्चितता को दूर करने और प्रति दिन के आखेट-सम्बन्धी अनिवार्य कठोर परिश्रम से बचने के लिए मनुष्य ने पशु से मैत्री करने का

प्रयत्न किया। अब मनुष्य आखेट में पशु को मारने व पकड़ने दोनों ही की चेष्टा करता था। इस नवीन योजना ने उसके जीवन पर बड़ा प्रभाव डाला। पशु को मारने के बजाय उसको जीवित पकड़ना अधिक दुष्कर कार्य था। अब यह आवश्यक हुआ कि कुछ मनुष्य साथ मिलकर आखेट पर जायँ और पशु को घेरकर पकड़े। यही मनुष्य के सहयोगिक जीवन की नींव है। पशु पकड़ने के बाद इन बन्दी पशुओं के संरक्षण की समस्या उपस्थित हुई। डर था कि कहीं पशु भाग न जायँ, अथवा दूसरे मनुष्य और हिंसक पशु इन्हें उठा न ले जायँ। इसलिए परिवार के कुछ व्यक्तियों का पशुओं के निरीक्षण का कार्य करना पड़ा। साथ-ही-साथ इन पालतू पशुओं के भोजन के प्रबन्ध का भार भी बढ़ गया। उनकी समय-समय की देखरेख, तथा उनके बच्चों का पालन-पोषण स्वभाव ही से कोमलप्रकृति और मृगया के लिए असमर्थ स्त्री-जाति के हिस्से मे आया। इस तरह आजकल के आर्थिक जीवन के मूल सिद्धान्त श्रम-विभाग (Division of Labour) का जन्म हुआ।

पालतू पशुओं में सबसे पहले पाला जानेवाला पशु कुत्ता था और यह पशु आज तक मनुष्य का साथी बना हुआ है। पालतू बनाने पर मनुष्य ने कुत्ते से आखेट मे सहायता लेना प्रारम्भ किया और अब मनुष्य के समूह, पालतू कुत्तों की सहायता से, अन्य पशुओं को पकड़ने लगे। बहुधा शिकार न मिलने पर अथवा आखेट मे असफल होने पर पाले हुए पशु को ही मारकर क्षुधा-तृप्ति होती थी। अपने परिवार के भोजन के अतिरिक्त पशुओं के लिए भोजन-प्रबन्ध का कार्य भी अब मनुष्य को चिन्तित करने लगा। अतएव मनुष्य ने अपना निवासस्थान ऐसे स्थानो को बनाया, जहाँ चरागाह समीप थे और पशुओं के लिए खाने का सुभीता था। थोड़े-थोड़े समय के बाद मनुष्य को अपना निवासस्थान बदलना पड़ता था और चरागाहों की खोज मे जाना पड़ता था। इसके लिए मनुष्य ने कुत्ते के बाद घोड़े को पालतू बनाया और सुदूर यात्रा मे उससे सवारी का काम लिया। पकड़े हुए पशु और चरागाह अब मनुष्य की सम्पत्ति गिने जाने लगे, जिन्हें बचाने की वह चेष्टा करता और उनकी रक्षा मे बहुधा भिन्न-भिन्न दलो मे परस्पर युद्ध भी होता था। विजयी दल पराजित दल के पशुओं और चरागाहों को छीन लेता था और पराजित दल को दास बनाकर अपने साथ रखता था। ऐसी अवस्था मे प्रत्येक परिवार अपनी जन-संख्या बढ़ाने की चेष्टा करने लगा। परिवार का बल जन-संख्या पर निर्भर था। अब परिवार मे पुरुष का पद उच्च समझा जाने लगा, क्योंकि युद्धकार्य, रक्षाकार्य, आखेट तथा चरागाहों का लूटना केवल पुरुष ही कर सकता था। परिवार मातृसत्तावादी स्थान पर पितृसत्तावादी होने लगे। परिवार की जन-संख्या बढ़ाने और एकत्रित रखने के लिए पुरुषों ने एक से अधिक विवाह किये, संयुक्त परिवार बनाये, छोटे-छोटे परिवारो मे विवाह-सम्बन्ध द्वारा अथवा अन्य उपायों से मैत्री-भाव बढ़ाया और इस तरह कई परिवार अथवा जन-समूह मिलकर एक जाति के रूप मे संगठित हुए। इन जातियों मे साथ रहने के कारण एकसाँ आचरण व्यवहार होता था। उनका एक मुखिया होता था और अधिकाश मे उसी मुखिया के आदेशानुसार सम्पूर्ण जाति कार्य करती थी। चरागाहों का दूसरा प्रभाव मनुष्य के भोजन पर पड़ा। पशुमास के अतिरिक्त इनके भोजन मे कन्द, मूल, फल इत्यादि भी अधिक मात्रा मे आने लगे। पाले हुए पशुओं के प्रति मनुष्य मे दया-भाव उत्पन्न हुआ और उनको मारकर खाने मे उसे दुःख होने लगा।

अपने निवासस्थान को दैवी प्रकोप तथा हिंसक पशुओं से सुरक्षित रखने के लिए मनुष्य ने वृक्षों की शाखाओं, पत्थरों के टुकड़ों व अन्य सामग्री एकत्रित करके रहने के स्थान बनाये थे। पशुओं की खाले वस्त्र के काम में लाई जाती थीं। अग्नि प्रज्वलित करने का कार्य भी मनुष्य को मालूम हो चुका था। दो पत्थरों को रगड़कर वृक्ष-शाखाओं की सहायता से यह कार्य किया जाता था। यहीं से कला के विकास का भी आरम्भ होता है। इस कार्य मे बूढ़े मनुष्य व स्त्रियों का प्रमुख हाथ था। युवा पुरुष सदैव आखेट, तथा परिवार व पशु-संरक्षण मे संलग्न रहते थे। व्यक्तिगत सम्पत्ति की नींव भी इसी काल से पड़ती है। पकड़े हुए पशु, निवासस्थान तथा एकत्रित कन्द-मूल, परिवार व मनुष्य के छोटे-छोटे समूहों की सम्पत्ति समझे जाते थे। कहीं-कहीं तो चरागाह तक बँटे हुए थे और एक दूसरे के चरागाह मे जाने के लिए तथा अधिकार पाने के लिए दो दलों मे युद्ध भी होता था। इस समय तक मनुष्य को वृक्षों का लगाना तथा खेती करने की कला का ज्ञान नहीं हुआ था। खेती प्रारम्भ करने का श्रेय भी स्त्री-जाति ही को है। चरागाह के इस युग में स्त्रियाँ समीपवर्ती वन-वृक्षों से कन्द-मूल तोड़ लेती थीं। नदियों से जल लाने का काम भी वे ही करती थीं। इस काम में कुछ समय तक एक ही मार्ग से फल इत्यादि लाते समय मार्ग मे यहाँ-वहाँ फलों के बीज गिर जाते थे। उसी मार्ग से जल लाते समय उन पृथ्वी पर दबे हुए बीजो को पानी भी मिला। वर्षा ऋतु मे इन बीजो ने छोटे-छोटे पौदों का रूप धारण किया
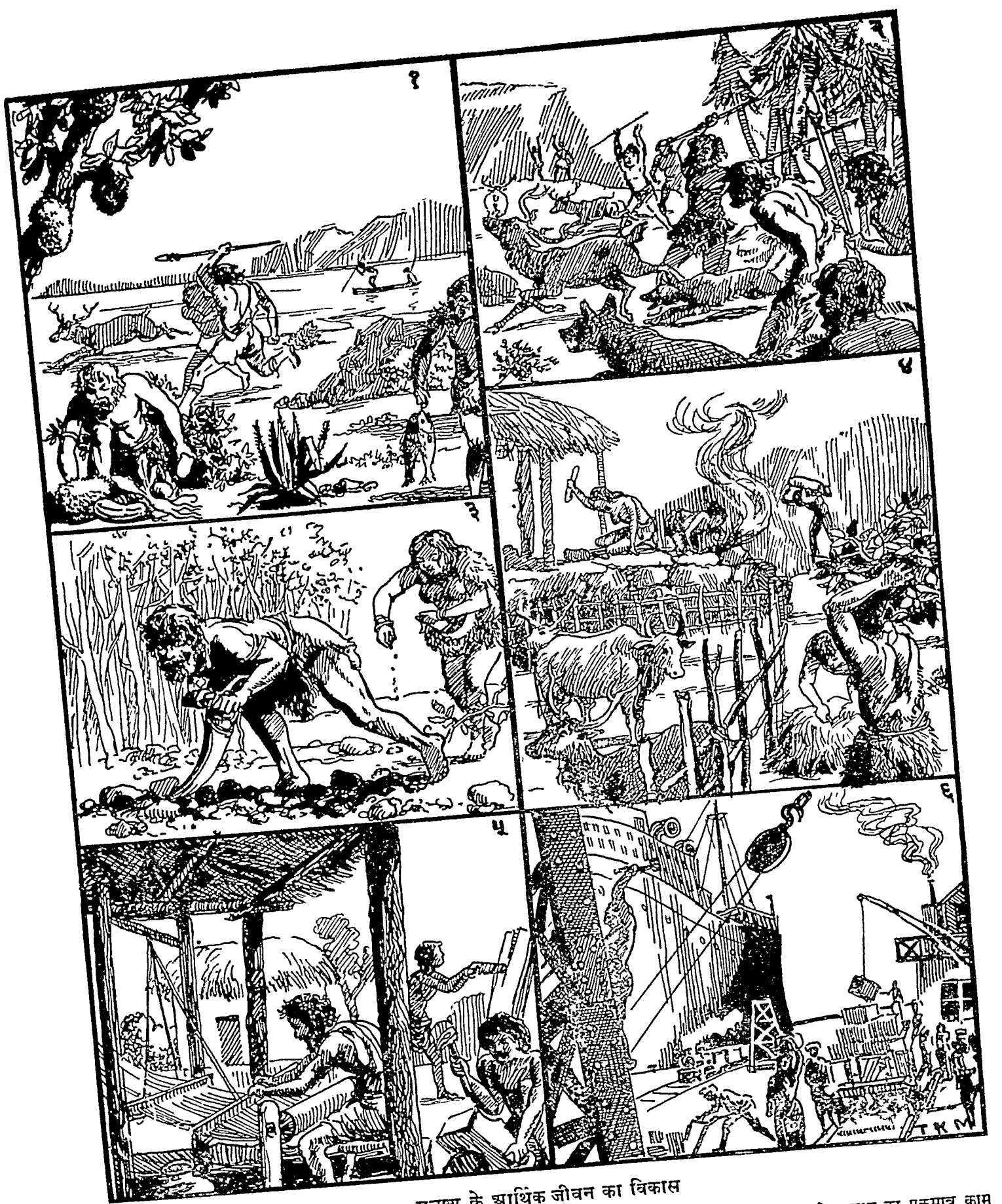
मनुष्य के आर्थिक जीवन का विकास

(१) आखेट-काल—जब जगल के कद-मूल, जल की मछली और वन के पशुओं से आहार प्राप्त करना ही मनुष्य का एकमात्र काम था , (२) पारस्परिक सहयोग का आरंभ—कई आदमी मिलकर कुत्ते आदि पशुओं की सहायता से बारहसींगे आदि को घेर कर पकड रहे हैं । (३) खेती का आरभ ; (४) पारिवारिक जीवन का उदय और एक स्थान में बसना तथा पशु आदि को पालना ; (५) छोटे-छोटे उद्योग-धदों और कलाओं का आरभ ; (६) आधुनिक युग मे मनुष्य के आर्थिक जीवन का फैलाव ।

जिनको देखकर उस समय के मनुष्यों को बडा कौतूहल हुआ। साथ-ही-साथ फल इत्यादि के इन वृक्षों के निवास-स्थान के समीप आ जाने से खाने की सुविधा भी हो गई, अतएव अब वृक्षों को समीप लगाने का प्रयत्न होने लगा और इसी प्रयत्न ने समयानुसार खेती का रूप धारण कर लिया।

भूमि व जलवायु के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार की खेती होने लगी। कृषि के विकास मे भी अनेक अवस्थाएँ रही हैं, जो देश की प्राकृतिक दशा तथा मनुष्य के तत्कालीन ज्ञान की अवस्था के अनुसार हुई हैं। खेती के काल मे मनुष्य ने गाय व बैल को पालना शुरू किया और बैल से अपने इस नये कार्य मे सहायता ली। खेती के आदि काल मे भूमि खोदने के कार्य मे पकडे हुए मृगों के सींग से सहायता ली जाती थी। क्रमश' लोहे के अस्त्र बनाये जाने लगे और हल चलाने के लिए बैलो व अन्य चौपायों से काम लिया जाने लगा। यही कारण है कि कृषि-प्रधान देशो मे आरभ से ही गाय व बैल की महिमा बहुत है। खेती के विकास ने मनुष्य के निरन्तर भ्रमण, आखेट की खोज, भोजन की अनिश्चितता की अनिवार्यता को दूर कर दिया। अब परिवार एक स्थान पर बहुत काल तक निश्चित रूप से रहने लगा। इसके परिणामस्वरूप सुन्दर और अधिक काल तक रहनेवाले टिकाऊ निवासस्थानों का निर्माण हुआ। सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन यह हुआ कि मनुष्य गृहस्थ-जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य हुआ। एक किसान के लिए आवश्यक हुआ कि वह विवाह करे। खेती व्यक्तिगत न होकर अब परिवार की वस्तु हो गई, जिसमे सबका सहयोग अनिवार्य था। दुष्कर व परिश्रम के कार्य पुरुष के हिस्से में पडे। स्त्रियाँ बीज बोने, गल्ला साफ करने, खेत साफ करने इत्यादि के सुगम कार्य करती थीं। पशुपालन का कार्य भी स्त्रियाँ तथा बालकों पर रहा। छोटी-छोटी कलाओ का उत्थान होने लगा। रुई इत्यादि के पैदा होने से कपडा बनने लगा। पुरुष को परिवार के साथ रहना और उसकी रक्षा व पालन का भार लेने से परिवार के स्वामित्व का पद प्राप्त हुआ। यहाँ से स्त्रियो का प्रभुत्व घटा तथा पुरुष का प्रभुत्व प्रबल हुआ।

इसके बाद का समय 'छोटे-छोटे कला-कौशल का युग' या 'कलाकार समिति (Guild) का काल' कहा जाता है। इस काल मे व्यक्तिगत कलाकार से लेकर छोटे-छोटे कारखानों तक का उत्थान भी सम्मिलित है। छोटे-छोटे औजारों का बनाना, वस्तु को एकत्रित करना तथा औजारो के भिन्न-भिन्न प्रयोग मनुष्य ने इसी काल मे सीखे। व्यक्तिगत सम्पत्ति का भाव अब प्रमुख हुआ और पैतृत्व की प्रथा प्रबल हुई। परिवार अथवा वश सगठित हुए। एक ही उद्योग या कला मे सलग्न व्यक्तियो मे आवश्यकताओं, तथा सुविधा-असुविधाओ की एकता व समानता से परस्पर सम्पर्क बढा और घनिष्टता होने लगी। मनुष्य-समाज भिन्न-भिन्न उद्योगी समूहों मे विभाजित हुआ। इधर गत दो शताब्दियो मे मशीन, द्रुतगामी सवारियो तथा शीघ्र समाचार फैलने के साधनों के आविष्कारों ने कला-सम्बन्धी इस सगठन का रूप बिल्कुल पलट दिया है। छोटे-छोटे कारखानो, कारीगरो के परिवारो व व्यक्तिगत कलाकारो की जगह अब बडे-बडे मिलमालिको द्वारा सचालित मिले बन गई हैं। व्यापार गॉव, नगर व प्रान्त मे सीमित न रहकर अब अन्तर्राष्ट्रीय हो गया है। गॉव की कला के विनाश के साथ-साथ मनुष्य के आर्थिक सगठन मे भी अपूर्व परिवर्त्तन हुआ है। सुदृढ पारिवारिक जीवन शिथिल हो गया है और परिवार-विच्छेद होने लगा है। आज पुरुष यदि एक कारखाने मे काम करता है, तो स्त्री दूसरे मे। अब मनुष्य का आर्थिक जीवन इस सीमा तक पहुँच चुका है कि आर्थिक निर्भरता व सहयोगिता का स्थान अब स्वतत्रता व स्वच्छदता ने ले लिया है। देश की प्राकृतिक दशा, सम्पत्ति व विज्ञान की उन्नति के अनुसार मनुष्य ने ससार के भिन्न-भिन्न भागों मे अनेक आर्थिक परिवर्त्तन किये हैं। आर्थिक विकास का क्रम सर्वदा सर्वत्र एक-सा न रहकर भिन्न-भिन्न रहा है। कही-कही कई अवस्थाएँ अब भी एक साथ ही पाई जाती हैं और किसी-किसी जगह प्रगति के कारण बीच की अवस्थाएँ प्राप्त किये बिना ही आगे की उन्नतिशील अवस्था ने स्थान पाया है। बुद्धि-विकास द्वारा मनुष्य का कार्यक्रम पशु-बुद्धि के कार्यो तक ही सीमित न रहा, वरन् वह धीरे-धीरे प्रकृति पर विजय पाता गया और प्रकृति के कुछ अटल व अजेय नियमो को छोडकर मनुष्य ने प्रकृति को स्वामी के स्थान से गिराकर उस पर अपना स्वामित्व स्थापित कर लिया है। परन्तु इतनी उज्ज्वल विजय के बाद भी मनुष्य प्रकृति को बिल्कुल परास्त नही कर सका। इस कल-कारखानों के युग मे भी जलवायु का प्रभाव, पृथ्वी की परिमित उपज, मानव प्रकृति, धातुओं की सुलभता अथवा न्यूनता, भूकम्प, बाढ, वर्षा की कमी, अति शीत और ताप आदि बातें प्रकृति की शक्ति का प्रदर्शन करते हैं और विज्ञान का पुतला पराक्रमी अजेय मनुष्य पुन उत्साहित होकर उससे द्वन्द्व करने मे लग जाता है। यह क्रम आदि से चला आया है और शायद अन्त तक चलता रहेगा।

सभ्यताओं का उदय—(१) प्राचीन मिस्र

इतिहास की पगडडी पर मनुष्य की लम्बी यात्रा की शुरू की मंजिलो पर हमने पिछले प्रकरण मे सरसरी नजर दौडाई, और कुछ ही पन्नो में हजारो-लाखो वर्ष हम पार कर गए। इस प्रकरण मे हम आज से लगभग ६००० वर्ष पूर्व की स्थिति पर आ पहुँचे है, जब पृथ्वी के भिन्न-भिन्न स्थानों में एक साथ ही सभ्यताओ का उदय होने लगा था। इस लेख मे हम सर्वप्रथम मिस्र को लेते है।

सिन्धु और गङ्गा ने भारत की और दजला और फरात नदियों ने मेसोपटेमिया की सभ्यता के विकास मे जितना भाग लिया है, उससे भी अधिक नील नदी ने मिस्र देश की सभ्यता पर अपना प्रभाव डाला है। वस्तुतः नील नदी के बिना वहाँ सभ्यता की कल्पना तक नही की जा सकती। वहाँ का जीवन और सभ्यता नील नदी का ही प्रसाद है। उसकी बाढ से और जल मे मिली हुई मिट्टी से उसके दोनो तट उपजाऊ हो गए वरना वहाँ रेगिस्तान ही दिखाई देता। उसी की सहायता से लोग मिस्र के विभिन्न स्थानो मे आ-जा सकते थे। उसी के दोनों तटो पर मिस्र के इतिहास का निर्माण हुआ है। कोई आश्चर्य नहीं कि मिस्र-निवासी नील नदी को देवता मानकर उसकी स्तुति किया करते थे।

पुरातत्व-वेत्ताओ ने, विशेषतः मोर्गन ने, यह पता लगाया है कि अन्य देशो की तरह मिस्र मे भी पुराने और नये पत्थर के युग थे, जिनका समय ईसा के दस हजार से चार हजार वर्ष पूर्व तक रहा। इस भूभाग के पत्थर के औजार ससार के अन्य देशों के पत्थर-युग के औजारों से बनावट, सफाई और तेजी मे बेहतर हैं। उस समय के लोगो ने जङ्गल साफ करके, दलदलो को दूर करके, खेती करना आरम्भ कर दिया था। वे नाव बनाना, अनाज पीसना, मिट्टी के अच्छे बरतन बनाना, कपडे और दरी बुनना और तस्वीर बनाना जानते थे। वे जानवर पालते थे। उन्हे खुशबू बनाने और रत्नो का ज्ञान था। वे बाल कटवाते थे। उनको चित्र-लेख अङ्कित करना आता था। पत्थर-युग के अन्त मे उनको धातुओ का ज्ञान हो चला था। कुछ लोगों का अनुमान है कि लेखन-कला का आविष्कार मिस्र देश मे ही हुआ है। यह तो सब मालूम हुआ, किन्तु यह ठीक पता नहीं कि वहाँ के आदिम निवासी कौन और किस जाति के लोग थे। यह अनुमान किया गया है कि वे लोग किसी एक जाति के न थे। उनका समाज न्यूबिया, लीबिया और ईथोपिया के काले लोगों एव सेमेटिक और आर्मिनाइड लोगो के मिश्रण से बना था।

मिस्र के ऐतिहासिक काल का आरम्भ वस्तुतः ईसा के ३४०० वर्ष पूर्व अर्थात् अब से लगभग ५४०० वर्ष पहले होता है। वहाँ के इतिहास को विद्वानो ने कई भागों मे विभक्त किया है। पहला भाग ३४०० से २१६० वर्ष ई० पू० तक रहा। उसे 'पुरातन राज्य' (Old Kingdom) कहते हैं। उसके बाद 'माध्यमिक राज्य' (Middle Kingdom) अथवा 'सामन्त सत्ताकाल' (Feudal Age) आरम्भ हुआ, जो २१६० से १५८० वर्ष ई० पू० तक रहा। तीसरा काल जिसे 'नया राज्य काल' (New Kingdom) अथवा 'साम्राज्य काल' कहते हैं, १५८० से ६४५ ई० पू० तक रहा। इसके बाद मिस्र के दुर्दिन आ गये। उस पर आक्रमण होने लगे। ईसा के पूर्व की छठी शताब्दी मे फारस ने मिस्र में अपना प्रभुत्व स्थापित किया और ३३२ ई० पू० मे यूनान के प्रख्यात विजेता अलेक्ज़ाण्डर (सिकन्दर) ने सदा के लिए मिस्र की स्वाधीनता का अन्त कर दिया। ऐतिहासिक काल मे मिस्र मे इकतीस राजवंशों ने राज्य किया, जिनमे चौथा, बारहवाँ और अठारहवाँ विशेष रूप से प्रख्यात हुआ।

प्राचीन दुनिया का मानचित्र (फारस के साम्राज्य के बारे में आगे विवरण दिया जायगा)

पुरातन राज्यकाल (३४००–२१६० ई० पू०)

इस युग का उस समय आरम्भ हुआ जबकि 'मीनीज़' नामक एक व्यक्ति ने, जो नील नदी के दक्षिणी भाग मे राज्य करता था, नील के उत्तरी भाग को जीतकर सम्पूर्ण तलहटी मे एक राज्य स्थापित कर दिया। उसके पहले अनेक छोटे-छोटे जिमींदारों ने मिलकर एक राज्य नील के उत्तर मे और एक दक्षिण मे बना लिये थे। मीनीज न क़ानूनो को प्रचलित किया, जो उसे 'थोथ' नाम के देवता से मिले थे। उसने लोगों को मेज और काउच (Couch) का प्रयोग सिखलाया। उसने अपनी राजधानी 'मेम्फिस' नगर मे स्थापित की। इस समय का दूसरा प्रसिद्ध राजा जोसीर (३१५० ई० पू०) हुआ, जिसको मिस्र के लोग देवता की तरह मानते थे। इसका कारण यह बतलाया जाता है कि उसने वैद्यक, विज्ञान, कला और स्थापत्य-विद्या का प्रचार मिस्र मे पहले ही पहल किया। कहते हैं कि इसी के समय से वहाँ पत्थर के मकान बनना शुरू हो गये। इस युग मे दस वशों ने राज्य किया। जोसीर जब मरा तब 'सक्कर' मे उसकी कब्र के ऊपर एक पटरीदार या सीढीदार पत्थर का पिरामिड बनाया गया, जिसे देखकर बाद को बडे विशाल पिरामिडो की रचना की गयी। ससार मे सबसे पुराना पत्थर का मकान भी इसी के समय मे बनाया गया था। इस युग मे सुन्दर तराशदार पत्थर के खंभे, उभरी नक्काशी का काम, ग्लेज़दार रंगीन मिट्टी की चीज़े बनायी जाने लगी थीं। कहते हैं कि इस युग का ससार को ज्ञात प्रस्तर-स्थपति 'इमहोतेप' था। वह ऊँचे दर्जे का हकीम और राजनीतिज्ञ भी माना जाता है। इन्हीं गुणों के कारण वह राज-मन्त्री हो गया था। उसी ने उस काल की पत्थर की इमारतें बनायी थीं।

फेरो खेफ़रे

यह 'कैरो म्यूज़ियम' में रखी हुई एक मूर्ति का चित्र है।
[फोटो—मेट्रोपालिटन म्यूज़ियम ऑफ आर्ट]

चतुर्थ राजवंश (३०००–२५०० ई० पू०)

जोसीर के सौ वर्ष के बाद मिस्र के चौथे राजवश (Fourth Dynasty) का प्रभुत्व आरम्भ हुआ। इस समय तक मिस्र ने स्थापत्य-कला और कारीगरी मे ऐसी उन्नति कर ली थी जितनी उन्नीसवी सदी को छोडकर ससार की किसी भी एक शताब्दी मे कही भी नही हुई। खनिज-विद्या की उन्नति एव मिस्र का बढता हुआ व्यापार इस अपूर्व उन्नति के कारण माने जाते हैं। इस वश का पहला राजा 'खूफू'* नाम का था। मिस्र उसके समय मे समृद्धिशाली देश हो गया था। ख़ूफू अभिमानी और उग्र स्वभाववाला था। उसने एक लाख मज़दूर लगाकर बीस वर्ष मे सबसे पहला पिरामिड 'गीज़े' मे बनवाया। यूनानी लेखक हेरोडोटस के अनुसार कुछ लोगों ने उसे अत्याचारी माना है। इन लोगों के अनुसार गुलामों से जबरन काम लेकर उसने पिरामिड बनवाया था। किन्तु कुछ विद्वान् कहते हैं कि बेकारी के समय मे अथवा नील में बाढ आने से पीड़ित किसानों और जनता को काम और दाम देकर उसने उनकी रक्षा की थी। अतएव उसे प्रजापालक समझना चाहिए। उसका उत्तराधिकारी 'ख़ेफरे' हुआ, जिसने ५६ वर्ष तक संतोषजनक शासन किया। उसके बाद वंश का पतन होने लगा।

* ग्रीसवाले "ख़ीऑप्स" नाम से उसका उल्लेख करते हैं।

गीजे का पिरामिड तेरह एकड़ जमीन पर बना है। उसकी ऊँचाई ४८१ फीट है। उसकी लम्बाई ७५५ फीट और उतनी ही चौड़ाई भी है। पत्थरों का वह एक ठोस त्रिकोण है। उसके बनाने में तेईस लाख या पचीस लाख पत्थर लगे होंगे। प्रत्येक पत्थर का वजन लगभग ढाई टन* है, किन्तु कुछ पत्थरों का वजन तो डेढ़ सौ टन (४२०० मन) तक है! इतने भारी-भारी पत्थरों को काटकर अरब आदि दूर-दूर के प्रदेशों से लाने और उतनी ऊँचाई तक चढ़ाने में एवं एक लाख मजदूरों के रहने, खाने-पीने और प्रबन्ध रखने में जो कठिनाइयाँ और समस्याएँ पैदा हुई होंगी, उनका अनुमान किया जा सकता है। उनको सुलझाकर कार्य को सफल करना प्राचीन इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण कृति है। मिस्र में इञ्जीनियरी ग्रीस और रोम से अधिक बढ़ी-चढ़ी थी। वैसे इञ्जीनियर योरप में उन्नीसवीं शताब्दी तक भी नहीं हुए।

मेम्फिस नगर

गीजे पिरामिड के आसपास राजमहल, कचहरियाँ, पार्क, बाग आदि बनने लगे और धीरे-धीरे वहाँ "मेम्फिस" नाम का सुन्दर नगर निर्मित हो गया। यहीं चतुर्थ वंश की राजधानी स्थापित हो गयी। इस नगर की इमारतें पत्थर की नहीं, बल्कि कच्ची ईंटों और लकड़ी की बनी थीं। रईस लोगों के मकानों के चारों ओर बाग लगाया जाता था। उनको कमल के फूलों का बड़ा शौक़ था। बाग के तालाब में कमल के फूल लहलहाया करते थे। उसमें बाल-बच्चे खेला करते थे और आदमी आमोद-प्रमोद करते, जुआ खेलते तथा स्त्रियाँ नाचा-गाया करती थीं। नगर में अच्छे-अच्छे कारीगर बसते थे। लकड़ी का और सुनारी का काम ऐसा सुन्दर होता था कि जिसका मुक़ाबला आज दिन भी करना कठिन है। चतुर कुम्हार, शिल्पकार, शीशे की चीजें बनानेवाले, ताँबे और काँसे की चीजें बनानेवाले, बारीक कपड़े बिननेवाले, रंगरेज, छीपी, फर्दसाज, संगतराश, जौहरी, चित्रकार, कागज बनानेवाले वहाँ बसते थे। स्मरण रखना चाहिए कि मिस्र में शीशा और बादामी कागज बनाने की कला, और बिनाई में बड़ी उन्नति हुई थी। कहते हैं कि सबसे पहले वहाँ ही शीशे का बनाना आरम्भ हुआ था। मेम्फिस नगर की समृद्धि कृषि और व्यापार पर अवलम्बित थी। मिस्रवासी छोटी-बड़ी नावों और बजरों द्वारा नदियों और मेडिटरेनियन (भूमध्य सागर) में व्यापार करते थे। स्थल-मार्ग में व्यापार गधों के द्वारा होता था, क्योंकि वहाँ के लोगों को घोड़ों का परिचय न था। इस समय वहाँ सिक्के का चलन शुरू नहीं हुआ था और व्यापार साधारणतया विनिमय (Barter) द्वारा होता था। मालगुजारी भी जिन्स में दी जाती थी। केवल राजा, और रईस सोने अथवा ताँबे के वजनी छल्लों का प्रयोग सिक्कों की तरह करते थे।

पिरामिड-काल में मिस्र का समाज तीन श्रेणियों में विभक्त था। एक श्रेणी तो दासों की थी, जो दूसरों की जमीन पर काम करते थे। दूसरी श्रेणी में स्वतन्त्र जनता थी, जो कृषि और उद्योग-धन्धों से अपना निर्वाह करती थी। प्रत्येक पेशे के लोग पीढ़ी-दर-पीढ़ी उसी काम को करते थे, जिससे कि हर एक पेशे की बिरादरी या जात बन गयी थी जैसी कि हमारे देश में है। हर पेशे के लोगों का एक नायक होता था, जो सबसे काम लेता और उनको मजदूरी देता था। मजदूरी में अधिक विलम्ब होने अथवा ज्यादती करने पर कारीगर हड़ताल कर देते थे और कभी-कभी तो उपद्रव मचाते और आक्रमण कर बैठते थे। उपर्युक्त दोनों श्रेणियों के लोगों के पास अपनी जमीन न होती थी। इनके ऊपर जिमींदार, और सरकारी बड़े उच्च पदाधिकारी थे। सबसे ऊँचा स्थान 'फेरो' अर्थात् राजा या सम्राट् का था। सम्राट् ही कुल जमीन का मालिक माना जाता था।

पाँचवाँ वंश (२६६५–२८२५ ई० पू०) और छठा वंश (२८२५–२६३० ई० पू०)

चौथे राजवंश के बाद पाँचवें राजवंश का आरम्भ हुआ। इस वंश के तेरह राजाओं के नाम मिलते हैं, किन्तु सम्भवतः नौ राजाओं ने ही राज्यासन शोभित किया। इस समय के इतिहास का अधिक ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ है। किन्तु एक बड़े महत्व की वस्तु उस समय का एक पेपाइरस अर्थात् कागज की लपेटी हुई कुण्डली-सी मिली है, जिसमें पाँचवें वंश के सम्राट् तत्-का-रा-असा (Taf-Ka-Ra-Assa) के समय की घटनाओं का उल्लेख है, कहा जाता है कि संसार का सबसे पुराना लेख यही है।

पाँचवें वंश की मुख्य विशेषता मिस्र में उत्तर के सूर्य देवता 'रा' की पूजा का पुनःस्थापन और प्रचार करना है। इसके पहले वहाँ दक्षिण के आकाश-देवता 'होरस' की पूजा होती थी। कहा जाता है कि इसी काल से मिस्र में 'पुरोहित' (Priest) श्रेणी का प्रारम्भ हुआ। इसके पहले पुरोहितों की कोई पृथक् श्रेणी न थी। इसी प्रकार पैतृक या पुश्तैनी पदाधिकारियों का भी आरम्भ हो गया। इसके पहले वहाँ राज्य के बड़े-बड़े पद राजा के वंशजों को ही मिलते थे। किन्तु इस समय से उच्च पद पुश्तैनी

* एक टन का वजन लगभग २८ मन होता है।

हो गये। इनको जो अधिकार और भूमि मिली थी, वह छठे राजवश के समय तक इनके वश मे पुश्तैनी हो गयी।

छठे वश मे "पेपी" द्वितीय नाम का पराक्रमी राजा हुआ। इसके समय (२७३८ से २६४४ ई० पू०) से यह प्रथा चली कि प्रत्येक राजा अपने समय मे ऐसे मन्दिरों का निर्माण करावे, जो भवि'य में उसके महत्व के साक्षी हो सके। पेपी ने स्वयं लाल पत्थर के मन्दिर बनवाये। इस पत्थर के लिए उसे 'असवान' पर दो बार आक्रमण भी करना पड़ा। कहा जाता है कि 'सुएज़' की ओर भी उसने चढाई की थी। अपने राजत्व-काल मे पेपी द्वितीय ने पॉच नहरे खुदवायी, जिनका उद्देश्य असवान से पत्थर लाना था। यद्यपि पेपी के समय मे राजकोष और राज्य की वृद्धि हुई और उसे योग्य मत्री भी मिले और उसका राज्य-काल लगभग ६४ वर्ष तक रहा, किन्तु राज्य के अस्त-व्यस्त होने के लक्षण उसके राज्य-काल के अन्त तक साफ दिखायी पडने लगे। उसके मरते ही उसका राज्य भी टुकडे-टुकडे हो गया। स्थानिक जिमीदार, सरदार और राजवशज स्वतन्त्र बन बैठे। मेम्फिस नगर का महत्व भी उसके साथ-साथ नष्ट हो गया। ऐसी परिस्थिति मे 'सीरिया' वालो ने मिस्र पर आक्रमण कर दिया। यह भी कहा जाता है कि न्यूबिया के 'नीग्रो' लोगों ने भी उस पर चढाई कर दी। परिणाम यह हुआ कि पुराने राज्यवशों और उनके ऐश्वर्य का अन्त हो गया।

माध्यमिक राज्य-काल

ग्यारहवॉ राज्य-वंश (२३७५ से २२१२ या २१६० से २००० ई० पू०)

करीब तीन सौ वर्ष तक मिस्र का इतिहास अन्धकारपूर्ण और सभवतः अशान्तिपूर्ण रहा। छोटी-छोटी रियासतो के आपस के बैर और विदेशियो के आक्रमण से मिस्र अव्यवस्थित हो गया। किन्तु उसका उद्धार करनेवाली एक नई शक्ति मिस्र के मध्य भाग मे पैदा हो गयी। यह थीबिया का "अन्तेफॉ" वश था, जिसकी राजधानी 'थेब्रीज' मे थी। इस वश का सबसे बडा राजा नेभपेत्रे (२२६०-२२४२ ? ई० पू०) हुआ, जिसने जिमीदारो पर अपना प्रभुत्व जमाकर मिस्र मे फिर एक राज्य स्थापित कर दिया। किन्तु उनको न तो उसने नष्ट किया और न उनके स्थानिक अधिकारो को ही उनसे छीना। यही नही उसने विदेशी आक्रमणकारियों से भी अनेक युद्ध किए। एक सौ साठ वर्ष तक राज्य करके यह वश भी समाप्त हो गया, किन्तु इसने मिस्र के उत्थान के लिए रङ्ग-मञ्च तैयार कर दिया।

बारहवॉ वंश (२००० से १७८८ ई० पू०)

मिस्र के इतिहास मे सबसे महत्व का वश 'बारहवॉ वश' माना जाता है। इसका सबसे पहला राजा "आमेनेमहेत" प्रथम (२२१२-२१८२ या १५५७-१५४१ ई० पू०) हुआ, जो या तो ग्यारहवे वश की किसी शाखा से उत्पन्न हुआ या उसके अन्तिम राजा का मन्त्री था। इसी के समय मे नये वश की राजधानी 'इत्थतोई' की बडी उन्नति हुई और 'लक्सर' के प्रसिद्ध देवालयो का निर्माण आरम्भ हुआ। इसी ने 'आमोन' देवता की पूजा का प्रचार किया जो कुछ समय के बाद 'रा' से सयुक्त होकर 'आमोन रा' के नाम से मिस्र का प्रमुख देवाधिदेव प्रख्यात हो गया। इसने राजा और युवराज के मिलकर शासन करने की परिपाटी चलायी, जिससे वयस्क और युवक का सहयोग और शासन की स्फूर्ति रहे तथा राज्याभिषेक मे कठिनाई भी कम पडे। कहा जाता है कि मिस्र का यही पहला राजा है, जिसने प्रजा का पालन और राष्ट्र-सेवा को ही राजा का परम कर्तव्य निश्चित किया। यह निरन्तर राज्य का दौरा करता और अराजकता और देशद्रोहियो का दमन करता रहा। इसी की नीति का अनुकरण करके उसके प्रतापवान उत्तराधिकारियों ने ज़िमीदारी वश का विनाश कर दिया और राजाश्रित नये राज्य-पदाधिकारियों का वर्ग तैयार कर दिया।

सनूस्रेत तृतीय (२०६६-२०६१ ई० पू०)

इस वश के राजाओ मे दो विशेषतया उल्लेखनीय हैं। एक "सेनूस्रेत" तृतीय और दूसरा "आमेनेमहेत" तृतीय। 'सेनूस्रेत' तृतीय (२०६६-२०६१ या १८८७-१८४६ ई० पू०) ने न्यूबिया पर चढाई करके दूसरे प्रपात तक अपने राज्य की सीमा बढा दी। पेलेस्टाइन के दक्षिणी भाग मे 'सेकमेम' पर भी चढाई की। किन्तु उसका सबसे महत्व का कार्य स्थानिक जिमींदारों और रजवाडो को निस्तेज और अशक्त करना था। उसका उत्तराधिकारी आमेनेमहेत तृतीत (२०६१-२०१३ या १८४६-१८०१ ई० पू०) हुआ। इसने राज्य की सीमा तृतीय प्रपात तक बढाकर वहॉ क़िले बनवा दिए। इसने मोइरिस झील के पानी को बॉध बनाकर नील नदी की ओर बहा दिया, जिससे एक बडा भूभाग जल से सिंचित और खेती से हरा-भरा हो गया। फैय्यूम मे उसने प्रसिद्ध भूलभुलैयॉ और मनुष्य के चेहरे के सिंह बनवाये। सीनाई मे याक़ूत और तॉबे की कानों से भी पूरा लाभ उठाने का प्रयत्न किया। उसके समय मे राजा की शक्ति पूर्णता पर पहुँच गयी और शासन का कार्य ज़िमीदारों के हाथ से राजकर्मचारियों के हाथ मे चला गया।

किन्तु बढते हुए वैभव मे क्रूर काल का विनाशकारी विधान छिपा हुआ था। उसकी मृत्यु के बाद राज्य बिगड़ने लगा और १८०० या १७८८ ई० पू० 'हिक्सोस' नामक सेमेटिक भाषा-भाषी वश ने अरब की मरुभूमि से बढकर मिस्र पर अपना अधिकार स्थापित कर दिया। मिस्र मे विदेशियों का ऐसा प्रबल और इतने काल तक अधिकार पहले कभी नही हुआ था। उनके विजय का मुख्य कारण उनके युद्ध के साधन थे। उनके पास घोडे थे, जिनको वे पहियोंवाले रथ मे जोतकर चलाते थे। मिस्रवालो को न तो घोड़ो और न पहियेवाले रथों का ही ज्ञान था। इसके अलावा आक्रमणकारियों के पास काँसे के हथियार विशेषत' तलवार थी, जिसके मुक़ाबले का कोई अस्त्र मिस्र-वालों के पास न था, क्योंकि वे काँसे का प्रयोग जानते ही न थे। जान पड़ता है कि मिस्र के अधिकारच्युत जिमींदारो और असन्तुष्ट प्रजा ने राजाओं का साथ न दिया, जिससे आक्रमणकारियों का काम सुलभ हो गया। "हिक्सोस" के उत्थान के साथ-ही-साथ मिस्र के माध्यमिक काल का अन्त माना जाता है।

नया राज्य-काल (१५८०-६४५ ई० पू०)

यद्यपि मिस्र के दक्षिणी भाग में वहाँ के ही राजा राज्य करते रहे, किन्तु हिक्सोस लोगों के प्रताप के सामने वे निस्तेज और नगण्य-से रहे। दो सौ आठ वर्ष तक हिक्सोस का ही दौर-दौरा रहा। किन्तु यह व्यवस्था ई० पू० की सत्रहवी शताब्दी के अन्त से बदलने लगी। थेब्रीज के एक राजकुमार 'सेक्नेनेनरे' प्रथम ने हिक्सोस लोगों के विरोधका आरम्भ किया, जो दिनोदिन बल पकड़ता गया। उसका एक उत्तराधिकारी 'सेकेनेनरे' तृतीय भी सभवत' स्वतत्रता के लिए लड़ता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ '(१५६० ई० पू०)। उसका एक पुत्र 'आहमीज' बड़ा योद्धा निकला। उसने अपने पिता का सकल्प पूर्ण किया और हिक्सोस लोगो की राजधानी 'अवरिस' को छीनकर उनको मिस्र से निकाल दिया। इसी वीर नवयुवक ने १५७८ ई० पू० राजसिंहासन पर बैठकर अठारहवे राजवश की प्रतिष्ठा की। यही नहीं दक्षिण के विद्रोहियों और न्यूबियन लोगों का दमन करके उसने मिस्र को फिर एकता के सूत्र से बाँध दिया।

अठारहवाँ राजवश (१५८०-१३५० ई० पू०)

'आहमीज' के बढते हुए प्रताप के आगे मिस्र के जिमींदारों और प्रबल राजकर्मचारियों का सितारा फिर डूब गया। उसने उनकी पैतृकभूमि छीनकर अपने शासन मे ले ली। इसके समय मे सामन्तों का अन्त हो गया और सारी भूमि राज-शासन मे आ गयी। अपनी विजयों से उत्साहित होकर उसने सीरिया और पेलेस्टाइन पर चढाइयाँ आरम्भ कर दी। देश मे विजयाकाक्षा की ऐसी उत्तेजक लहर उठी कि मध्यम श्रेणी के लोग भी हथियार बाँधकर सैनिक हो गए। उसने उनको उदारता के साथ पुरस्कृत करके उनके उत्साह को दृढ और सवर्धित कर दिया। मिस्र मे घोडे, रथ और नए अस्त्रों से सज्जित नए ढग की स्थायी सेना की स्थापना हो गयी। इस सेना से मिस्र मे दिग्विजय की अभिलाषा और नए युग का आरम्भ हो गया। आह-मीज ने बडे परिश्रम के साथ अपने सुयोग्य मत्री की सहायता से राज्य और शासन का सगठन नव आदर्शों के अनुकूल किया। समाज मे राज-कर्मचारियो की वृद्धि होने लगी। मन्दिरों की सम्पत्ति और उनका महत्व बढने के कारण "पुजारियों" के एक पृथक् श्रेणीबद्ध दल का आविर्भाव हो गया, जो आगे चलकर प्रबल हो गया और राज्य का एक महत्वपूर्ण अङ्ग बन गया।

आहमीज की मृत्यु (१५५७ ई० पू०) के पश्चात् कई प्रतापी राजे हुए। आमेनहोतेप प्रथम (१५५७-१५४१ ई० पू०) ने न्यूबिया के उत्तरी भाग को राज्य मे मिला लिया, लीबियावालों को खदेड़कर उनके प्रान्त पर चढाई कर दी, और कहा जाता है कि उसने मेसोपटेमिया की फरात नदी तक धावा किया। उसके उत्तराधिकारी 'थटमोज़' प्रथम (१५४०-१५०१ ई० पू०) ने अपना राज्य नील के चौथे प्रपात तक बढा दिया। एशिया के राज्य, जिन्हें उसके पूर्वजों ने करद बनाया था, ठीक तौर पर कर नही देते थे। अतएव वह सीरिया की ओर बढा और फरात नदी के तट तक जा पहुँचा। वहाँ उसे इतनी सफलता हुई कि वह प्रसन्नमन लौटा और थेब्रीज मे आलीशान मन्दिर की रचना मे लग गया। मन्दिरों के लिए उसने बहुमूल्य सामग्री एकत्रित कर दी और उनके लिए जागीरे दे दी। उसकी मृत्यु (१५०१ ई० पू०) के बाद असली पुत्र के अभाव में उसकी पुत्री 'हाशेपसुत' महारानी बनायी गयी। वह बड़ी तेजस्विनी थी। यद्यपि उसका पति 'थटमोज' तृतीय स्वय पराक्रमी और प्रतापी था, किन्तु महारानी के जीते जी तक उसकी कुछ चलने न पाई। सारा राज-काज महा-रानी ही करती रहीं। कहा जाता है कि ऐतिहासिक स्त्रियो में यही सबसे पहली और प्रख्यात राज्य करनेवाली महा-रानी हुई। यद्यपि उसने राज्य-विस्तार तो नही किया, किन्तु इसके गौरव की पूरी तरह रक्षा की। उसके शान्तिमय
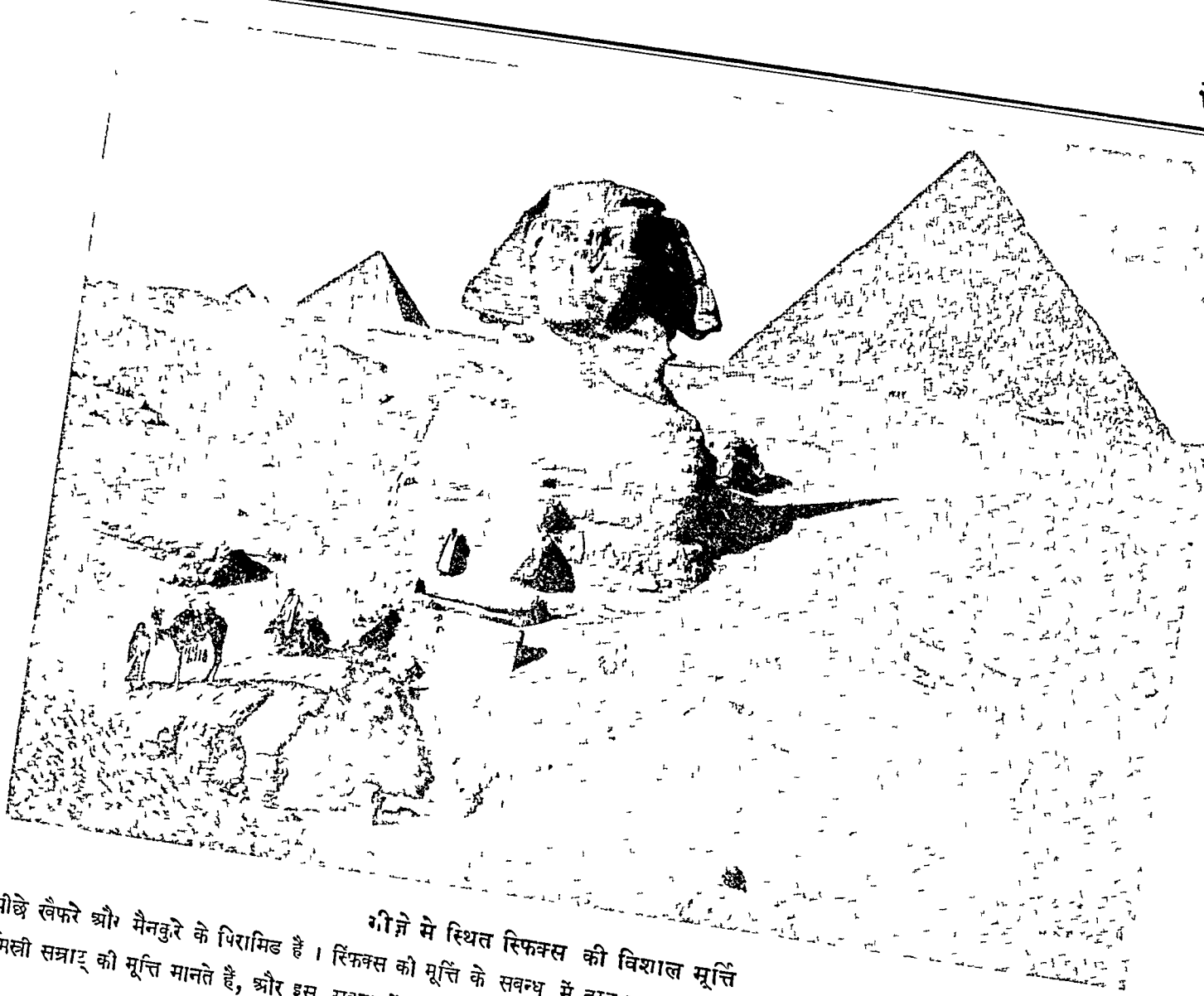
गीज़े मे स्थित स्फिक्स की विशाल मूर्त्ति

पीछे खैफरे और मैनकुरे के पिरामिड हैं । स्फिंक्स की मूर्त्ति के सवन्ध में तरह-तरह की धारणाएँ प्रचलित हैं । कई ऐतिहासिक इसे किसी मिस्री सम्राट् की मूर्त्ति मानते हैं, और इस सवन्ध में प्रायः खैफरे का नाम लिया जाता है, क्योंकि स्फिंक्स की इस मूर्त्ति के पजों के बीच एक लेख में खैफरे का कुछ उल्लेख है ।
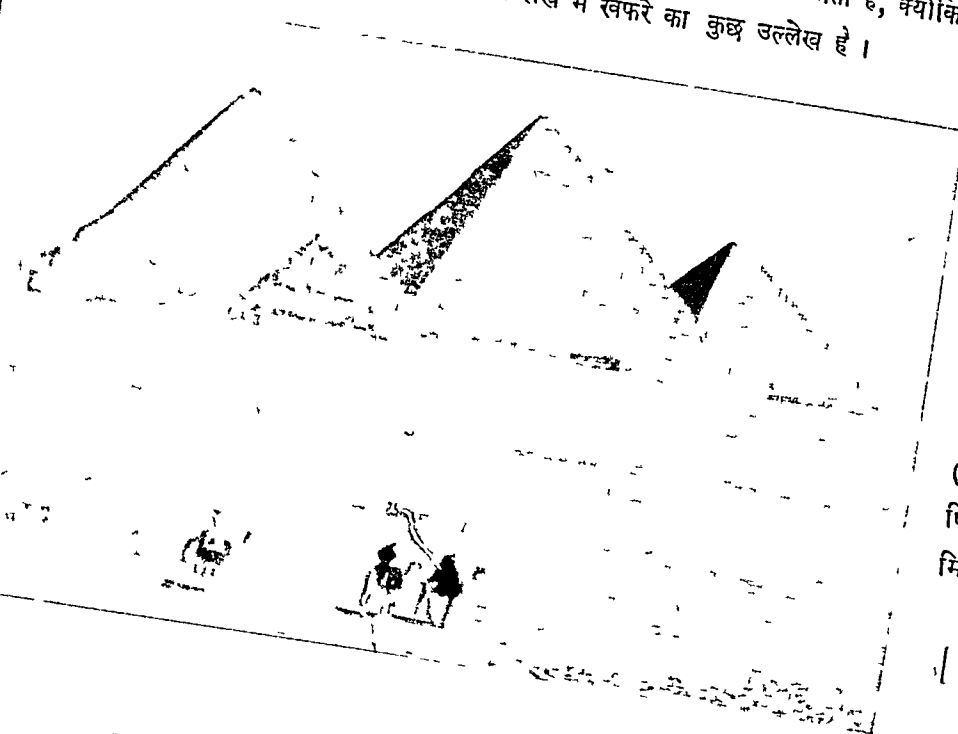
(बाईं ओर) गीजे के सुप्रसिद्ध पिरामिड

यह फोटो इन पिरामिडों के दाक्षण-पश्चिम में स्थित रेगिस्तान से लिया गया है । इनमें बाईं ओर से पहला (खैफरे के उत्तराधिकारी) मेनकुरे का पिरामिड है, दूसरा खैफरे का पिरामिड है और तीसरा खूफू का महान पिरामिड है ।

[फोटो—ब्रेस्टेड की 'हिस्ट्री आफ ईजीप्ट' से ।]

(दाहिनी ओर)
सेनूस्रेत तृतीय
यह प्रस्तर-मूर्ति का टूटा अंश सेनूस्रेत तृतीय की प्रतिमा का भाग बताया जाता है।
[फोटो—मेट्रोपालिटन म्यूज़ियम ऑफ़ आर्ट]

पेपी द्वितीय

[illegible] प्रतिमा पूरे मनुष्य के आकार की है और तांबे की चादर [illegible] है। पीछे जो एक और छोटी प्रतिमा है वह पेपी के [illegible] की है। [फोटो— कैरो म्यूज़ियम]

आमेनहोतेप तृतीय
यह पाषाण-मूर्ति भी 'क़ैरो म्यूज़ियम' में रखी है।

(बाईं ओर) इखनातोन, जो मिस्र के राजाओं में सबसे अधिक प्रतिभाशाली, क्रान्तिकारी और आदर्शवादी राजा हुआ।

(दाहिनी ओर) थटमोज़ तृतीय जो 'मिस्र का नेपोलियन' कहा जाता है। यह सुन्दर प्रस्तर-मूर्त्ति कैरो म्यूज़ियम में रक्खी है। [फोटो — मैट्रापालिटन म्यूज़ियम ऑफ आर्ट]

(ऊपर) तूतन खामोन की कुर्सी या सिंहासन

सुन्दर नमूना 'कैरो म्यूज़ियम' में है। [फोटो—मैट्रापालिटन म्यूज़ियम ऑफ़ आर्ट]

(बाईं ओर) समाधिस्थान से प्राप्त तूतन ख़ामोन की एक प्रतिमा

(बाईं ओर) कर्नाक के भव्य मदिर में सभामण्डप के विशाल खभो की पक्ति

इन ध्वमावशेषों से ही कुछ अनुमान किया जा सकता है कि मिस्र ने आज से हजारों वर्ष पूर्व ही स्थापत्य-कला में कितनी उन्नति कर ली थी।

(नीचे) कर्नाक के मदिर का सभामण्डप कैसा रहा होगा ?

यह 'मेट्रापालिटन म्यूजियम ऑफ आर्ट' में प्रदर्शित कर्नाक के मदिर के सभामण्डप के एक कल्पित नमूने का फोटो है। यह इस भव्य इमारत के वर्तमान ध्वसावशेषों के आधार पर बनाया गया है। इससे आप कल्पना कर सकते हैं कि अपनी वास्तविक दशा में यह इमारत कैसी भव्य दिखाई देती रही होगी।
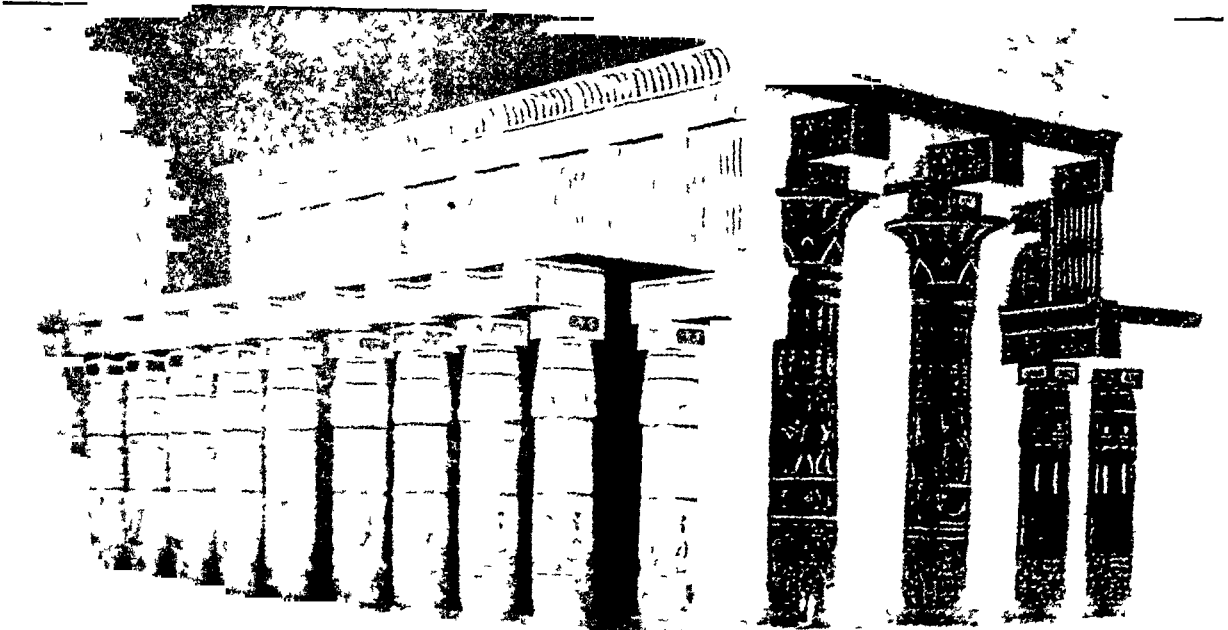
राजत्व-काल मे मिस्र ने अच्छी उन्नति और समृद्धि प्राप्त की। उसने भी बड़े आलीशान मन्दिर निर्माण कराए। मिस्रवाले उसे देवी होरस का अवतार मानने लगे। १४७६ ई० पू० उसके देहान्त होने के बाद उसके पराक्रमी पति को स्वतन्त्रतापूर्वक अपने पराक्रम के प्रदर्शन का अवसर मिला।

थटमोज़ तृतीय (१४७९-१४४७ ई० पू०)

थटमोज़ तृतीय जैसा पराक्रमी और विजयी था वैसा ही सेनानायक और राजनीतिज्ञ भी था। इतिहासज्ञ उसकी सेना-सञ्चालन की विधि को सोचकर अचम्भे मे आ जाते हैं, क्योंकि उसका ढग वैज्ञानिक और आधुनिक युद्ध के अनुकूल था। अपने शासन के पहले वर्ष मे ही उसने सीरिया के सयुक्त बल का मुक़ाबला 'मेगीडो' मे किया और घोर युद्ध के बाद प्रशसनीय विजय प्राप्त की, जिससे अनेक राजे उसकी शरण मे आ गए। इस विजय से प्रोत्साहित होकर उसने सात बार आक्रमण किए। प्रत्येक युद्ध में उसकी विजय हुई। इसी कारण उसे इतिहासकार 'मिस्र का नेपोलियन' कहते हैं। इसका आतङ्क ऐसा जम गया कि सीरिया,असीरिया,नहरैन, मिटानी, खेटा (हिटाइट), फोनीशिया, अलाशिया (साइप्रस?) की रियासते उसको कर देने लगीं। उसकी सेना फराल की तलहटी तक जा पहुँची। उसका जहाज़ी बेड़ा भूमध्य-सागर मे निर्द्वन्द विचरता फिरता था। चारों ओर से सम्पत्ति उड कर मिस्र मे आने लगी और उसकी समृद्धि अभूतपूर्व हो गयी। इस धन से मिस्र मे बड़े-बड़े मन्दिर और स्मारक बनाए गए, जिनसे नील नदी के तट के कई नगर जगमगाने लगे। थटमोज़ जैसा विजेता था, वैसा ही शासक भी था। शासन के प्रत्येक विभाग और देश के समस्त जीवन पर उसने अपने व्यक्तित्व की छाप लगा दी। कहा जाता है कि वास्तविक अर्थ मे वह सबसे पहला साम्राज्य-निर्माता और दिग्विजयी हुआ है। केन्द्रिक शासन के स्थानिक शासन पर आधिपत्य का विधान रचकर भविष्य को उसने नया मार्ग दिखाया। विजित प्रजा को स्वानुरक्त बनाने के लिए उसने सहानुभूति,न्याय,शान्ति और शिक्षा का प्रयोग किया।

आमेनहोतेप तृतीय (१४११-१३७५ ई० पू०)

मिस्र का साम्राज्य शक्ति के प्रयोग से बना था, और उसी से उसकी रक्षा भी हो सकती थी। थटमोज़ के बाद उसके पुत्र और प्रपौत्र को बल का प्रयोग करना पडा, क्योंकि थटमोज़ के मरते ही सीरिया आदि मे विद्रोह की आग भडक उठी थी। इस विद्रोह का दमन ऐसी दृढ़ता के साथ किया गया कि "आमेन-होतेप" तृतीय को अपने छत्तीस वर्ष के राज्य-काल मे फिर सीरिया की ओर जाने की आवश्यकता ही न पडी। इस राजा के समय मे मिस्र उन्नति और समृद्धि की पराकाष्ठा पर पहुँच गया। इस समय को लोग 'मिस्र का स्वर्णयुग' मानते हैं। सम्पत्तिशाली होने के कारण इस युग मे मिस्र की कलाओं और कौशल ने अभूतपूर्व उन्नति की। आमेनहोतेप तृतीय के पिता ने और स्वय उसने भी मिटानी और बेबीलान के राजवश से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर लिया, जिससे राजनीतिक प्रभाव और सभ्यता की यथेष्ट वृद्धि हुई।

इतने वर्षों तक शान्ति, वैभव, ऐश और आराम मे रहने के कारण मिस्र मे विजयादर्श क्षीण हो गया और रण-प्रेम कम हो गया। सयोगवश वहाँ का नया राजा 'आमेनहोतेप' चतुर्थ (१३७५-१३५८ ई० पू०) शान्ति और धर्म का प्रेमी निकला। उसके विचार और आदर्श क्रान्तिकारी थे। धर्म, कला, आचार-विचार के सम्बन्ध मे उसके विचार अपने पूर्वजो से भिन्न थे। न तो जातीय देवता 'आमोन' के प्रति उसकी श्रद्धा थी और न उसे मन्दिरो और पुजारियो का आडम्बर ही रुचिकर था। मन्त्र, तन्त्र, पशु-बलि और नरबलि एव मन्दिरो की अगणित देवदासियों को वह निन्दनीय समझता था। पुजारियो की जीवन-चर्या और व्यभिचार से उसको घृणा थी। उसके आचार-विचार पवित्र, और भाव एव आदर्श शुद्ध थे। नवयुवक होने और कवि-हृदय पाने के कारण, उसमे उत्साह और सुधार करने की प्रबल इच्छा जाग्रत हो उठी। उसने एक ईश्वर "आतोन" की पूजा का प्रचार करना आरम्भ कर दिया। अन्य देवताओं के स्थान पर उसने केवल सूर्य की उपासना का ही आदेश दिया, क्योकि सूर्य ही उस सर्व-व्यापक परम पिता, दयालु, रक्षक परमेश्वर की विभूति का द्योतक है। थेबीज नगर को आचारहीन और पापपूर्ण देखकर उसने "आखेतातोन" नामक नवीन नगर का निर्माण किया। उसने "आतोन" के सिवा सभी देवताओ की पूजा और नामनिशान मिटा देने की आज्ञा दे दी। स्वय अपना नाम भी बदलकर उसने "इखनातोन" रख लिया। यही नहीं, मन्दिरो मे खुदे हुए सब देवताओ और उनके नामों से संयुक्त होने के कारण अपने पूर्वजो के भी नाम उसने खुर-चवा दिए। देवालयों से पुराने देवता निकाल दिए गए और पुजारियों की सम्पत्ति छीन ली गई। उसने अपने क्रान्तिकारी विचारों और [illegible] मे अपनी पूरी

प्रजा में उसके विचारों और नीति से असन्तोष पैदा हो गया। वंशानुगत जातीय देवताओं का अपमान लोगों को असह्य होने लगा। पुजारियों ने भी असन्तोष बढ़ाने का पूरा प्रयत्न किया। परिणाम यह हुआ कि इख़नातोन को लोग सनकी, आदर्शवादी, धर्मान्ध, निर्बल और अदूरदर्शी प्रचारक, उपदेशक और प्रमादी कवि समझने लगे। उसके प्रति उपेक्षा, अरुचि और घृणा के भाव पैदा हो गए। राजकर्मचारियों ने ढील डाल दी, प्रबन्ध में गड़बड़ी पैदा हो गई, अधीनस्थ राज्यों ने कर देना बन्द कर दिया, ख़ज़ाना ख़ाली हो गया, सेना उत्साहहीन हो गई और मिस्रवासियों का आत्म-विश्वास घट गया। ऐसी पतनोन्मुख परिस्थिति में हिटाइट, मिटानी और बेबिलान वालों ने साम्राज्य का विरोध करना आरम्भ कर दिया। ऐसी सोचनीय दशा में मिस्र को छोड़कर विलक्षण और प्रतिभाशाली किन्तु प्रभावहीन 'इख़नातोन' तीस वर्ष की अवस्था ही में दुःखी होकर बिना सन्तान के संसार छोड़कर चल दिया। उच्च आदर्शों का राज्य और देश पर दुःखद प्रभाव पड़ना इतिहास की एक विषम पहेली है।

इख़नातोन की मृत्यु के बाद उसका उत्तराधिकारी उसका एक दामाद हुआ, किन्तु वह बिना कुछ किये ही उसी वर्ष मर गया। फिर दूसरा दामाद 'तूतनख़ातोन' राजा बना। जनता को सन्तुष्ट करने के लिए, वह राजधानी फिर थेबीज़ को वापस ले गया। 'आतोन' की पूजा छोड़ी जाने लगी। 'आमोन' तथा पुराने देवता फिर जीवित हो गये। पुराने पुजारी फिर फूलने-फलने लगे। इसने अपना नाम भी बदलकर 'तूतन ख़ामोन' रख लिया। किन्तु यह परिश्रम निरर्थक रहा। उसने एक बार मिस्र के महत्त्व को पुनरुज्जीवित करने की कोशिश की, किन्तु वह असफल रही। इसका समाधिस्थान सन् १६२२ ई० में खोला गया। उसमें बड़े महत्व की चीजें निकलीं, जिससे शिक्षित संसार में उसकी चर्चा हो गयी। उन चीजों के देखने से साफ पता चलता है कि उसके श्वसुर के समय क्रान्तिकारी विचारों और कलाओं का भी पतन हो गया था। तूतन खामोन की मृत्यु (१३५३ ई० पू०) राज्यासीन होने के पाँच वर्ष बाद हो गई। उसका उत्तराधिकारी और भी निर्बल निकला। उसके मरते ही (१३५० ई० पू०) अठारहवें राजवंश का विनाश हो गया, मिस्र का राज्य अस्तव्यस्त हो गया और अशान्ति के झकोरों से शासन की बेलि टूटकर गिरने लगी।

अठारहवें वंश के अन्तिम राजा 'आई' का मन्त्री 'होरमहेब' एक चतुर, कार्यकुशल और प्रभावशाली व्यक्ति था। विप्लव से राज्य की रक्षा करने के लिए उसने राज्य की बागडोर अपने हाथ में ले ली। प्राचीन संस्थाओं, पुराने देवताओं और देवालयों का पुनः-पुनः संस्कार करके शासन को सुधारने का उसने भरसक प्रयत्न किया। इख़नातोन की बहिन से विवाह करके उसने राजवंश से अपना सम्बन्ध स्थापित कर लिया। अपनी मृत्यु (१३२१ या १३१४ ई० पू०) के पूर्व उसने शायद किसी पुराने राजवंश के "रामसेज" प्रथम नाम के एक व्यक्ति को अपना उत्तराधिकारी चुन लिया था।

उन्नीसवाँ और बीसवाँ राजवंश—रामसेज वंश
(१३२१—१०९४ ई० पू०)

'रामसेज' से ही उन्नीसवाँ और बीसवाँ राजवंश चला है। रामसेज वृद्ध था। सिंहासन ग्रहण करने के एक वर्ष बाद ही उसका देहान्त हो गया। इस वंश में भी कई प्रसिद्ध राजे हो गए हैं। उनमें पहला 'सेती' प्रथम था, जिसने कि पेलेस्टाइन में बद्दूओं के बढ़ते हुए प्रभाव को रोककर वहाँ वालों पर मिस्र की सेना का आतङ्क फिर स्थापित करने का प्रयत्न किया। वहाँ से लौटकर उसने लीबियावालों को पीछे हटा दिया। हिटाइट लोगों से, जिन्होंने सीरिया में अपना प्रभाव जमा लिया था, युद्ध करने के लिए सेटी ने उन पर चढ़ाई की और उनको परास्त किया। इस विजय से मिस्र की शक्ति का ऐसा प्रभाव जमा कि हिटाइट उससे फिर न उलझे। सेती ने राज्य के पुनरुत्थान का प्रयत्न किया और थेबीज को पुनर्जीवित करके विशाल मन्दिरों और स्मारकों से उसे विभूषित किया। उसकी मृत्यु लगभग १३०० ई० पू० हुई।

दूसरा प्रतापी राजा रामसेज द्वितीय (१३००—१२२५ ई० पू०) हुआ। यह बली योद्धा था। इसमें अदम्य आत्मिक विश्वास और स्वाभिमान था। थटमोज तृतीय की समता प्राप्त करने के लिए उसने हिटाइट लोगों पर चढ़ाई कर दी। यद्यपि उससे भयङ्कर चूक हो गयी थी, किन्तु अपनी वीरता और उत्साह से उसने उन पर (१२६६ या १२८८ ई० पू०) विजय प्राप्त कर ली। किन्तु उनकी भूमि लिए बिना ही उसे लौटना पड़ा। इतिहास में यह सबसे पहला युद्ध माना जाता है, जिसका पूरा वर्णन मिलता है। इस विजय को सन्दिग्ध समझकर हिटाइटों ने फिर उपद्रव खड़ा किया और अन्य रियासतों को भी उभाड़ा। इस बार रामसेज ने फिर चढ़ाई की और तीन वर्ष तक इधर उधर विजय करता और नगरों पर आधिपत्य जमाता रहा। अन्त में हिटाइटों के प्रार्थना पर उसने शान्ति प्रदान कर

(१२६५ या १२७२ ई० पू०) सन्धि कर ली। यह सन्धि भी इतिहास की पहली सन्धि है, जिसकी कि बाक़ायदा लिखा-पढी की गई थी। आगे चलकर उसने हिटाइट राजवश की एक राजकुमारी से विवाह कर लिया (१२५६ ई० पू०)। रामसेज़ के चौरानवे वर्ष के दीर्घ राज्य-काल मे यद्यपि मिस्र का बाहरी स्वरूप अच्छा दिखायी दिया, किन्तु भीतरी दशा कुछ न सुधर पायी। शासन मे ढील पड गयी। उच्च कर्मचारी मनमानी करने लगे। पुजारियो के हाथ मे सम्पत्ति और शक्ति बहुत कुछ आ गयी और आस-पास की रियासतो मे अशान्ति और विद्रोह के लक्षण दिखायी देने लगे। रामसेज द्वितीय की मृत्यु (१२२५ ई० पू०) के बाद वहाँ के राजाओ के सामने शासन के सगठन और देश की शत्रुओं से रक्षा के दो जटिल प्रश्न थे। कई राजे आये और चले गये, किन्तु सत्ताईस वर्ष तक व्यवस्था खराब ही रही।

जब से रामसेज तृतीय सिंहासन पर आया (११९८ ई० पू०), तब से मिस्र मे फिर जान आई। उसने देशी और विदेशी सिपाहियों को मिलाकर एक स्थायी सेना सगठित की और जहाजी बेडा भी मज़बूत किया। इनकी सहायता अपने साहस और बल से उस युवक राजा ने क्रीट सीरियावालो से युद्ध ठान दिया। क्रीटवालो के प्रबल बेडे को उसने हराकर पीछे हटा दिया (११९४ ई० पू०)। सीरिया मे ईजियन लोग थे, जो उत्तरी भूमध्य-सागर से आकर बलपूर्वक जम गये थे। उन्हे भी रामसेज तृतीय ने जल और स्थल युद्ध मे अच्छी तरह हराकर (११९० ई० पू०) अधीन कर लिया। उसी प्रकार मेशवेश नामक उत्तरी अफ्रीका वालो को, जो लीबिया मे घुस बैठे थे और मिस्र मे पैर जमाने का प्रयत्न कर रहे थे, उसने हराकर पीछे भगा दिया। यद्यपि उसने राज्य तो बहुत नही बढाया, किन्तु मिस्र का आतक उसने फिर स्थापित कर दिया, और विद्रोहियो और आक्रमणकारियो से मिस्र की रक्षा कर ली। देश मे शान्ति स्थापित हो गयी। व्यापार फिर से चेत उठा। ठीक समय से राज-कर वसूल होने लगा। सामुद्रिक बल और सेना बल बढ गया। विशाल मन्दिरो के निर्माण, (उनमे पाए गए) लेखो और आर्थिक जीवन पर मिस्र की इस शक्ति का उल्लेखनीय प्रभाव पडा। मन्दिरो के महत्व के साथ पुजारियों का भी प्रभाव बढने लगा और राज्य मे उनकी शक्ति बहुत बढ गयी। मन्दिरों पर होनेवाले खर्च का अनुमान इसी से किया जा सकता है कि उनकी सेवा मे राज्य की उपजाऊ भूमि का सातवाँ भाग दे दिया गया था। इसके सिवा ८८ जहाज, ५३ कारखाने और कितने ही नगर भी इन मदिरो के अधीन थे। उनमे से सबसे सम्पन्न और वैभवपूर्ण 'आमोन' का मन्दिर था, जहाँ खजाने के ख़ज़ाने खिचे चले आते थे। जनता के हितार्थ रामसेज़ ने राज्य मे स्थान-स्थान पर से पेड़ ~गवा
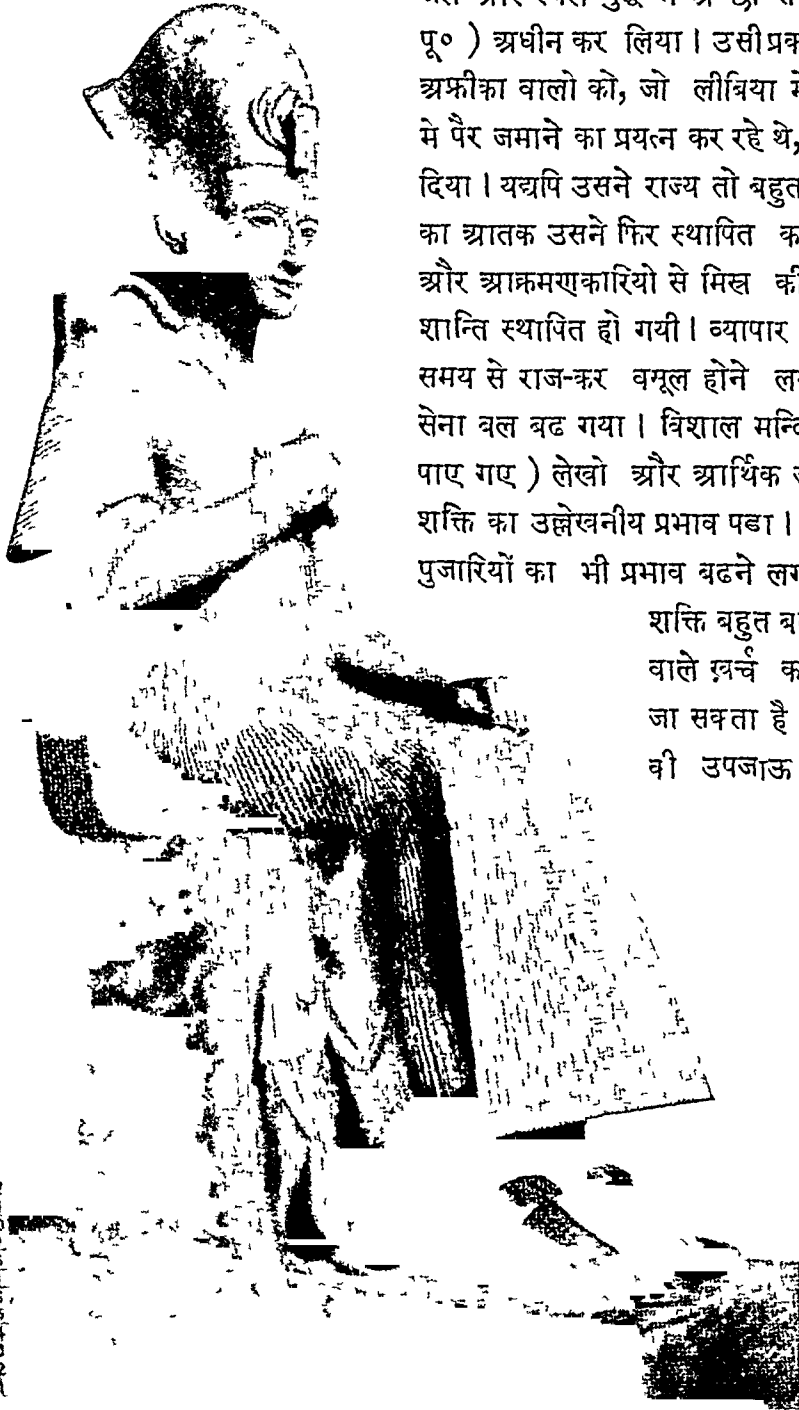
रामसेज़ द्वितीय

यह सुन्दर मूर्त्ति 'ट्यूरीन म्यू

हुए थे। मन्दिरों का अत्यधिक सम्पत्तिशाली होना, पुजारियों और राजकर्मचारियों का बल-वैभव बढना, राजा तथा उनके अनुचरों और राजकर्मचारियों मे आमोद-प्रमोद का व्यसन बढना, राज्य में दासो और दासियों की सख्या बढना, गुलामों का राज्य मे महत्व पाना और उनके प्रभाव की वृद्धि होना, रनिवास मे षडयन्त्र का विकास होना आदि लक्षण पतन के प्रमाण थे। एक रानी ने तो रामसेज ही की हत्या करने का षडयन्त्र रचा, जो सयोगवश विफल हो गया। राजा को चोट और घाव तो लगे, किन्तु जान बच गयी। अभी हत्यारों पर मुक़दमा चल ही रहा था कि मानसिक और शारीरिक आघात से राजा की मृत्यु हो गयी (११६७ ई० पू०)।

राज्य का पतन (११६७ से १०९० ई० पू०)

रामसेज की मृत्यु के बाद राज्य मे अनस्थिरता इतनी बढी कि पचीस-तीस वर्ष के भीतर ही पॉच राजे रामसेज नाम के आये और चले गये। जब तक रामसेज़ नवॉ राजा हुआ, तब तक आमोन के महन्त का इतना महत्व बढ गया कि उसके सामने राजा का महत्व दबने लगा। समय मे इतना फेर आ गया कि लोगों ने पुराने राजाओं के समाधिस्थान की सम्पत्ति को चुराना और छीनना शुरू कर दिया, और अन्ततोगत्वा उन्होंने उसे लूट लिया। जब राजधानी मे इतनी अराजकता फैल गई, तो दूरस्थ प्रान्तो का कहना ही क्या था! सीरिया तो स्वतन्त्र हो ही गया और पेलेस्टाइन मे मिस्र का प्रभाव नगण्य-सा हो गया। मिस्र के बुरे दिन आ गये और उसके हाथ से सभ्यता और राजनीतिक नेतृत्व जाता रहा। राज्य का अङ्ग-भङ्ग हो गया और अन्त मे उसका इतिहास केवल स्थानिक महत्व का रह गया।

मिस्र का जीवन और उसकी सभ्यता

मिस्र का विकास नील नदी की उपजाऊ तलहटी मे हुआ। वह कृषिप्रधान देश था। यद्यपि बाढो के कारण हानियॉ हो जाया करती थीं तथापि धरती के अधिक उपजाऊ होने के कारण कृषि-कार्य वहॉ सरल था। समय-समय नहरों के बन जाने से और भी सहायता मिल गई थी। किन्तु किसानों की परिस्थिति बहुत अच्छी इसलिए न थी कि उनसे बेगारी का अधिक काम लिया जाता था, लगान भी दस से बीस सैकड़ा तक था, और जिमींदारो एव स्थानिक कर्मचारियो का भी हाथ उन्हें गरम करना पड़ता था। फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि किसानो की दशा विशेष ख़राब थी। मिस्र के लोग अनाज, मछली और मास खाते थे। खाने विविध ढग से पकाये जाते थे। अस्सी तरह के पके हुए मासो का और चौबीस प्रकार के पेय पदार्थों का उल्लेख पाया जाता है। अमीर अच्छी शराब और गरीब जौ की शराब पिया करते थे। मिस्र के लोग परिवर्तन-प्रेमी न थे। वे अपने आचार-विचार मे कम फेरफार करते थे। वे प्रगतिशील न थे। उनके बच्चे बारह वर्ष तक नगे फिरा करते थे, लड़कियॉ जरूर अग का कुछ भाग ढॉक लेती थी। साधारणतः औरतें और मर्द नाभि तक नङ्गे रहते थे, उसके नीचे वे लुङ्गी-सी पहनते थे। आगे चलकर स्त्रियॉ और मर्द भी छाती ढकने लगे और चुस्त कपडे के बदले ढीले कपडे पहनने लगे। आदमी और औरतें आभूषणो के शौक़ीन थे। दोनों के कान छिदवाने का रिवाज था। औरतों को बनावटी सिंगार के अनेक साधन मालूम थे। आदमी दाढी-मूँछे बनवाते थे और औरते तरह-तरह के बाल सॅवारती थी। लोगों को खेल-कूद और मेलो और जलसो का शौक़ था। कुश्ती, घूँसेबाजी, और सॉडों को लड़ाने मे उन्हे आनन्द आता था। पॉसे का खेल भी उनमे प्रचलित था। आजाद किसानों के अलावा गुलामों की भी मिस्र मे भारी सख्या थी। उनकी परिस्थिति किसानों से भी ख़राब थी।

यद्यपि मिस्र मे खाने-पीने की चीजो की कमी नहीं थी, किन्तु तॉबे के सिवा अन्य खनिज पदार्थ मिस्रवालों को अन्यत्र से लाने पड़ते थे। न्यूबिया से सोना और हिटाइट्स से लोहा लाना पड़ता था। तॉबा और टीन मिलाकर वे लोग कॉसा बनाना भी सीख गये थे। उनसे वे पेच, बरमा, आरी, गडारी, पहिये आदि बनाते थे। उन्हे लकड़ी पर बढ़िया नक्काशी करना आता था। कुरसी, पलॅग, सदूक, गाड़ी, नाव आदि वे बना लेते थे। ईंटें, सीमेन्ट और पलस्तर बनाना वे जानते थे। रगीन चमकीले मिट्टी के बरतन और शीशे की सादी और रगीन चीजे भी वे बनाया करते थे। जानवरो की खाल से वस्त्र, ढाल, तरकश बनाते थे। पौदों और पेड़ो के रेशों से चटाइयॉ, रस्से, जूते और कागज बनाना उन्हे मालूम था। धातु पर रग चढाने और पालिश करने का कौशल भी उन्हे आता था। वे ऐसे बारीक कपड़े सूत से बिनते थे कि बिना आतशी शीशे की परीक्षा के उन्हे रेशम से भिन्न मानना कठिन था। उद्योग-धधे आजाद और गुलाम कारीगर करते थे। कारीगरो के कुटुम्ब में पुश्त-दर-पुश्त कला या कौशल चला करते थे जैसा कि हमारे देश मे है। कारीगरों के ठेकेदार या मुखिया होते थे, जो लोगों से काम लेते और उन्हें मजदूरी देते थे। मजदूरी ठीक-ठीक न मिलने से मजदूर कभी-कभी हड़ताल भी कर

देते थे, किन्तु ऐसा बहुत कम होता था। सिक्को का चलन न था, इसलिए वेतन और मज़दूरी जिन्स मे दी जाती थीं और कर भी वैसे ही वसूल किया जाता था। लेन-देन के लिए अमीर आदमी सोने के छोटे, बड़े, पतले और मोटे छल्लो या कड़ो का प्रयोग करते थे। व्यापार बड़े मज़े से चलता था। व्यापारियो की साख पक्की होती थी और लिखा-पढ़ी, हुंडी और खाता से काम लिया जाता था।

मिस्रवालों मे इञ्जीनियरी ने अच्छी उन्नति की थी। कहा जाता है कि रोम, यूनान, और अठारहवी शताब्दी तक योरपवालों को भी उनके बराबर इञ्जीनियरी का ज्ञान न था। बड़े-बड़े बाँध, तालाब, नहरे, आलीशान मन्दिर और स्मारक बनाना उन्हे आता था। उनके बनाए हुए पिरामिड ससार मे प्रख्यात हैं। इनका निर्माण किसी कला अथवा धर्म के भाव से नही किया गया था। ये मृतक के समाधिस्थान एव एक प्रकार से स्मारक मात्र हैं। स्थापत्य के अलावा वे मूर्त्तिनिर्माण-कला मे भी निपुण थे। पत्थर पर वे तरह-तरह की नक्काशी और तराश का काम करते थे।

मिस्र के राजे अपना वश और रक्त शुद्ध रखने के लिए कभी-कभी अपनी बहनो और लडकियो से विवाह कर लेते थे। प्रेमी और प्रेमिका के लिए वे उन्ही शब्दों का प्रयोग करते थे, जो भाई और बहन के लिए प्रचलित थे। राजो और रईसो मे बहुत-सी स्त्रियों को रखने का फैशन था, किन्तु साधारण लोग एक ही स्त्री से सन्तुष्ट रहते थे। उनमे तलाक़-प्रथा का चलन था। पुरुष स्त्री और स्त्री पुरुष को तलाक़ दे सकती थी। पर आगे चलकर यह अधिकार स्त्रियों के हाथ से जाता रहा। व्यभिचारिणी स्त्री को वे निकाल देते थे। मर्दों मे भी एकपत्नी-व्रत का आदर था। स्त्रियाँ स्वतन्त्रतापूर्वक अकेली अथवा साथियों के साथ आ-जा सकती थीं। पत्नी के अनुकूल पति प्रायः आचरण करता था। स्त्रियो को अपनी सम्पत्ति रखने, दे देने और अपने नाम से लेने का अधिकार था। जायदाद की उत्तराधिकारिणी प्रायः स्त्रियाँ ही मानी जाती थीं। प्रेम प्रकट करने मे भी वे पुरुष की प्रतीक्षा किए ही बिना अग्रसर होती थीं। मिस्र मे प्रेम की कविता प्रायः स्त्रियो की ओर से पुरुषो के प्रति की जाती थी। कामुक चर्चा बिना सकोच के सब करते थे। उनके मन्दिरों के शिल्प मे नग्नता अनुचित नही गिनी जाती थी। वेश्याओं, देवदासियों एव अन्य प्रकार के काम-वासना तृप्त करने के साधनों की कमी न थी।

शिक्षा और साहित्य

शिक्षा और साहित्य का भी अभाव न था। शिक्षा प्रायः मन्दिरों मे दी जाती थी। शिक्षा का मुख्य ध्येय लिखना-पढना तथा व्यापारिक और व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करना था, किन्तु यम-नियम पर भी ध्यान रखा जाता था। मन्दिरो से विद्यार्थी निकलकर कचहरियो मे काम सीखते थे। लेखक का पद प्राप्त कर लेना शिक्षा का विशेष लाभ माना जाता था। मिस्रवालो को सकेत-चित्र मे लिखना आता था। ये चित्र धीरे-धीरे छोटे होते चले गए और दो हज़ार वर्ष ई० पू० उनसे चौबीस व्यञ्जनों का विकास हो गया। पाँचवे और छठे राज-वश तक के समय के इसी शैली मे लिखे हुए लेख पिरामिडो मे मिले हैं। ईसा के दो हज़ार वर्ष के पहले के पेपाइरी (काग़ज़) पर लिखे हुए लेखो के पुलिन्दे मिलते हैं। क़िस्से-कहानियाँ, धार्मिक विषय, प्रेम-गीत, रणगान, कविताएँ, पत्र, मत्र-तत्र, स्तुतियाँ, ऐतिहासिक वार्त्ताएँ, वशावलियाँ, नीति के उपदेश आदि मिले हैं। कहा जाता है कि नाटक और पद्य-कथाओं को छोडकर मिस्रवालो ने साहित्य के सभी मुख्य अङ्गो का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। साहित्य के अलावा विज्ञान की ओर भी उनका ध्यान गया। गणित, ज्योतिष, आयुर्वेद, प्रजनन-चिकित्सा, शृङ्गार के मसालो का भी अध्ययन किया जाता था। व्रण-चिकित्सा या जर्राही (Surgery) का भी उन्हे शौक़ था। उनके लेखो मे *अड़तालीस प्रकार के आपरेशनों का उल्लेख है।* सन्तान-निरोध की औषधियाँ उन्हे ईसा के अठारह सौ वर्ष के पूर्व मालूम थी। अनेक रोगो के सैकडो नुसख़ो का भी उल्लेख मिलता है। उपवास, रेचन, आदि का प्रयोग किया जाता था। कहा जाता है कि वहाँ के लोगो का स्वास्थ्य अच्छा था। साहित्य और विज्ञान की भाँति सङ्गीत-कला और चित्र-कला से भी उन्हे अनुराग या। भीति-चित्र बनाने में वे बडे चतुर थे। कई प्रकार के रङ्गो का चित्रो मे वे प्रयोग करते थे। कहते हैं कि चीन को छोड़कर कोई भी प्राचीन सभ्य देश चित्र-कला मे उनकी समता नही कर सकता।

धार्मिक विचार और आचार

मिस्रवालों की धर्म-भावना बडी व्यापक थी। धर्म का प्रभाव उनकी प्रत्येक कृति मे कुछ न कुछ पाया जाता है। मिस्र मे अनेक देवता माने जाते थे, किन्तु आकाश, पृथ्वी, चन्द्रमा, सूर्य आदि प्रमुख गिने जाते थे। नदी, वृक्षों, थलचर, जलचर और पक्षियों मे भी वे देवताओं की भावना कर लेते थे। वे राजा को भी देवता मानते थे। बकरे और बैल का सबसे अधिक महत्व था। रा (आमोन), ओसरिस (लिङ्गधारी देव), आइसिस (धरित्री देवी), होरस (सूर्य-

देव), सुतेग, और प्ता सब देवताओं में मुख्य थे। मिस्र के इतिहास के उत्तरकाल में रा, आमोन और प्ता त्रिदेव गिने जाने लगे, जो एक ही महान् देवता के तीन भिन्न स्वरूप हैं। इखनातोन ने आमोन देवता और पशु-बलि द्वारा उसकी पूजा का विरोध किया था। उसके सिद्धान्त के अनुसार सब देवता कपोलकल्पित थे, क्योंकि वस्तुत. ईश्वर केवल एक है, जिसे वह "आतोन" (सूर्य) कहता था। उसे वह सर्वव्यापक, आनन्दमय, प्रेममय, रक्षक, द्रष्टा, सर्वज्ञ, और अन्तर्यामी मानता था। इस प्रकार एकेश्वरवाद भी प्राचीन मिस्र में प्रचलित था। आतोन की उपासना भक्तिमूलक थी। इखनातोन ने स्वयं उसकी प्रभावपूर्ण भक्तिरसात्मक स्तुतियाँ रची थीं। मिस्र में देवताओं को भोज्य और पेय पदार्थ चढाये जाते थे। देवताओं के लिए देवालय बने थे, जिनके प्रबन्ध के लिए उन्हें अच्छी सम्पत्ति मिली थी। उनकी सेवा के लिए पुजारी, दास और दासियाँ नियुक्त थीं। प्रजनन के देवता ओसिरिस की नग्न मूर्त्तियाँ साङ्केतिक मुद्रा में उसके मन्दिर में बनायी जाती थीं।

मिस्रवालों का विश्वास था कि प्रत्येक प्राणी का एक लिङ्ग-शरीर होता है, जो उसके मरने के बाद भी जीवित रहता है। उसको वे लोग 'का' कहते थे।। शरीर और 'का' के अतिरिक्त प्रत्येक प्राणी में 'जीव' रहता है, जो अमर है। शरीर यदि नष्ट होने से बचा लिया जाय तो वह भी 'का' और जीव की तरह स्वर्ग को जाता है, जहाँ शान्ति, सुख और सम्पन्नता के साथ वे रहते हैं। किन्तु यदि प्राणी पापी है, तो वह अनन्तकाल तक अन्धकारमय समाधि-स्थान में भूखा प्यासा पडा रहता है और तरह-तरह के त्रास पाता है। स्वर्ग केवल पवित्र आचरण से ही नहीं प्राप्त होता, प्रत्युत् मन्त्रों तन्त्रों आदि के प्रभाव से अपवित्र आचरणवाला भी स्वर्ग प्राप्त कर सकता है।

राज्य-संगठन

राजा के ऊपर राज्य-सञ्चालन का भार था। न्याय करना तथा शासन का निरीक्षण और सेना का नियन्त्रण उसके मुख्य कर्त्तव्य थे। ज्यों-ज्यों धन और वैभव बढता गया, त्यों-त्यों कर्मचारियों की भी वृद्धि होती गयी। कर्मचारियों की संख्या का इसी से अनुमान किया जा सकता है कि राजा के साज और शृङ्गार की सामग्री के प्रबन्ध के लिए इक्कीस अफसर नियुक्त थे। राज-सेवकों में मन्त्री और कोषाध्यक्ष प्रमुख माने जाते थे। राजा प्रात काल उनको बुलाकर उनसे राज्य और कोष की व्यवस्था पूछता, परामर्श करता और उचित आदेश देता था। मन्त्री का मुख्य काम शासन-यन्त्र का रक्षण, सेना-प्रबन्ध और न्याय करना था। राज्य बढने पर एक के बदले दो मन्त्री रखे जाने लगे। राजा स्वयं राज्य में घूम-घूमकर शासन-प्रबन्ध का निरीक्षण करता और न्याय करता था। बडे-बडे पदाधिकारियों का एक परिषद था, जिसे 'सरू' कहते थे। यह परिषद परामर्श द्वारा राजा की सहायता करता था। राज्य चालीस या पचास प्रान्तों में विभक्त था। प्रान्त के लिए वे लोग "नोम" शब्द का प्रयोग करते थे। प्रत्येक नोम का एक बडा अफसर रहता था, जो न्याय, प्रबन्ध और कोष के लिए उत्तरदायी था। इसी प्रकार प्रत्येक नगर के लिए भी अफसर रखे जाते थे। इनकी सहायता के लिए लेखक आदि बहुत से कर्मचारी नियुक्त कर दिए गए थे। जमीन दो प्रकार की थी। एक तो वह जो जिमीदारों के अधिकार में थी और दूसरी वह जिसका प्रबन्ध स्वयं राजकर्मचारी करते थे। सिक्कों का चलन न होने के कारण मालगुजारी पशु, अन्न, तैल, शहद, शराब और वस्त्र आदि के रूप में वसूल की जाती थी। पैदावार का पाँचवाँ हिस्सा मालगुजारी में लिया जाता था। कर्मचारियों से कर लिया जाता था, जो प्राय. सोना, चाँदी, पशु, अनाज और वस्त्र के रूप में था। स्थानिक कर्मचारी प्रति मास आय व्यय का चिट्ठा राजमन्त्री और कोषाध्यक्ष के पास भेजा करते थे।

मन्त्री से साधारण कर्मचारी तक अपने-अपने क्षेत्र में न्याय करता था। न्याय करने के लिए रोज खास कचहरी लगती थी। मुक़दमों का फैसला तीन दिन में प्राय कर दिया जाता था, किन्तु अगर मामला दूर का हुआ तो अधिक-से-अधिक दो महीने तक लग जाते थे। फैसला लिखे हुए क़ानून के अनुसार था। क़ानून चालीस पुलिन्दों में लिखे हुए थे। मुकदमे की सारी कार्रवाई लिखकर होती थी। वादी और प्रतिवादी एव गवाहों के बयान और फैसला सब लिखे जाते थे। स्थानिक अफसरों के फैसले के विरुद्ध मन्त्री की कचहरी या राजदर्बार में अपील की जा सकती थी। किसी भी व्यक्ति को बिना बाक़ायदा मुक़दमा किए हुए दण्ड नहीं दिया जाता था। मिस्र में रिश्वत भी चलती थी, जिससे धनी व्यक्तियों का काम बन जाता था। किन्तु अमीर और ग़रीब के लिए क़ानून एक ही था। सजाएँ कई तरह की थीं। शारीरिक दण्ड, अङ्ग-भङ्ग, देश-निर्वासन और प्राणदण्ड भी दिए जाते थे। यदि किसी बडे आदमी को प्राणदण्ड दिया जाता था तो उसे पहले आत्महत्या कर लेने का अवसर दिया जाता था, ताकि वह जनता के सामने बेइज्जती से बच सके।
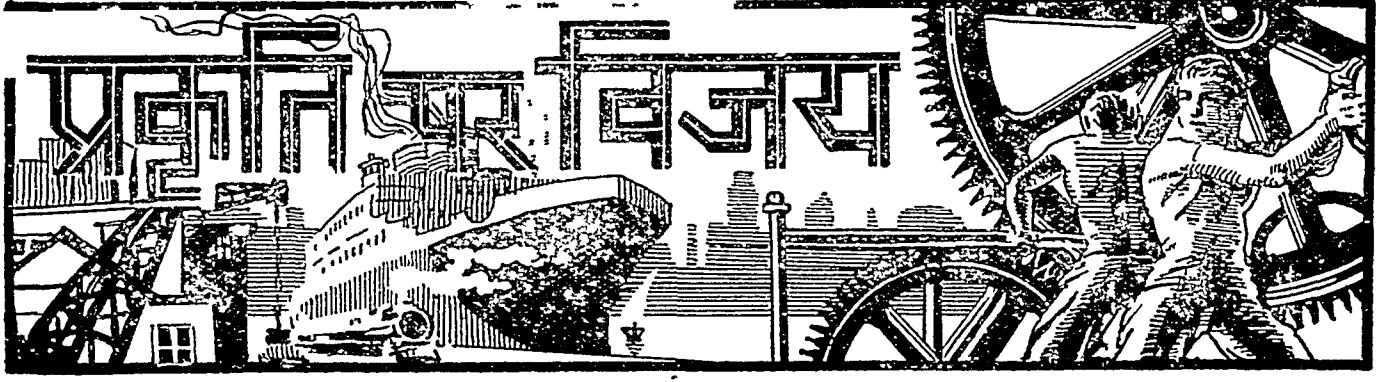
लोहे का युग

लोहा हमारी भौतिक सभ्यता की रीढ है। यदि आज लोहा पृथ्वी से एकाएक गायब हो जाय तो हमारी इस सभ्यता की सारी इमारत ही ढह पडेगी।

आधुनिक युग मशीनों का युग है। यन्त्रों की बदौलत ही मनुष्य प्रकृति पर विजय प्राप्त करने मे सफल हो सका है। यह सही है कि कोयला, गैस, भाप तथा बिजली की शक्ति ही हमारे तमाम कारबार और कल-कारखाने का भार उठाए हुए है। किन्तु इन शक्तियो से पूरा फायदा उठाने के लिए हमे मशीनों का ही सहारा ढूँढना पडता है, और मशीनो के निर्माण के लिए लोहे तथा इस्पात से बढकर अन्य कोई पदार्थ लभ्य नही है।

यदि हम यह कहे कि हमारी सभ्यता लोहे की नीव पर टिकी हुई है, तो इस कथन मे तनिक भी अतिशयोक्ति न होगी। पत्थर और कॉसे के युग भी गुजर चुके हैं, किन्तु कॉसे को तत्कालीन सभ्यता मे वह सर्वव्यापी स्थान
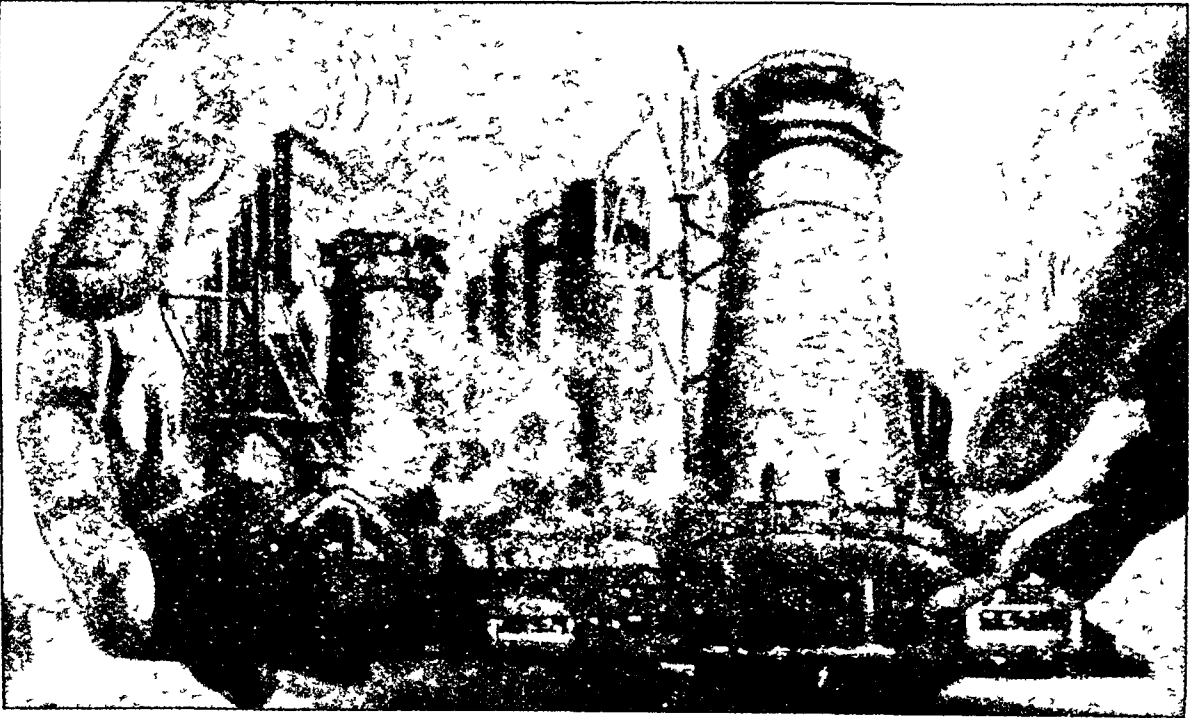
यत्र युग का प्रतीक—लोहा

हमारे आज के सारे कल कारखाने स्थूल रूप में एक ही मूल भित्ति पर टिके हुए है और वह है लोहा। जब से मनुष्य को लोहा हाथ लगा है, उसकी सभ्यता में एक युगान्तर हो गया है। पिछली दो शताब्दियों में तो लोहे ने हमारे जीवन में वह सर्वव्यापी स्थान प्राप्त कर लिया है कि आज हम इस युग को 'लोहे का युग' कह सकते हैं।
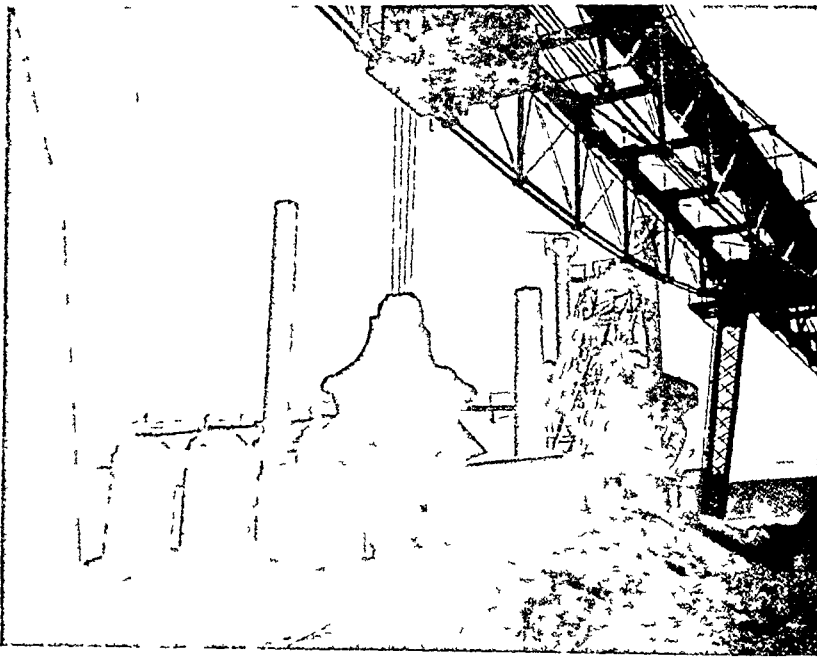
कच्चा लोहा कारख़ाने को पहुँचाया जा रहा है

इस भीमकाय यन्त्र के बाल्टे से एक बार में १४० मन कच्चा लोहा उठाकर कारख़ाने के ढेर में पहुँचा दिया जाता है।

लोहे के रूप मे आधुनिक युग को एक बेजोड़ वस्तु मिल गयी है। निब, आलपीन, बिस्कुट के डब्बे से लेकर न्यूयार्क की ७५ तल्लेवाली गगन-चुम्बी अट्टालिकाओं का ढॉचा, लम्बे-लम्बे पुल, सुरगे और रेलगाडियॉ सभी कुछ लोहे से तैय्यार की जाने लगी हैं। लोहे की उपयोगिता विशेषकर इस बात से है कि भिन्न-भिन्न प्रकार से तैय्यार किया हुआ लोहा भिन्न-भिन्न विशेषताऍ भी रखता है। एक ओर जहॉ हम बढिया स्प्रिङ्ग के लिए लचकदार इस्पात तैय्यार कर सकते हैं, वहॉ दूसरी ओर हम ऐसा लोहा भी बना सकते हैं, जिसमे लचक नाम-मात्र को भी न हो। लोहे की कुछ क़िस्मे ऐसी भी तैय्यार की गयी हैं, जो इतनी कडी होती हैं कि तनिक-सी चोट से शीशे की तरह टूटकर चूर-चूर हो जायॅ, तो कुछ जातियॉ ऐसी भी हैं जो बेहद मुलायम हैं। वैज्ञानिक इच्छानुसार एक जाति के लोहे को दूसरी जाति के लोहे मे परिणत भी कर सकता है। उचित रीति से सिझाने पर लोहे से ऐसे औजार बनाये जा सकते हैं, जो लोहे को भी काट सके। यह विचित्र गुण किसी अन्य पदार्थ मे नही पाया जाता। इस्पात के आरे से लोहे की गर्म गर्डरे मूली की तरह आसानी से काटी जाती हैं।

यह कह सकना सम्भव नहीं कि पहले-पहल लोहे का उपयोग करना मनुष्य ने कब सीखा। यूनान देश की पौराणिक कथाओं मे उल्लेख है कि टूर्नामेण्ट की प्रतियोगिता में भाग लेनेवालो को लोहे का चक्र पारितोषिक के रूप में प्रदान किया जाता था। अतः इसमें सन्देह नही कि हजारों वर्ष पूर्व भी लोग लोहे का प्रयोग करना जानते थे। किन्तु उस युग के लोहे के बने हुए हथियार या अन्य चीजे हमें स्मारक-चिह्न के रूप मे नही मिलतीं, क्योंकि लोहा नमी पाते ही मोर्चा खाकर नष्ट हो जाता है। फिर भी मिस्र देश के एक पिरामिड मे लोहे का एक टुकड़ा मिला है, जिसकी आयु ४००० वर्ष ऑकी जाती है। दिल्ली मे पृथ्वीराज के क़िले के पासवाले लोहे का खम्भा भी बहुत पुराना है।

प्राप्त न था, जो वर्त्तमान सभ्यता मे लोहे को प्राप्त है। जहॉ-कहीं भी बोझा सॅभालने का प्रश्न उठता है, या अत्यधिक जोर पडने की सम्भावना रहती है, इजीनियर का ध्यान फौरन् लोहे पर जाता है। मजबूती मे लोहा अन्य सभी पदार्थो से आगे बढा हुआ है। विशालकाय इजिन, बडे-बडे पुल, कल-कारखाने सभी कुछ लोहे के ही तो बने हुए होते हैं।

पुराने जमाने मे पत्थर, लकडी और मिट्टी, बस ये ही तीन वस्तुऍ लोगों को लभ्य थीं। इन्हीं से अतीत काल का मनुष्य अपने उपयोग के लिए तरह-तरह की चीजों का निर्माण करता था। किन्तु उपयुक्त औजार न रहने के कारण उसे कई तरह की अडचनों का भी सामना करना पडता था। पत्थर के नुकीले टुकडे से वह काटने और खोदने का काम लेता था। मामूली-सा वृक्ष काटने मे उसे हफ्तों लग जाते थे। पेड के तने को खोखला बनाने के लिए वह पत्थर के गर्म टुकडो से महीनों उसे खुटखुटाता और तब कहीं वह एक काम-चलाऊ डोंगी बना पाता था। किन्तु आज फौलाद के तेज औजारों की मदद से चुटकी बजाते ऊँचे-ऊँचे वृक्ष धराशायी किये जाते हैं, और लोहे की मोटी-मोटी चद्दरों को मशीनों के नीचे दबाकर उम्दा नावे तैयार कर ली जाती है।

खानो के अन्दर चॉदी या सोने की तरह लोहा शुद्ध रूप मे नही मिलता, बल्कि आक्सिजन, कार्बन, गन्धक तथा फास्फोरस (स्फुर) कच्चे लोहे के साथ रासायनिक सयोग मे पाए जाते हैं। आग मे गर्म करके कच्चे लोहे को शुद्ध किया जाता है। ऐसा जान पडता है कि प्राचीन काल मे जब लोग गुफाओ मे जीवन बिताते थे, सयोगवश उन्होने एक दिन मास भूनने के लिए ऐसी चट्टान के पास आग जलायी, जिसमे कच्चे लोहे का अश पर्याप्त मात्रा मे मौजूद था। तीव्र ऑच पाकर काले रग का पत्थर, जो वास्तव मे अशुद्ध लोहा था, पिघलकर बहने लगा। गरमी से पिघल कर वह शीरे की तरह गाढा हो गया। ठण्ढा होने पर वह फिर कडा हो गया। यही लोहा था। इसे फिर गर्म करके इन्होंने इसे पत्थर के हथौडो से पीटा। इस सर्वथा नई चीज़ को पाकर उनके आश्चर्य की सीमा न रही—वे लोग लोहे की मज़बूती देखकर हैरान थे। उन्होंने लोहे से नुकीले और तेज धार के हथियार बनाना शुरू किये।

एशिया के प्राचीन लोग भी लोहे से तरह-तरह की चीजे बनाते थे। पश्चिमी एशिया के असीरियन लोग लोहे के रथ और सुन्दर गहने बनाते थे। उनके पास लोहे की तलवारे भी थी। उनका आरा आजकल के आरे ही की तरह था। वे लोग लोहे से फौलाद बनाना जानते थे। पहले लोहे का पता लगाने और उसे शोधने मे ज्यादा ख़र्च पडता था। इसलिए आरम्भ मे लोहा बहुत क़ीमती था। स्पार्टा (ग्रीस) के लोग लोहे के सिक्के ढालते थे। सिकन्दर हिन्दुस्तान से सोने के साथ-साथ लोहे को भी लूट ले गया था।

पृथ्वी पर लोहा बहुत ही प्रचुरता के साथ पाया जाता है। पृथ्वी का लगभग २० वॉ भाग लोहा है। किन्तु यह लोहा शुद्ध अवस्था मे नही मिलता। फिर यह कच्चा अशुद्ध लोहा भी हर जगह समान रूप से नही पाया जाता। कच्चे लोहे की चार मुख्य जातियॉ हैं:—

१. मैग्नेटाइट

इसकी गिनती उत्तम श्रेणी के कच्चे लोहे मे होती है।
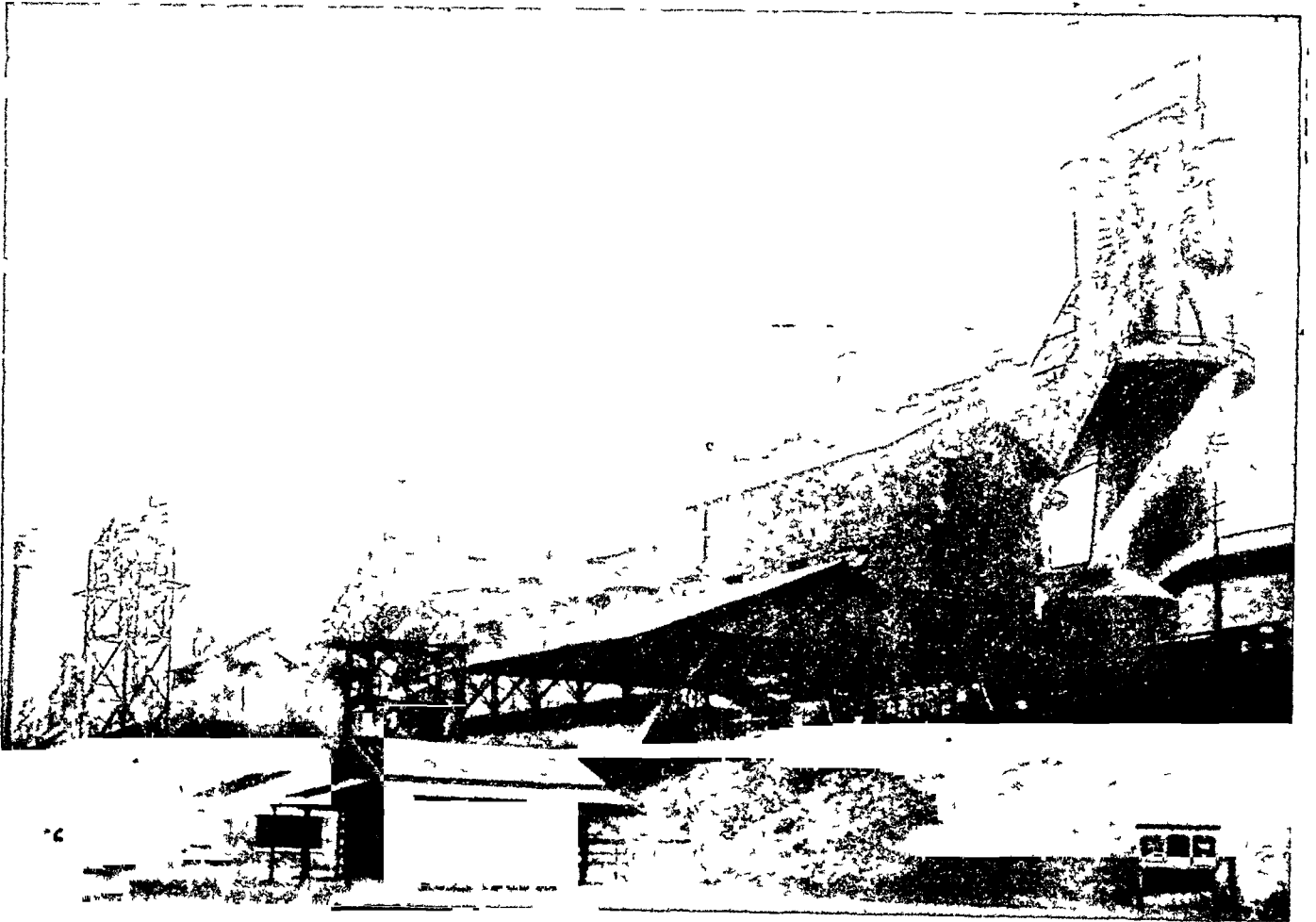
टाटानगर, जमशेदपुर, मे ब्लास्ट फर्नसो का दृश्य

भारत में लोहे का सबसे बड़ा कारखाना टाटा का कारखाना है। इस फ़ोटो में पॉच फ़र्नेसों का दृश्य है।

[फ़ोटो—'टाटा आयरन एण्ड स्टील क० लि० की कृपा से प्राप्त]

टाटा के कारखाने मे बेसेमर कन्वर्टर की फुफकार

[फ़ोटो—टाटा आयरन एण्ड स्टील क० लि० की कृपा से]

स्पेन मे इस क़िस्म के लोहे की खाने बहुत-सी हैं। इन खानो मे दलदल तथा नमी रहती है, अत. ब्राउन हेमटाइट मे पानी का अश भी बहुत होता है।

४ साइडरेट

ऊपर की तीनों क़िस्म के कच्चे लोहे मे आक्सिजन मिला रहता है, किन्तु साइडरेट मे लोहे का कार्बोनेट होता है। शुद्ध लोहे का अश उसमे कम पाया जाता है। किन्तु साइडरेट की खाने प्राय. कोयले की खानों के नजदीक मिलती हैं, अतः लोहे को शोधने के लिए कारखानो को चलाने मे भी ऐसी जगहों मे आसानी पडती है।

पहले कच्चे लोहे को साफ करने का ढग बहुत सीधा सादा था। कच्चा लोहा लकड़ी के कोयले से गर्म किया जाता था। तेज आँच मे लोहा पिघलकर एक तरफ इकट्ठा हो जाता था। लोहार ने देखा कि अधिक आँच से लोहा अधिक शुद्ध उतरता है, इसलिए उसने तेज हवा के झोंके से फायदा उठाने के लिए पहाडियो की चोटियों पर या बहुत ऊँचे स्थानों में भट्टियाँ बनायी। वहाँ हवा जोर की लगती थी, अतः भट्टी मे आँच भी तेज पैदा होती थी। किन्तु हवा कभी चलती, कभी न चलती, अतः भट्टी का काम जारी रखने के लिए उसने नली द्वारा मुँह से हवा फूँकने का प्रबन्ध किया। कुछ दिनों उपरान्त भट्टी मे हवा पहुँचाने के लिए धौकनी का आविष्कार किया गया। मिस्र की प्राचीन काल की मूर्त्तियाँ इस बात की द्योतक हैं कि वे लोग धौकनी का प्रयोग लोहे को शोधने के लिए करते थे।

धीरे-धीरे लोहे की माँग इतनी बढी कि भट्टियों में जलाने के लिए लकडी का कोयला तैय्यार करने के लिए जगल के जगल साफ किये जाने लगे। इङ्गलैंड मे तो वहाँ के मल्लाहों को भय होने लगा कि कहीं वहाँ के जगल बिलकुल

इसमे शुद्ध लोहे का अश अन्य जाति के कच्चे लोहे की अपेक्षा ज्यादा होता है। इसमे चुम्बकीय शक्ति भी मौजूद होती है। नार्वे और स्वीडन मे यह अधिक मिलता है। बढिया क़िस्म का लोहा तैय्यार करने के लिए मैग्नेटाइट ही काम मे लाया जाता है। किन्तु मैग्नेटाइट को गलाने मे ईधन का खर्च ज्यादा पडता है, अत. इससे तैय्यार किया गया लोहा महँगा भी पडता है।

२ रेड हेमटाइट

इसमे शुद्ध लोहा ७० प्रतिशत होता है। इङ्गलैंड, कनाडा और जर्मनी मे इस किस्म के कच्चे लोहे की खाने हैं।

३ ब्राउन हेमटाइट

रेड हेमटाइट और ब्राउन हेमटाइट मे बहुत कम अन्तर होता है। इङ्गलैंड मे ब्राउन हेमटाइट नहीं पाया जाता।
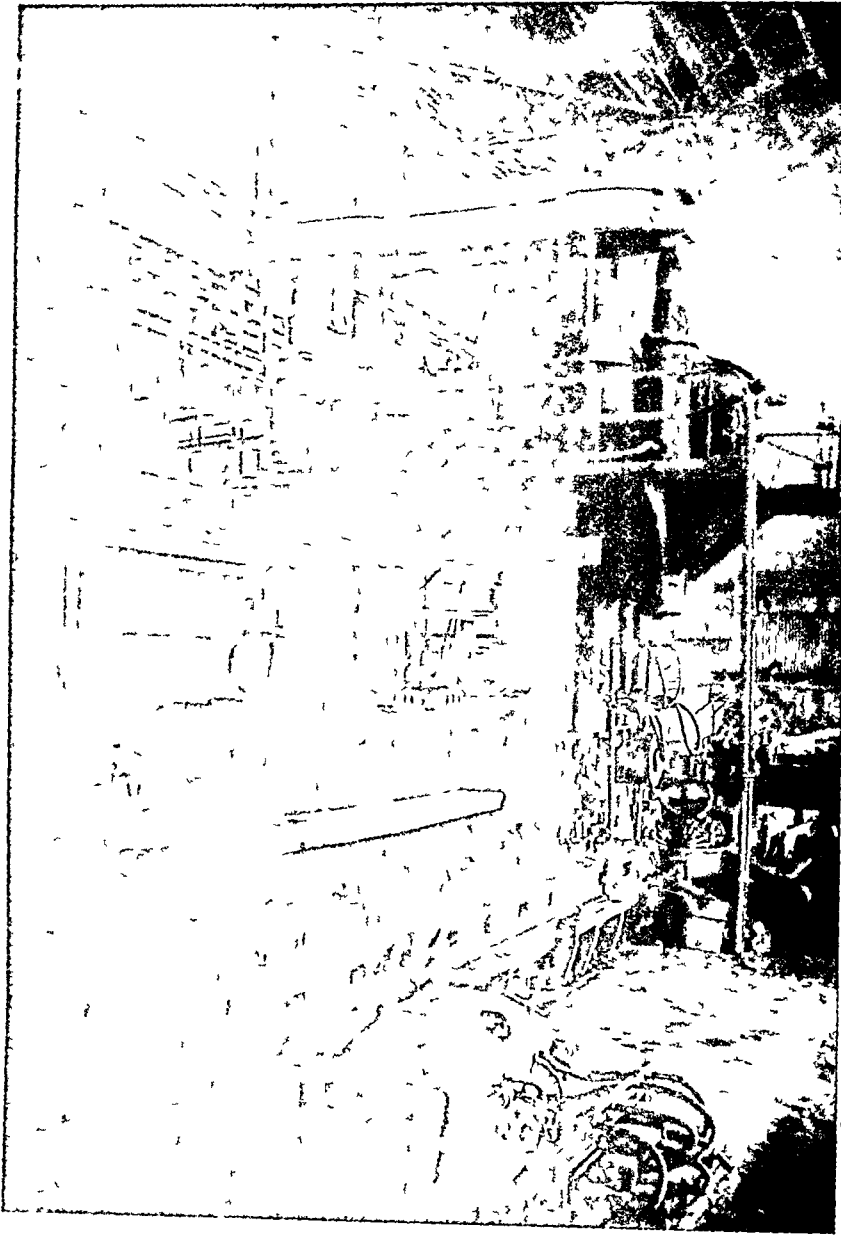
टाटा के कारख़ाने का एक और विभाग—रूलिंग मिल

इन भीमकाय यंत्र में उत्तप्त लोहे के पिण्ड को दबाकर रेल की पटरियाँ, गर्डरें आदि के रूप में बदल दिया जाता है। [फ़ोटो—टाटा आयरन एण्ड स्टील क० लि० की कृपा से प्राप्त।]

तरह-तरह की चीजे बना सकते हैं, किन्तु यह बेहद कडा होता है। अत इसे मोडकर या हथोडे से पीटकर कोई चीज नहीं बनायी जा सकती। इसका कारण यह है कि 'पिग आयरन में कार्बन, गन्धक, फास्फोरस आदि विजातीय वस्तुएँ काफ़ी मात्रा में मौजूद रहती हैं। इस्पात तैय्यार करने के लिए इन विजातीय द्रव्यों को अलग करना जरूरी है। 'पिग आयरन' को एक बार फिर कोक के सग खुली भट्टियो मे पिघलाते हैं। इन भट्टियों में जलते हुए गैस की लपटे सीधी 'पिग आयरन' के ऊपर पडती हें। लोहे की सलाखो से मिस्त्री 'पिग आयरन' को कई घटे तक बराबर उलटता-पलटता रहता है—ठीक इसी तरह जैसे मैल साफ करने के लिए धोबी गन्दे कपडे को लकडी के पाटे पर छाँटता है। इस क्रिया मे पिघले हुए लोहे मे से आसमानी रग की लपटें निकलती हैं—फुफकारे भी छूटती हैं। जब फुफकारो का निकलना बन्द हो जाता है, तब मिस्त्री अपनी सलाखों के सिरे पर ३०-४० सेर का लोंदा लपेटकर भट्टी के बाहर लोहा निकालता है। फिर इस लोदे को मशीन से दबाते हैं, मानो धोबी कपडे को निचोड रहा हो।

इस तरह फास्फोरस, गन्धक और कार्बन लोहे से अलग हो जाते हैं और क़रीब-क़रीब शुद्ध लोहा बच जाता है। इसे 'राट आयरन' कहते हैं। इसमे कार्बन का अंश बहुत कम रहता है, प्रायः १ से लेकर २ प्रतिशत तक। 'राट आयरन' मे खिंचाव सहने की शक्ति ख़ूब होती है, यही कारण है कि बडे-बडे जहाज़ों के लिए लगर और जजीरे 'राट आयरन' से ही तैय्यार की जाती हैं। सुन्दर आकार की वस्तुएँ भी 'राट आयरन' से तैय्यार की जाती हैं। कब्जे, कीले, साँकल, छड़ आदि 'राट आयरन' से बनते हैं। किन्तु 'राट आयरन' इतना नरम होता है कि इससे हमारी सभी आवश्यकताएँ पूरी नहीं की जा सकतीं। नियत मात्रा मे कार्बन मिलाकर 'राट आयरन' इच्छानुसार कठोर और मजबूत बनाया जा सकता है। ऐसे लोहे को फौलाद या 'स्टील' कहते हैं। 'पिग आयरन' मे ३ प्रतिशत कार्बन होता है। इससे यह कम आँच मे पिघल जाता है, अतः ढलाई के काम के लिए

फौलाद का जन्म

आज का युग यंत्रो का युग है, और यंत्रो के निर्माण के लिए लोहे से बढकर दूसरा कोई पदार्थ नही है। निब या आलपीन से लेकर लम्बे-लम्बे पुलो या गगनचुम्बी अट्टालिकाओ तक सभी कुछ लोहे का प्रसाद है। लोहा इस युग की शक्ति का प्रतीक है। ऊपर के चित्र मे सुप्रसिद्ध आविष्कारक बेसेमर द्वारा आविष्कृत लोहे से फौलाद बनाने के उस विशाल भट्टे का दृश्य है, जिसकी ईजाद ने आधुनिक यन्त्र-युग मे एक युगान्तर उपस्थित कर दिया है। इस भट्टे द्वारा आसानी से और सस्ते मे उम्दा फौलाद बनाया जाता है।

टाटा के लोहे के कारखाने के दो दृश्य

ऊपर के चित्र मे फौलाद बनाने के खुले भट्टे का दृश्य है। चित्र के बीच मे आँखो मे चकाचौंध करनेवाला प्रकाश पिघले हुए फौलाद और भट्टे की आँच के फलस्वरूप है। नीचे के चित्र में अन्य एक विभाग का दृश्य है, जहाँ बडे-बडे साँचो मे से अगारे की तरह चमचमाते हुए लोहे के पिण्ड निकाले जा रहे है। [फोटो—टाटा आयरन एण्ड स्टील कं० लि०]

'पिग आयरन' बहुत ही उपयुक्त है। किन्तु ठढा होने पर 'पिग आयरन' के जल्द टूटने का डर रहता है—हथौडे से पीटकर इससे कोई चीज तैय्यार करना बड़ा कठिन होता है। 'राट आयरन' मे बहुत थोडा कार्बन रहता है, इससे मामूली आँच में यह नहीं पिघलता।

फौलाद इन दोनों से अच्छा होता है—इसमे १ से लेकर ३ प्रतिशत कार्बन रहता है। कार्बन की मात्रा के अनुसार इसके गुण भी बदलते रहते हैं— ज्यों-ज्यों कार्बन की मात्रा बढती है, फौलाद कड़ा होता जाता है।

फौलाद बनाने के लिए 'राट आयरन' के छोटे-छोटे टुकडे काटकर लकडी के शुद्ध कोयले के साथ बक्सनुमा भट्टियो में रख देते हैं। पहले लोहे के टुकड़ों की एक तह बिछाते हैं, फिर कोयले की तह। इस तरह कई तहे एक के ऊपर दूसरी बिछा दी जाती हैं। ये भट्ठी या आवे की तेज आँच मे प्रायः एक हफ्ते तक पड़ी रहती हैं। इस क्रिया मे लोहे के भीतर कार्बन प्रवेश कर जाता है, और लोहे की पीठ पर जगह-जगह छाले उभड आते हैं। इसी कारण इसे 'ब्लिस्टर स्टील' कहते हैं। 'ब्लिस्टर स्टील' मे सबसे बड़ी ख़राबी यह है कि लोहे मे कार्बन समान रूप से मिल नही पाता, अतः 'ब्लिस्टर स्टील' की बनी चीज़ों पर भरोसा नही किया जा सकता, क्योंकि इसका कोई भाग ज्यादा मजबूत हो सकता है, तो कोई कम।

शेफील्ड के एक घड़ीसाज़ को कमानी के लिए प्रायः बढ़िया क़िस्म के फौलाद की जरूरत पडा करती थी। अतः उसने स्वय उत्तम फौलाद तैय्यार करने की सोची। उसने ब्लिस्टर स्टील के टुकडों को लिया और उन्हे चीनी मिट्टी के ढकनदार प्यालों (क्रुसिबल) मे भरकर तेज आँच मे रख दिया। पिघलने पर क्रुसिबल के लोहे मे कार्बन समान रूप से मिल गया और एक बहुत ही उत्तम जाति का फ़ौलाद मिला। यह बात सन् १७४० की है। इस फौलाद को 'क्रुसिबल स्टील' कहते हैं। सेफ्टी रेजर की पत्तियाँ, चाकू तथा तेज़ धार के औजार क्रुसिबल स्टील से ही तैयार किए जाते हैं। किन्तु क्रुसिबल स्टील तैयार करने में समय भी ज्यादा लगता है और ख़र्च भी। अतः यह महँगा बिकता है।

सस्ता फौलाद तैय्यार की विधि के आविष्कार का श्रेय एक अग्रेज़ मिस्त्री हेनरी बेसेमर को प्राप्त है। 'पिग आयरन' को पूर्णतया शुद्ध करके 'राट आयरन' तैय्यार करके उसमें कार्बन मिलाकर फ़ौलाद बनाने का तरीक़ा बडे तूल का है। बेसेमर ने सोचा यदि पिग आयरन के विजातीय द्रव्यों को हम किसी तरह जला सकें या उसे गैस के रूप में उडा सकें तो बडी आसानी से हमे फौलाद मिल सकेगा। इस तरह समय और पैसे दोनो की बचत होगी। बेसेमर ने एक गिलासनुमा भट्टी ली। इस भट्टी के पेंदे मे ५ छेद किये। इन सूराख़ों के रास्ते से तेज हवा के झोके आ रहे थे। अब पिघला हुआ पिग आयरन उसमे उँडेला गया। पिग आयरन के डालते ही उसमे से आसमानी रग की लपटें निकलने लगीं और हवा पाकर गर्म कार्बन अपने आप जलने लगा। कार्बन के जलने से इतनी काफी गर्मी पैदा होती थी कि बिना किसी ईंधन के भट्टी का काम चलता रहा। जब लपटो का निकलना बन्द हो गया तो उसने भट्टी से लोहे को बाहर निकाल लिया। इस तरह कुछ मिनटों के अन्दर उसने कई टन पिग आयरन को फौलाद में परिणत कर दिया।

बेसेमर की बातो का कारखानेवालों ने पहले तो विश्वास नहीं किया—भट्टी मे बाहर से बिना गर्मी पहुँचाए केवल ठण्डी हवा के झोके से भला फौलाद कैसे तैय्यार किया जा सकता है? किन्तु लोगों ने जब स्वय अपनी आँखों से प्रयोग देखा तो उनके आश्चर्य्य की सीमा न रही। थोडे ही दिनों में वह गिलासनुमा भट्टी 'बेसेमर कन्वर्टर' सभी फैक्टरियों मे काम में आने लगी।

बेसेमर कन्वर्टर ने लोहे के कारबार मे एक नये युग का आविर्भाव किया, और फौलाद का प्रयोग अब हर तरह के कामों मे होने लगा।

आधुनिक बेसेमर कन्वर्टर का आकार एक टेढ़े पेंदे-वाले अडाकार बोतल की तरह होता है। कन्वर्टर के भीतर भट्टीवाली ईंटे जुडी रहती हैं, और बाहर लोहे का पत्तर मढा रहता है। इसकी चौडाई १० फीट और ऊँचाई २० फीट होती है। उसमे ३० टन पिग आयरन एक बार में समा सकता है। पेंदे मे सैकडों सूराख़ बने रहते हैं, उन्हीं मे से होकर हवा कन्वर्टर मे प्रवेश करती है। जब नीचे से हवा का झोंका आता है, तब बडे जोर की आवाज़ होती है, और पीली और आसमानी रंग को लपटें ऊपर को निकलती हैं। रगीन शीशे की ऐनक लगाये एक विशेषज्ञ उन लपटो को देखता रहता है—जब सारा कार्बन जल चुकता है, तब वह इशारा करता है और हवा के झोके बन्द कर दिये जाते हैं, और एक नियत मात्रा मे कार्बन उस कन्वर्टर में डाल दिया जाता है। ठण्डा होने पर यही लोहा फ़ौलाद बन जाता है। मशीनों के ज़रिये कन्वर्टर को टेढा कर देते हैं, बस पिघला हुआ लोहा बडे-बडे

बालटो मे गिर पडता है, जो 'लेडिल' कहलाते हैं । ये क्रेन की सहायता से उठाये जाते हैं ।

बेसेमर के तरीक़े मे एक भारी कमी यह है कि जिस पिग आयरन मे फास्फोरस और गन्धक का अश अधिक रहता है, उसे इस रीति से फौलाद बनाने मे दिक्कत पडती है । अमेरिका, जर्मनी और भारतवर्ष मे, जहाँ खान से निकले हुए कच्चे लोहे मे फास्फोरस और गन्धक अधिक मात्रा मे नही होते, बेसेमर कन्वर्टर ही फौलाद बनाने के लिए काम मे लाया जाता है । किन्तु इङ्गलैण्ड की खान के कच्चे लोहे मे फास्फोरस और गन्धक का अश अधिक रहता है, अत. यहाँ बेसेमर कन्वर्टर की जगह अब ज्यादातर सर विलियम सीमेन की खुली भट्ठी काम मे लायी जाती है । इन भट्ठियों मे हवा तथा जलनेवाली गैसे बगल से प्रवेश करती हैं, और लपटे पिग आयरन मे ऊपर तथा बगल से लगती हैं। पिग आयरन मे फौलाद के छोटे-छोटे टुकडे भी डाल दिये जाते हैं । घण्टे आध घण्टे मे फास्फोरस, गन्धक और बालू वगैरह स्लैग के रूप मे ऊपर आ जाते हैं, और बाहर गिर जाते हैं । समय-समय पर भट्ठी मे से नमूना निकालकर जाँच की जाती है कि कितना प्रतिशत कार्बन उसमे मौजूद है । इतमीनान होने पर पिघला हुआ फौलाद लेडिल मे गिराया जाता है ।

खुली हुई भट्ठी मे बेसेमर कन्वर्टर की अपेक्षा देर लगती है । बेसेमर कन्वर्टर मे सब काम १५ मिनट मे ख़त्म हो जाता है, किन्तु खुली भट्ठी मे आठ-दस घण्टे लग जाते हैं । लेकिन खुली भट्ठी में निकासी अच्छी होती है, एक बार मे २५० टन फौलाद तैय्यार किया जा सकता है ।

लेडिल से फौलाद के बृहताकार टुकडे क्रेन की मदद से रोलिंग मिल मे लाये जाते हैं । दानव की तरह टन-टन करता हुआ एक क्रेन अपने पजे मे रक्तवर्ण का गर्म लोहा दबोचे हुए रोलिंग मिल की ओर बढता है । रोलरों के बीच से जब गर्म लोहा गुजरता है, तो चारों ओर लाल चिनगारियाँ छूटती हैं । देखते-देखते लोहे का मोटा लोंदा लम्बी-चौडी चद्दरो मे परिवर्तित हो जाता है, मानो किसी कुम्हार ने मिट्टी के लोदे को हाथ से थाप-थाप कर पतला बना दिया हो । वही बगल मे कुछ मशीने लगी रहती हैं, जो गर्म लोहे की चद्दरो और गर्डरों को आसानी से काट देती हैं, मानो लोहे की न होकर वे लकडी की बनी हो। इस प्रकार लोहा हमारे बाजारों मे जाने योग्य होता है।

गर्म लोहे के पिण्ड को दबाकर चद्दरें, सलाखें, आदि बनाये जा रहे है ।

[फ़ोटो—टाटा आयरन एण्ड स्टील क० लि० की कृपा से प्राप्त ।]
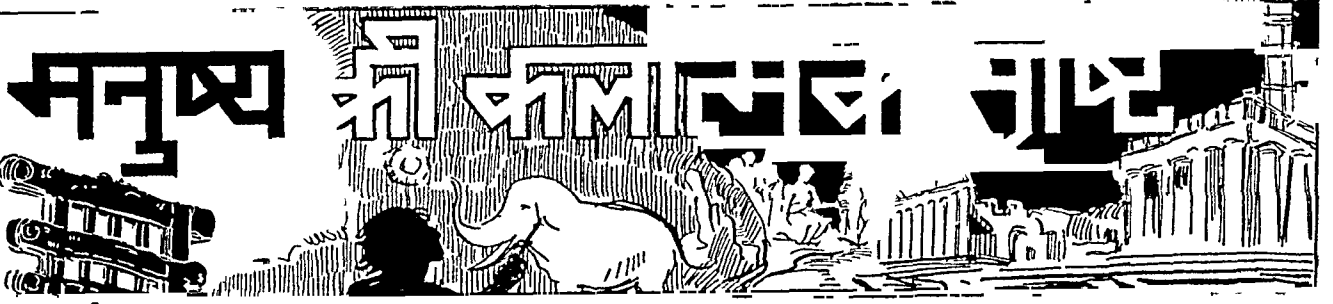
प्रस्तर-युग में कला

पिछले प्रकरण में हमने देखा, किस प्रकार पहले-पहल मनुष्य के हृदय मे कला की भूख जगी होगी और उसकी प्राथमिक अभिव्यक्ति का रूप कैसा रहा होगा। इस लेख मे हमें मनुष्य की उन आरम्भिक कला-कृतियो का दिग्दर्शन करना है, जिनके भग्नावशेष पृथ्वी पर मानव की कला के सबसे प्राचीन स्मारक हैं।

किसी वस्तु या व्यक्ति का चित्र उसकी छाया की सहायता से बनाने के सबध मे तरह-तरह की गाथाएँ सभी देशो की आदिकाल की दन्तकथाओ मे आम तौर पर प्रचलित हैं। तिब्बत के बौद्धों मे एक किंवदन्ती प्रचलित है कि एक बार रोरुक के सम्राट् ने उस युग के प्रसिद्ध कलाकारो से भगवान् बुद्ध की दिव्य प्रतिछवि का चित्रण करने को कहा। एक कलाकार के पश्चात् दूसरे कलाकार ने भगवान् बुद्ध के करुणामय मनोहर मुखमण्डल को चित्र मे अकित करने का प्रयत्न किया, किन्तु उनमे से कोई भी उनकी सच्ची आकृति उतारने मे सफल न हो सका। निराश होकर अपने सरक्षक सम्राट् रोरुक के साथ वे कलाकार स्वय तथागत (बुद्ध) की शरण मे गये, और उनसे कोई उपाय बतलाने की प्रार्थना की। तथागत ने उन घबड़ाये हुए कलाकारो को एक दीपक लाने को कहा और यह आदेश दिया कि दीपक सामने रखकर दीवाल पर पडनेवाली उनकी छाया की ठीक-ठीक रूपरेखा उतार ली जाय, इससे उनके मुख और शरीर की रूप-रेखा ठीक उतर आयेगी।

परन्तु मनुष्य की आकृति के चित्रण के पूर्ण विकास के मार्ग मे आदिम मनुष्य का जादू-टोना तथा भूत-प्रेत की विद्याओ मे विश्वास होना एक बड़ी बाधा रही है। आज भी पिछडी जातियो के लोग अपना प्रतिरूप उतरवाने से घबड़ाते हैं—इस डर से कि कही उनके चित्र की सहायता से उन पर किसी प्रकार का वशीकरण या मारण प्रयोग न किया जाय, या उनको हानि पहुँचाने के लिए कोई अशुभ जादू-टोना न कर दिया जाय। अब भी अनेक देशो मे लोगों का यह विश्वास है कि यदि आप किसी व्यक्ति के, जो आपका शत्रु हो, चित्र या मूर्ति मे उचित मत्रविधि के साथ सुई या पिन गाड दे तो उस व्यक्ति की निश्चय ही शीघ्र कष्टपूर्वक मृत्यु हो जायगी। अपने चित्र या मूर्ति द्वारा हानि पहुँचाये जाने के इस अन्ध भय के कारण आदिम मनुष्य अपना या अपने साथियो का चित्र बनाने से हमेशा ठिठकता रहा और इसीलिए इस सबध मे उसका ध्यान उन पशुओं की ओर गया, जिन्हे वह मारना चाहता था।

प्रागैतिहासिक युग के मनुष्य को, जिसका जीवन ख़ानाबदोशो जैसा था और जिसे कृषि का तनिक भी ज्ञान न था, अपने दैनिक आहार के लिए शिकार पर निर्भर रहना पडता था। अगर किसी दिन वह कोई हरिण, सुअर या भालू मारकर लाने मे असफल रहता तो उसे परिवार-सहित उस दिन भूखा ही रहना पडता था। इस कारण शिकार मे निश्चित रूप से सफल होने के लिए वह जिन जानवरों को मारना चाहता था उनके चित्र बनाया करता, और उनमे सुई या कॉटे गाडकर इसके फलस्वरूप शिकार मे उस जतु को मारने की सुखद घटना के पूर्वस्वप्न देखते हुए प्रसन्न होने लगता था। इस प्रकार आदिम मानव का सारा जीवन ही हम उन वन्य पशुओ से अविच्छिन्न रूप से सबद्ध पाते हैं, जिनके पत्थर पर खुदे हुए या गुफाओ की दीवालो पर अकित अनेक चित्र वह छोड गया है।

आज से सौ ही वर्ष पहले कला के इतिहास के आरम्भिक परिच्छेद निश्चित रूप से और बडी सरलतापूर्वक लिखे जा सकते थे, क्योंकि उस समय बडे-बडे गण्यमान्य पडितगण धर्म-ग्रन्थो के आधार पर गणना करके यह घोषित करते थे कि ईश्वर ने सृष्टि का निर्माण ईसा के

प्रस्तर युग के कलाकार
इस चित्र में पत्थर के युग में अँधेरी गुफाओं में मशाल की सहायता से दीवारों पर जानवरों के चित्र अंकित करते हुए आदिम मनुष्यों की कल्पना की गई है।

पूर्व ४००४वे वर्ष मे शुक्रवार ता० २८ अक्तूबर को किया था। किसी मे भी यह साहस नही था कि वह बिना नास्तिकता का अपराधी बने इन धर्माधिकारियो के वक्तव्यो का विरोध करे। 'ओल्ड टेस्टामेन्ट' (बाइबिल का एक भाग) की उक्तियो ही का सर्वोपरि आधिपत्य और शासन था। परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भिक वर्षो मे मिस्र देश के सम्बन्ध मे जो अनुसन्धान हुए, उन्होने सृष्टि के आरम्भ की तिथि को और भी पीछे ढकेल दिया और बाद को असीरियन, कैल्डियन तथा सुमेरियन सभ्यताओं का पता चलने पर इतिहासज्ञ इस बात का अनुभव करने लगे कि दुनिया और उसका इतिहास धर्म के आचार्य लोग जितना समझते हैं उससे कहीं अधिक प्राचीन है। भूगर्भ-विद्या की हाल की खोजो ने तो ससार के इतिहास के और भी कई अप्रत्याशित और भयोत्पादक पृष्ठ खोल डाले हैं, साथ ही नवनिर्मित मानव-विज्ञान (Anthropology) और मानुषमिति (Anthropometry) नामक विद्याओ ने भी प्रागैतिहासिक मानव के सम्बन्ध मे हमारे ज्ञान को बढाने मे कुछ कम मदद नहीं की है। अब हमे मोटे तौर पर इस बात का पता मिल गया है कि आज से लगभग दस लाख वर्ष पूर्व पृथ्वी पर मनुष्य-जैसे कुछ प्राणी विचरण करते थे, जो अपने काम के औजार बनाने के उद्देश्य से समझ-बूझकर चकमक पत्थर या साधारण पत्थर को हथौडे की चोटो से तोडकर या खुरचकर गढते थे। ये थे आरम्भिक प्रस्तर युग के मनुष्य (Eolithic or Dawn-Stones Men) जिनकी अस्थियाँ जावा मे पायी गयी हैं। इनके बाद हाइडेलबर्ग (Heidelderg Men) नामक मनुष्य-प्राणी आए, जिनके युग मे पृथ्वी पर ऐसे चीते होते थे, जिनके कटारी के आकार के लम्बे दाँत थे, तथा ऐसे गैंडे पाए जाते थे, जिनका शरीर ऊन-जैसे बालों से ढका रहता था। इसके बाद आए पिल्टडाउन-नामक मनुष्य (Piltdown Men), जिनके द्वारा छेद किया गया बल्ले की शक्ल का एक हाथीदाँत का टुकड़ा मिला है। इस (पिल्टडाउन) मानव को वैज्ञानिक लोग इयनथ्रॉपस (Eoanthropus) या आदि-मानव भी कहते हैं। तब लगभग ५०००० वर्ष पूर्व, जब पृथ्वी का चतुर्थ हिम-युग अभी पराकाष्ठा को नहीं पहुँच पाया था, नीएन्डरथेल मनुष्य (Neanderthal Men) उत्पन्न हुए, जिन्हें अग्नि के प्रयोग का ज्ञान था। ये लोग कन्दराओं मे निवास करते, चमडे के वस्त्र धारण करते और हम लोगों की तरह दाहिने हाथ से अधिकतर काम लेते थे। कालान्तर में आज से लगभग २५००० वर्ष पहले इनका स्थान ऐसे लोगों ने आकर लिया जो सर्वप्रथम वास्तविक मानव कहे जाते हैं। इन वास्तविक मनुष्यों की अस्थियाँ क्रोमेगनान (Cro-magnon) और ग्रिमैल्डी (Grimaldi) की कन्दराओं मे पायी गयी हैं, अतः इन जातियों के मनुष्य को "क्रोमेगनानीय" या "ग्रिमैलडीय" कहते हैं। ये मनुष्य जगली थे, परन्तु थे बडे ऊँचे दर्जे के जगली। वे कठहार बनाने के लिए कौड़ियो या सीपियों में छेद कर लेते थे, सजावट के लिए अपने शरीर को रँगा करते थे, हड्डियों और पत्थरों पर चित्रकारी भी करते थे, तथा कन्दराओं की दीवालों और आकर्षक शिला-खण्डों पर पशुओं इत्यादि के टेढे-मेढे परन्तु कभी-कभी बहुत ही बढिया चित्र भी बनाते थे। वे तरह-तरह के औज़ार बनाते थे और घोड़े (उस युग के टट्टू, जिनके थोड़ी-सी दाढी भी होती थी),

बिसन-नामक जगली बैलों तथा मैमथ-नामक विशाल हाथी जैसे जन्तुओं का ख़ूब शिकार करते थे। किन्तु यह पता नही चलता कि उन्होंने कोई मकान भी बनाए हो, या कोई बर्तन गढा हो। खेती या बुनाई के सम्बन्ध मे वे बिल्कुल अनभिज्ञ थे। जानवरो के चमडे और रोओ के बने उनके वस्त्र को छोड़कर वे हर पहलू से पूरे जगली थे। उनका सबसे महत्वपूर्ण पशु एक प्रकार का बारहसिंघा था, जो उनके लिए वैसा ही उपयोगी था जिस प्रकार कि आज-कल के युग मे हमारे लिए गाय है।

जब हम वैज्ञानिको को भूमध्यसागर के परिवर्त्ती प्रदेशो के सिलसिले मे रेन्डीयर-नामक बारहसिघे या मैमथ की बात करते सुनते हैं तो हम लोगों को स्वभावतः आश्चर्य होता है, क्योंकि आजकल उत्तरी ध्रुव-प्रदेश के दक्षिण मे रेन्डीयर कही भी नहीं पाया जाता और मैमथ का तो अब पृथ्वी से अस्तित्व ही उठ गया है। परन्तु भूगर्भ-विद्या के विद्वान् यह बतलाते हैं कि ५०००० वर्ष पहले, जिस समय यूरोप महान् हिमयुगों मे से अन्तिम युग से शनैः-शनैः छुटकारा पा रहा था, भूमध्यसागर इतना छिछला था कि उसको पार करने के लिए छोटी-छोटी पुलो या अन्य साधनो का बनाना सभव था और अफ्रीका और एशिया से मनुष्य और जानवर यूरोप पैदल आते-जाते थे। इन दिनो यूरोप के दक्षिणी भाग मे आज-कल जहाँ भूमध्यसागर है वहाँ तक बारहसिघा पाया जाता था। यहाँ कुछ ऐसे लोगों द्वारा, जो हाल ही में कहीं से वहाँ आए थे, यह पशु पकडकर पालतू और घरेलू बना लिया गया था। इन आदिम शिकारी लोगों के जीवन मे बारहसिघे का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान था। बारहसिघा अपने इन स्वामियों के लिए कितना मूल्यवान और महत्वपूर्ण रहा होगा, इसका अनुभव तब हमे होता है जब हम इस पर ध्यान देते हैं कि कितना मन लगाकर वे गुफाओ की दीवालों पर या पाषाण-खण्डो पर इसका चित्र बनाते तथा कितने चाव के साथ उसके सींग की हड्डियों से निर्मित आभूषणों से अपना शृंगार करते थे। इस लेख के साथ के चित्रों से यह पता चलेगा कि आदिम मानव ने अपने विविध समकालीन पशुओं का कितनी बारीक़ी और गहराई से अध्ययन किया था, और कितनी सुन्दरता के साथ उसने आत्माभिव्यजन के उस समय के अपने एकमात्र साधन चकमक पत्थर से बनाये भौंडे चाकू से अपने सीधे-सादे दैनिक जीवन की सभी छोटी-छोटी व्यवहार की वस्तुओ अर्थात् अस्थियों, हाथी-दाँत अथवा मारे गए अन्य पशुओं के सीगो और दाँत-पर खोद-खोदकर या खुरचकर उनके चित्र बनाए थे। शताब्दियो के अवसान तथा बुद्धि की उत्तरोत्तर वृद्धि के साथ-साथ शनैः-शनैः आदिमानव ने हाथ से फेंके जानेवाले अपने पाषाण के अस्त्रो का त्याग कर दिया तथा सीग के ऐसे छोटे-छोटे छुरे बनाना प्रारम्भ कर दिया, जिनके हत्थो पर बढिया कारीगरी रहती थी। ऐसे छुरे तथा कुछ बारीक़ नक़्क़ाशी के सीग और हड्डी के रहस्यपूर्ण छोटे डडे कभी-कभी इन आदिम मानवो के कन्दरा-गृहों मे पाए गए हैं। ये छड़ीनुमा डडे, जो केवल शोभा की वस्तु थे, आज-

संसार की एक सबसे पुरानी कंदरा-चित्रशाला का द्वार

यह फ्रास में दोरदोन की घाटी में फॉत-द-गावँ (Font-de-Gaume) की सुप्रसिद्ध गुफा का द्वार है। इसमें अल्टामीरा की गुफा के चित्रों जैसे ही प्राचीन रेखाचित्र मिले हैं। [फोटो—'ला केवर्न द-फॉत-गावँ' से]

२५००० वर्ष पूर्व के कलाकारो की महान् कलाकृतियो का एक नमूना

यह अल्टामीरा की गुफा की उस सुप्रसिद्ध दीवाल का चित्र है जिस पर पत्थर-युग के मनुष्यों द्वारा चित्रित जानवरों के चित्र पाये गये है, जिनमें से दो रगीन चित्र इसी पृष्ठ के सामने अलग से दिये जा रहे हैं।

कल की छडियो से बिल्कुल भिन्न थे। यह भी नहीं कहा जा सकता कि उनसे औरों पर आक्रमण करने अथवा आत्म-रक्षा करने का काम लिया जाता होगा। पुरातत्व-वेत्ताओं का अनुमान है कि वे या तो उस समय के जादूगरों की छडियाँ रही होंगी, या सभवत. 'राजदड' के रूप मे काम में लायी जाती होंगी। इसीलिए इन लोगों ने इन्हे राजदड (batons de commandement) का नाम दिया है।

उपर्युक्त छुरे के हत्थों तथा 'राजदडों' पर चित्रकारी करने के अलावा उस समय का कन्दरा-निवासी मनुष्य मैमथ-नामक हाथी के दाँत के टुकडों तथा बारहसिघे के अनेक शाखाओंवाले सींगो पर मनुष्य या पशु-पक्षियों के सुन्दर चित्र अथवा बढिया बेल-बूटों की नक्काशी भी करता था। उस समय सींग या हड्डी के टुकडे की सब सतह चित्रों से भर देना ही चित्रकला की पूर्णता समझी जाती थी। कभी-कभी एक चित्र दूसरे के ऊपर बना दिया जाता था, और प्राय. ऐसा होता था कि किसी बडे चित्र की रूप-रेखा के भीतर एक दूसरा छोटा चित्र या किसी जानवर का केवल सिर बना दिया जाता था। इस तरह उस युग के चित्रों में अधिकतर हमे यह देखने को मिलता है कि किसी बारह-सिंघे के चित्र की रूप-रेखा के अन्दर मछली, सर्प या घोडे का सिर बना हुआ है। वास्तव मे जब तक कोई स्वय अपनी आँखो से इन प्रागैतिहासिक कृतियों को देख न ले तब तक वह यह अनुमान नही कर सकता कि ये कन्दरा-वासी मनुष्य चित्रो की रूप-रेखा खींचने मे, मूर्ति-निर्माण मे अथवा सामान्य रूप से प्रस्तर-खण्डों को केवल छीलने मे कितने आगे बढे हुए थे। वास्तव मे वे पूर्ण रूप से विकसित मूर्तिकार नही थे। वे विकास की ऐसी अवस्था में थे, जिसके लिए यह कहना सही होगा कि वे केवल लकड़ी या पत्थर को छीलना-छालना जानते थे। यह बात हमें स्वाभाविक ही मालूम पडेगी, यदि हम इस बात को ध्यान मे रखे कि धातुओ का प्रयोग इस समय तक बिल्कुल अज्ञात था, तथा पदार्थों को गढकर उन्हे कोई रूप देने का सारा कार्य चकमक पत्थर के तेज टुकड़ों द्वारा ही होता था। परन्तु सच्चे कलाकार के कुशल करों मे आकर चकमक पत्थर के नुकीले टुकडे भी चमत्कार पैदा कर सकते हैं। लगभग सौ वर्ष पहले ही अब तक इस पृथ्वी पर ऐसे स्थल पाये जाते थे, जैसे न्यूजीलैण्ड या आस्ट्रेलिया मे, जहाँ के आदि-निवासी, धातुओं का कोई ज्ञान न होने पर भी, लकड़ी और पत्थर दोनों से गढकर ऐसे आभूषणो का निर्माण करते थे, जिनकी सुन्दरता और कारीगरी कहीं बढी-चढी होती थी।

कला का यह तथाकथित 'बारहसिंघा युग' बहुत दिनों तक नहीं रहा। कालान्तर मे उपस्थित होनेवाले जलवायु के रहस्यपूर्ण परिवर्त्तनों ने पृथ्वी के हिमप्रदेशों की रेखा और
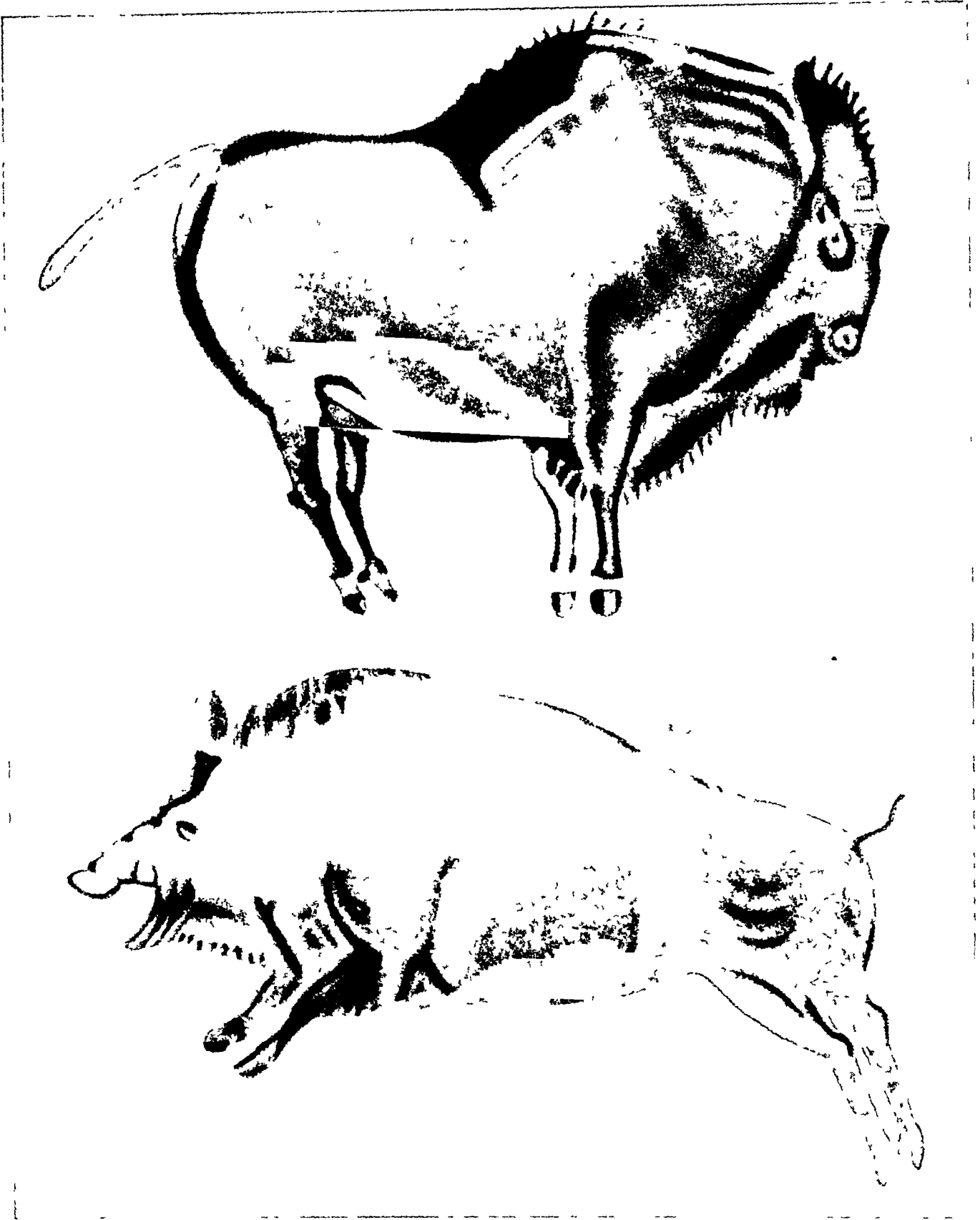
पत्थर के युग की सुंदर कला के नमूने

ये चित्र अलतामीरा की गुफा की एक दीवाल पर अंकित हैं। इनकी सुडौल रचना को देखकर हज़ारों वर्ष पूर्व के उ आदिम कलाकारों की प्रतिभा का अनुमान किया जा सकता है। [चित्र—'ला केवर्न द अलतामीरा' से]

उत्तर की ओर ऊपर हटा दी, और बारहसिंघा अपने आपको इस नये गर्म वातावरण के उपयुक्त न बना सकने के कारण उत्तर के अधिक ठढे प्रदेशो की शरण लेने लगा। इधर आदिमानव को धूप की गर्मी लेने ही मे आनन्द आने लगा। अतएव उसने बारहसिंघे के पीछे-पीछे उत्तर की ओर जाने की झझट नही की, क्योंकि बारहसिघा के चले जाने के बाद ही उसकी जगह इस प्रदेश मे एक जाति का लाल हिरण आ गया, जिससे आदिमानव को भोजन तथा आच्छादन ही नहीं बल्कि मछली पकड़ने और शिकार मारने के लिए हथियार का भी सामान मिलने लगा। इस रक्तवर्ण हिरण के शिकारी मनुष्य ने न केवल बारहसिंघे के शिकारियों की कलात्मक परम्परा को ही जारी रखा, बल्कि आत्माभिव्यजन के दो और नये साधन भी प्राप्त कर लिये। अब वह चित्रकार तथा मूर्तिकार दोनों बन गया।

उन गुफाओं की खोज, जिनमे आदिम मनुष्य अपनी इस कलात्मक विरासत को छोड गये हैं, कला के इतिहास की एक सबसे विचित्र घटना है। १८७९ मे पुरातत्त्वविद्या के प्रेमी एक स्पेन-निवासी रईस के मस्तिष्क मे अल्टामीरा (Altemira) की गुफा का निरीक्षण करने की सनक सवार हुई। यह गुफा उत्तरी स्पेन की कैन्टेब्रियन पर्वतमाला (Cantabrian Mountains) मे स्थित है। स्पेन के इन श्रीमान् का नाम था मारक्विस डि० सन्तोला (Marquis de Santuola) पुरातत्त्वविद्या के सौभाग्य से यह अपनी छोटी लड़की को भी इस खोज की यात्रा मे अपने साथ लेते गये थे। जब कि पिता पुराने शिलीभूत अस्थि-पजरो को ढूँढ निकालने मे जुटे पडे थे, लड़की ने स्वय भी कुछ अनुसन्धान करने का निश्चय किया। हाथ मे मोमबत्ती लेकर रेंगते-रेंगते वह गुफा के एक ऐसे हिस्से मे जा पहुँची, जो इतना अधिक सकीर्ण था कि इस कारण कभी किसी ने उसकी जॉच करने की परवाह नहीं की थी। लड़की ने अन्दर पहुँचकर जो ऊपर की ओर देखा तो ठीक अपने सामने ही एक बडे बैल को अपनी ओर घूरते पाया! इस दृश्य से वह इतनी डरी कि उसने पिता का नाम लेते हुए जोर की चीख मारी। लडकी की आवाज़ सुनकर मारक्विस महोदय ने दौडकर गुफा के भीतर प्रवेश किया और इस प्रकार अनायास ही अपने युग की सबसे बड़ी खोज करने मे वह सफल हुए!

प्रागैतिहासिक काल की इस प्रथम चित्रकारी का समाचार दूर-दूर तक फैल गया, किन्तु चित्रकला के क्षेत्र के धुरधर पडितो ने इस सम्बन्ध मे गहरा सन्देह प्रकट किया कि इस प्रकार का भव्य चित्राङ्कन भूतकाल के आदिम कलाकारों की कृति था। कुछ ने तो आगे बढकर बेचारे मारकिस पर यह आरोप भी लगाया कि उन्होंने एक महान् पुरातत्त्ववेत्ता के रूप मे प्रसिद्धि प्राप्त करने के लिए मैड्रिड (स्पेन की राजधानी) के किसी कलाकार को किराये पर रखकर गुफा की दीवालो पर स्वय ही मूर्तियाँ चित्रित और अकित कराई हैं। पर अन्त मे जाकर सत्य ने असत्य पर विजय पायी। जिस माध्यम द्वारा ये चित्र अकित किये गये थे उसकी तथा चित्रों की कौशल-सम्बन्धी विशेषताओ की परीक्षा से यह निश्चित रूप से सिद्ध हो गया कि इस प्रकार का चित्राङ्कन आज के युग के किसी कलाकार द्वारा संभव न था।

ये चित्र क्या थे, चट्टानो की सतह पर खीची हुई आकृतियो की रूप-रेखाये मात्र थे। परन्तु स्वय उस चट्टान की सतह पर एक विचित्र प्रकार का अपरिचित लाल रंग चढा हुआ था, जो परीक्षा करने पर एक प्रकार का लोहे का मोर्चा (Iron Oxide) निकला। इस लाल पदार्थ के साथ गहरा नीला रग भी मिला था। यह भी एक प्रकार का मोर्चा था, जो सभवतः 'मैङ्गनीज़ आक्साइड था'। इनके अलावा और भी अनेक प्रकार के पीले तथा रगीन रग के द्रव्य इस माध्यम में मिश्रित थे, जो जॉचने पर 'आयरन कार्बोनेट' (Iron Carbonate) नामक द्रव्य साबित हुए। इन रगों मे चर्बी मिला दी गई थी, ताकि चट्टान की सतह पर ये चिपट जायें। इन रगो के बीच-बीच उन आदिम कलाकारो ने (जो खुरचने के लिए एक तरह का पत्थर का औजार काम मे लाते थे; कालान्तर मे ऐसे औज़ार उनके कार्यस्थलों पर पाये गये हैं) जली हुई हड्डी से बनाये गये कुछ काले रग का भी प्रयोग किया था। खोखली हड्डियों से रग के बर्त्तन का काम लिया जाता था—मानो ये हड्डियाँ रग से भरी शीशियाँ थी—और छिछले पत्थर के टुकडों पर रग मिलाया जाता था। कोई आधुनिक चित्रकार शायद ही अपने काम के लिए ऐसे साधनो का उपयोग करता।

सौभाग्य से उक्त सत्यान्वेषी मारकिस के अन्वेषण के कुछ समय बाद ही दक्षिण-पश्चिमीय फ्रान्स मे दोरदों (Dordogne) की घाटी मे और भी इसी तरह की गुफा की दीवालों मे की गई चित्रकारी का पता लगा। तब से कई प्रागैतिहासिक कन्दराओ की चित्रकारियो का दक्षिणी फ्रान्स और उत्तरी स्पेन के प्रदेशों मे पता लगा है। कुछ तो पैर की तरह बढते चले गये इटली के एढी के प्रदेश मे भी पाई गई हैं। परन्तु उत्तरी योरप या इगलैण्ड मे ऐसी गुफाओं का सर्वथा अभाव है।

इन कन्दरा-चित्रशालाओं की एक सामान्य विचित्रता यह है कि उनके चित्र सूर्य के प्रकाश से इतने अधिक दूर या आड में रक्खे गये हैं कि उधर से होकर निकलनेवाले किसी भी दर्शक की निगाह उन पर पडना असभव था। ये चित्रकारियाँ प्राय कन्दरा के उस भाग में की गई हैं, जहाँ सबसे घना अँधियारा छाया रहता है और जहाँ तक सूर्य की किरणों की कभी भी पहुँच न हो पाई होगी। इससे हम यह अनुमान करते हैं कि इन चित्रकारों ने मशाल की रोशनी में काम किया होगा। सूर्य की किरणों के पूर्ण अभाव ने इन अत्यन्त मूल्यवान चित्रों की रक्षा करने मे एक प्रकार के प्राकृतिक बचाव का काम दिया। अन्यथा बनने के कुछ ही वर्षों के अन्दर ही सूर्य की किरणों की रासायनिक प्रतिक्रिया के फलस्वरूप उनका रग सदा के लिए उड जाता।

प्रागैतिहासिक कलाकार क्यों हमेशा ऐसे अधकारपूर्ण अगम्य स्थानों ही मे चित्राङ्कन करता था, तथा क्यों उसके कलात्मक प्रयत्न पशुओं तक ही सीमित थे, इस सम्बन्ध मे अनेक अनुमान लगाये गये हैं। यह कहा जाता है कि धर्म ही प्रत्येक प्रकार की कला का उद्गम रहा है, अतएव ये प्रागैतिहासिक चित्र सभवत. मनुष्य के प्रारम्भिक धार्मिक कृत्यो का ही एक भाग रहे हो। ये चित्रित गुफाएँ सभवतः उन लोगों के पूजा के प्राचीन स्थल रही हों, जहाँ जाति के बडे-बूढे मत्र-तत्र की साधना करके चित्रों पर जादू करने के लिए जुटते थे, ताकि शिकारी अपने भोजन की प्राप्ति के प्रयत्न मे आखेट करते समय और भी अधिक निश्चित रूप से सफल हो सके।

प्रागैतिहासिक काल की चित्राङ्कन-शैली का उत्थान जिस आकस्मिक वेग से हुआ था, उसका ह्रास भी उतनी ही तेजी के साथ हुआ। थोडे दिनो तक तेजी के साथ पर्याप्त रूप से बढने और अपनी मनोहर छटा दिखलाने के बाद वह धरातल से एकदम लुप्त हो गया। अब न यथार्थ पर्यवेक्षण की वह अद्भुत देन रही, न भाव-व्यजक चित्राङ्कन की वह जादू-भरी अलौकिक-सी रहस्यपूर्ण शक्ति ही और सुघड़ गढन की वह भावना भी जाती रही।

इन विशेषताओं का लोप होने पर कला को फिर से अपना रूप और स्थान प्राप्त करने मे हजारों वर्ष लग गए। इन हजारो वर्षों की अवधि में ऐसी बहुत-सी महत्वपूर्ण घटनाएँ घटीं, जिनका कला के विकास के लिए अत्यन्त महत्व था। क्योंकि इन्हीं दिनों मे मानव-समाज ने क्रमशः भिन्न-भिन्न धातुओं का उपयोग करना और सूखी मिट्टी के बर्तनो को आग मे तपाकर टिकाऊ बर्तन बनाना सीखा।

इस अवस्था तक पहुँचते-पहुँचते पत्थर के युग का अवसान हो गया था और पृथ्वी पर तथाकथित 'ताम्रयुग' या 'काँसे के युग' (Bronze Age) के उदयकाल की किरणें फूटने लगी थी।

पत्थर युग की मूर्त्ति-निर्माण कला का एक अद्भुत नमूना

यह तक-द-आदोबर्त नामक स्थान की गुफा में पायी गयी दो बिसन या साँडों की मिट्टी की बनायी हुई मूर्त्तियों का चित्र है। इन मूर्तियों की सुडौल रूपरेखा देखकर आज भी लोग हजारों वर्ष पूर्व के अपने पूर्वजों की अद्भुत कला-प्रवीणता के सम्बन्ध में आश्चर्य से दाँतों तले उँगली दबाने लगते हैं।
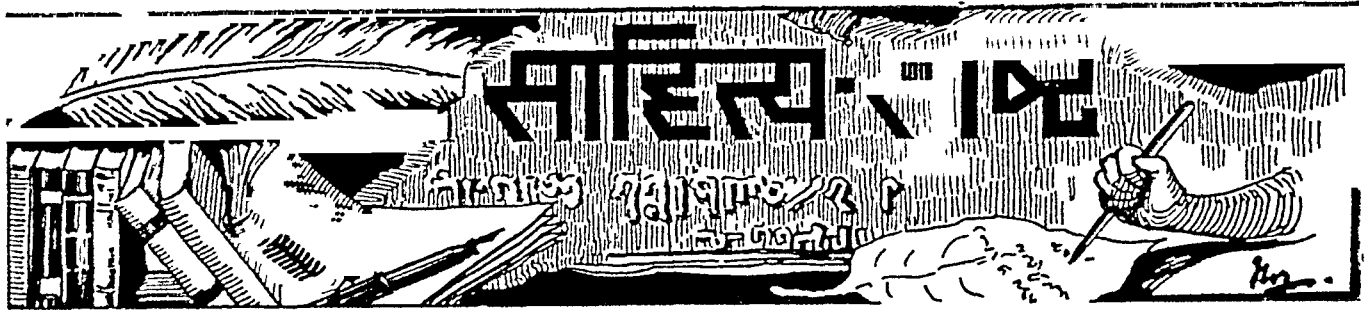
भाषा का विकास

भाषा की भित्ति पर ही साहित्य का निर्माण हुआ है, अतएव साहित्य के विकास का अध्ययन करने के पहले भाषा के जन्म और विकास का पर्यावलोकन करना उपयोगी होगा।

आदिम मनुष्य ने कैसे बोलना सीखा, इसकी विद्वानों ने खोज की है और अनेक मतों का प्रतिपादन किया है, पर निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि कौन-सा मत सच है और कौन-सा झूठ। एक मत है कि भाषा मनुष्य को ईश्वर से मिली है। इस मत को सच्चा माननेवाले अंध-विश्वासी धार्मिक मनुष्य हैं। सभी देशों और जातियों के धर्मानुयायी अपनी-अपनी धार्मिक पुस्तकों को ईश्वरीय बतलाते हैं। बौद्ध लोग पाली को ईश्वर की प्रथम भाषा मानते हैं, तो मुसलमान अरबी को, ईसाई हिब्रू को और वैदिक धर्मानुयायी वेद-भाषा संस्कृत को। यह मत कितना सदोष है, कहने की आवश्यकता नहीं। धर्म के पचड़े में न पड़कर इतना निस्संकोच कहा जा सकता है कि भाषा का प्रथम और अन्तिम अधिकारी मनुष्य है। भाषा मनुष्य की अपनी ही कमाई हुई संपत्ति है, ईश्वर का इससे कोई संबंध नहीं।

दूसरा मत है कि भाषा का जन्म संकेतों द्वारा हुआ और मनुष्य की आधुनिक विकासावस्था उन्हीं संकेतों के परिणाम-स्वरूप है। इस मत में कुछ सत्य अवश्य है और वह इतना ही कि शब्द और अर्थ का सम्बन्ध लोकेच्छा पर निर्भर होता है, केवल संकेतों द्वारा मनुष्य अपने मस्तिष्क का विकास नहीं कर सकता। अतः भाषा की आवश्यकता स्पष्ट है।

तीसरा मत है कि प्रथम शब्द अनुकरणात्मक थे। मनुष्य ने पशु-पक्षियों की बोलियों का अनुकरण कर अपने शब्द-भंडार को बढ़ाया है। बिल्ली की 'म्याऊँ', कुत्ते का 'भों-भों', घोड़े का 'हिनहिनाना', कौए की 'कॉव-कॉव' आदि सुनकर मनुष्य ने शब्द गढ़े। इस मत के माननेवाले भूल जाते हैं कि मनुष्य ने अपने साथियों की बोलियों का भी तो अनुकरण किया होगा। इतना अवश्य है कि कुछ शब्द अवश्य अनुकरणमूलक होते हैं और उनके द्वारा कुछ शब्दों की सृष्टि भी हो सकती है, पर यह कहना कि सारा-का-सारा शब्द-भंडार इन्हीं की कृपा का फल है, भ्रमात्मक है। इस मत को 'बाउ-वाउवाद' (Bow-wow Theory) कहते हैं।

चौथा मत है कि प्रथम शब्द मनोभावों के द्योतक थे। विस्मय, भय, घृणा आदि मनोभावों को प्रकाश में लाने के लिए मनुष्य के मुख से स्वतः ही शब्द निकल पड़ते हैं। उदाहरणार्थ ओह, आह, हा, छिः, पूह् शब्दों की व्युत्पत्ति का एकमात्र कारण मनुष्य के मनोभाव ही हैं। और इन मनोभावों की उत्पत्ति के कारण शारीरिक हैं। प्रायः देखा गया है कि मनोभावों के द्योतक शब्दों का प्रयोग तभी होता है, जब भावाधिक्य के कारण मनुष्य के मुख से कोई शब्द निकलता ही नहीं, अतएव ऐसे शब्दों को भाषा के अन्तर्गत मानना सरासर भूल है। अपरंच ओह, आह, छिः, पूह् आदि ध्वनियाँ सांकेतिक हैं। समस्त देशों और जातियों में इनका थोड़ा-बहुत उसी रूप में प्रचार है। दर्द के मारे हिन्दुस्तानी 'ऊह' कहकर चिल्लाता है, तो अंग्रेज 'ओह' और जर्मन 'औ' कहकर। अन्तर अधिक नहीं है।

पाँचवाँ मत कहता है कि आदिम मनुष्य के प्रथम शब्द वे थे, जिनकी सृष्टि बाह्य जगत् के संसर्ग में आकर स्वभावतः ही हो गई। जैसे लोहा, पत्थर आदि बजाने से विभिन्न स्वर निकलते हैं, वैसे ही मनुष्य को जैसा भी अनुभव हुआ, उसके लिए शब्द बन गया। जैसे-जैसे भाषा विकसित होती गई, यह स्वाभाविक शक्ति घटती गई। इस मत का नाम मैक्समूलर ने 'डिंग-डांग-वाद' (Ding-Dong Theory) रक्खा है।

कुछ का मत कहता है कि जब मनुष्य खूब परिश्रम करता है, तो उसकी साँस वेग से चलने लगती है, जिससे स्वर-तन्त्रियों में कम्पन होने लगता है। यही कम्पन आदिम मनुष्य के प्रथम शब्दों का कारण है। 'हेइया', 'आहो' आदि ध्वनियाँ परिश्रमपूर्वक किये गये कार्य के ही परिणामस्वरूप हैं। इस मत को 'यो-हे-हो-वाद' (Yo-He-Ho Theory) के नाम से पुकारते हैं।

मनोयोगपूर्वक देखने से उपर्युक्त मतों में तथ्यांश अवश्य है, पर यह कहना कि ये पृथक्-पृथक् स्वतःसिद्ध है भूल है। विद्वानों के मतानुसार तो इन सबका समन्वय ही सन्तोषजनक हो सकता है।

इन मतों को ध्यान में रखते हुए हम उस आदि काल के शब्द-भंडार की कल्पना कर सकते हैं। अनेक शब्द बने, पर उनमें से केवल वही जीवित रहे, जो सर्वाधिक उपादेय समझे गये—जो आसानी से बोले जा सके और कानों को पूर्णतया स्पष्ट सुन पड़े। इन शब्दों के विकास में उपचार का बहुत बड़ा भाग है। 'उपचार' का अर्थ है ज्ञात के द्वारा अज्ञात को समझाना। जहाँ पहले अँग्रेजी के 'पाइप' शब्द का अर्थ 'गडरिये के बाजे' का होता था, उसी का आधुनिक अर्थ 'नल' भी है। ऋग्वेद-काल में यदि 'रम' धातु का अर्थ 'स्थिर होना' था, तो आज उसका अर्थ 'आनन्द देना' है।

उस सुदूर काल में शब्द और अर्थ का सम्बन्ध अवश्य ही उतना स्पष्ट नहीं रहा होगा, जितना कि वह आज है। लोग समझने में अनेक भूलें करते होंगे। जो इच्छा हुई, वही अर्थ लगा लेते होंगे। शब्दों का ठीक-ठीक बोध तो कदाचित् सहस्रों वर्ष बीतने पर ही होना सम्भव हुआ होगा। आज भी अधिकांश मनुष्यों के लिए शब्द और अर्थ का सम्बन्ध अस्पष्ट ही रहता है।

आदिमानव ने अपने विचारों को प्रकट करने के लिए सर्वप्रथम सांकेतिक भाषा का ही प्रयोग किया होगा, यह मानने में कोई विशेष आपत्ति नहीं। आज भी दो विभिन्न भाषाभाषी एक-दूसरे को समझने के प्रयत्न में संकेतों का ही प्रयोग करते हैं। संकेत के साथ-साथ ध्वनि का भी प्रयोग करते हैं। अमेरिका के आदिमनिवासी रैडइंडियन तथा अफ्रीका और प्रशान्त महासागर के विविध द्वीपों के निवासियों में आज दिन भी सांकेतिक भाषा द्वारा ही विचारों का आदान-प्रदान होते देखा गया है।

आदिमानव ने प्रारम्भिक अवस्था में परिस्थितियों से बाध्य होकर आवश्यकता-निवारण के लिए जो प्रथम संकेत किया होगा, उसके द्वारा अवश्य ही उसने पूर्ण विचार का आभास दिया होगा। वह संकेत एक पूर्ण वाक्य का द्योतक होगा। यदि ध्वनि-संकेत किया होगा, तो उसमें भी पूर्ण वाक्य निहित रहा होगा। मानव का संकेत-प्रयोग अथवा शब्दप्रयोग पूर्ण वाक्य का ही काम देता है। क्योंकि केवल संकेत अथवा शब्द, जब तक ध्यान आकर्षित न करे, व्यर्थ ही है, और ध्यान आकर्षित करना ही भाषा है।

जैसे-जैसे शब्द-भण्डार बढ़ता गया, सामाजिक परिवर्त्तन होने लगे। शब्दों के आदिम प्रयोगों तथा अर्थों में भी यथेष्ट परिवर्त्तन होने लगे और मानव ने सांकेतिक (Conventional) अर्थों को अपनाना प्रारम्भ कर दिया। अंग्रेजी शब्द 'ब्रोकर' (Broker) का आदिम अर्थ है 'वह आदमी जो मद्य के पीपों में सूराख करता है'। आज इसी शब्द का अर्थ है 'दलाल'। 'सैलेरी' (Salary) का मूल अर्थ है 'नमक का पैसा'। आज उसका अर्थ है 'वेतन'। ग्रीक शब्द 'पोलिस' (Polis) का अर्थ है 'नगर'। वही शब्द अंग्रेजी में हुआ 'पोलिस' (Police)। इसी से अनेक शब्द बने यथा 'पौलिटिक्स' (Politics) (राजनीतिशास्त्र), 'पालिसी' (Policy) (नीति), (Politician) 'पौलीटीशियन' (राजनीति विशारद)। एक शब्द है 'इन्डिगो' (Indigo)। इस शब्द का मूल अर्थ है 'भारतीय'। पहले नील का उत्पादन भारतवर्ष में होता था। ग्रीक लोगों ने इसका नाम रक्खा 'इंडिकौन' (Indikon), लैटिन भाषाभाषियों ने 'इन्डिकम' (Indicum) और इटली-स्पेन-निवासियों ने इसको नाम दिया 'इंडिगो'। अंग्रेजों ने इसको इसी रूप में अपनाया। अंग्रेजी शब्द 'फौरेन' का (Foreign), जिसका आज 'विदेशी' के अर्थ में प्रयोग होता है, आदिम अर्थ है 'घर के बाहर'। 'बार्गेन' (Bargain) जो आज 'सौदा' के अर्थ में प्रयुक्त होता है अंग्रेजी में लैटिन शब्द 'बार्का' (Barca) द्वारा आया, जिसका अर्थ होता है 'नाव का'।

ऐसा क्यों होता है, इसका एक कारण है। किसी भी शब्द का आदिम अर्थ कुछ भी रहा हो, पर सामाजिक परिस्थिति और आवश्यकता के आगे 'शब्द' को सिर झुकाना ही पड़ता है। सदैव ही भाषा की उन्नति सामाजिक उन्नति की आश्रित रही है। क्योंकि भाषा कोरे शब्दों का समूह ही नहीं है, वह मानव समाज के पारस्परिक व्यवहार का साधन है। जैसे-जैसे समाज विकसित होता गया है, भाषा भी अधिक व्यवहारक्षम तथा शक्तिमती होती गई है। इसी से कहा जाता है कि भाषा का विकास होता है।

भाषा के पूर्व रूप का अध्ययन विद्वानों ने कई प्रकार से किया है। अंग्रेज़ी भाषा के प्रकाण्ड वैयाकरण

जैस्पर्सन ने असभ्य जातियों की भाषा, बच्चों की भाषा और विविध भाषाओं के इतिहास—इन तीन विचित्र क्षेत्रों का विशेष अध्ययन कर आदिम मानव भाषा को खोज निकालने का प्रयत्न किया है। इन तीनो क्षेत्रों मे सबसे अधिक सफलता विविध भाषाओ के इतिहास के अध्ययन द्वारा ही मिली है। उदाहरणार्थ आधुनिक हिन्दी की पूर्वी और पश्चिमी हिन्दी से तुलना की जाय, फिर पश्चिमी हिन्दी की बॉगड़ू भाषा से, पजाबी से और डिंगल से तुलना की जाय, फिर इनकी नागर अपभ्रंश से, नागर अपभ्रश की शौरसेनी से, शौरसेनी की दूसरी प्राकृत अथवा पाली से, फिर दूसरी प्राकृत की पहली प्राकृत से, फिर पहली प्राकृत की संस्कृत से, फिर संस्कृत की वैदिक सस्कृत से, फिर वैदिक सस्कृत की अवेस्ता अथवा मीडिक भाषा से तुलना करके तत्पश्चात् इण्डो-योरोपियन परिवार की लैटिन, ग्रीक, हिट्टाइट, तोख़ारी आदि भाषाओ के साथ तुलना करने से बहुत सन्तोषजनक परिणाम निकाला गया है। निम्नलिखित तालिका से हम भली प्रकार यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि ये सब भाषाएँ किसी आदिम भाषा की ही सतान हैं:—

(संस्कृत)	(लैटिन)	(फारसी)	(हिन्दी)	(अंग्रेज़ी)
पितृ	पेटर	पिदर	पिता	फादर
मातृ	मेटर	मादर	माता	मदर

कौन-सी भाषा कौन बोलेगा, यह परिस्थिति या शिक्षा पर निर्भर है, जन्म पर नहीं। भाषा मानव की अर्जित सपत्ति है। मानव प्रत्येक भाषा को सीख सकता है। अग्रेज़ी भाषा को आज संसार भर के देशो और जातियो के स्त्री-पुरुष पढते, लिखते और बोलते हैं। यह इस बात का प्रबल प्रमाण है कि समस्त भाषाये एक हैं और आरभ मे उन सबका बोलनेवाला एक ही मूल परिवार रहा होगा। इस प्रकार आज तक की खोज के परिणामस्वरूप कोई तेरह परिवारो का पता लगा है। पर इन सबके एक मूल का पता नही लग सका है। इन परिवारों मे से इण्डो-योरोपियन अथवा इण्डो-जर्मैनिक, सैमेटिक, हैमेटिक, यूराल-अल्ताई, चीनी, द्रविड, मलय-पोलिनैशियन, दक्षिण अफ्रीकन, अमरीकन और काकेशियन मुख्य हैं।

भौगोलिक दृष्टि से विश्व भर की भाषाएँ चार विभागो मे विभाजित की जा सकती हैं—(१) यूरेशिया, (२) अफ्रीका, (३) दोनो (दक्षिणी और उत्तरी) अमरीका, और (४) प्रशात महासागर।

यूरेशिया विभाग की भाषा, सस्कृति और सभ्यता के दृष्टि-कोण से सबसे अधिक महत्व की है। सभी मे सर्वश्रेष्ठ साहित्य-सृजन हुआ है। इसके मुख्य परिवार हैं—(१) इण्डो-योरोपियन, (२) काकेशन, (३) चीनी अथवा एकाक्षर, (४) यूराल-अल्ताई, (५) सैमेटिक, (६) द्रविड़, और (७) (अ) बास्क और (आ) सुमेरियन।

इण्डो-योरोपियन परिवार मे दस उप-परिवार हैं—(१) केल्टिक, (२) ट्यूटानिक, (३) लैटिन, (४) हैले-निक, (५) हित्तो (हिट्टाइट), (६) तोख़ारी, (७) अल्बेनियन, (८) आर्मेनियन, (९) लैटो-स्लाविक, और (१०) आर्य (इण्डो-ईरानी)। भारत की सस्कृत, पाली, फारसी, हिन्दी, उर्दू, बगला, गुजराती, मराठी आदि से लेकर योरप की ग्रीक, लैटिन, जर्मन, फ्रेंच, अग्रेज़ी, इटै-लियन, रूसी, स्पैनिश, स्वीडिश, आदि भाषाएँ इसी महत्व-पूर्ण परिवार मे हैं।

काकेशन परिवार मे छः भाषाएँ हैं—(१) किरकासिअन, (२) किस्तिअन, (३) लैस्घिअन, (४) मिग्रेलिअन, (५) जार्जिअन और (६) सुआनिअन। इन भापाओ मे प्रत्ययो का बाहुल्य होता है।

चीनी अथवा एकाक्षर-परिवार मे चार भेद मुख्य है—(१) चीनी, (२) स्यामी, (३) अनामी और (४) तिब्बती-बर्मी। एकाक्षर-परिवार के बोलनेवालो की सख्या इण्डो-योरोपियन परिवार की तुलना मे दूसरी ठहरती है। इस परिवार का धार्मिक एकता बनाए रखने मे बहुत बडा भाग है। इसमे चीनी भाषा ही मुख्य है और अन्य भाषाओं पर इसी का सर्वाधिक प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। चीनी भाषा मे प्रत्येक शब्द के लिए एक चित्र होता है। स्वर-भेद और स्थान-भेद से सूक्ष्मातिसूक्ष्म भाव प्रकट करने की इसमे क्षमता है।

यूराल-अल्ताई परिवार मे पॉच उपपरिवार हैं—(१) मगोलियन, (२) टर्को-टार्टार, (३) टुगूज, (४) फिनो-अग्रिक और (५) सैमोयेद।

मगोलियन भाषा मचूरिया और मंगोलिया मे बोली जाती है, टुगूज ओखोटस्क सागर के निकटवर्ती भागो मे और मचूरिया के कुछ भागो मे बोली जाती है। सैमोयेद आर्क-टिक सागर के तटवर्ती पश्चिमी भागो मे बोली जाती है। फिनो-अग्रिक उपपरिवार मे अनेक भाषाएँ हैं। ये सब हगरी, बल्गेरिया, यूराल पर्वत और साइबीरिया मे बोली जाती हैं। इस परिवार की भाषाओं मे प्रत्ययों का बाहुल्य है और स्वरो मे पूर्ण अनुरूपता है।

सैमेटिक-परिवार मे नौ भाषाएँ हैं—(१) असीरिअन, (२) वैबीलोनिअन, (३) परवर्ती अर्माइक, (४) हिब्रू, (५)

मोआइट, (६) फ्यूनिक, (७) अरबी, (८) हिम्यार्टिक और (९) अबीसीनीअन। इण्डो-योरोपियन परिवार को छोड़कर सबसे अधिक महत्वपूर्ण परिवार यही है। इस परिवार ने ससार को लिपि-कला सिखलाई। केवल चीन और भारत की लिपियॉ ही शुद्ध स्वदेशी हैं। इस भाषा मे सर्वनाम क्रिया के अन्त मे प्रयुक्त होते हैं, जैसे कतव-इ (मेरी किताब)। धातुएँ तीन व्यजनो से बनती हैं, जैसे कत्‌ (लिखना)। स्वर एक भी नहीं होता। रूप चलते हैं—नाक्तुब्‌ (हम लिखते हैं)? कतबत्‌ (उसने लिखा) आदि।

द्रविड़-परिवार मे बारह भाषाएँ हैं—(१) तामिल, (२) मलयालम, (३) कनारी, (४) तुलु, (५) टोडा, (६) कोडगू, (७) कुई, (८) कुरुख, (९) गोडी, (१०) कोलामी, (११) तैलगू, और (१२) ब्राहुई।

इस परिवार की भाषाओं की एक विशेषता है कि उत्तम-पुरुष सर्वनाम के दो रूप होते हैं, जिनमे से एक मे श्रोता भी शामिल रहता है। बास्क भाषा स्पेन और फ्रास की सीमा की बोली है। इसमे लिंग-भेद क्रियाओ मे होता है और क्रिया वाक्य के अन्त मे प्रयुक्त होती है। सुमेरिअन भाषा प्रत्यय-प्रधान है और यह बैबीलान मे बोली जाती थी। इनकी श्रेष्ठ सस्कृति और सभ्यता का पता अब भी उनके सुरक्षित साहित्य के अवलोकन से लगता है।

अफ्रीका-विभाग मे चार मुख्य भाषा-परिवार हैं—(१) बांतू, (२) हैमेटिक, (३) सैमेटिक, और (४) सूडान। इनमें सर्वाधिक महत्व के केवल हैमेटिक और सैमेटिक परिवार हैं। हैमेटिक परिवार की 'काप्टिक' भाषा मे लिखा धार्मिक साहित्य अब भी महत्वपूर्ण है। सैमेटिक परिवार की प्रसिद्ध भाषा अरबी है, जो मिस्र, एल्जीअर्स, मोरोक्को, आदि देशो मे राजकाज की भाषा है।

अमरीका-विभाग की भाषाओं मे एस्किमो, मोदेरू, अजतेक, मय, कारिब, अरवाक, गुआर्नी-तूपी, अरौकन, चाको मुख्य हैं। इन भाषाओं का कोई विशेष अध्ययन नहीं हुआ है। अजतेक और मय सभ्यताये बहुत प्राचीन हैं।

प्रशात महासागर विभाग के परिवार में पॉच उप-परिवार माने जाते हैं।—(१) मलयन, (२) मेलानेशिअन, (३) पौलीनेशिअन, (४) पापुअन, और (५) ऑस्ट्रेलिअन। मलयन भाषायें मलय प्रायद्वीप, सुमात्रा, जावा, बोर्नियो, फिलिपाइन्स आदि द्वीपो मे बोली जाती हैं। मैलानेशिअन न्यूगिनी और फ्रीजी द्वीपो मे, पौलीनेशिअन न्यूजीलैण्ड में, और आस्ट्रेलिअन आस्ट्रेलिया महाद्वीप मे बोली जाती हैं। इन भाषाओ मे कोई साहित्य-सृष्टि नहीं हुई है और विद्वानो ने इनका कोई विशेष अध्ययन भी नही किया है। इतना बतलाकर हम कुछ भाषाओ की आकृतियों का सक्षेप मे विवेचन कर इस प्रकरण को समाप्त करते हैं। यह तो पहले ही बतलाया जा चुका है कि आदिम मानव ने सर्वप्रथम वाक्य का ही प्रयोग किया था, अतएव वाक्य ही भाषा का मूल है। ससार की भाषाओं मे वाक्य का कैसा रूप है, उसकी कैसी रचना है, इसका भाषाविज्ञो ने अनुसन्धान किया है और अपने अनुसन्धान के बल पर वाक्यों के चार भेद बतलाये हैं—(१) समास-प्रधान (Incorporating), (२) व्यास-प्रधान (Isolating), (३) प्रत्यय-प्रधान (Agglutinating), और (४) विभक्ति-प्रधान (Inflecting)। समास-प्रधान वाक्य वह है, जिसमे उद्देश्य, विधेय, विशेषणादि सम्मिलित होकर समास के रूप मे पूर्ण वाक्य बनाते हैं। ऐसे वाक्य पूर्ण शब्द के तुल्य प्रयुक्त होते हैं। जैसे मैक्सीकन भाषा मे 'मै उसे खाता हूँ' के लिए कहेगे 'निक्', जो एक पूर्ण वाक्य है।

व्यास-प्रधान वाक्य मे शब्द स्वतत्र रहते हैं। उद्देश्य, विधेय, विशेषणादि का पारस्परिक सम्बन्ध, स्वर (Tone), स्थान, निपात (Particle) आदि पर निर्भर होता है। चीनी, बर्मी भाषाएँ व्यास-प्रधान ही होती हैं। चीनी भाषा के केवल ५०० साहित्यिक शब्दो से लगभग १५०० शब्दों का निर्माण हो जाता है। उदाहरणार्थ 'न्गो ता नी' का अर्थ होता है, 'मै तुम्हे मारता हूँ'। यदि इसको 'नी ता न्गो' कर दे, तो अर्थ होगा 'तुम मुझे मारते हो'। उच्चारण करने मे 'क्ड् क्वोक' मे यदि 'इ' पर उदात्त (Acute) स्वर रहे, तो अर्थ होगा 'दुष्ट देश'। और यदि 'इ' पर अनुदात्त (Grave) स्वर रहे, तो अर्थ होगा 'श्रेष्ठ देश'।

प्रत्यय-प्रधान वाक्य में कारक, लिग, वचनादि के भेद प्रत्ययो द्वारा बतलाये जाते हैं। तुर्की भाषा मे 'एव' का अर्थ 'घर' है। बहुवचन के लिए 'लेर' जोड़ देने से अर्थ हो जायगा 'बहुत-से घर'। इसी मे 'मेरा' अर्थवाला प्रत्यय जोड देने से हो जाता है 'एवलेरिम' (मेरे बहुत-से घर)।

विभक्ति-प्रधान वाक्य मे शब्दों का सम्बन्ध विभक्तियों द्वारा सूचित किया जाता है। सस्कृत भाषा विभक्ति-प्रधान है। इसमें कारक, लिगादि के भेद को प्रदर्शित करनेवाले प्रत्यय प्रकृति-शब्द से अलग नहीं किये जा सकते।

आदि काल मे अधिकाश शब्द विस्मयादिबोधक और मूर्त पदार्थो के रहे होंगे। जैसे-जैसे सभ्यता विकसित होती गई, शब्दो मे भी वृद्धि हुई और अमूर्त पदार्थो के लिए भी शब्द गढ़े गये।

सभ्यता से परे की दुनिया

दानाकील प्रदेश और उसके निवासी

पृथ्वी पर निवास करनेवाली विविध मनुष्य जातियो के जीवन-क्रम का अध्ययन करने की ओर कदम बढ़ाते समय यह उचित ही है कि हम उन्ही जातियो से शुरू करें जो विकास की बिलकुल निम्न श्रेणी या तले पर है। अबीसीनिया के उपप्रदेश दानाकील के निवासी ऐसी ही एक जाति के लोग है।

इस बीसवीं शताब्दी मे भी दुनिया में ऐसे भूभाग वर्तमान हैं, जहाॅ सभ्यता का नामोनिशान भी नही पाया जाता। इन हिस्सो से तुलना करने पर रेगिस्तान भी 'विकसित' की श्रेणी मे गिने जा सकेंगे। रेगिस्तान मे भी कारवान के रास्ते मिलते हैं—और नही तो ऊॅटो के पॉव की छाप तो बालू पर उगी रहती ही है, पर जिन हिस्सो की चर्चा हम करने जा रहे हैं, वहाॅ इस निशान का भी पता नहीं चलता। यहाॅ मनुष्य की कीर्त्ति अथवा उससे सम्बन्ध रखता हुआ कोई भी चिह्न कहीं नही दिखाई देता।

दानाकील प्रदेश दुनिया का एक विचित्र हिस्सा है। इस प्रदेश से हमारा मतलब इटालियन उपनिवेश एरित्रिया (या इरीट्रिया) के दानाकील से नहीं, जो लगभग ४० मील चौडा है और लाल सागर के किनारे-किनारे मसावा से लेकर असब तक बसा है। वास्तविक दानाकील प्रदेश उससे भिन्न है। इस प्रदेश की बाबत बाहरी दुनिया को अब तक बहुत कम पता है। यह हिस्सा सभ्य संसार से अब तक बिलकुल ही अछूता है। यहाॅ के कितने ही भाग अब भी ऐसे हैं, जहाॅ सभ्य ससार के किसी व्यक्ति ने आज तक पॉव नहीं रखा।

यह वास्तविक दानाकील प्रदेश एरित्रियन दानाकील से और भी पश्चिम अबीसीनिया की सीमा के भीतर है। इसका आकार टेढे-मेढे चौखूॅट के किस्म का है। इसकी लम्बाई उत्तर से दक्षिण तक लगभग चार सौ मील और चौड़ाई लगभग सवा सौ मील है। यात्रा करने की दृष्टि से यह ससार का सबसे अधिक खतरनाक हिस्सा है। अब तक बाहर के बहुत कम व्यक्ति हैं, जिन्होंने इस दानाकील प्रदेश मे प्रवेश किया है और जीवित वापस आ गये हैं।

इसकी सीमा तक ही बहुत कम आदमी पहुॅच पाते हैं। सीमा के आस-पास कुछ निश्चित स्थान है, जहाॅ तक सिर्फ अबीसीनियन लोगों की पहुॅच है। यहाॅ पर थोड़ी-बहुत नमक की तिजारत चलती है। इस सिलसिले में यदि कोई काम दानाकील की सीमा के भीतर पडता है, अथवा वहाॅ से होकर जाने की ज़रूरत पडती है तो भी अबीसीनियन या किसी बाहरी व्यक्ति को इसकी सुविधाएॅ नहीं मिलतीं। दनकाली (दानाकील प्रदेश के निवासी) स्वय नमक के बोरे ढोकर अपनी सीमा के एक हिस्से से दूसरे तक पहुॅचा दिया करते हैं।

इस दानाकील प्रदेश का दक्षिणी तथा बीच का हिस्सा ज्वालामुखी पहाड तथा पहाडियो से भरा है। इन पर्वतों का दृश्य बड़ा ही भयानक रहता है। समतल बालुकामय प्रदेश से ये भयानक पहाड़ सैकडों फीट ऊॅचे बर्छे की नोक की तरह सीधे खड़े हो जाते हैं। हाड-हाड निकले, दुबले-पतले, लबे, काले, नग-धड़ग शक्ल के होने के कारण इन्हें देखकर ही डर लगता है। पगडंडियों से चलते समय ये पहाड़ दोनो किनारे 'ऐटेन्शन' की हालत में खडे सतरियो-से पहरा देते हुए दिखाई देते हैं। इनकी नुकीली चोटियाॅ राक्षसो के दाॅत-सा विकराल रूप धारण किये सदा काट खाने के लिए तैयार खडी दीखती हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो अपनी लम्बी निद्रा से ये किसी भी क्षण जाग जा सकते हैं और अपने चारों तरफ बहुत दूर तक सत्यानाश फैला दे सकते हैं! इन पर्वतों को पार करते समय मालूम

दानाकील प्रदेश

यह अखाडा बन गया है। विजय अवश्य ही ध्वस-शक्ति की हुई होगी इसमे सदेह नही।

चलते समय पॉवों तले स्लेट-जैसे दीखनेवाले पत्थर मिलते हैं, जिन पर पॉव रखते ही 'खन ' खन ' '' की आवाज होती है। इन पर चलते समय टट्टू और ऊँट तक तलमलाने लगते हैं। कितनो की तो इस रास्ते के पार करने ही मे मौत हो जाती है।

इस दानाकील प्रदेश मे हम ज्यो-ज्यो उत्तर की ओर बढते जायँ, त्यों-त्यों रास्ता अधिकाधिक भयकर होता जाता है। दक्षिण की अपेक्षा उत्तर और भी भयानक दीखता है। सबसे बडी मुसीबत यह होती है कि इस रेगिस्तानी इलाक़े मे पानी की बड़ी क़िल्लत रहती है। कई स्थान यहाँ ऐसे हैं, जहाँ ऊँट पर सात-सात दिन का रास्ता पार करने पर पानी मिलता है।

धूप और गरमी का तो कुछ कहना ही नहीं। इसकी तुलना में तो जेठ-बैसाख मे लखनऊ की लू के दिन सर्दी की मौसिम मे गिने जायँगे। तापमान का पारा दिन मे साये मे मापने पर १३० और १६० डिग्री (फारेन-हाइट) के बीच निकलता है।।

इसी धूप के कारण यहाँ कुछ भी उपजता नहीं है। एक भी हरे पत्ते का कहीं नामोनिशान नही दिखाई देता है। पौधों की शक्ल के बबूल जैसे कॉटोंवाले सूखे ठूँठे दरख्त यदि कहीं-कहीं मिलते भी हैं तो काटने से उनके मर्मस्थल तक सूखा हुआ ही मिलता है। शायद गुस्से में आकर प्रकृति ने इस प्रदेश की सृष्टि की थी।

खेती करने का एक तो प्रश्न ही बहुत सीमित रूप में इस प्रदेश के लिए उठता है, दूसरी बात यह है कि यहाँ के

पड़ता है, मानो पॉवों के नीचे की धरती कॉप रही हो। अँधेरे की तो बात ही दूर रही—दिन-दोपहर को ही इस प्रदेश मे भय लगता है।

जहाँ तक दृष्टि जाती है हरियाली का कहीं भी नामो-निशान नही। जीव-जन्तु का पता नहीं। आकाश मे एक पक्षी तक नहीं। शायद वे कभी भूलते-भटकते इधर उड़कर आते भी होगे, तो नुकीले पत्थरों पर से पॉव फिसल जाने के भय से यहाँ विश्राम न ले आगे उड़ते चले जाते होंगे।

थोड़ा आगे बढ़ने पर दृश्य और भी भयानक बन जाता है। जहाँ तक दृष्टि जाती है, वहाँ तक राख के रग की भूमि कहीं घुटने, कहीं कमर, कहीं मनुष्य के और कहीं-कहीं हाथियों के पोरसा भर कुरेदी हुई दीखती है। आदमियों मे वैसी ताक़त नहीं कि वे ज्वालामुखी के पत्थरों को इस भॉति कुरेद सकते। शायद स्वय प्रकृति की ही ध्वस-शक्ति के साथ कभी कुश्ती हुई थी और उसी के चिह्नस्वरूप

लोग भी इस कला से बिलकुल अनभिज्ञ हैं। इसे देखकर सबसे पहली बात कल्पना मे यही आती है कि यहाँ भूत भी आकर शायद भूखा-प्यासा ही मर जायगा!

फिर भी यहाँ पर कुछ लोग रहते हैं। इस प्रदेश के ख़ाके को देखकर ही यह अनुमान लगा सकना कठिन नही होगा कि जो प्राकृतिक ध्वसशक्ति के इतने कोप का सामना करते हुए यहाँ टिकने की हिम्मत करते हैं वे कितने भयानक लोग होते होंगे! ऐसे लोग सिवा दनकालियो के और दूसरे कोई हो भी नही सकते।

ये दनकाली भी विचित्र जीव होते हैं! पहली बार इन पर निगाह पडने पर तुरत ही इन्हे आदमी की गिनती मे शुमार कर लेना कठिन होता है! इनके अंग सूखकर कॉटे हुए रहते हैं। बिना किसी प्रकार की भूल की आशका किये इनकी देह के प्रत्येक अग की हड्डियाँ गिन ली जा सकती हैं। कम उम्रवालों के चमड़े मे भी सिकुडन आ जाती है और किसी-किसी के तो झूलने तक लग जाते हैं!

इनके अग पर प्रायः वस्त्र का एक चिथडा भी नहीं रहता। हड्डी, दॉत, सितुहे और कौड़ियों मे छेदकर सूखी लताओ से उन्हे गूँथकर अपने कमर मे पहने रहते हैं। इसीसे जितनी दूर तक लज्जा-निवारण होने का अनुमान किया जा सकता है, उनका हुआ करता है। इसी प्रकार की मालाएँ उनके गले मे भी झूला करती हैं। इनकी तुलना साक्षात् भूतो से की जा सकती है, इसीलिए इन्हे देखकर भयभीत होना स्वाभाविक ही है।

प्रकृति के कठोरतम आघात सहते-सहते इनके चेहरे अत्यन्त निष्ठुर बन जाते हैं 'दया' अथवा 'कोमल हृदय' नाम की कोई चीज़ इनके भीतर पाया जाना आश्चर्य की बात होगी। ये भूख और दरिद्रता के मारे वास्तव ही ख़ूँख़ार बन जाते हैं।

दनकालियो के स्थायी घर-द्वार कहीं भी नही होते। स्थायी तरीक़े से टिकने के लिए ये कहीं-कही पत्थर-मिट्टी जोड़कर कमर भर ऊँची वीरान दिखनेवाली दीवारे उठा लेते

दनकाली स्त्रियाँ

ये प्रायः अर्द्धनग्न ही रहती है, पर इस चित्र में खाल पहने हुए हैं। पीछे क्षितिज तक फैला लवा-चौडा वृक्षहीन रेगिस्तान दिखाई दे रहा है। [फ़ोटो—लेखक द्वारा।]

जानवरो की खाल पहने कापालिक जैसा एक दनकाली पुरुष
अधिकतर ये अर्द्धनग्न ही रहते हैं। [फोटो—लेखक द्वारा]

लिए सम्पत्ति हैं। इन्हीं चुगने के दाने और अपने जानवरों के लिए घास की तलाश मे ये दनकाली सदा घूमते रहते हैं और मौका मिलने पर उपजाऊ इलाक़ो पर धावा बोल दिया करते हैं।

दनकाली आपस मे भी कई जातियो मे बँटे रहते हैं। इन जातियों की भी आपस मे एक-दूसरे से हमेशा लड़ाई चलती है। इन्ही लड़ाइयों मे इनकी सारी शक्ति खर्च होती है और उसी के कारण ये कमजोर भी बने रहते हैं।

जो इनके इलाक़े का न हो ऐसे प्रत्येक आदमी को वे अपना शत्रु समझते हैं। बाहरी लोगों की तो बात ही दूर रही, वे आपस की भिन्न जातियो को भी अपने इलाक़े में नहीं घुसने देते। एक-एक जाति का दायरा साधारणतया पानी पाये जानेवाले तीन चार इलाकों के घेरे मे रहता है। इनकी आपस की लड़ाइयाँ पानी पाये जानेवाले स्थानों पर क़ब्जा करने के लिए हुआ करती हैं। इन लड़ाइयों मे एक गाँव का दूसरे गाँव के साथ, अथवा यदि पानी की और भी किल्लत हुई तो कई गाँवों का दूसरे गाँवों के गुट्ट के साथ, युद्ध हुआ करता है, जिसमें बहुतेरे आदमी मारे जाते हैं।

भूख और दरिद्रता से विवश हो जो कुछ भी इनकी आँखों के सामने आता है, उसे ये लूट लेने के लिए विवश होते हैं। जिन चीजों के लिए हमारे देश में कुत्ते भी नहीं झगडेंगे, उनके लिए ही दनकालियों के देश मे आदमियों की जान चली जाती है। उपभोग की सामान्य से भी सामान्य वस्तुओ के लिए दनकाली लालायित रहते हैं। कितनी बार तो ये किसी अरब से उसकी बिना चीनी की काफी का एक प्याला छीन लेने के लिए ही उसको जान से

हैं, नहीं तो साधारणतया हमेशा अपने रेगिस्तानी इलाक़े मे ही इधर-उधर मारे-मारे फिरते हैं। ये अपना निर्वाह आस-पास के इलाक़ो में लूटमार मचाकर या अपने प्रदेश से गुजरनेवाले लोगों को लूटपाटकर चलाया करते हैं। जो इनमें धनी होते हैं, उनके पास किसी कारवान या 'गाला' (अबीसीनिया की एक और जाति) से लूटकर लाया गया एक-आध ऊँट या टट्टू रहता है। पर ये जानवर भी दनकालियो की ही तरह के और उनकी ही हालत मे रहते हैं। इनके जीवन की मियाद भी लम्बी नहीं हुआ करती।

जो दाने भारतवर्ष मे जानवरो को दिये जाते हैं, उनकी एक मुट्ठी भी किसी दनकाली को रोजाना मिल जाती है, तो वह अपने को बड़ा भाग्यशाली मानता है। उन दानो से रोटी पका लेने का भी ज्ञान इन्हे नही होता। ये दानों को बायें हाथ मे ले दायें हाथ से एक-एक दाना उठा पक्षियो की तरह चुगते हैं। जो दाने हम अपने यहाँ मुर्गियो को देते हैं और जिन्हे यहाँ का कोई भी आदमी अपने खाने योग्य नहीं मानता वे ही दाने दनकालियों के देश के

मार डालते हैं। पर ज्यादातर ये पानी, दाने और घास की ही फिराक मे रहते हैं। उसी पर और उसी के लिए ये जीते हैं, इसीलिए इन चीज़ो के लिए ही इनकी अधिकतर लड़ाइयाँ होती हैं।

आदमी को नुकीले पत्थर या बर्छे से मार डालना इस प्रदेश मे कोई अपराध नही। उल्टे दनकालियो के बीच यह बहुत बडी इज्ज़त की बात समझी जाती है। वे गले मे जो तावीज़ पहनते हैं, उसमे अक्सर उनके द्वारा मारे गये आदमियो के अग से काट ली गई निशानी रहती है। प्रत्येक हत्या की एक-एक निशानी रहती है। दनकालियों के लिए यह निशानी बहुत कुछ 'इज्ज़त का तमग़ा' सा है।

युवा दनकाली हमेशा इस प्रकार के तमग़ो की फिराक मे रहते हैं। यदि उन्हे कोई अजनबी भटकता हुआ मिल जाता है, तो वे उसे पानी का स्थान दिखाने के बहाने भटका देते हैं। वास्तव मे वे उसे रेगिस्तान मे हैरान करते हैं और पानी के स्थान से दूर लेते चले जाते हैं। आदमी जब थककर बेहोश होने लगता है, तब वे उसे मार डालते हैं और उसके अग का एक विशेष हिस्सा काटकर उसका तावीज बना पहन लेते हैं।

दानाकील प्रदेश और वहाँ के लोगों के इस वर्णन से अवश्य ही स्पष्ट हो जाता है कि ये दुनिया के और हिस्सो से बिल्कुल ही भिन्न हैं। सभ्य ससार से इनका किसी भी प्रकार का सम्पर्क नहीं है। सदियो से ये ऊपर वर्णन किये गये देश मे और अपने निजी ढग से रहते चले आ रहे हैं। न तो उनकी कोई ख़बर कभी दुनिया के पास पहुँच पाती है और न कभी दुनिया की ही कोई ख़बर उनके पास तक पहुँचती है।

अबीसीनिया के बहुत-से हिस्सों पर दख़ल हो जाने पर भी दनकालियों के प्रदेश पर अब तक इटालियन लोगों का आधिपत्य नही जमा है। इटालियनो का अबीसीनिया पर हमला हुआ है, यही बात अब तक दनकालियो की बहुत कम जातियों के कानो तक पहुँच पाई है। जिन लोगो ने सुना है वे भी उसका कोई मतलब नही निकाल सके हैं। जितना उन्होंने समझा है वह यही है कि उनकी ही तरह और भी दो जातियाँ लड़ रही हैं, पर उसमे उनके लिए कोई विशेषता नही। उन्हे यही सुनकर आश्चर्य हुआ है कि दो जातियो ने कुछ अरसे तक लडना बन्द कर दिया था! वे इस अनहोनी बात पर विश्वास ही जमा पाने मे असमर्थ हैं।

दनकालियों मे जो सबसे अधिक बूढ़े हैं और जो बहुत-से इलाको मे 'होशियार' गिने जाते हैं, उन्होने इटालियन आक्रमण का सबसे अधिक समझदारी का अर्थ लगाया है। उन्हे याद है कि अपनी जवानी मे उन्होंने कई 'फिरगियो' को मार डाला था, अब उनकी बुद्धि के अनुसार उन्ही फिरगियो के जात-भाई बदला लेने के लिए आये हैं। इससे अधिक दूर तक सारे दानाकील प्रदेश मे किसी भी व्यक्ति की अक्ल या उसकी अनुमान करने की शक्ति का पहुँच पाना असम्भव है।

इस उदाहरण से और भी अधिक स्पष्ट हो जाता है कि सभ्य जगत् से दनकाली और उनका प्रदेश कितना दूर है! लेकिन एक बात और इस सिलसिले मे स्पष्ट कर देना उचित जान पड़ता है। बहुत-से लोगों की यह धारणा रहती है कि जो समाज जितनी दूर तक सभ्य होने का दावा रखता उसमे चालाकी और धूर्तता की मात्रा भी उतनी ही अधिक रहती है। इसी विचार के आधार पर इस धारणा के पोषक यह भी अदाज़ लगाते हैं कि जो समाज सभ्यता से जितनी ही दूर रहेगा, उसमे धूर्तता और चालाकी की मात्रा उतनी ही कम होगी। आइए, इस कसौटी पर हम एक बार दनकाली लोगो को कसकर देखे।

लडाई मे ही इनका समय सबसे अधिक ख़र्च होता है और यही इनके जीवन की मुख्य समस्या रहती है इसलिए उनके मानसिक क्षेत्र की हलचल की हम इसी क्षेत्र मे जाँच करे तो इस विषय मे सही नतीजे पर पहुँचने की अधिक सभावना रहेगी।

अपने शत्रुओ से लडते समय दनकालियो की लड़ाई मे यह नीति रहती है कि जिस समय शत्रु बीच रेगिस्तान मे पानी के स्थान से अधिक दूर रहता है, उसी समय वे उस पर हमला करते हैं। इसमे इन्हे सहूलियत होती है। और कुछ नही तो इन्होंने यदि शत्रु का पानी से भरा हुआ मशक ही छीन लिया या नष्ट कर दिया तो फिर उसके लिए पानी बिना छटपटाकर मर जाने के सिवा दूसरा चारा नहीं रह जाता। इसी आसानी के ख़याल से दनकाली कल, बल, छल तीनो ही प्रकार से अपने शत्रु को बीच रेगिस्तान मे खींच लाने की कोशिश करते हैं। ये दिन मे बजाय आक्रमण करने के पीछे हटते जाते हैं और रात होने पर छिपकर हमला कर देते हैं।

यदि इनके प्रतिद्वद्वी भी दनकाली ही हुए तो वे एक ख़ास तरह की चालाकी से काम लेते हैं। इनके लिए सब से ज़रूरी रहता है अपने शत्रुओ का पता लगाते हुए आगे बढना, जिसमे अनजान मे घेर लिए जाने के ख़तरे से ये

जानवरो की खाल पहने कापालिक जैसा एक दनकाली पुरुष
अधिकतर ये अर्द्धनग्न ही रहते हैं। [फ़ोटो—लेखक द्वारा]

लिए सम्पत्ति हैं। इन्हीं चुगने के दाने और अपने जानवरो के लिए घास की तलाश मे ये दनकाली सदा घूमते रहते हैं और मौका मिलने पर उपजाऊ इलाक़ो पर धावा बोल दिया करते हैं।

दनकाली आपस मे भी कई जातियों मे बँटे रहते हैं। इन जातियों की भी आपस मे एक-दूसरे से हमेशा लड़ाई चलती है। इन्ही लड़ाइयो मे इनकी सारी शक्ति खर्च होती है और उसी के कारण ये कमजोर भी बने रहते हैं।

जो इनके इलाक़े का न हो ऐसे प्रत्येक आदमी को वे अपना शत्रु समझते हैं। बाहरी लोगों की तो बात ही दूर रही, वे आपस की भिन्न जातियो को भी अपने इलाक़े मे नहीं घुसने देते। एक-एक जाति का दायरा साधारणतया पानी पाये जानेवाले तीन चार इलाकों के घेरे मे रहता है। इनकी आपस की लड़ाइयॉ पानी पाये जानेवाले स्थानों पर क़ब्जा करने के लिए हुआ करती हैं। इन लड़ाइयों मे एक गॉव का दूसरे गॉव के साथ, अथवा यदि पानी की और भी क़िल्लत हुई तो कई गॉवों का दूसरे गॉवों के गुट्ट के साथ, युद्ध हुआ करता है, जिसमे बहुतेरे आदमी मारे जाते हैं।

भूख और दरिद्रता से विवश हो जो कुछ भी इनकी ऑखों के सामने आता है, उसे ये लूट लेने के लिए विवश होते हैं। जिन चीजों के लिए हमारे देश में कुत्ते भी नहीं झगड़ेगे, उनके लिए ही दनकालियो के देश मे आदमियों की जान चली जाती है! उपभोग की सामान्य से भी सामान्य वस्तुओं के लिए दनकाली लालायित रहते हैं। कितनी बार तो ये किसी अरब से उसकी बिना चीनी की काफ़ी का एक प्याला छीन लेने के लिए ही उसको जान से हैं, नहीं तो साधारणतया हमेशा अपने रेगिस्तानी इलाक़े मे ही इधर-उधर मारे-मारे फिरते हैं। ये अपना निर्वाह आस-पास के इलाक़ो मे लूटमार मचाकर या अपने प्रदेश से गुजरनेवाले लोगो को लूटपाटकर चलाया करते हैं। जो इनमे धनी होते हैं, उनके पास किसी कारवान या 'गाला' (अबीसीनिया की एक और जाति) से लूटकर लाया गया एक-आध ऊँट या टट्टू रहता है। पर ये जानवर भी दनकालियो की ही तरह के और उनकी ही हालत मे रहते हैं। इनके जीवन की मियाद भी लम्बी नहीं हुआ करती।

जो दाने भारतवर्ष मे जानवरो को दिये जाते हैं, उनकी एक मुट्ठी भी किसी दनकाली को रोजाना मिल जाती है, तो वह अपने को बड़ा भाग्यशाली मानता है। उन दानो से रोटी पका लेने का भी ज्ञान इन्हे नहीं होता। ये दानों को बाये हाथ मे ले दाये हाथ से एक-एक दाना उठा पक्षियों की तरह चुगते हैं। जो दाने हम अपने यहॉ मुर्गियो को देते हैं और जिन्हे यहॉ का कोई भी आदमी अपने खाने योग्य नहीं मानता वे ही दाने दनकालियो के देश के

मार डालते हैं। पर ज्यादातर ये पानी, दाने और घास की ही फिराक मे रहते हैं। उसी पर और उसी के लिए ये जीते हैं, इसीलिए इन चीज़ो के लिए ही इनकी अधिकतर लड़ाइयाँ होती हैं।

आदमी को नुकीले पत्थर या बर्छे से मार डालना इस प्रदेश मे कोई अपराध नही। उल्टे दनकालियो के बीच यह बहुत बड़ी इज़्ज़त की बात समझी जाती है। वे गले मे जो तावीज़ पहनते हैं, उसमे अक्सर उनके द्वारा मारे गये आदमियो के अग से काट ली गई निशानी रहती है। प्रत्येक हत्या की एक-एक निशानी रहती है। दनकालियों के लिए यह निशानी बहुत कुछ 'इज्जत का तमग़ा' सा है।

युवा दनकाली हमेशा इस प्रकार के तमग़ो की फिराक मे रहते हैं। यदि उन्हे कोई अजनबी भटकता हुआ मिल जाता है, तो वे उसे पानी का स्थान दिखाने के बहाने भटका देते हैं। वास्तव में वे उसे रेगिस्तान मे हैरान करते हैं और पानी के स्थान से दूर लेते चले जाते हैं। आदमी जब थककर बेहोश होने लगता है, तब वे उसे मार डालते हैं और उसके अग का एक विशेष हिस्सा काटकर उसका तावीज़ बना पहन लेते हैं।

दानाकील प्रदेश और वहाँ के लोगों के इस वर्णन से अवश्य ही स्पष्ट हो जाता है कि ये दुनिया के और हिस्सो से बिल्कुल ही भिन्न हैं। सभ्य ससार से इनका किसी भी प्रकार का सम्पर्क नही है। सदियो से ये ऊपर वर्णन किये गये देश मे और अपने निजी ढग से रहते चले आ रहे हैं। न तो उनकी कोई ख़बर कभी दुनिया के पास पहुँच पाती है और न कभी दुनिया की ही कोई ख़बर उनके पास तक पहुँचती है।

अबीसीनिया के बहुत-से हिस्सो पर दख़ल हो जाने पर भी दनकालियों के प्रदेश पर अब तक इटालियन लोगो का आधिपत्य नहीं जमा है। इटालियनों का अबीसीनिया पर हमला हुआ है, यही बात अब तक दनकालियो की बहुत कम जातियो के कानो तक पहुँच पाई है। जिन लोगो ने सुना है वे भी उसका कोई मतलब नही निकाल सके हैं। जितना उन्होने समझा है वह यही है कि उनकी ही तरह और भी दो जातियाँ लड़ रही हैं, पर उसमे उनके लिए कोई विशेषता नही। उन्हे यही सुनकर आश्चर्य हुआ है कि दो जातियो ने कुछ अरसे तक लड़ना बन्द कर दिया था! वे इस अनहोनी बात पर विश्वास ही जमा पाने मे असमर्थ हैं।

दनकालियों मे जो सबसे अधिक बूढ़े हैं और जो बहुत-से इलाको मे 'होशियार' गिने जाते हैं, उन्होने इटालियन आक्रमण का सबसे अधिक समझदारी का अर्थ लगाया है। उन्हे याद है कि अपनी जवानी मे उन्होंने कई 'फिरगियो' को मार डाला था, अब उनकी बुद्धि के अनुसार उन्ही फिरगियो के जात-भाई बदला लेने के लिए आये हैं। इससे अधिक दूर तक सारे दानाकील प्रदेश मे किसी भी व्यक्ति की अक़्ल या उसकी अनुमान करने की शक्ति का पहुँच पाना असम्भव है।

इस उदाहरण से और भी अधिक स्पष्ट हो जाता है कि सभ्य जगत् से दनकाली और उनका प्रदेश कितना दूर है! लेकिन एक बात और इस सिलसिले मे स्पष्ट कर देना उचित जान पड़ता है। बहुत-से लोगों की यह धारणा रहती है कि जो समाज जितनी दूर तक सभ्य होने का दावा रखता उसमे चालाकी और धूर्तता की मात्रा भी उतनी ही अधिक रहती है। इसी विचार के आधार पर इस धारणा के पोषक यह भी अदाज़ लगाते हैं कि जो समाज सभ्यता से जितनी ही दूर रहेगा, उसमे धूर्तता और चालाकी की मात्रा उतनी ही कम होगी। आइए, इस कसौटी पर हम एक बार दनकाली लोगो को कसकर देखे।

लड़ाई मे ही इनका समय सबसे अधिक ख़र्च होता है और यही इनके जीवन की मुख्य समस्या रहती है इसलिए उनके मानसिक क्षेत्र की हलचल की हम इसी क्षेत्र मे जाँच करे तो इस विषय मे सही नतीजे पर पहुँचने की अधिक सभावना रहेगी।

अपने शत्रुओ से लड़ते समय दनकालियो की लड़ाई मे यह नीति रहती है कि जिस समय शत्रु बीच रेगिस्तान मे पानी के स्थान से अधिक दूर रहता है, उसी समय वे उस पर हमला करते हैं। इसमे इन्हे सहूलियत होती है। और कुछ नही तो इन्होंने यदि शत्रु का पानी से भरा हुआ मशक ही छीन लिया या नष्ट कर दिया तो फिर उसके लिए पानी बिना छटपटाकर मर जाने के सिवा दूसरा चारा नहीं रह जाता। इसी आसानी के ख़याल से दनकाली कल, बल, छल तीनो ही प्रकार से अपने शत्रु को बीच रेगिस्तान मे खींच लाने की कोशिश करते हैं। ये दिन मे बजाय आक्रमण करने के पीछे हटते जाते हैं और रात होने पर छिपकर हमला कर देते हैं।

यदि इनके प्रतिद्वद्वी भी दनकाली ही हुए तो वे एक ख़ास तरह की चालाकी से काम लेते हैं। इनके लिए सब से ज़रूरी रहता है अपने शत्रुओ का पता लगाते हुए आगे बढ़ना, जिसमे अनजान मे घेर लिए जाने के ख़तरे से ये

बचने जा सकें। ऐसे मौक़ो पर ये नक़ल करते हुए जोर-जोर से चिल्ला कर कहते हैं —

'हम बड़े ही बेवक़ूफ़ हैं कि इतनी दूर बढ़ते चले आए। अब हमारे पास एक बूँद भी पानी नहीं बचा ? हमारे ऊँट मर गये। हम अब एक क़दम भी नही चल सकते। अब मौत ! हाय मौत !'

ये रोने का बहाना करते हैं, जिसमें इनकी इस मजबूती की ही हालत मे इन्हें कमजोर समझकर छिपे हुए शत्रु शीघ्र हमला कर दें और उनके आक्रमण से ये अपने को आसानी से बचा ले सकें। कभी-कभी ये जिस इलाक़े मे होते हैं, उनके मित्र जाति के होने का ऐसे मौक़ों पर बहाना करते हैं जिसमे छिपे हुए शत्रु उन्हे मारने न आवे।

इस प्रकार के अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं, जिनसे साबित होता है कि हम जिसे साधारणतया सभ्यता कहते हैं उससे दूर रहते हुए भी दनकालियों मे धूर्तता और चालाकी कम नहीं, वे कम मिथ्यावादी नही। चालाकी से किसी को रेगिस्तान मे बहकाकर ले जाने और वहाँ पर उसका सामान लूट लेने तथा अँधेरे मे उसकी जान ले लेने की कला ये भलीभाँति जानते हैं।

कम से कम दनकालियो का उदाहरण देखते हुए हम इसी नतीजे पर पहुँचते हैं कि सभ्यता से दूर रहने का मतलब धूर्तता या चालाकी से दूर रहना नही हुआ करता। इन विशेषताओं का खास कारण रोटी का सवाल दीखता है। यह सवाल हल करना जिस समाज के लिए जितना ही कठिन होता है वह उतनी ही दूर तक अपनी परिस्थिति विशेष के हिसाब से मानसिक तथा शारीरिक शक्तियो का उपयोग करता है।

मानसिक क्षेत्र मे दनकाली अधिक विकसित नही हैं, इसीलिए भोजन की समस्या हल करते समय ठीक पशुओं के समान खूँख़ार बन जाते हैं। इसी आधार पर हम इनकी गिनती सभ्य ससार से सबसे अधिक दूर रहनेवालों मे करने का साहस करते हैं।

दनकालियों का एक गिरोह

इस चित्र में दनकाली स्त्री-पुरुष खरीद-फरोख्त कर रहे हैं। यही उनका बाजार है। बीच में इस लेख के लेखक डा० शास्त्री खड़े हैं, जो पिछले अबीसीनिया युद्ध में युद्ध-सवाददाता के रूप में अबीसीनिया में महीनों रह चुके हैं और दानाकील जैसे भयकर प्रदेश की भी सैर कर चुके हैं। [फ़ोटो—लेखक द्वारा]
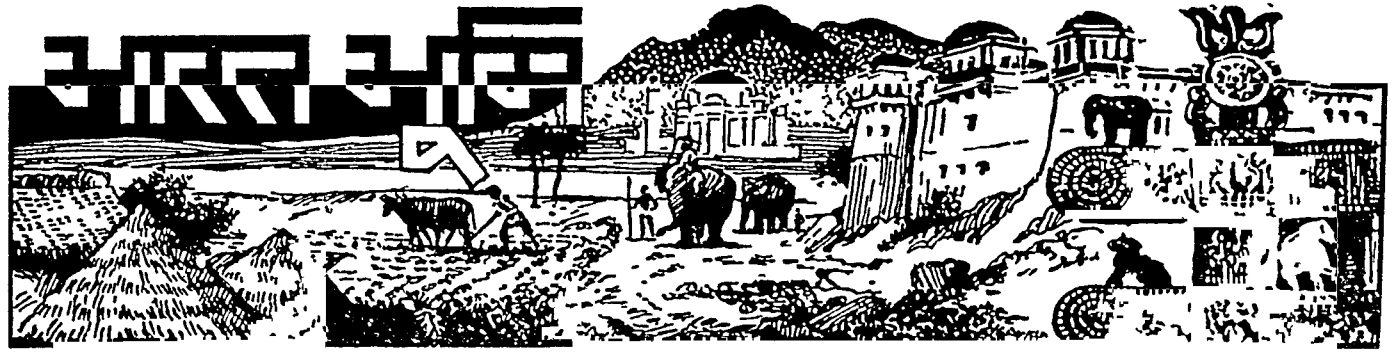
वर्त्तमान भारत की आदिम जातियों के जीवन की एक झलक

इस लेख मे भारत की उन जातियो की वर्त्तमान अवस्था का सामान्य रूप से दिग्दर्शन कराया गया है जो यहाँ सभ्यता की सबसे निचली श्रेणी मे है। सुसंस्कृत जातियो के बारे मे आगे लिखा जायगा।

भारतवर्ष मे अनेकों नस्ल (races) के लोग रहते हैं, जिनके स्वच्छन्दतापूर्वक मिलने से कई मिश्रित प्रकार की नस्लें बन गयी हैं। इन नस्लों पर जो अनेक प्रभाव पडे हैं, उनके निश्चित करने मे कुछ अशो मे यहाँ की जलवायु का भी हाथ रहा है। उदाहरण के लिए, अगर हम उत्तरी नदियो की घाटीवाले भाग, जो 'गंगा और सिन्धु का मैदान' (Indo-Gangetic Plain) कहलाता है, मध्यवर्ती पठार और दक्षिण के वन्य और पहाडी प्रदेशो के निवासियो का आपस मे मिलान करें, तो इनमे बडी विभिन्नता पायेंगे। इन भौगोलिक क्षेत्रो मे प्रत्येक की खाद्य सामग्री विशिष्ट प्रकार की है। दक्षिण के पठार मे खाद्य पदार्थ की मुख्य वस्तु बाजरा है, पजाब के मुख्य अनाज गेहूँ और जौ हैं, और गगा की नम और गर्म घाटी के लोगो का मुख्य आहार चावल है। भारतवर्ष मे मनुष्य को जलवायु-सम्बन्धी कई प्रकार की परिस्थितियो मे रहना पड़ता है। कुछ क्षेत्र ऐसे हैं, जहाँ चिरकाल से मनुष्य को बाहरी ससार से अलग-सा उन्ही प्रदेशो मे बन्द होकर रहना पड़ा है, जिनको लाँघकर बाहर जाना उसके लिए सरल न था। दूसरे कुछ क्षेत्रो मे वह लगातार की छेड़छाड से तग होता रहा और बाहरी प्रभाव तथा विदेशियो के सम्पर्क मे आता रहा। बाहरी जगत् के प्रभावो से मुक्त एक समुचित दायरे मे घिरे होने या लगातार बाहरी सम्पर्क मे आने की परिस्थितियो ने न सिर्फ हमारे देश की नस्लों की विभिन्नता को ही जन्म दिया है, बल्कि इसका प्रभाव उस सास्कृतिक विविधता पर भी कम नही पडा है जो कि भारतवर्ष मे इतने स्पष्ट रूप मे देखने मे आती है।

सास्कृतिक दृष्टि से भारतवर्ष दो मुख्य समूहो अथवा श्रेणियों 'जन' (Tribe)* और 'जाति' (Caste) मे बँटा हुआ है। 'जन' श्रेणी की अवस्था 'जाति' की अपेक्षा निचले दर्जे के सास्कृतिक विकास को सूचित करती है और धीरे-धीरे 'जाति' की अवस्था उसका स्थान लेती जा रही है। प्रायः सभी आदिम लोगो के सगठन का आधार 'जन' (Tribe) है। प्रत्येक 'जन' बहुत-से क़बीलो (Clans) मे बँटा हुआ होता है। इन क़बीलो का नाम प्रायः किसी जन्तु, वृक्ष या अन्य किसी पदार्थ के नाम पर रखा हुआ होता है, और कभी-कभी जिस जगह कोई 'जन' (Tribe) रहता है, उसी जगह के नाम से ही उसे पुकारा जाता है। क़बीले मे विवाह वर्जित है, क़बीले के लोग क़बीले के अन्दर ही शादी न करके कबीले के बाहर शादी करते हैं। इसके विपरीत 'जन' वर्ग मे उसकी सीमा के भीतर ही विवाह प्रचलित हैं, जन से बाहर विवाह करना वर्जित है। इस प्रकार विवाह-सस्कार जन के भीतर सीमित रखा जाता है। ज्यो-ज्यो ये जन वर्ण-व्यवस्था द्वारा निर्धारित जातियो के सम्पर्क मे आते जाते हैं, त्यों-त्यो वे अपने रस्म-रिवाजो को छोडकर

---

* 'जन' से मानव-समुदाय की उस आरभिक अवस्था का बोध होता है जबकि समाज में श्रम-विभाग या इस सीमा तक विस्तार नहीं हो पाता कि आर्थिक और सास्कृतिक आधार पर 'जाति' बन सके। भाषा की सुविधा की दृष्टि से इस लेख में आगे चल कर आदिम 'जनों' के स्थान पर कहीं-कहीं आदिम 'जातियों' का भी प्रयोग हुआ है। हमें आशा है पाठक 'जन' और 'जाति' के इस भेद का ध्यान रखेंगे।—सम्पादक।

कोरवा जाति के लोग
[फोटो—रिजले की 'पीपल्स ऑफ इण्डिया' से]

अनुसार भारतवर्ष की आदिम जातियो की सख्या मे पहले से वृद्धि हुई है। १६२१ मे जहॉ इनकी तादाद १ करोड ६० लाख थी, वहॉ १६३१ मे वह २ करोड ५० लाख हो गयी है। इसका अर्थ यह न समझना चाहिए कि आदिम जातियो की सख्या वास्तव मे ही हर स्थान पर बढी है। देश के सभी भागो की अवस्था उनकी वृद्धि के लिए अनुकूल नहीं है, अतएव जहॉ कुछ जातियो की आबादी बढी है, वहॉ बहुत-सी जातियो की जन-सख्या घट भी गयी है अथवा उसकी प्रवृत्ति घटने की ओर है। कुछ जातियों की सख्या निस्सन्देह इस कारण घटी है कि उस जाति के लोगों ने ईसाई या किसी अन्य धर्म को स्वीकार कर लिया है, किन्तु 'जनों' के रूप मे तो उनकी शक्ति पहले से बढ ही गयी है। बिहार मे छोटा नागपुर के रहनेवाले मुण्डा (Mundas) लोगों की तादाद जो सन् १८६१ मे ३,३३,४६४ थी, सन् १६३१ मे बढकर ६,५८,४५४ हो गयी है। उसी प्रकार इसी प्रदेश मे रहनेवाले हो (Hos), और सथाल (Santhals) लोगो की तादाद भी बढी है। छोटा नागपुर की इन आदिम जातियो को बहुत-सी सुविधाऍ प्राप्त हैं। इनमे से कुछ तो एक प्रकार की ऐसी शासन-व्यवस्था के अन्तर्गत रहते हैं, जिसमे उनकी रक्षा का प्रबन्ध किया जाता है, पर ज्यादातर लोग अपने मुखियो के अप्रत्यक्ष शासन मे हैं और बहुत-से ऐसे क़ानूनों की पाबन्दियों से बरी हैं जो कि उनके हित में घातक हैं।

अपने पड़ोसियो के रस्म-रिवाजो को अपनाते जाते हैं। धीरे-धीरे अज्ञात रूप से 'जनों' का जाति-समुदाय मे घुल-मिल जाना बहुत प्रारम्भिक काल से चला आता है।

भारतवर्ष मे 'जन' की अवस्था मे रहनेवालों की सख्या १६३१ की मनुष्य-गणना के अनुसार २ करोड ५० लाख है। मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट मे ये लोग 'आदिम जनो या जातियों' (Primitive tribes) के नाम से पुकारे गये हैं। इनमे २ करोड तो ब्रिटिश भारत के रहनेवाले हैं और शेष ५० लाख रियासतो की प्रजा हैं। किन्तु यह बात सही है कि पहाड़ियो और जगलो मे रहनेवाली इन आदिम जातियों की सख्या का ठीक-ठीक अन्दाज लगाना मुश्किल है और इस बात को ध्यान मे रखते हुए हमे मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट मे दी हुई सख्या को एकदम अक्षरश सत्य नहीं मान लेना चाहिए। ज्यो-ज्यो जगली और खानाबदोश जातियॉ स्थान-विशेष मे बसती जाती हैं, और व्यवस्थित जीवन बिताने लगती हैं त्यो-त्यो उनकी तादाद का सही अन्दाजा लगाना आसान होता जाता है। इस दृष्टि से १६३१ की मनुष्य-गणना इससे पहले की मनुष्य-गणनाओ की अपेक्षा अधिक विश्वसनीय है। १६३१ की मनुष्य-गणना के

देश के दूसरे भागों में विविध प्रकार से सभ्यता के सम्पर्क मे आने का इन आदिम जातियों की जन-सख्या पर बड़ा महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है। नीलगिरि की पहाड़ियो मे बसनेवाली टोडा जाति (Todas) की सख्या उत्तरोत्तर

घटती ही गई है। सन् १८६१ मे जहॉ इनकी संख्या १,७०१ थी, वहॉ सन् १६०१ मे ८०७, सन् १६११ मे ७४८ और सन् १६३१ मे ६४० ही रह गयी। बिहार और उडीसा के हिन्दू 'असुरों' (Asurs) की संख्या १६११ मे ३,७१६ के स्थान पर १६३१ मे २,०२४ ही रह गयी। मूल असुर जाति की तादाद, जो १६११ मे ३,०६६ थी, १६३१ मे घटकर सिर्फ ६३६ रह गयी। इसी प्रकार युक्तप्रान्त के कोरवो (Korwas) की सख्या १६०१ मे ६०७ के स्थान पर १६३१ मे ४६७ ही रह गयी। बिहार और उडीसा के हिन्दू कोरवो की सख्या भी सन् १६११ के ६,७६५ से घटकर १६२१ मे १,४६२ और १६३१ मे १,१२१ ही रह गयी। मध्यप्रान्त और बरार मे उनकी तादाद १६११ मे ८७६ की जगह १६३१ मे ३८४ ही रह गयी। इससे यह स्पष्ट है कि अन्दमान द्वीप के आदिम निवासियों की तरह ये लोग भी कुछ दिनों बाद लुप्त हो जानेवाले हैं।

मद्रास के 'कोटो' (Kotas), ट्रावकोर के हिन्दू 'मलायों' (Malaryans), मूल और हिन्दू 'मावलियो' (Mavilhans), मद्रास इलाक़े के 'जतापू खोंधो' (Jatapu Khondhs) आदि आदिम जातियो की संख्या मे भी ह्रास हुआ है। मध्यप्रान्त की रियासतों में रहनेवाले खोध लोगों की सख्या १६०१ मे ३३,१२४ थी, १६३१ मे वह घटकर २६,१६२ रह गयी। मध्यप्रान्त और बरार के 'गोड' (Gonds) लोगो की भी यही हालत है। आसाम के 'नागा' (Nagas), 'कूकी' (Kuki) 'लुशेई' (Lushei) और 'कोनयक' (Konyak) जातियो की सख्या भी लगातार घटती गयी है। कुछ आदिम जातियॉ ऐसी भी हैं जिनमे अभी वास्तविक ह्रास नहीं हुआ है, किन्तु उनकी भी वृद्धि रुक गयी है और सख्या घटने की ओर ही प्रवृत्ति हो रही है।

कोरवा लोग युक्तप्रान्त के मिर्जापुर ज़िले के दूधी नामक पहाडी परगने मे पाए जाते हैं। यह एक शक्तिशाली जाति थी, जिसकी आजकल बुरी हालत है। कोरवा लोग देखने मे क़द के छोटे और बदन के चुस्त और गठीले होते हैं, इनके सीने गहरे और कधे चौडे होते हैं। ये बडे फुर्तीले होते हैं। ये लोग इस प्रान्त मे सबसे आदिम निवासियो के प्रतिनिधि हैं। ये दरख्तो की शाखो का एक गोल छप्पर-सा बनाकर रहते हैं। ये लोग जगलो मे ही रहते और अपनी खुरपियो से खाने योग्य कद-मूल को ज़मीन मे से खोद निकालते हैं। जंगली वृक्षो के फल और जगली कद-मूल ही इनका आहार हैं। पहाडियो मे रहनेवाले कोरवा धनुष-बाण से भी काम लेते हैं, पर उनको शिकार का मौका अब कम मिलता है। इसकी वजह यह है कि जगली जानवर पहले की तरह स्वच्छन्द विचरण नहीं करते और उनकी तादाद भी बहुत कम हो चली है। इसके अलावा जगल-क़ानून की पाबन्दियो के कारण इन लोगो के आर्थिक कार्य-क्षेत्र का दायरा सीमित हो गया है और आजकल उन्हे जगल के कन्दमूल और पथरीली जमीन की हलकी पैदावार पर ही गुजर करना पडता है। परिणाम-स्वरूप कोरवो की सख्या-वृद्धि पर भारी रोक लग गयी है। दूधी परगने के कुन्दपान (Kundpan) और बिसरामपुर नामक स्थानो की कोरवो की बस्तियो मे जाकर जॉच करने से पता चला है कि किस प्रकार इस जाति की सतानोत्पादन की गति एकदम रुक-सी गई है। जॉच के परिणामस्वरूप मालूम हुआ कि १६ फी सदी विवाहित लोग ऐसे थे, जो नि:सन्तान थे या जिनकी कोई भी सन्तान जीती न रही थी, और लगभग ३११ फी सदी के सिर्फ एक ही बच्चा था, तथा बच्चो की ज्यादा से ज्यादा तादादवाले परिवार के भी अधिकाधिक ५ बच्चे थे।
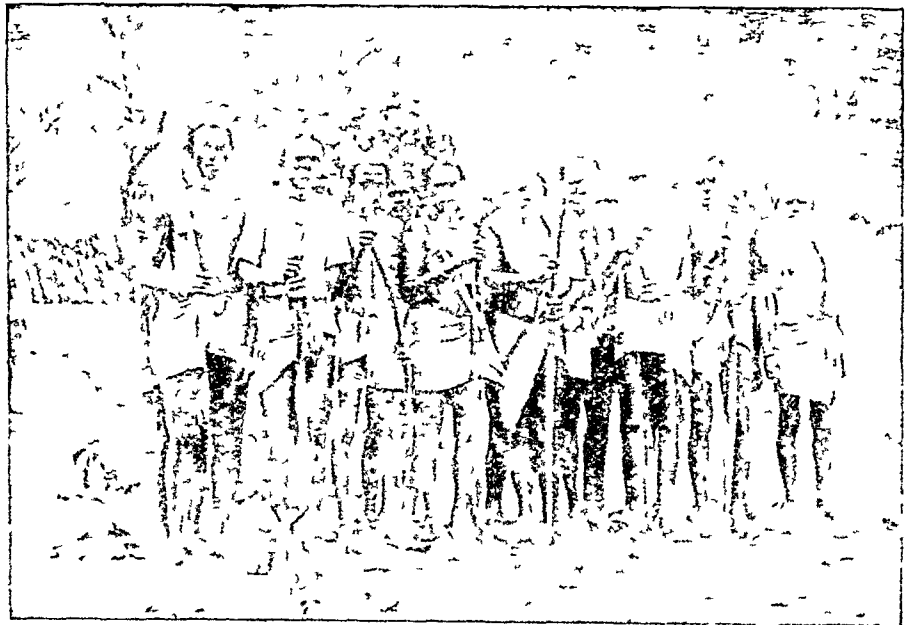
मध्यप्रात के माडिया गोड
इस चित्र में सब पुरुष हैं। [फ़ोटो—लेखक द्वारा]

समाज-शास्त्रियों ने हाल मे जो विस्तृत छान-बीन की है, उससे यह सिद्ध हो गया है कि आदिम जातियो मे नैसर्गिक उर्वराशक्ति सभ्यता की उन्नतावस्था मे रहनेवाले लोगो की अपेक्षा कम ही पायी जाती है। इससे जन-साधारण मे प्रचलित इस विश्वास का खडन होता है कि आदिम जातियों की सतानोत्पादक शक्ति अबाध ही नही बल्कि बहुत अधिक प्रबल होती है। परन्तु इस बात को स्वीकार कर लेना बड़ा कठिन है, क्योंकि जगली जातियो मे पैदाइश और मौत के जो आँकडे मिलते हैं, वे अक्सर बडे अधूरे होते हैं। तीन स्थानों मे स्वय मैने जो जॉच की, उससे यही पता चला कि आदिम जातियों की सन्तानोत्पादन-शक्ति सभ्यता की उन्नतावस्था मे रहनेवाली जातियो की अपेक्षा किसी प्रकार घटकर नही है। इन जातियो मे प्रचलित भ्रूण-हत्या, गर्भपात और शिशुओ की उचित देख-रेख के अभाव के कारण बहुत-सी जातियो की सतान-वृद्धि मे कडी रुकावट जरूर पड गयी है, पर जिन जगहो पर पैदाइश और मौत के आँकडे ठीक-ठीक सग्रह किए गए हैं, उन्हें देखने से हमे यही पता चलता है कि सन्तानोत्पादन मे ये जातियॉ उन्नत जातियों से पिछडी नही हैं।

यदि आदिम जातियो के ह्रास का कारण उन्नत जातियों की अपेक्षा उनमे सन्तानोत्पादन-शक्ति का कम मात्रा मे होना नहीं है तो फिर आइए देखें कि इस सम्बन्ध मे उन जातियो मे स्त्री-पुरुषों के अनुपात, तथा जीनेवाले और जल्द मर जानेवाले बालको के सम्बन्ध के आँकडे हमारे सामने दूसरा कौन-सा प्रमाण रखते हैं। आदिम जातियों मे पुरुष की सख्या ब्राह्मण आदि उच्च वर्ण-जातियो के अनुपात में कम ही पायी जाती है। किसी जनसख्या मे औरतो के मुक़ाबले मे मर्दों का ज्यादा होना कमजोरी का चिह्न समझा जाता है, अत. इस कसौटी पर कसने पर आदिम जातियो पर इस सबध मे अयोग्यता का आरोप नही लगाया जा सकता। आदिम जातियों मे विभिन्न आयु की मृत्यु के जो आँकडे मिलते हैं, वे विश्वसनीय नही हैं। इन आँकडों के भरोसे सही नतीजे पर नही पहुँचा जा सकता। परन्तु विशेष स्थानो मे खोज करने से यह अद्भुत बात प्रकाश मे आई है कि आदिम जातियो के गिरोहो मे वृद्ध पुरुष शायद ही मिलते हैं। आदिम जातियो की अपेक्षा आजकल के हिन्दू और मुसलमानों मे ४८ वर्ष के तथा इससे अधिक उम्र के आदमियो की औसत ज्यादा होगी। हिन्दुओ तथा मुसलमानो की कुल जनसख्या मे पॉच वर्ष के अन्दर की उम्र के १५ प्रतिशत लोग रहते हैं परन्तु आदिम जातियो मे ऐसे २० प्रतिशत व्यक्ति पाये जाते हैं। अत यह अनुमान करना शायद सही होगा कि आदिम जातियॉ उन्नत जातियो की अपेक्षा सन्तानोत्पत्ति तो अधिक करती हैं पर आत्मरक्षा के उचित साधनो के अभाव मे वे अपनी ठीक-ठीक रक्षा नही कर पाती, और चूँकि भौतिक तथा सामाजिक वातावरण से सघर्ष करते हुए अपने को उसके अनुकूल बनाने के उपकरण वे नहीं ढूँढ पाती हैं, इसलिए उन्नत जातियों की अपेक्षा वे कम दिन ही जी पाती हैं।

मध्य प्रान्त और बरार के 'गोंड' लोग, जिनकी भी सख्या अब कम होती जा रही है, एक बड़ी दिलचस्प जाति है। ये गोंड सभ्यता और सस्कृति के अनेक रूपो का प्रतिनिधित्व करते हैं और इतिहास मे इस प्रदेश मे उनके राजनीतिक प्रभाव का भी उल्लेख पाया जाता है। बस्तर (मध्य प्रान्त) के 'माड़िया' (Maria) नामक गोड, जो उक्त प्रदेश की सबसे जगली जाति है, अब भी घने जगलो मे राज्य की ओर से बिना किसी रोक-टोक या छेड़छाड के अपना आहार खोजते हुए विचरते हैं। राज्य के सामाजिक और आर्थिक सगठन मे अभी तक उनका प्रवेश नहीं हुआ है। इन गोंडो मे से कुछ लोगो ने, जो घूम-घामकर मैदानों में चले आये हैं और स्थायी या अर्द्धस्थायी रूप से कृषकों का जीवन व्यतीत करते हैं, अपने पडोसी हिन्दुओं की आदतों और प्रथाओ का अनुकरण कर लिया है और वे अब 'डडामी माड़िया' (Dandami Maria) के नाम से पुकारे जाते हैं। माड़िया लोग कमर मे गुरियों की करधनी के अलावा अपने शरीर पर नहीं के बराबर कपडे पहनते हैं। पुरुष अपने गुप्तागों को छिपाने भर के लिए एक कपडे का टुकडा पहनकर प्रायः नगे ही घूमा करते हैं। परन्तु उनके शरीर के अगों की सुन्दर सुडौल गठन का सामञ्जस्य तथा उनका प्रसन्न वदन उनके नगेपन से उत्पन्न जुगुप्सा को दूर कर देते हैं। स्त्रियॉ किनारीदार या बिना किनारी का कपड़ा कमर मे लपेटती हैं, परन्तु कमर से ऊपर के हिस्से को नहीं ढँकतीं। इन लोगों की गर्दन में गुरिया की कई मालाएँ तथा धातुओ के हार रहते हैं, जिनमे से अधिकतर जहॉ वे रहते हैं उसी जगह के बने होते हैं, या सप्ताह में लगनेवाले बाजार से खरीदे जाते हैं। आज भी ये लोग अपनी ही जाति के लोगो को मार डालने के लिए बदनाम हैं। माड़िया प्रदेश मे जरा-जरा-सी बात पर हो जानेवाली हत्याओं ने इन्हे काफी बदनाम कर रक्खा है। इन हत्याओ तथा उनके मन्त्र-तन्त्र एव धर्म-सम्बन्धी विश्वासो और प्रथाओं में कोई सम्बन्ध है या नहीं यह अभी निश्चित

नही हो सका है। लेकिन बलिदान किए गए नर-पशु के शव का उपभोग करने के उनके तरीके तथा पास-पडौस मे इस सबध मे प्रचलित किंवदंतियों से यह पता चलता है कि उनकी जाति-हत्या की प्रवृत्ति एव इस विश्वास मे कि खेती की उपज या शिकार की सफलता के लिए बलिदान किये गये मनुष्य का सिर और उससे निकलनेवाले खून का बड़ा महत्व है, कोई सम्बन्ध ज़रूर है। उनकी खेती एक जगह से दूसरी जगह बदलती रहती है। वे जगल के पेडों को काटते हैं और उनको जलाने से जो राख बनती है, उस पर बीज बोते हैं। अनन्तर वे बलिदान देते हैं, अपने नाच नाचते हैं और भारी उपज होने की प्रतीक्षा करते हैं। किन्ही-किन्ही वर्षों मे उनकी उपज दुगनी या पॅचगुनी होती है। पर किन्ही-किन्ही वर्षों में कुछ भी नही होता, ऐसी दशा मे वे अपने को तथा अपने देवताओ को बुरा-भला कहकर कोसते हैं। मालूम होता है इस शक्तिशाली जाति के बुरे दिन आ गये हैं, और सम्भव है कि जल्दी ही यह एकदम लुप्त हो जाय।

आज दिन आदिम जातियो की आबादी मे जो कमी हो रही है, उसका कारण उनके सामाजिक तथा आर्थिक जीवन मे होनेवाले वे महान् परिवर्तन हैं, जो सभ्यता के सस्पर्श मे आने से हो रहे हैं। स्थानाभाव के कारण इस छोटे से लेख मे आदिम जातियो की असुविधाओ के कारणो का विस्तृत वर्णन नही किया जा सकता, लेकिन यह जान लेना चाहिए कि भारतवर्ष की कई आदिम जातियो के जीवन-मरण का सघर्ष स्वय उन्ही से पैदा हुआ है। इसी कारण उनका नैतिक पतन हो चला है, और इसका प्रभाव उनके जातीय जीवन के लिए घातक सिद्ध हुआ है। उन्हे जीने या मरने की परवाह नही रहती। वे मृत्यु के वातावरण मे रहते हैं। वे जिन्दगी को जकडकर पकडे नही रहते और मृत्यु का भय उनके लिए एक शारीरिक भय मात्र रह गया है। यदि कोई कोरवा या गोड तनिक भी किसी घातक रोग से पीडित हो जाय, तो वह शायद ही अपनी ज़िन्दगी बचाने के लिए कोई प्रयत्न करेगा।

आदिम जातियो की जितनी ज्यादा पैदाइश होती है उतनी ही ज्यादा मौत होने के कारण जाति की वृद्धि के बहुत कम अवसर रहते हैं। सामाजिक विघटन और नैतिक पतन का स्त्रियो की सन्तानोत्पादन-शक्ति पर क्या प्रभाव पडता है, इसका अन्दाज लगाना कठिन है, लेकिन इतना निश्चय है कि बदली हुई आर्थिक परिस्थितियो ने निराशा का एक वातावरण पैदा कर दिया है और आदिम जातियो में जीवन के प्रति एक उदासीनता छा गयी है। यह उदा-

माडिया गोड जाति की स्त्री (फोटो— लेखक द्वारा)

सीनता, जो जीवन के साथ ठीक-ठीक सामञ्जस्य न बैठा सकने के ही परिणाम-स्वरूप पैदा हो गई है, दिनोंदिन बढती ही जाती है। बच्चो की देख-रेख के सम्बन्ध मे इनकी उपेक्षा से भी इसी उदासीनता का भाव टपकता है, और उनमे पायी जानेवाली विरक्ति की भावना भी, जिसका कि और कोई कारण नही जान पडता, इसी का परिणाम है।

आदिम जातियॉ भारतवर्ष की कुल जनसख्या का लगभग ८ प्रतिशत भाग हैं। अगर सावधानतापूर्वक इनकी देख-रेख की जाय तो आज भी ये हट्टे-कट्टे और तगडे लोग अपने को नई परिस्थितियो के अनुकूल बना सकते हैं। क्या यह भारतवर्ष के हित मे नही है कि अपने अस्तित्व को बनाए रखने और अपने को धीरे-धीरे बदलते हुए आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था के अनुकूल बनाने मे इन आदिम निवासियो की सहायता की जाय, ताकि दूसरे देशो का अनुभव भारतवर्ष मे भी चरितार्थ न हो? आज दिन ये जातियॉ अपने सामाजिक जीवन मे जिन असुविधाओ से पीडित हैं और राज्य के अधिकारियो द्वारा उनकी शिक्षा, स्वास्थ्य और नैतिक तथा भौतिक उन्नति की ओर जो उपेक्षा दिखलायी जाती है, उसकी ओर हमारा ध्यान जाना ज़रूरी है। समय आ गया है कि उनकी दशा को सुधारने और उनकी रक्षा करने के ऐसे कुछ उपाय किए जायॅ, जिससे उन्हे अपने आपको नयी परिस्थितियो के अनुकूल बनाने मे मदद मिले।

गीता के प्रवक्ता श्रीकृष्ण

महाभारत के युद्ध में गीता के रूप में कर्मयोग का जो पाठ श्रीकृष्ण ने अर्जुन को पढ़ाया था, वह युग-युग तक समस्त मानव-जाति को अंधकार में राह दिखाता रहेगा।
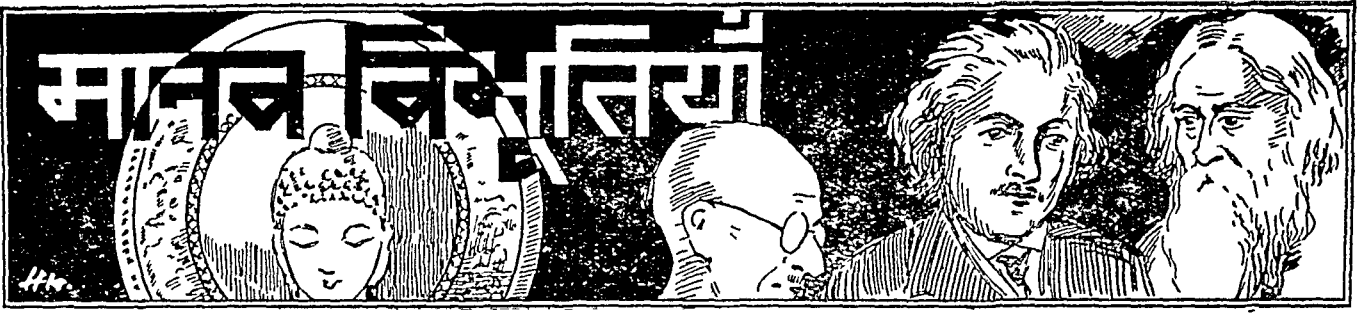
महापुरुष श्रीकृष्ण

इतिहास की शोध के जितने सीमित साधन हमें आज दिन उपलब्ध हैं, वे जहाँ की बात हम कहना चाहते हैं संभवतः वहाँ तक हमारे देश के इतिहास को ठीक-ठीक ले जाने मे समर्थ न होगे । इतिहास तो हमें मोहेंजोदडो के युग की कुछ धुँधली तस्वीरें दिखाकर ही रह जाता है । परन्तु कृष्ण अथवा राम की कहानी इतिहास की सीमाबद्ध लकीरों मे न समाकर भी भारत के लिए सदा से एक चिरन्तन सत्य रही है और रहेगी।

भारतवर्ष के जिन महापुरुषों का मानव जाति के विचारों पर स्थायी प्रभाव पड़ा है, उनमे श्रीकृष्ण का स्थान प्रमुख है । आज से लगभग पॉच सहस्र वर्ष पूर्व एक ही समय मे दो ऐसे व्यक्तियो का जन्म हुआ, जिनके उदात्त मस्तिष्क की छाप हमारे राष्ट्रीय जीवन पर बहुत गहरी पडी है । सयोग से उन दोनो का नाम 'कृष्ण' था । समकालीन इतिहास-लेखको ने दोनो मे भेद करने के लिए एक को 'द्वैपायन कृष्ण' कहा है जिन्हे आज सारा देश महर्षि वेदव्यास के नाम से जानता है, और जिनके मस्तिष्क की अप्रतिहत प्रतिभा से आज तक हमारे धार्मिक जीवन और विश्वासों का प्रत्येक अग प्रभावित है । दूसरे देवकी-पुत्र वासुदेव कृष्ण थे, जिन्हें हम अब वास्तव मे केवल 'कृष्ण' के नाम से पुकारते हैं । कृष्ण की बाल-लीलाओ के मनोरम आख्यान, उनके गीताशास्त्र के महान् उपदेश तथा महाभारत के युद्ध मे उनके विविध आर्योचित कर्मों की कथाएँ आज घर-घर मे प्रचलित हैं । असख्य मनुष्यो का जीवन आज कृष्ण के आदर्श से प्रभावित होता है । वस्तुतः हमारे साहित्य का एक बडा भाग कृष्णचरित्र से अनुप्राणित हुआ है । कृष्ण के जीवन की घटनाएँ केवल अतीत इतिहास के जिज्ञासुओं के कुतूहल का विषय नही हैं, वरन् वे धार्मिक जीवन की गति-विधि को नियन्त्रित करने के लिए आज भी भारतीय आकाश मे चमकते हुए आकाश-दीप की तरह सुशोभित और जीवित हैं ।

जन्म और बाल-जीवन

अष्टमी, बुधवार, रोहिणी, इस प्रकार के तिथि-वार-नक्षत्र योग मे आधी रात के समय अपने मामा औग्रसेनि कस के बन्दीगृह मे कृष्ण का जन्म हुआ । इसी एक बात से उस काल के राजनीतिक चक्र का आभास मिल जाता है। जिस व्यक्ति के जन्म के भय से ही उसके माता-पिता की स्वतन्त्रता छिन गई हो, क्या आश्चर्य है यदि उसके जीवन का अधिकाश समय देश के राजनीतिक वातावरण को अत्याचार और उत्पीड़न से मुक्त करने मे व्यतीत हुआ हो । उस काल के जो भी उच्छृखल, लोकपीडक सत्ताधारी थे, उन सबसे ही एक-एक करके कृष्ण की टक्कर हुई । जिस महापुरुष ने योगसमाधि के आदर्श को लेकर ब्राह्मी स्थिति प्राप्त करने का उपदेश दिया हो, जिसका अपना जीवन अविचल ज्ञाननिष्ठा का सर्वोत्तम उदाहरण हो, उसके ही जीवन मे कसनिपात से लेकर यादवो के विनाश तक की कथा एक अत्यन्त करुण कहानी के रूप मे पिरोयी हुई है ।

कृष्ण का बालजीवन तो एक काव्य ही है । जन्म से लेकर, अथवा उससे पूर्व ही, उनके सम्बन्ध के अतिमानवी चरित्रो का क्रम आरम्भ हो गया था, और उनके वृन्दावन छोडकर मथुरा आने के समय तक ये बाललीलाएँ आकाश मे एकत्रित होनेवाली सुन्दर सुखद मेघमालाओ की भॉति नाना वर्ण और रूपो मे सञ्चित होती रहीं । विना कहे ही उन्हे हम जानते है । हमारे देश के बालवर्ग के लिए तो उन कथाओ की रसमय सामग्री एक अत्यन्त प्रिय वस्तु है । यमुना नदी और उसके समीप के पीलु के विटपो पर लहलहाती हुई लताओं के कुञ्जो मे कृष्ण के बालचरित्रों की प्रतिध्वनि आज भी जीवित काव्य-कथाए हैं । यही पर उन्होंने उस मल्लविद्या का अभ्यास किया, जिसके कारण आगे चलकर मुष्टिक और चाणूर-जैसे पहलवान पछाडे गये । यमुना के कछारों मे ही उस सगीत और नृत्य का जन्म हुआ, जो हमारी सस्कृति की एक प्रिय वस्तु है । यहीं

गोवंश की वृद्धि और प्रतिपालन के वे प्रयत्न किये गये, जिनका पुनरुद्धार हमारे कृषिप्रधान देश के लिए आज भी एक प्राप्तव्य आदर्श के रूप मे हमारे सामने है।

राजनीतिक चरित्र

इन रमणीय बालचरित्रों की सुखदायी भूमिका तैयार करने के बाद श्रीकृष्ण ने एक दूसरे ही प्रकार के जगत् मे प्रवेश किया। उनका वृन्दावन छोडकर मथुरा को आना उस जगत् का देहली द्वार है। यहाँ जीवन के कठोर सत्य उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उनके द्वारा सबसे पहला परिवर्तन शूरसेन जनपद की राजनीति में हुआ। उग्रसेन के पुत्र लोकपीडक कस को राज्यच्युत करके कृष्ण ने उग्रसेन को सिंहासन पर प्रतिष्ठित किया। इस समय वह और उनके बड़े भाई बलराम दोनों किशोरावस्था मे पदार्पण कर चुके थे। यमुना के तट पर प्रकृति के विश्वविद्यालय मे स्वच्छन्द वायु और आकाश के साथ मिलकर ग्वालबालों के बीच मे उन्होंने जीवन की एक बडी तैयारी कर ली थी, परन्तु मस्तिष्क की साधना का अवसर अभी तक उन्हे नहीं मिल सका था। इस कमी को पूरी करने के लिए वे सान्दीपिनि मुनि के गुरुकुल मे प्रविष्ट हुए। कुल-पुरोहित गर्गाचार्य और काशी के विद्याचार्य सान्दीपिनि इन दो नामों का भगवान् कृष्ण के साथ बडा मधुर सम्बन्ध है। अवश्य ही गीता के प्रवक्ता को अपने ज्ञान का प्रथम बीज आर्ष ज्ञान-परम्परा की रक्षा करनेवाले तपस्वी ब्राह्मणों से ही प्राप्त हुआ था।

जैसे ही सान्दीपिनि मुनि ने विद्या समाप्त करके कृष्ण को 'सत्य वद धर्म चर' वाला अपना अन्तिम उपदेश देकर विदा किया, वैसे ही परिस्थिति ने उनका सम्बन्ध हस्तिनापुर की राजनीति से मिला दिया। वसुदेव और उग्रसेन कृष्ण-बलदेव को लेकर कुरुक्षेत्र स्नान के लिए गये हुए थे। यहाँ कुन्ती भी पाण्डवों के साथ आई थीं। बस यहीं कृष्ण और पाण्डवों के बीच उस घनिष्ट सम्बन्ध का सूत्रपात हुआ, जिसके कारण आज तक हम योगेश्वर कृष्ण और धनुर्धर पार्थ का एक साथ स्मरण करते हैं। कस-वध के समय ही कृष्ण अपनी राजनीतिक प्रवृत्ति का परिचय दे चुके थे। हस्तिनापुर की राजनीति के साथ सम्पर्क होने के बाद उस प्रवृत्ति को और भी उत्तेजना मिली। उन्होंने यह अनुभव किया कि इस समय देश मे एक बड़ा प्रबल सगठन उन राजाओं का है, जो भारतीय राजनीति की प्राचीन लोकतन्त्रीय परम्पराओं के विरुद्ध निरकुश होकर राजशक्ति का प्रयोग करते हैं और जिनके कारण प्रजा में क्षोभ और कष्ट है। कृष्ण का बाल-जीवन लोक की गोद मे पला था। वे स्वय यादव जाति की अन्धक-वृष्णि शाखा के, जो एक गणराज्य (Requblic) था, सदस्य थे। इसी कारण उनकी सहानुभूति स्वभावतः लोक के साथ थी। जैसे-जैसे कारण उपस्थित होते गये, एक-एक अत्याचारी शासक से उनका सघर्ष हुआ। मगध की राजधानी गिरिव्रज मे बली जरासध का वध कराकर उन्होने उसके पुत्र जारासधि सहदेव का अभिषेक किया। महाभारतकार ने लिखा है कि उस समय पृथ्वी पर जरासध का आतक था, केवल अन्धक-वृष्णि और कुरुवशी क्षत्रियों ने उसकी अधीनता स्वीकार नहीं की थी। इन्हीं दोनों घरानो ने मिलकर उसका अन्त किया। चेदि जनपद मे शिशुपाल का एकछत्र शासन था। शिशुपाल दुर्योधन की राजनीति का समर्थक था। दुर्योधन की शक्ति को निर्बल बनाने के लिए जरासध और शिशुपाल का कटक निकालना आवश्यक था। तदनुसार शिशुपाल का वध करके माहिष्मती की गद्दी पर उसके पुत्र धृष्टकेतु को बैठाया। नग्नजित् के पुत्रों को हराकर गाधार देश को अनुकूल किया। बलिष्ठ पाड्यराज को मल्लयुद्ध मे अपने वक्ष स्थल की टक्कर से चूर कर डाला। सौभ नगर मे शाल्वराज को वशीभूत किया। सुदूर पूर्व के प्राग्ज्योतिष दुर्ग मे भौम नरक का निरकुश शासन था, जिसने एक सहस्र कन्याओं को अपने बन्दीगृह मे डाल रक्खा था। उसकी निर्मोचन नामक राजधानी मे सेना सहित मुर और नरक का वध करके कामरूप प्रदेश को स्वतत्र किया। बाणासुर, कलिंगराज और काशिराज इन सबको कृष्ण से लोहा लेना पडा और सब ही उनके बुद्धि-कौशल के आगे परास्त हुए।

कृष्ण की राजनीतिक बुद्धि अद्भुत थी। अर्जुन ने कहा था कि युद्ध न करने पर भी कृष्ण मन से जिसका अभिनन्दन करे वह सब शत्रुओं पर विजयी होगा। 'यदि मुझे वज्रधारी इन्द्र और कृष्ण मे से एक को लेना पडे, तो मै कृष्ण को लूँगा।' आर्य विष्णुगुप्त चाणक्य को भी अपनी बुद्धि पर ऐसा ही विश्वास था। उनका मत्र अमोघ था। जहाँ कोई युक्ति न हो, वहाँ कृष्ण की युक्ति काम आती थी। धृतराष्ट्र की धारणा थी कि जब तक एक रथ पर कृष्ण, अर्जुन और अधिज्य गाण्डीव धनुष—ये तीन तेज एक साथ हैं, तब तक ग्यारह अक्षौहिणी भारतीय सेना होने पर भी कौरवों की विजय असम्भव है।

महाभारत का युद्ध भारतीय इतिहास की एक बहुत दारुण घटना है। इस प्रलयकारी युद्ध में दुर्योधन की

अंधक वृष्णि गणराज्य के प्रधान के रूप मे श्रीकृष्ण

महाभारत से हमें ज्ञात होता है कि यादवों की अंधक और वृष्णि शाखाओं का एक सम्मिलित संघराज्य था। इसमें वृष्णियों के दल की ओर से श्रीकृष्ण प्रधान चुने गये थे। इस संघराज्य की प्रधान संघ-सभा या 'पार्लमेंट' में भिन्न-भिन्न दलों की ओर से बड़े प्रभावशाली भाषण और वाद-विवाद होते थे।

ओर से गान्धार, वाल्हीक, काम्बोज, केकय, सिन्धु, मद्र, त्रिगर्त (कॉगडा), सारस्वतगण, मालव, और अंग आदि देशो के क्षत्रिय प्रवृत्त हुए। युधिष्ठिर की ओर से विराट्, पंचाल, काशि, चेदि, सृञ्जय, वृष्णि आदि वंशो के क्षत्रिय युद्ध के लिए आये। ऐसे भयकर विनाश को रोकने के लिए कृष्ण से जो प्रयत्न हो सकता था, उन्होने किया। वे पाण्डवो की ओर से समस्त अधिकारों को लेकर संधि करने के लिए हस्तिनापुर गये।* वहाँ उन्होने धृतराष्ट्र की सभा मे जो तेजस्वी भाषण दिया, उसकी प्रतिध्वनि आज भी इतिहास मे गुंजायमान है—

कुरूणां पाण्डवानां च शमः स्यादिति भारत।
अप्रणाशेन वीराणामेतद्याचितुमागतः॥

अर्थात् कौरवो और पाण्डवों मे बिना वीरो का नाश हुए ही शान्ति हो जाय, मै यही प्रार्थना करने आया हूँ।

धृतराष्ट्र ने कहा—हे कृष्ण, मै सब समझता हूँ; पर तुम दुर्योधन को समझा सको तो प्रयत्न करो।

कृष्ण ने दुर्योधन से कहा—हे तात, शान्ति से ही तुम्हारा और जगत् का कल्याण होगा ('शमे शर्म भवेत्तात' — उद्योगपर्व १२४।१९)

दुर्योधन ने सब कुछ सुनकर कहा—

यावद्धि तीक्ष्णया सूच्या विध्येदग्रेण केशव।
तावदप्यपरित्याज्यं भूमेर्नः पाण्डवान् प्रति॥

—उद्योग० १२७।२५

अर्थात् 'हे कृष्ण, सुई की नोक के बराबर भी भूमि पाण्डवों के लिए मैं नही छोड सकता।' बस यही युद्ध का अपरिहार्य आह्वान था। दैव की इच्छा के सामने भीष्म और द्रोण-जैसे नररत्नों की भी रक्षा न हो सकी।

* 'भारतीय राजनीति की परिभाषा के अनुसार दूत तीन तरह के होते हैं, एक 'निसृष्टार्थ' जो देशकाल की आवश्यकता के अनुसार अपने उत्तरदायित्व पर राजकार्य को बनाने का सब अधिकार रखते हैं, दूसरे 'संदिष्टार्थ' जो संदेश या उक्त वचन को ले जाकर कहते हैं, और तीसरे 'शासनहर' जो लिखित पत्र या 'शासन' ले जाते हैं। पाण्डवों ने कृष्ण को प्रथम कोटि का अर्थात् निसृष्टार्थ दूत बना कर भेजा था, जिन्हे उनकी तरफ से अपने ही उत्तरदायित्व पर चाहे जिस प्रकार की संधि या निर्णय करने के सब अधिकार प्राप्त थे।
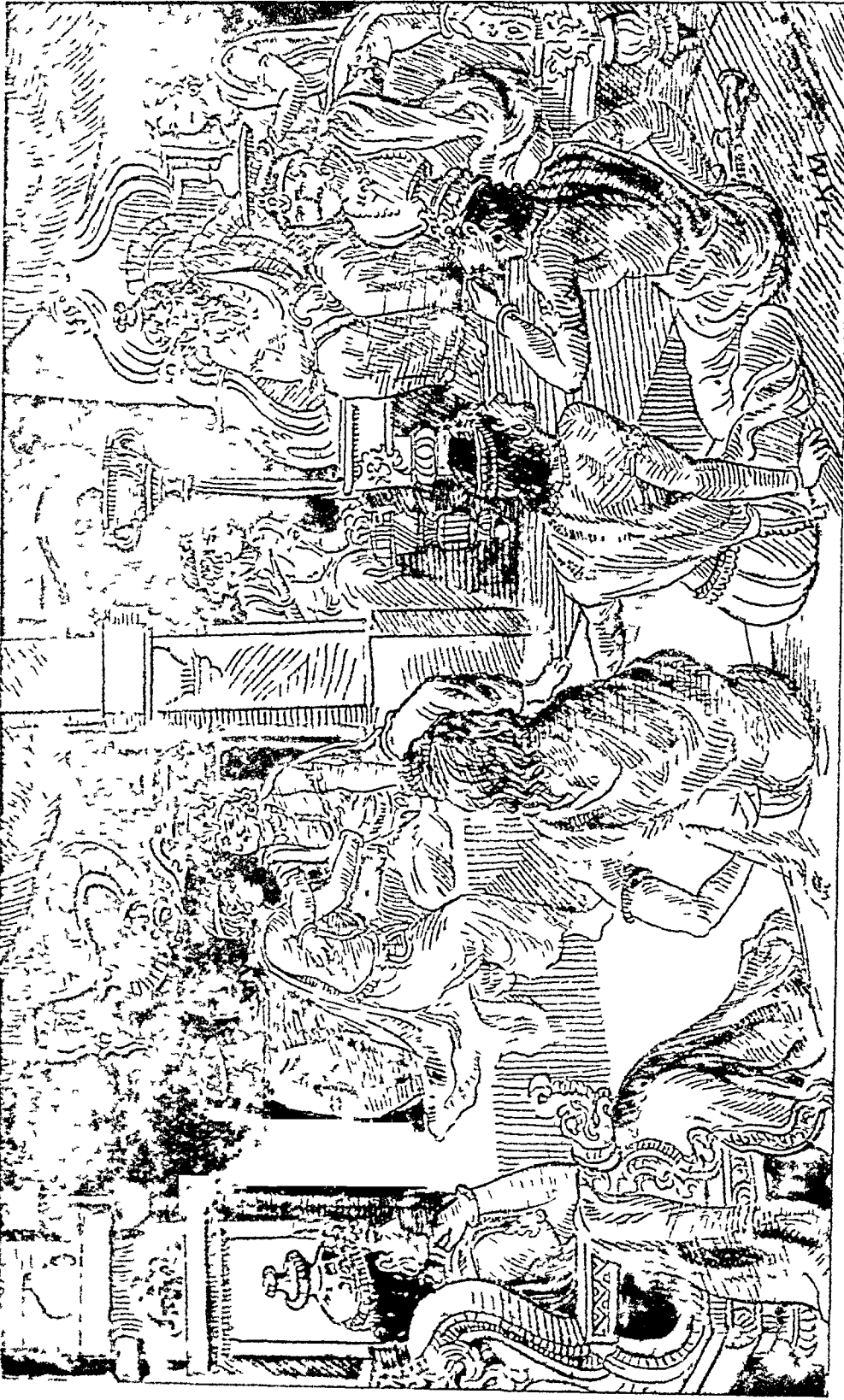
कौरवों की सभा में राजनीतिज्ञ श्रीकृष्ण

श्रीकृष्ण ने महाभारत के विनाशकारी युद्ध को रोकने के लिए भरसक प्रयत्न किया था। इसी उद्देश्य से वह पाण्डवों की ओर से दूत (दे० पृष्ठ २४७) के रूप में कौरवों के पास हस्तिनापुर गये थे, ताकि संधि हो जाय और व्यर्थ का रक्तपात न हो। किन्तु स्वेच्छाचारी निरंकुश दुर्योधन ने आज के 'डिक्टेटरों' की तरह उनके शांति के संदेश को ठुकरा दिया। इस चित्र में बाईं ओर सिंहासन पर श्रीकृष्ण हैं, दाहिनी ओर नीचा सिर किये अंधे राजा धृतराष्ट्र हैं और उनके पास बैठा हुआ दुर्योधन अपना क्रोध प्रदर्शित कर रहा है।

अन्धक-वृष्णि गणराज्य के प्रधान (President of the Andhaka-Vrishni Republic)

महाभारत मे हमे कृष्ण का परिचय एक विशिष्ट रूप मे मिलता है। यादव क्षत्रियो की दो प्रधान शाखाएँ अन्धक और वृष्णिसज्ञक थी। कृष्ण वृष्णि वश के थे। अक्रूर अन्धक थे। वृष्णि गणराज्य की ऐतिहासिक सत्ता का प्रमाण कुछ प्राचीन सिक्को से प्राप्त होता है, जिन पर 'वृष्णि राजन्यगणस्य तात्रारस्य' इस प्रकार का लेख है। इससे ज्ञात होता है कि विक्रम संवत् के प्रारम्भ तक वृष्णि लोगों का शासन एक गण या सघ (Republic) के रूप मे था। पाणिनि की अष्टाध्यायी और बौद्ध साहित्य में भी अन्धक-वृष्णियो का उल्लेख है। महाभारत सभापर्व (अ० ८१) से मालूम होता है कि अन्धक और वृष्णियो का एक सम्मिलित सघराज्य था। इसे श्रीयुत जायसवाल ने उनकी 'फेडरल पार्लामेण्ट' (Federal Parliament) के नाम से पुकारा है। इस सम्मिलित सघ मे वृष्णियो की ओर से कृष्ण और अन्धको की ओर से बभ्रु उग्रसेन सघ-प्रधान चुने गये थे। इसीलिए महाभारत की राजनीतिक परिभाषा मे कृष्ण को ऐश्वर्य का अर्धभोक्ता राजन्य (entitled to half the executive powers) कहा गया है। सघसभा मे राजनीति के चक्र भी चलते रहते थे। वृष्णियो की ओर से सघसभा मे आहुक और अन्धको की ओर से अक्रूर सदस्यो का नेतृत्व करते थे। कभी-कभी दोनों पक्षो से बहुत उग्र भाषण दिये जाते थे। पारस्परिक कलह से खिन्न होकर एक बार कृष्ण भीष्म से परामर्श करने हस्तिनापुर पधारे थे। तब भीष्म ने उनसे यही कहा कि 'हे कृष्ण, मधुर वचन-रूपी एक 'अनायस' शस्त्र है, तुम उसी के प्रयोग से जातियो को वश मे करो। समभूमि पर सब चल सकते हैं, पर विषम भूमि पर बोझा ढोना आसान नही। हे कृष्ण, तुम्हारे-जैसे प्रधान को पाकर यह गणराज्य नष्ट न हो जाना चाहिए।' हम जानते हैं कि कृष्ण के प्रयत्न करने पर भी अन्त मे तीक्ष्ण भाषण के कारण ही यादवो का आपस मे लड़कर विनाश हो गया।

सोलह कला का अवतार

कृष्ण को हमारे देश के जीवन-चरित्र-लेखकों ने 'सोलह कला का अवतार' कहा है। इनका तात्पर्य क्या है? यह स्पष्ट है कि भिन्न-भिन्न वस्तुओ को नापने के लिए भिन्न-भिन्न परिमाणो का प्रयोग किया जाता है। दूरी के नापने के लिए और नाप है, काल के लिए और है, तथा बोझे के लिए और है। इसी प्रकार मानवी पूर्णता को प्रकट करने के लिए कला की नाप है। सोलह कलाओं से चन्द्रमा का स्वरूप सम्पूर्ण होता है। मानवी आत्मा का पूर्णतम विकास भी सोलहो कलाओ के द्वारा प्रकट किया जाता है। कृष्ण मे सोलह कला की अभिव्यक्ति थी, अर्थात् मनुष्य का मस्तिष्क मानवी विकास का जो पूर्णतम आदर्श बना सकता है, वह हमे कृष्ण मे मिलता है। नृत्य, गीत, वादित्र, सौन्दर्य, वाग्मि, राजनीति, योग, अध्यात्म, ज्ञान, सबका एकत्र समवाय कृष्ण मे पाया जाता है। गोदोहन से लेकर राजसूय यज्ञ मे ब्राह्मणो के चरण धोने तक तथा सुदामा की मैत्री से लेकर युद्धभूमि मे गीता के उपदेश तक उनकी ऊँचाई का एक पैमाना है, जिस पर सूर्य की किरणो की रगबिरंगी पेटी (Spectrum) की तरह हमे आत्मिक विकास के हरएक स्वरूप का दर्शन होता है।

गीता

कृष्ण के उच्च स्वरूप की पराकाष्ठा हमारे लिए गीता मे है। 'सब उपनिषद् यदि गौएँ हैं, तो गीता उनका दूध है'—इस देश के विद्वान् किसी ग्रन्थ की प्रशसा मे इससे अधिक और क्या कह सकते थे? गीता विश्व का शास्त्र है, उसका प्रभाव मानवजाति के मस्तिष्क पर हमेशा तक रहेगा। ससार मे जन्म लेकर हममे से हरएक के सामने कर्म का गम्भीर प्रश्न बना ही रहता है। जीवन कर्ममय है, ससार कर्मभूमि है। गीता उसी कर्मयोग का प्रतिपाद्य शास्त्र है। कर्म के वैज्ञानिक विवेचन के लिए और जीवन के साथ उसका अध्यात्म सम्बन्ध क्या है और किस प्रकार उस सम्बन्ध का निपटारा करने से मनुष्य अपने अन्तिम ध्येय और शान्ति को प्राप्त कर सकता है, इन प्रश्नो की सर्वोत्तम मीमांसा काव्य के ढग से गीताकार ने की है। अतएव यह ग्रन्थ न केवल भारतवर्ष बल्कि विश्व-साहित्य की चीज है।

कृष्ण भारतवर्ष के लिए एक अमूल्य निधि हैं। उनका हरएक स्वरूप यहाँ के जीवन को अनुप्राणित करता है। जिस युग मे इन्द्रप्रस्थ और द्वारका के बीच उनका किंकिणीक रथ बलाहक, मेघपुष्प, शैव्य और सुग्रीव-नामक अश्वो के साथ झनझनाता रहता था, न केवल उस समय कृष्ण भारतवर्ष के शिरोमणि महापुरुष थे, बल्कि आज तक वे हमारी राष्ट्रीय संस्कृति के सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि बने हुए हैं। जिस प्रकार पूर्व और पश्चिमी समुद्रो के बीच के प्रदेश को व्याप्त करके गिरिराज हिमालय पृथ्वी के मानदण्ड की तरह स्थित है, उसी प्रकार ब्राह्मधर्म और क्षात्रधर्म इन दो मर्यादाओं के बीच की उच्चता को व्याप्त करके श्रीकृष्ण-चरित्र पूर्ण मानवी विकास के मानदण्ड की तरह स्थित है।

दक्षिणी ध्रुव के अमर विजेता

सर डगलस मावसन
(जन्म १८८२)

सर ह्यूबर्ट विल्किन्स
(जन्म १८८८)

सर अर्नेस्ट शैकल्टन
(जन्म १८७४, मृत्यु १९२२)

कैप्टेन रावर्ट स्कॉट
(जन्म १८६८, मृत्यु १९१२)

रोल्ड एमंडसन
(जन्म १८७२, मृत्यु १९२८)

कैप्टेन रिचर्ड बर्ड
(जन्म १८८८)

ध्रुव से लौटते समय पड़ाव से ११ मील दूर स्कॉट और उसके साथियों की मृत्यु

जब स्कॉट और उसके साथी ध्रुव पर पहुँचे तो वहाँ उन्होंने एमंडसन का तंबू और झंडा गड़ा पाया।
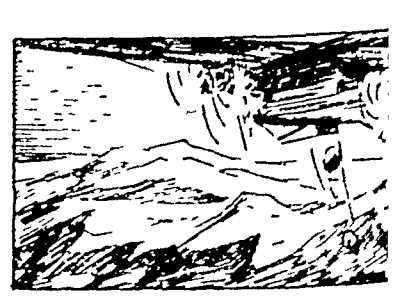
दक्षिणी ध्रुव प्रदेश पर मँडराता हुआ कैप्टेन बर्ड का हवाई जहाज

दक्षिणी ध्रुव की विजय

पृथ्वी के अधोभाग की खोज में बलि होनेवाले वीरों की अमर कहानी

पृथ्वी के दक्षिणी छोर पर फैला हुआ यह पुंजीभूत क्षीर-महासागर! इस बर्फीले महाद्वीप के मौन सौंदर्य पर, इसकी बर्फीली बलिवेदी पर, कितने अदम्य साहसी वीरो ने अपनी जीवनाहुतियाँ न चढा दीं! एक के बाद एक वीरों की टोलियाँ मीलों लम्बे समुद्र की छाती को चीरते हुए इस कुतूहलपूर्ण, विचित्र और भयानक हिम-प्रदेश की असीम सुनसान परिधि को नापने के लिए बढी और इसकी अथाह बुभुक्षित उदर-दरी मे समाती गईं, फिर भी इसका सपूर्ण रहस्य मानव अभी तक नहीं जान पाया। किन्तु इससे क्या! इन साहसी अन्वेषकों ने अपनी कुर्बानियों की ईंटो से चुन-चुनकर ज्ञान की एक ऊँची दीवार तो खडी कर दी, जिस पर चढकर इस रहस्यपूर्ण क्षेत्र का विस्तृत रूप से अवलोकन करने और अत मे उस पर अपना पूर्ण साम्राज्य स्थापित करने का मार्ग भावी पीढियों के लिए खुल गया।

एक के बाद एक अन्वेषक पृथ्वी के इस तल-प्रदेश की ओर जान की बाजी लगा-लगाकर बढे और उन्होंने वहाँ क्या देखा? केवल बर्फ ही बर्फ, और सुनसान मे अपनी भयकर फुफकार छोडती तथा १०० मील प्रति घटे की गति से भागती हुई बर्फीली आँधी!

इस सुनसान महादेश की छाती पर हहर-हहरकर भागने-वाली उस प्रचण्ड वायु का रूप कितना अदम्य था! इन यात्रियो को कभी-कभी तो साँस लेना भी मुश्किल हो जाता था और उनका दम घुटने लगता था। मुँह पर मानो कोई पञ्जों से खरोंच-सी लेने लगता था। आँखें चौंधिया जाती थीं। मुँह और ओंठ सतत् तीक्ष्ण प्रहार से सूज-से जाते थे। फोडे-फुन्सियाँ निकल आती थीं। मुँह में खून आने लगता था, और कभी-कभी तो उन्हे अपना सारा बोझ इस अंधड़ पर फेककर झुके-झुके ही घटो खडा रह जाना पडता था। यदि जूते कीलदार न हुए तो बस पीछे ही घसिटते चले गये, और मार्ग छूट गया! जब वे अपने यन्त्रो के धातु-निर्मित भाग को स्पर्श करते तो उन्हें बिजली की झनझनाहट-सी अनुभव होने लगती थी, और वे देखने लगते थे अपनी अँगुलियों के नाखूनों के सिरों से उठती हुई चिनगारियों की पतली-पतली-सी रेखाएँ! हवा में विद्युत्-कणो के इस चमत्कार को देखकर उन्हें आश्चर्य होने लगता था! किंतु ससार के इस निर्जनतम महादेश मे उन्होंने यदि प्रकृति का विकराल प्रलयकर रूप देखा तो साथ ही साथ देखा उसका वह मौन सौंदर्य भी, जो संसार के अन्य किसी भी भाग मे मिलना दुर्लभ है। दिन के दस बजे हैं और वे देखते हैं कि क्षितिज पर एक जगमगाता हुआ गोला दृष्टिगोचर हो रहा है। धीरे-धीरे कई प्रकाश-स्तम्भ सीधे ऊपर की ओर उठने लगते हैं और तत्पश्चात् लपटों की तरह लपलपाते हुए उस विशालकाय अग्नि-मण्डल के दोनो ओर इन्द्र-धनुष के चटकीले रङ्गो से भरे दो झिल-मिलाते हुए प्रकाश-मण्डल एकाएक आकाश में जग-मगाने लगते हैं। कैसा स्वर्गीय दृश्य रहा होगा वह!

यो तो इस प्रदेश में अठारहवीं शताब्दी में जेम्स कुक से लेकर अभी हाल मे कैप्टन बर्ड तक अनेक वीरों ने यात्राएँ कीं परन्तु सबसे अधिक महत्वपूर्ण यात्रा सन् १८४१ में रॉस-नामक एक अंग्रेज के अधिनायकत्व में हुई। रॉस ने ४०० मील तक पूर्व से पश्चिम तक फैले हुए ससार के इस सबसे बडे बर्फीले भाग पर पहुँचकर देखा कि हिम की उस ठोस चादर का समुद्री किनारा पठार की तरह समुद्र से सैकडों फीट ऊँचा उठा हुआ है। पता नहीं यह ठोस चादर समुद्र पर तैरती रहती है या भूमि पर स्थित है। साथ ही उसने वहाँ लावा उगलते हुए ज्वालामुखी पर्वत भी देखे। वह

सुदूर दक्षिण तक जाकर लौट आया और उसका रेकार्ड कोई भी न तोड सका। इसके बाद नारवे, बैलजियम और ब्रिटेन के अन्य कई यात्री ध्रुव की खोज मे गए।

आधुनिक शताब्दी के प्रभात-काल में, सन् १६०१ में, केप्टन स्कॉट के नायकत्व मे एक ब्रिटिश जहाज दक्षिणी ध्रुव की खोज मे चल पड़ा। उसी विशाल बर्फ के पठार पर जिस पर रॉस उतरा था, ये नये यात्री भी उतरे तथा पूर्व की ओर ७०० मील तक बढे चले गए। फिर भी ध्रुव-बिन्दु तक ये नही पहुँच पाये। स्कॉट ने बेलून पर ७५० फीट ऊँचे चढकर चारों ओर देखा तो सिवा बर्फ के और कुछ नजर नही आया।

सन् १६१२ मे मावसन (Mawson) नामक यात्री दो वीर साथियो को लेकर चल पडा। उस रीढदार बर्फीली भूमि की छोटी-मोटी टेकडियों, दरारों, खड्डों आदि को पार करते हुए ये लोग जा ही रहे थे कि एकाएक मावसन का एक साथी गायब हो गया। मालूम हुआ, वह कुत्तों और स्लेज की गाड़ी सहित सैकड़ों फीट नीचे एक बर्फीली दरार के मुँह में समा गया है। उसके चीखने तक की भी आवाज नहीं आती थी। केवल १५० फीट नीचे एक कुत्ता, जिसकी पीठ की हड्डी टूट गई थी, अपने प्राणों की अन्तिम शक्ति लगाकर मारे दर्द के मिमिया रहा था। लेकिन उतनी लम्बी रस्सी भी तो नहीं थी कि उस विशाल दरार के तले को छुआ जा सकता। स्लेज के साथ उस पर लदी हुई खाद्य-सामग्री आदि सभी वस्तुएँ भी उसी बर्फ की उदर-दरी मे समा गई। मावसन के पास अब केवल मुट्ठी भर किशमिश और एक कुत्ते की लाश बची थी। एक स्लेज जिस पर कि तम्बू का बोझा लदा हुआ था उसके पास थी। उसी बोझे को खींचकर मीलों का रास्ता उसने अपने बचे हुए साथी के साथ पार किया। पर उसका यह साथी भी चल बसा। अब अकेले ही इस वजन को घसीटकर चलना था। नीचे छिपी हुई हजारों फीट गहरी दरारे थीं! फिर भी वह बढता ही गया। एक बार तो वह दरार मे गिर ही पडा, ६ फीट नीचे तक लटक गया और चक्कर खाने लगा। बडी मुश्किल से वह बाहर निकल पाया। थकावट और भूख के मारे वह उस दरार के किनारे बेहोश हो गया। जब होश आया तो फिर आगे बढा। लेकिन हवा इतनी तेज थी कि वह आगे बढने के बदले पीछे ही अपने रास्ते से मीलो दूर घसिटता चला गया।

अन्त मे अपने यन्त्र तोड-ताडकर उनकी कीले जूतों मे ठोंककर और पैर जमा-जमाकर वह आगे बढा। इस तरह बडी कठिनता से समुद्र-किनारे तक पहुँचा।

इसके बाद फिर वही अमर यात्री केप्टन स्कॉट अपने कुछ वीर साथियो को लेकर ध्रुव पर धावा बोलने के लिए चल पड़ा। यह वही स्कॉट है, जिसने विशाल बर्फ के पठार के किनारे-किनारे जहाज चलाकर एक बडा भू-भाग खोज निकाला था और जिसका नाम 'किंग एडवर्ड दि सेवथ लैन्ड' रखा था। शीत बीत जाने पर वह अपने वीर साथियों के साथ ३७० मील तक बढता चला गया, लेकिन मुख्य भूभाग

ध्रुव-प्रदेश मे कैप्टेन स्कॉट का प्रसिद्ध जहाज "टेरा नोवा"

सामने की ओर तैरता हुआ एक बर्फ का पहाड़ (Iceberg) है, जिससे यह जहाज बाल-बाल बचा था।

तक नहीं पहुँच पाया। कुत्तो के मर जाने से, खाद्य सामग्री के ख़त्म हो जाने से, एक साथी शेकल्टन को खून की बीमारी हो जाने से, उसे बरबस निराशा लेकर पीछे लौटना पडा। तो भी उसकी साधना असफल नही हुई, क्योंकि उसने दक्षिणी ध्रुव के मार्ग का पता लगा लिया था। १६०८ मे वीर शेकल्टन बीमारी से आराम होने पर
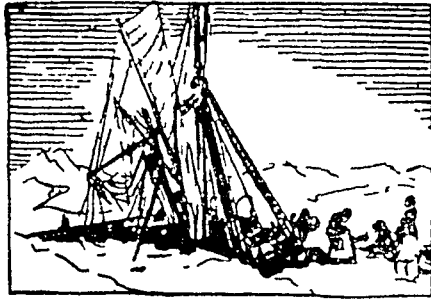
शेकल्टन का जीर्ण-शीर्ण जहाज़ जो बर्फ की आँधी से टुकडे-टुकडे हो गया था।

फिर चल पडा। जिस ठोस बर्फीली जमीन पर उसने अपना असबाब रखा था, वह बर्फ के नीचे बहते हुए समुद्र के पानी की बाढ के दबाव के कारण फट गई और फलतः असबाब तो स्वाहा हुआ ही, साथ-साथ ८ टट्टू भी मर गये। यही नही, १०० मील प्रति घण्टे की गति से दौडनेवाली आँधी ने उसके जहाज़ को भी तोड-ताडकर दुरुस्त कर दिया। तो भी वह बढते ही गया और जब वह ध्रुव से ६७ मील ही की दूरी पर था, तब भयानक आँधी दौडती हुई दीवार के समान उसकी छाती से आकर टकराई और उसे हारकर आख़िरकार वापिस लौटना पडा। अब फिर कैप्टेन स्कॉट की बारी थी। इस बार वह अपनी यात्रा को, जिसे कि असफल होने पर भी हिम्मत न हारकर उसने कई बार प्रारम्भ की थी, और जिसे कि शेकल्टन ने क़रीब-क़रीब सफलता के नज़दीक पहुँचा दिया था, पूरी करने का प्रण कर चुका था।

कैप्टेन ओट्स का आत्म-बलिदान
शिथिल हो जाने पर साथियों की प्रगति में बाधा न डालने के उद्देश्य से ओट्स ने बर्फीली आँधी की ओर बढकर अपनी जीवन-लीला समाप्त कर दी।

जनवरी १६११ मे ओट्स, एडगर इवान्स आदि चार वीर साहसियो को साथ लेकर स्कॉट अपनी अमर यात्रा को पूरी करने की साध मे निकल पडा। भयङ्कर आँधियो को चीरते हुए, ग्लेशियर्स आदि से बचते हुए ये पॉचो वीर १८ जनवरी, १६१२, को आखिरकार अपने स्वप्न के ध्रुव पर पहुँच गए। लेकिन स्कॉट का हृदय ही जानता होगा कि उसे कितनी निराशा हुई होगी, जब उसने देखा कि केवल एक माह पहले ही किसी दूसरे ने ध्रुव पर विजय प्राप्त कर ली थी। स्कॉट को दुनिया के इस सबसे वीरान स्थान मे एक तम्बू मिला, जिसके पास एमण्डसन की विजयिनी उँगलियो से लिखा हुआ यह सन्देश था "६० डिग्री पर स्वागत!" स्कॉट की यह सफल यात्रा, यह अमर यात्रा, इतनी सफलता मे भी असफल ही रही। क्या आख़िर दक्षिणी ध्रुव का विजय का टीका उसके उस देश के मस्तक को गौरवान्वित नहीं कर पाया, जिसने इस युग-युग के स्वप्न को साकार बनाने के लिए अपने प्राणो का कई बार होम किया था? नारवे का साहसी यात्री एमण्डसन अपने ४२ कुत्तों को ही लेकर थोडे से समय मे ही विजय का झण्डा गाड़ गया था। इतने अल्प समय मे इतनी महान् विजय! स्कॉट और इसके वीर साथी निराशा का तूफान प्राणों मे छिपाए हुए लौट पडे। भयङ्कर आँधी चल रही थी।

ध्रुव-प्रदेश की प्रचण्ड बर्फ़ीली आँधी का दृश्य
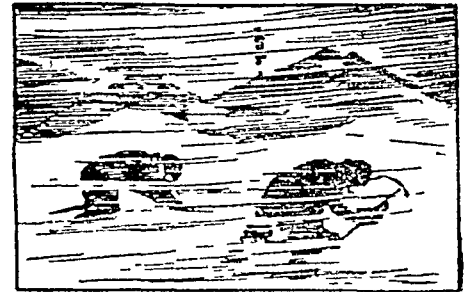
टट्टू पहले ही मर चुके थे, अतएव सब सामान-असबाब उन्हे ही उठाना पड रहा था। एडगर इवान्स परिश्रम के कारण थककर चकनाचूर हो रहा था। भयंकर शीत, कँपा देनेवाले तूफान और बरसती हुई बर्फ! इवान्स चल बसा। अब ओट्स के भी पैर लडखडाने लगे। वीर ओट्स, यह समझकर कि इन लोगो को कष्ट देना उचित नही, क्योंकि पग-पग पर मौत का ख़तरा है, बरसती हुई बर्फ के हहराते हुए तूफान मे, जहाँ कि हाथ को हाथ नही सूझता था, एक ओर चल पडा। अपने फौलादी कलेजे को सीने में थामे हुए ओट्स अपने साथियो द्वारा रोके जाने पर भी मौत का आलिङ्गन करने के लिए चल दिया

और लड़खड़ाते हुए उस तीक्ष्ण बर्फीले तूफ़ान के श्वेत अंधकार में विलीन हो गया। अब शेष रहे स्कॉट, और दो और साथी। बर्फ के तीक्ष्ण टुकड़े आ-आ कर उनके मुखों पर चुभ-चुभ जाते थे। उनके कपड़े बर्फ से तर-बतर हो रहे थे। अन्त में उन्हें क्रूर प्रकृति के भीषण अत्याचार से बचने के लिए वहीं रुककर तम्बू की शरण लेनी पड़ी। उनका मुख्य पड़ाव अब केवल ग्यारह मील दूरी पर ही रह गया था। वहाँ उनको भर-पेट भोजन मिल सकता था। लेकिन केवल दो दिन का भोजन लिए हुए वे वीर पथिक भयंकर तूफ़ान से हिलते हुए इस छोटे-से तम्बू में ही सिकुड़ कर पड़े थे। तूफ़ान एक सप्ताह से भी अधिक समय तक चलता रहा और वे उसी तम्बू में वीरतापूर्वक अनशन करते रहे।

स्कॉट के साथी ४ दिन तक जिन्दा रहे और आख़िरी दम तक उन्होंने सद्भावना के पत्र लिखे तथा अपनी-अपनी डायरियाँ भी वे लिखते रहे। स्कॉट ने, जिसकी मृत्यु सब के बाद हुई, अपनी डायरी में मृत्यु का कारण तथा अपने ध्रुव-सम्बन्धी अनुभवों की बातें लिखीं। जब मृत्यु की घड़ी सन्निकट आ गई, तब भी स्कॉट ने मरते-मरते लिखा—'अपनों की सुधि लेना।' कितना करुणा-जनक वाक्य था यह! जब १२ नवम्बर, १९१२, को इन अमर वीरों की खोज में एक पार्टी पहुँची, तब उक्त पार्टी के लोगों को वह मृत्यु-शिविर दिखलाई पड़ा। उन लोगों ने देखा कि वे तीनों मृत्यु की अमर शय्या में लिपटे हुए सो रहे हैं। उनकी डायरियाँ उनके आस-पास बिखरी पड़ी हैं। मूँगों के टुकड़े, कोयले, क़िस्म-क़िस्म की धातुओं के नमूने तथा अन्य कई वस्तुएँ, जिन्हें उन लोगों ने प्राणों से भी अधिक क़ीमती समझकर जुटायी थीं—उस तम्बू में मिलीं जिसमें खाने के लिए एक दाना भी न बचा था। स्कॉट का हाथ विल्सन के शरीर पर रखा हुआ था। ऐसी गौरवशालिनी वीर मृत्यु की महत्ता विनष्ट न होने देने के लिए, लोगों ने उन वीरों के मृत शरीरों को समुद्र से सैकड़ों मील दूर शाश्वत बर्फ़ीले मैदान पर छाते की तरह तने हुए नीरव निर्जन तम्बू में ही रहने दिया। आज दिन भी उनकी वीर आत्माएँ उनके मृत शरीरों के साथ-साथ उस बर्फ़ीले मैदान की छाती पर मानो कदम बढ़ाये चली जा रही हैं!

इसके बाद के शेकल्टन तथा अन्य लोगों ने भी यात्राएँ कीं। शेकल्टन १९२२ में इसी प्रदेश में स्वर्गलोक को सिधारा।

पृथ्वी के दोनों छोर अर्थात् उत्तरी तथा दक्षिणी ध्रुव की यात्राओं से मनुष्य को यह ज्ञात हुआ कि उत्तर का "आर्कटिक" प्रदेश बड़े-बड़े ज़मीन के टुकड़ों से घिरा हुआ एक समुद्र है तो दक्षिण का एण्टार्कटिक प्रदेश गहरे समुद्र से घिरा हुआ एक महाद्वीप है। दक्षिण का यह ध्रुव-प्रदेश पृथ्वी का सबसे ऊँचा पठार है। इसका भीतरी भाग समुद्र-सतह से ६००० फीट ऊँचा तथा इस ऊँचाई पर भी हजारों फीट ऊँची हिमाच्छादित पर्वत-श्रेणियों से आच्छादित है। इस हिम प्रदेश में साल भर शुष्क रेत-कणों के समान चमकीले बर्फ़-कणों ही की झड़ी लगी रहती है। इस प्रदेश की समस्त ऊँची समतल भूमि लाखों वर्षों से बरसती हुई बर्फ की हजारों फीट मोटी सतह से आच्छादित है। यहाँ पर हजारों फीट नीचे तक पानी में डूबे हुए भिन्न-भिन्न आकार के बर्फ के तैरते हुए विशाल पहाड़ों (Icebergs) की भी भरमार है। ६०-६० मील लम्बे पानी पर तैरनेवाले बर्फ के पहाड़! प्रकृति का कितना भव्य और साथ ही भयानक दृश्य होगा वह! यहाँ न तो कोई मनुष्य ही रहता है और न वनस्पति ही पैदा होती है। हाँ, पैंग्वीन (Penguin) नामक एक विचित्र प्राणी यहाँ का एक-मात्र निवासी है। यह दूरी से कुछ-कुछ मनुष्य-जैसा दिखाई पड़ता है।

आज इस अखण्ड भू-भाग को हथियाने के लिए सात राष्ट्र अपने-अपने अधिकारों की माँग पेश कर रहे हैं। क्यों? कारण यही है कि इसके बर्फ़ीले गर्भ-स्तल में कोयला आदि कई प्रकार के खनिज पदार्थ प्रचुर मात्रा में विद्यमान हैं। आज ब्रिटेन, रूस, जर्मनी, स्वीडन, फ्रान्स, नॉरवे और यूनाइटेड स्टेटस् इसे हथियाने के लिए प्रयत्नशील हैं तथा अपने-अपने झण्डे गाड़ने के लिए उत्सुक हैं। यूनाइटेड स्टेटस् का वीर वायुयान-यात्री रिचर्ड एवेलीन बर्ड (Richard Evelyn Byrd) दक्षिणी ध्रुव पर उड़ा था और वहाँ झण्डा गाड़कर लौटा है। उसने अपनी पहली यात्रा में ४००००० वर्ग-मील अनदेखी जमीन का नक़्शा खींचा। १९३३ में उसने फिर वायुयान द्वारा यात्रा की। यूनाइटेड स्टेटस् बर्ड को ७०००० पौंड की आर्थिक सहायता दे रही है और वह इसी वर्ष में फिर दक्षिणी ध्रुव की यात्रा के लिए जहाज लेकर रवाना हो रहा है। अभी तो योरप आपसी लड़ाई-झगड़े से ही फ़ुरसत नहीं पा रहा है। सम्भव है, वह दिन भी आ जाय जब कि योरप के राष्ट्रों में इस महान् आश्चर्य-जनक बर्फ़ीले महाद्वीप के टुकड़ों के लिए भी रण-भेरी झनझना उठे!

ख की कहानी

सूर्य के पृष्ठ के दो चित्र

(ऊपर) साधारण प्रकाश द्वारा लिया गया सूर्य के पृष्ठ का एक फ़ोटो। इसमें दिखाई दे रहे काले धब्बे सूर्यकलंक हैं, जिनमें से कई हमारी पृथ्वी से कई गुना बड़े हैं। (बाईं ओर) सूर्य के पृष्ठ का हाइड्रोजन के प्रकाश से लिया गया एक फ़ोटो। इसमें सूर्य के ऊपरी वायुमंडल में छाये हुए हाइड्रोजन गैस के बादलों का अद्भुत दृश्य है। बीच-बीच में काले बिंदु और उनके आसपास भँवर की तरह दिखाई दे रहे बवण्डर ही सूर्यकलंक हैं। [फ़ोटो—'माउण्ट विल्सन वेधशाला' की कृपा से प्राप्त।]

सूर्य-कलंक

सूर्य की बनावट का अध्ययन करते समय जब हम दूरदर्शक द्वारा उसके पृष्ठ पर दृष्टि डालते हैं, तो सर्वप्रथम एक विचित्र प्रकार के काले धब्बों पर हमारा ध्यान आकर्षित होता है। ये धब्बे या कलंक क्या हैं, इस प्रकरण में इसी की चर्चा की गई है।

चंद्रमा पर कलंक—काले धब्बे—हैं, यह सभी जानते हैं। उनको सभी ने कई बार देखा होगा। परंतु क्या सूर्य पर भी कलंक हैं? हाँ, सूर्य पर भी कलंक दिखलाई पड़ते हैं, परंतु वे कभी छोटे, कभी बड़े, कभी कम, कभी बहुत-से होते हैं। सूर्य को कालिख-लगे शीशे द्वारा देखने पर ये धब्बे कभी-कभी कोरी आँख से—बिना दूरदर्शक या किसी अन्य यंत्र की सहायता लिये भी—देखे जा सकते हैं। परंतु इतने बड़े धब्बे, जो इस प्रकार देखे जा सकें, कभी-ही-कभी बनते हैं। साधारणतः ये धब्बे छोटे होते हैं और उनको देखने के लिए दूरदर्शक यंत्र की आवश्यकता पड़ती है।

चीन देश के पुराने इतिहास-ग्रंथों में इन सूर्य-कलंकों की चर्चा मिलती है। सन् १८८ ई० से लेकर सन् १६३८ ई० तक ९५ कलंकों की चर्चा है। ये सब कोरी आँख से ही देखे गये थे। साधारणतः इनको धब्बा बतलाकर ही छोड़ दिया गया है, परंतु पाँच बार इनकी शक्ल चिड़ियों की-सी या उड़ती हुई चिड़ियों की-सी बतलाई गई है, दो बार इनकी शक्ल अंडे के समान और चार बार सेब के समान बतलाई गई है। अन्य देशों के इतिहास-ग्रंथों में इनकी चर्चा नहीं मिली है, जिससे जान पड़ता है कि अन्य देश के ज्योतिषियों ने सूर्य की गति पर ही ध्यान दिया, उसकी आकृति पर नहीं।

दो बड़े सूर्य-कलंक

यह चार इंच के रिफलेक्टर टेलिस्कोप द्वारा इंगलैंड में लिया गया एक फ़ोटो है।

दूरदर्शक के आविष्कार के बाद स्वभावतः लोग सूर्य को भी इस यंत्र द्वारा देखने लगे। दूरदर्शक के आविष्कारक गैलीलियो ने स्वयं सूर्य-कलंकों को देखा। फैब्रीसियस और शाइनर को भी इन कलंकों का स्वतंत्र रूप से पता पाने का श्रेय है। अंधविश्वास की एक रोचक परंतु सच्ची कहानी इस संबंध में प्रसिद्ध है। शाइनर पादरी था। जब उसने सूर्य कलंकों को देखा तो उसने बड़े पादरी को भी यह समाचार सुनाया, परंतु बड़े पादरी ने उसे फटकार दिया। कहा कि 'मैंने प्राचीन पुस्तकों को आदि से अंत तक कई बार पढ़ डाला है और यह निश्चय है कि उनमें कहीं भी सूर्य-कलंकों की चर्चा नहीं की गई है, निश्चय ही जिनको तुम सूर्य-कलंक बतलाते हो, वह तुम्हारे ऐनक की त्रुटि होगी या तुम्हारी आँखों का दोष होगा।'

विस्तार आदि

ऊपर बतलाया जा चुका है कि चंद्र कलंक के समान सूर्य-कलंक स्थायी नहीं होते। वे बदलते रहते हैं। नये उत्पन्न हुआ करते हैं और पुराने मिटते रहते हैं। बड़े कलंक वस्तुतः इतने बड़े होते हैं कि उन पर बीस-पचीस पृथ्वियाँ बिछा दी जा सकती हैं। यदि सूर्य-कलंक गड्ढे हैं, जैसा संभवतः वे कभी-कभी होते हैं, तो एक एक कलंक में सैकड़ों पृथ्वियाँ समा जा सकेंगी।

यदि सूर्य को प्रति दिन देखा जाय, तो इन कलंकों के स्थिति-

सूर्य के पृष्ठ के दो चित्र

(ऊपर) साधारण प्रकाश द्वारा लिया गया सूर्य के पृष्ठ का एक फ़ोटो। इसमें दिखाई दे रहे काले धब्बे सूर्यकलंक हैं, जिनमें से कई हमारी पृथ्वी से कई गुना बड़े हैं। (बाईं ओर) सूर्य के पृष्ठ का हाइड्रोजन के प्रकाश से लिया गया एक फ़ोटो। इसमें सूर्य के ऊपरी वायुमंडल में छाये हुए हाइड्रोजन गैस के बादलों का अद्भुत दृश्य है। बीच-बीच में काले बिंदु और उनके आसपास भँवर की तरह दिखाई दे रहे चक्कर ही सूर्यकलंक हैं। [फ़ोटो—'माउण्ट विल्सन वेधशाला' की कृपा से प्राप्त।]

सूर्य-कलंक

सूर्य की बनावट का अध्ययन करते समय जब हम दूरदर्शक द्वारा उसके पृष्ठ पर दृष्टि डालते हैं, तो सर्वप्रथम एक विचित्र प्रकार के काले धब्बों पर हमारा ध्यान आकर्षित होता है। ये धब्बे या कलंक क्या हैं, इस प्रकरण में इसी की चर्चा की गई है।

चंद्रमा पर कलक—काले धब्बे—हैं, यह सभी जानते हैं। उनको सभी ने कई बार देखा होगा। परतु क्या सूर्य पर भी कलक हैं? हॉ, सूर्य पर भी कलक दिखलाई पड़ते हैं, परतु वे कभी छोटे, कभी बडे, कभी कम, कभी बहुत-से होते हैं। सूर्य को कालिख-लगे शीशे द्वारा देखने पर ये धब्बे कभी-कभी कोरी ऑख से—बिना दूरदर्शक या किसी अन्य यंत्र की सहायता लिये भी—देखे जा सकते हैं। परतु इतने बडे धब्बे, जो इस प्रकार देखे जा सकें, कभी-ही-कभी बनते हैं। साधारणतः ये धब्बे छोटे होते हैं और उनको देखने के लिए दूरदर्शक यत्र की आवश्यकता पड़ती है।

चीन देश के पुराने इतिहास-ग्रथों में इन सूर्य-कलकों की चर्चा मिलती है। सन् १८८ ई० से लेकर सन् १६३८ ई० तक ९५ कलकों की चर्चा है। ये सब कोरी ऑख से ही देखे गये थे। साधारणतः इनको धब्बा बतलाकर ही छोड़ दिया गया है, परतु पॉच बार इनकी शक्ल चिड़ियों की-सी या उड़ती हुई चिड़ियों की-सी बतलाई गई है, दो बार इनकी शक्ल अडे के समान और चार बार सेब के समान बतलाई गई है। अन्य देशों के इतिहास-ग्रथों मे इनकी चर्चा नहीं मिली है, जिससे जान पड़ता है कि अन्य देश के ज्योतिषियों ने सूर्य की गति पर ही ध्यान दिया, उसकी आकृति पर नहीं।

दो बडे सूर्य-कलंक

यह बारह इंच के रिफ़्लेक्टर टेलिस्कोप द्वारा इंगलैंड में लिया गया एक फ़ोटो है।

दूरदर्शक के आविष्कार के बाद स्वभावतः लोग सूर्य को भी इस यत्र द्वारा देखने लगे। दूरदर्शक के आविष्कारक गैलीलियो ने स्वय सूर्य-कलकों को देखा। फैब्रीसियस और शाइनर को भी इन कलंकों का स्वतंत्र रूप से पता पाने का श्रेय है। अंधविश्वास की एक रोचक परतु सच्ची कहानी इस सबध में प्रसिद्ध है। शाइनर पादरी था। जब उसने सूर्य-कलकों को देखा तो उसने बड़े पादरी को भी यह समाचार सुनाया, परतु बडे पादरी ने उसे फटकार दिया। कहा कि 'मैंने प्राचीन पुस्तकों को आदि से अत तक कई बार पढ डाला है और यह निश्चय है कि उनमें कहीं भी सूर्य-कलकों की चर्चा नहीं की गई है, निश्चय ही जिसको तुम सूर्य-कलक बतलाते हो, वह तुम्हारे ऐनक की त्रुटि होगी या तुम्हारी ऑखों का दोष होगा।'

विस्तार आदि

ऊपर बतलाया जा चुका है कि चद्र कलक के समान सूर्य-कलंक स्थायी नहीं होते। वे बदलते रहते हैं। नये उत्पन्न हुआ करते हैं और पुराने मिटते रहते हैं। बडे कलंक वस्तुतः इतने बड़े होते हैं कि उन पर बीस-पचीस पृथ्वियॉ बिछा दी जा सकती हैं। यदि सूर्य-कलक गड्ढे हैं, जैसा सभवतः वे कभी-कभी होते हैं, तो एक एक कलक मे सैकड़ों पृथ्वियॉ समा जा सकेंगी!

यदि सूर्य को प्रति दिन देखा जाय, तो इन कलंकों के स्थिति-

उपरोक्त बातों से स्पष्ट पता चलता है कि सूर्य ठोस नहीं है। यदि सूर्य ठोस होता और उसमे कहीं-कही धब्बे होते, तो वे सदा एक ही स्थान पर रहते, उनके आकार मे परिवर्तन न होता और उनका भ्रमणकाल सदा समान रहता।

स्वरूप

सूर्य-कलकों का स्वरूप भी कुछ निश्चित नही है, परंतु बड़े और अधिक दिन तक टिकनेवाले कलक प्रायः गोल होते हैं। बड़े दूरदर्शक से देखने पर सभी कलकों मे दो भाग स्पष्ट दिखलाई पड़ते हैं, एक बीच का भाग, जो अधिक काला होता है, दूसरा बाहर का भाग, जो इस बीच के भाग को घेरे रहता है और कुछ कम काला होता है।

परिवर्तन से शीघ्र पता चल जाता है कि सूर्य किसी ग्रह पर उसी प्रकार नाच रहा है, जैसे पृथ्वी। कलक हमें पूर्व से पश्चिम की ओर चलते दिखलाई पड़ते हैं और इस दिशा मे वे लगभग सवा सत्ताइस दिन में एक बार चक्कर लगा लेते हैं। परन्तु विचित्र बात यह है कि मध्य रेखा के पासवाले कलक शीघ्र चलते हैं। यहाँ कलक केवल साढे चौबीस या पचीस दिन मे ही एक चक्कर लगा लेते हैं। ज्यों-ज्यों हम सूर्य के उत्तरी या दक्षिणी ध्रुव की ओर जाते हैं, त्यों-त्यो वहाँ के कलको की गति मद पड़ जाती है। इस सबध मे एक विचित्र बात यह भी है कि कलक मध्य-रेखा से हटकर केवल ५ से ४० अश तक के ही प्रदेशो मे अधिक बनते हैं। ध्रुवों के पासवाले स्थानों मे कलक कभी नहीं दिखलाई पड़ते। परन्तु इन प्रदेशों मे सूर्य का भ्रमणकाल सूर्यबिम्ब के अन्य चिह्नों से स्थिर किया जा सकता है। पता लगा है कि ध्रुव के पासवाले भागो के एक बार घूमने मे लगभग चौंतीस दिन लगते हैं। मध्य-रेखा से एक ही दूरी पर स्थित कलकों का भी भ्रमणकाल पूर्णतया निश्चित नहीं है—इनमे से कुछ तनिक शीघ्र गति से चलते हैं, कुछ जरा धीरे।

एक ही कलंक के विविध रूप

ये एक विशाल कलक के थोड़ी-थोड़ी देर से एक के बाद एक लिये गये चार फोटो हैं। चौथे फ़ोटो में यह कलंकरूपी बवंडर क्रमशः हटते-हटते सूर्य के पृष्ठ के किनारे आ पहुँचा है और शीघ्र ही लुप्त हो जाने वाला है। इन चित्रों से स्पष्ट है कि सूर्य-कलंक एक प्रकार का बवंडर होता है। [फ़ोटो—'माउण्ट विल्सन वेधशाला, केलिफ़ोर्निया'।]

बीच के काले भाग को "परिच्छाया" और बाहरवाले कम काले भाग को "उपच्छाया" कहा जाता है, यद्यपि इनका किसी प्रकार की छाया से सबध नही रहता। परिच्छाया काले मखमल के समान काला दिखलाई पड़ता है। बाहरी और कम काले उपच्छाया मे बहुत-सी रेखाएँ दिखलाई पड़ती हैं। इनकी दिशा परिच्छाया की ओर होती है। जहाँ परिच्छाया और उपच्छाया मिलते हैं, वहाँ ये रेखाएँ उघड़ी हुई-सी दिखलाई पड़ती हैं। परिच्छाया हमे काला केवल इसीलिए जान पड़ता है कि सूर्य के अन्य भाग इससे कही अधिक चमकीले हैं। वास्तव मे यह स्वय इतना चमकीला होता है कि इसके सामने सबसे तेज़ कृत्रिम प्रकाशवाला बिजली का आर्कलैंप भी काला जान पड़ेगा।

प्रायः कलक समूहो मे विभाजित दिखलाई पड़ते हैं। बहुत बार दो छोटे-छोटे कलंक एक साथ दिखलाई पड़ते हैं, जो बढते जाते हैं और एक दूसरे से हटते जाते हैं। कभी-कभी इनके एक दूसरे से हटने का वेग ८,००० मील प्रति दिन तक पहुँच जाता है। इन दोनो के बीच छोटे-छोटे अन्य कलक उत्पन्न हो जाते हैं, जो बहुत दिनों तक नही ठहरते, परतु कभी-कभी इन बीचवाले कलंको की संख्या बढती ही जाती है।

कभी-कभी सूर्य-कलक स्पष्ट गड्ढे जान पड़ते हैं, क्योंकि सूर्य के घूमने के कारण जब वे हमे तिरछी दिशा से दिखलाई पड़ते हैं, तो उनकी आकृति गड्ढे की-सी रहती है। परतु कुछ कलक उभरे हुए भी जान पड़ते हैं। साधारणतः वे न तो उभरे हुए और न धँसे हुए दिखलाई पड़ते हैं।

कलक एक-दो दिन से लेकर कई महीनों तक टिकते
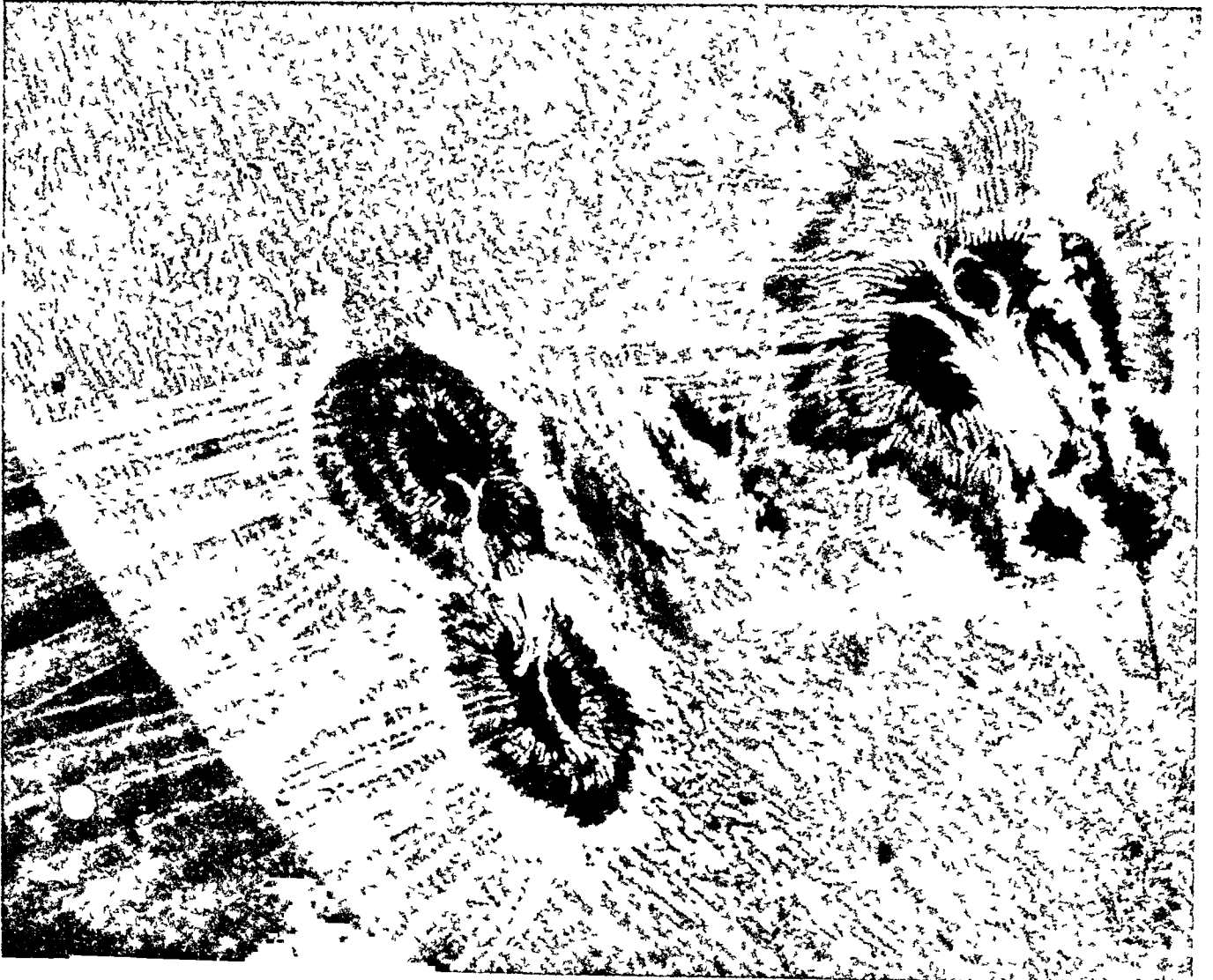
सूर्य के पृष्ठ पर उठते हुए बवण्डरो का एक कल्पना-चित्र
बाईं ओर के कोने में नीचे सफ़ेद गेंद जैसी वस्तु पृथ्वी है। इसकी आकृति की तुलना सूर्य के पृष्ठ भाग पर दिखाई दे रहे काले कलंकों या बवण्डरों की आकृति से कीजिए, तब आप अनुमान कर सकेंगे कि इनका विस्तार कितना अधिक होता होगा!

हुए देखे गये हैं। एक बार एक कलंक १८ महीने तक दिखलाई पड़ता रहा, परन्तु अधिकांश कलंक कुछ सप्ताह तक ही दिखते हैं और अंत में मिट जाते हैं। मिटने का कारण साधारणतः यही होता है कि ऊपर आसपास का चमकीला पदार्थ चढ़ आता है।

अभी तक ठीक-ठीक पता नहीं लगा है कि सूर्य-कलंक वस्तुतः हैं क्या। परंतु आधुनिक सिद्धांत यह है कि ये तुरहीनुमा भँवर या बवंडर हैं, जिनमें से भीतर की गैसें चक्कर मारती हुई ऊपर और बाहर निकलती हैं। यदि तुम इस प्रकार के भँवरों को पानी पर देखना चाहते हो तो दफ्ती या पतली लकड़ी का आठ-दस इंच व्यास का एक वृत्त काट लो। किसी तालाब के स्थिर जल में लकड़ी को आधी डुबा दो और इसको इसी प्रकार आधी डुबी हुई और खड़ी स्थिति में रखते हुए जोर से पीछे खींचकर पानी के बाहर निकाल लो। तुम देखोगे कि इस प्रकार पानी पर दो भँवर बन जाते हैं। असली बात यह है कि

सूर्य-कलंक और श्वेत कण

यह एक सूर्य-कलंक और उसके आस-पास के पृष्ठ पर बिखरे हुए चावल जैसे श्वेत कणों का चित्र है। इसमें 'परिच्छाया' और 'उपच्छाया' स्पष्ट दिखलाई पड़ते हैं। (देखो पृष्ठ २६२)

लकड़ी के खींचने पर लकड़ी की कोर के कारण पानी में भँवर की अर्धगोलाकार रेखा बन जाती है। इसके दोनों सिरे ही तुमको पानी पर दिखलाई पड़ते हैं। ये सिरे तुरही के आकार के होते हैं। तुम देखोगे कि यदि एक में पानी घड़ी की सुइयों की दिशा में चक्कर लगाता है, तो दूसरे में इसकी विपरीत दिशा में। सूर्य-कलंक भी कई बातों में ठीक इन्हीं भँवरों के समान होते हैं। यदि उपयुक्त यन्त्रों द्वारा सूर्य के प्रकाश से अन्य अवयव निकाल दिये जायँ और केवल हाइड्रोजन गैस से आये हुए प्रकाश से सूर्य का फोटो खींचा जाय, तो सूर्य पर के हाइड्रोजन के बादलों का बड़ा सुंदर चित्र खिंच आता है। इन चित्रों में सूर्य-कलंकों की भँवर-सरीखी बनावट स्पष्ट दिखलाई पड़ती है। यह भी दिखलाई पड़ता है कि दो पासवाले कलंकों का पदार्थ विपरीत दिशाओं में चक्कर लगाता है। थोड़ी-थोड़ी देर पर कई फोटो खींचने पर कलंकों में आसपास से बादल खिंच आते हुए भी देखे गये हैं। इससे स्पष्ट है कि सूर्य-कलंक भँवर हैं।
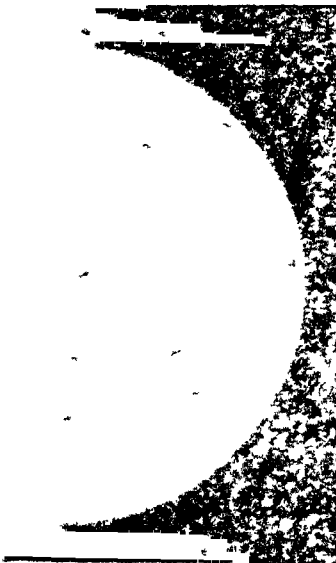
हाइड्रोजन प्रकाश द्वारा लिया गया सूर्य का एक फोटो
[फ़ोटो—'कोदइकैनाल वेधशाला' की कृपा से]
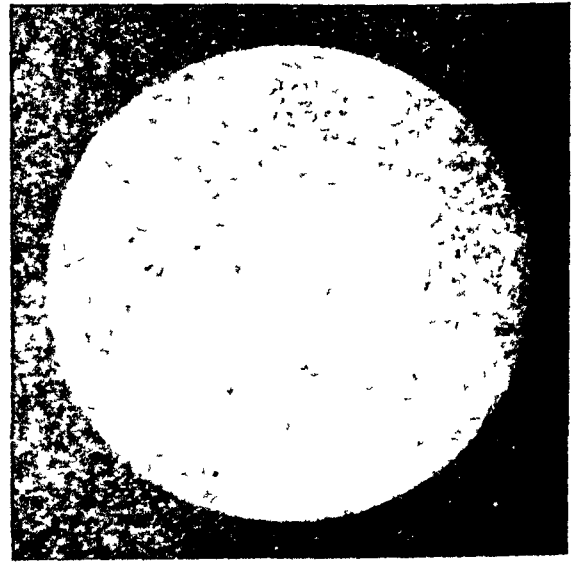
कैल्शियम-प्रकाश द्वारा लिया गया सूर्य का फोटो
[फ़ोटो—'कोदइकैनाल वेधशाला' की कृपा से]
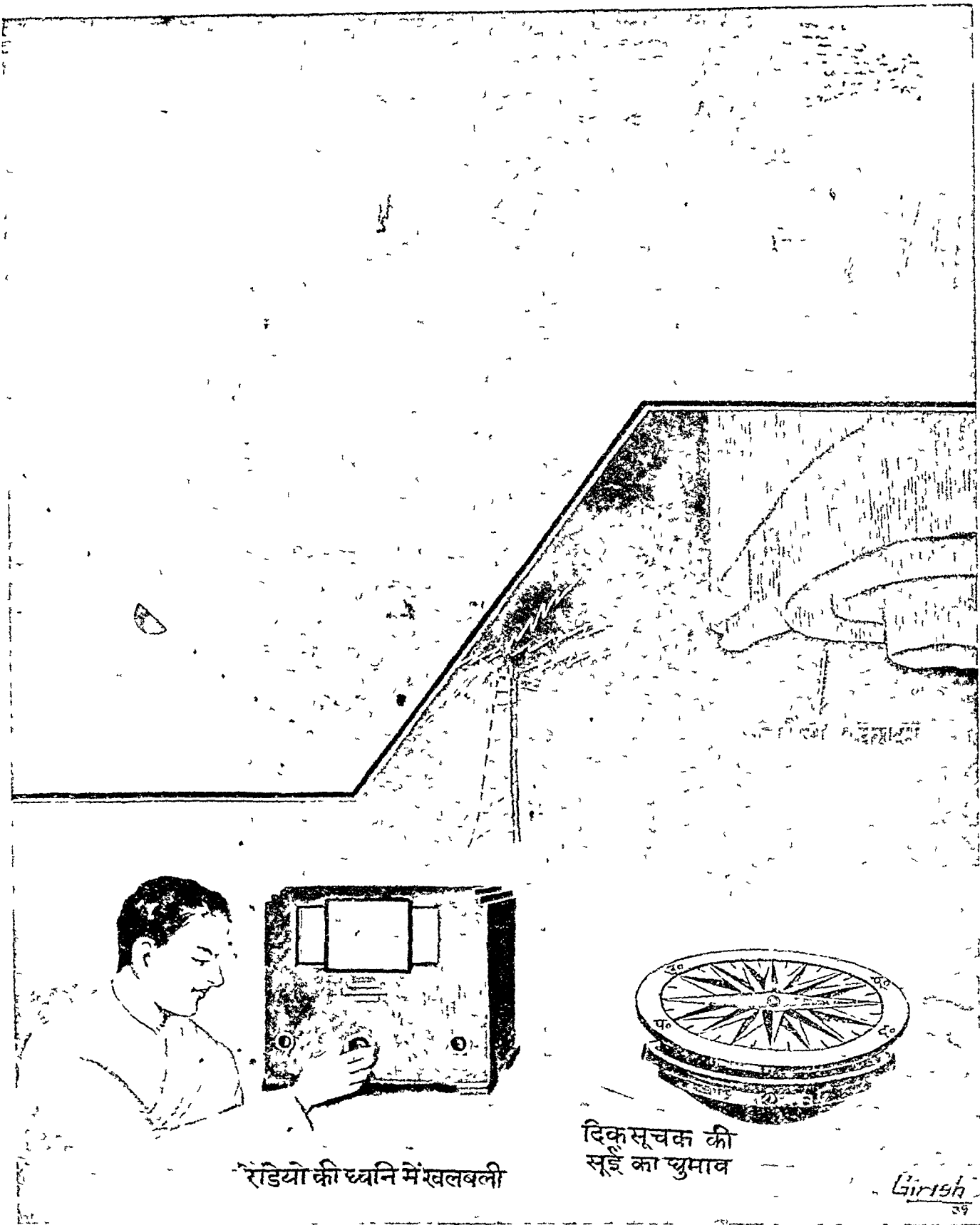
सूर्य-कलंको का पृथ्वी पर प्रभाव—चुंबकीय आँधियो की उत्पत्ति

वैज्ञानिकों का सबसे आधुनिक मत यह है कि सूर्य-कलंक सूर्य के पृष्ठ पर उठनेवाले भीषण बवंडर हैं, और उनका पृथ्वी की चुंबकीय क्रियाओं या घटनाओं पर प्रबल प्रभाव पड़ता है। यह देखा गया है कि जब कभी सूर्य पर कोई बड़ा कलंक-समूह दिखलाई पड़ता है, उस समय पृथ्वी पर बड़े ज़ोरो से आकाश में उत्तरीय और दक्षिणीय प्रकाश दिखाई पड़ते हैं, दिक्सूचक या कुतुबनुमा की सुई की दिशा में भी कुछ परिवर्तन होने लगता है और रेडियो, वायरलेस आदि की आवाज़ में भी गड़बड़ी होने लगती है। (दे० पृष्ठ २६३)

प्रकाश-मंडल

सूर्य के पृष्ठ पर कलक ही सर्व-प्रथम हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं, परतु यदि ध्यान से देखा जाय, तो अन्य रोचक बातें भी दिखलाई पड़ती हैं। बड़े दूरदर्शक से देखने पर सूर्य का श्वेत भाग भी सर्वत्र एक-रूप श्वेत नहीं दिखलाई पड़ता। इसमे छोटे-छोटे अनेक अत्यत चमकीले कण दिखलाई पड़ते हैं। ऐसा जान पड़ता है जैसे मटमैले कपड़े पर सफेद चावल बिखरा हुआ हो। अनुमान किया जाता है कि मटमैली जमीन की अपेक्षा ये चावल के दाने बीस गुने अधिक चमकीले होंगे। इनका व्यास ४०० मील से लेकर १२०० मील तक होता है। कभी-कभी छोटे दाने भी दिखलाई देते हैं, जिनका व्यास १०० मील से अधिक न होता होगा। ये दाने हमको साधारणतः गोल या दीर्घ वृत्ताकार दिखलाई पड़ते हैं और कई दाने सिमटकर बड़े दाने भी बन जाया करते हैं। इन दानो का जीवनकाल बहुत कम होता है। कुछ दो-चार मिनट ठहर भी जाते हैं, परतु अधिकाश आधे मिनट भी नहीं टिकते। इन सब की गति इधर-उधर प्रत्येक दिशा मे हुआ करती है। कोई-कोई तो प्रायः स्थिर ही रहते हैं। ऊँचे हवाई जहाज से जिस प्रकार आँधी से मथा हुआ समुद्र दिखलाई पड़ता है, ठीक वैसे ही, परतु बहुत बड़े पैमाने पर, ये दाने भी दिखलाई पड़ते हैं।

सूर्य का बिम्ब हमको किनारे की ओर कम चमकीला दिखलाई पड़ता है। इससे स्पष्ट पता चलता है कि सूर्य पर कोई वायुमडल है। किनारे के भागों से जो प्रकाश-रश्मियाँ हमारी आँखो तक पहुँचती हैं, उनको इस वायुमडल मे तिरछी दिशा में चलना पड़ता है। इसलिए उनकी चमक कुछ कम हो जाती है। यदि सूर्य पर किसी प्रकार का वायुमडल न होता, तो अवश्य ही सूर्य-बिम्ब के केंद्र और किनारे हमको एक-समान चमकीले दिखलाई पड़ते। हम इस वायुमडल को प्रति दिन तो नहीं देख सकते, परतु सर्व सूर्य-ग्रहणों के अवसर पर, जब सूर्य स्वय चद्रमा के पीछे छिप जाता है, हम इसे देख सकते हैं।

सूर्य के चमकीले भाग को, जिस पर हमें कलक और चावल के दाने के समान चमकीले कण दिखलाई पड़ते हैं, 'प्रकाश-मडल' या 'फ़ोटोस्फ़ियर' कहते हैं। इसके ऊपर वर्ण मंडल आदि हैं, जिनका ब्योरा आगे दिया जायगा।

ग्यारहवर्षीय चक्र

जर्मन ज्योतिषी श्वावे को सन् १८३२ के लगभग पता लगा कि सूर्य-कलकों के घटने-बढ़ने में भी नियम है। ग्यारह वर्ष में एक बार सूर्य-कलकों की संख्या और क्षेत्रफल बढ़कर महत्तम तक पहुँचते हैं और एक बार घटकर लघुतम तक पहुँचते हैं। प्रत्येक ग्यारह वर्ष के काल मे एक ही प्रकार से घटना-बढ़ना लगा रहता है। श्वावे दवा बेचता था, परतु ज्योतिष के प्रेम के कारण उसने अपनी दूकान बेच दी, जिसमें निश्चिन्त होकर सूर्य का अध्ययन कर सके।

श्वावे के आविष्कार के कुछ ही वर्षों बाद इगलैंड मे प्रति दिन सूर्य के फोटो लेने की योजना हुई। इस अभिप्राय से कि बादलो के कारण कोई दिन नागा न चला जाय, मद्रास के पास स्थित सरकारी 'कोदईकैनाल वेधशाला' और दक्षिण अफ्रीका की सरकारी 'केप आफ गुड होप वेधशाला' में भी प्रति दिन सूर्य के फोटो लिये जाते हैं। इन सब फोटोग्राफों में सूर्य का चित्र एक ही नाप का अर्थात् ८ इच व्यास का लिया जाता है, जिसमें तुलना मे कोई असुविधा न हो। उपरोक्त वेधशालाओं के अतिरिक्त, फ्रान्स और अमरीका की कुछ वेधशालाओं मे भी सूर्य-सबधी खोज बराबर की जाती है।

पता चला है कि कलकों के घटने-बढ़ने का चक्र-काल नियमित रूप से ग्यारह वर्ष नहीं है। कभी एक चक्र में केवल सात ही वर्ष लगता है, कभी सत्रह वर्ष तक का समय लग जाता है। फिर प्रत्येक बार यह देखा गया है कि कलकों की सख्या और क्षेत्रफल शीघ्र (लगभग साढे चार वर्ष में) बढकर धीरे-धीरे (लगभग साढे छः वर्ष मे) घटते हैं। अभी तक इस बात का पता नहीं चल सका है कि क्यो इस प्रकार कलक घटते-बढ़ते रहते हैं।

सूर्य-कलंक और सांसारिक घटनाएँ

समाचार-पत्रों मे प्रायः भविष्यद्वाणियाँ छपा करती हैं, जिनका आधार सूर्य-कलक बतलाये जाते हैं, जैसे भविष्य मे खूब आँधी-पानी आयेगा, या अन्य दुर्घटना होगी, क्योंकि कलको की सख्या बढ रही है। क्या ऐसी भविष्यद्वाणियाँ सच्ची होती हैं? क्या सूर्य-कलकों और सासारिक घटनाओं मे वस्तुत. कोई सबध है? इस पर अमरीका के सूर्य-सबधी विशेषज्ञ प्रो० मिचेल की उनकी 'सूर्य-ग्रहण' पुस्तक मे ज़ोरदार भाषा में लिखी निम्न सम्मति जानने योग्य है:—

"कई बार वास्तविक चेष्टा की गई है कि सूर्य-कलक और अन्य घटनाओं के बीच, चाहे वे सूर्य-सबधी हो, चाहे पृथ्वी-सबधी, नाता जोड़ा जाय। सूर्य-सबधी घटनाओं से जो नाते जोड़े गये हैं, उनकी नींव अधिकतर पक्की है, परतु पृथ्वी-सबधी नाते प्राय. बिलकुल काल्पनिक जान पड़ते हैं। यदि सयुक्त राष्ट्र (अमरीका) के किसी एक स्थान, जैसे लुई में, साधारण से अधिक गरमी पड़ती है, ×××× और उसी समय यदि संयोगवश सूर्य पर एक बड़ा-सा कलक-

समूह हो, तो कोई ज्योतिषी, प्रायः कोई छद्म-ज्योतिषी, अवश्य मिल जाता है, जो दैनिक समाचार-पत्रों को सूचित करता है कि ये सूर्य-कलक ही गरमी (या सरदी) का कारण है। भारतवर्ष के दुर्भिक्ष, आयर्लैंड की आलू की फसल, इंगलैंड मे बाजार की दर, मौरिशस द्वीप की जल-वर्षा, और न्यूयार्क की कपनियों का हानि-लाभ, इन सब की जॉच गणित से की गई है और इनमे से प्रत्येक के विषय में सिद्ध किया गया है कि उनका भी उतार-चढाव ग्यारह वर्ष मे होता है और इसलिए उनका भी संबंध सूर्य-कलको से अवश्य है। कई बार कहा गया है कि 'अक झूठ नही बोलते'। यह बिल्कुल सत्य है कि अक स्वय झूठी बाते नहीं बतलाते परतु इन अको पर जो अर्थ मढे जाते हैं, वे अनेक और भिन्न-भिन्न होते हैं। प्रत्येक बडे कारबार का मैनेजर अच्छी तरह जानता है कि यदि उसकी कपनी मे दो वर्षों मे एक-सा लाभ हो, तो भी उसके लिए यह अत्यत सरल है कि एक वर्ष वह लाभ बतलाकर हिस्सेदारों को पूरा-पूरा व्याज दे और दूसरे वर्ष के लाभ को कारबार मे उन्नति करने या कार्यालय की वृद्धि करने के खाते मे डालकर लाभ कम दिखला दे या घाटा दिखलाकर व्याज एक पैसा भी न दे। × × × × यह पूर्णतया सभव है, सभव ही नही, कदाचित् सत्य भी है, कि जल-वायु और वृष्टि का सबध सूर्य के तेज से (जिसका पता कलको से लगता है) है; और हो सकता है कि अन्य विषय भी कलको से सबध रखते हों—परतु इस सबध को प्रमाणित कर देना टेढी खीर है। सरदी, गरमी, या वर्षा अनेक प्रकार के भिन्न-भिन्न कारणों पर निर्भर हैं और इसलिए उन सब कारणो से, जो जल-वायु पर प्रभाव डालते हैं, सूर्य के परिणाम को पृथक् करना कठिन और प्रायः असंभव है।"

चुबक-संबंधी विषयो पर कलंको का प्रभाव

पृथ्वी की कुछ घटनाओं पर सूर्य-कलकों का प्रभाव अवश्य पडता है। इनमे से एक तो चुबक की दिशा है। सभी जानते हैं कि यदि किसी चुबक को इस प्रकार रक्खा जाय कि वह क्षैतिज धरातल मे स्वतन्त्रता से घूम सके, तो वह घूमकर उत्तर-दक्षिण दिशा मे हो जायगा। दिक्सूचक (कुतुबनुमा) का बनाना इसीलिए सभव है। परतु सूक्ष्म जॉच से पता चलता है कि चुबकीय सुई की दिशा कभी-कभी अनियमित रीति से बदलने लगती है। दिशा मे अतर अधिक नही पडता, तो भी नापने योग्य पडता है। ऐसी दशा मे कहा जाता है कि 'चुबकीय ऑधी' चल रही है। इसमे अब सदेह नहीं है कि चुबकीय ऑधियों का सबध सूर्य-कलकों से है। ऐसी ऑधियाँ उस समय अधिक चलती हैं, जब सूर्य पर अनेक कलक बनते रहते हैं।

उत्तर और दक्षिण ध्रुवो के पास रात्रि के समय आकाश मे एक विचित्र रगीन प्रकाश दिखलाई पडता है, जो सदा नाचा करता है, रूप बदलता रहता है और बहुत सुदर जान पडता है। उत्तर मे दिखलाई पडनेवाले प्रकाश को 'उत्तरीय प्रकाश' और दक्षिण मे दिखलाई पडनेवाले प्रकाश को 'दक्षिणी प्रकाश' कहते हैं। चुबकीय ऑधियो के समय ये प्रकाश बहुत बढ जाते हैं। १९२१ मे १३ मई को सूर्य के केंद्र के पास कई कलक थे। इनके कारण ये प्रकाश इतने प्रबल हो उठे कि वे प्रायः सारी पृथ्वी पर दिखलाई पडे। उस समय तार भेजना कठिन हो गया, क्योंकि इन तारो पर आकाशीय बिजली का बहुत प्रभाव पडा। जिस समय प्रकाश महत्तम तीव्रता पर था, उस समय समुद्र के नीचे-नीचे जानेवाला अमरीका और योरपवाला एक तार जल गया।

पहले बतलाया जा चुका है कि वृक्षों को काटकर जॉच करने से उनकी आयु का पता चलता है, क्योंकि उनके तनों मे परतें पडी रहती हैं। प्रत्येक परत एक वर्ष की वृद्धि सूचित करती है। इनकी जॉच करने से अनुमान किया जाता है कि गत ढाई हज़ार वर्षों मे भी सूर्य-कलंकों का ग्यारह-वर्षीय चक्र आज ही की तरह चला करता था।

उत्तरीय और दक्षिणीय प्रकाश
चुम्बकीय ऑधियाँ
सूर्य-कलंकों का दौरा

सूर्य-कलंक और चुम्बकीय ऑधियो के ग्यारह वर्षीय उतार-चढ़ाव की समानता का मानचित्र
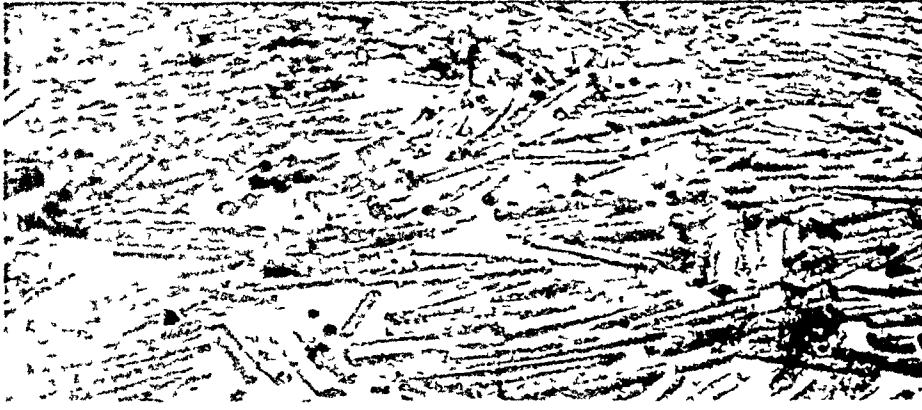
नदी पर तैरते हुए लट्ठे

लकड़ी का घनत्व पानी से कम है। यही कारण है कि हम हज़ारों बड़े-बड़े लट्ठों को यहाँ नदी में तैरते हुए देख रहे हैं। कनाडा, नारवे, बर्मा आदि देशों में पहाड़ों से लकड़ी की शहतीरें काट काटकर इसी प्रकार नदियों द्वारा बहाकर मैदानों के शहरों में बिना परिश्रम पहुँचा दी जाती हैं।

तैरता हुआ बर्फ का पहाड़

पानी जब बर्फ में परिणत हो जाता है, तब उसका घनत्व कम हो जाता है। यही कारण है कि मीलों लंबे और हज़ारों फ़ीट ऊँचे बर्फ़ के पहाड़ (Icebergs) इस प्रकार समुद्र में तैरते रहते हैं। इन पहाड़ों का केवल दसवाँ भाग बाहर दिखाई देता है, शेष जल में रहता है।

मृत सागर (Dead Sea) में तैरता हुआ आदमी

पैलेस्टाइन के 'मृत सागर' के पानी का घनत्व, बहुत अधिक नमक की मिलावट के कारण, इतना अधिक है कि मनुष्य का शरीर उसमें जल्दी डूबता नहीं। भारी से भारी बदनवाला आदमी भी उसमें बिना प्रयास तैरता रहता है।

हवा में उड़ता हुआ वायुपोत

हाइड्रोजन नामक गैस का घनत्व साधारण हवा से इतना अधिक कम होता है कि इससे भर जाने पर सैकड़ों टन वज़न के बड़े बड़े वायुपोत बिना किसी यंत्र की सहायता के आकाश में ऊँचे उठकर उड़ सकते हैं। यह घनत्व की असमानता ही की करामात है। यह 'हिंडनबर्ग' नामक प्रसिद्ध जर्मन वायुपोत का चित्र है, जो जलकर नष्ट हो गया था।

असम घनत्व के कुछ विशिष्ट उदाहरण (दे० पृष्ठ २६५-२६६)

घनत्व और भार

प्रत्येक पदार्थ का कुछ-न-कुछ आयतन और वज़न अवश्य होता है, और किसी भी वस्तु विशेष के आयतन की कमी वेशी के अनुपात में उसके वज़न मे भी कमी-वेशी हो जाती है। किन्तु यह आवश्यक नही है कि समान आयतनवाली दो वस्तुओं का वज़न भी समान ही हो। इसका क्या कारण है? एक घनफ़ीट लकड़ी का वज़न एक घनफ़ीट लोहे जितना क्यों नही होता? इस प्रकरण मे इसी का विवेचन किया गया है।

हमने देखा है कि भिन्न-भिन्न वस्तुओं को पृथ्वी भिन्न-भिन्न परिमाण में अपनी ओर खीचती है। जिस वस्तु मे पदार्थ की मात्रा अधिक होती है, उसके लिए पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति भी बढ जाती है। ऐसे पदार्थों का वज़न ज्यादा होता है। समान आकार के दो टुकडे लीजिये, एक लकडी का, दूसरा लोहे का। लोहे का टुकड़ा भारी जॅचता है। निस्सन्देह लोहे के अन्दर पदार्थ की मात्रा लकड़ी की अपेक्षा अधिक है--लोहे के अन्दर के पदार्थ-कण मानो कसकर घने बिठलाये गये हैं। किंतु लकडी के अन्दर का पदार्थ उतना घना नहीं है। दूसरे शब्दों मे लोहे का 'घनत्व' लकड़ी के 'घनत्व' से ज्यादा है। किसी वस्तु के एक नियत आयतन मे पदार्थ की मात्रा कितनी है, इसे विज्ञान की परिमार्जित भाषा में 'घनत्व' कहते हैं।

किन्तु हम देख चुके हैं कि पदार्थ की मात्रा के अनुपात मे ही वस्तुओ का भार भी होता है, अतः हम यह भी कह सकते हैं कि किसी वस्तु का घनत्व उस वस्तु के एक नियत आयतन का भार है।

आयतन की नाप ब्रिटिश प्रणाली मे हम घनफुट से करते हैं, तथा भार या वज़न की नाप पाउण्ड से। सुविधा के लिए आयतन के लिए १ घनफुट लेते हैं, और तब उसका वज़न पाउण्ड मे निकालते हैं। एक घनफुट लोहे का वज़न लगभग ४६० पाउण्ड होता है अतः लोहे का घनत्व ४६० पाउण्ड प्रति घनफुट हुआ। फ्रेञ्च प्रणाली में आयतन की नाप 'घन-सेन्टीमीटर' और वज़न की नाप 'ग्राम' से करते हैं। एक घन-सेन्टीमीटर लोहे का वज़न ७·२ ग्राम होता है। इस तरह लोहे का घनत्व ७·२ ग्राम प्रति घन-सेन्टीमीटर हुआ।

वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं मे हम वास्तव मे किसी वस्तु का ठीक एक घनफुट या एक घन-सेन्टीमीटर आयतन नही लेते, वरन् समूची वस्तु का आयतन पहले मालूम कर लेते हैं। फिर उसे तौलकर मालूम करते हैं कि प्रति घन-सेन्टीमीटर उस वस्तु का भार कितने ग्राम हुआ या प्रति घनफुट उस वस्तु मे कितने पाउण्ड हैं।

घनत्व प्रकट करने के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि भार और आयतन की नाप भी लिखी जाय, अन्यथा बडी गडबडी की सम्भावना हो सकती है। उदाहरण के लिए पाउण्ड और घनफुट मे लोहे का घनत्व ४६० निकलता है, तो ग्राम और घन-सेन्टीमीटर का प्रयोग करने पर उस अनुपात में उसका घनत्व केवल ७·२ आता है।

घनत्व की जानकारी की आवश्यकता आए दिन पड़ा करती है। पानी पर एक चीज़ तैरती है, तो दूसरी उसमे डूब जाती

अर्किमिदीज़ (२८७—२१२ ई० पू०)
जिसने सर्वप्रथम 'आपेक्षिक घनत्व' सम्बन्धी सिद्धान्त का अनुसंधान और प्रतिपादन किया था।

है। इसका मूल कारण उनका घनत्व है। गर्म पानी का घनत्व ठंडे पानी से कम होता है, अत जब गर्म पानी हौज मे डाला जाता है, तो यह ऊपर ही रह जाता है. किन्तु यदि उसमे ठंडा पानी डाला जाय, तो वह एकदम पेंदे तक पहुँच जाता है। तेल पानी से भी हलका है, वह पानी के ऊपर तैरता है। गैसो का घनत्व बहुत ही कम होता है, फिर भी विभिन्न गैसों के घनत्व में अन्तर है। हाइड्रोजन सब गैसों से हलकी है। गुब्बारे और एअरप्लीन मे हाइड्रोजन ही भरी रहती है। इसी कारण ये आकाश मे उड़ सकते हैं। लोहे की कील पानी मे डूब जाती है, किन्तु लोहे का ही बना पीपा बडे-बडे पुलों का बोझा लिये तैरा करता है। यह सब घनत्व की ही करामात है।

नित्य के काम के लिए हमे भिन्न-भिन्न वस्तुओ के घनत्व की तुलना करने की भी आवश्यकता होती है। रुपया पानी मे डूब जाता है, किन्तु पारे के हौज मे वह आसानी से तैरता रहता है, क्योंकि चाँदी का घनत्व पानी के घनत्व से तो ज्यादा, किन्तु पारे के घनत्व से कम है।

तुलना के लिए हम पानी की शरण लेते हैं, क्योंकि पानी सब कहीं मिल सकता है और अधिकाश ठोस तथा द्रव पदार्थो के घनत्व से पानी का घनत्व कम है। एक और बात यह है कि पानी का घनत्व फ्रेञ्च प्रणाली मे १ ग्राम प्रति घन-सेन्टीमीटर होता है। अत घनत्व की तुलना के लिए पानी का घनत्व इकाई का काम देता है। पानी के घनत्व से अन्य पदार्थों का घनत्व जितने गुना ज्यादा या कम है, इस अनुपात को 'आपेक्षिक घनत्व' कहते हैं। अतएव आपेक्षिक घनत्व निरी सख्या होती है। इस सख्या के साथ पाउण्ड प्रति घनफुट या ग्राम प्रति घन-सेन्टीमीटर लिखने की जरूरत नहीं, क्योंकि यह सख्या भिन्न-भिन्न चीजों के घनत्व के बीच का अनुपात बताती है। यह अनुपात सदैव एक-सा रहेगा, चाहे घनत्व ब्रिटिश प्रणाली से निकाला जाय या फ्रेञ्च (मेट्रिक) प्रणाली से।

किन्तु आपेक्षिक घनत्व सम्बन्धी प्रयोग करने के लिए पानी चुनने मे विशेष सावधानी बरतनी पड़ती है। पानी मे प्राय' विजातीय वस्तुऍ घुली रहती हैं, जिसके कारण उसका घनत्व बढ जाता है। मृत सागर (Dead Sea) के पानी में नमक इतनी अधिक मात्रा मे घुला हुआ है कि उसमे नहानेवाले लोग जल्दी डूबते ही नही। वहाँ पानी का घनत्व इतना अधिक रहता है कि मनुष्य का शरीर निष्प्रयास ही उसकी सतह पर तैरा करता है। इसीलिए आपेक्षिक घनत्व के लिए शुद्ध पानी लिया जाता है। फिर घनत्व पर तापक्रम का भी प्रभाव पडता है। गर्मी पाकर चीजें फैलती हैं, अत. वजन तो वही रहता है, पर उनका आयतन बढ जाता है। इस तरह तापक्रम बढने पर चीजों का घनत्व कम हो जाता है। पानी का भी यही हाल है। प्रयोग करने से हम जानते हैं कि पानी का घनत्व सबसे अधिक ४ डिग्री शताश ताप पर होता है। अतः विभिन्न पदार्थो के घनत्व की तुलना के लिए इसी ताप का पानी लेते हैं। कुछ ठोस और द्रव पदार्थो का आपेक्षिक घनत्व निम्न प्रकार है—
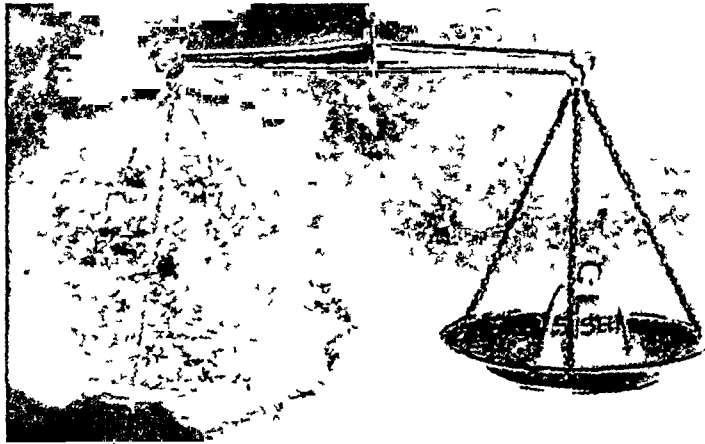
घनत्व से आयतन और भार का संबंध

भिन्न घनत्ववाली दो वस्तुओं को यदि समान वज़न में लिया जाय तो उनका आयतन समान न होगा। इसका सबसे सरल उदाहरण रुई और उतने ही वज़न का लोहे का बटखरा है। समान वज़न के होकर भी घनत्व की असमानता के कारण दोनों के आयतन में कितना अतर है!

ठोस पदार्थ		द्रव पदार्थ	
प्लैटिनम	२२ ०	पारा	१३·६
सोना	१९·३	रुधिर	१ ०६
सीसा	११·४	दूध	१·०३
चॉदी	१०·८	समुद्र का जल	१·०२
लोहा	७ २	टर्पेन्टाइन	०·८७
बर्फ़	० ९	अल्कोहॉल	० ७९
कार्क	०·२		

गैसें पानी की अपेक्षा बहुत ही हल्की होती हैं, अतः गैसों के घनत्व की तुलना हवा के घनत्व से करते हैं। हवा के घनत्व को पैमाना मानने पर अन्य गैसो का आपेक्षिक घनत्व निम्न लिखित तालिका के अनुसार आता है—

आक्सिजन	१·१
नाइट्रोजन	०·९७
कार्बन डाइआक्साइड	१·५
अमोनिया गैस	०·६२
हाइड्रोजन	०·०६६

ज्यामिति की किसी नियत आकृतिवाले ठोस पदार्थ का आपेक्षिक घनत्व निकालना आसान है, क्योकि रेखा-गणित के सिद्धान्तों से हम बिना प्रयोग के उसका आयतन निकाल सकते हैं और तराज़ू पर उसका वज़न भी निकाल सकते हैं। फिर उतने ही आयतनवाले पानी का वजन मालूम करके उस ठोस पदार्थ के वज़न को पानी के वज़न से भाग देकर आपेक्षिक घनत्व की सख्या हम मालूम कर सकते हैं।

किन्तु अनेक वस्तुएँ बेडौल आकार की हुआ करती हैं। ज्यामिति की मदद से उनका आयतन आसानी से नही निकाला जा सकता। ऐसी दशा मे एक विशेष प्रकार के बडे गिलास "ग्रेजुएटेड जार" मे पानी भर लेते हैं। इस गिलास की दीवाल पर निशान बने हुए होते हैं, जो भीतर का आयतन बताते हैं। तब उस चीज़ को इस पानी मे डुबो देते हैं। ऐसा करने से पानी ऊपर चढ आता है। अब इस नये आयतन मे से पहले का आयतन घटा देने पर उस चीज़ का आयतन निकल आता है। इस सम्बन्ध मे एक मनोरञ्जक घटना का उल्लेख हम यहाँ कर देते हैं।

प्रसिद्ध आविष्कारकर्त्ता एडिसन (Edison) ने एक बार एक इञ्जिनियर से पूछा कि अमुक बिजली के बल्ब के भीतर का आयतन कितना है? बेचारा इञ्जिनियर तीन-चार दिन तक बल्ब का आकार नापने और गुणा-भाग करने मे लगा रहा। फिर भी वह ठीक आयतन न निकाल पाया। एडिसन ने फौरन् उसके हाथ से बल्ब लिया और उसमे पानी भर दिया। फिर पानी को एक नापने के गिलास में उँडेल दिया, और पानी का आयतन उस गिलास मे लगे निशान की मदद से पढ लिया।

द्रव पदार्थों का असम घनत्व

यदि एक ही बोतल मे पारा, पानी, तेल और अल्कोहॉल भरे जायँ तो अपने-अपने आपेक्षिक घनत्व के अनुसार वे इसी तरह ऊपर-नीचे हो जायँगे।

द्रव पदार्थों का आपेक्षिक घनत्व निकालने के लिए अधिकतर घनत्ववाली बोतल का प्रयोग करते हैं। इस प्रयोग मे आयतन नापने की ज़रूरत नहीं पड़ती। तराज़ू पर पहले खाली बोतल तौल लेते हैं। फिर दिये हुए द्रव पदार्थ को उसमे मुँहामुँह भरकर तौलते हैं। इस वज़न मे से बोतल का वज़न घटा देने से द्रव पदार्थ का वज़न निकल आता है। अब बोतल को ख़ाली करके और पानी से भर कर फिर वज़न लेते हैं। पानी से भरी बोतल मे से ख़ाली बोतल का वज़न घटाकर पानी का वजन मालूम कर लेते हैं। इस तरह समान आयतन-वाले पानी और द्रव दोनों का वज़न मालूम हो गया। इन्हीं का अनुपात हमे आपेक्षिक घनत्व बतलाता है। नन्हे-नन्हे कण या बुकनी वग़ैरह का आपेक्षिक घनत्व भी इस बोतल की सहायता से मालूम किया जा सकता है। पहले बोतल को जल से लबालब भर लो—अब जल से भरी हुई बोतल और उन नन्हे-नन्हे छर्रों को तराज़ू के पलरे पर एक ही साथ रख दो, और उनका वज़न निकाल लो। फिर बोतल को उठाकर मेज़ पर रक्खो, और उन छर्रों को बोतल के भीतर डालो। ठीक छर्रें के आयतन के बराबर ही पानी अब बोतल के बाहर बहकर गिर जायगा। बोतल को अब फिर तौलो। निस्सन्देह पहले की अपेक्षा अब वज़न कम होगा। यह कमी उस पानी के वज़न के बराबर होगी, जिसका आयतन छर्रें के बराबर है। छर्रें का वज़न मालूम ही है, अतः इसका आपेक्षिक घनत्व निकालने के लिए इसके वज़न में समान आयतन-वाले पानी के वज़न से भाग देते हैं।
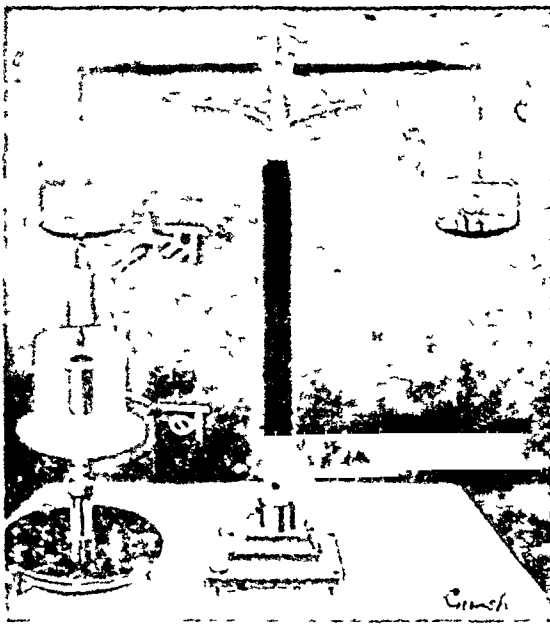
अर्कमिदीज के सिद्धान्त का प्रयोग

इस विशेष प्रकार की तराजू में एक पलड़े में बटखरे रखे जाते हैं और दूसरे में एक के नीचे दूसरा इस तरह दो धातु-दण्ड लटकते रहते हैं। इनमें से ऊपर का दण्ड 'अ' खोखला होता है और नीचे का 'ब' ठोस। 'ब' का आकार ऐसा होता है कि वह 'अ' में ठीक समा जाय। पहले ये दोनों दण्ड खाली हवा में एक साथ बटखरों से तौल लिये जाते हैं। इसके बाद एक जल भरे पात्र को नीचे लाकर नीचेवाला दण्ड उसमें पूरा डुबा दिया जाता है। ऐसा करने पर उसका वज़न मानो घट जाता है, क्योंकि पलड़ा ऊपर उठने लगता है। तब ऊपर के खोखले दण्ड में पानी भरकर फिर तराजू का तौल ठीक किया जाता है। इससे यह ज्ञात हो जाता है कि पानी में डुबाने पर नीचे के दण्ड का जितना वज़न घटा, वह ऊपर के दण्ड में भरे गये पानी अर्थात् डूबी हुई वस्तु के आयतन के बराबर के पानी के वजन के बराबर था।

किन्तु कुछ अनियमित आकार की नन्हीं वस्तुएँ (जैसे अँगूठी) भी होती हैं, जो न घनत्ववाली बोतल में आ सकती हैं, न नापने के गिलास में ही पानी की सतह को अधिक ऊँचा उठा सकती हैं। इनका आपेक्षिक घनत्व निकालने के लिए अर्कमिदीज के सिद्धान्त की सहायता ली जाती है। अर्कमिदीज की कहानी भी बड़ी विचित्र है। लगभग २२० ई० पूर्व सिराक्यूज के राजा हीरो ने मुकुट बनाने के लिए एक सुनार को सोना दिया। जब मुकुट बनकर आया, तो राजा को सन्देह हुआ कि सुनार ने कुछ सोना चुरा लिया है, और उसकी जगह कोई दूसरी सस्ती धातु मिला दी है। किन्तु मुकुट का वजन दिये हुए सोने के बराबर ही था। इसलिए चोरी फौरन् पकड़ी न जा सकी। निदान राजा ने अर्कमिदीज को यह पता लगाने का भार दिया कि सुनार ने सच-मुच राजा को ठगा है या नहीं। किन्तु साथ-ही-साथ शर्त थी कि मुकुट किसी प्रकार ख़राब न होने पाये। अर्कमिदीज बड़ी देर तक सोचता रहा कि इस टेढ़ी समस्या को कैसे हल करें। दूसरे दिन स्नान करने के लिए तत्कालीन प्याले-नुमा टब में वह उतरा। टब में पानी लबालब भरा हुआ था। जब वह उसमें घुसा तो कुछ पानी फर्श पर गिर गया। किन्तु अब भी पानी टब के मुँहामुँह था। जब वह बाहर आया तो पानी की सतह बहुत नीचे चली गयी। फौरन् मानो उसके दिल में प्रेरणा हुई कि ठीक उतना ही पानी टब से बाहर गिरा है, जितना उसके शरीर का आयतन था। साथ ही उसने यह भी देखा कि पानी में घुसते समय उसे ऐसा लगा था, मानो उसे नीचे से ऊपर की ओर कोई उछाल रहा है। पानी में उसका वजन कुछ हलका पड़ गया था। उसने देखा कि इस नई जानकारी की मदद से तो वह मुकुटवाली समस्या भी हल कर सकता है। बस, ख़ुशी में पागल होकर वह बिना कपड़ा वगैरह पहने ही राजा के पास नङ्गा दौड़ा गया। रास्ते भर वह चिल्लाता जा रहा था—"युरेका, युरेका (अर्थात् मैंने जान लिया, मैंने जान लिया)।"
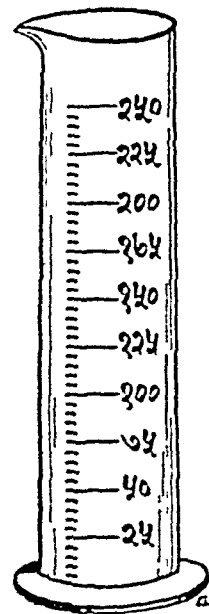
'ग्रेजुएटेड जार' या नापने का गिलास

उसने एक चाँदी की और दूसरी सोने की ईंट बनवाई। दोनों का वजन ठीक मुकुट के बराबर रक्खा। तब एक चौड़े मुँह के बर्त्तन में उसने लबालब पानी भरा और तीनों को उसमें बारी बारी से डाला। इस प्रयोग में मुकुट के कारण जितना पानी बाहर गिरा, उसका आयतन चाँदी की ईंट द्वारा स्थानान्तरित हुए पानी के आयतन से तो ज्यादा था, किन्तु सोने की ईंट द्वारा स्थानान्तरित हुए पानी के आयतन से कम। फौरन् उसने इस बात की घोषणा की कि मुकुट विशुद्ध सोने का नहीं बना है। तदुपरान्त बड़े मनोयोगपूर्वक काम करके उसने सिद्ध किया कि जब किसी ठोस पदार्थ का कुल या थोड़ा-सा हिस्सा

किसी द्रव के अन्दर रहता है, तो उस ठोस पदार्थ का वज़न कम पड़ जाता है। यह कमी उस पदार्थ द्वारा स्थानान्तरित हुए द्रव के वज़न के बराबर होती है। आज यह 'अर्कमिदीज़ के सिद्धान्त' के नाम से पुकारा जाता है।

आपेक्षिक घनत्व निकालने के लिए इसी अर्कमिदीज के सिद्धान्त की मदद ली जाती है। पहले उस ठोस पदार्थ को वही पलरे पर रखकर तौल लेते हैं। फिर उसे पलरे से धागे द्वारा इस तरह लटकाते हैं कि तौलते समय भी वह पदार्थ बर्त्तन मे रक्खे हुए पानी मे डूबा रहे। उस पदार्थ के इन दोनो वजन का अन्तर निकाल लेते हैं। अर्कमिदीज़ के सिद्धान्त के अनुसार यही समान आयतनवाले पानी का वज़न हुआ। इसके बाद पहले की तरह उसका आपेक्षिक घनत्व अनुपात लगाकर मालूम कर लेते हैं।

अर्कमिदीज़ की रीति से ऐसे पदार्थों का भी आपेक्षिक घनत्व हम मालूम कर सकते हैं, जो हलके होने के कारण पानी मे डूबते ही नही। मान लीजिए, कार्क का आपेक्षिक घनत्व निकालना है। इस प्रयोग मे हमे लोहे का एक टुकड़ा लगर की तरह काम मे लाना पड़ता है। पहले लोहे के टुकडे को हम हवा मे और पानी मे तौलकर मालूम कर लेते हैं कि पानी के अन्दर इसका वज़न कितना घटता है। अब कार्क और लगर को एक ही साथ बॉध लेते हैं, और इन दोनों को एक बार हवा मे और एक बार पानी के अन्दर तौल लेते हैं। इस तरह यह मालूम कर लेते हैं कि पानी के अन्दर तौलने पर कार्क और लगर के सयुक्त वज़न मे कितनी कमी हुई। कार्क का वज़न हवा मे मालूम ही है, अतः उसका आपेक्षिक घनत्व भी हम पूर्ववत् निकाल सकते हैं।

साधारण हाइड्रोमीटर
यह एक जार में भर पानी में तैरता हुआ दिखाया गया है।

द्रव पदार्थों का आपेक्षिक घनत्व निकालने की एक सरल रीति भी लभ्य है। 'हाइड्रोमीटर' की सहायता से किसी भी द्रव पदार्थ का आपेक्षिक घनत्व आप आसानी से मालूम कर सकते हैं। यह यंत्र एक शीशे की नली का बना होता है। इसका निचला भाग भारी होता है। पानी या किसी अन्य द्रव पदार्थ मे डालने पर यह डूबता नही, वरन् इसका कुछ हिस्सा उस द्रव पदार्थ के अन्दर रहता है और कुछ बाहर। इसी हालत मे वह उस द्रव मे तैरता रहता है। भिन्न-भिन्न घनत्ववाले द्रवों मे यह यत्र भिन्न-भिन्न ऊँचाई तक डूबता है। इसमे निशान बने रहते हैं। एक निशान, जो मोटी लकीर का बना होता है, यह सूचित करता है कि यहाँ तक यह यत्र पानी म डूबता है। पानी से भारी द्रवो मे हाइड्रोमीटर कम डूबता है, अतः पानीवाला निशान उस द्रव के बाहर रहता है। किन्तु पानी से हलके द्रवों मे हाइड्रोमीटर काफी नीचे तक डूब जाता है। पानीवाला निशान द्रव के अन्दर चला जाता है। यत्र को बनाते समय प्रयोगशाला मे जॉच करके प्रत्येक निशान के सामने लिख देते हैं कि इस निशान तक यत्र डूबेगा तो आपेक्षिक घनत्व इतना होगा।

आबकारी-विभाग के इन्सपैक्टर हाइड्रोमीटर की मदद से शराब की दूकानों पर जॉच करते हैं कि कही ठेकेदार शराब मे नियम के विरुद्ध ज्यादा पानी मिलाकर धोखा तो नहीं दे रहा है। दूध मे पानी की मिलावट की जॉच के लिए भी लोग हाइड्रोमीटर का प्रयोग करते हैं।

गैस का आपेक्षिक घनत्व निकालने के लिए शीशे के विशालकाय पीपे मे बारी-बारी से साधारण हवा और दी हुई गैसों को तौल लेते हैं। इस क्रिया मे इस बात की पूरी सावधानी रक्खी जाती है कि तौलते समय दी हुई गैस और हवा दोनों का दबाव और ताप एक-सा रहे। फिर हवा के वज़न से उस गैस के वज़न मे भाग देने से हमें आपेक्षिक घनत्व की संख्या मालूम हो जाती है। पिछली शताब्दी में इस डर से कि खान के अन्दर कहीं विषैली-गैसें न हों, लोग अपने साथ कुत्ते ले जाते थे। विषैली गैसे भारी होने से ज़मीन की सतह के पास छायी रहती थीं। अतः बेचारा कुत्ता उनका शिकार बन जाता, और लोग तुरंत सतर्क हो जाते थे।
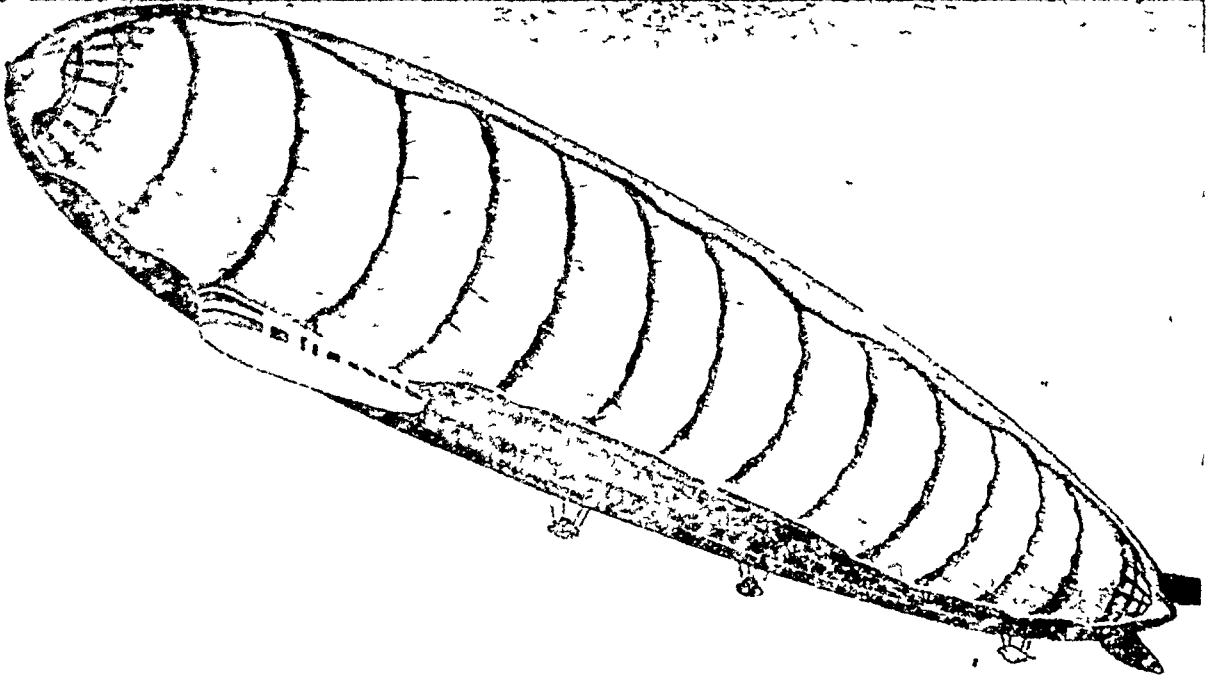
ज़ेप्लीन नामक बड़े-बड़े वायुपोत हाइड्रोजन ही से भरे जाते हैं। इन हवाई जहाज़ों का भार कई टन होने पर भी ये साबुन के बुलबुले की तरह आकाश में ऊँचे उठकर उड़ते हैं। इस चित्र में प्रसिद्ध 'ग्राफ़' ज़ेप्लीन के कलेवर के अंदर के हाइड्रोजन से भरे थैले दिखाये गए है।
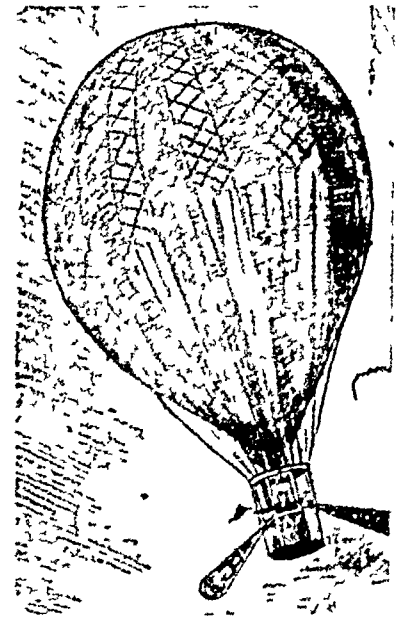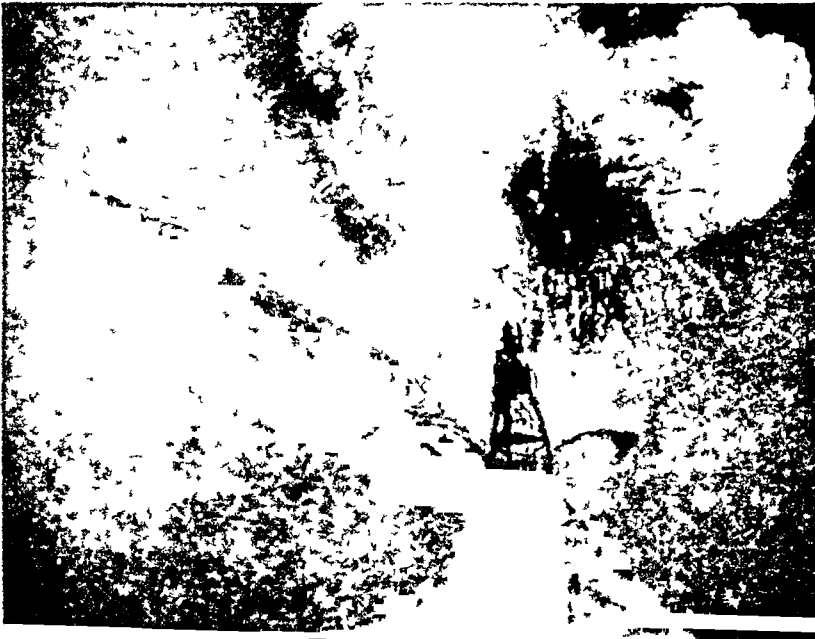
किंतु प्रज्वलनशील होने के कारण हाइड्रोजन का उपयोग ख़तरनाक है। प्राय यह भयानक वायुपोतों को नष्ट कर देती है। इस अभागे वायुपोत की यह दशा कभी न होती हाइड्रोजन की जगह अप्रज्वलनशील 'हीलियम' गैस का उपयोग किया गया होता।

बच्चों के गुब्बारों की तरह उड़ाकुओं के गुब्बारों में भी प्राय. हाइड्रोजन गैस ही भरी रहती है। यह हवा में उसी प्रकार तैरते-उतराते रहते हैं जैसे पानी में कार्क।

हाइड्रोजन के हल्केपन का मनुष्य द्वारा उपयोग

सृष्टि का सबसे हलका पदार्थ—हाइड्रोजन गैस

हम देख चुके हैं कि जितने भी पदार्थ हैं, वे दो वर्गों में बाँटे जा सकते हैं—मूल तत्त्व और यौगिक पदार्थ। सभी यौगिक पदार्थ मूल तत्त्वों ही के संयोग से बने हैं। हाइड्रोजन ऐसा ही एक मूल तत्त्व है, जो घनत्व और भार में सभी मूल तत्त्वों से हलका है।

हम बहुधा बाज़ार में ऐसे रबड के गुब्बारे बिकते हुए देखते हैं, जो छोडने पर ऊपर की ओर उडने लगते हैं और यदि उन्हे बिलकुल छोड दिया जाय, तो इतने ऊपर उड जाते हैं कि दृष्टि से ओझल तक हो जाते हैं। इन गुब्बारों मे जो गैस प्रायः भरी होती है, उसे 'हाइड्रोजन' कहते हैं। ससार का सबसे हलका पदार्थ यही गैस है। लगभग पौने दो सौ वर्ष के पहले मनुष्य इस गैस से बिलकुल अपरिचित था। सन् १७६६ ईसवी मे हेनरी केवेंडिश नामक एक अंग्रेज रासायनिक ने यह देखा कि जब कुछ धातुओं, जैसे जस्ता और लोहा, पर हलके गधक के तेज़ाब की क्रिया होती है, तो एक जल उठनेवाली 'हवा' (गैस) पैदा होती है। इस गैस का उसने 'प्रज्वलनशील हवा' (inflammable air) नाम रक्खा और इसके घनत्व आदि कुछ अन्य गुण भी निर्धारित किए। लगभग पद्रह वर्ष बाद, सन् १७८१ में, प्रीस्टली नामक एक दूसरे अंग्रेज़ रासायनिक ने यह देखा कि जब इस 'प्रज्वलनशील हवा' और साधारण हवा का मिश्रण एक बंद शीशे के बरतन में रक्खा जाता है और उसमे बिजली की चिनगारियाँ गुज़ारी जाती हैं, तो वह मिश्रण विस्फुटित हो जाता है और बरतन का भीतरी पृष्ठ एक तुहिन द्वारा आच्छादित हो जाता है। लेकिन इस प्रयोग को उसने अपने कुछ दार्शनिक मित्रों को तमाशा के रूप मे ही दिखाया, इसका अर्थ वह न समझ सका। इसी वर्ष प्रीस्टली के इस प्रयोग ने केवेंडिश का ध्यान फिर इस ओर आकर्षित किया। केवेंडिश ने इस प्रयोग को कई बार दोहराया और यह प्रमाणित किया कि इस क्रिया मे जो तुहिन बनता है, वह पानी के कणों का तुहिन है। छः वर्ष बाद, सन् १७८७ मे, लवॉयसियर नामक एक फ्रेञ्च रसायनज्ञ ने यह स्पष्टतः दिखा दिया कि पानी 'प्रज्वलनशील हवा' और 'क्रियाशील हवा' (active air) के रासायनिक संयोग से बना है। लवॉयसियर ने इस कारण इस 'प्रज्वलनशील हवा' का नाम 'हाइड्रोजन' रक्खा (हाइड्रो = पानी, और जन = जन्म देनेवाला, अर्थात् वह पदार्थ जो पानी का उत्पादन करता है)।

केवेंडिश (१७३१-१८१०) जिसने हाइड्रोजन गैस की खोज की।

पानी के भार के नौ भागों में एक भाग हाइड्रोजन गैस का रहता है। इसके अलावा सभी तेज़ाबों और खारो, तथा अनेकानेक जड़ (inorganic) और चेतन (organic) पदार्थों, यथा खानेवाला सोडा, अमोनिया गैस, लकडी, मैदा, शकर, तेल, घी, आदि में यह मूल तत्त्व संयुक्त रूप में रहता है। स्वतंत्र रूप में यह हवा मे, विशेषतः हवा के ऊपरी तलों में, बहुत ही कम मात्रा
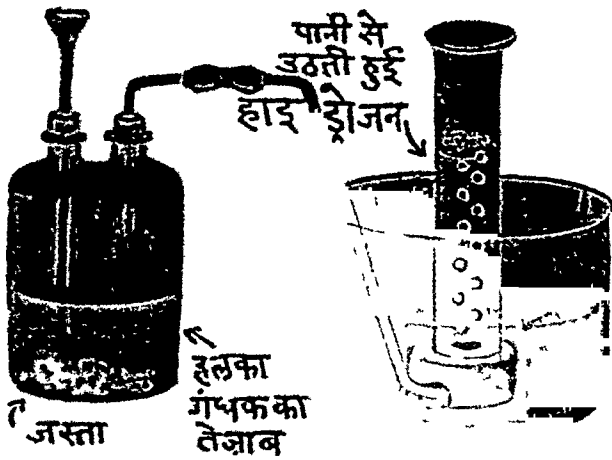
में रहता है, किंतु सूर्य तथा अन्य नक्षत्रों में अधिक परिमाण में है (देखिए पृष्ठ २ पर सूर्य के हाइड्रोजन के बादलों का चित्र)।

स्कूल अथवा घरेलू प्रयोगशाला में हाइ-ड्रोजन गैस कई रीतियों से तैयार की जा सकती है। सबसे सरल रीति में साधारण ग्रेनुलेटेड जस्ते (granulated zinc) पर हलके गंधकाम्ल की क्रिया का उपयोग किया जाता है। ग्रेनुलेटेड जस्ता पिघले हुए जस्ते को पानी में छोड़कर बनाया जाता है, जिससे वह टेढ़े मेढ़े पत्तरों के रूप का हो जाता है। ऐसा होने से उसका तल बढ़ जाता है और गंधकाम्ल की क्रिया, क्रिया-क्षेत्र बढ़ जाने के कारण, अधिक तीव्र हो जाती है। शुद्ध जस्ते पर, अथवा ऐसे जस्ते पर जो ग्रेनुलेटेड न हो, गंधकाम्ल की क्रिया नहीं के बराबर होती है। कुछ ग्रेनुलेटेड जस्ता एक वुल्फ बोतल (Woulfe's bottle) में रक्खा जाता है। बोतल के एक मुँह में एक एक छेदवाले कार्क द्वारा थिसिल कीप (thistle funnel) लगा दी जाती है और दूसरे मुँह में उसी तरह एक निकास-नली लगा दी जाती है। दोनों कार्कों को इस प्रकार दृढ़ता से लगाना चाहिए कि गैस कार्कों के इधर-उधर से न निकल सके। निकास-नली का दूसरा सिरा एक गोल नॉद में 'बीहाइव शेल्फ' (beehive shelf) के नीचे डूबा रहता है। थिसिल कीप द्वारा तेजाब वुल्फ बोतल में डाला जाता है और थिसिल कीप को नीचे की ओर खिसकाकर उसका निचला सिरा तेजाब में डुबा दिया जाता है, ताकि उससे होकर गैस न निकल सके। तेजाब डालते ही तेज़ी से गैस के बुलबुलों का निकलना शुरू हो जाता है। निकासनली द्वारा पहले हवा और फिर कुछ देर तक हवा-मिश्रित गैस निकलती है, किंतु यह मिश्रण विस्फोटक होने के कारण इकट्ठा नहीं किया जाता। गैस के बनते समय कोई जलती हुई वस्तु निकट न रखना चाहिए, नहीं तो उपकरणपात्रों के भीतर, यदि हाइड्रोजन वायु-मिश्रित हुई तो, ख़तरनाक विस्फोटन की संभावना रहती है। कुछ देर में सारी हवा बुलबुलों के रूप में बाहर निकल जाती है और शुद्ध हाइ-ड्रोजन गैस आने लगती
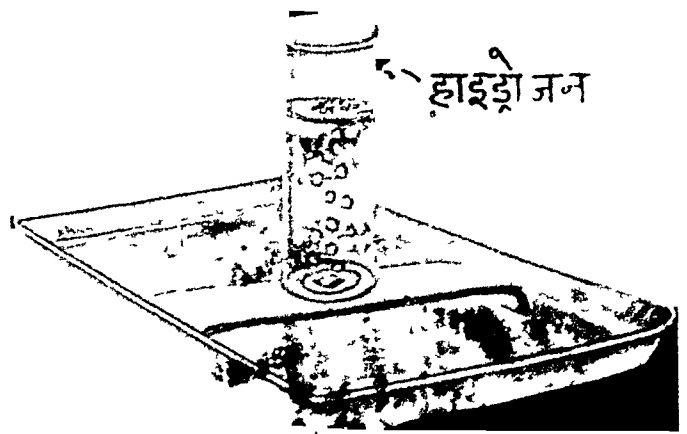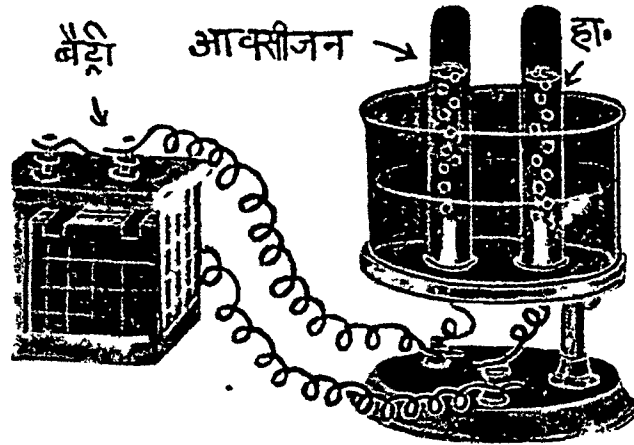
प्रयोगशाला में हाइड्रोजन तैयार करने की रीतियाँ (१) (ऊपर) ग्रेनुलेटेड जस्ते पर हलके गंधकाम्ल का प्रयोग, (बीच में) पानी का वैद्युत विश्लेषण, (नीचे) सोडियम पर जल की प्रतिक्रिया।

है। यह गैस शेल्फ के ऊपर जल से भरा 'गैसजार' नामक पात्र रख देने से इकट्ठा होने लगती है। पानी, अधिक भारी होने के कारण, नीचे उतर जाता है और कुछ ही देर मे जार भर जाता है। गैस से भरा हुआ जार पानी के अदर ही एक ग्रीज़ अथवा वेसलीन लगे हुए घिसे शीशे के गोल प्लेट द्वारा बंद कर दिया जाता है और निकालकर वैसा ही उल्टा रख दिया जाता है। सीधा रखने से हलकी होने के कारण हाइड्रोजन के निकल जाने की अधिक सभावना रहती है। आवश्यकता के अनुसार, इस प्रकार, कई जार भरे जा सकते हैं।

हाइड्रोजन गैस का चाहे जिस समय उपयोग करने के लिए 'किप अपरेटस' नामक यत्र सर्वोत्तम साधन है। इस शीशे के पात्र मे तीन गोल होते हैं। बीच के गोल मे ग्रेनुलेटेड जस्ता रक्खा जाता है। ऊपरवाले गोल की डॉडी बीचवाले गोल से होकर नीचेवाले गोल के पेंदे तक पहुँचती है। ऊपर के गोल से हलका गंधक का तेज़ाब छोडा जाता है, जो नीचे के गोल को बिलकुल भरकर कुछ बीचवाले गोल मे भी पहुँचता है। यहाँ रासायनिक क्रिया शुरू हो जाती है और गैस निकलने लगती है। गैस की आवश्यकता न रहने पर टोंटी बन्द कर दी जाती है। ऐसा करने से बीचवाले गोल मे गैस का दबाव बढ जाता है और तेज़ाब दबकर नीचे खसक जाता है। इस प्रकार जितना तेज़ाब नीचे खसकता है, उतना ही डॉडी द्वारा ऊपरवाले गोल मे चढ जाता है। तेजाब के हटने से बीचवाले गोल मे केवल जस्ता रह जाता है और क्रिया समाप्त हो जाती है। टोंटी खोलने से गैस फिर बाहर निकलने लगती है, जिससे दबाव कम हो जाता है और तेजाब फिर बीचवाले गोल मे चढकर क्रिया को शुरू कर देता है।

प्रत्येक अम्ल मे सयुक्त दशा मे हाइड्रोजन अवश्य रहती है। अम्ल के तेज़ाबी गुण का कारण यही हाइड्रोजन है। गंधकाम्ल के एक अणु मे हाइड्रोजन के दो परमाणु, गधक का एक परमाणु और ऑक्सिजन के चार परमाणु सम्मिलित रहते हैं। वैज्ञानिक भाषा मे हाइड्रोजन का प्रतीक H है, गंधक का S और ऑक्सिजन का O, इसलिए गधकाम्ल का अणुसूत्र H_2SO_4 लिखा जाता है। जब इस तेज़ाब मे जस्ता डाला जाता है, तो वह हाइड्रोजन को
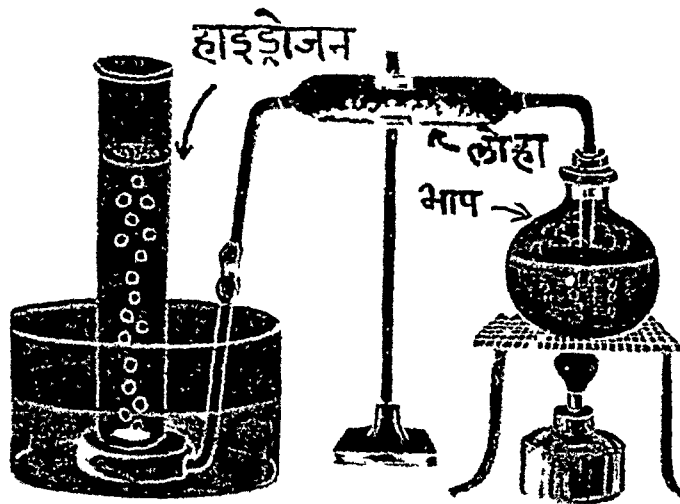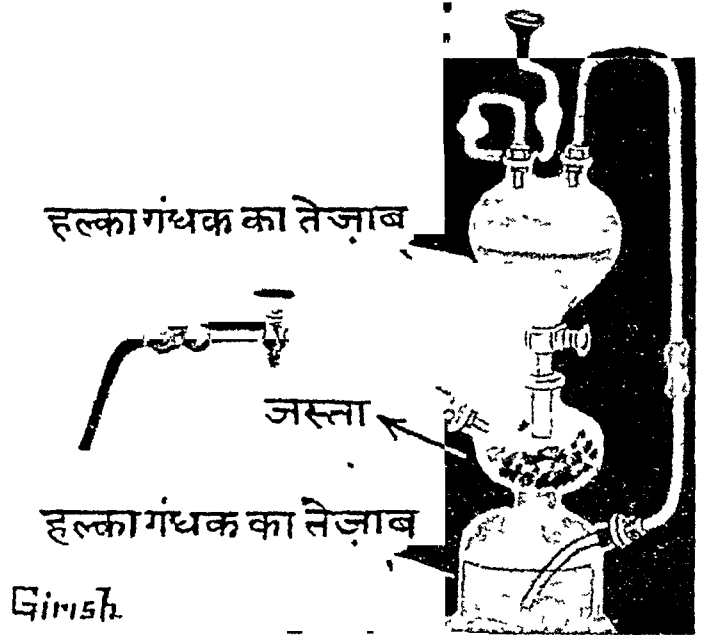
प्रयोगशाला में हाइड्रोजन गैस तैयार करने की विविध रीतियाँ (२)

(ऊपर के चित्र में) किप अपरेटस द्वारा हाइड्रोजन तैयार करने की विधि। (नीचे के चित्र में) लोहे के गर्म बुरादे पर भाप प्रवाहित करके हाइड्रोजन का उत्पादन। [पृष्ठ २७२ पर प्रदर्शित तीन रीतियों और इन दोनों चित्रों की रीतियों का विस्तृत विवरण लेख मे देखिए। यहाँ हमने प्रयोगशालाओं मे बहुत थोडी मात्रा मे हाइड्रोजन तैयार करने की विधियों और यंत्रों के ही चित्र दिये हैं।]

निकालकर बाहर कर देता है और स्वय SO_4 (सल्फेट) अणु-भाग से संयुक्त होकर यशद सल्फेट (ZincSulphate) मे परिवर्तित हो जाता है। यशद (जस्ता) का रासायनिक

प्रतीक Zn है। इसलिए पूरी क्रिया निम्न रासायनिक समीकरण द्वारा स्पष्ट की जाती है—

Zn +	H_2SO_4 =	$ZnSO_4$ +	H_2
यशद	गंधकाम्ल	यशद सल्फेट	हाइड्रोजन गैस
		(जो पानी में घुल जाता है)	(जो निकल जाती है)
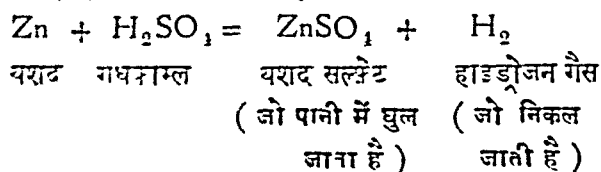
हाइड्रोजन गैस के बनाने की एक दूसरी रीति को 'पानी का वैद्युत् विश्लेषण' कहते हैं। प्रयोगशाला में पानी का वैद्युत् विश्लेषण निम्न रीति से किया जा सकता है। एक शीशे के पात्र में अलग अलग प्लैटिनम धातु के दो पत्र लगे रहते हैं। पानी को बिजली का सचालक बनाने के लिए उसमे थोड़ा-सा गंधक का तेजाब मिला दिया जाता है और दोनों प्लैटिनम-पत्रों के ऊपर उसी तेज़ाबी पानी से भरी हुई दो नलियाँ (अथवा गैस जार) उलट दिये जाते हैं। प्लैटिनम इसलिए उपयुक्त होता है कि उस पर तेजाब आदि का असर नहीं पड़ता। प्लैटिनम-पत्रों को तारों द्वारा बैटरी के दोनो शिरो से सबधित करने पर तुरत दोनों नलियों मे उन पर से बुलबुले उठने लगते हैं। थोड़ी ही देर में पर्याप्त गैस भर जाती है। ऋणध्रुव (negative electrode) पर निकलनेवाली गैस का आयतन धनध्रुव (positive electrode) पर निकलनेवाली गैस के आयतन से दुगुना होता है। परीक्षा करने पर अधिक आयतनवाली गैस हाइड्रोजन पाई जाती है और कम आयतनवाली ऑक्सिजन। हाइड्रोजन जलाने से जल उठती है और ऑक्सिजन एक सुलगती हुई सिगार अथवा दियासलाई को भक से जला देती है। इस प्रयोग मे जो मूल तत्त्व जिस आयतन-संबंधी अनुपात में संयुक्त होकर पानी बनाते हैं, उसी अनुपात मे वे निकल पड़ते हैं। जहाँ बिजली सस्ती होती है, वहाँ हाइड्रोजन को अधिक परिमाण मे तैयार करने के लिए यह एक सुगम रीति है।

हाइड्रोजन संबंधी दो प्रयोग

नं० १—हाइड्रोजन स्वय जलती है किंतु दूसरी वस्तुएँ उसमें नहीं जलतीं (देखिए पृष्ठ २७६ का मैटर)। नं० २—हाइड्रोजन आक्सीजन के मिश्रण द्वारा विस्फोटन (देखिए पृष्ठ २७६ का मैटर)।

हाइड्रोजन बनाने की एक अन्य रीति में गर्म दहकते हुए लोहे के बुरादे के ऊपर से भाफ प्रवाहित की जाती है। उस तापक्रम पर लोहा पानी की ऑक्सिजन से मिलकर अपनी काली चुबकीय ऑक्साइड में परिवर्तित हो जाता है और बची हुई हाइड्रोजन स्वतत्र मूल तत्त्व के रूप में बाहर निकल जाती है। लोहे के सस्ता होने के कारण यह रीति बहुधा हाइड्रोजन को अधिक परिमाण मे बनाने के लिए उपयुक्त होती है। केवल लोहा ही नहीं मैग्नेशियम और जस्ता भी इन दशाओं मे इसी प्रकार पानी से हाइड्रोजन को मुक्त कर देते हैं। सोडियम धातु तो ठढे पानी को ही विच्छेदित कर देती है। यदि हम एक जालीदार बद चमची मे सोडियम का एक छोटा-सा टुकड़ा ले और उसे जलपात्र मे पानी से भरे जार के नीचे डुबो दे, तो हाइड्रोजन बुलबुलों के रूप मे निकलकर जार मे इकट्ठा हो जाती है।

हाइड्रोजन गैस एक रंगहीन, गंधहीन, स्वादहीन, अदृश्य गैस होती है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, ससार की सबसे हलकी वस्तु यही है। हवा से यह लगभग पद्रह गुनी अधिक हलकी होती है। बहुत ही अधिक ठढा करने पर और भारी दबाव मे हाइड्रोजन द्रवीभूत हो जाती है तथा और भी अधिक ठण्ढा करने पर ठोस मे परिवर्तित हो जाती है। तरल हाइड्रोजन एक रंगहीन द्रव होता है, जिसका क्वथनांक –२५३°c और हिमांक –२५९°c है (देखो पृष्ठ २७५ का चित्र)। हाइड्रोजन का एक अणु उसके दो परमाणुओं के सयोग से बनता है। इसीलिए हाइड्रोजन गैस का अणु-सूत्र H_2 लिखा जाता है।

अगर हम गैस से भरे एक जार को सीधा रखकर उसे खोलें और तुरंत जलती हुई चीज उसके मुँह पर ले जायँ तो गैस, यदि वह हवा से मिश्रित नहीं है, धीमी 'पप' की आवाज़ करके एक हलके आसमानी रंग की लौ के साथ जल उठेगी। किन्तु, यदि गैस हवा या ऑक्सिजन से मिल

गई है, तो वह जोर की आवाज़ के साथ जलेगी। यदि हाइड्रोजन के दो आयतन ऑक्सिजन के एक आयतन से मिश्रित हो जायँ, तो इस मिश्रण के जलाने पर बहुत ज़ोर का धड़ाका होगा; और यदि गैसपात्र कमज़ोर है, तो वह फूट जायगा और प्रयोग करनेवाले के लिए चोट का ख़तरा रहेगा। यद्यपि यह विस्फोटन एक विशेष मजबूत बोतल मे किया जा सकता है, लेकिन तब भी सावधानी के लिए बोतल को एक तौलिया या कपडे से लपेट लिया जाता है। (दे० पृष्ठ २७४ के चित्र मे न० २)। गैस के विस्फोटन के बाद बोतल का भीतरी तल जलतुहिन से ढका हुआ पाया जाता है।

जब हाइड्रोजन ऑक्सिजन मे जलती है, तो ऑक्सिजन का प्रत्येक परमाणु हाइड्रोजन के दो परमाणुओं से सम्मिलित होकर पानी के एक अणु मे परिवर्तित हो जाता है। इसीलिए पानी का अणु सूत्र H_2O लिखा जाता है। यदि हम चाहे तो हाइड्रोजन की ज्वालशिखा को किसी ठढे तल पर लगाकर इस प्रकार बने हुए जलवाष्प को घनीकरण द्वारा पानी के रूप मे इकट्ठा भी कर सकते हैं। इस रासायनिक सयोग में बहुत अधिक गर्मी का उद्भवन होता है और इसी कारण हाइड्रोजन की ज्वाला का तापक्रम बहुत ऊँचा होता है।

यदि हम गैस से भरा हुआ एक दूसरा जार उलटा लटकाएँ और उसे खोलकर शीघ्र ही उसमे एक टेढी दीपचमची द्वारा जलती हुई मोमबत्ती डाले, तो हम देखेंगे कि गैस तो जार के मुँह पर जलने लगती है, लेकिन मोमबत्ती बुझ जाती है (दे० पृष्ठ २७४ के चित्र में नं० १)। जैसे ही मोमबत्ती फिर बाहर निकाली जाती है, वैसे ही लौ में लगकर फिर जल उठती है। इससे हमे यह ज्ञात होता है कि हाइड्रोजन स्वय तो प्रज्वलनशील है, किंतु दूसरी वस्तुएँ उसमें नही जल सकती।

हाइड्रोजन की सयोगशक्ति केवल ऑक्सिजन तक ही परिमिति नही है। वह विभिन्न दशाओं मे अन्य बहुत से मूल तत्त्वो, यथा क्लोरीन, ब्रोमीन, गधक, नाइट्रोजन, सोडियम, कैल्शियम आदि, से संयुक्त होकर विभिन्न यौगिक (compounds) बनाता है। हाइड्रोजन की ऑक्सिजन से सयुक्त होने की शक्ति इतनी प्रबल होती है कि जब वह गर्म की हुई कुछ धातव ऑक्साइडों के उपर से प्रवाहित की जाती है, तो उनकी ऑक्सिजन से सयुक्त होकर स्वय तो पानी से बदल जाती है और उन्हे धातुओं मे परिवर्तित कर देती है। इसीलिए हाइड्रोजन को अल्पकारी पदार्थ (reducing agent) कहते हैं और इस क्रिया को अल्पीकरण (reduction) कहते हैं, कारण वह ऑक्साइडों को घटाकर धातुओं में बदल देती है। किंतु इस क्रिया में हाइड्रोजन स्वय ऑक्सिजन से सयुक्त हो जाती है, जिससे पानी बन जाता है। ऑक्सिजन से सयुक्त होने की इस क्रिया को ऑक्सीकरण (oxidation) कहते हैं।

द्रवीभूत हाइड्रोजन

बहुत अधिक ठंढा करने पर और भारी दबाव मे हाइड्रोजन गैस द्रव (liquid) का रूप ग्रहण कर लेती है। इस चित्र मे द्रवीभूत हाइड्रोजन एक थर्मस बोतल में से प्याले में उँडेली जा रही है। (दे० पृष्ठ २७४ और २७६ का मैटर)

हाइड्रोजन का हलकापन और उसका जलना कई मनोरजक प्रयोगो द्वारा प्रदर्शित किये जा सकते हैं। रबर के गुब्बारे को गैस से भरकर उड़ाना उनमें से एक है। इस गुब्बारे को जलाने से वह भक से जल उठेगा। यह जलाने की क्रिया सावधानी से करना चाहिए और गुब्बारे को अपने से कुछ दूर पर रखकर जलाना चाहिए। यदि इस गुब्बारे में एक जलनेवाली बत्ती (touch cotton) को बाँध-

कर लटका दिया जाय और उसका एक सिरा एक सुलगती हुई वस्तु से सुलगाकर गुब्बारा उड़ा दिया जाय, तो थोड़ी देर में उड़ता हुआ गुब्बारा जल उठेगा और एक मनोरंजक दृश्य उपस्थित करेगा।

एक दूसरा मनोरंजक प्रयोग साबुन के बुलबुलों का उड़ाना है। इसके लिए निम्न रीति से तैयार किया गया साबुन का घोल बहुत ही उपयुक्त पाया गया है। ४०० cc स्रवित जल (distilled water) में १० ग्राम सोडियम ओलिएट (साबुन का एक अवयव) छोड़कर एक बंद बोतल में तब तक रक्खा रहने दीजिए जब तक वह घुल न जाय। इसमें १०० cc ग्लिसरीन छोड़कर किसी अँधेरी जगह में कुछ दिन के लिए छोड़ दीजिए, फिर ऊपर का साफ घोल निथारकर उसमें एक बूँद तेज अमोनिया छोड़ दीजिये। हवा में खुला न छोड़ने और अँधेरी जगह

आक्सी-हाइड्रोजन ज्वालशिखा

इस चित्र में आक्सी हाइड्रोजन ज्वालशिखा द्वारा लोहे की एक गर्डर को काटते हुए दिखाया गया है। यंत्र में दो नलियाँ हैं, जो मुँह पर मिलकर एक हो जाती हैं। एक नली से हाइड्रोजन और दूसरी से आक्सिजन गैस आती है। दोनों का मिश्रण टोंटी से निकलता है। जब वह सुलगा दिया जाता है तब भीषण लौ पैदा हो जाती है।
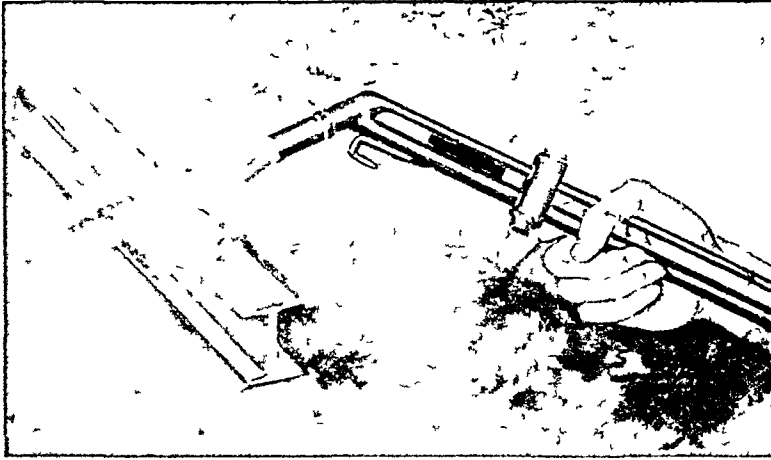
में रखने से यह घोल बरसों काम दे सकता है। साबुन के बुलबुलों को बनाने के लिए एक थिसल कीप के पतले सिरे को रबर की नली द्वारा किप अपरेटस अथवा किसी अन्य हाइड्रोजन अपरेटस से जोड़ दीजिए और कीप को उपर्युक्त साबुन के घोल में डुबा दीजिए। जैसे ही बुलबुला बनने लगे, वैसे ही कीप को ऊपर उठा देने से बुलबुला बन जायगा और अलग होकर उड़ जायगा। यह उड़ते हुए बुलबुले सावधानी से जलाने पर जल उठते हैं।

हाइड्रोजन और हवा के घनत्व में अत्यधिक विभिन्नता होने के कारण उनकी प्रकाश-सम्बन्धी वर्त्तन शक्तियों (refractive powers) में भी बहुत अन्तर होता है। इसीलिए वायु में मिश्रित होती हुई हाइड्रोजन पारदर्शक होते हुए भी तीव्र प्रकाश में अपनी छाया डालती है। हाइड्रोजन अपरेटस के मुँह में लगी हुई किसी पतली टोंटी (jet) को, जिससे हाइड्रोजन निकल रही हो, किसी श्वेत तल के समक्ष रखकर यदि सामने से कोई तीव्र प्रकाश डाला जाय, तो यह छाया देखी जा सकती है।

हाइड्रोजन, इतनी हलकी होने के कारण, गुब्बारों तथा वायुयानों को भरने में उपयुक्त होती है, लेकिन प्रज्वलनशील होने के कारण इसका उपयोग खतरनाक साबित हुआ है। इसलिए आजकल वायुयानों में हाइड्रोजन की जगह पर इसके बाद वाली दूसरी सबसे हलकी गैस हीलियम (helium) का उपयोग होने लगा है। हीलियम में रासायनिक क्रियाशीलता होती ही नहीं, अतएव न वह जल ही सकती है और न उसमें और ही कोई रासायनिक परिवर्तन सम्भव है। हाइड्रोजन का एक अन्य उपयोग 'ऑक्सी-हाइड्रोजन ज्वालशिखा' (oxy-hydrogen flame) के उत्पादन में होता है। इस ज्वालशिखा का तापक्रम लगभग २८००°c होता है और यह इतनी गर्म होती है कि अधिकतर धातुएँ इससे जोड़ी, गलाई, अथवा छिद्रित की जा सकती हैं और इसी कार्य के लिए इसका उपयोग भी होता है। जैसा ऊपर कहा जा चुका है, धातव ऑक्साइडों के अल्पीकरण में भी हाइड्रोजन का उपयोग होता है। हाइड्रोजन का एक अन्य आधुनिक उपयोग वनस्पति तेलों को वनस्पति घी में परिवर्तित करने का है। निकल (nickel) धातु के महीन चूर्ण की उपस्थिति में जब हाइड्रोजन गैस वनस्पति तेलों में से गुज़ारी जाती है, तो तेल इससे संयुक्त होकर घी के रूप में परिणत हो जाते हैं। निकल-चूर्ण इस संयोग को केवल सम्भव कर देता है और इस क्रिया की गति को बढ़ाता है, किंतु स्वयं परिवर्तित नहीं होता। ऐसे पदार्थों को योगवाही पदार्थ (catalysts) कहते हैं।

संप्रश्न*

अंतिम रहस्यात्मक तत्त्व के सम्बन्ध में 'क्यों', 'कैसे' और 'किससे' इन तीन प्रश्नों का समवाय

जिज्ञासा दर्शन की जननी है। उस जिज्ञासा के पथ अनेक हैं। उनका कुछ दिग्दर्शन गत लेख मे हो चुका है। उन सब मार्गों का पर्यवसान किसी एक अज्ञेय रहस्य मे है। उसके विषय मे महा न्यग्रोधो के नीचे विराजमान हमारे पुराण-पुरुष जितना जान पाये थे, उससे कुछ भी अधिक आज तक के भगीरथ प्रयत्नो के द्वारा हम नही जान सके हैं। इस सृष्टि का क्या रहस्य है, इसका नियन्ता कौन है, इसका आदि क्या है, अन्त क्या है, इसके पीछे क्या ज्ञानमय हेतु काम कर रहा है, ये प्रश्न आज के नही हैं, अनेक बार पूछे जा चुके हैं। सर्वप्रथम गगा की अन्तर्वेदी मे इनका समुत्थान हुआ—

कासीत् प्रमा प्रतिमा कि निदानम्? [ऋ० १०।१३०।३]

सृष्टि क्यों? इसकी प्रमा क्या थी, किस भावना को लेकर सृष्टिकर्त्ता ने इसका सूत्रपात किया? सृष्टि कैसे? अर्थात् किस आयोजना अथवा रचनाविधि का अनुसरण यहाँ किया गया, किस प्रतिमा या नमूने के अनुसार इस विराट् आयोजन की प्रवृत्ति हुई? पुनश्च किस निदान अर्थात् सामग्री से इसकी रचना की गई? **क्यो, कैसे और किससे**—ये तीन महान् प्रश्न हैं। इनके गर्भ मे अनेक उत्तरो की आहुतियाँ पडती रही हैं, परन्तु ये प्रश्न आज भी पूर्ववत् बुभुक्षित हैं। ज्ञानतीर्थ के अगणित यात्री इन महादेवो के प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि भेट कर चुके हैं, परन्तु इनका अन्तिम वरदान किसी एक को पूर्णतया मिल सका है, यह सदिग्ध है। अस्यवामीय सूक्त के ऋषि ने गिने हुए शब्दो मे इसी महान् तत्त्व को ज्ञानसृष्टि के आदि मे ही व्यक्त किया था—

कवीयमानः क इह प्रवोचत्? [ऋ० १।१६४।१८]

क्रान्तदर्शी प्रज्ञा से विचार करते हुए कौन अब तक उस रहस्य के अन्त तक पहुँच सका, और कौन उसे कह पाया? भारत के सर्वश्रेष्ठ मनीषी कवि थे। कवि ही उनकी ऋतम्भरा प्रज्ञा को व्यक्त करने के लिए सबसे उपयुक्त शब्द है। कवि को प्राप्त होनेवाले साक्षात् दर्शन को उन्होंने अनेक प्रकार से व्यक्त किया है, परन्तु इसलिए कि हममे से कभी कोई इस धोखे मे न रहे कि रहस्य को जानने का अब अन्त हो गया है, उन्होने स्वय ही सचाई से अपनी मर्यादाओं को हमारे सामने रख दिया है—

को अद्धा वेद क इह प्रवोचत्?

अर्थात् कौन जानता है, कौन कह सकता है? ये उद्गार अगाध ज्ञान के द्वारा प्राप्त होनेवाले अनुभव की गम्भीरता और पूर्णता को ही प्रगट करते हैं, इनमे अशक्त मनुष्यों की निराशा का भाव नही है। अनन्त आकाश मे महाबलवान् गरुड के समान ऊँची से ऊँची उडान भरने पर भी उसका अन्त पाना कठिन है। कागभुशुण्डिजी ने ठीक कहा है—

तुमहिं आदि खग मसक प्रजंता।
नभ उडाहि नहि पावहि अंता॥

अपने पखों से वायुमण्डल को धुन देनेवाले पक्षिराज गरुड को भी यदि आकाश की अनन्तता के आगे नतमस्तक होना पडे, तो इससे केवल आकाश की ही महिमा प्रगट होती है, गरुड की क्षुद्रता नही। विद्वद्वर मेटरलिक ने 'The Great Secret' नामक ग्रन्थ मे बडे तेजस्वी शब्दो मे लिखा है कि नासदीय सूक्त के कर्त्ता ने जिज्ञासा और प्रश्न के मार्ग मे, जितना हम कभी पहुँच सकेंगे उससे भी आगे बढकर, निराशा और अश्रद्धा से हमारी रक्षा करने के लिए, पहले ही कह दिया है—

यो अस्याध्यक्ष. परमे व्योमन् स अंग वेद यदि वान वेद।

अर्थात् इस सृष्टि के रहस्य को कौन जान पाया है, और कौन कह सका है? जो इस सब प्रदर्शन का अध्यक्ष परम पद मे प्रतिष्ठित है, वह भी इसे जानता है या नही, इसमे सदेह है। यह है भारतीय ज्ञान की चुनौती, जिसकी सत्यता आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के सहस्रमुखी प्रयत्नों द्वारा भी खण्डित नही हो सकी है। विज्ञान ने भूतसृष्टि के अपरिमित विश्लेषणों द्वारा प्रोटन, इलेक्ट्रन, न्यूट्रन, पाज़ीट्रन आदि रहस्यमय पदार्थों को हमारे सामने लाकर

* महान् या विराट् प्रश्न (The Great Question)।

खड़ा कर दिया है, जिनका अवलोकन कर प्राचीन देवों का स्मरण हो आता है। परन्तु विश्व का रहस्य कहीं इन सबके पीछे छिपा हुआ है। और जिस प्रकार ऋग्वेद के ऋषि ने कहा है कि देवगण बाद मे जनमे हैं अतएव उन्हे कर्त्ता के आद्य रहस्य का ज्ञान नहीं, उसी प्रकार हम भी कह सकते हैं कि आधुनिक विज्ञान के ये 'अर्वाचीन देवता' शक्ति के आद्य कारण का पता लगाने मे बिल्कुल अशक्त हैं—

न त विदाथ य इमा जजान। [ऋ० १०।८२।७]

'वे उसे नहीं जानते जिसने इस सबको उत्पन्न किया है।' विज्ञान के चमत्कार स्तुत्य हैं, परन्तु कि, कथं, कुतः, इन मौलिक प्रश्नों की उद्भावना जहाँ पहले थी, आज भी वहीं है। 'कस्मै देवाय हविषा विधेम' का काव्यमय संगीत आज भी अमर है और नये अर्थों से भरा हुआ है।

दर्शन के उपःकाल मे जब भारतवर्ष के ऋषियों ने इस प्रकार अपने अनुभवों को व्यक्त किया था, उसके बाद से आज तक विश्वनियन्ता के रहस्य के विषय में हम क्या जान सके हैं? मेटरलिंक ने 'The Supreme Law' नामक अपने ग्रंथ मे प्राचीन और नवीन दोनों की तुलना करते हुए लिखा है—

'What have we found out since? 'Something is doing something we do not what,' writes Eddington Is not this *rescio quid*, which is the last word of our science, but a faint and vulgar echo of the magnificent avowal of the Sama Veda saying of the supreme Deity He who believes he knows it not knows it, he who believes he knows it knows it not at all It is regarded as incomprehensible by those who know it most, and as perfectly known by those who are utterly ignorant of it" [p 66]

अर्थात "तब से हमारे ज्ञान ने क्या प्रगति की है? एडिंगटन का वचन है 'कहीं पर कोई कुछ कर रहा है।' परन्तु क्या विज्ञान की यह अन्तिम स्वीकृति कि 'हमे कुछ नहीं मालूम' इन महान ओजस्वी वचनों की, जिन्हें सामवेद के ऋषि ने परब्रह्म के विषय मे कहा है, एक अति तुच्छ और थोदी प्रतिध्वनि जैसी नहीं जान पड़ती—

यस्यामत तस्य मत मत यस्य न वेद स.।
अविज्ञात विजानताम् विज्ञातमविजानताम्॥

[सामवेदीय केन उपनिषद्]

अर्थात् जो मानता है कि मैं ब्रह्म को नहीं जानता, वह उसे जानता है, और जो यह मानता है कि मैं जानता हूँ, वह उसे नहीं जानता। जो उसके जाननेवाले हैं, वे उसे अनजाना हुआ समझते हैं, और जो कुछ नहीं जानते, वे समझते हैं कि हमने ब्रह्म को सर्वथा जान लिया।"

ब्रह्म या अन्तिम रहस्यात्मक तत्त्व की यही अनिर्वचनीयता है, जिसके कारण उसके आगे सदा के लिए एक दुर्धर्ष प्रश्नवाची चिह्न लगा हुआ है*। इसी से रुग्ण होकर ऋग्वेद के ऋषि ने उस रहस्य का एक नाम **संप्रश्न** कहा है। यह ऐसा विराट् प्रश्न है, जिसकी कुक्षि में विश्व का समस्त ज्ञान समाया हुआ है, जो भूतभुवनभविष्यत् से गर्भित होकर भी अनन्त अवकाश को लिये हुए है।

यो देवानां नामधा एक एव
त सम्प्रश्नं भुवना यन्त्यन्या। [ऋ० १०।८२।३]

अर्थात् अनेक देवों के नामों के पीछे जो एक ही समाविष्ट है, उस 'सम्प्रश्न' नामक देव मे सब भुवनों का पर्यवसान है।

क्या यह कभी सम्भव है कि इस प्रकार के रहस्यमय देव ने जिस रहस्यमय जगत् को उत्पन्न किया है, उसके एक परमाणु का भी सम्पूर्ण रहस्य हमे कभी मिल पायगा? मेटरलिंक ने कहा है कि मैं अपने शत्रु के लिए भी इस प्रकार की कामना न करूँगा कि उसे ऐसे संसार में रहना पड़े, जिसके एक अणु का भी सारा भेद खुल गया हो। फिर वहाँ मनुष्य के लिए कुतूहल और आनन्द का क्या सामान बच रहेगा? अपनी समस्त तर्कणाशक्ति, बुद्धि, धैर्ययुक्त परिश्रम और आविष्कृत वैज्ञानिक साधनों से निरन्तर अध्ययन के बाद भी हमारा ज्ञान अधिकाधिक अ + ज्ञान मे परिणत हो रहा है। जितना हम प्रकाश को ढूँढ़ते हैं, हमारे परिचय का अभाव उतना ही अधिक हमे खटकता है। क्या मनुष्य के प्रयत्नों का पर्यवसान इसीलिए है? परन्तु इससे हम निराश न हों। 'सप्रश्न' के साथ टक्कर मारकर जिस अज्ञान की अनुभूति होती है, वह उस थोथे पाण्डित्य से भली है, जिसमें जिज्ञासा और संशय का उदय ही नहीं होता। उस रहस्य को जानने की जो सनातनी पद्धति है, उससे कम से कम उस तत्त्व का माहात्म्य तो प्रकट होता ही है:—

प्रभु प्रताप महिमा उद्घाटी। प्रगटी धनु विघटन-परिपाटी॥

उस अज्ञेय रहस्य-रूपी शिवधनु के विघटन के लिए एक के बाद एक होनेवाले असफल प्रयत्न, उस शक्ति की अनन्त और अचिन्त्य महिमा को अवश्य व्यक्त करते हैं। 'वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम्'—मैं उस महान् पुरुष को जानता हूँ, इस प्रकार कह सकनेवाले विरले धीर पुरुष ही उस कठोर संप्रश्न-रूपी पिनाक को अधिज्य करने में समर्थ हो पाते हैं।

* 'A confession, where God becomes a mark of interrogation in the darkness.'—*The Supreme Law*, p 67

पृथ्वी की कहानी

धरातल को निरंतर उलट-फेर करनेवाली शक्तियों का एक प्रत्यक्ष उदाहरण

बड़ी बड़ी नदियाँ हिमाच्छादित पर्वतों से उतरकर पर्वत-खण्डों को काटती और शिलाओं को बहाती तथा चूर-चूर करती हुई उनकी मिट्टी को बहा-बहाकर समुद्र के तट-भाग को पाटती रहती हैं। इस चित्र में हिमालय से उतरती हुई गंगा नदी का एक दृश्य है।
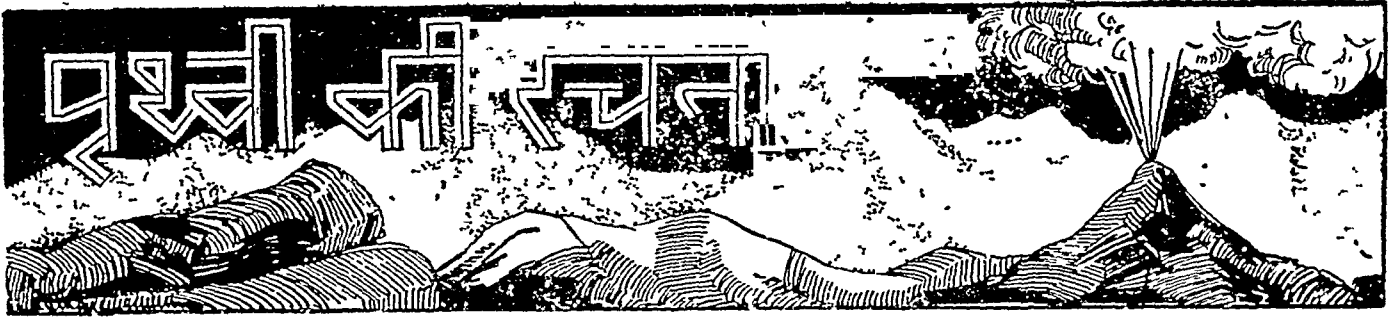
पृथ्वी पर होनेवाली निरंतर घटनाएँ और उनका भूतात्त्विक प्रभाव

पृथ्वी का इतिहास उसके रूप मे होनेवाले निरंतर परिवर्त्तनों का इतिहास है। ये परिवर्त्तन क्या हैं, आइए इस प्रकरण मे देखे।

पृथ्वी जन्म से लेकर आज तक इतनी अधिक बदल चुकी है कि वर्तमानकालीन मनुष्य पृथ्वी के आरम्भिक रूप की कल्पना करने के लिए सहज ही तैयार नही होंगे। वास्तव मे पृथ्वी का परिवर्त्तन इतना शनैः-शनैः हुआ करता है कि मनुष्य अपने जीवनकाल मे इसका बोध नही कर पाता, इसका बोध तो युगो के पश्चात् हो पाता है। परन्तु हमारी दृष्टि के सामने ही नित्य कुछ ऐसी घटनाएँ होती रहती हैं, जिनसे पृथ्वी की रचना मे उलट-फेर होता रहता है। हम इन घटनाओ को निरन्तर देखते हैं, परतु देखते-देखते उनके ऐसे आदी हो गये हैं कि हम उनके महत्त्व को समझने की चेष्टा नही करते। यदि हम इन निरन्तर होनेवाली घटनाओ के प्रभाव का गूढ अध्ययन करे, तो हम आश्चर्य के साथ यह देखेंगे कि इन सब घटनाओ के कारण ही पृथ्वी का रूप निरन्तर बदलता रहता है, और बदलता रहेगा।

पृथ्वी के गर्भ-प्रदेश मे स्थित प्रकृति के कारखाने की एक चिमनी

यह न्यूजीलैंड के एक ज्वालामुखी का फोटो है। यह ज्वालामुखी गर्म लावा और गैसे उगलउगलकर पृथ्वी के अंतस्तल में होनेवाली 'गुप्त क्रिया-प्रक्रिया' का संकेत किया करते हैं।

पृथ्वी की रचना पर प्रभाव डालनेवाली घटनाओ को हम तीन श्रेणियों मे विभाजित कर सकते हैं। प्रथम तो वे साधारण-सी घटनाएँ जो नित्य घटित होती रहती हैं। इनका प्रभाव अदृष्टिगोचर होने पर भी इतना महत्त्वपूर्ण है कि पृथ्वी की रचना मे परिवर्त्तन लाने का अधिकाश श्रेय इन्हीं को प्राप्त है। रात और दिन का होना, ऋतुओं का परिवर्त्तन, दिन मे गर्मी और रात में सर्दी का पडना, वर्षा का होना, नदी-नालो का बहना, झीलों और झरनों का बनना, बर्फ का गिरना, ग्लेशियरों का बहना, आँधियों का चलना, नदियों का समुद्र मे गिरना, नदियों मे बाढ आना, पृथ्वी मे पानी का सोखना, वनस्पतियों की उत्पत्ति, सागर का विस्तार, सागर मे जीवों की

धरातल के परिवर्तन में समुद्र का क्रान्तिकारी प्रभाव

समुद्र लहरों के द्वारा लगातार तट की भूमि को काट-काटकर अपना विस्तार बढ़ाने में प्रयत्नशील रहता है। इस चित्र में प्रदर्शित पानी के बीच के भूखण्ड समुद्र की इसी क्रिया के फलस्वरूप मुख्य भूभाग से अलग हो गए हैं।

उत्पत्ति और विनाश, मूँगे आदि का जन्म, टापुओं का बनना आदि-आदि हजारों घटनाएँ ऐसी हैं, जो हमारे लिए यद्यपि साधारण हैं, तथापि इनका भूतत्त्विक प्रभाव अत्यन्त गम्भीर है।

पृथ्वी पर होनेवाली दूसरे प्रकार की घटनाएँ वे हैं जिन्हें हम 'आकस्मिक घटनाओं' के नाम से पुकार सकते हैं। इस श्रेणी के अन्तर्गत वे घटनाएँ आती हैं, जो पृथ्वी पर कभी-कभी घटित होती हैं और अपना गहरा प्रभाव सदैव के लिए छोड़ जाती हैं। भूकम्प, ज्वालामुखी का विस्फोट, भीषण तूफान और आँधियों का आना आदि इसी श्रेणी की घटनाओं में सम्मिलित हैं।

भूकंप द्वारा होनेवाले परिवर्तन का एक दृश्य

यह मुजफ्फरपुर के कलक्टर के बँगले की ज़मीन का दृश्य है, जो पिछले बिहार-भूकंप में ७ फ़ीट नीचे धँस गई थी।

तीसरी श्रेणी की घटनाएँ वे हैं, जिन्हें हम 'गुप्त घटनाओं' के नाम से पुकार सकते हैं। ये घटनाएँ अधिकतर पृथ्वी और समुद्र के गर्भ में घटित होती हैं, और इसीलिए हम इन्हें देख सकने में असमर्थ हैं। परन्तु इनका प्रभाव इतना भीषण होता है कि उससे पृथ्वी के पिण्ड का रूप ही बदल जाता है। इन घटनाओं के प्रभाव से पृथ्वी पर समुद्र के स्थान में आकाशचुम्बी पर्वतों का उठ खड़ा होना और सूखी भूमि के स्थान पर गहरे जल-गर्त्त बन जाना साधारण-सी बात है।

इन तीनों प्रकार की घटनाओं के फलस्वरूप ही पृथ्वी पर निरन्तर परिवर्तन होते रहते हैं। ये परिवर्तन कई रूप में होते हैं। प्रथम प्रकार की घटनाओं का सबसे महत्त्वपूर्ण

धरातल के परिवर्त्तन में आँधी का हाथ

इस चित्र में रेगिस्तान का एक दृश्य है, जहाँ आँधी के कारण बालू एक स्थान से दूसरे स्थान को उड़ती रहती और इसके कारण बड़े-बड़े टीले बन जाते हैं।

प्रभाव है, 'पृथ्वी के चिप्पड़ का घिसना'। जल इसका प्रमुख कार्यकर्त्ता है। जल के विभिन्न रूपों द्वारा पृथ्वी निरन्तर घिसती जाती है। वर्षा के रूप मे जल पृथ्वी पर आता है, और फिर नदी, नाले, झीलों, झरनों, सोतों, गरम पानी के प्राकृतिक फव्वारों आदि के रूप मे अथवा बर्फ, ओस, पाला आदि के रूप मे परिवर्त्तित होकर अपनी लीला आरम्भ करता है। जल की लीला का पूरा दिग्दर्शन हम आगे के प्रकरणों मे विस्तारपूर्वक करायेंगे, यहाँ तो हम केवल उसके प्रभाव का आभास-मात्र दे रहे हैं। अपने प्रत्येक रूप मे जल पृथ्वी पर दो कार्य करता दिखाई देता है। एक तो वह पृथ्वी को घिसता है और फिर उस छीलन को ले जाकर समुद्र मे जमा करता है। इसके फलस्वरूप बड़े-बड़े पर्वत कट-कटकर समुद्र मे जमा होते जाते हैं, और समुद्र की तह में इस छीलन द्वारा नई शिलाओं का निर्माण होता है। जल के द्वारा पृथ्वी पर जो परिवर्त्तन होते हैं, उनमे नदियों की उत्पत्ति, घाटियों का

धरातल के परिवर्त्तन में जीव-जंतुओं का हाथ

पृथ्वी के चिप्पड़ के उलट-फेर में न केवल जड़ प्रकृति किंतु चेतन जीव-जंतुओं का भी हाथ है। मूँगे (coral) नामक जंतु ही को लीजिए। इस सूक्ष्म जल जंतु की करामात से समुद्र में कई नवीन टापू बन गये हैं। इस चित्र में ऑस्ट्रेलिया के पूर्वीय तट के समानांतर फैले हुए ऐसे ही द्वीपों की हज़ारों मील लंबी शृंखला का एक भाग दिखाया है।
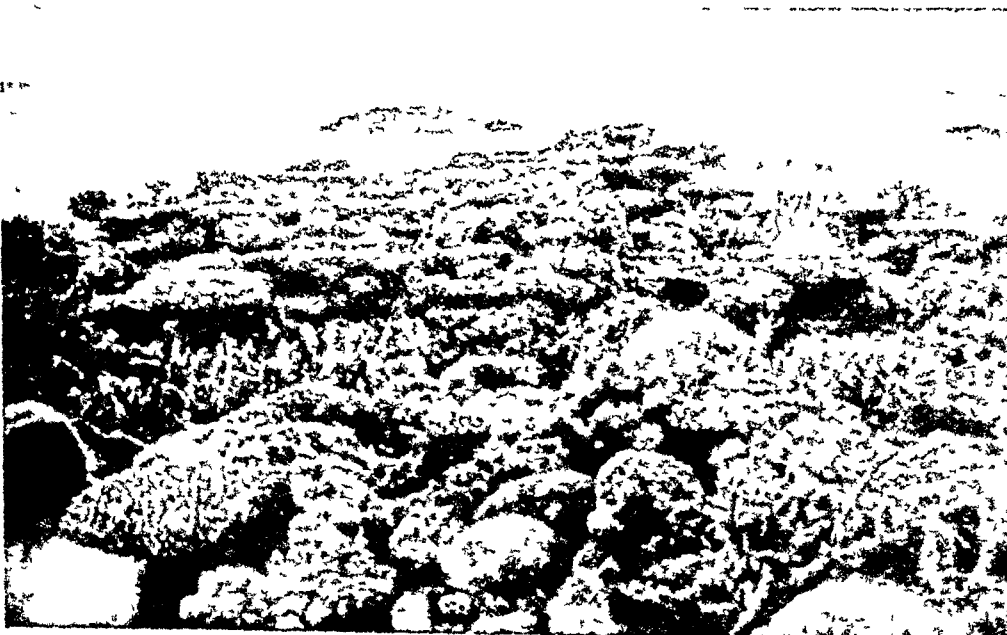
हिमानी या ग्लेशियर का रोमांचकारी दृश्य

यह हिमानी या ग्लेशियर क्या होता है ? बर्फीली शिलाओं का एक हहराता हुआ भीषण नद जो पर्वत शिखरों से धीरे-धीरे खसकता हुआ नीचे की ओर बढ़ता जाता है और राह की कठोर शिलाओं को चकनाचूर करता या बहाता हुआ आगे बढ़कर गंगा जैसी विशाल नदी में परिणत हो जाता है।

निर्माण, पर्वतों का छिन्न-भिन्न होना, वनस्पति की उत्पत्ति और चट्टानों का विध्वंस आदि सम्मिलित हैं।

जल की भाँति ही प्रथम श्रेणी की अन्य घटनाओं का भी प्रभाव पृथ्वी की रचना पर दो प्रकार का पड़ता है—प्रथम तो वर्तमान चिप्पड़ का विनाश और दूसरा चिप्पड़ के नये अवयवों का निर्माण। विनाश और निर्माण की क्रिया निरन्तर साथ-साथ चलती रहती है। जब हम इन घटनाओं के विनाशकारी प्रभाव का अध्ययन करते हैं, तब उनके निर्माणकारी प्रभाव का भी ध्यान रखना पड़ता है।

दूसरी श्रेणी की घटनाएँ जिन्हें हम 'आकस्मिक घटनाओं' के नाम से पुकार चुके हैं, वास्तव में तीसरी श्रेणी की घटनाओं अर्थात् 'गुप्त घटनाओं' के प्रत्यक्ष रूप हैं। गुप्त घटनाएँ पृथ्वी और समुद्रों के गर्भ में होती हैं, परन्तु आकस्मिक घटनाएँ पृथ्वी के ऊपर दिखाई पड़ती हैं। कोई दिन ऐसा नहीं जाता, जिस दिन पृथ्वी के किसी-न-किसी भाग में भूकम्प का धक्का न लगता हो। भूकम्प कैसे और क्यों आते हैं, इसका वर्णन हम आगे विस्तार-पूर्वक करेंगे। भूकम्प और ज्वालामुखी द्वारा पृथ्वी पर कैसे-कैसे अनर्थ होते हैं, इसको प्रत्येक मनुष्य जानता है। इन घटनाओं के फलस्वरूप पृथ्वी की रचना में भी महान् परिवर्तन हो जाते हैं। नदियों के मार्ग बदल जाना, भूमि का नीचा-ऊँचा हो जाना, समुद्र के स्थान पर सूखा देश और पहाड़ों के स्थान पर सागर हो जाना आदि परिवर्तन इन्हीं घटनाओं के फलस्वरूप होते हैं।

गुप्त रूप से होनेवाली घटनाएँ पृथ्वी की रचना में क्रान्ति उत्पन्न करती हैं। ये घटनाएँ अदृश्य हैं, परन्तु इनका प्रभाव महान् है। इनमें भी हम तीन श्रेणी बना सकते हैं। एक तो वे जिनके फलस्वरूप ज्वालामुखी भड़कते हैं, भूचाल आते हैं और पृथ्वी के गर्भ से आग्नेय शिलाखण्डों की उत्पत्ति होती है। पृथ्वी के गर्भ से निकलनेवाली खनिज सम्पत्ति इन्हीं के फलस्वरूप जन्म लेती है।

गुप्त घटनाओं की दूसरी श्रेणी वह है, जो पृथ्वी की रचना में भूमि और सागरतल को नीचा-ऊँचा दायें-बायें उठाती-बैठाती और हटाती रहती है। इस क्रिया का नाम डायस्ट्राफिज्म (Diastrophism) है। इस क्रिया का परिणाम हमें पृथ्वी की रचना के इतिहास में कई स्थलों पर दिखाई पड़ता है। पृथ्वी की रचना का इतिहास बताता है कि लगभग सभी महाद्वीप (भूमिखण्ड) एक न एक

समय सागर के भीतर डुबकी लगा चुके हैं। सागर में डूबना और डूबकर फिर भूमिखण्ड के रूप मे निकल आना अधिकतर भूमिखण्ड के दबने और उठने के परिणाम-स्वरूप हुआ है, समुद्र की सतह के घटने-बढने से नहीं। आगे किसी अध्याय मे हम बतायेंगे कि भूमि का उठना और दबना आज भी निरन्तर होता रहता है। ये घटनाएँ ऐसी हैं, जिनका प्रभाव महाक्रान्तिकारी है तथापि इनको हम देख नही सकते।

डायस्ट्राफिज्म अर्थात् भूखण्डो का असमतल उठना और बैठना तथा इधर-उधर खसकना दो प्रकार का होता है। एक तो पर्वत-निर्माणकारी और दूसरा भूखण्ड-निर्माण-कारी। प्रथम मे प्रस्तरशिलाएँ दबाव पड़ने से टूट या मुड जाती हैं और ऊपर उठ जाती हैं। इस दबाव का प्रभाव शिलाओं के पतले पतो पर अधिक पडता है। दूसरे अर्थात् भूखण्ड-निर्माणकारी का अर्थ है, पृथ्वी के भूखण्डों का सागर के जल मे विलुप्त हो जाना अथवा सागर से निकल-कर नये भूखण्डो के रूप मे प्रकट होना। बडे-बडे भूखण्डो का कई भूखण्डो मे विभाजित होना और छोटे भूखण्डो का मिलकर एक विशाल भूखण्ड बन जाना भी इसी प्रकार की घटना के अन्तर्गत आता है। पर्वत-निर्माणकारी घटनाओ के फलस्वरूप पृथ्वी मे न केवल नये पर्वत बनते हैं, वरन् पुराने पर्वतों की शिलाओं की श्रेणियाँ विशृ खल हो जाती हें, टूट-फूट जाती हैं, मरोडे खा जाती हैं अथवा लचक जाती हैं। भूखण्ड-निर्माणकारी घटनाओं के फलस्वरूप न केवल भूखण्ड ही स्थिर हैं, वरन् समुद्रतल अथवा समुद्र की सीमा भी स्थिर-सी रहती है। एक विशेष बात इन घटनाओं के सम्बन्ध मे भी यही है कि इनका परिणाम अथवा प्रभाव वर्ष दो वर्ष के भीतर तनिक भी नहीं ज्ञात हो सकता। युग बीत जाते हैं और इन घटनाओं के प्रभाव को लोग समझ नहीं पाते। जब पृथ्वी की रचना मे कोई क्रान्ति-कारी परिवर्तन होता है, तभी हमारा ध्यान उसके कारण की ओर जाता है और उस समय हम इन घटनाओं के गुप्त प्रभाव की ओर आकर्षित होते हैं।

डायस्ट्राफिज्म का सबसे महत्त्वपूर्ण प्रभाव पृथ्वी की रचना मे यह पड़ता है कि पृथ्वी की सतह सदैव अनियमित बनी रहती है, भूखण्ड पृथ्वी से नष्ट नही हो पाते। अन्यथा भूखण्डों को सागर का जल आज तक कभी का रगड-रगड-कर मिटा चुका होता और पृथ्वी के ऊपर आज एक सर्व-व्यापक असीमित सागर फैला होता।

पृथ्वी की रचना पर प्रभाव डालनेवाली गुप्त घटनाओं मे एक महत्त्वपूर्ण क्रिया वह है, जिसे 'आइसास्टेसी' (Isostasy) अथवा 'समतुलन' के सिद्धान्त द्वारा समझाया जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार पृथ्वीतल के असमतल भाग, अर्थात् बडे-बडे भूखण्ड, आदि अनियमित और स्वतत्र क्रियाओं के फलस्वरूप नही बन गये हें, वरन् नियमानुकूल सिद्धान्तो के अनुसार बने हैं और इसी के कारण टिके हैं। पृथ्वी के ये असमतल भाग उसके चिप्पड

धरातल के परिवर्त्तन में वायु और सूर्य-प्रकाश का संमिलित प्रभाव

यह अमेरिका के कॉलोरेडो प्रदेश के जर्जरीभूत पर्वत शृंगों का दृश्य है। इस प्रदेश में वर्षा बिलकुल नहीं होती, आँधी और सूर्य की किरणों के प्रभाव से ही ये पर्वत-खण्ड घिस-घिसकर इस प्रकार जीर्ण-शीर्ण हो गये हैं।

के साथ जुड़े हुए नहीं हैं और न उसके कारण ये टिके हैं। वरन् ये भाग पृथ्वी के चिप्पड़ के नीचे के पदार्थ पर उसी प्रकार तैरते हैं, जैसे शहद में मक्खी। चिप्पड़ के नीचे का पदार्थ इस्पात की भाँति कठोर है तथापि भूगर्भ की क्रियाओं के फलस्वरूप उसको भी विचलित होना पड़ता है।

इस सिद्धान्त के अनुसार पर्वतों के नीचे का पदार्थ समुद्रतल के नीचे के पदार्थ की अपेक्षा हलका है। भूतल के नीचे ६० मील की गहराई के ऊपरवाले समान क्षेत्रफल के भूखण्डों का भार बराबर है, चाहे ऊँचाई-नीचाई में उनमें सहस्रों मील का अन्तर हो। पृथ्वी पर भूखण्ड के दो पड़ोसी टुकड़ों में एक पर विशाल पर्वत खड़ा हो और दूसरे में गहरी खाई हो, पर यदि दोनों बराबर क्षेत्रफल के टुकड़ों पर बने हैं, तो उनका भार समान होगा, यही आईसास्टेसी का सिद्धान्त है।

'समतुलन' के सिद्धान्त से भूखण्डों का नीचे-ऊपर बैठना-उठना तथा सागर के स्थान में पर्वतों का निकलना हमारी समझ में बड़ी सरलता से आ जायगा। पृथ्वी का जो भाग घिस घिसकर हलका हो जायेगा, वह ऊपर उठता जायगा और जहाँ पर सदैव पृथ्वी के चिप्पड़ की छीलन जमा होगी, वह भारी होकर नीचे बैठ जायगा। यही कारण है कि समुद्र में ठोस पदार्थों का करोड़ों मन बोझा महीन छीलन के रूप में जाकर नित्य जमा होता है, तथापि वह भरने में नहीं आता। जो पदार्थ उसकी तलहटी में जमा होते हैं, वे अपने भार से तलहटी को नीचे दबाते जाते हैं। इसी सिद्धान्त के बल पर वैज्ञानिकों का कथन है कि हिमालय पर्वत आज भी ऊपर उठ रहा है। प्रकृति के दूत यद्यपि पर्वतों को नित्य काट-काटकर छोटा करने में व्यस्त रहते हैं तथापि वे हलके होकर ऊपर ही उठते जाते हैं।

ऊपर हमने पृथ्वी पर होनेवाली निरन्तर घटनाओं और उनके प्रभाव से पृथ्वी की रचना में होनेवाले परिवर्त्तनों की ओर अपने पाठकों का ध्यान दिलाया है। यहाँ न हमने उन घटनाओं का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है, और न यह दिखाने की चेष्टा की है कि किस प्रकार ये घटनाएँ परिवर्त्तन उत्पन्न करती हैं। वास्तव में प्रत्येक क्रिया पृथ्वी के प्रत्येक भाग में एक ही-सा प्रभाव नहीं उत्पन्न करती। इसका कारण पृथ्वी के चिप्पड़ के विभिन्न भागों की बनावट की विभिन्नता है। इसलिए विभिन्न क्रियाओं के प्रभाव को समझने के लिए आवश्यक है कि पृथ्वी के चिप्पड़ की बनावट को हम समझ लें। अगले अध्याय में पृथ्वी के चिप्पड़ की बनावट का अध्ययन करने की चेष्टा की जायगी।
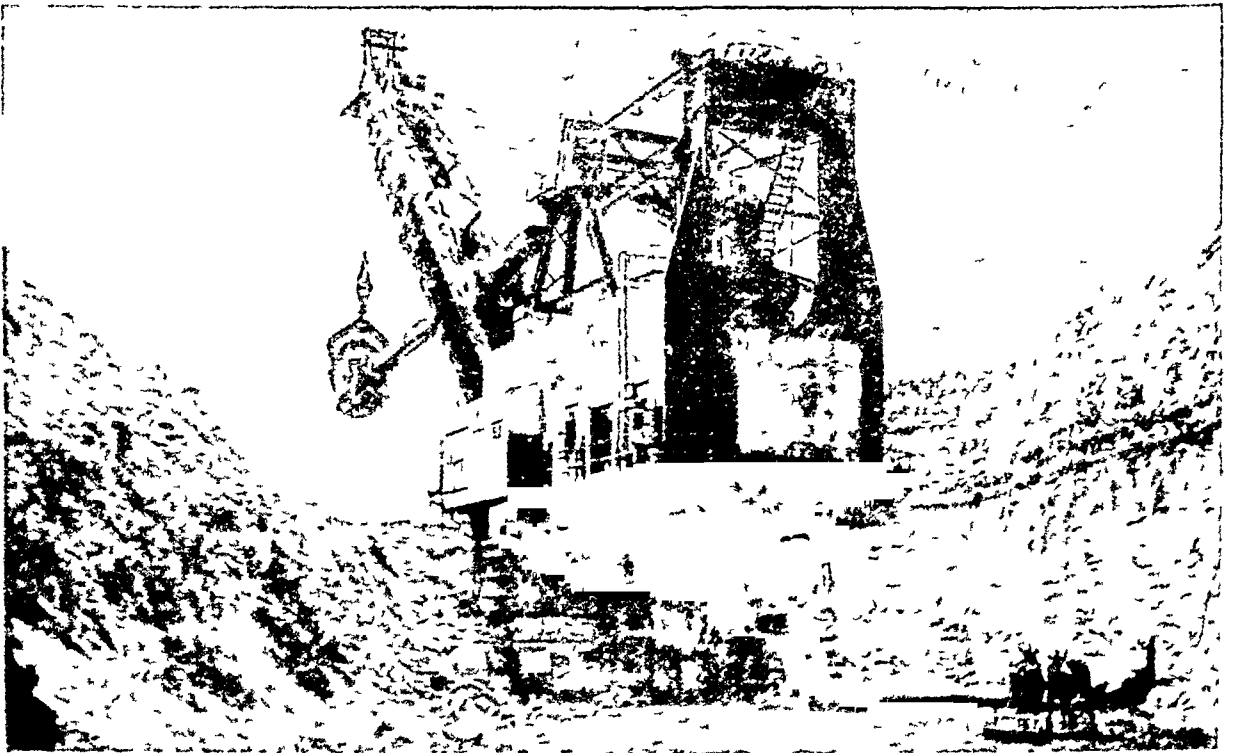
खानों की खुदाई, नहरों की रचना, सड़कों का निर्माण आदि द्वारा धरातल के परिवर्त्तन में मनुष्य का हाथ

पृथ्वी का परिभ्रमण

पिछले परिच्छेद में हम इस बात को जान चुके हैं कि पृथ्वी गोल है। इस प्रकरण में यह बताया गया है कि वह स्थिर नहीं है, बल्कि लट्टू की तरह अपनी धुरी पर घूमते हुए नियत कक्षा में सूर्य की परिक्रमा करती रहती है। भूगोल के अध्ययन के लिए पृथ्वी के इस परिभ्रमण का हाल जानना आवश्यक है, क्योंकि रात और दिन, सर्दी और गर्मी आदि इसी के फलस्वरूप होते हैं।

हमारी पृथ्वी स्थिर नहीं है। वह सूर्य के चारों ओर परिभ्रमण किया करती है। सूर्य की परिक्रमा के साथ-ही-साथ पृथ्वी अपनी काल्पनिक धुरी पर भी सदैव घूमती रहती है। पृथ्वी के अपने ही चारों ओर घूमने की चाल को 'आवर्त्तन' (Rotation) अथवा उसकी 'दैनिक गति' कहते हैं, क्योंकि पृथ्वी अपने चारों ओर घूमने मे एक दिन और रात का समय लेती है। सूर्य के चारों ओर घूमने की गति को 'परिभ्रमण' (Revolution) या 'वार्षिक गति' कहते हैं, क्योंकि इस परिक्रमा को पूरा करने मे एक वर्ष व्यतीत होता है।

एक समय था, जब लोगों का विश्वास था कि पृथ्वी स्थिर है और सूर्य तथा आकाश का सारा नक्षत्रमण्डल ही पृथ्वी के चारों ओर घूमता है। इसी कारण रात और दिन होते हैं। परन्तु धीरे-धीरे लोगो की यह धारणा बदल गई। उनकी समझ मे आ गया कि जिस प्रकार चलती हुई रेलगाड़ी मे बैठे मनुष्य को रेलगाड़ी के बदले किनारे की भूमि चलती हुई प्रतीत होती है, उसी प्रकार पृथ्वी के चलते रहने पर भी यही प्रतीत होता है कि सूर्य चलता है।

पृथ्वी का घूमना सिद्ध करने के लिए 'जिरोस्कोप' नामक यन्त्र की सहायता ली जाती है। इस यन्त्र की यह विशेषता है कि यदि उसकी कीली किसी तारे की ओर कर दी जाय और उसी की सीध मे पृथ्वी के दूसरे पदार्थ रक्खे जायँ, तो पृथ्वी के घूम जाने से इन पदार्थों की दिशा बदल जायगी, परन्तु कीली बराबर उसी तारे की ओर रहेगी।

सूर्य पूर्व मे निकलता और पश्चिम मे अस्त होता प्रतीत होता है। परन्तु वास्तव में हमारी पृथ्वी ही अपनी धुरी पर पश्चिम से पूर्व की ओर घूमती है। पृथ्वी की यह धुरी एक काल्पनिक रेखा मानी जाती है, जो पृथ्वी के केन्द्र से होकर उसके उत्तरी और दक्षिणी चिपटे सिरों को मिलाती है। पृथ्वी का अनुरूप 'ग्लोब' (Globe) इसी कल्पित धुरी पर घूमता दिखाया जाता है। पृथ्वी समान गति से इस धुरी पर निरन्तर घूमती है। परन्तु गोलाकार होने के कारण पृथ्वी के सब भागों के घूमने की गति की तेज़ी एक-सी नहीं है। धुरी के निकटवाले भागो की अपेक्षा धुरी से दूरवाले भाग कहीं अधिक वेग से घूमते हैं। पृथ्वी के मध्य के धरातल पर घूमने का वेग सबसे अधिक अर्थात् १००० मील प्रति घण्टे से भी ऊपर है। मध्य के उत्तर या दक्षिण के भागों मे यह वेग धीरे-धीरे कम हो जाता है। ठीक उत्तरी और दक्षिणी सिरो पर पृथ्वी स्थिर प्रतीत होती है, क्योंकि उन स्थानों मे घूमने का वेग नही के बराबर है। किसी लट्टू अथवा ग्लोब को उसकी धुरी पर घुमाने से उपरोक्त बाते समझने मे सहायता मिलती है।

ग्लोब को देखने से एक विशेष बात यह मालूम होती है कि ग्लोब की धुरी सीधी नहीं है, वरन् एक ओर को झुकी हुई है। वास्तव मे पृथ्वी की काल्पनिक धुरी भी ग्लोब की धुरी की भाँति एक ओर को झुकी रहती है। पृथ्वी की धुरी का पृथ्वी के परिक्रमा-पथ से सदैव ६६½° कोण का झुकाव रहता है। यदि वह झुकी न होती, तो परिभ्रमण के मार्ग से सदैव समकोण बनाती।

पृथ्वी और सूर्य का सम्बन्ध बड़े महत्त्व का है। पृथ्वी सूर्य की निरन्तर परिक्रमा किया करती है। पृथ्वी की परिक्रमा का मार्ग निश्चित है। पृथ्वी यद्यपि सूर्य के चारों ओर घूमती है तथापि उसकी यात्रा का मार्ग पूर्ण वृत्त नहीं

यह अद्भुत फोटोग्राफ उत्तरी अमेरिका के अलास्का प्रदेश में लगभग ६४ डिग्री अक्षांश के एक स्थान से दिसंबर २८ को लिया गया था। केमेरा का रुख दक्खिन की ओर था और चार घंटे तक वह एक ही स्थान में रक्खा गया था। एक ही निगेटिव प्लेट पर क्रमश १०,११,१२,१ और २ बजे दिन को ५ फोटो लिये गये थे। इस फोटो मे स्पष्ट दिखाई दे रहा है कि किस प्रकार सूर्य उदय हुआ और धीरे-धीरे आकाश मे चढ़कर अंत को अस्त हो गया। वास्तव मे सूर्य एक स्थिर नक्षत्र है। हमें उसके परिभ्रमण का जो भ्रम होता है वह पृथ्वी की गति के कारण ही है। दिसंबर मे अलास्का मे केवल ४ घंटे का दिन होने का कारण पृथ्वी की धुरी का झुकाव है।

वह एक प्रकार का दीर्घ वृत्त (ellipse) बनाती है, जिसके केन्द्र पर सूर्य स्थित है। इस पथ की यात्रा पूरी करने मे पृथ्वी को ३६५¼ दिन लगते हैं। इस काल को हम वर्ष कहते हैं। परन्तु वर्ष मे ३६५ दिन ही माने जाते हैं। शेष ¼ दिन जोड़कर प्रति चौथे वर्ष मे एक दिन बढा दिया जाता है और वह वर्ष ३६६ दिन का माना जाता है।

पृथ्वी को गरमी और प्रकाश दोनों सूर्य से ही मिलते हैं। पृथ्वी की गति और उसके झुकाव के कारण धरातल के विभिन्न भागों मे प्रकाश और गरमी दोनो की दशा सदा बदलती रहती है। सूर्य स्थिर है, इसलिए प्रकाश और गरमी का मार्ग भी स्थिर है। परन्तु पृथ्वी के निरन्तर घूमते रहने के कारण धरातल के किसी भी भाग मे न सदैव प्रकाश रहता है और न सदैव अंधकार। जो भाग सूर्य के सामने आ जाता है, अर्थात् जहाँ सूर्य का प्रकाश पड़ता है, वहाँ 'दिन', और जो भाग सूर्य के सामने नहीं होता, वहाँ 'रात' होती है।

पृथ्वी अपनी धुरी पर २४ घंटे में पूरा चक्कर लगा लेती है। इस काल में धरातल का प्रत्येक भाग एक बार सूर्य के सामने आकर फिर छिप जाता है। अर्थात् धरातल पर एक बार दिन और एक बार रात होती है। रात और दिन दोनों को मिलाकर २४ घंटे का समय होता है। परन्तु रात और दिन सदा बराबर नहीं होते। वे घटते-बढ़ते रहते हैं। हम जानते हैं कि हमारे देश मे जाड़ों में रात बड़ी और दिन छोटा होता है। फिर जैसे-जैसे गरमी आती जाती है, दिन बढ़ने लगता है और रात छोटी होने लगती है।

रात और दिन पृथ्वी के आवर्त्तन (Rotation) के परिणामस्वरूप होते हैं। रात और दिन के घटने-बढ़ने का कारण पृथ्वी की परिक्रमा और उसकी धुरी का झुकाव होना ही है। पृथ्वी का परिक्रमा-मार्ग पूर्ण वृत्त नहीं है, इस कारण इस मार्ग मे दो स्थान ऐसे हैं, जहाँ आने पर पृथ्वी सूर्य के सबसे अधिक समीप हो जाती है, और दो स्थान ऐसे हैं, जो सूर्य से परिक्रमा-मार्ग के अन्य स्थानों की अपेक्षा सबसे अधिक दूर हैं। २१ मार्च और २३ सितम्बर की तिथियों के दिन पृथ्वी सूर्य के सबसे निकटवाली स्थिति मे तथा २१ जून और २१ दिसम्बर के दिन सबसे अधिक दूर होती है (दे० पृष्ठ २८६ का चित्र)।

पृथ्वी की इन स्थितियों के फलस्वरूप धरातल पर सूर्य से आनेवाले प्रकाश और गरमी में अन्तर पड़ जाता है। जब पृथ्वी सूर्य के निकटवाली स्थिति मे आ जाती है, उस समय अर्थात् २१ मार्च और २३ सितम्बर को पृथ्वी का प्रत्येक भाग २४ घंटे में सूर्य के सामने आ जाता है और सूर्य ठीक भूमध्य-रेखा के ऊपर होता है। इन अवस्थाओं में पृथ्वी के प्रत्येक भाग मे दिन और रात बराबर होते हैं। इन दिनों को क्रमशः 'वसंत संपात' (Vernal Equinox) और 'शरद संपात' (Autumnal Equinox) कहते हैं।

पृथ्वी की परिक्रमा के मार्ग के जो दो स्थान सबसे अधिक दूर हैं, उन पर पृथ्वी क्रमशः २१ जून और २१ दिसम्बर को पहुँचती है। ये स्थान ऐसे हैं कि यहाँ पृथ्वी की धुरी के झुकाव के कारण उसका कुछ भाग बराबर

२४ घण्टे तक सूर्य के प्रकाश मे रहता है और कुछ भाग पूर्ण अधकार में। २१ जून को पृथ्वी का उत्तरी सिरा बराबर सूर्य के प्रकाश मे रहता है, इसलिए वहाँ पर चौबीसो घटे दिन रहता है। परन्तु इस दिन पृथ्वी का दूसरा छोर इस प्रकार पीछे की ओर झुका रहता है कि वहाँ पर सूर्य की किरणें पहुँच ही नहीं पाती और वहाँ पूर्ण अधकार अर्थात् चौबीसों घण्टे रात होती है।

पृथ्वी की इस स्थिति मे धरातल के जिन स्थानों पर सूर्य ठीक सिर पर चमकता है, यदि उनको एक रेखा के द्वारा मिलाया जाय, तो जो वृत्त बनेगा, उसे 'कर्क रेखा' (Tropic of Cancer) के नाम से पुकारते हैं। कर्क रेखा से पृथ्वी के उत्तरी छोर की ओर ज्यों-ज्यों जायॅ, त्यों-त्यों दिन बड़ा होता जाता है और ठीक छोर पर पहुँचने पर २४ घंटे का होता है। यदि कर्क रेखा से दक्षिण छोर की ओर चला जाय, तो दिन छोटा और रात बड़ी होती है। भूमध्य-रेखा पर पहुँचने से रात और दिन बराबर हो जाते हैं। इस समय अर्थात् २१ जून के लगभग दक्षिण छोर पर रात २४ घण्टे की होती है।

२१ मार्च
२१ जून
२१ दिसम्बर
२३ सितम्बर

पृथ्वी की वार्षिक गति और ग्रीष्म तथा शीत अयन-विन्दु

२१ दिसम्बर को पृथ्वी का उत्तरी छोर बिल्कुल अँधेरे मे रहता है और वहाँ पर २४ घण्टे की रात होती है। इस स्थिति मे जिन स्थानो पर सूर्य ठीक ऊपर होता है, उनको मिलानेवाली रेखा को 'मकर रेखा' (Tropic of Capricorn) कहते हैं। इस समय दक्षिणी छोर पर २४ घटे का दिन होता है, क्योंकि उस समय वह भाग बराबर सूर्य के सामने रहता है। पृथ्वी की इस दशा मे हम दक्षिणी छोर से जितना ही उत्तर की ओर हटते जायॅगे दिन उतना ही छोटा और रात बडी होती जायेगी। परन्तु पृथ्वी के मध्य-भाग पर इस समय भी दिन और रात बराबर होंगे। २१ दिसम्बर और २१ जून की पृथ्वी की स्थिति को क्रमशः "शीत-अयन-बिन्दु" (Winter Solstice) तथा 'ग्रीष्म-अयन बिन्दु' (Summer Solstice) कहते है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पृथ्वी की धुरी के झुके होने से रात और दिन छोटे और बड़े होते हैं। यदि हम आकाश मे सूर्य के निकलने और अस्त होने की जगहो को कई दिन तक ध्यान से देखे, तो हमे यही पता चलेगा कि वे जगहे रोज़-रोज़ बदलती हैं। ज्यो-ज्यों गरमी की ऋतु आती है, और दिन बडे होने लगते हैं, त्यों-त्यो सूर्योदय का स्थान धीरे-धीरे उत्तर-पूर्व की ओर हटता जाता है। जाड़े मे इसके विपरीत दक्षिण-पश्चिम की ओर सूर्योदय होता है। इसका कारण यही है कि पृथ्वी अपना स्थान प्रतिदिन बदलती रहती है। जिस स्थान से सूर्य हमे पिछले दिन दिखाई दिया था, दूसरे दिन उस स्थान से पृथ्वी आगे बढ जाती है।

पृथ्वी की दैनिक और वार्षिक गति के परिणाम-स्वरूप पृथ्वी पर सूर्य की किरणों द्वारा आनेवाली गरमी में भी हेर-फेर होता है। पृथ्वी की धुरी का झुकाव भी इस हेरफेर मे सहायता पहुँचाता है।

जब रात से दिन अधिक बडा होता है, तब सूर्य की किरणों से हमे अधिक गरमी मिलती है। उस समय को हम 'ग्रीष्म-ऋतु' कहते हैं। इसके विपरीत जब दिन छोटा और रात बडी होती है, तब सूर्य से हमे कम गरमी मिलती है और रात को ठढक होने लगती है। इस समय को हम 'शीत-ऋतु' या 'जाड़ा' कहते हैं।

पृथ्वी के सिरों के निकटवाले स्थानों पर गरमी मे दिन अधिक बड़ा और जाडे में रात अधिक बड़ी होती है। इस-लिए उन स्थानों पर असाधारण गरमी या सर्दी पड़ती है।

इस प्रकार धरातल पर विभिन्न देशों की परिस्थितियों मे हम जो अन्तर पाते हैं, उसका महान् कारण है पृथ्वी का 'परिभ्रमण' और 'आवर्त्तन'।
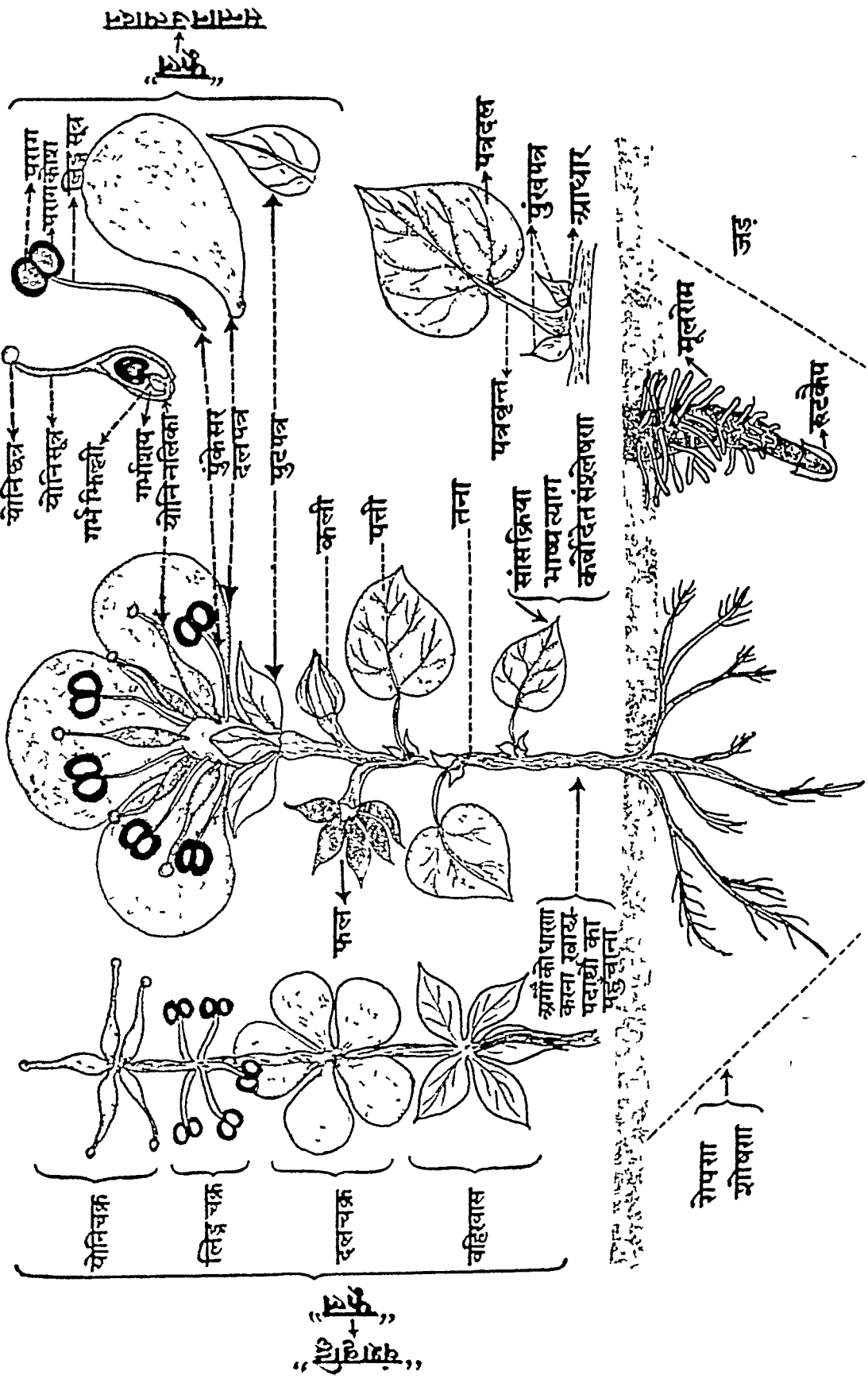
चित्र १—पौधे का अङ्ग-विधान
[चित्र—लेखक द्वारा ।]
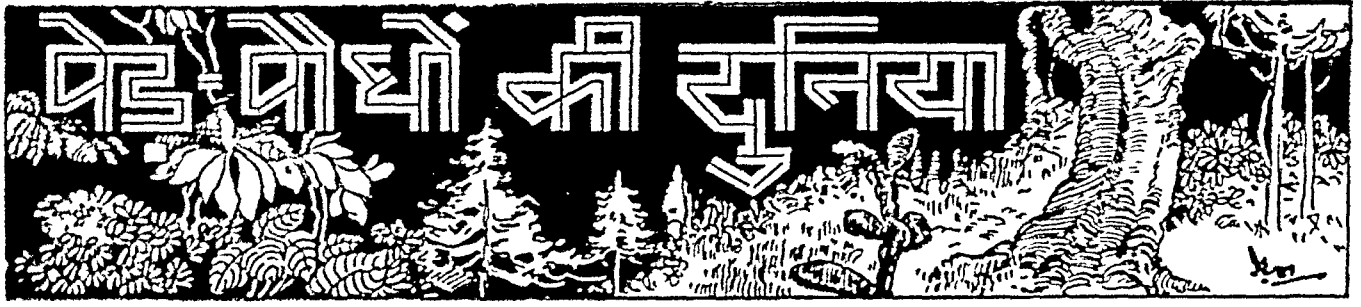
पौधे का अङ्ग-विधान

गत प्रकरण में हम वनस्पति-जगत् के विस्तार और उसके प्रधान अंगों का संक्षेप में पर्यावलोकन कर चुके हैं। इस लेख में पौधों की रचना और उनके अंगों का दिग्दर्शन किया गया है।

पिछले दो अध्यायों को पढ़कर आपको विदित हो गया होगा कि दुनिया में अनेक भाँति के उद्भिज हैं। इनकी बनावट और रहन-सहन की अनेक बातें जानने के लिए आप उत्सुक होंगे। इनके खान-पान, जीवन-मरण सबधी कितने ही प्रश्न आपके हृदय में उठ रहे होंगे। काई और फफूँदी में भी जीव है, यह सुनकर कौन विस्मित न होगा! अमरबेल (*Cuscuta*) और तूँबिलता (Pitcher Plant) के आचरण पर किसे घृणा न उत्पन्न हो रही होगी! परोपजीवी पक्सिनिया (*Puccinia*) और बैक्टिरिया के प्रकोप की सम्भावना पर किसका चित्त अधीर हो विचार-सागर में गोते न लगा रहा होगा! मतलब यह कि पेड़ों के विषय की कितनी ही बातें जानने के लिए आप उत्सुक होंगे। परन्तु इनकी चर्चा तभी की जा सकती है, जब हम पौधों की रचना और आकृति से भलीभाँति परिचित हों। इसलिए सबसे पहले हमको इसी की जाँच करनी चाहिए।

पौधे के अंग

हमारे हर काम के लिए शरीर में अलग-अलग अंग हैं। चलने फिरने को पाँव, काम-काज के लिए हाथ, खाने-पीने के लिए मुह और साँस लेने के लिए फेफड़े हैं। गाय-बैल, मोर, पपीहा, मेढक, मछली आदि के भी अलग-अलग अग होते हैं, लेकिन आप देखते हैं कि कुछ जन्तु ऐसे भी हैं कि जिनमे अग स्पष्ट नहीं होते। केचुए को सभी ने देखा होगा। देखने में इसके नाक-कान और हाथ-पैर नहीं होते, लेकिन फिर भी इसके किसी भी काम में रुकावट नहीं होती। ऐसे ही और भी बहुत-से छोटे-छोटे जन्तु हैं, जिनमे अलग-अलग अग दिखाई नही देते। पेड़-पौधों की भी ठीक यही दशा है। ऊँचे दरजे के पेड़ों में, जैसा कि आप देख चुके हैं, हरएक काम के लिए हमारे-आपके जैसे अग हैं। इन्हें पृथ्वी में अकुरित कर उसके बूँद-बूँद जल और कण-कण नमकों से आहार इकट्ठा करने को एक अग है, तो इन अकार्बनिक (inorganic) वस्तुओं को हवा की कार्बोनिक ऐसिड गैस के कार्बन से मिलाकर सूर्य की किरणों की सहायता से माड़ी (Starch) और शक्कर (Sugar) में बदलकर अपने ही लिए नहीं, वरन सारी दुनिया के लिए आहार तैयार करने के लिए दूसरा, और इनकी जाति को चिरस्थायी बनाकर दूर-दूर देशों में फैलाने के लिए तीसरा अग है। साराश यह कि इनमें जड़, तना, पत्ती, फूल, फल और
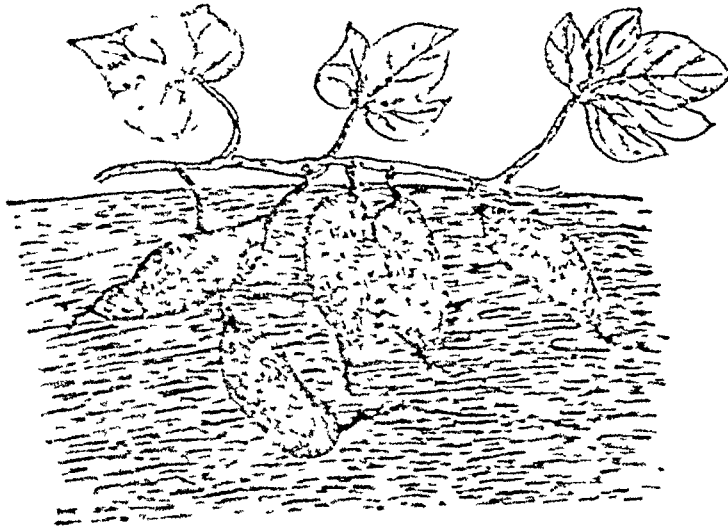
चित्र २—शकरकन्द
[चित्र—लेखक द्वारा]

बीज होते हैं, जिनके अलग अलग काम हैं (दे० चि० १)। क्षुद्र जाति के जीवों की भाँति नीची कोटि के पेड़ों में भी प्रकट अंग नहीं होते। बैक्टिरिया तथा क्लेमाइडोमोनस (*Chlamydomonas*) की भाँति के एककोशीय (unicellular) जीवों में तो आहार-विहार की सारी क्रियायें अति सूक्ष्म जीवनमूल (Protoplasm) के बिन्दु के अन्दर ही होती हैं।

पौधे का पृथ्वी के अन्दर का भाग —"जड़" और उसके कर्त्तव्य

प्राय. सभी साधारण पेड़ों में कुछ भाग जमीन के अन्दर और कुछ ऊपर रहता है। जमीन के नीचे के भाग को 'जड़' कहते हैं। यह अन्दर-अन्दर दूर तक फैली रहती है (दे० चि० १)। जड़ों के अंतिम भाग पर 'मूल रोम' (Root hairs) होते हैं। (दे० चि० १)। ये आसानी से दिखाई नहीं देते, खुर्दबीन से ही देखे जा सकते हैं। जड़ों के सिरे पर दरजी की अँगूठी जैसी एक ढकनी होती है, जिसे रूट कैप (Root cap) कहते हैं (दे० चि० १)। यह जड़ के कोमल भाग की रक्षा करती है। मूल रोमों द्वारा जड़ें जमीन के अन्दर जल में घुले नमकों से पृथक खींचती हैं। पेड़ को जमीन में रोकना और उसके लिए खाद्यपदार्थों का संग्रह करना ही जड़ का मुख्य काम है। कभी कभी जड़े दूसरे काम भी करती हैं। इसीलिए इनमें परिवर्त्तन भी पाये जाते हैं। कोई-कोई जड़े पेड़ों में गोदाम का काम देती हैं। मूली, शकरकन्द (दे० चि० २) और शतावर की जड़ें इसी भाँति की हैं। जड़ों के और भी अनेक रूप-रूपान्तर हैं। जब हम जड़ों के संबंध में अन्य बातों पर विचार करेंगे, तो इस ओर भी ध्यान देंगे।
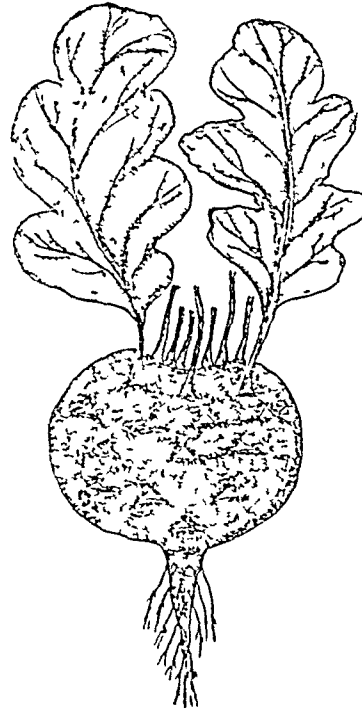
चित्र ३—गाँठगोभी
[चित्र—लेखक द्वारा]

पौधे के पृथ्वी के ऊपर के भाग— तना, पत्ती, फूल, फल और बीज

पेड़ के जमीन के ऊपर के भाग में तीन मुख्य अंग होते हैं—तना और शाखें, जो कठीली और ऊपर उठी रहती हैं, पत्तियाँ, जो पतली और चिपटी होती हैं, और फूल, जो रंग-बिरंगे होते हैं। वास्तव में फूल भी पत्तियों का रूपान्तर हैं। तना और शाखें पत्तियों को धारण करती हैं और जड़ों द्वारा संचित घोलों को इनमें पहुँचाती हैं। यही इनका मुख्य काम है। इसके अलावा तने कभी-कभी अन्य काम भी करते हैं। गाँठगोभी (चि० ३),
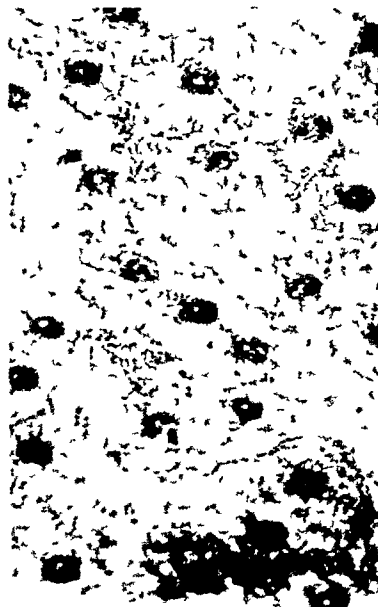
चित्र ४ ५—(बाएँ ओर) सुदर्शन की पत्ती के ऊपरी पर्त का खुर्दबीन से लिया गया फोटो। काले निशान स्टोमैटा हैं। (दाहिनी ओर) ऊपरी पर्त के भाग का अधिक शक्तिशाली खुर्दबीन से खींचा गया फोटो। [फोटो—वि० शर्मा]

अदरक और ज़िमीकन्द के तने खाद्य पदार्थों के लिए भडार का काम देते हैं। जड की भॉति तने के भी अनेक भेद और रूप हैं। आगे चलकर जब हम तने के सबध मे विचार करेंगे, तब हमे बहुत-सी बातों का पता लगेगा।

पत्तियाँ क्या करती हैं ?

पत्तियॉ पेडो मे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अग हैं। ये पर्ण-हरित (Chlorophyll) के द्वारा हवा की कार्बोनिक ऐसिड गैस के कार्बन और पृथ्वी के जल से शक्कर और माडी बनाती हैं। पेड के कलेवर की रचना और बाढ के लिए कर्बोदेत (Carbohydrates) के साथ-साथ दूसरी चीज़ो की भी जरूरत होती है। ये दूसरी वस्तुऍ कहॉ से आती

(पुंखपत्र पत्तियों में परिवर्तित)

हैं ? हम आप सभी जानते हैं कि पेडों को खाद की आवश्यकता होती है। खेत बोने के पहले किसान खेत पॉसते हैं। माली भी समय-समय पर फ़ुलवाडी के पौधो मे खाद डालता रहता है। खाद मे तरह-तरह के नमक रहते हैं। इन्ही नमकों और कर्बोदेत से पेड प्रोटीन (Protein) तैयार करते हैं, जिनसे न केवल उनके शरीर ही की वृद्धि होती है, वरन् समस्त ससार के लिए मनों सामान तैयार होता है। कैसी अनोखी बात है! मिट्टी मे तो नमक बडी सूक्ष्म मात्रा मे होते हैं—इतने कम कि शायद हम आप मामूली तरीक़े से उनका पता भी न लगा सके, केवल रासायनिक विश्लेषण से ही उनका पता चलता है। तब भला पेड़ करोडों मन सामान—गेहूँ, चना, फल, मेवे—के लिए उपयुक्त प्रोटीन कैसे सचित कर पाते हैं ? इस काम के लिए पेडों को अपने कलेवर मे होकर घड़ो पानी बाहर फेकना पड़ता है, तब कही जाकर उन्हे यथेष्ट मात्रा मे नमक मिलते हैं। विद्वानो ने अनुसन्धान से पता लगाया है कि एक एकड गेहूँ के खेत से फ़सल भर मे लगभग ७४२० मन पानी पौधो द्वारा हवा मे जाता है। इसी प्रकार एक एल्म (Elm) का पेड, जिसमे अनुमानतः सत्तर लाख पत्तियॉ थी, और जिनकी ऊपरी और निचली सतह का रक़बा लगभग ५ एकड़ था, चमकते सूरज के प्रकाश मे १२ घटे मे २०० मन पानी त्यागता था।

पानी को बाहर निकालने का काम पत्तियों द्वारा ही होता है और इसी कारण से ये इतनी पतली होती हैं। पेड़ों मे इतनी

चित्र ६—७
(ऊपर) डंडा थूहड का चित्र। (बाईं ओर) मटर की लता का चित्र।
[चित्र—लेखक द्वारा]

अ
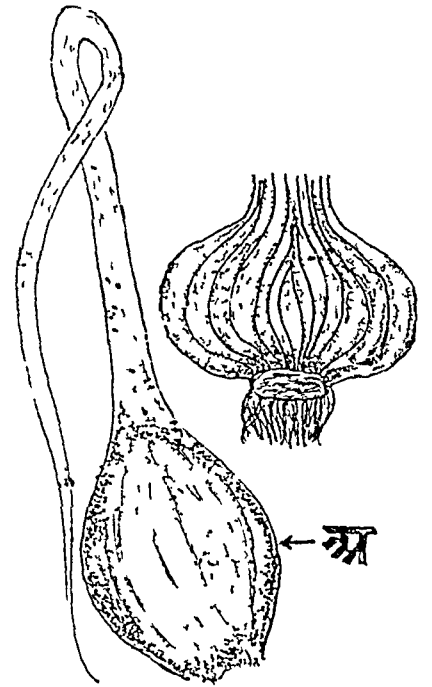
चित्र ८—प्याज़
"अ" पत्ती का निचला भाग, जो गोदाम का काम देता है।

पत्तियॉ होने का यही कारण है। पत्तियों मे नन्हे-नन्हे अनेक छेद (Stomata) होते हैं। इन्हे हम ख़ुर्दबीन से देख सकते हैं (दे० चि० ४-५)। इन्ही के द्वारा पत्तियो मे हवा पहुँचती है और जल बाहर निकलता रहता है।

पत्ती के मुख्य भाग

सम्पूर्ण पत्ती के तीन भाग होते हैं—पत्रदल (Blade),

पत्रवृन्त (Stalk) और आधार (Base) (दे० चि० १)। पत्तियाँ तरह-तरह की होती हैं। इनकी बनावट, शिखा (Apex), सतह (Surface), किनारे (Margin) और नाड़ीक्रम (Veination) आदि के अनेक भेद हैं। किसी-किसी पत्ती में आधार के पास एक अंग होता है, जिसे पुच्छपत्र (Stipules) कहते हैं (दे० चि० ६-७)। ये दो होते हैं और आधार के अगल-बगल रहते हैं। इनके भी तरह-तरह के रूपान्तर हैं। बबूल और उंडा थूहड़ के काँटे (दे० चि० ६) इन्हीं का रूपान्तर हैं। मटर के पुच्छपत्र (दे० चित्र ७) पत्तियों का काम करते हैं।

आहार संचित करने के अलावा पत्तियाँ कभी-कभी अन्य काम भी करती हैं। निपेन्थीज़ की तूँबी, जिसके संबंध में आप पढ़ चुके हैं, पत्ती ही का रूपान्तर है। प्याज में पत्ती का निचला भाग भण्डार का काम देता है। प्याज का वह भाग जो खाने के काम में आता है, पत्तियाँ ही हैं (दे० चि० ८)।

फूल

जैसा ऊपर कहा जा चुका है, फूल भी एक प्रकार से पत्तियाँ ही हैं। फूलों के अनेक भेद हैं। आपने तरह-तरह के फूल देखे होंगे—लाल, पीले, नीले, गुलाबी, सफ़ेद, रंग बिरंगे, कोई सवृन्त (stalked) तो कोई अवृन्त (sessile), कोई छोटे, तो कोई बड़े, किसी की पँखुड़ी आपस में मिली हुई (gamopetalous), तो किसी की अलग-अलग (polypetalous), कोई घंटिकाकार (bell-shaped), तो कोई तुरही-जैसे (trumpet-shaped), कोई अण्डाकार (egg-shaped), कोई तितली-जैसे (papilionaceous), कोई एकान्तवासी (solitary), तो कोई झुंड-के-झुंड एक ही अक्ष पर भाँति-भाँति के व्यूह (Inflorescence) की रचना में; कोई सरस तो कोई नीरस, कोई इतने सुगंधित कि एक ही फूल में फुलवाड़ी को महका दे, तो कोई ऐसे कि जिनमें गंध छू तक नहीं गई है—करोड़ों फूलों से लदे हुए सैकड़ों पेड़ होने पर भी इनकी बास हमारे पास तक नहीं पहुँचती। लेकिन अनेक अन्तर होने पर भी इनका ध्येय एक ही है। प्रकृति ने इनकी सृष्टि एक ही अभिप्राय से की है। फूल पेड़ों की सुन्दरता का ही सार नहीं, वरन् उनका एक परम आवश्यक अंग है। वनस्पति-संसार में निस्संदेह सबसे रोचक कहानी इसी की है। फूल वह नाट्यशाला है, जहाँ पेड़ों की अत्यंत गोपनीय लीलाओं का अभिनय होता रहता है। इस रंगमंच पर कितने ही नट-नटी रूप यौवन में माते, मकरंद की उमंग में मदान्ध हो मर्यादा छोड़ नाचते और किलोलें करते हैं। फूलों में दूसरों को आकर्षित करने का सामर्थ्य है। वसंत-ऋतु में मंद-मंद सुगंध से परिपूरित वाटिका की समीर किसके चित्त को चंचल नहीं करती? फूल के अनुपम रूप रंग पर कौन मोहित नहीं हो जाता? कमल, गुलाब, चम्पा, चमेली की कौन कहे, साधारण फूलों पर भी मनुष्य ही नहीं कीट-विहग तक उन्मत्त हो उनके पीछे लगे रहते हैं। कोई-कोई तो यहाँ तक आसक्त हो जाते हैं कि
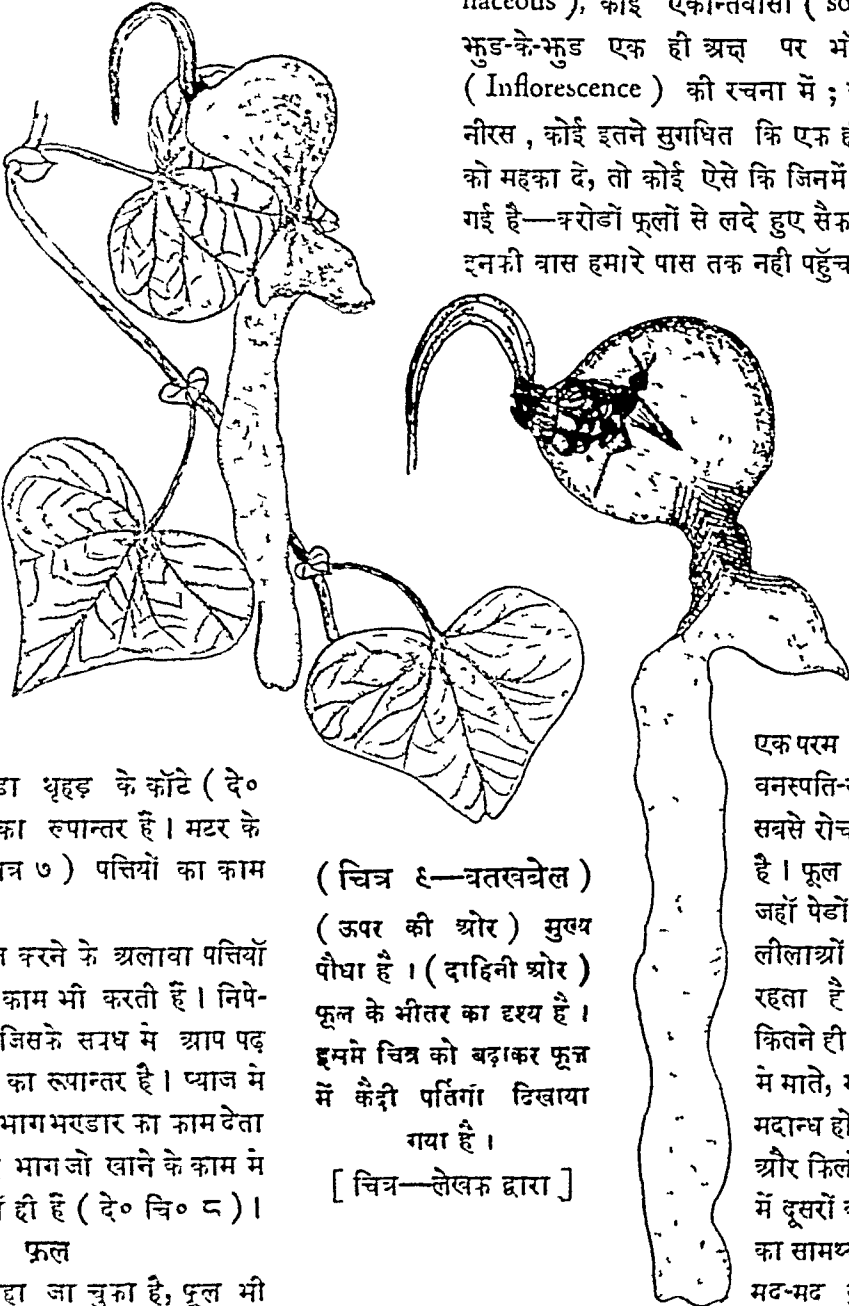
(चित्र ६—बतखबेल)

(ऊपर की ओर) मुख्य पौधा है। (दाहिनी ओर) फूल के भीतर का दृश्य है। इसमें चित्र को बढ़ाकर फूल में कैदी पतिंगा दिखाया गया है।

[चित्र—लेखक द्वारा]
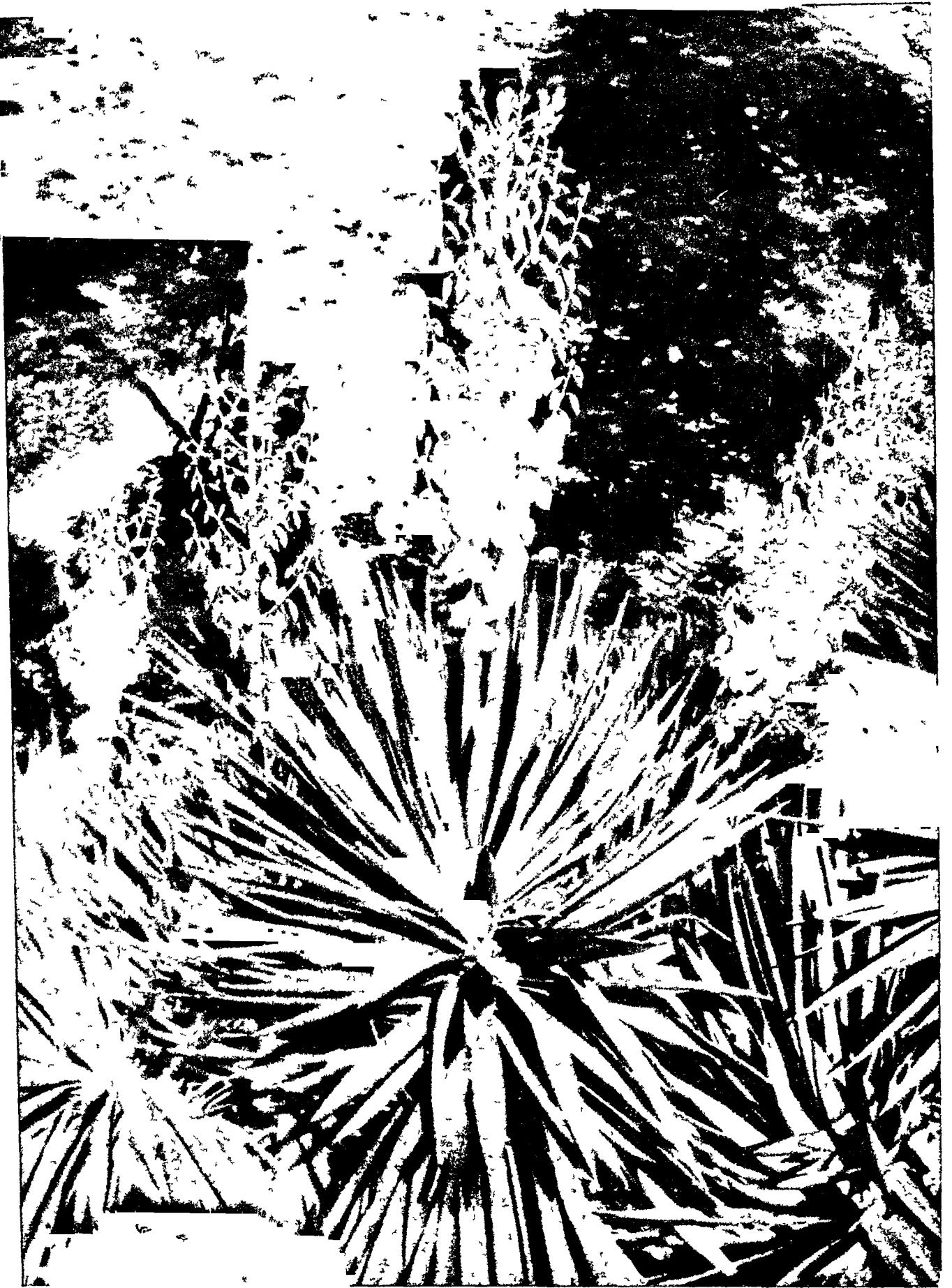
चित्र १०—यक्का (*Yucca*) नामक पौधा

जो अपने गर्भाधान की क्रिया एक विशेष जाति के पतिंगे की सहायता से करता है। [फ़ोटो—श्री० रा० व० सिठोले]

अनेक कष्ट पाने पर भी इन्हें घेरे रहते हैं। "भँवर न छोड़े केतकी, तीखे कंटक जान'। कभी-कभी तो ये अपनी जान तक की परवाह नहीं करते। बतख-बेल (*Aristolochia*) (दे० चित्र ९) के फूल में तो जाकर पतिंगे ऐसे फँस जाते हैं कि एक बार फूल के अन्दर प्रवेश करते ही घण्टों तक के कैदी बन जाते हैं और फिर चाहे जितनी उछल-कूद करें और मचलें, पहरों तक वहाँ से निकल नहीं पाते, लेकिन फिर भी इस आचरण से बाज नहीं आते। एक फूल से निकलते ही दूसरे में जा घुसते हैं। मक्खी, तितली, पतंग आदि को भी आपने फूलों को घेरे देखा होगा। कहाँ तक कहें, इन फूलों में ऐसा जादू है कि घोंघे तक इनके पीछे पीछे बने फिरते हैं! आप समझते होंगे कि हमारी आपकी भाँति अन्य जीव भी यहाँ सैर करने आते होंगे और विवश हो फूल के रूप-रंग में यों ही फँस जाते होंगे। परन्तु ऐसा नहीं है। वास्तव में इन बेचारों को इतनी फुरसत कहाँ जो फूलों पर खेलने आएँ? ये तो दिन-भर काम करनेवाले परिश्रमी जीव हैं। ये फूलों के पास जी बहलाने नहीं आते, बल्कि इसलिए कि इनको यहाँ भोजन मिलता है। यह मधु और मकरंद ही का लोभ है कि जिसके पीछे ये यहाँ मँडराते हैं।

अब आपके सामने प्रश्न ही दूसरा उपस्थित हो गया। आप और भी भ्रम में पड़े होंगे। माना कि कीड़े-मकोड़े फूलों पर इस-लिए आते हैं कि यहाँ इनको भोजन मिलता है, परन्तु पौधे को इनसे क्या लाभ? यह मधु और मकरंद की वर्षा किस-लिए? क्या सात पर्त के अन्दर ग्रन्थियों में सुरक्षित यह मधु निष्प्रयोजन चोर और लुटेरों के मजा उड़ाने के लिए ही है? हम या और कोई भी इस राय से सहमत न होंगे। जिस पेड़ की जड़ें धरती के रत्ती-रत्ती नमक और पाताल के बूँद-बूँद जल में प्राप्य पदार्थों को इकट्ठा करने में इतनी कुशल हों, जिसकी पत्तियाँ वायु-मंडल की विषैली कार्बन-डाइ आक्साइड (CO_2) से शक्कर और निशास्ता या माँड़ी जैसी अमूल्य वस्तुएँ बनाती हों, उसी पेड़ के लिए यह भावना करना कि इसमें मधु और मकरंद केवल इसीलिए है कि दूसरे निकम्मे जीव मौज उड़ाएँ और पेड़ को इनसे कोई लाभ नहीं है, निःसंदेह असंभव है। इसमें हो-न-हो कोई-न-कोई रहस्य है। इसमें अवश्य ही पेड़ों का कोई-न-कोई बड़ा भारी स्वार्थ होगा। यथार्थ में बात भी यही है और फूलों का रूप, रंग, मधु, पराग, आदि सारे माया-जाल इसी स्वार्थ साधन के हेतु हैं। फूलों में पेड़ों की जननेन्द्रियाँ रहती हैं। इनमें भी नर और मादा होते हैं और जब तक इनका मेल नहीं होता, बीज पैदा नहीं हो सकते। ये जननेन्द्रियाँ अपना कर्त्तव्य दूसरों की सहायता के बिना नहीं कर सकतीं। इसी-लिए इन्हें औरों को रिझा-फुसलाकर किसी-न-किसी तरह फँसाकर अपना काम निकालना पड़ता है। चैतन्य की कौन कहे, इस काम को वे जल और पवन जैसे जड़ पदार्थों से भी करा लेते हैं।

चित्र ११—गुलमोहर का पुष्प
(१) बहिरवास से सुरक्षित पुष्प, (२) पूर्णतया खिला फूल—दलचक्र में ५ दल हैं। (३) बहिरवास और दलचक्र निकाल दिए गए हैं। पुष्पेंद्रिय में १० पुंकेसर हैं। (४) योनि-नलिका, (५) फल। [फ़ोटो—वि० शर्मा।]

फूल और पतिंगों का पारस्परिक व्यवहार है। फूलों से पतिंगों को मधु और पराग मिलते हैं और इसके बदले में पतिंगे इनके नर को मादा से मिलाते हैं। कोई-कोई पेड़ तो पतिंगों के यहाँ तक अधीन हो गये हैं कि उनमें बिना विशेष जाति के पतिंगे के गर्भाधान ही नहीं हो सकता। जहाँ इस विशेष जाति के पतिंगे नहीं होते, वहाँ ऐसे पेड़ों में बीज ही नहीं उत्पन्न हो सकते।

यक्का (*Yucca*) इसी प्रकार का एक पौधा है। इसमें सैकड़ों मनोहर रुपहले अण्डाकार पुष्प होते हैं (दे० चि० १०)। परन्तु ये सब सुंदर पुष्प किस काम के? जब तक यक्का-माथ (Yucca Moth) नामक पतिंगा इनमें सेचन (Pollination) करने को न हो, ये सारे-के-सारे मुरझाकर गिर जाते हैं। इनका सारा-का-सारा पराग धूल की भाँति झड़-झड़कर नष्ट हो जाता है। पास ही उपस्थित योनिनलिका (Carpel) तक उसका एक कण भी नहीं पहुँच पाता। इसीलिए इसके सब-के-सब फूल मुरझाकर बिना बीज उत्पन्न किये ही नष्ट हो जाते हैं। कैसी विचित्र लीला है! आगे चलकर जब इस विषय पर हम विचार करेंगे तब आपको और भी कितनी ही रहस्यमय बातों का पता लगेगा।

फूल के मुख्य भाग

साधारण फूल मे चार भाग होते हैं। गुलमोहर (दे०चित्र ११), कोकाबेली (चि० १२), अलामडा (चित्र १३), गुलाब, गुलहड या अन्य किसी पूर्ण फूल को लेकर हम इसकी जॉच कर सकते हैं। ऐसे फूल मे सबसे बाहर 'वहिरवास' (Calyx) होता है (दे० चित्र १, और ११)। इसमे कई 'पुटपत्र' (Sepals) होते हैं, जो अलग-अलग (polysepalous) (दे० चित्र १२) या एक मे जुडे (gamosepalous) (दे० चित्र १३) होते हैं। इनकी अनुहार पत्तियो से बहुत मिलती-जुलती होती है। पत्तियो की तरह इनका रग भी प्रायः हरा ही होता है, परन्तु आकार मे 'पुटपत्र' पत्तियो से छोटे होते हैं। जब फूल कलिका के रूप मे होता है, तब यही 'पुटपत्र' फुल के भीतरी कोमल अगों की रक्षा करते हैं। वहिरवास के अन्दर 'दलचक्र' (Corolla) होता है (चित्र १, और ११)। इसमे भी वहिरवास की भॉति 'दल' या 'पॅखुडी' होती हैं, जो अलग-अलग (चित्र ११, १२) या आपस मे जुडी (चित्र १३) होती हैं। दलपत्र पुटपत्र से बडे और कोमल होते हैं। फूल का रूप, रग, बनावट आदि इन्ही पर निर्भर है। साधारण लोग दलचक्र को ही फूल समझते हैं। दलचक्र के अन्दर और उससे कुछ ऊपर 'पुष्पेन्द्रिय' (Andrœcium) होती है (चित्र १, ११)। इसमे कई पुकेसर (Stamens) होते है (चित्र १, ११)। पुकेसर मे लिगसूत्र (Filament) और परागकोश (Anther), ये दो भाग होते है (चित्र १, ११)। कोश के अन्दर एक धूल-सी वस्तु होती है, जिसे पराग (Pollen) कहते हैं। यही पुष्प का नर-अश हैं। फूल के बीचोबीच फूल का मादा-भाग होता है। इसे 'गर्भकेसर' (Pistil) कहते हैं। (चित्र १, ११)। इसमें एक या कई 'योनिनलिकाये' (Carpels) होती हैं (चित्र १, ११)। योनिनलिका के तीन हिस्से होते हैं—सबसे नीचे 'गर्भाशय' (Ovary) इसके ऊपर एक महीन सूत-सी पोली डडी 'गर्भसूत्र

चित्र १२—कोकाबेली (Water-lily) [फ़ोटो—श्री वि० सा० शर्मा।]

चित्र १३—अलामंडा
[फोटो—श्री० रा० व० सिठोले ।]

(Style), और सबसे ऊपर कुछ उभरा हुआ भाग 'योनिछत्र' (Stigma) (चित्र १, ११) । गर्भाशय के अन्दर नन्हें-नन्हें कण या 'रजोविन्दु' (Ovules) होते हैं । रजोविन्दु गर्भाशय में 'गर्भ झिल्ली' (Placenta) पर होते हैं (चित्र १)।

सम्पूर्ण फूल की रचना पर विचार करने से हमें भली भाँति ज्ञात हो गया कि इसमें नर और मादा दोनों ही अंग हैं। किसी-किसी फूल में नर और मादा अंग पृथक्-पृथक् फूलों में होते हैं और कभी-कभी तो ये पृथक् पृथक् पौधों में होते हैं। जैसा हम ऊपर कह चुके हैं, नर और मादा अंशों के मेल से ही बीज उत्पन्न होते हैं, अन्यथा नहीं। एक ओर परागकोश के अन्दर हजारों नन्हें-नन्हें पराग-कण हैं और दूसरी ओर गर्भाशय में सुरक्षित गर्भ झिल्ली पर अनेक रजोविन्दु (दे० चित्र १)। बीज उत्पत्ति के लिए इन दोनों का संयोग होना आवश्यक है। इसीलिए पराग-कणों को योनिछत्र तक पहुँचना चाहिए। इस क्रिया को सेचन (Pollination) कहते हैं और पानी, हवा, पतिंगे अथवा अन्य जीव इसके मुख्य साधन हैं। इसीलिए फूलों को पतिंगों को आकर्षित करना पड़ता है। इसी अभिप्राय से फूल पतिंगों को मधु और कभी-कभी पराग तक देते हैं।

फल, बीज और प्रसारण

योनिछत्र पर पहुँचने पर परागकण में परिवर्तन होने लगते हैं और अन्त में नर व मादा अंशों का मेल हो जाता है, जिसे गर्भाधान (Fertilisation) क्रिया कहते हैं। इसके पश्चात् गर्भपिण्ड (Embryo) की रचना होती है। यही समय पाकर बीज हो जाता है। अब गर्भाशय कुछ बढ़कर मोटा हो जाता है। यही पकने पर फल बन जाता है। फूल में केवल बीज ही नहीं होता, वरन् बीज को दूर-दूर देशों में फैलाने का साधन भी। आप लोगों ने कभी-कभी बरगद या पीपल को आम, जामुन, खजूर (दे० चित्र १४) या अन्य पेड़ पर अथवा मकान की छतों व दीवालों पर उगा हुआ देखा होगा। इनके बीज वहाँ कैसे पहुँचे ? अगर आप विचार करें, तो पता लग जायगा कि ये बीज वहाँ चिड़ियों द्वारा पहुँचे। इन पेड़ों के पके फलों को चिड़ियाँ बड़े चाव से खाती हैं, परन्तु इनके बीज को हजम नहीं कर पातीं। इसलिए इनकी बीट के साथ बीज जैसे-के-तैसे बाहर निकल आते हैं, और जहाँ कहीं इनका यह बीट पहुँचता है, उसमें इन पेड़ों के सैकड़ों बीज सम्मिलित रहते हैं, जो अनुकूल परिस्थिति पाकर उग आते हैं। चित्र १४ में जो आप बरगद का पेड़ देखते हैं, वह आज से कई वर्ष पहले सम्भवतः इन्हीं

चित्र १४—खजूर पर लगा हुआ बरगद
[फोटो—श्री० हरिपद चौधरी ।]
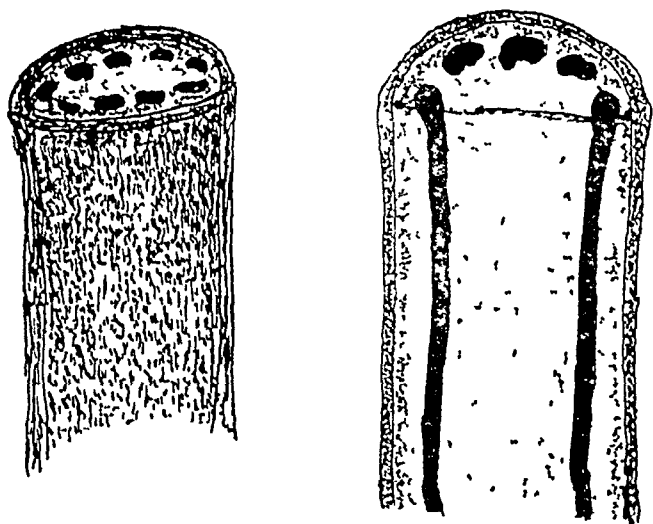
चित्र १५—पेड़ की टहनी
(दाहिनी ओर) बीच से दो फॉक कर दिखायी गयी है। काली लकीरें नसें हैं। [चित्र—लेखक द्वारा]

चिड़ियों द्वारा इस खजूर के पेड़ पर बीजरूप मे आया था। अब इसने बढकर विशाल रूप धारण कर लिया है, और बेचारे खजूर को, जो इसका आश्रयदाता है, यह आज मौत के घाट उतारने पर तत्पर है।

चिडियों के अतिरिक्त अन्य अनेक प्रकार से भी पृथ्वी

चित्र १६—स्पायरोगायरा
ख़ुर्दबीन से लिया गया चित्र। [फ़ोटो—वि० सा० शर्मा]

पर फल और बीजो का प्रसारण होता है। कितने ही फल हैं, जिन्हे लोग खाने को ले जाते हैं और इस प्रकार इनके बीजों को दूर-दूर देशों मे पहुँचाते हैं। कितने ही फल और बीज हवा मे उडते रहते हैं। आपने फाल्गुन और चैत में सेमल के बीज, जिन पर रुई-से रोयें होते हैं, हवा मे हजारों की सख्या में उडते देखे होंगे। ये इसी प्रकार मीलों चले जाते हैं। कितने ही फल नदियो और समुद्रों मे तैरते-तैरते सैकड़ों मील का सफ़र कर कहाँ-से-कहाँ जा पहुँचते हैं। कितने ही फल और बीज जानवरों के शरीर और हमारे कपड़ो मे चिपट जाते हैं, और इसी प्रकार दूर-दूर तक पहुँच जाते हैं।

पौधो की अग-रचना पर विचार करने से हमे पता लगता है कि इनके भिन्न-भिन्न अग अलग-अलग काम करते हैं, परन्तु एक ही लक्ष्य से। इन सबका एक ही अभिप्राय है—एक ही ध्येय है। संसार के जीवन-सग्राम मे पौधे का सफल होना उसके आकार और सौन्दर्य पर नही वरन् उसकी सन्तानोत्पादन की शक्ति और प्रसारण की योग्यता पर निर्भर है। इस लक्ष्य-साधन की पूर्ति में पेड़ के सभी अंग हाथ बटाते हैं—जड़ पेड़ को पृथ्वी मे रोपण करके और पाताल के जल और खाद्य पदार्थों का सग्रह करके, तथा अन्य अगों की धारणा करके; पत्तियाँ जड़ों द्वारा सचित घोलों और वायु-मंडल की कार्बन से शक्कर और निशास्ता की रचना करके; फूल बीज उत्पन्न करके, और फल उनका दूर-दूर देशों मे प्रसारण करके। परन्तु पेड़ के ये प्रत्येक अंग अपने-अपने कर्त्तव्य किस प्रकार पालन करते हैं? जड़े पृथ्वी के ज़र्रे-ज़र्रे से ख़ूराक और जल की योजना कैसे करती हैं? इनके सुकोमल सूत्रवत् रोयें चट्टानों और पत्थरो तक से खाद्य रसों को किस तरह खीचते हैं? तने मे होकर जड़ों द्वारा सग्रहीत पदार्थ पत्तियों तक किस प्रकार पहुँच जाते हैं? सैकड़ों फीट नीचे पृथ्वी के गर्भ की वस्तुएँ हज़ारो फीट ऊँचे पेड़ो की चोटी तक पत्ती-पत्ती मे क्योकर पहुँच पाती हैं? वह कौन-सा यन्त्र है, जिसके द्वारा यह क्रिया होती है? वह कौन-सी शक्ति है, जो इसे चलाती है?
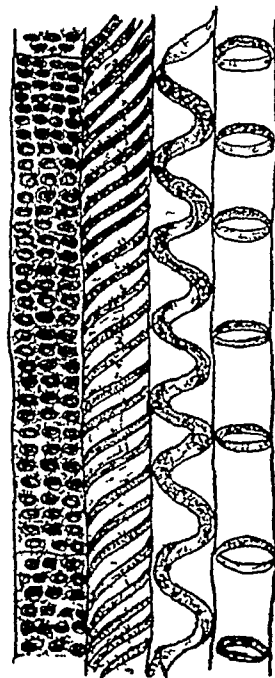
चित्र १७—एक नस के अंदर की चित्रकारी जिसे हम ख़ुर्दबीन से देख सकते हैं।
[चित्र—लेखक द्वारा]

पत्तियाँ किस प्रकार वायु का कार्बन का उपभोग करती हैं? वे स्टार्च और शक्कर जैसे अमूल्य पदार्थों की रचना किस प्रकार करती हैं? वे कौन-सी रासायनिक क्रियाएँ हैं, जिनसे इन वस्तुओं का संश्लेषण होता है? वे कौन-से

चित्र १८-१९-२०

(ऊपर बाईं ओर) मका की शाख के आड़े कत्तल का पाँच गुना बड़ा फोटो । काले निशान नसें हैं। (दाहिनी ओर) उसी के एक भाग का परिवर्द्धित फ़ोटो। नसों के कोश दिखलाई दे रहे हैं। (नीचे दाहिनी ओर) मका की नस के तंतु। यह लवान की कत्तल का खुर्दबीन से लिया गया फ़ोटो है। [फोटो—त्रि० शर्मा।]
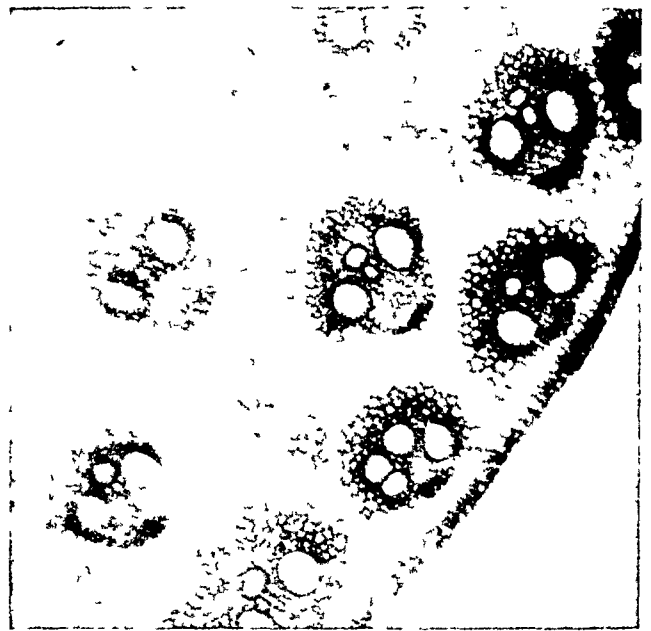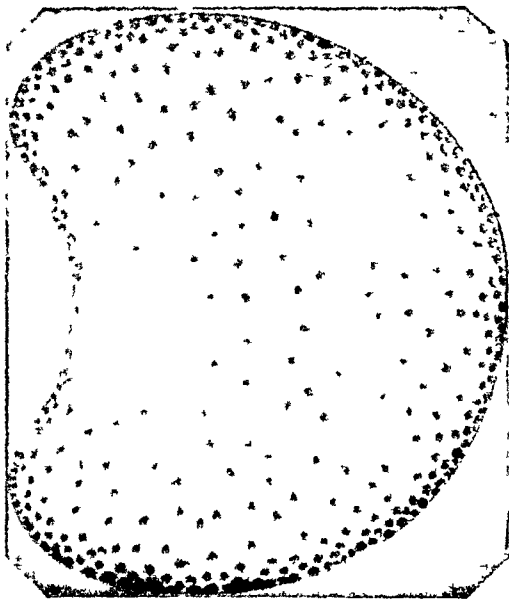
कारखाने हैं, जहाँ ये वस्तुएँ बनती हैं ? इत्यादि-इत्यादि अनेक प्रश्न हैं, जिनको समझने के लिए हमको पेड़ों की आन्तरिक रचना पर विचार करना पड़ेगा। केवल इनकी अग व्यवस्था जान लेने से ही हम सारी बातों के रहस्य का यथेष्ट ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकते।

यदि हम अपने किसी भी अग को ध्यान से देखें, तो हमें तुरन्त पता लग जायगा कि यह बाहर-भीतर एक-से नहीं हैं। इनमें कई पर्त हैं, जिनकी आकृति में बड़ा अन्तर है। हाथ पर ही ध्यान देकर देखिए। सबसे ऊपर घास की तरह सहस्रों रोयें हैं, फिर खाल है जिसमें कई पर्त हैं, इसके नीचे मास, रुधिर, नाड़ी, मज्जा, हड्डी आदि हैं। यही बात आपके अन्य अगों के सबध मे भी है। इसी प्रकार पेड़ के अगों की रचना भी है। ये भीतर-बाहर मिट्टी या पत्थर के ढेले की भाँति एक-से नहीं होते। इनकी रचना मे बड़ा अन्तर होता है। इनमें भी कई पर्त होते हैं। इसका आपको भली भाँति अनुभव होगा। इसकी जाँच भी बड़ी सुगमता से की जा सकती है। किसी पेड़ की टहनी को ले लीजिए। आप इसमे स्पष्ट देख सकते हैं कि सबसे ऊपर छाल, फिर अतरछाल, इसके अन्दर गूदा और गूदे के बीच-बीच कई नसें हैं (चि० १५, १८, १९ और २०)। परन्तु क्या इतना ही जानकर आप सन्तोष कर लेंगे ? अभी पिछले अध्याय मे आपने देखा है कि रेशम के तागे से भी महीन स्पायरोगायरा (Spirogyra) जब खुर्दबीन से देखा जाता है तो अपूर्व छटा दिखाता है। इस बाल से भी महीन नली के अन्दर वह चित्रकारी है, जिसकी समानता करने का साहस ससार का निपुण से निपुण चित्रकार भी नहीं कर सकता (दे० चि० १६)। स्पायरोगायरा की रचना के विषय मे खुर्दबीन द्वारा हमको ऐसी बातो का पता लगता है, जिनकी हम स्वप्न मे भी कल्पना नहीं कर सकते थे। वास्तव में अणुवीक्षण यत्र की सहायता बिना हमारी आँखें वृक्ष के प्रत्येक अग का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने मे असमर्थ हैं। हमको पेड़ की जीवनी और रहस्य, उसकी अनेक क्रियायें, उसके अग-अग के कर्त्तव्य, इन अगो का एक-दूसरे से और बाह्य जगत् मे सबध तथा उसका उद्भव, नाश, विकास आदि समझने के लिए उसके अग-अग की रचना का हाल जानना आवश्यक है। इसलिए हमें पेड़ के रेशे-रेशे की जाँच खुर्दबीन से करनी होगी।

जीवन क्या है ?

जब से मनुष्य में इस अद्‌भुत सृष्टि के संबंध में जिज्ञासा या जानने की भूख जगी है, तब से आज तक 'जीवन क्या है ?' यह प्रश्न एक गूढ पहेली के रूप में उसके सामने उपस्थित है।

इस विषय के पहले लेखों से आप यह जान गये होंगे कि ससार मे कितने प्रकार के जीवित पदार्थ हैं, उनके लक्षण क्या हैं, वे किन तत्त्वों से बने हैं और किस प्रकार वे एक-दूसरे से पहचाने जाते हैं। किन्तु क्या आप कह सकते हैं कि वह कौन-सी वस्तु है, जो सजीव और निर्जीव मे भेद करती है ? अथवा वह कौन-सा पदार्थ है, जिसे हम जीवन कहे ? इस प्रश्न का उत्तर देने का प्रयत्न कीजिए, परन्तु देखिये, कही आप भी उसी तरह असफल न हो जायँ, जैसे कि आपके पहले बहुत-से लोग इसी खोज मे असफल हो चुके हैं। सभी जानते हैं कि जीवित रहना क्या है, परन्तु यह कहना आसान नही है कि जीवन के लक्षण या उपादान क्या हे। मनुष्य या पशु जब मर जाता है, तब हम कहते है कि उसने प्राण त्याग दिये या प्राण उसके बाहर चले गये। वह कौन-सी वस्तु है, जो सजीव पदार्थ मे है और मृत्यु हो जाने से निकल जाती है ? क्या मृत्यु किसी चीज का खो जाना या निकलना है, या केवल रूप का बदल जाना है, जैसे बर्फ के ढेले के गलकर पानी हो जाने मे, पानी के भाफ बन जाने मे, चॉदी से रुपया बनने मे और रुपये के गलकर फिर चॉदी बन जाने मे होता है ? वास्तव मे इसका ठीक-ठीक उत्तर कोई नही जानता।

क्या जीवन कोई पदार्थ या शक्ति है ?

हज़ारों वर्ष पहले से मनुष्य ने जीवन की प्रकृति पर विचार किया है, परन्तु वह अभी तक जीवन के भेदो को नही समझ सका है। ऐसा जान पडता है कि जीवन की समस्या ने हमारे पूर्वजों को इतने सकट मे नहीं डाला था, जितना हमे। एक समय मनुष्य का यह विचार था कि जीवन और सॉस एक ही हैं, क्योंकि वे देखते थे कि जब कोई प्राणी मर जाता है, तो उसकी श्वासोच्छ्वास क्रिया भी बन्द हो जाती है। परन्तु हम कुछ ऐसे भी जीवों को जानते हैं, जो बिना सॉस लिये ही जी सकते हैं। हमे यह भी मालूम है कि सॉस मे गैस अथवा वायव्य रहता है, जो ठोस या द्रव पदार्थ मे बदला जा सकता है। अतः प्राण को सॉस नही कहा जा सकता, न वह कोई पदार्थ ही है। यह निश्चय हो चुका है कि आदमी या जानवर के मरने पर उसका भार न बढता है न घटता। यह भी मालूम कर लिया गया है कि मरने से शक्ति मे कोई भी ऐसी कमी नही होती जो नापी या जानी जा सके। मृत शरीर धीरे-धीरे इसलिए नही ठढा हो जाता कि उसमे से कोई नापी जा सकनेवाली वस्तु निकल जाती है, वरन् इसलिए कि जीवन की क्रियाओं के बन्द हो जाने से तदुपरान्त शरीर मे गर्मी नही पैदा हो पाती। इसलिए जीवन कोई शक्ति भी नही कही जा सकती। न वह पदार्थ है न शक्ति।

जीवन के कुछ गुण

यह पहले कहा जा चुका है कि जीवधारी खाते, पीते, बढते और अपनी-सी सन्तान उत्पन्न करते हैं। लेकिन वह कौन-सी रहस्यमय वस्तु है, जिसके कारण जीवधारी इन गुणों को प्राप्त कर लेते हैं और निर्जीव पदार्थ मे ये नहीं पाये जाते ? प्रारम्भिक मनुष्यों का यह विचार था कि आत्मा या जीवनी-शक्ति शरीर मे बाहर से फूँकी जाती थी और मरते समय वह शरीर को त्याग देती थी। यह बात उतनी ही सही है जितना मूर्ख और अशिक्षित मनुष्यों का पहले-पहल ग्रामोफोन और रेडियो का गाना सुनकर यह विचार करना कि जो आवाज़ उन्हें सुनाई देती है, वह किसी भूत-प्रेत की आवाज़ है। कहा जाता है कि जब सर्वप्रथम भारत-

वर्ष मे कलकत्ते के लोगों ने पहली रेलगाड़ी देखी, तो उन्हें यह विश्वास हो गया कि इजन काली माई के प्रताप से ही रेल के पीछे के डिब्बो को खींचता है, परन्तु आज हम सब जानते हैं कि इजन के चलने मे कोई ऐसी विचित्रता नही है, जो समझ में न आवे। उसके चलने का कारण भाफ है, किसी देवी का प्रताप नहीं। विज्ञान और मानव-विचारो के विकास के इतिहास मे ऐसी बहुत-सी अद्भुत बातों के उदाहरण मिलते हैं, जिनका सबध किसी समय भूत-प्रेत से जोड़ा जाता था, परन्तु बाद में पता चला कि वे स्वाभाविक कारणों और पहचानने योग्य साधनों द्वारा ही होती हैं। यही बात बहुत-से आविष्कारों तथा प्लेग, हैजा, चेचक-जैसे भयकर रोगों के विषय मे भी हुई है। सारे ससार के मनुष्य रोगों को बहुत दिनों तक ईश्वर का दण्ड मानते रहे। हमारे देश में आज भी बहुत-से लोग चेचक को 'माता' तथा 'देवी' के नाम से पुकारते हैं। जब घर मे किसी को यह बीमारी हो जाती है, तो घर की स्त्रियॉ यह समझकर कि घर में देवी का प्रवेश हुआ है, जब तक बीमारी रहती है, बहुत सफाई रखती हैं, और देवी की पूजा करती हैं। इस भय से कि कहीं माता रुष्ट न हो जायॅ, वे रोगी को कोई दवा नहीं पीने देतीं। वे यथाशक्ति ऐसा प्रबन्ध करती हैं कि माता प्रसन्न होकर रोगी को शीघ्र ही अच्छा कर दें और घर से विदा हो जायॅ। इसी प्रकार कुछ वर्ष पूर्व जब हमारे देश में प्लेग की बीमारी जोर से फैली थी, तो लोग उसे 'महामारी' कहते थे। देहाती ही नहीं नागरिक भी उससे बचने के लिए पूजा-पाठ करते और दान-दक्षिणा देते थे। अब तो डाक्टरों और वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिया है और हममें से भी बहुतेरे जान गये हैं कि इन रोगों का कारण देवी-देवता अथवा भूत-प्रेत नहीं हैं। ये रोग ऐसे स्पष्ट कीटाणुओं से होते हैं, जिन्हें शिक्षित मनुष्य सहज मे देख-भाल और परख सकते हैं। ऊपर के विवेचन से ऐसा लगता है कि जीवन की परिभाषा करना बहुत कठिन है, इसलिए हमें पहले जीवन का वर्णन करना चाहिए। इसको अच्छी तरह समझ जाने से जीवन की प्रकृति को समझने में सुविधा होगी।

(१) वृद्धि

हम पहले परिच्छेद मे लिख चुके हैं कि जब चीनी का कोई रवा चीनी के सम्पूर्ण घोल मे लटका दिया जाता है, तो वह धीरे-धीरे बड़ा हो जाता है, परन्तु वही रवा नमक के घोल मे रक्खा जाय, तो कदापि न बढ़ेगा, क्योंकि वह उस नमक को, जिसके घोल मे वह डूबा हुआ है, बदलकर अपने मे नहीं मिला सकता। इसका यह अर्थ है कि रवा अपने जैसे पदार्थ के घोल मे ही बढ सकता है। यदि वह अपने से भिन्न वस्तु के घोल मे रख दिया जाय, तो वह न उसे बदल ही सकता है, और न अपनी वृद्धि ही कर सकता है। जीवधारियों मे यह बात नहीं होती है। साधारण-से-साधारण जीव भी किसी अनोखे ढग से आस-पास की वस्तुओं को बदलकर उनसे लाभ उठा सकते हैं। या यों कहिए कि प्राण में (और इसलिए सभी जीवधारियों में) कोई ऐसा पदार्थ है, जो अपने स्पर्श में आनेवाली वस्तु को प्रभावित करके उन भौतिक और रासायनिक क्रियाओं को, जो उस वस्तु पर क्रिया करती हैं और जिन पर कि वह वस्तु प्रतिक्रिया करती है, ऐसे डौल पर लाता है कि जिससे स्वय उसका स्वभाव या रूप उत्तरोत्तर सिद्ध या पूर्ण होता जाता है। प्राण-हीन पदार्थ ऐसा नहीं कर सकते।

(२) सर्वकालिक परिवर्तन

एक प्रकार से कहा जा सकता है कि सजीव पदार्थ में सर्वकालिक परिवर्तन की योग्यता होती है। जानवर हर घड़ी हवा मे सॉस लेते हैं, और भोजन खाते हैं। शरीर में पहुॅचकर सॉस ली हुई हवा और खाये हुए पदार्थ टूट-फूटकर साधारण तत्त्वों मे बदल जाते हैं, जो उन तन्तुओं और इन्द्रियों को बनाने मे काम आते हैं, जिन्हे हम प्राणी के भिन्न-भिन्न भागों में पाते हैं। सब प्राणियों के पालन-पोषण में यह क्रिया या अवस्था—जिसके द्वारा खाई हुई वस्तुऍ पचकर शरीर का भाग बन जाती हैं—जीवनी-क्रियाओं का प्रधान आधार है। इसके बिना जीवन असम्भव है। इस प्रकार जीवित पदार्थ के बनने में बल या शक्ति की बहुत आवश्यकता होती है। हमें चलने-फिरने तथा अन्य कामों के करने मे बल की जरूरत होती है। इस दौड़ने-धूपने, लिखने-पढने आदि के करने से जो बल की कमी हममे हो जाती है, अथवा जो तत्त्व क्षीण हो जाता है, उसकी पूर्त्ति भोजन-सामग्री के शरीर में पहुॅचकर जीवनप्रद तत्त्वों में परिणत होने से ही होती है। इसी क्रिया के फलस्वरूप शरीर में दूषित पदार्थ भी बनते हैं। आहार का जो भाग हम शारीरिक तत्त्वों में नहीं बदल सकते, वही हमें मल और मूत्र के रूप में त्यागना पड़ता है। इस प्रकार सब जीवधारियों में बनाने और बिगाड़ने की दोहरी क्रियाऍ एक साथ ही होती रहती हैं। बाल्यावस्था में बनानेवाली क्रिया बिगाड़नेवाली क्रिया से अधिक तेज होती है। इसी कारण बाल्यावस्था में जीवों के शरीर और अग बढ़ते जाते हैं, और युवावस्था में पहुॅचकर तन्दुरुस्त बने रहते हैं। जब शरीर में बनानेवाली

क्रिया बिगाड़नेवाली क्रिया से प्रबल हो जाती है, तो जीवधारी बूढ़े होने लगते हैं और उनके शरीर भी कमज़ोर हो जाते हैं। इस दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि **जीवन एक भाँति की भौतिक और रासायनिक क्रिया है, जिसके जटिल मिश्रणों में बनने और बिगड़ने की परिवर्तनकारी क्रियाएँ निरंतर और साथ-साथ होती रहती है।**

(२) आत्म-रक्षा

जीवन का एक और मुख्य गुण, जो जीवन अथवा जीव-संबंधी क्रियाओं का द्योतक है, यह है कि सर्वकालिक परिवर्तन होते हुए और विविध प्रकार की शक्तियों का प्रभाव पड़ते हुए भी उनमें अपने जातीय रूप और रासायनिक रचना को स्थिर रखने की योग्यता है। इसको हम इस प्रकार कह सकते हैं कि हर प्रकार का प्राणी एक विशेष प्रकार के रासायनिक मिश्रण का नमूना है और हर प्रकार का जीवन एक रासायनिक परिवर्तन का विशेष नमूना है। एक दूसरे से सम्बन्ध रखनेवाले प्राणियों में रासायनिक हेर-फेर का रूप बहुत-कुछ एक-सा ही होता है, जैसा कि मनुष्य और वानर में। किन्तु मनुष्य और मछली में वह बहुत-कुछ पृथक् होता है, और मनुष्य और गगनधूल (खुम्मी) में तो इस सबंध में और भी अधिक विभिन्नता है। इन सबमें सदा परिवर्तन होता रहता है, परन्तु फिर भी सभी अपने विशिष्ट

क्या जीव एक यंत्र या मशीन है ?

हमारे पूर्वज कहते थे कि जो वस्तुएँ अपने आप चलती-फिरती हैं, वे सजीव हैं। यंत्रों के युग के पहले यह परिभाषा बिल्कुल ठीक थी। किन्तु इंजन, मोटरकार, हवाई जहाज़ इत्यादि स्वयं-चालक कलों के बन जाने पर लोग यह सोचने लगे कि "क्या कलें भी प्राणी हैं" अथवा "क्या मनुष्य भी कोई यंत्र है" ? यदि हम ध्यान दें कि यंत्र क्या है, तो यही कहना पड़ेगा कि वह निश्चित कार्य करने का ऐसा प्रबन्ध है, जो अलग-अलग भागों या पुर्ज़ों से बना होता है, जैसा कि कपड़ा सीने की मशीन, आटा पीसने की चक्की, लकड़ी काटने का आरा, या साइकिल में हम देखते हैं। जब इनका कोई पुर्ज़ा घिस या टूट जाता है, तो उसकी जगह पर वैसा ही दूसरा पुर्ज़ा लगाने से यंत्र फिर ज्यों-का-त्यों ठीक हो जाता है। कोई भी व्यक्ति, जो बाइसिकिल या सीने की मशीन या और कोई मशीन बनाना जानता है, उसके अलग-अलग भागों को इकट्ठा करके पूरी मशीन तैयार कर सकता है, और जब चाहे तब उन भागों को फिर अलग-अलग कर सकता है। हम प्रतिदिन साइकिल की दूकान पर देखते हैं कि एक मशीन का पुर्ज़ा उसी प्रकार की दूसरी मशीन में लगाया जा सकता है। पर क्या जीवधारियों में भी हम ऐसा कर सकते हैं ? नहीं ! उनमें एक प्रकार का निजी व्यक्तित्व पाया जाता है। यह सच है कि सब प्रकार के सजीव प्राणी इस बात में बिल्कुल समान नहीं होते। अधिकतर पौधे और नीची श्रेणी के जानवर मरते नहीं यदि उनके कुछ भाग काट लिये जायँ अथवा उनके दो टुकड़े कर दिये जायँ। उनका हरएक भाग पृथक् रूप में जीवित रहता है और बढ़कर पूरा जीव बन जाता है। परन्तु मनुष्य, कुत्ता या बिल्ली के दो भाग कर डाले जायँ, तो वे तुरन्त ही मर जाते हैं। अतएव अधिकतर पेड़-पौधे और नीची श्रेणी के पशु ही मशीन से ज़्यादा मिलते-जुलते हैं, क्योंकि उनमें ऊँची श्रेणी के जन्तुओं से व्यक्तित्व की मात्रा कम होती है।

शारीरिक मशीन के कुछ आश्चर्यजनक अदल-बदल

हम यह भी देखते हैं कि आज-कल के निपुण माली एक पेड़ की कलम दूसरे पेड़ पर बाँध देते हैं, या यों कहिए कि एक पौधे का अंग दूसरे पौधे पर उगा लेते हैं। यही नहीं, पाश्चात्य देशों के होशियार डाक्टर आज दिन एक मनुष्य के शरीर से ख़ून लेकर दूसरे मनुष्य के शरीर में डाल देते हैं। चतुर शस्त्र-वैद्य या डॉक्टर नकली हाथ-पैर के बदले ऐसे बनावटी अंग लगा देते हैं, जो वैसा ही काम कर सकते हैं। इसी तरह हाल में और भी बहुत-से आश्चर्यजनक कार्य

वर्ष में कलकत्ते के लोगों ने पहली रेलगाड़ी देखी, तो उन्हे यह विश्वास हो गया कि इजन काली माई के प्रताप से ही रेल के पीछे के डिब्बों को खींचता है, परन्तु आज हम सब जानते हैं कि इजन के चलने में कोई ऐसी विचित्रता नहीं है, जो समझ मे न आवे। उसके चलने का कारण भाफ है, किसी देवी का प्रताप नहीं। विज्ञान और मानव-विचारों के विकास के इतिहास मे ऐसी बहुत-सी अद्भुत बातों के उदाहरण मिलते हैं, जिनका सबध किसी समय भूत-प्रेत से जोड़ा जाता था, परन्तु बाद मे पता चला कि वे स्वाभाविक कारणों और पहचानने योग्य साधनों द्वारा ही होती हैं। यही बात बहुत-से आविष्कारों तथा प्लेग, हैजा, चेचक-जैसे भयकर रोगों के विषय में भी हुई है। सारे ससार के मनुष्य रोगों को बहुत दिनों तक ईश्वर का दण्ड मानते रहे। हमारे देश में आज भी बहुत-से लोग चेचक को 'माता' तथा 'देवी' के नाम से पुकारते हैं। जब घर मे किसी को यह बीमारी हो जाती है, तो घर की स्त्रियाँ यह समझकर कि घर मे देवी का प्रवेश हुआ है, जब तक बीमारी रहती है, बहुत सफाई रखती हैं, और देवी की पूजा करती हैं। इस भय से कि कहीं माता रुष्ट न हो जायँ, वे रोगी को कोई दवा नहीं पीने देतीं। वे यथाशक्ति ऐसा प्रबन्ध करती हैं कि माता प्रसन्न होकर रोगी को शीघ्र ही अच्छा कर दें और घर से विदा हो जायँ। इसी प्रकार कुछ वर्ष पूर्व जब हमारे देश में प्लेग की बीमारी जोर से फैली थी, तो लोग उसे 'महामारी' कहते थे। देहाती ही नहीं नागरिक भी उससे बचने के लिए पूजा-पाठ करते और दान-दक्षिणा देते थे। अब तो डाक्टरों और वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिया है और हममें से भी बहुतेरे जान गये हैं कि इन रोगों का कारण देवी-देवता अथवा भूत-प्रेत नहीं हैं। ये रोग ऐसे स्पष्ट कीटाणुओं से होते हैं, जिन्हें शिक्षित मनुष्य सहज मे देख-भाल और परख सकते हैं। ऊपर के विवेचन से ऐसा लगता है कि जीवन की परिभाषा करना बहुत कठिन है; इसलिए हमें पहले जीवन का वर्णन करना चाहिए। इसको अच्छी तरह समझ जाने से जीवन की प्रकृति को समझने मे सुविधा होगी।

(१) वृद्धि

हम पहले परिच्छेद में लिख चुके हैं कि जब चीनी का कोई रवा चीनी के सम्पूर्ण घोल मे लटका दिया जाता है, तो वह धीरे-धीरे बड़ा हो जाता है, परन्तु वही रवा नमक के घोल में रक्खा जाय, तो कदापि न बढ़ेगा, क्योंकि वह उस नमक को, जिसके घोल मे वह डूबा हुआ है, बदलकर अपने मे नहीं मिला सकता। इसका यह अर्थ है कि रवा अपने जैसे पदार्थ के घोल मे ही बढ सकता है। यदि वह अपने से भिन्न वस्तु के घोल में रख दिया जाय, तो वह न उसे बदल ही सकता है, और न अपनी वृद्धि ही कर सकता है। जीवधारियों मे यह बात नहीं होती है। साधारण-से-साधारण जीव भी किसी अनोखे ढग से आस-पास की वस्तुओं को बदलकर उनसे लाभ उठा सकते हैं। या यों कहिए कि प्राण में (और इसलिए सभी जीवधारियों मे) कोई ऐसा पदार्थ है, जो अपने स्पर्श मे आनेवाली वस्तु को प्रभावित करके उन भौतिक और रासायनिक क्रियाओं को, जो उस वस्तु पर क्रिया करती हैं और जिन पर कि वह वस्तु प्रतिक्रिया करती है, ऐसे डौल पर लाता है कि जिससे स्वय उसका स्वभाव या रूप उत्तरोत्तर सिद्ध या पूर्ण होता जाता है। प्राण-हीन पदार्थ ऐसा नहीं कर सकते।

(२) सर्वकालिक परिवर्तन

एक प्रकार से कहा जा सकता है कि सजीव पदार्थ में सर्वकालिक परिवर्तन की योग्यता होती है। जानवर हर घड़ी हवा मे साँस लेते हैं, और भोजन खाते हैं। शरीर में पहुँचकर साँस ली हुई हवा और खाये हुए पदार्थ टूट-फूटकर साधारण तत्त्वों में बदल जाते हैं, जो उन तन्तुओं और इन्द्रियों को बनाने मे काम आते हैं, जिन्हें हम प्राणी के भिन्न-भिन्न भागों में पाते हैं। सब प्राणियों के पालन-पोषण में यह क्रिया या अवस्था—जिसके द्वारा खाई हुई वस्तुएँ पचकर शरीर का भाग बन जाती हैं—जीवनी-क्रियाओं का प्रधान आधार है। इसके बिना जीवन असम्भव है। इस प्रकार जीवित पदार्थ के बनने मे बल या शक्ति की बहुत आवश्यकता होती है। हमे चलने-फिरने तथा अन्य कामों के करने में बल की जरूरत होती है। इस दौड़ने-धूपने, लिखने-पढने आदि के करने से जो बल की कमी हममें हो जाती है, अथवा जो तत्त्व क्षीण हो जाता है, उसकी पूर्त्ति भोजन-सामग्री के शरीर में पहुँचकर जीवनप्रद तत्त्वों मे परिणत होने से ही होती है। इसी क्रिया के फलस्वरूप शरीर में दूषित पदार्थ भी बनते हैं। आहार का जो भाग हम शारीरिक तत्त्वों में नहीं बदल सकते, वही हमें मल और मूत्र के रूप में त्यागना पड़ता है। इस प्रकार सब जीवधारियो में बनाने और बिगाड़ने की दोहरी क्रियाएँ एक साथ ही होती रहती हैं। बाल्यावस्था में बनानेवाली क्रिया बिगाड़नेवाली क्रिया से अधिक तेज़ होती है। इसी कारण बाल्यावस्था में जीवों के शरीर और अग बढ़ते जाते हैं, और युवावस्था में पहुँचकर तन्दुरुस्त बने रहते हैं। जब शरीर में बनानेवाली

क्रिया बिगाड़नेवाली क्रिया से प्रबल हो जाती है, तो जीवधारी वृद्ध होने लगते हैं और उनके शरीर भी कमजोर हो जाते हैं। इस दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि **जीवन एक भाँति की भौतिक और रासायनिक क्रिया है, जिसके जटिल मिश्रणों में बनने और बिगड़ने की परिवर्तनकारी क्रियाएँ निरंतर और साथ-साथ होती रहती हैं।**

(३) आत्म-रक्षा

जीवन का एक और मुख्य गुण, जो जीवन अथवा जीव-संबधी क्रियाओं का द्योतक है, यह है कि सर्वकालिक परिवर्तन होते हुए और विविध प्रकार की शक्तियों का प्रभाव पड़ते हुए भी उसमे अपने जातीय रूप और रासायनिक रचना को स्थिर रखने की योग्यता है। इसको हम इस प्रकार कह सकते हैं कि हर प्रकार का प्राणी एक विशेष प्रकार के रासायनिक मिश्रण का नमूना है और हर प्रकार का जीवन एक रासायनिक परिवर्तन का विशेष नमूना है। एक दूसरे से सम्बन्ध रखनेवाले प्राणियों मे रासायनिक हेर-फेर का रूप बहुत-कुछ एक-सा ही होता है, जैसा कि मनुष्य और वानर मे। किन्तु मनुष्य और मछली मे वह बहुत-कुछ पृथक् होता है, और मनुष्य और गगनधूल (खुम्मी) मे तो इस सबंध मे और भी अधिक विभिन्नता है। इन सबमे सदा परिवर्तन होता रहता है, परन्तु फिर भी सभी अपने विशिष्ट रूप और रासायनिक नक्शे को स्थिर रखते हैं। आइये, अब हम आपको रासायनिक परिवर्तन का एक उदाहरण दिखलाएँ। जब हम अपनी बाँह को घुमाते या हिलाते हैं, तो उसकी पेशियो मे कई जटिल रासायनिक क्रियाएँ आरम्भ हो जाती हैं। इन क्रियाओं मे ओषजन ख़र्च होने लगती है, और इस ओषजन को पूरा करने के लिए ओषजन-युक्त रक्त बाँह की ओर पहले से अधिक मात्रा मे दौड़ने लगता है। इस बढे हुए रक्त-सचालन के लिए दिल जल्दी-जल्दी धड़कने लगता है तथा साँस भी तीव्र गति से चलने लगती है। ओषजन के अतिरिक्त बाँह की पेशियाँ ख़ून से शक्कर भी खींचने लगती हैं, जिसके कारण ख़ून मे शक्कर की मात्रा घटने लगती है। इसको पूरा करने के लिए यकृत के कोषों की एकत्रित शक्कर ख़ून मे घुलने लगती है। यह सारा कार्य हमारा मस्तिष्क बिना हमारे जाने ही नियमानुकूल जारी रखता है। इस प्रकार हमारी शारीरिक यंत्र-रचना स्वतः ही हमारे शरीर को ठीक और विधिवत् रखती है। अतएव हम कह सकते हैं कि **जीवन एक प्रकार का स्वयं-प्रबन्धक जटिल रासायनिक परिवर्तन ही है।**

क्या जीव एक यंत्र या मशीन है ?

हमारे पूर्वज कहते थे कि जो वस्तुएँ अपने आप चलती-फिरती हैं, वे सजीव हैं। यत्रों के युग के पहले यह परिभाषा बिल्कुल ठीक थी। किन्तु इजन, मोटरकार, हवाई जहाज इत्यादि स्वय-चालक कलो के बन जाने पर लोग यह सोचने लगे कि "क्या कले भी प्राणी हैं" अथवा "क्या मनुष्य भी कोई यत्र है" ? यदि हम ध्यान दे कि यत्र क्या है, तो यही कहना पड़ेगा कि वह निश्चित कार्य करने का ऐसा प्रबन्ध है, जो अलग-अलग भागों या पुर्जो से बना होता है, जैसा कि कपड़ा सीने की मशीन, आटा पीसने की चक्की, लकड़ी काटने का आरा, या साइकिल मे हम देखते हैं। जब इनका कोई पुर्जा घिस या टूट जाता है, तो उसकी जगह पर वैसा ही दूसरा पुर्जा लगाने से यत्र फिर ज्यो-का-त्यों ठीक हो जाता है। कोई भी व्यक्ति, जो बाइसिकिल या सीने की मशीन या और कोई मशीन बनाना जानता है, उसके अलग-अलग भागों को इकट्ठा करके पूरी मशीन तैयार कर सकता है, और जब चाहे तब उन भागों को फिर अलग-अलग कर सकता है। हम प्रतिदिन साइकिल की दूकान पर देखते हैं कि एक मशीन का पुर्जा उसी प्रकार की दूसरी मशीन मे लगाया जा सकता है। पर क्या जीवधारियों मे भी हम ऐसा कर सकते हैं ? नहीं ! उनमे एक प्रकार का निजी व्यक्तित्व पाया जाता है। यह सच है कि सब प्रकार के सजीव प्राणी इस बात मे बिल्कुल समान नहीं होते। अधिकतर पौधे और नीची श्रेणी के जानवर मरते नहीं यदि उनके कुछ भाग काट लिये जायँ अथवा उनके दो टुकड़े कर दिये जायँ। उनका हरएक भाग पृथक् रूप मे जीवित रहता है और बढकर पूरा जीव बन जाता है। परन्तु मनुष्य, कुत्ता या बिल्ली के दो भाग कर डाले जायँ, तो वे तुरन्त ही मर जाते हैं। अतएव अधिकतर पेड़-पौधे और नीची श्रेणी के पशु ही मशीन से ज्यादा मिलते-जुलते हैं, क्योंकि उनमे ऊँची श्रेणी के जन्तुओं से व्यक्तित्व की मात्रा कम होती है।

शारीरिक मशीन के कुछ आश्चर्यजनक अदल बदल

हम यह भी देखते हैं कि आज-कल के निपुण माली एक पेड़ की क़लम दूसरे पेड़ पर बाँध देते हैं, या यों कहिए कि एक पौधे का अग दूसरे पौधे पर उगा लेते हैं। यही नहीं, पाश्चात्य देशों के होशियार डाक्टर आज दिन एक मनुष्य के शरीर से ख़ून लेकर दूसरे मनुष्य के शरीर मे डाल देते हैं। चतुर शस्त्र-वैद्य या ज़र्राह असली हाथ-पैर के बदले ऐसे बनावटी अग लगा देते हैं, जो वैसा ही काम कर सकते हैं। इसी तरह हाल में और भी बहुत-से आश्चर्यजनक कार्य

डाक्टरों ने कर दिखाये हैं। पिछले वर्ष ही वाशिंगटन के विश्व विद्यालय में एक जीवित मछली का हृदय दूसरी जीवित मछली के हृदय के स्थान में लगा दिया गया और वह जीती रही।

एक वर्ष हुआ, लंदन में एक आदमी के घायल होने पर उसकी एक आँख निकालने की आवश्यकता पड़ी। जिस डाक्टर के पास यह मरीज गया, उसका एक और मरीज़ था, जिसकी अवस्था २१ वर्ष की थी, और जो ३ साल से अन्धा था, क्योंकि उसकी आँख की कनीनिका (Cornea) ख़राब हो गई थी। चतुर डाक्टर ने उस घायल आदमी की एक आँख निकाल कर उसकी कनीनिका का एक भाग अन्धे आदमी की आँख में लगा दिया, जिससे कि वह एक आँख का उपयोग करने लगा। न्यूयॉर्क में एक बच्चे की बाईं आँख बेकार हो गई थी। थोड़े दिन बाद उसकी दूसरी आँख भी नष्ट होने को थी। डाक्टरों की सलाह से उसकी माता ने अपनी एक आँख ख़राब होनेवाली आँख की जगह लगवा दी। इसी प्रकार वियेना में एक जन्तु-शास्त्र के प्रोफ़ेसर ने अँखफुट्टों के बच्चों के सिर काट कर एक दूसरे से बदल दिये। वे बढे और उनके संतान भी पैदा हुई। उनमें और अन्य अँखफुट्टों में कोई भी अंतर न था। इससे सिद्ध होता है कि जानवर भी किसी किसी बात में मशीन-जैसे हैं। पर किसी किसी बात में उनमें एक विशेष व्यक्तित्व भी है। यंत्र और जन्तु में एक और भेद है। जब मोटरकार टूट या बिगड़ जाती है, तो वह अपने आप उसे ठीक नहीं कर पाती, किन्तु जब हमारे किसी अंग में चोट लग जाती है, तो घाव अपने आप ही भर जाते हैं। सभी जीवधारी इस तरह अपने शरीर को स्वयं ही ठीक-ठाक कर लेते हैं। हमारे बाल और नाख़ून कट जाने पर स्वयं ही फिर बढ़ जाते हैं। पेड़-

क्या जीव एक जटिल यंत्र मात्र है?

वैज्ञानिकों द्वारा तैयार किया गया यह यंत्र-नर (Robot) केवल आपकी आवाज सुनकर जिधर आप कहें उधर सिर या हाथ घुमा सकता है और इससे कई कार्य करता है। किन्तु क्या हम इसे जीवधारी की श्रेणी में रख सकते हैं? इस मानव-सम यंत्र और उसके सामने खड़े सजीव मनुष्य में एक मौलिक भेद है, अर्थात इस यंत्र में 'व्यक्तित्व', 'संतानोत्पादन शक्ति', और 'अपने आपको वातावरण के अनुकूल बनाने की शक्ति' का पूर्ण अभाव है जो जीवधारियों के विशेष लक्षण हैं।

पौधो की डालियाँ भी क़लम कर देने पर फिर बढ जाती हैं। पर निर्जीव पदार्थ ऐसा नही कर सकते। इसलिए यह कहा जा सकता है कि **जीवन अपने आप अपनी मरम्मत करनेवाला एक यंत्र है।**

फिर जीवधारी जिस प्रकार अपनी क्रियाओं को अपने अनुकूल बना लेते हैं, वैसा कोई मशीन नही कर सकती। उदाहरण के लिए तन्दुरुस्ती के लिए हमारे शरीर का ताप लगभग ९८° फैहरैनहाइट रहना ज़रूरी है। इससे ८–१०° ताप बढ जाने या २–३° गिर जाने से जान जोखिम मे आ जाती है। ऐसी दशा मे जब हमारा शरीर बहुत गर्म हो जाता है, तब आप ही आप शरीर मे रक्त का प्रवाह बढ जाता है, जिससे कि उसकी सतह से ज्यादा गर्मी निकल जाय। यदि यह भी काफी नही होता, तो हमे पसीना आने लगता है और शरीर ठढा होकर फिर साधारण ताप पर आ जाता है। मनुष्य ने कुछ ऐसी कले भी बनाई हैं, जो अपनी कोई-कोई बात स्वयं ही ठीक कर लेती हैं, जैसे इजिन का गवर्नर या वाल्व आदि। ऐसी कलों के अधिकतर भाग ठोस होते हैं और सदा एक ही डील के रहते हैं। लेकिन जीवित वस्तुओं मे ऐसा नहीं होता। उनमे तो हड्डी, और नाख़ून ऐसे ठोस भाग भी प्रवाह की अवस्था मे रहते हैं। पूर्ण युवावस्था तक पहुँच जाने पर भी उनमे नये द्रव्य बनते रहते हैं और साथ-ही-साथ बिगड़ते भी रहते हैं। इसलिए प्राणी की स्थिरता किसी मकान अथवा मूर्ति की अपेक्षा दीपक की लौ अथवा पानी के झरने से अधिक मिलती है। अतएव हम कह सकते हैं कि **जीवधारी स्वयं मरम्मत करनेवाले स्वयं-प्रबन्धक यंत्र हैं।**

(४) सन्तानोत्पादन

जीवन का एक और लक्षण यह है कि वह अपने समान और जीव बना सकता है। सारी सजीव सृष्टि—जानवर और वनस्पति—से अडे, बीज या ऐसे नन्हे-नन्हे बच्चे उत्पन्न होते हैं, जो अपने माँ-बाप के समान रूप-आकार पाते और कर्त्तव्य करते हैं। कुछ जीवो मे नई सन्तान एक ही प्राणी से जन्म लेती, तो कुछ में माँ-बाप के रूप मे दो प्राणी नई सन्तान की रचना मे सम भाग लेते हैं। कोई भी निर्जीव यन्त्र इस प्रकार अपने जैसे यन्त्र नही पैदा कर सकता। ऐसी कले तो जरूर हैं, जो एक ही जैसे असख्य भाग बना सकती हैं, परन्तु ये पुर्जे अपना निर्माण करनेवाली मशीन से बिल्कुल भिन्न होते हैं और बढने पर वे कभी उसके समान नही हो सकते। एक और भेद यह भी है कि प्राणी नई सन्तान को अपने शरीर या शरीर के ही पदार्थो से उत्पन्न करते हैं। इसके विपरीत मशीन इन पुर्जों को अपने शरीर के भाग या अगो से नही बनातीं, वरन् उन धातुओं आदि से बनाती हैं, जो उनमे बाहर से रक्खी या डाली जाती हैं।

जीवन क्या है ?
इसकी कोई परिभाषा हम नही दे सकते, परन्तु किसी भी जीवधारी मे हम उसके कुछ विशेष लक्षणों को देख सकते है। प्रत्येक जंतु स्वयं ही अपना निर्वाह करने, अपने ही अनुरूप संतान उत्पन्न करने, अपनी और उनकी वृद्धि तथा रक्षा करने और अपने आपको वातावरण के लिए अधिकाधिक सिद्ध बनाने मे प्रयत्नशील रहता है जैसा कि कोई भी निर्जीव वस्तु नही कर सकती। (यह बच्चो सहित पैग्वीन नामक जंतु का चित्र है।)

अब हम जीवधारियो का एक और विशिष्ट लक्षण आपको बतलाते हैं, जो सभी जीवों मे पाया जाता है। वह यह है कि उनकी क्रियाओ और चाल-ढाल का सार यही नही है कि वे अपने शरीर की रक्षा करे, उसके टूटे-फूटे भागों की मरम्मत करे, तथा सन्तान उत्पन्न करे, बल्कि अपनी रहन-सहन को इस प्रकार सुधारे जिससे कि वे अपने को उस देश या वातावरण मे रहने के लिए अधिक अनुकूल बना सके, जिसमे कि विधाता ने उन्हे पैदा किया है। ठढे देशों के कुत्तों और भालुओ के शरीर पर सर्दी से बचने के लिए लम्बे और घने बाल होते हैं, गर्म देशो मे उनके बाल उतने लम्बे और घने नही होते। तालो मे रहनेवाली सिघी और सौरी मछलियाँ गर्मी मे ताल का पानी सूख जाने पर धरती मे घुसकर जीवित रहती हैं, पर नदी की मछलियाँ ऐसा नही करतीं। मनुष्य को

ज्यादा गर्मी लगती है, तो उसे पसीना आने लगता है और जब ठंडक लगती है, तो वह आग की ओर बढ़ता या गर्म मोटे कपड़ों में अपने शरीर को लपेट लेता है। रेगिस्तान में उगनेवाले पेड़ों के पत्ते बहुत कम और बहुत ही छोटे होते हैं जिससे कि उनमें से पानी भाफ होकर बहुत ज्यादा न उड़ सके। इसके विपरीत स्थिर जल में रहनेवाले पौधों के पत्ते कमल-जैसे चौड़े और बड़े होते हैं, और जहाँ हवा बहुत तेजी से चलती है, उन देशों में पेड़ों के बड़े पत्ते चिरे हुए होते हैं, जिससे कि वे हवा के झोंकों से फट न जायँ। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि प्राणी की प्रवृत्ति अपने को अधिकाधिक सिद्ध बनाने की होती है। अन्त में मशीन से तुलना करते हुए हम यह कह सकते हैं कि **जीव एक ऐसी मशीन है, जो अपनी रक्षा आप करती है, आप ही अपना प्रबन्ध करती है, आप ही अपनी मरम्मत करती है, आप ही अपने को पैदा करती है और आप ही अपने को सिद्ध बनाती है।**

जीवन विरोधी गुणों का संयोग है

ऊपर हम जो कुछ लिख आये हैं, उस पर एक सरसरी निगाह डालते हुए अब देखना चाहिए कि हम जीवन की प्रकृति के विषय में क्या कह सकते हैं। यह कहा जा चुका है कि जीवन सजीव वस्तु के निरंतर निर्माण की एक प्रकार की अत्यन्त आवश्यक क्रिया है, परन्तु इस बनने की क्रिया के साथ ही उसका टूटना-फूटना या बिगड़ना भी उतने ही आवश्यक रूप में साथ लगा हुआ है। एक ओर काम की सामग्री बनती रहती है, तो दूसरी ओर बेकार चीज़ें भी पैदा होती रहती हैं। हम यह भी जानते हैं कि सब जीवधारी अपने को इस संसार में क़ायम रखने की कोशिश करते हैं, तब भी उनके जीवन में एक अवस्था ऐसी आती है, जब उनका जीवन ढलने लगता है और समाप्त हो जाता है। यदि जीवों में अपना अन्त करने का गुण न होता, तो सारे नीची श्रेणी के जन्तु, एक बार जन्म ले चुकने पर, अभी तक जीवित होते तथा हमारे कुरूप और असभ्य पूर्वज भी आज पृथ्वी पर दिखाई देते' यदि ऐसा होता तो वास्तव में कोई भी उन्नति न हुई होती। मनुष्य पर ही विचार करते हुए हम देखते हैं कि बूढ़ों के मुकाबले में नई सन्तान अधिक बढ़ी-चढ़ी और उन्नतिशील होती है। इसलिए मानव-समाज क्रमानुसार एक के बाद दूसरे बूढ़े वर्गों के मरने से ही उन्नति-पथ पर बढ़ता चला जाता है। अतः यह कहा जा सकता है कि जीवन मृत्यु के विरुद्ध एक अखंड युद्ध है, फिर भी मृत्यु जीवन का जरूरी अन्त है। बिना अन्त के जीवन की उन्नति होना असंभव है। हमने यह भी देखा कि जीवन में निरन्तर हेर-फेर होता रहता है, वह एक बराबर झिलमिलानेवाली ज्वाला है। अंतर यही है कि जीवन नित नये विशेष और लाक्षणिक शरीर धारण करता रहता है, जब कि ज्वाला लगातार झिलमिलाने पर भी ज्वाला ही रहती है। यह भी कहा जा चुका है कि जीवन यंत्र-रचना और व्यक्तित्व-जैसी दो विरोधी बातों का मिलन है। ऊँचे प्राणियों में यंत्र के गुणों से व्यक्तित्व अधिक होता है और नीचे प्राणियों में व्यक्तित्व कम तथा यंत्र के गुण अधिक। अतः ऊपर लिखी हुई बहुत-सी बातों में जीवन दो विरुद्ध वस्तुओं का संयोग प्रतीत होता है। इसमें कोई आश्चर्य नहीं है, क्योंकि हर जगह हम विरोधियों का ही मेल पाते हैं। लकड़ी नर्म और कड़ी दोनों ही होती हैं, लोहा बड़ा कठोर होते हुए भी लचीला होता है। पालने से चिता तक हमारी जीवन-कहानी भी सुख-दुःख, आशा-निराशा, प्रेम-वैर, सफलता-असफलता से भरी पड़ी है। अंग्रेजी के एक लेखक ने ठीक ही लिखा है कि 'जीवन असाधारण विरोधों की गठरी है'।

ऊपर लिखी हुई बातों से स्पष्ट है कि जीवन की ऐसी परिभाषा देना सम्भव नहीं है, जो उसके आत्म-विरोधी स्वभाव पर लागू हो सके। दार्शनिक उसको समझने तथा उसका अर्थ बतलाने की चेष्टा करता है, प्राणि-शास्त्रवेत्ता (Biologist) उसका अध्ययन करने का प्रयत्न करता है, यद्यपि दोनों अच्छी तरह जानते हैं कि वे शायद उसकी जटिलता को भली भाँति कभी भी न समझ सकेंगे। पर जैसे-जैसे हम उसका ज्ञान प्राप्त करने में आगे बढ़ते जाते हैं, उतना ही वह हमारे वश में आता जाता है। इस समय हम जो कुछ कह सकते हैं, वह यही है कि इधर कुछ ही वर्षों में जीवन के कुछ पहलू भौतिक विज्ञान और रसायन-शास्त्र के शब्दों में समझाये गये हैं। परन्तु अब भी उसके बारे में हमारा ज्ञान अधूरा ही है। अभी कोई भी दावे के साथ नहीं कह सकता कि जीवन की पहेली उसके समझ में ठीक से आ गई। पर तीस-पैंतीस वर्ष की आश्चर्यजनक उन्नति को देखते हुए हम सोचते हैं कि भविष्य में हमें इस बात से निराश न हो जाना चाहिए कि हम जीवन की पहेली को कभी बूझ ही न सकेंगे। हाँ, अभी तो जीवन की अच्छी-से-अच्छी परिभाषा जो हम दे सकते हैं वह यही है कि **जीवन एक गुण है, जो सजीव प्राणी या ऐन्द्रिक जन्तु के सजीव भागों को मृत या निर्जीव पदार्थों से पृथक् करता है।** किन्तु वह गुण क्या है, यही तो हम नहीं बतला सकते।
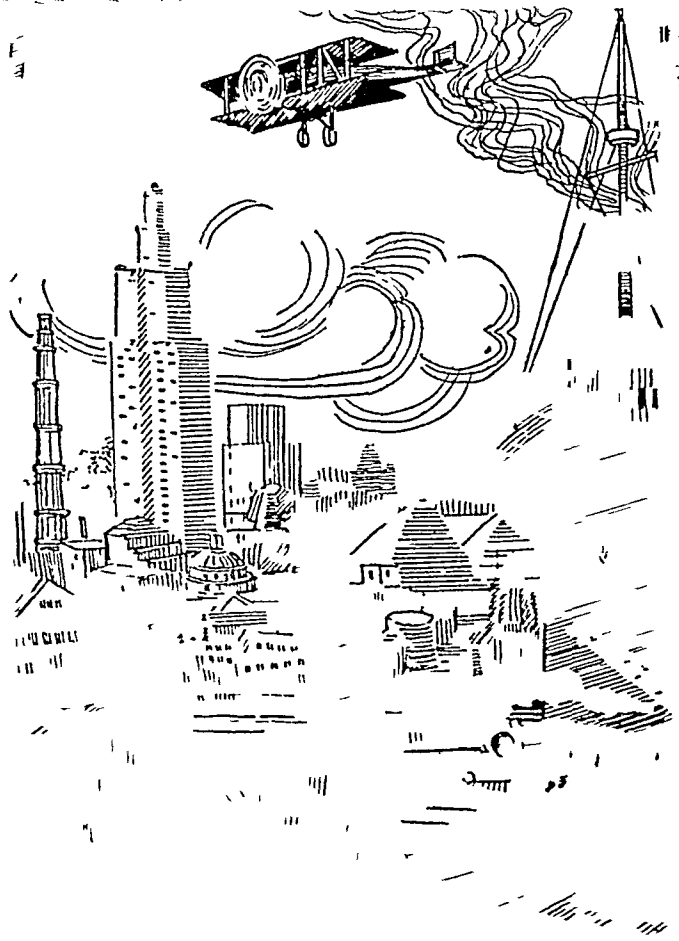
की कहानी
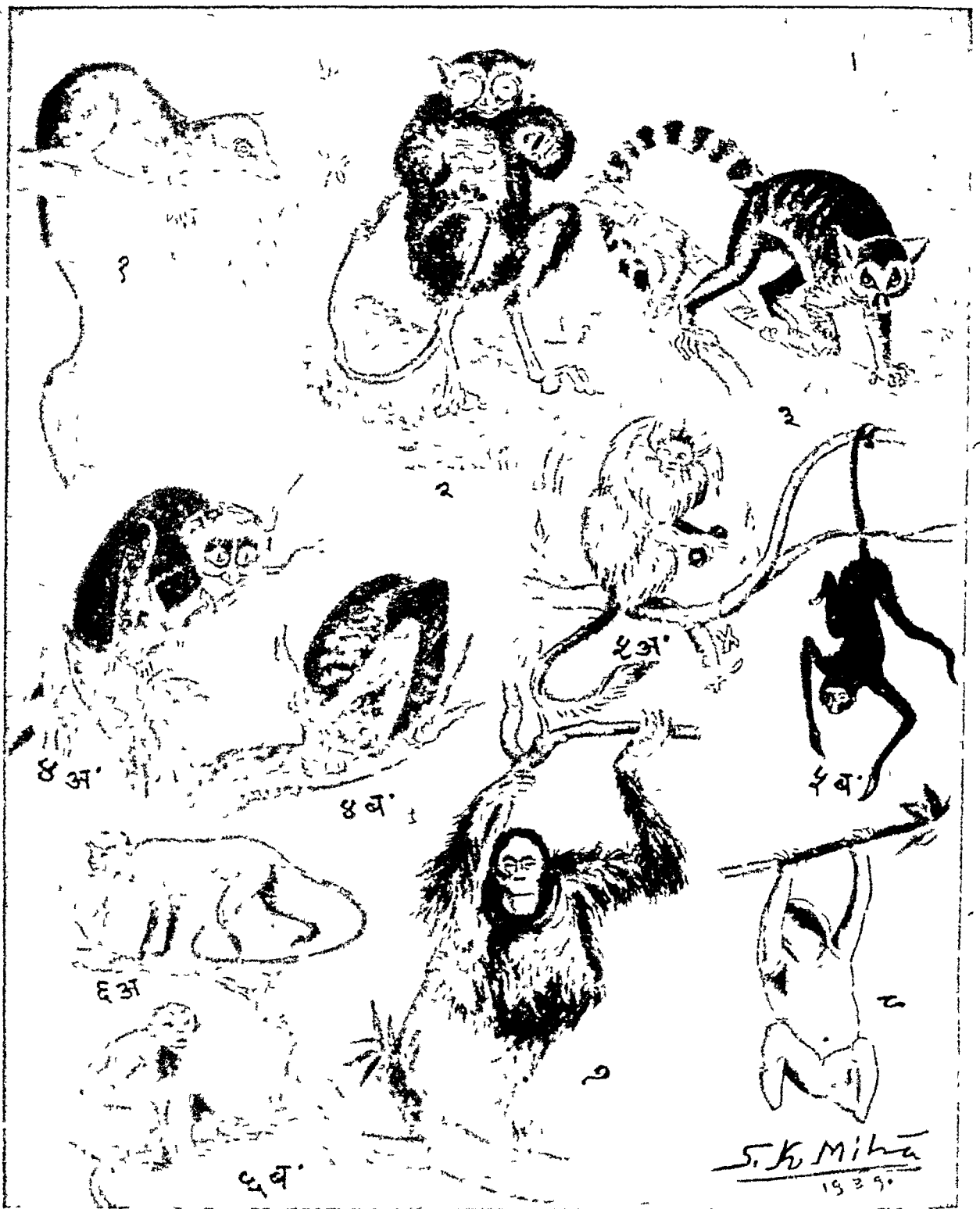
मनुष्य के विकास की सीढ़ी के कुछ डंडे

(१) पेड़ों पर रहनेवाला छछूँदर-जैसा कीटभोजी 'श्रू' (२) सबसे नीची श्रेणी का प्रधान भागीय जीव टारसियस, जो मलाया और समीप के टापुओं में मिलता है (३) मडागास्कर टापू का धारीदार दुमवाला अर्द्धवानर लीमर. (४) दक्षिण भारत और लंका में पाया जानेवाला सुस्त लीमर—(अ) जगता हुआ (ब) सोता हुआ, (५) नई दुनिया के नीची जातिवाले (अ) मारमोसेट और (ब) मकड़ी बन्दर (६) पुरानी दुनिया का (अ) काला मुँहवाला लंगूर और (ब) मामूली बन्दर, (७) बोर्नियो और सुमात्रा में पाया जानेवाला वनमानुष ओरंग उटान (८) बन्दर की तरह पैरों को उठाये हुए लटकता हुआ तीन सप्ताह का मनुष्य-बालक।
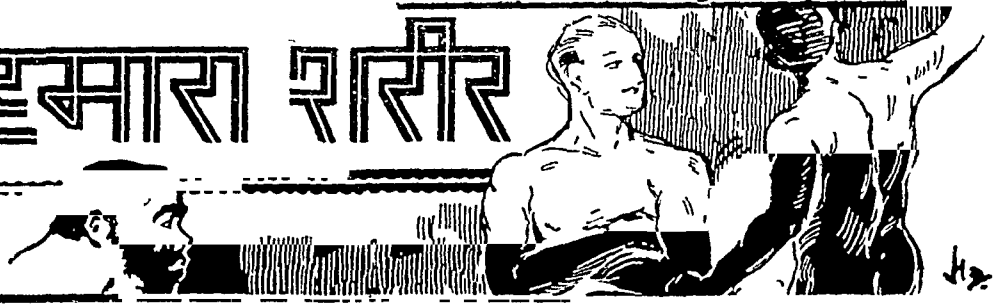
हमारी उत्पत्ति कैसे, कब और कहाँ हुई ?

मनुष्य-जाति का उद्भव और विकास

मनुष्य पृथ्वी पर कब, किस रूप में और कहाँ सर्वप्रथम प्रकट हुआ, इस संबंध मे वैज्ञानिकों के भिन्न-भिन्न मत हैं, किन्तु यह बात अब सभी निश्चित रूप से मानते हैं कि मनुष्य आज जैसा है वैसा आरंभ मे न था। सृष्टि की सभी वस्तुओं की तरह मनुष्य का भी क्रमशः विकास हुआ है। आइए, इस लेख मे देखें कि मनुष्य की उत्पत्ति के सबध में अब तक क्या-क्या बातें मालूम हुई हैं।

पिछले लेखों मे हम आपको यह समझा चुके हैं कि मनुष्य भी अन्य जानवरो की तरह एक जानवर है, परन्तु उसमे बहुत-सी ऐसी विशेषताएँ हैं जिनके कारण वह और जीवो से भिन्न किया जाता है। अब यहाँ हम लिखना चाहते हैं कि मनुष्य बनमानुषो या अन्य निकट सम्बन्धी जानवरो से कैसे, कब और कहाँ पृथक् हुआ। यह तो सभी जानते हैं कि किसी समय पृथ्वी एक आग का गोला थी। उसके चारो ओर आग की भयकर ज्वालाएँ उठा करती थी। इन ज्वालाओं के बुझ जाने के हजारो वर्ष बाद, जब गर्म-गर्म भाफ उड़कर समाप्त हो गई, उसके भी सहस्रों वर्ष पश्चात् पृथ्वी के धरातल पर पहले-पहल सूक्ष्म जीव का आविर्भाव हुआ। क्रमशः जीव ने अनेक रूप धारण कर लिये और आरभिक सूक्ष्म जीवो के स्थान मे अब भीमकाय जतु पृथ्वी पर विचरण करने लगे। इन जीवो के जन्म के लाखो वर्ष पीछे इस पृथ्वी पर प्रकृति ने एक ऐसे जीव की रचना की, जो और सब प्राणियों से विचित्र और भिन्न था। इस अनोखे और अद्भुत जीव के निर्माण मे युग-के-युग व्यतीत हो गये। यह प्राणी वास्तव मे था तो अन्य सभी प्राणियों से निराला, परन्तु बाहरी रूप-रंग मे यह कुछ जानवरो से इतना मिलता-जुलता था कि इसमे और उनमे भेद करने मे धोखा होने की सम्भावना थी।

चार्ल्स डार्विन

जैसा कि हम पहले लिख चुके हैं, इस जीव तथा अन्य जानवरो मे जो भेद है, वह अदृश्य है। केवल देखने से ही उनको एक-दूसरे से अलग नही किया जा सकता, क्योकि जो चीज उनमे भेद करती है, वह इसके शरीर के अन्दर है। यह चीज़ इसका मस्तिष्क है, जो ससार की सब-से आश्चर्यजनक वस्तुओं मे एक है। यह आदिमनुष्य पृथ्वी के प्राचीन जगलों मे खडा होकर इधर-उधर की चीजों को अपनी वैसी ही आँखों से देखता था, जैसी बन्दर और हाथी, चिडिया और शेर, भालू और सर्प की थी। किन्तु उसकी आँखो के पीछे उसका अद्भुत मस्तिष्क था। यह मस्तिष्क उन चीज़ो पर विचार करता था, जिन पर कि उसकी दृष्टि पडती थी। इस तरह जहाँ अन्य सारे जीव केवल देखते ही थे, वहाँ केवल यही अकेला सोचता और विचारता था। इसी विचित्र जतु की सक्षिप्त कहानी हम अब आपको सुनायेंगे। वास्तव मे इस विषय के समान मनोरजक विषय दूसरे बहुत ही कम होंगे।
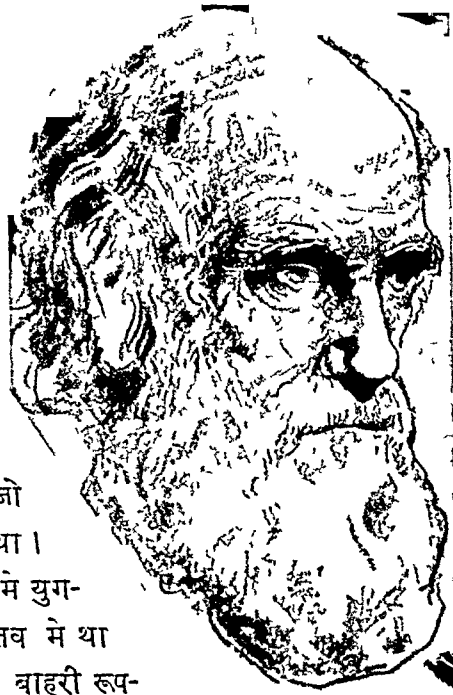
१९ वीं शताब्दी के मध्य मे जब चार्ल्स डार्विन ने अपने लेखों द्वारा सिद्ध कर दिखाया कि मनुष्य बन-मानुषों और वानर-कक्षा का ही एक जीव है और उसका भी

विकास प्रकृति की गोद में उसी प्रकार हुआ है, जैसे अन्य जानवरों का, तो मनुष्य के विचारों को बड़ा धक्का लगा। डार्विन साहब ने अपनी एक पुस्तक "मनुष्य का जन्म" (Descent of Man, 1871) में यह लिखा है कि "मैं उस छोटे-से बहादुर बन्दर की, जिसने कि अपने सरक्षक के प्राणों की रक्षा करने के लिए भयकर शत्रु का मुक़ाबला किया था, अथवा अफ्रीका के उस बड़े बन्दर बैबून की, जो अपने एक छोटे साथी को कुत्तों से घिरा देखकर फौरन् पहाड़ से नीचे दौड़ पड़ा था और अपने साथी को कुत्तों के बीच से ले भागा था, सन्तान कहा जाना उतना ही पसन्द करूँगा, जितना कि उस असभ्य मनुष्य की सन्तान कहलाना जो अपने शत्रुओं को सताने और दुःख देने में प्रसन्न होता है।" परन्तु इससे डार्विन साहब का यह आशय न था कि मनुष्य-जाति सीधे-सीधे उन जानवरों की ही सन्तान है, यद्यपि बहुत-से लोगों ने भ्रमवश ऐसा कहना और लिखना शुरू कर दिया था और अब भी कुछ लोग मनुष्य के विकास के सिद्धान्त से यही अर्थ निकालते हैं कि मनुष्य वानरों से ही बन गया है। जो ऐसा सोचते हैं, वे भूल करते हैं। कुछ वैज्ञानिकों ने भी कभी-कभी ऐसी ही बातें कही और लिखी हैं, जिससे साधारण लोगों को भ्रम हुआ है। सन् १९२७ में ब्रिटिश एसोसियेशन* के सभापति ने अपने भाषण में कहा था, "मनुष्य का प्रारम्भ क्या है? क्या डार्विन ने ठीक कहा था कि उन्हीं विकासवादी शक्तियों के द्वारा, जो अन्य जानवरों में पाई जाती हैं, मनुष्य बन-मानुष के बीच के किसी स्थान से उठकर अपनी वर्त्तमान स्थिति को पहुँचा है?" उक्त महाशय ने अपने प्रश्न का उत्तर स्वय ही दे लिया था, "हाँ।" किन्तु जैसा कि वुड-जोन्स साहब ने इसके दो वर्ष पश्चात् "स्तनपोषितों में मनुष्य का स्थान" नामक अपनी पुस्तक में लिखा है, यह सम्मति देना उचित न होगा कि आज का कोई भी वैज्ञानिक मनुष्य की उत्पत्ति के विषय में यह विचार रखता हो कि वह किसी भी विद्यमान बन मानुष या उससे मिलते-जुलते नष्ट-भ्रष्ट पशुओं से पैदा हुआ है। पिछले वर्षों में बहुत-से लेखकों ने इस बात पर जोर दिया है कि यह बिल्कुल स्पष्ट है कि बन-मानुष या वानर और मनुष्य जाति के वर्त्तमान समूह ज्यादा-से-ज्यादा एक दूसरे के साथ दूर के भाई-बन्धुओं का रिश्ता रखते हैं, या यों कहिये कि वे सब किसी ज़माने में एक ही पुरखे से पैदा हुए हैं। सिद्धान्त तो यह है कि मनुष्य और बन-मानुषों की शाखायें एक ही धड़ से फूटी हैं—वानरों ने एक राह ली और मनुष्य ने दूसरी, किन्तु दोनों के जहाज एक ही बन्दरगाह से चले हैं, दोनों एक ही कारख़ाने में बने हैं।

आज हम सब जानते हैं कि पृथ्वी अपनी जगह पर घूमती हुई सूर्य के चारों ओर परिक्रमा लगाती है, यद्यपि प्रतिदिन की बोल-चाल में प्रचलित परपरा के अनुसार हम अब भी यही कहते हैं कि सूर्य एक ओर से निकलकर और चल-फिरकर स्थिर पृथ्वी के दूसरी ओर डूब जाता है। इसी परपरा के अनुसार हम कहते हैं कि सूर्य पूर्व में निकलता है और पश्चिम में डूब जाता है। जिस प्रकार कि यह मनुष्य के ढीले-ढाले विचारों का एक नमूना है, उसी प्रकार हमें उन प्रचलित वृत्तान्तों और मतों को भी समझना चाहिए, जो यह बताते हैं कि मनुष्य विद्यमान वानरों के किसी मिलते-जुलते आकार से निकला है। मनुष्य और बन-मानुषों में जो समता या भिन्नता है, वह हम आपको बता चुके हैं, किन्तु यहाँ थोड़ा-सा प्रधानभागीयों के विभागों का हाल भी बता देना आवश्यक समझते हैं, जिससे कि आगे समझने में सहायता मिले।

नई दुनिया के बन्दर

नई दुनिया के बन्दर पुरानी दुनिया के बन्दरों से छोटे होते हैं और सब क़रीब-क़रीब पेड़ों पर रहते हैं। वे अधिकतर डरपोक और सीधे-सादे स्वभाव के होते हैं, पुरानी दुनिया के बन्दरों की तरह नटखट और आक्रमणकारी नहीं होते। पुरानी दुनिया के बन्दरों के मुक़ाबले में उनके मस्तिष्क की मुख्य इन्द्रियों के स्थान ज्यादातर समान रूप से बढ़े होते हैं। यदि कोई परिचित मनुष्य नई और पुरानी दुनिया के बन्दरों के किसी मिले हुए झुण्ड में बिल्कुल दूसरे ढग के या अपरिचित कपड़े पहनकर अचानक आ जाय, तो पुरानी दुनिया के बन्दर उसकी आवाज सुनकर भी उसे न पहचान सकेंगे, परन्तु नई दुनिया के बदरों के पहचानने में भेष बदलने से कोई बाधा नहीं पड़ेगी। नई दुनिया के बन्दर अपने परिचित मनुष्य को उसकी आवाज या पैरों की आहट सुनकर ही पहचान लेते हैं। पुरानी दुनिया के बन्दर किसी को देखकर पहचानने में तेज होते हैं, लेकिन वे नई दुनिया के बन्दरों की तरह आवाज से किसी को नहीं पहचान सकते। इससे प्रकट है कि वानरों की मानसिक अवस्था (Psychology) में बहुत भेद है। नई दुनिया के बन्दर सैबिडी (*Cebidae*) वश में रक्खे जाते हैं। इनके नथुने एक दूसरे से बहुत दूर पर होते हैं, इसलिए इन्हें चपटी नाकवाले कहा जाता है। मकड़ी बन्दर (Spider Monkey) में आगे की टाँगें पिछली टाँगों से लम्बी होती हैं, किन्तु

* ब्रिटेन का एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक मण्डल।

ऊनी बन्दरों मे चारों टॉगे क़रीब-क़रीब एक ही लम्बाई की होती हैं। शेष सब जातियों मे पिछली टॉगे लम्बी होती हैं। दुम केवल ककाजो नामक बदर मे ही छोटी होती है, बाक़ी सबमे बडी व लम्बी होती है और बहुतो मे वह पकडने के काम में आती है।

पुरानी दुनिया के बन्दर

पुरानी दुनिया के बन्दर दो समूहों मे बॉटे जाते हैं—पहला कपिसदृश (*Cynomorpha*), जिसमे बन्दर और वानर आदि सम्मिलित हैं, जो चारों टॉगों से चलते-फिरते हैं और जिनकी अगली टॉगे पिछली टॉगों से छोटी होती हैं। दूसरे मानव-सदृश (*Anthromorpha*), जिनमे मानव-सम बन्दर और आधे खडे होनेवाले बन-मानुष सम्मिलित हैं, जिनकी अगली टॉगे पिछली टॉगों से लम्बी होती हैं। सारे कपिसदृश बन्दरों मे नथुने पास-पास होते हैं और वे तग नाकवाले होते हैं। उनके नाख़ून नई दुनिया के बन्दरों से ज्यादा चौडे व कम टेढे होते हैं और सबके कूल्हो पर बिना बाल की बैठने की गद्दियॉ होती हैं। लगूरो को छोडकर सभी के गालों मे थैलियॉ होती हैं। इनमे से कुछ के, जैसे जिब्राल्टर मे रहनेवाले बार्बरी वानर के, दुम नहीं होती। काले वानर मे बहुत छोटी और मकाकस मे सुअर-जैसी दुम होती है। बहुतो मे दुम लम्बी होती है, पर उनमे पकडने की शक्ति नही होती, जैसी कि नई दुनिया के पेड पर रहनेवाले बन्दरों मे होती है। इनमे से कुछ हल्के शरीरवाले और पेड़ो ही पर रहनेवाले हैं, जैसे अफ्रीक़ा के ग्यूनन ; और कुछ भारी डील-डौलवाले व धरती पर रहनेवाले हैं, जैसे पश्चिमी अफ्रीक़ा के ड्रिल और मैंड्रिल बन्दर।

नई और पुरानी दुनिया के बन्दरों की बनावट और रहन-सहन से यह साफ-साफ विदित होता है कि उनमे से कोई एक दूसरे से नही उत्पन्न हुए हैं। वे दोनों तृतीय युग से पहले के काल के किसी बन्दर या अर्द्ध-बन्दर से भी नीची श्रेणी से निकलकर एक दूसरे से अलग अपने अपने मार्ग के अनुगामी बने रहे। यह बात ज़रूर है कि दोनो की आवश्यकताऍ बहुत-कुछ एक-सी ही रही, उनके जीवन व्यतीत करने के ढग भी प्रायः मिलते-जुलते थे और इसलिए उनमे एक ही तरह की बनावट का विकास हुआ। कहा जाता है कि इओसीन (Eocene) या तृतीय युग के प्रारम्भिक काल या उससे भी पहले क्रिटेशियस काल मे ६ करोड़ वर्ष हुए उत्तरी अमरीका मे प्रधानभागीय पुरखे की शाखा से लीमर और टारसियस निकले और तृतीय युग के शुरू मे इन टारसियसो मे से किसी एक से असली बन्दरों की शाखा फूटी।
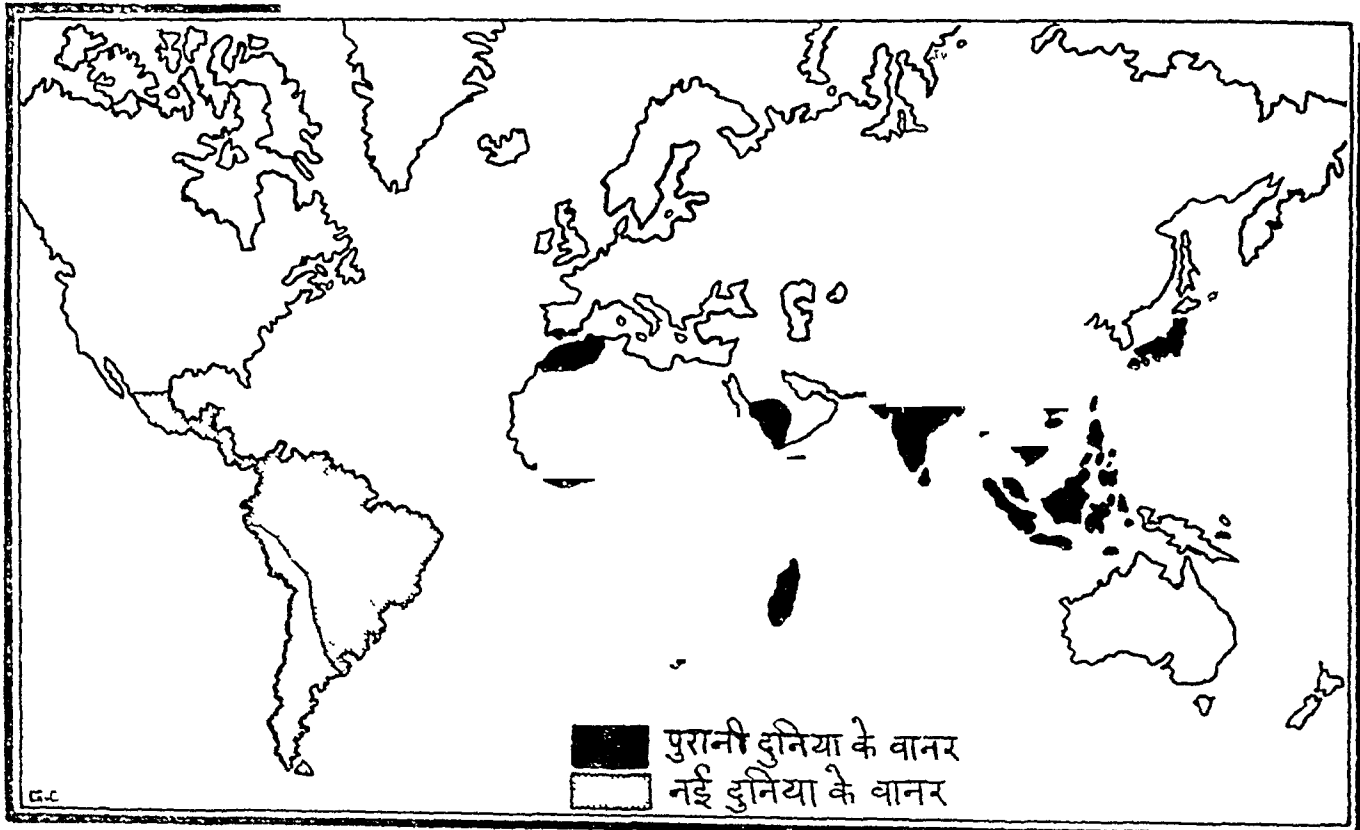
नई दुनिया और पुरानी दुनिया के वानरों का भौगोलिक वितरण
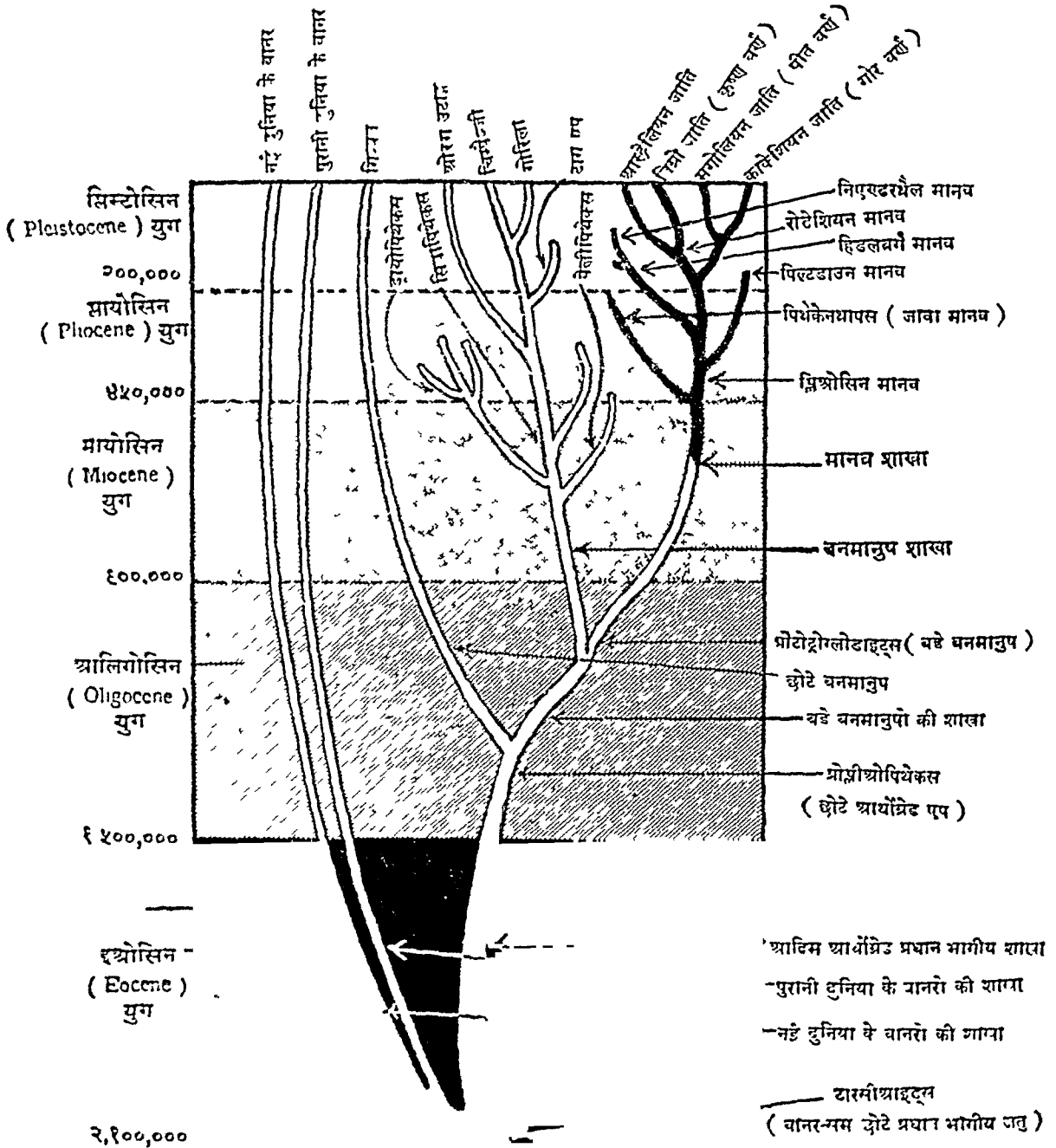
मनुष्य-जाति, वनमानुष और बंदरों का मूल वंश-वृक्ष

यह चित्र मानव-विज्ञान के धुरंधर विद्वान सर आर्थर कीथ द्वारा तैयार किये एक रेखाचित्र के आधार पर बनाया गया है। इसमें स्पष्ट रूप में समझ में आ सकता है कि किस प्रकार सुदूर अतीत में एक ही प्रधानभागीय मूल तने से दो विशाल शाखाएँ फूटीं, जिनमें से एक डाली की उपशाखाओं में नई और पुरानी दुनिया के बन्दर निकले, और दूसरी डाली से क्रमश: गिब्बन, ओरँग आदि वनमानुष, और मनुष्य की उपशाखाएँ फूटीं। वनमानुष-उपशाखा में ड्रायोपिथेकस, पेलियोपिथेकस, सिवापिथेकस, ओरँग, टाग एप, गोरिल्ला, चिम्पैंजी आदि निकले और मानव शाखा में पिथेकैनथ्रापस आदि प्राचीन और काकेशियन आदि अर्वाचीन मानव स्वरूप निकले। चित्र की पृष्ठभूमि में क्रमश: गहरे और हलके रंग में विभिन्न युगों का निर्देश किया गया है, जिससे उक्त शाखाओं के फूटने के समय का ज्ञान होता है। इस मूलवृक्ष के तने में सबसे नीचे टारसिआइडस का निर्देश है जो वानर शाखाओं के फूटने के पहले के प्रधानभागीय रूप का स्मारक है।
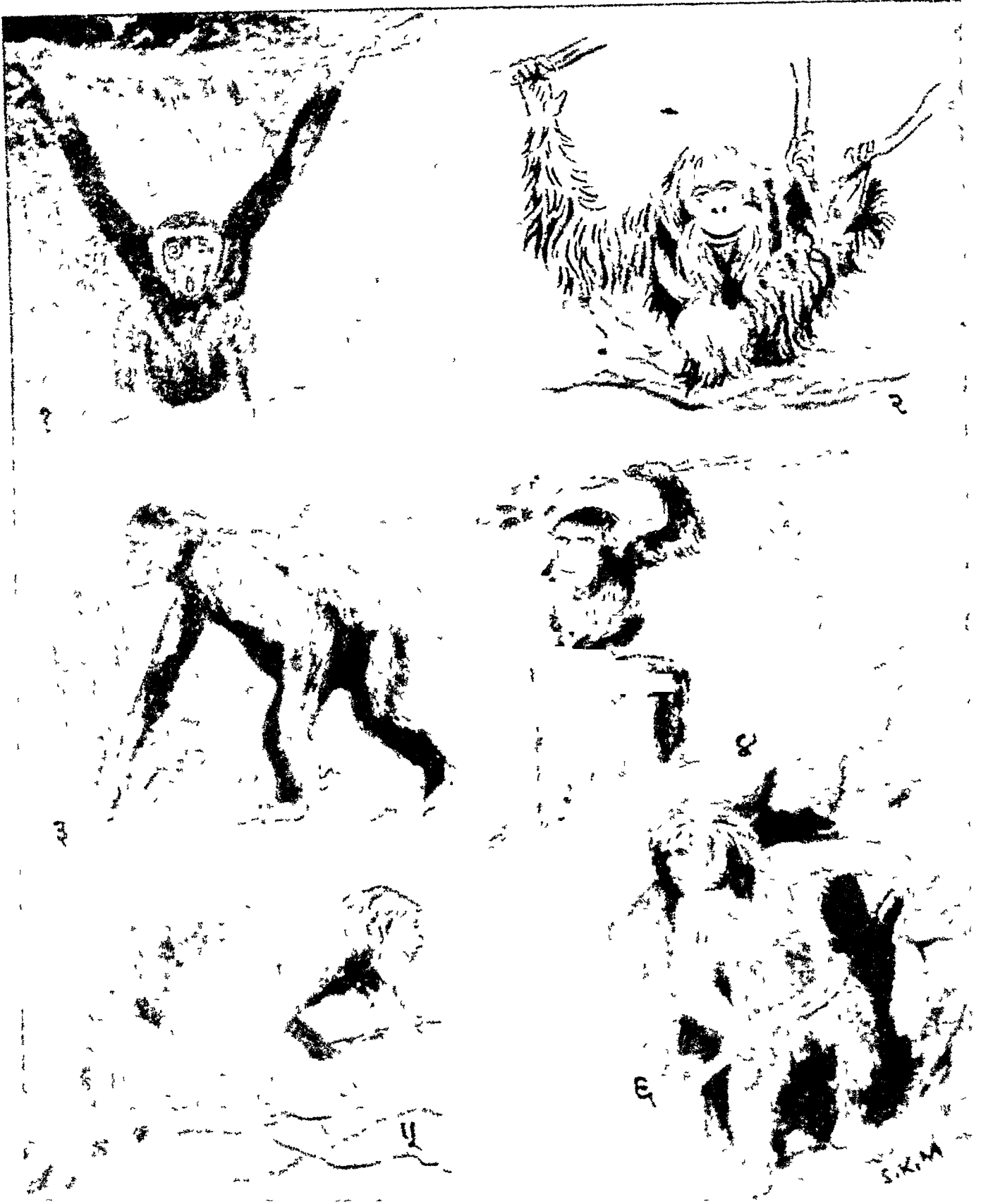
वनमानुषो और मनुष्य में पैरो पर खडे होकर चलने की शक्ति का उत्तरोत्तर विकास

(१) पेडों पर हाथो के बल झूलता हुआ गिब्बन, (२) प्राय. वृक्ष ही पर घोसला बाँधकर रहनेवाला ओरेंग, (३) वृक्ष से धरती पर उतरकर बैसाखी की तरह एक हाथ का सहारा लेकर झुकी दशा मे चलनेवाला गोरिल्ला, (४) मनुष्य की तरह कुछ-कुछ खड़े होकर चल सकनेवाला चिम्पेञ्जी, (५) वानरो की तरह चारों हाथ-पैर से वृक्षो पर विचरनेवाले लाखों वर्ष पूर्व के मनुष्य के आदिम पुरखे की एक कल्पना, (६) आदि मानव का वृक्ष से नीचे उतरकर डंडे का प्रयोग करने के प्रयत्न में पैरों पर खड़े होकर चलना।

मनुष्य-जाति, वनमानुष और बंदरो का मूल वंश-वृक्ष

यह चित्र मानव-विज्ञान के धुरंधर विद्वान् सर आर्थर कीथ द्वारा तैयार किये एक रेखाचित्र के आधार पर बनाया गया है। इससे स्पष्ट रूप में समझ में आ सकता है कि किस प्रकार सुदूर अतीत में एक ही प्रधानभागीय मूल तने से दो विशाल शाखाएँ फूटीं, जिनमें से एक डाली की उपशाखाओं से नई और पुरानी दुनिया के बन्दर निकले, और दूसरी डाली से क्रमश गिब्बन, ओरंग आदि वनमानुष, और मनुष्य की उपशाखाएँ फूटीं। वनमानुष-उपशाखा से ड्रायोपिथेकस, पेलियोपिथेकस, सिवापिथेकस, ओरंग, टांग एप, गोरिल्ला, चिम्पैंजी आदि निकले और मानव शाखा से पिथेकेनथ्रापस आदि प्राचीन और काकेशियन आदि अर्वाचीन मानव स्वरूप निकले। चित्र की पृष्ठभूमि में क्रमश गहरे और हलके रंग से विभिन्न युगों का निर्देश किया गया है, जिससे उक्त शाखाओं के फूटने के समय का ज्ञान होता है। इस मूलरूप के तने में सबसे नीचे टारसिआइडुस का निर्देश है जो वानर शाखाओं के फूटने के पहले के प्रधानभागीय रूप का स्मारक है।

इनमें से कुछ दक्षिणी अमरीका में जा पहुँचे और वहाँ धीरे-धीरे चपटी नाकवाले बन्दर बन गये। दूसरों ने अर्द्ध-वानर और टारसियसों के कुछ पुरखों के साथ-साथ यात्रा स्वीकार की। इस यात्रा में ये प्राचीन बन्दर बदल-बदल-कर पुरानी दुनिया के तंग नाकवाले बन्दर हो गये। उन्होंने इस यात्रा के चिह्न उस समय की चट्टानों में छोड़े हैं और उनमें से कुछ चिह्न मिस्र, भारतवर्ष और यूरोप की बहुत प्राचीन चट्टानों के काटने से मिले हैं। तृतीय महायुग के चौथे काल अथवा प्लायोसीन युग के पहुँचते-पहुँचते लंगूर ऐसे कुछ जीव—मध्य-कपि (Mesopithecus) तथा लम्बित कपि (Dolichopithecus)—बन चुके थे और यूरोप व एशिया में लंगूर, मकाकस और बैबून भी पाये जाने लगे थे। इसके आगे के युगों में इन्हीं रूपों और अन्य समूहों के द्वारा इनका प्रचार सारे एशिया में हो गया। इन्हीं के साथ-साथ उनसे ऊँची श्रेणी के मानव-सम वानरों के पूर्वज भी जन्म ले चुके होंगे। कहा जाता है कि इनका विकास भारतवर्ष के शिवालिक के मैदान में हुआ और वहाँ से ये पूर्वी गोलार्द्ध के भागों में फैले। इनमें से चार अर्थात् गिब्बन, ओरेंग चिम्पान्जी और गोरिल्ला अभी तक मौजूद हैं।

अब यह प्रश्न होता है कि इन मानव-सम वानरों की शाखा क्या पूर्वी गोलार्द्ध में फैले हुए कपि-सदृश वानरों से ही फूटी तथा मनुष्य के तात्कालिक पूर्वज भी क्या इनमें से ही बने? स्थानाभाव के कारण हम इस सम्बंध में यहाँ विस्तार से नहीं लिख सकते। किन्तु जो बातें अभी तक मालूम हुई हैं, उनसे यह परिणाम निकाला जाता है कि पूर्वी गोलार्द्ध के बन्दरों के सारे कुटुम्ब में कोई भी ऐसा नहीं है, जो मानव-जाति का पुरखा कहा जा सके। इसमें सन्देह नहीं कि बड़े डीलवाले वानर ही बनावट में अन्य जीवों की अपेक्षा मनुष्य से अधिक मिलते हैं। इस विषय के हाल के सभी अधिकारी इस बात में एक मत रखते हैं कि चिम्पान्जी और गोरिल्ला वर्ग अन्य जानवरों की अपेक्षा मानव-जाति से अधिक मिलता जुलता है। तब भी हमको यह भूल न जाना चाहिए कि मानव जाति और कपि-सदृश तथा मानव-सदृश वानरों में भेद है और उन दोनों के विकास की धारा मानव-विकास की धारा से अलग बहती है। वन-मानुषों में कुछ ऐसे रूप भी हैं, जिनमें बन्दरों के मुख्य लाक्षणिक परिवर्तन नहीं पाये जाते। कीथ साहब ने हिसाब लगाया है कि पुरानी दुनिया के बन्दरों के लक्षणों की संख्या, जो वन-मानुषों में भी पाई जाती है, निम्न प्रकार है—गोरिल्ला में १४४, चिम्पान्जी में १७२, ओरेंग में २१३ और गिब्बन में ३२३।

इससे यह मानना ही पड़ता है कि वन-मानुष एक प्रकार के परिवर्तित कपि सदृश बन्दर हैं, किन्तु चारों प्रकार के वन-मानुषों और मनुष्य में अन्य बन्दरों के समान दुम नहीं पाई जाती। यह दुम क्यों और कैसे गायब हुई? क्या उसके गायब होने से ही वन-मानुष और मानव अन्य बन्दरों से भिन्न हो गए? डाक्टर ग्रेगरी साहब की राय है कि बन्दर और मनुष्य के पूर्व-पुरुषों में सीधे बैठने की आदत पड़ जाने से दुम धीरे-धीरे छोटी होती गई और गायब हो गई। लेकिन सर आर्थर कीथ का कहना है कि दुम के गायब होने का कारण इनका सीधा खड़ा होना है, क्योंकि कूल्हे के स्नायु दुम के चलाने तथा आँतों का भार सँभालने में असमर्थ हो गये। वुड-जोन्स साहब की राय है कि दुम का होना या न होना ऐसी बात है कि जिसका कोई ठीक कारण बतलाना सहज नहीं है। बहुत-से समूहों में देखा जाता है कि दो निकट सम्बन्धी प्राणियों में, जो बहुत कुछ एक-सा ही जीवन व्यतीत करते हैं, एक में लम्बी और काम में आनेवाली दुम होती है और दूसरा बिना दुम के होता है। यदि हम पेड़ों पर रहनेवाले जीवों ही की ओर ध्यान दें तो पता लगता है कि उनमें दुमदार और बेदुमदार दोनों ही प्रकार के जीव पाये जाते हैं, चाहे वे खड़े रहनेवाले हों या बैठनेवाले। पेड़ों पर चढ़नेवाले मांसभोजी श्रेणी के जन्तुओं में बहुत-सी लम्बी दुमवाली बिल्लियाँ, बेदुमदार लिन्क (Links), और दुम से पकड़नेवाले किंकाजू हैं। थैलीवाले जन्तुओं में भी दुमदार, बेदुमदार तथा पकड़नेवाली दुमवाले जन्तु पाये जाते हैं। अर्द्ध-वानरों में भी बहुत-से लम्बी दुमवाले और बहुत-से बेदुमदार हैं। इसी प्रकार नई और पुरानी दुनिया के बन्दरों में भी लम्बी दुमवाले, दुम से पकड़नेवाले और बेदुमदार जीव मिलते हैं, परन्तु इनमें यह देखा जाता है कि जहाँ लम्बी दुमवाले कूदने फाँदने में तेज होते हैं, वहाँ जिनकी दुम में पकड़ने की शक्ति होती है, वे लटकने और झूलने में चतुर होते हैं, तथा बेदुमदार बन्दर हाथों से पकड़कर चढ़ने में निपुण होते हैं।

इससे विदित होता है कि सब में दुम न तो बैठने के कारण और न खड़े होने के कारण ही घिसी और न आँतों के बोझ सहने की वजह से ही। साथ-ही-साथ यह भी जान पड़ता है कि दुम के गायब हो जाने से इनके पेड़ों पर चढ़ने का ढंग भी बदल गया। अब वे हाथों से चढ़नेवाले

बन्दर बन गये। अवश्य ही यही कारण है कि जिससे ऐसे वानरों की अगली टाँगे पिछली टाँगों से लम्बी हो गई और यही मनुष्य-सदृश और कपि-सदृश वानरों मे मुख्य भेद है। मनुष्य की उत्पत्ति पर विचार करते समय हमे इस बात को भूल न जाना चाहिये।

अतएव यह कल्पना उचित प्रतीत होती है कि पुरानी दुनिया के कुछ बेदुमदार बन्दर अपने समूह के अन्य वानरों की भाँति उन्नति नही कर सके और अपनी पहली अवस्था मे ही बने रहे। दुम न होने के कारण उन्होंने हाथ से काम लेना शुरू किया। हाथों से ही पकडकर वे वृक्षों पर चढने लगे, इससे उनके हाथों मे पकडने की शक्ति आती गई और कुछ समय बाद वे पेडो की डालियाँ पकड-कर लटकने और झूलने लगे। धीरे-धीरे उनमे अधिक समय तक सीधे लटके रहने की योग्यता भी आने लगी, जिसके कारण उनके शरीर के अगों मे परिवर्तन होने लगा तथा उनमे से कोई-कोई अदल-बदलकर बन-मानुष हो गये। इसी सीधे लटकने के ढग ने वृक्षवासी बेदुम-दार जीवों की हड्डियों, पेशियों और आँतों मे ऐसे परि-वर्तन कर दिये, जिनकी वजह से वे दो टाँगों पर बिलकुल सीधे खडे होनेवाले आदमी के पूर्वजों का रूप ग्रहण करने लगे। कीथ साहब ने यह भली भाँति दिखलाया है कि इसी प्रकार के हेर-फेर और हाथों से चलने, फिरने, लटकने आदि का काम लेने के कारण (जैसा कि हम आजकल गिब्बनों मे लाक्षणिक रूप मे पाते हैं) बन-मानुषों के शरीर मे उनको सीधे रखनेवाले प्रबन्धों की नींव पड गई। हल्के और फुर्तीले गिब्बनों से, जो अपनी लम्बी भुजाओ के सहारे पेडों पर सीधे कूदते और झूलते रहते थे, आगे चलकर उनसे कुछ भारी बदनवाले ओरेंग बने, जो वृक्षों पर लटकते थे, और उनसे भी भारी शरीरवाले गोरिल्ला बने, जो अपने अधिक बोझ के कारण पेडों पर बराबर चल-फिर नही सकते थे। इसलिए वे धरती पर बैठने लगे और लम्बी बाँहों से बैसाखी की तरह शरीर को साधते हुए झुकी दशा में तथा कभी-कभी दो-चार क़दम टाँगों पर सीधे खडे होकर चलने लगे। सब बन-मानुषो मे गोरिल्ला ही सबसे ज्यादा पृथ्वी पर रहनेवाला है और कदाचित् इसीलिए उसमे ही सबसे अधिक परिवर्तन पाये जाते हैं। ओरेंग मे सबसे कम परिवर्तन पाये जाते हैं, क्योंकि यही सबसे ज्यादा पेड पर रहता है। कहा जाता है कि मनुष्य के आदि पूर्वपुरुष भी बन-मानुषों के साथ वृक्ष पर रहनेवाले जीव रहे होंगे तथा उन्हीं की तरह हाथों से खाते, पीते और लटकते रहे होंगे। टामसन साहब का कथन है कि इसी प्रकार की रहन-सहन के कारण हाथो को चलने-फिरने से छुटकारा मिल गया। शरीर ने नया रूप धारण कर लिया। थूथन छोटा होता गया, और इस कारण से खोपड़ी बड़ी हो गई। आँखे आगे को आ गई, तथा उनमे दूर तक देखने की शक्ति आ गई। घ्राणपिण्ड (मस्तिष्क का वह भाग जो सूँघने से सम्बन्ध रखता है) छोटा होता गया और मस्तिष्क के वे भाग, जिनमे दृष्टि, श्रवण और स्पर्श की संवेदना पहुँचती है, बढते गये। जब थूथन छोटा होने लगा, तो खाना खाने का काम भी हाथो से ही होने लगा, उनमे स्पर्श का बोध बढता गया। इस तरह हाथों व पैरो का काम अलग-अलग बँट गया। प्रोफेसर लल का विचार है कि मायोसीन या प्लायोसीन काल के आरभ मे जब पृथ्वी पर जगल घटने लगे, तो इन मानवीय पूर्वजों को पेड़ छोडकर पृथ्वी पर रहना स्वीकार करना पडा होगा। इस नई परि-स्थिति मे उनको बहुत-सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा होगा। इन कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करने के लिए उन्हें जो उपाय करने पडे होगे, उनसे मनुष्य की उत्पत्ति मे बहुत सहायता मिली। भयकर जंगली जानवरों से अपनी रक्षा करने के लिए उन्हे अपने हाथों, लम्बे जबडो, मजबूत कुकुरदन्तों से युद्ध करना पडा होगा। इसके अतिरिक्त उनको उस समय की घनघोर वर्षा, कड़ी धूप आदि कठोर प्राकृतिक दशाओं से बचने के लिए अपनी बुद्धि भी दौडानी पड़ती होगी। इसलिए उनकी बुद्धि का भी विकास होता गया। थोडे ही समय मे उन्होंने अपनी रक्षा के लिए ककड़, पत्थर, लकड़ी, डडों का प्रयोग करना सीख लिया। डार्विन साहब लिखते हैं कि ये जीव ज्यों-ज्यों ज्यादा सीधे और दोपाये होते गये होंगे, त्यों-त्यो उन्हे डडे और पत्थरों से अपनी रक्षा करने तथा भोजन के लिए दूसरे जानवरों पर आक्रमण करने और वृक्षो पर बिना चढे ही फल तोड़ने में अधिक सहायता मिली होगी। हाथों मे विशेषता होने के साथ-साथ बाँहों की लम्बाई और भार मे कमी होना भी अब आवश्यक हो गया, क्योंकि तेज़ दौड़ने, ज़ोर से डडा मारने या पत्थर फेकने के लिए ऊपरी शरीर का हल्का होना और उसका पैरों पर सधना ज़रूरी हो गया। इसी आवश्यकता के अनुसार इस दोपाये शिकारी की सारी बनावट मे सहकारी रूप से परिवर्तन हो गया।

अब लडाई का काम पूर्ण रूप से भुजाओं ने अपने जिम्मे ले लिया और दौडने-भागने का काम पैरों के हिस्से में आ गया। खोपड़ी अब पहले से कम मोटी तथा चेहरा पहले से अधिक सुडौल होने लगा; क्योंकि जब लड़ाई का काम दाँतों से हाथों पर आ गया, तो न उतने भारी जबडे

रह गये और न उतनी मजबूत गर्दन ही। कार्वेथ रीड साहब का कहना है कि इस प्रकार जहाँ सिर आक्रमणों से बचा रहने लगा और खोपड़ी की मोटाई कम हो गई, वहाँ उसके भीतर की खोखली जगह और दिमाग बढ़ता गया, जिससे चेहरे सुडौल, जबड़े छोटे, और मस्तक सीधा व ऊँचा हो गया। कालान्तर में इन आदिम नराकार प्राणियों ने वनमानुषों से अलग होकर मानव का रूप और ढंग धारण कर लिया। पर इन साधारण परिवर्तनों के होने में भी कई लाख वर्ष लग गये।

प्रश्न उठता है कि जमीन पर रहनेवाले गोरिल्ला आदि वनमानुषों में भी ऐसे ही परिवर्तन क्यों नहीं हुए? वे भी मनुष्यों के पुरखों की तरह सारी धरती पर क्यों नहीं फैल गये? इसका उत्तर यही जान पड़ता है कि मनुष्य के पूर्वज केवल शाकाहारी ही नहीं रहे, बल्कि वे शिकारी और मांसाहारी भी हो गये। इसलिए उन्हें केवल फलवाले जंगलों में ही रहने की आवश्यकता न रह गई। वे स्थलचारी पशुओं को मारकर खाते हुए जंगलों से दूर गर्म देशों को छोड़कर सम्पूर्ण पृथ्वी पर फैल गये, किन्तु बेचारे वनमानुष आज तक फलाहारी ही बने हैं और अफ्रीका के उष्ण कटिबन्धीय वन, मलाया प्रायद्वीप तथा सुमात्रा और बोर्नियो के घने जंगलों में ही पाये जाते हैं, जहाँ आहार के लिए खाने योग्य शाक-पात साल भर मिलता रहता है। वहाँ के अतिरिक्त वे और कहीं नहीं पाये जाते। इनमें से चिम्पैन्जी और गोरिल्ला कभी-कभी भूमि पर उतर तो आते हैं, लेकिन रहने के लिए झोपड़ी पेड़ों पर ही बनाते हैं। वे मानवीय पुरखों की भाँति वनों से छुटकारा नहीं पा सके। कहा जा सकता है कि वनवासी फलाहारी जीव भी शाकपात खाते हुए वनों को छोड़ अन्य देशों में फैल सकते थे, जैसे कि गाय, बैल, भैंस इत्यादि। परन्तु इससे वे न तो सीधे खड़े होनेवाले दोपाये हो सकते थे, न उनके मस्तिष्क की वृद्धि ही हो सकती थी और न मनुष्य के विशेष लक्षणों को ही वे पा सकते थे। यह भी सम्भव है कि कुछ शिकारी मानवीय पूर्व-पुरुष जब ऐसे देशों में पहुँच गये, जहाँ उन्हें खाने-योग्य नर्म शाक-पात बिल्कुल न मिल सका या कम मिलने लगा, तो वे उनके बदले मांस के साथ-साथ कंद-मूल व दूसरी खुरदरी वस्तुएँ भी खाने लगे। इस कारण उनके दाँत भी इस नये आहार के अनुरूप बदल गये।
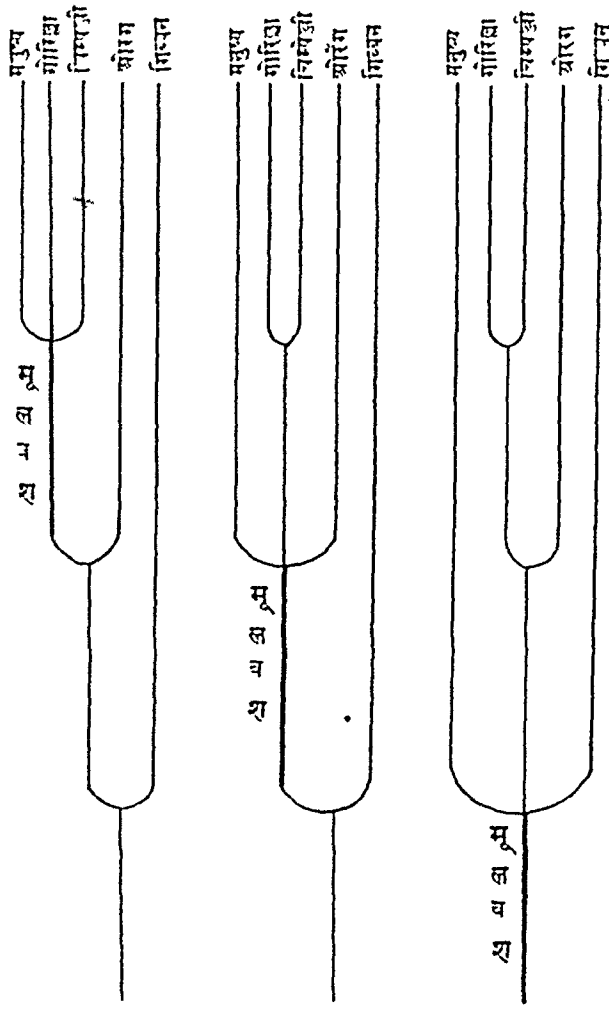
(१) (२) (३)

मनुष्य और वनमानुषों के मूलवंश संबंधी तीन मत

(१) मनुष्य, गोरिल्ला और चिम्पैन्जी एक ही मूलवंश की तीन समान उपशाखाएँ हैं। ओरैंग और गिब्बन इनमें बहुत पहले ही पृथक् हो चुके थे। (२) एक ही मूलवंश में तीन शाखाएँ निकलीं—पहली मनुष्य की, दूसरी ओरैंग की और तीसरी गोरिल्ला और चिम्पैन्जी की, जो दो भागों में बँट गई। गिब्बन पहले ही अलग हो गया था। (३) एक ही मूलवंश में तीन शाखाएँ फूटीं—एक में मनुष्य, दूसरी में गिब्बन और तीसरी से क्रमशः तीन उपशाखाओं के रूप में ओरैंग, चिम्पैन्जी और गोरिल्ला निकले।

हमारे पूर्वज अपनी उन्नति के मार्ग में कुछ ऐसी अवस्थाओं से गुजरे होंगे जिनका कि हमारे पास प्रस्तर-विकल्प (Fossils) में कोई प्रमाण नहीं है। फिर भी यह निश्चित है कि लगभग मध्य मायोसीन काल तक लाइकोपिथेकस (*Lycopithecus*) जैसा कोई वानर पृथ्वी पर था। इसके बाद धीरे-धीरे वह दूसरी श्रेणी में पहुँचा। इस अवस्था में शायद वह प्लायोसीन काल के मध्य तक रहा। इसी युग में उसमें मानव रूप और गुण का कुछ अंश आने लगा [जैसा कि प्रस्तर-विकल्प प्रोटॉन्थ्रोपस

Proteranthropus) या हाल ही मे पाये गये पैराएनथ्रोपस (*Paranthropus*) मे हम देखते हैं।] इसी अवस्था का एक पिछला नमूना शायद पिथैकैनथ्रोपस (*Pithecanthropus*) है, जो सीधा खडा हो सकता था। इसके आगे चलकर हमे और भी कई उपजातियाँ मिली हैं, जो मानव-जाति मे सम्मिलित की जा सकती हैं, लेकिन वे मनुष्य की वर्तमान उपजाति से भिन्न हैं। मनुष्य के इन प्रस्तर-विकल्प पूर्वजों का वर्णन हम आगे के लेख मे करेगे।

मनुष्य के पुरखे कहाँ उत्पन्न हुए और वे कैसे फैले

(ऊपर के नकशे में) काले रंग तथा समानान्तर रेखाओं व बिन्दुओं से भरे भाग में आरंभिक मनुष्य विचरते थे, यह धारणा की जाती है। समानान्तर रेखावाले भाग के मनुष्यों के चेहरे कुछ-कुछ गौरवर्ण, सिर लंबे और बाल लहरदार घुंघराले थे। काले भाग के लोगों का वर्ण उनसे कम गोरा और बाल घुंघराले थे। बिन्दुवाले भाग के लोगों के सिर छोटे और बेडौल थे। नकशे मे स्थल भाग की मोटी रेखा तत्कालीन स्थलभाग को सूचित करती है। हिमयुग की समाप्ति पर मनुष्य के आदिम पुरखे अफ्रीका के गर्म चरागाहो से चारों ओर फैलने लगे। उनकी शाखाओ के मार्ग और आज की जातियों मे बचे हुए उनके स्मारक नकशे में दिये गये है।

मनुष्य की शाखा बन्दरों और बनमानुषों की शाखा से कहाँ और किस अवस्था मे मिलती है, इस बात पर विस्तारपूर्वक विचार करने के लिए हमारे पास स्थान नही है, क्योंकि इस विषय मे विद्वानो मे मतभेद है। कुछ वैज्ञानिकों की राय है कि मनुष्य मानव-सम वानरो के धड से ऐसे समय मे निकले जब इन्होंने अपने वर्तमान लक्षण ग्रहण कर लिये थे, परन्तु यह बात अब सही नही मानी जाती। औरों की धारणा है कि मनुष्य और मानव-सम वानर एक ही धड से निकले तथा वर्तमान बडे वानर भी इसी धड से निकले। आजकल के अधिकतर लोगों का यही विचार है। परन्तु इसमे भी बहुत भेद है कि इन सबके धड से मनुष्य के पुरखे कितनी दूर से निकले। सभी मत वाले यह मानते हैं कि पुरानी दुनिया के बन्दरों की शाखा मनुष्य और बनमानुषों की शाखा से पहले और अधिक प्राचीन अवस्था मे अलग हो गई थी। मनुष्य और बनमानुषों के पुरखे एक ही थे, जो शिवालिक के मैदान में मिलनेवाले ड्रायोपिथैकस (*Dryopithecus*) और सिवैपिथैकस (*Sivapithecus*) के जैसे प्रस्तर-विकल्पों से मिलते-जुलते रहे होंगे। हाल के कुछ लोगों का मत है कि मनुष्य बनमानुषों की शाखा से कदापि नहीं निकला और उसकी शाखा उनकी शाखा से अलग नीचे के और किसी पूर्वज से मिली है।

यह कहना कठिन है कि इनमे से कौन-सा मत ठीक है, लेकिन मनुष्य, बनमानुषो और बन्दरों की शारीरिक रचना की अच्छी तरह तुलना करते हुए यह विचार ठीक जान पडता है कि मनुष्य के अत्यन्त प्राचीन पूर्वज प्रधान-भागीयो की शाखा से उसके सदस्यो पर पुरानी दुनिया के बन्दरों की छाप लगने के पहले ही निकल चुके थे।

आदिम मनुष्यों का जन्म दुनिया के किन भागों में हुआ इसका भी ठीक-ठीक उत्तर देना असम्भव है। परन्तु यह निश्चित है कि हिमालय के दक्षिण मे शिवालिक की पहाडियों में अफ्रीका से आये हुए प्राचीन बन-

मानुषों से नये वन-मानुष पैदा हुए। मनुष्य के सबसे प्राचीन प्रस्तर-विकल्प अभी तक भारतवर्ष में कहीं नहीं मिले। यह कहना कठिन है कि वर्तमान मनुष्य की उत्पत्ति भारतवर्ष में हुई है। डार्विन साहब का विचार था कि मनुष्य-वंश का मूल घर अफ्रीका है। जब सन् १८९१ में एक बड़े प्राचीन मनुष्य की खोपड़ी (पिथिकेन्थ्रोपस) जावा के टापू में मिली, तो यह धारणा की गई कि मनुष्य के उत्पन्न होने की जगह जावा या पूर्वी एशिया है, अफ्रीका नहीं। जब सन १९२९ और उसके आगे के वर्षों में चीन में पेकिंग नगर के आस-पास मानव-जाति की कई पूरी खोपड़ियाँ [साइनेनथ्रोपस (*Sinanthropus*)] और हड्डियाँ मिलीं, तब यह बात और भी पक्की हो गई।

लेकिन जब प्राचीन मनुष्यों की ये दो जातियाँ पूर्वी देशों में रहती थीं, दूर के पश्चिमी देशों में एक और जाति इयनथ्रोपस (*Eoanthropus*) घूमती फिरती थी। इसके प्रस्तर-विकल्प विलायत में पिल्टडाउन-नामक स्थान में मिले हैं। लगभग १५ लाख वर्ष पूर्व प्लायोसीन काल समाप्त होने के पहले सारी पुरानी दुनिया में मनुष्य के बिगड़े हुए स्वरूप अवश्य फैले हुए थे। जहाँ तक प्रमाण मिलता है, मनुष्य-वंश से सचमुच मिलनेवाले वानर भारतवर्ष के पश्चिमी भागों में ही पाये जाते थे। इससे यह अधिक सम्भव प्रतीत होता है कि मनुष्य-वंश की शैशवावस्था हिमालय और अफ्रीका के बीच के देश मसोपोटामिया के ही आस-पास बीती होगी। हाल ही में स्वेन हेडेन ने मंगोलिया के रेगिस्तानों में खोज की है और इस खोज में प्राचीन मनुष्य के साथ रहनेवाले बड़े-बड़े जानवरों के प्रस्तर-विकल्प पाये हैं। इससे पता चलता है कि मनुष्य की उत्पत्ति शायद यहीं कहीं या गोबी के रेगिस्तान में हुई हो। रूस के कुछ वैज्ञानिकों ने, लगभग एक वर्ष हुआ, प्रोफेसर कैप्टेरैफ के नेतृत्व में एक खोज-सम्बन्धी यात्रा करने का प्रयत्न किया था। कैप्टेरैफ का कहना है कि उम्मीद है कि हमें उत्तराखंड के ध्रुव-प्रदेश के आस-पास मनुष्य के पूर्वजों के शव बर्फ के भीतर ढके हुए मिलें, जिनसे पता चलेगा कि वे काले थे या गोरे, उनके शरीर पर लम्बे और सीधे बाल थे या छोटे और घुंघराले, वे दाढ़ी रखते थे या नहीं, किसी प्रकार के कपड़े पहनते थे या नहीं, वे लम्बे या सुन्दर थे, अथवा नाटे और बदसूरत, तथा वे बन्दर की-सी शक्ल के थे या नहीं। प्रोफेसर साहब का विचार है कि वे इन प्राचीन मनुष्यों के शवों को ध्रुव-प्रदेश की किसी खोह या गुफा में बर्फ में गड़े-दबाये पायेंगे।

मनुष्य कितना पुराना है?

मनुष्य कितना पुराना है, इस संबंध में भी विद्वानों में बहुत मतभेद है। सर आर्थर कीथ ने ३-४ वर्ष हुए एक अभिनन्दनपत्र के उत्तर में कहा था कि वर्तमानकाल के चारों प्रकार के मनुष्य, अर्थात् श्वेतांग, पीतांग, रक्तांग और कृष्णांग—मध्य प्लायस्टोसीन काल में एक ही शाखा से पैदा हुए थे, किन्तु हाल की कुछ खोजों ने उनको यह विचार बदलने के लिए बाध्य कर दिया है। अब ऐसा जान पड़ता है कि प्लायस्टोसीन काल के आरम्भ में ही, लगभग ५ लाख वर्ष हुए, मंगोल, आस्ट्रेलियन और नीग्रो के पूर्वज महाद्वीपों पर फैल चुके थे। इसके पश्चात् इन सभी जातियों में एक ही से ऐसे परिवर्त्तन हुए जिनकी वजह से वे वानरों के रूप को छोड़कर मनुष्य के रूप को धारण करती गईं, जैसे जबड़ों और दाँतों का छोटा होना, मस्तिष्क का बड़ा होना इत्यादि। जे० रीड मौयर ने हाल ही में कहा है कि सन् १९२९ में पेकिंग में पाया गया मनुष्य दस लाख वर्ष पुराना है। प्लायोसीन काल में पूर्वी इंगलिस्तान में ऐसे बलवान् पूर्वज देखे जाते थे, जो चट्टानों से बड़े-बड़े चिप्पड़ उखाड़ सकते थे और उनसे औज़ार बना सकते थे। इनको लगभग २० लाख वर्ष हो गये। अमरीका के प्रसिद्ध प्रस्तर-विकल्प-शास्त्री (Palaeontologist) प्रो० ओसबोर्न का कथन है कि मनुष्य सर आर्थर कीथ तथा अन्य वैज्ञानिकों के बताये हुए समय से ६० लाख वर्ष अधिक पुराना है। वह विश्वास करते हैं कि मनुष्य बन्दरों की शाखा से ६० लाख वर्ष नहीं, वरन् लगभग १ करोड़ ५० लाख वर्ष पहले अलग हुआ। १२ लाख ५० हजार वर्ष तो मनुष्य को हाथी तथा अन्य स्तनपोषितों का शिकार करते बीत गये, क्योंकि प्राचीन हाथियों के दाँत मनुष्य के प्रस्तर-विकल्पों के साथ-साथ पाये गये हैं। इसी गणना के अनुसार विलायत में पिल्टडाउन नगर में पाये हुए मनुष्य की आयु १२ लाख ५० हजार वर्ष होती है, किन्तु जावा के ट्रिंटल मनुष्य की आयु ६ लाख ही रह जाती है। प्रोफेसर स्विनरटन साहब ने इस विषय के सम्बन्ध में बहुत ही सुन्दरता से निम्न शब्दों में लिखा है—

"वैज्ञानिक लोग थियेटर देखनेवाली जनता की तरह हैं, जो रंगमञ्च पर एक अभिनेता को एक आवारे का अभिनय करते देखती है और थोड़ी ही देर बाद उसे एक राजकुमार के रूप में सामने पाती है, परन्तु वह पर्दे के पीछे जाकर यह नहीं देख पाती कि उस आवारे ने किस घड़ी और कैसे राजकुमार का भेष धारण कर लिया।"

स्थूल मस्तिष्क संबंधी कुछ और बातें

पिछले लेख मे हमने मस्तिष्क के स्थूल रूप का मोटे तौर पर दिग्दर्शन किया था, ताकि मानसिक क्रियाओ के अध्ययन के लिए उचित पृष्ठभूमि (back-ground) तैयार हो जाय। इस लेख मे उसी सिलसिले मे कुछ और बाते बताना आवश्यक समझते है, जिनकी जानकारी मनोवैज्ञानिक अध्ययन मे सहायक होगी। अगले लेख से हम मनोविज्ञान का विधिवत् अध्ययन आरंभ करेंगे।

यदि हम पूरे स्थूल मस्तिष्क को तौलें, तो पायेंगे कि बृहत् मस्तिष्क, जो अन्य भाग की तुलना मे स्थूल मस्तिष्क मे नई वृद्धि है, समूचे मस्तिष्क का लगभग ८७·५ प्रतिशत भाग है। इस समूचे पदार्थ मे महत्व की वस्तु वह वल्क है, जो बृहत् मस्तिष्क के ऊपर पपडीनुमा मुडा-मुडा-सा रहता है। यह वल्क भिन्न-भिन्न व्यक्तियों मे भिन्न-भिन्न परिमाण मे होता है, और कदाचित् इसीलिए मानव-मानव में हमे बुद्धि-विभेद दिखाई पडता है। प्रसिद्ध फ्रेञ्च मानव-प्राणी-शास्त्री ब्रोसा का मत है कि बृहत् मस्तिष्क के किसी गोलार्द्ध की सामनेवाली घाई पर के वल्क के किसी भाग के नष्ट हो जाने से उसकी विपरीत दिशा के हस्त प्रधान आदमी की शब्दस्मृति लोप हो जाती है। अर्थात् यदि बृहत् मस्तिष्क के वाम गोलार्द्ध मे उक्त बात घटेगी, तो प्रधानतया दायेहाथ से काम लेनेवाले आदमी पर असर पडेगा और दाये गोलार्द्ध मे घटने से बाये हस्त-प्रधान आदमी पर।

उक्त वल्क चार छोटे-छोटे टुकड़ों (Lobes) में घाइयों द्वारा विभाजित होता है। यह घाइयाँ निरन्तर और गहरी होती हैं। इन टुकडों (Lobes) मे भी कितनी ही छोटी-छोटी घाइयाँ बनी होती हैं। उक्त चार टुकडे १—सम्मुख या ललाट भाग (Frontal Lobe), २—शीर्ष भाग (Parietal Lobe) ३—पार्श्व भाग (Temporal Lobe) तथा ४—पृष्ठ भाग (Occipital Lobe) कहलाते हैं, जिनका अंग्रेजी नामकरण खोपडी की चार हड्डियों के नाम पर हुआ है।

इन विभागो का नाम जानने के बाद हमारे मन मे इस जिज्ञासा का उठना स्वाभाविक हो जाता है कि क्या वल्क के पृष्ठ-भाग का सम्बन्ध दृष्टि से अथवा पार्श्व-भाग का सम्बन्ध श्रवणेन्द्रिय से तो नही है, क्योंकि प्राणी-शरीरशास्त्र का यह निश्चित और प्रमाणित मत है कि किसी अग की स्थिति, रचना और क्रिया मे अवश्य ही कोई-न-कोई सम्बद्धता होती है। किन्तु इस प्रकार उक्त वल्क के किसी निश्चित और विशेष भाग मे किसी विशेष क्रिया के सम्पादन के स्थानीकरण के प्रयत्न के लिए हमे समूचे वल्क पर विचार करना होगा। न केवल उसके ऊपरी सतह का ही बल्कि निचली सतह को भी विचार के क्षेत्र में लाना होगा। यह निचली सतह बृहत् मस्तिष्क के दोनों गोलार्द्धों को अलग करके देखी जा सकती है।

मस्तिष्क के सर्वश्रेष्ठ सर्जन सर विक्टर हार्सली की खोजो से 'मानसिक स्थानीकरण' (Brain Localisation) के सिद्धान्त की नींव काफी मजबूत हुई है। इस अनुसंधान का व्यावहारिक मूल्य यह है कि जब एक व्यक्ति को दृष्टि-दोष या लकवा आदि हो जाता है, तब हम 'मानसिक स्थानी-करण' के ज्ञान से यह नतीजा निकाल सकते हैं कि उस व्यक्ति के स्थूल मस्तिष्क का कौन-सा विशेष क्षेत्र अव्यवस्थित हो रहा है। कोई भी बाहरी चिह्न दृष्टिगोचर न होते हुए भी मस्तिष्क का सर्जन खोपडी के एक खास भाग को खोलेगा, जिसे वह वल्क के उक्त विशेष भाग के ठीक ऊपर समझेगा, जहाँ अव्यवस्था हो गई होगी, और वहाँ उसे किसी हड्डी की असाधारण मोटाई या ऐसी ही कोई अन्य अव्यवस्था दिखाई दे सकती है। उस अव्यवस्था को वह दूर कर सकता है और अपने रोगी को आराम कर सकता है।

इतनी खोज के बाद भी हम पाते हैं कि वल्क का अधिकाश भाग ऐसा है, जिसकी उपयोगिता का हमको पता नहीं है। वह भाग बिलकुल अक्रियाशील-सा लगता है। अनुमान यह किया जाता है कि उक्त अक्रियाशील क्षेत्र बुद्धि के विकास से सम्बन्धित है। इसके लिए एक प्रमाण यह मिलता है, जैसा कि डॉ० हगलिङ्गस जैक्सन का मत है, कि वात-सूत्र-प्रणाली धरातलों के एक सिलसिले से बनी हुई है, और वे धरातल एक-दूसरे पर बिछे हुए हैं। इनमें का सबसे ऊपरी धरातल विकास के क्रम मे नवीनतम है। इस सत्य को हम तब स्वीकार करते हैं, जब हम 'वल्क' (Cortex) को मस्तिष्क का नवीनतम परिधान या ढक्कन कहते हैं। इस वल्क मे यह अक्रियाशील क्षेत्र अन्य भाग की अपेक्षा अपनी नवीनता प्रकट करता है। इसलिए वल्क का यह अक्रियाशील भाग मस्तिष्क का नवीनतम और उच्चतम अग समझा जाना चाहिए, जिससे मानव मस्तिष्क की प्रगतिशीलता का परिचय मिलता है।

यद्यपि छोटी-छोटी विस्तार की बातों मे प्रत्येक स्थूल मस्तिष्क मे कुछ-न कुछ विभिन्नता अवश्य होती है, फिर भी साधारणतया सभी बातें समान होती हैं। जैसा कि पहले लेख मे बतलाया जा चुका है, 'बृहत मस्तिष्क' दो गोलार्द्धों मे विभाजित है। इन्हे वाम और दक्षिण गोलार्द्ध कहते हैं। ये एक दरार के द्वारा अलग होते हैं और इन पर भूरे पदार्थ की एक पपडी-सी पड़ी रहती है, जो साँप की कुण्डली की तरह भीतर के सफेद पदार्थ पर छायी रहती है। यह कुण्डलीनुमा पपड़ियाँ बहुत ही असमान होती हैं और इस कारण इन गोलार्द्धों के धरातल खूब ऊबड़खाबड़ होते हैं। जितना ही ऊँचा धरातल होगा, मस्तिष्क मे उतना ही अधिक रक्त का सचार हो सकेगा। साधारणतया बुद्धि की मात्रा उक्त भूरे पदार्थ की कुण्डलियो की सख्या के अनुपात मे ही होती है। अब यह निश्चित हो चुका है कि बृहत मस्तिष्क ही विवेक, बुद्धि, इच्छा और भावना आदि का प्रधान केन्द्र है।

'बृहत मस्तिष्क' की तरह 'लघु मस्तिष्क' भी दो गोलार्द्धों मे बना हुआ होता है और उसकी सतह पर भी उक्त धूसर पदार्थ की कुण्डलीनुमा जमावट होती है, किन्तु यह जमावट 'बृहत् मस्तिष्क' की तुलना मे अधिक समबद्ध और नियमित होती है।

यही लघु मस्तिष्क शारीरिक गतियों का सचालन और नियन्त्रण करता है। चलना, दौड़ना, कूदना, उठना, बैठना आदि क्रियाएँ लघु मस्तिष्क के ही संकेत और आज्ञा पर होती हैं। यदि 'लघु मस्तिष्क' मे कोई खराबी पैदा हो जाय, तो आदमी किसी अग को हिला तो सकेगा, पर वह शरीर का सतुलन स्थिर नहीं रख सकेगा, फलत वह चल नहीं पायगा। यहाँ यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि 'लघु मस्तिष्क' से विभिन्न अगों की अपने आप होनेवाली गति पैदा नही होती, वरन् उसका नियन्त्रण मात्र उसके द्वारा होता है।

स्थूल मस्तिष्क की भीतरी सतह से वात-ततुओं के १२ जोडे निकलते हैं। इनमे का पहला जोड़ा गन्ध-तन्तु या घ्राण-नाड़ियों का होता है, जो नाक के भीतरी प्रदेश अर्थात् घ्राण प्रदेश तक जाता है।

दूसरा जोड़ा दृष्टि-तन्तु अथवा दृष्टि नाड़ियों का होता है। तीसरा जोडा, जो 'दृष्टि सचालक-ततु' कहलाता है, उन मास-पेशियो तक जाता है, जिनसे आँख की पलकों का सचालन होता है। चौथा जोड़ा भी आँखों की गति से सबधित है।

ततुओं के पाँचवें जोडे मे सबसे बडे ततु होते हैं, जिनम चालक या गति सबधी (Motor) और ज्ञान-वाहक या सावेदनिक (Sensory) दोनो प्रकार के ततु होते हैं। इनके द्वारा चेहरे के चमडे तथा निचले जबडे और जीभ की मास-पेशियाँ गति प्राप्त करती हैं।

छठा जोड़ा उन मास-पेशियो तक जाता है, जो पलकों को बाहर की ओर मोडती हैं। इस तरह हम देखते हैं कि आँख की मास-पेशियाँ तीन स्पष्ट वात-ततुओं के जोड़ों से वात-सूत्र प्राप्त करती हैं।

वात-ततुओ का सातवाँ जोड़ा चेहरे की मास-पेशियों को वात सूत्र प्रदान करता है। आठवें जोडे को श्रवण-ततु या श्रावणी नाड़ियाँ कहते हैं। नवाँ जोड़ा दो प्रकार के ततुओ अर्थात् चालक-ततुओ और ज्ञान-ततुओ से मिलकर बना होता है। अत. उनमे एक के द्वारा हलक, जीभ, नाक आदि के सधि-स्थान की मास-पेशियाँ गति प्राप्त करती हैं, तथा दूसरे के द्वारा हमे स्वाद का ज्ञान होता है।

वात-ततुओ का दसवाँ जोडा भी मिश्रित प्रकार का होता है। इससे हलक, फेफडे, कलेजे, पेट और लिवर या प्लीहा का सचालन होता है। ग्यारहवाँ जोड़ा चालक नाड़ियों का होता है, जिनसे गर्दन की कुछ मास-पेशियाँ सचालित होती हैं। बारहवाँ जोड़ा भी चालक नाड़ियो ही का होता है, जिनसे जीभ की मास-पेशियो को वात सूत्र प्राप्त होते हैं।

यदि कोई सावेदनिक या ज्ञान ततु चोट खा जाता है तो अनुभूति मर जाती है और यदि कोई चालक या गति-सबधी ततु बिगड जाता है, तो अग विशेष की गति नष्ट हो जाती है, जैसे लकवा आदि रोगों मे होता है।

खोपड़ी के नीचे लगभग ढाई इच लम्बी सफेद और भूरे रग की एक गुद्दी होती है, जिसे 'महासयोजक' कहते है। इसी के द्वारा निगलने और सॉस लेने जैसी इच्छा से परे की क्रियाओं का नियन्त्रण होता है। स्थूल मस्तिष्क और सुपुम्ना (Spinal Cord) के बीच सम्बन्ध का यही एकमात्र साधन होता है। यदि यह नष्ट हो जाय, तो तुरन्त मृत्यु हो जाय, क्योंकि इसके नष्ट होते ही सॉस लेने की क्रिया बन्द हो जाती है।

अब हम सुपुम्ना पर आते हैं। एक लम्बा पतला वात-सूत्र 'महासयोजक' से शुरू होकर रीढ की हड्डी के भीतर से होता हुआ उसके अन्त तक जाता है। यही सुषुम्ना है। यह सूत्र लगभग १८ इच लम्बा होता है और मोटाई मे कनिष्ठा उॅगली जैसा और कही-कहीं उससे भी मोटा होता है। सुपुम्ना भी उन्हीं तीन प्रकार के आवरणों से ढकी होती है जिनसे कि स्थूल मस्तिष्क आच्छादित रहता है। इससे बडे-बडे वात-सूत्र निकलकर चारों ओर शरीर की लम्बाई-चौड़ाई मे फैले होते हैं। इन्हें 'सुपुम्ना-ततु' कहते हैं। जैसा कि पिछले लेख मे बताया जा चुका है, यह सुपुम्ना एक दरार के द्वारा दक्षिण और वाम इन दो भागों मे विभाजित होती है। सुपुम्ना का निम्नतम भाग घोडे की दुम जैसा होता है, क्योंकि वहॉ पर ततु-जाल एक सूत के बण्डल-जैसा हो जाता है। यदि किसी स्थान पर सुपुम्ना कट जाय या ज़ख़्मी हो जाय, तो उस स्थान के नीचे 'स्वयमेव गतिशीलता' अथवा 'परावर्त्तित क्रिया' नष्ट हो जाती है। इससे स्पष्ट है कि मस्तिष्क से अग प्रत्यग तक तथा अग-प्रत्यग से मस्तिष्क तक अनुभूति और गतिशीलता का वाहक यही सुपुम्ना का वात-ततु-जाल है। सौपुम्न नाडियों या ततुओं के कुल ३१ जोडे हैं, जो सुपुम्ना से निकलकर भिन्न-भिन्न अगों की ओर जाते हैं। सौपुम्न ततुओ के अतिरिक्त एक और नाडी-मडल शरीर मे होता है, जो 'पिंगल नाडी जाल' कहलाता है। पिगल नाडियों का सौपुम्न नाडियों से महत्त्वपूर्ण संबध है। इन नाडियों की रचना, स्थिति, कार्य आदि का विस्तृत विवरण 'हम और हमारा शरीर' शीर्षक स्तभ मे दिया जायगा।

अब हम स्थूल मस्तिष्क की एक विशेष क्रिया पर आते हैं। अगर एकाएक हमारी उॅगली जलने लगे, तो हम उसे मस्तिष्क को सोचने का अवसर देने के पहले ही आप-ही-आप खींच लेते हैं। इसी तरह जब कोई हमारी ऑख के सामने उॅगली लाता है, तो हमारी ऑख के पलक एक-दम झपक जाते हैं, या हमारा हाथ आप-ही-आप उठकर हमारी ऑख के सामने आ जाता है। यह काम बिना हमारी इच्छा के आप-ही-आप हो जाता है और इतनी फुर्त्ती के साथ होता है कि इस सबध मे सोचने या इच्छा करने का समय ही हमे नही मिलता। इस क्रिया को 'परावर्त्तित क्रिया' या 'स्वय प्रेरित क्रिया' (Reflex Action) कहते हैं। इस तरह की क्रियाऍ लाखो की सख्या मे हमारे शरीर मे नित्य प्रति होती रहती हैं, जिनकी चेतना तक हमको नहींहोती, किन्तु जिनके बन्द हो जाने का अर्थ होता है, तत्काल मृत्यु। यह बात नही है कि ये क्रियाऍ बिना मस्तिष्क की सहायता के ही हो जाती हों। वास्तव में ये क्रियाऍ बहुत बारीकी के साथ होती हैं और इसीलिए इनका शीघ्र पता हमे नहीं चलता। उदाहरण के लिए जब हमारी उॅगली पर कोई एकाएक कॉटा या सुई चुभोता है और उसी समय जब आप ही आप बिना हमारी आज्ञा के हमारी उॅगली झटके के साथ वहॉ से हट जाती है। तब निम्न क्रिया होती हैं। सुई के चुभते ही उॅगली की त्वचा के सांवेदनिक या केन्द्रगामी ततुओं द्वारा इस बात की सूचना सुपुम्ना मे पहुॅचती है, और वहॉ से मस्तिष्क को जाती है। सुषुम्ना मे प्रवेश करने पर केन्द्रगामी ततु कई भागों मे विभाजित हो जाता है। इनमे से एक छोटा भाग सुषुम्ना ही में समाप्त हो जाता है। बडा भाग मस्तिष्क को जाता है। मस्तिष्क तक सूचना पहुॅचने मे देर लगती है। इस बीच सुपुम्ना के वात-कोष स्वय कार्य करने लगते हैं और मस्तिष्क से सूचना मिलने के पूर्व ही वे केन्द्रत्यागी तारों की पेशियों को सकोच करने की आज्ञा दे देते हैं, जिससे उॅगली तुरत अपने स्थान से हट जाती है। इतने में मस्तिष्क को सूचना पहुॅच जाती है और वह निर्णय कर लेता है कि क्या करना चाहिए। यदि सुपुम्ना द्वारा दिये गये आदेश को मस्तिष्क उचित नही समझता तो फिर से वह नई आज्ञा देकर उॅगली पूर्व स्थान मे हटा देता है, वरना सुपुम्ना के आदेश को ही स्थिर रखता है। इस प्रकार की परावर्त्तित क्रियाऍ प्रायः हमारे शरीर की रक्षा करने ही के निमित्त होती हैं।

'स्वय-चालित क्रिया' का ज़िक्र आने पर आधुनिक शरीर-शास्त्र का विद्यार्थी युगान्तरकारी रूसी वैज्ञानिक पोफोलोफ (Povolov) की उपेक्षा नहीं कर सकता, चाहे कोई उसके सिद्धान्तों से—जो अभी गत महायुद्ध के बाद प्रकाश में आये हैं—सहमत हो अथवा असहमत। पोफोलोफ ने अपनी खोजों के दर्मियान देखा था कि शरीर-यंत्र की आवश्यकता के अनुसार बड़ी बारीकी के साथ लाला-ग्रथियों (Glands) का नियन्त्रण और नियमन होता है। अगर सूखा खाना मॅह में लिया जाता

है, तो राल अपने आप अधिक निकलती है ताकि मुँह मे का सूखा खाना अपने आप तर हो जाय। इसके विपरीत तरल पदार्थों के खाने में राल की मात्रा और उसकी जमावट बहुत कम होती है। ये क्रियाएँ साधारणतया मस्तिष्क के अध्ययन के दायरे मे आती हुई नही लगतीं, क्योंकि इन स्वयचालित क्रियाओं में मस्तिष्क कोई स्पष्ट काम करता हुआ नहीं प्रतीत होता। पर आगे हम देखेंगे कि मानसिक क्रिया से इनका स्पष्ट सम्बन्ध है।

ये स्वयचालित क्रियाएँ (Reflex Actions) पोफोलोफ के मत के अनुसार दो प्रकार की होती हैं—एक अभ्यस्त और दूसरी स्वाभाविक। इसका अन्तर निम्न प्रयोग से समझा जा सकता है, जिसे पोफोलोफ ने स्वय किया था। एक कुत्ते को एक शान्त कमरे मे बन्द करके अगर ऊपर से किसी छेद के जरिये कोई बर्तन लटकाया जाय, तो पहले दिन वह बर्तन की आवाज़ सुनकर शान्त रहेगा और जब बर्तन जमीन पर आ लगेगा, तब उठकर उसे सूँघेगा, चाटेगा और फिर खाना शुरू करेगा। परन्तु इस तरह अगर बारम्बार और नित्यप्रति किया जाय तो वह कुत्ता बर्त्तन के खटकने को ही खाना पहुँचने का सकेत समझ लेने का आदी हो जायगा और उसके शब्द के साथ ही जीभ चाटना, दुम हिलाना, लोटना-पोटना आदि शुरू कर देगा। उसकी यह आदत या क्रिया अर्जित अथवा अभ्यस्त होगी, जब कि पहले दिन की उसकी क्रिया स्वभाव-सिद्ध कही जायगी। किन्तु इस प्रकार अर्जित या अभ्यस्त क्रिया से स्वाभाविक क्रिया अधिक शक्तिसम्पन्न और दृढ होती है, क्योंकि अभ्यस्त क्रिया में मस्तिष्क की बहुत उलझी हुई क्रियाएँ होती हैं।

अगर कोई अपने नित्य के कामों पर गौर करे और यह विचार करे कि उनमें का कितना अश उसके निज के अनुभवों से कार्यान्वित होता है और कितना स्वभावत, तो उसकी समझ मे अर्जित और स्वाभाविक क्रियाओं का अन्तर बड़ी आसानी से आ सकता है, यद्यपि इसमे भी गलतफ़हमी होने की गुंजायश है और कई अर्जित आदतों से होनेवाली क्रियाएँ भूल से स्वभावसिद्ध समझी जा सकती हैं, क्योंकि आधुनिक मनोविज्ञान इस बात को अधिकाधिक सिद्ध करता जाता है कि हमारी बहुत-सी क्रियाएँ जो स्वभाव-सिद्ध समझी जाती हैं, बचपन की किन्हीं विस्मृत घटनाओं पर निर्भर रहती हैं।

पोफोलोफ की खोज का मूल तत्त्व यह है कि वृहत मस्तिष्क के केन्द्रों की क्रियाएँ दो विरोधी प्रणालियों (Processes) के पारस्परिक सघर्षण द्वारा नियन्त्रित होती हैं, और वे प्रणालियाँ हैं—उत्तेजन (Excitation) और अवरोध (Inhibition)।

उदाहरण के लिए 'हृदय' (Heart) को लिया जाय। हृदय एक स्वय-चालित पम्प जैसा यन्त्र है। यदि यह शरीर से निकाल लिया जाय और इसकी ठीक देख-भाल रक्खी जाय, तो भी वह चलता रह सकता है, लेकिन शरीर मे उसकी गति जिस प्रकार नियन्त्रित होती है, वह बाहर नही हो सकती। शरीर मे कभी उसकी गति तेज और कभी धीमी होती रहती है, ताकि वह शरीर की आवश्यकताओं को पूरी कर सके। इसके लिए हृदय के नीचे दो जोड़े वात-सूत्र के होते हैं, जिनमे एक सदेशवाहक है, जो हृदय की गति को तेज करता है, दूसरा है सदेश का सचय करनेवाला, जो उसे धीमा करता है। पहला हृदय को उत्तेजन प्रदान करता है और दूसरा उसका उचित अव-रोध करता है।

अब देखा जाय कि साधारणतया किस तरह गति उत्पन्न होती है। हमारे सभी विचार, चिन्तन की क्रियाएँ और इच्छायें 'वृहत् मस्तिष्क'(Cerebrum) मे पैदा होती हैं। ज्योंही एक अग को हिलाने की इच्छा पैदा होती है, त्योंही वृहत् मस्तिष्क से एक 'वात-प्रवाह' शरीर के उस भाग की ओर प्रवाहित होता है, जिधर वह अग विशेष होता है और उस तरफ से होते हुए वह 'महासयोजक' तक जाता है। 'महासयोजक' से एक 'शक्ति-प्रेरणा' (Motor Impulse) सुषुम्ना के ऊपर से उसके नीचे तक गुजरती है और वहाँ से वात-ततुओ के द्वारा वह उस अग विशेष तक पहुँचती है। तब कहीं जाकर वह अग विशेष शक्ति प्राप्त करता है और गतिशील होता है।

इस क्रिया मे एक विचित्र बात हम यह देखते हैं कि एक प्रेरणा जो स्थूल मस्तिष्क के दक्षिण भाग मे उठती है, वह महासयोजक के रास्ते मस्तिष्क के वाम भाग को जाती और वहाँ से सुषुम्ना के वाम भाग के नीचे तक उतरकर शरीर के वाम भाग मे स्थित अग-विशेष मे वितरित हो जाती है।

इसी प्रकार 'ज्ञान-प्रेरणा' (Sensory Impulse) भी, जो किसी ज्ञान-इन्द्रिय मे उठती है, वृहत मस्तिष्क मे गुजरकर शरीर के दूसरे भाग को जाती है, और उस प्रेरणा के गुजरने का मार्ग भी महासयोजक मे होकर ही है। अतएव मस्तिष्क की तार-घर के आफ़िस मे वृहत मस्तिष्क और महासयोजक मानो 'एक्सचेंज' का काम करते हैं।

मानव परिवार का विकास

पिछले प्रकरणों मे मनुष्य के सामाजिक जीवन के विकास और उसकी आर्थिक भित्ति का व्यापक रूप से दिग्दर्शन किया गया है ; यह लेख मनुष्य-समाज की विशाल इमारत की छोटी-से-छोटी इकाई (unit) "परिवार" की उत्पत्ति और विकास का अध्ययन है।

मनुष्य स्वभाव से ही एक सामाजिक जीव है और सदा समाज मे रहने की इच्छा करता है। समाज मे रहना मनुष्य ने आवश्यकतावश सीखा और बहुत काल तक उसका पालन करने से आज यह उसका एक स्वाभाविक गुण हो गया है। मनुष्य-जाति के विकास-क्रम के इतिहास-शास्त्र अर्थात् मानव-विज्ञान (Anthropology) के अध्ययन से ज्ञात होता है कि किसी काल मे छोटे-छोटे समूहों में रहना मनुष्य के लिए आवश्यक तथा लाभदायक प्रमाणित हुआ और इसी प्रकार के जीवन से सगठित जीवन की नींव पडी। मनुष्य-जाति की सबसे पुरानी और छोटी सुसगठित सस्था को 'परिवार' कहते हैं। अथवा यों कह सकते हैं कि पति-पत्नी तथा उनकी सन्तान के समूह का ही नाम 'परिवार' है।

परिवार-सस्था के निर्माण का कारण, उसका विकास-क्रम, और उसके भिन्न-भिन्न रूप-रूपान्तर को जानने के लिए हमे बहुत प्राचीन इतिहास-काल का निरीक्षण करना पड़ेगा। परिवार-सस्था की स्थिति पशु-पक्षियों में भी पाई जाती है, किन्तु वह दशा बहुत प्रारम्भिक और असगठित है। नीची श्रेणी के पशुओं में पति-पत्नी और बच्चों का एकत्रित समूह मे रहना एव पक्षियो मे नर व मादा का समागम हो चुकने के पश्चात् भी घोसले का निर्माण करने, अण्डा सेने तथा उन छोटे-छोटे बच्चो की, जो स्वय अपनी रक्षा नही कर सकते, रक्षा करने में परस्पर सहयोग देना आदि क्रियाएँ मनुष्य-परिवार के मुख्य कार्यों से बहुताश समता रखती हैं।

मनुष्य-परिवार के निर्माण के सम्बन्ध मे विशेषकर तीन धारणाएँ हैं। कुछ विद्वानो का मत है कि ऐतिहासिक तथा प्रागैतिहासिक युग मे मनुष्य का शारीरिक विकास समाज-सगठन के साथ-साथ ही हुआ। उनके मत के अनुसार परिवार का रूप मनुष्य के विकास के अनुकूल बदलता रहा है। उन्होंने समय को तीन काल मे विभाजित किया है—आदिकाल, जगलों का समय और आज का युग। इस मत के प्रमुख लेखक बेकोफेन, मेक्लीनेन और मोर्गेन हैं। उनका कथन है कि आदिकाल मे, जब विवाह पद्धति की स्थापना नही हुई थी, मानव-समाज मे स्त्री-पुरुष का विवेकरहित समागम होता था। पुरुष तथा स्त्रियाँ छोटे-बडे समूहों मे साथ-साथ रहते थे। स्वेच्छानुकूल कोई पुरुष किसी स्त्री के साथ इच्छा-पूर्ति कर सकता था। एक स्त्री का सदा किसी विशेष पुरुष के साथ ही समागम होना आदिकाल के बाद अर्थात् जगलों की सभ्यता के समय मे स्थापित हुआ। इसका कारण ये लोग यह बतलाते हैं कि आदिकाल मे मनुष्य को व्यक्तिगत सपत्ति रखने का अधिकार प्राप्त नहीं हुआ था। ऐसे समय मे सन्तान माता के ही साथ रहती थी। उनकी धारणा तो यहाँ तक है कि इस समय में मनुष्य को सन्तानोत्पत्ति के कारण का ज्ञान ही नहीं हुआ था और न वह यह ही समझता था कि सन्तानोत्पत्ति मे पुरुष का कितना भाग है। मातृसत्तावादी परिवार का जन्म और उसकी स्थापना भी इसी समय में बतलायी जाती है। व्यक्तिगत सम्पत्ति के विचार जगलों की सभ्यता के समय मे उत्पन्न हुए, जब मनुष्य पशु पालने, चरागाह रखने अथवा खेती का कार्य करने लग गया था। बडे परिवार की आवश्यकता इसलिए हुई कि वश का मुखिया या पितामह अपने परिवार की सहायता से एक दूसरे की रक्षा कर सके और अपने द्वारा खोजे अथवा विजय किये हुए चरागाहों या खेतों को सुरक्षित रख सके। इस

युग में पुरुष ने स्त्री और सन्तान को अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति समझा और इस प्रकार मातृसत्तावादी परिवार पितृसत्तावादी परिवार में परिणत हो गए तथा 'परिवार' वास्तविक रूप में एक निकट-सम्बन्धियों का समूह हो गया। मिश्रित परिवार भी इसी युग में स्थापित हुए, जब मनुष्य पति-पत्नी के छोटे समूहों में विभाजित होकर भी अपने सम्बन्धियों व बान्धवों के साथ रहने लगे। इस प्रकार स्त्री-पुरुष के जन-समूहों (hordes) ने व्यक्तिगत परिवार (families) का रूप धारण कर लिया। पति-पत्नी-समूह का निर्माण इसलिए भी हुआ कि स्त्री-जाति अविवेकी समागम से थक-कर इस प्रथा से घृणा करने लगी। इसलिए निश्चित रूप से किसी विशेष व्यक्ति से विवाह करने की प्रथा आरम्भ हुई। इस युग में स्त्री और सन्तान पुरुष के अधीनस्थ रहे। क्रमश स्त्री के व्यक्तित्व का विकास हुआ और धीरे-धीरे उसकी दासता की बेड़ी शिथिल हुई। आज परिस्थिति इस सीमा को पहुँच चुकी है कि स्त्री-जाति विवाह के बन्धन में फँसना भी नहीं चाहती। सन्तानोत्पत्ति के सम्बन्ध में भी जहाँ बड़ा परिवार होना सौभाग्य का चिह्न समझा जाता था और परिवार-वृद्धि के लिए पुरुष अनेक विवाह तक करने में व्यस्त था, स्त्रियाँ गर्भधारण करना तक नहीं चाहतीं। सारांश यह है कि अब स्त्री-जाति ने अपने व्यक्तित्व को पहचाना है। स्त्री अब किसी प्रकार भी पुरुष की आज्ञाकारी दासी नहीं बनना चाहती, वरन् पुरुष के बराबर होने का दावा करती है। परिवार के विकास-क्रम की यह धारणा 'उत्क्रान्तिक धारणा' (Evolu-tionary hypothesis) कहलाती है।

परिवार-विकास की दूसरी कल्पना यह है कि परिवार का रूप आर्थिक आवश्यकताओं अथवा आर्थिक स्थिति के अनुकूल बदलता रहा है। यह धारणा 'आर्थिक निर्माण आधार' (Economic determinism) के नाम से प्रसिद्ध है। कार्ल मार्क्स की धारणाएँ इस विचार की पुष्टि करती हैं। इस अनुमान के अनुसार आर्थिक विकास के क्रम के साथ-साथ परिवार का रूप हर समय में भिन्न-भिन्न रहा है। मनुष्य-परिवार का निर्माण आर्थिक जीवन को सरल बनाने के हेतु हुआ था। बच्चों का पालन-पोषण, रक्षा, भोजन-प्रबन्ध, निवास-गृह की आवश्यकता इत्यादि को पूर्ण करने के लिए माता-पिता व सन्तान एक स्थान पर सामूहिक रूप से रहने के लिए बाध्य हुए। और यही सुसगठित परिवार का मुख्य ध्येय है। प्रारम्भिक समय में, अर्थात् उस काल में जब केवल मृगया ही मनुष्य का आधार था, बच्चों के पालन-पोषण तथा उनकी अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति का भार पूर्णतया माता पर ही रहता था और वह भी, उस समय तक जब तक कि बच्चे स्वयं अपने भोजनादि का प्रबन्ध करने को समर्थ न हो जायँ। दूसरी ओर पिता अपनी शक्ति का प्रयोग मृगया में करता था और आखेट द्वारा प्राप्त भोजन से अपने परिवार का उदर पोषण करता था। अत इस काल में वश-सगठन बहुत ढीला था। चरवाहों के समय में मनुष्य का निवास-स्थान कुछ स्थिर हो गया था और उस समय पति-पत्नी व उनकी सतान एकत्रित होकर रहने लगे थे। अतएव इस परिवार को किसी अश तक सगठित कह सकते हैं, क्योंकि इस समय हम परिवार के प्रत्येक व्यक्ति को एक दूसरे की सहायता करते पाते हैं। खेती के समय में भोजनादि की सामग्री अधिकांश में निश्चित हो गई थी, परन्तु खेती के कठिन

आदि युग में मनुष्य

स्त्री द्वारा सतान का पालन-पोषण और पुरुष द्वारा उनकी रक्षा की नैसर्गिक भावनाओं के रूप में भावी परिवार के सूक्ष्म बीज आदि युग ही में मनुष्य के पुरखों में विद्यमान रहे होंगे।

आखेट के युग में मानव परिवार का रूप ['अमेरिकन म्यूजियम ऑफ नेचरल हिस्ट्री' के एक चित्र से]

परिश्रम के कारण पुरुष को स्त्रियो की सहायता लेना आवश्यक था। इस युग मे मनुष्य का एक स्थान पर रहना निश्चित हो गया। अब वह बेघर-बार का घुमक्कड़ शिकारी नहीं रहा, वरन् अपने परिवारसहित निर्दिष्ट स्थान पर अधिक काल तक रहने लगा। इस तरह उसका परिवार अत्यन्त सुसगठित अवस्था मे परिणत हो गया। आर्थिक क्रम के चौथेपन मे अर्थात् कला-कौशल के समय मे इस पारिवारिक सगठन में शिथिलता के चिह्न दिखाई देने लगे, और अब तो परिवार का रूप ही कुछ नये ढग का होता जा रहा है। कहीं-कहीं तो वर्तमान आर्थिक प्रणाली का प्रभाव इतना प्रचण्ड हुआ है कि पुरातन परिवार-सगठन के चिह्न ही लुप्त हो गये हैं। यदि खेती के कार्य ने परिवार-सगठन करवाया, तो आजकल के कारखानो ने परिवार को पुनः भङ्ग कर दिया। आज मनुष्य जाति दो बडे दलो मे विभाजित हो गई है। इन दोनो दलों के पारिवारिक जीवन मे असमानता है। एक दल को पूँजीपति और दूसरे को श्रमजीवी कहते हैं। कलों के प्रचार से पूँजीपति-परिवार सगठन को विशेष हानि नही हुई। उलटे इस दल मे पुरुष के धनोपार्जन के कार्य मे स्त्रियों तथा बच्चों का भाग लेना अब अनिवार्य नही रहा, क्योंकि इस पूँजीपति वर्ग को धन की अधिकता के कारण यह विश्वास हो गया कि स्त्रियो और बच्चों की सहायता के बिना भी उनका जीवन धनाभाव से दु:खी नही हो सकता। दूसरे यह बात भी थी कि इस वर्ग की स्त्रियाँ और बच्चे इन नवीन साधनो से अनभिज्ञ थे और कलों के सचालन का परिश्रम करने मे यदि सर्वथा नही तो अधिकाश मे अवश्य असमर्थ थे।

इस नवीन आर्थिक प्रणाली का घोर वज्र दलित श्रमजीवियो पर ही पड़ा है। कलों के प्रचार से ग्रामीण स्त्रियों, बच्चों और कारीगरो की जीविका जाती रही। ऐसी सकटजनक अवस्था मे दुःखी तथा क्षुधा-पीडित मनुष्य कारख़ानो मे मजदूरी करने को उद्यत हुए और इस प्रकार उपार्जित धन से जीवन-निर्वाह करने लगे। कारख़ानों के इस युग मे बहुत-से श्रमजीवी एक स्थान पर एकत्रित होकर कार्य करते हैं, इसलिए उन्हे अपने सुख-सम्पन्न गृहो और स्त्री-बच्चो को छोड़कर घर से दूर रहना पडता है। यहीं से परिवार के सगठित रूप मे बाधा प्रारभ होती है। औद्योगिक नगरो मे श्रमजीवी व्यापारी तथा अन्य व्यापार सम्बन्धी जनसमूह के एकत्रित होने से रहन सहन का ख़र्च बहुत बढ जाता है, और निवासगृहों की कमी पड जाती है। इसलिए अल्पवेतनीय श्रमजीवी अपने परिवार को उद्योग-स्थान मे अपने साथ नहीं रख पाते। उनका परिवार-सम्पर्क यदा-कदा होता है, सो भी उस समय जब कि वे कारख़ानों से छुट्टी लेकर कभी अपने गॉव को जा पाते हैं। दूसरी बात यह है कि निजी उद्योग के नष्ट हो जाने से परिवार की आय भी घट गई है और स्त्री व पुरुष दोनों कलों मे कार्य करने के लिए बाध्य हो गये हैं। यह भी सदैव सम्भव नहीं कि पति व पत्नी एक ही कारख़ाने मे कार्य कर सके। ऐसी दशा मे पति-पत्नी सप्ताह मे विशेष दिनो ही मे एक समय पर मिल पाते हैं। सन्तान को भी माता-पिता के साथ रहने और पारिवारिक सुख पाने का अवसर सयोग ही से मिलता है। कारख़ानों मे काम करने के बाद जब थकित माता-पिता घर आते हैं तब उन्हें विश्राम के अतिरिक्त कोई पारिवारिक चर्चा नही भाती, क्योंकि उनका ध्यान फिर दूसरे दिन कारख़ाने के कार्य मे जाने की ओर लगा रहता है। उन्हे अपने बच्चों के साथ बैठने का सुख प्राप्त ही नहीं होता। परिवार का यह रूप 'आर्थिक निर्माण आधार' के अनुसार हुआ है।

तीसरी विचारधारा यह है कि परिवार का प्रमुख ध्येय व्यक्तिगत तृप्ति है। प्रत्येक मनुष्य, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, परिवार में इसलिए सगठित होता है कि उसके निजी व्यक्तित्व का पूर्ण रूप से विकास हो सके। इस धारणा के अनुसार व्यक्तित्व का विकास (Development of Individuality) ही परिवार का सगठन आधार है, और परिवार कुछ व्यक्तियों का समूह मात्र है। इस मत के अनुसार यदि किसी परिवार में व्यक्तित्व का पूर्ण विकास नहीं हो पाता, तो वह परिवार त्याज्य अथवा बदलने योग्य है। परिवार का रूप केवल वही होना चाहिए, जो प्रत्येक मनुष्य के व्यक्तित्व को पूर्ण रूप से चमका दे। यदि परिवार स्त्री को पुरुष के अथवा सन्तान को माता-पिता के अधीन बनाता है अथवा उनकी स्वतन्त्रता मे बाधक होता है, तो वह परिवार दोषपूर्ण है। इस मत के अनुसार परिवार का रूप सदैव व्यक्तिगत विकास की सुगमता के अनुसार बदलता रहा है और भविष्य मे भी बदलता रहेगा।

इसमे सन्देह नहीं कि तीनो विचारधाराओं की पुष्टि परिवार के रूप, कार्य व सगठन की शैली से होती है, परन्तु इन तीनों मे से कोई भी विचारधारा परिवार-सगठन व पारिवारिक रूप को पूर्णतया स्पष्ट नहीं कर पाती। वास्तव में तीनों शक्तियाँ हर समय में परिवार-सगठन को प्रेरित करती रही हैं और परिवार के रूप-निर्माण मे उनका प्रभाव बहुत प्रबल रहा है। परिवार का वास्तविक रूप इन तीनों धारणाओ से मिश्रित है और परिवार के प्रत्येक स्वरूप में तीनों धारणाओ के चिह्न पाये जाते हैं। जैसे-जैसे सामाजिक उन्नति हुई है, वैसे-वैसे सभ्यता, आर्थिक आवश्यकता और व्यक्तित्व के आधार पर परिवार का रूप बदला है, और भविष्य मे भी इन तीनों प्रबल शक्तियों का प्रभाव परिवार के रूप पर पड़ते रहने की सम्भावना है। इन प्रभावशाली शक्तियों के अधीन परिवार के भावी रूप के चिह्न आज भी दृष्टिगोचर होते हैं। नवीन आर्थिक पद्धति ने पति-पत्नी को आज बहुतांश मे स्वतन्त्र कर दिया है। अब पत्नी पति द्वारा लाये हुए मृगया से प्राप्त भोजन की भिखारिणी नहीं। चरवाहों के युग की तरह पुरुष द्वारा पाले हुए पशु या जाति द्वारा जीते हुए स्थानों पर आज उसका जीवन-निर्वाह निर्भर नहीं। [illegible] के समय के मनुष्य के [illegible] के सरल कार्य व गृह-कार्य तक ही उसका [illegible] सीमित नहीं है। आज वह स्वतन्त्र होकर पुरुष के समान कारखानों मे [illegible] पर काम करती है और [illegible] लेती है। पति से भोजन पाने की लालसा मे वह पतिदासी बनने की कोई आर्थिक आवश्यकता नहीं समझती। शारीरिक विकास और प्रकृति से द्वन्द्व के लिए उसे जनसमूह के साथ साथ रहने की भी आवश्यकता अब नही है। पुरुष की सम्पत्ति न होकर वह स्वय पुरुष को अपनी सम्पत्ति समझती है और उसे एक पत्नीव्रत होने को बाध्य करती है। आज मनुष्य बहुपत्नी-स्वामी बनकर नही रह सकता, उसे एक पत्नीव्रत होना पड़ता है। स्त्री उसे अपनी एकमात्र सम्पत्ति समझती है और पुरुष को यह अधिकार नही कि विवाह-सम्बन्ध के उपरान्त भी वह किसी अन्य स्त्री से प्रेमालाप कर सके। व्यक्तित्व के विकास की चरम सीमा अब समीप आ रही है। स्त्री-पुरुष के अधिकार मे साधारणतया कोई अन्तर नही रह गया है। दोनों स्वतन्त्रता के पुजारी हैं। सन्तान पर भी उनका पूर्ण अधिकार नही। यदि यह सम्भावना हो कि माता-पिता के दुराचरण से अथवा दुष्प्रभाव से सन्तान के व्यक्तित्व-विकास मे न्यूनता अथवा दोष का भय है, तो राष्ट्र स्वय बच्चों की देखरेख अपने हाथ मे ले लेता है और बच्चे ऐसे परिवारों से हटा लिये जाते हैं। उनकी पढ़ाई-लिखाई, भोजनादि का प्रबन्ध भी राष्ट्र द्वारा किया जाता है। सन्तान का पालन-पोषण, जो परिवार-सगठन का मुख्य ध्येय था, आज बहुत-कुछ अनावश्यक हो चुका है। स्त्रियों के व्यक्तित्व का विकास इतना हुआ है कि आज वे विवाह-विच्छेद, गर्भधारण, सन्तानोत्पत्ति इत्यादि कार्यों मे अपने स्वतन्त्र विचार रखती हैं। स्वतन्त्रता मे बाधा पड़ने के भय से अथवा गर्भधारण और सन्तानोत्पत्ति के कष्ट के कारण स्त्रियाँ विवाह बन्धन मे पड़ने और मातृत्व का भार उठाने के विरुद्ध हो रही हैं। कहीं-कहीं तो दाम्पत्य-जीवन की स्थापना केवल सुख व इच्छा पर निर्भर है। अल्पकालिक विवाह, क्षणिक प्रेम-सम्बन्ध, स्वेच्छानुकूल विवाह-विच्छेद, पुनर्विवाह आदि इस नवीन सभ्यता के द्योतक हैं। परिवार का पुराना स्वरूप अब उनके ध्यान मे भी आना सभव नहीं। भविष्य का परिवार पुरुष का पारिवारिक राज्य न होकर पति-पत्नी की परस्पर इच्छा पर निर्भर एक निवासगृह होगा, जिसमे प्रेमाकर्षित स्त्री व पुरुष का सहवास होगा। यह एक ऐसी मित्रमण्डली होगी, जो मैत्री मे शिथिलता आने से छिन्न-भिन्न होकर फूल की पँखड़ी की भाँति बिखर जायगी। सारांश यह कि परिवार का कार्य व बाहरी रूप तो लगभग पहले ही जैसा होगा, परन्तु इस सस्था के सगठन की प्रेरणा-शक्ति नवीन आधार पर होगी निर्मम आवश्यकता, निःसहायता, और प्रभुत्व के स्थान पर स्वतन्त्रता, निर्भीकता व प्रेम का साम्राज्य होगा।

खेती के युग के आरंभकाल में मानव परिवार का रूप

जब मनुष्य शिकारी और चरवाहो के जीवन से क्रमश कृषक-जीवन की ओर अग्रसर हुआ तो उसके खानाबदोश-जैसे रहन-सहन मे काफी परिवर्त्तन आ गया। अब वह टिकाऊ रूप से एक ही स्थान मे रहने के लिए बाध्य हुआ। खेती के कारण होनेवाले श्रमविभाग और विवाह-प्रणाली के विकास ने मानव परिवार का रूप ही पलट दिया। अब परिवार मातृसत्तावादी से पितृसत्तावादी बन गया और उस पर पुरुष का आधिपत्य क्रमश बढने लगा।
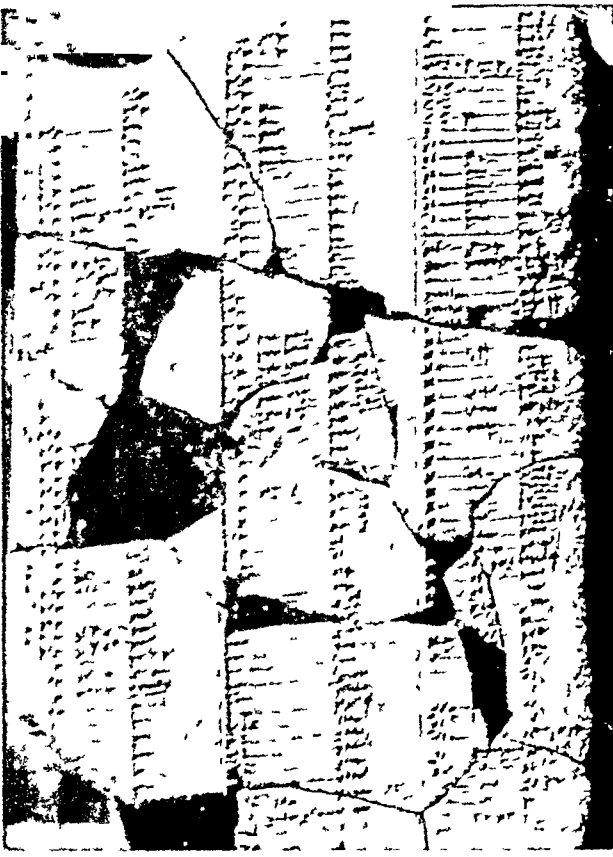
(ऊपर) सुमेरियन लोग इसी तरह की आग में तपाई हुई मिट्टी की तख्तियों पर अपनी विचित्र लिपि के नमूने छोड़ गये हैं। इनमें अंकित अक्षर कीलाकार या क्यूनीफार्म हैं। (नीचे) एक पत्थर की केंडी का चित्र है, जिसमें दरवाज़ों के किवाड़ घूमते थे। इस केंडी पर सुमेरियन लिपि में एक अभिलेख खुदा हुआ है, जिसका बड़ा चित्र दाहिनी ओर दिया गया है।

(ऊपर) मसोपोटामिया के खफाजे नामक स्थान में अभी हाल में खुदाई करने पर मिली हुई एक अद्भुत मूर्त्ति। इसमें दो सुमेरियन मल्ल आपस में कुश्ती लड़ते हुए दिखाये गये हैं। किन्तु इन दोनों के सिर पर यह जो टोकरे या पात्रों जैसी चीजें क्या और क्यों हैं, इसका अर्थ लगाना कठिन है। यह मूर्त्ति ताँबे की बनी हुई है। असली मूर्त्ति लगभग इतनी ही बड़ी है, जितनी कि चित्र में दिखाई दे रही है। शिल्प में मल्ल-क्रीड़ा का इससे प्राचीन स्मारक दूसरा नहीं है। मल्लों के सिर पर जो पात्र हैं, सम्भव है, उन्हें कलाकार ने केवल सजावट के लिए बनाये हों।

५००० वर्ष पूर्व की सुमेरियन सभ्यता के कुछ स्मारक
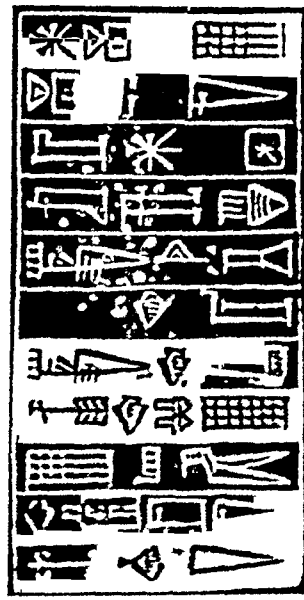
सभ्यताओं का उदय--(२) सुमेरियन सभ्यता

आरंभिक सभ्यताओं के प्राचीनतम स्मारक प्राय. नील, सिन्धु, दजला-फरात आदि नदियों की तलहटियो मे ही मिले है, जिससे धारणा होती है कि इन्ही में से किसी के तट पर सभ्यता की सर्वप्रथम किरणें फूटी होंगी। नील नदी के अंचल मे पनपनेवाली सभ्यता का वर्णन हम कर चुके, अब दजला-फरात के दोआबे में पायी गयी एक अन्य समकालीन सभ्यता का हाल सुनाने जा रहे है। इसके जो कुछ भी स्मारक प्राप्त हुए हैं, उनसे ज्ञात होता है कि सुमेरियन लोग किन्ही-किन्ही बातों मे मिस्रवालो से भी बढे-चढे थे।

प्राचीन इतिहास के अधिकतर विद्वान् अभी तक मिस्र की सभ्यता और उसकी राजसत्ता को ही सबसे पुरानी मानते हैं, इसीलिए मिस्र के इतिहास का वर्णन पहले किया गया है। किन्तु इधर कुछ वर्षो से इस मत पर सन्देह किया जाने लगा है और सभ्यता का आरम्भ एशिया मे ढूँढा जा रहा है। मध्य एशिया, मसोपोटेमिया अर्थात् दजला-फरात के दुआबे, सिन्धु नद की तलहटी और पूर्वीय एशिया के द्वीपसमूह मे से किसी एक जगह पर सभ्यता के आरम्भ का अनुमान किया जाता है। इन मतों मे पहले तीन मत ही मुख्य हैं। मनु का और प्राचीन भारतवालो का मत था, जिसे अब भी कुछ विद्वान् सत्य मानते हैं, कि सभ्यता का आरम्भ उत्तरी भारत मे ही हुआ और यहाँ से ही वह सारे ससार मे फैल गई। आधुनिक खोजे भी इस मत का उत्तरोत्तर समर्थन कर रही हैं, किन्तु अभी अकाट्य प्रमाण प्राप्त न होने के कारण यह सर्वस्वीकृत नही हो सका है। कुछ विद्वानो का विचार है कि सभ्यता का आरम्भ मसोपोटेमिया मे हुआ, जिसका मुख्य कारण यह है कि वहाँ पूर्व और पश्चिम के मेल मे अधिक सुविधा थी। वहाँ की खोजे भी इस मत को बहुत कुछ पुष्ट करती है। फिर भी अधिक झुकाव इसी ओर है कि सभ्यता का आरम्भ मध्य एशिया मे हुआ। मध्य एशिया मे पहले जल की कमी न थी, जैसी कि बर्फ हटने के बाद पैदा हो गई। आज से क़रीब सात या आठ हज़ार वर्ष पहले इस प्रदेश मे गेहूँ, बाजरा और जौ पैदा किया जाता था, जानवर पाले जाते थे और मिट्टी के अच्छे बरतन बनाये जाते थे। उस सभ्यता का अभी बहुत ज्ञान नही हुआ है। यह अनुमान किया जाता है कि पूर्व और पश्चिम का सम्मेलन यहाँ सबसे पहले हुआ। जब यहाँ जल की कमी होने लगी और रेगिस्तान बढने लगा, तब यहाँ से लोग इधर-उधर हटने लगे। उन्ही के साथ अथवा उनके प्रभाव से सभ्यता चारो ओर फैल गई। यहाँ से एक शाखा तो चीन और मचूरिया चली गई, जहाँ से सभ्यता की लहरे
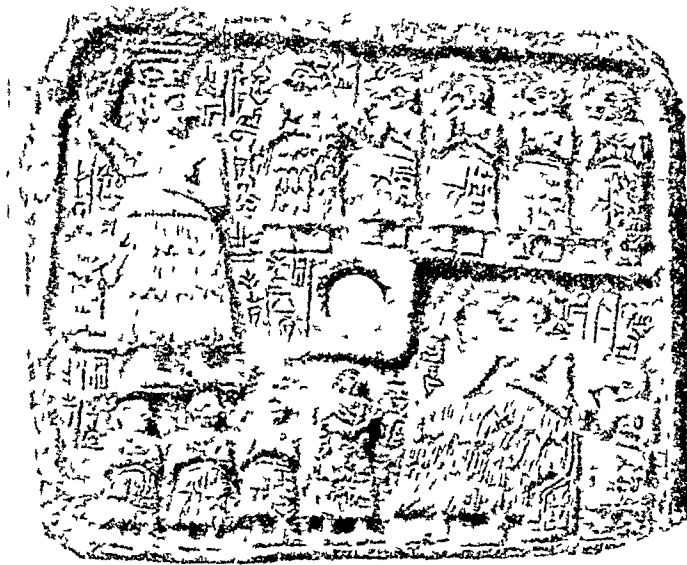
५००० वर्ष पूर्व की सुमेरियन सभ्यता का एक स्मारक

इसमे लगश नगर का एक शासक 'उर-निना' दो भिन्न-भिन्न अवसरो पर अपने चार पुत्रों और एक पुत्री से भेट करते हुए दिखाया गया है।

लगश के तेजस्वी सम्राट् 'गुडिया' की एक मूर्ति

सखालियन डमरूमध्य की राह से उत्तरी अमरीका तक पहुँच गई। दूसरी शाखा भारतवर्ष को चली आई। तीसरी शाखा पश्चिम की ओर बढ़ी और फारस, मसोपोटेमिया, मिस्र, इटली और स्पेन तक पहुँच गई। जो कुछ हो, यह निश्चय रूप से कहना कि सभ्यता का आरम्भ अमुक प्रदेश में ही सबसे पहले हुआ, अभी तक सम्भव नहीं है।

दजला और फरात नदियों के दुआबा और तलहटियों में प्राचीनतम सभ्यता ने बहुत उन्नति की। यहाँ पर कई पुराने नगरों और राज्यों की निशानियाँ मिलती हैं। इनमें किश, अगद, लगश, निप्पर, उर, अस्सुर, बेबिलान आदि मुख्य नगर थे। इस दुआबे के उत्तर और पश्चिम में पहाड़ियाँ, दक्षिण में फारस की खाड़ी और पश्चिम में अरब है। इन दोनों नदियों के मुहाने के आस-पास की भूमि दुआबे के अन्य भागों से अधिक उपजाऊ है। यहीं पर सुमेरिया राज्य था। यहीं की सभ्यता को 'सुमेरियन सभ्यता' कहते हैं।

अभी तक इसका ठीक पता नहीं चला कि सुमेरियन कौन थे। इनका कद छोटा, नाक ऊँची और नुकीली, माथा दबा हुआ और आँखें नीचे की ओर झुकी हुई थीं। इनके सिर मुँड़े रहते थे। इनमें कुछ तो दाढ़ी रखाते और कुछ मुड़ाते थे। इनकी पोशाक ऊनी थी। साधारण लोग सिर्फ तहमत बाँधे रहते थे, कमर से ऊपर उनका बदन नंगा रहता था। किन्तु अमीर लोग गले तक पोशाक पहना करते थे। वे सिर पर टोपी और पैरों में कसी हुई चट्टी पहनते थे। स्त्रियाँ नरम चमड़े की जूती पहनती थीं। यह तो ठीक-ठीक जान पड़ता है कि सुमेरियन लोग सेमेटिक नहीं थे। कुछ लोग इनका सम्बन्ध मध्य एशिया की मंगोल-जाति से मानते हैं, कुछ इन्हें आर्य या द्राविड़ी मानते हैं। द्राविड़ लोग किसी समय स्पेन, मध्य अमेरिका और भारत के पूर्वोक्त भाग तक फैले हुए थे।

५००० वर्ष पूर्व की नक्काशी

राजपुरुषों के चित्रों से सुशोभित यह तावीजनुमा चीज़ 'उर' में मिली है।

कहा जाता है कि ईसा से पाँच हजार वर्ष पूर्व मसोपोटेमिया में वे लोग आये, जो इतिहास में 'सुमेरियन' नाम से प्रसिद्ध हैं। सुमेरिया में करीब पाँच हजार वर्ष पूर्व के मिट्टी की ईंटों पर अङ्कित किये हुए मार्के के लेख मिलते हैं, जिनके लेखक सम्भवतः वहाँ के पुरोहित होंगे। इनमें तथा इनके बाद की ईंटों के लेखों से सुमेरिया ही नहीं, मसोपोटेमिया एवं आस-पास के प्रदेशों और राज्यों के प्राचीन इतिहास, उनके क़ानूनों और संस्थाओं का पता चलता है। सभ्यता का इससे पुराना अङ्कित प्रमाण कहीं नहीं पाया जाता। इन लेखों के अनुसार सुमेरियन राज्य की स्थापना चार लाख बत्तीस हजार वर्ष पहले हुई थी। यह तो उनकी निरी कपोल-कल्पना सी जान पड़ती है। अभी तक जो पुरानी चीजें मिली हैं, वे साढ़े सात हजार वर्ष से पुरानी नहीं मानी जातीं। तो भी इनकी ऐतिहासिक वंशावली पाँच हजार वर्ष से सिलसिलेवार मिलती है। किन्तु इनमें नामों के अलावा घटनाओं का उल्लेख नहीं है।

उर के राजा 'दुन्गी' की एक प्रतिमा

पुरातत्ववेत्ता सुमेरिया के इतिहास को दो भागों में विभक्त करते हैं—एक तो वह जब वहाँ पर स्वतंत्र नगर थे, जिनमें "राजपुरोहित" (Patesi) राज्य करते थे, दूसरा वह जब कि स्वतंत्र नगरों का दमन होकर वहाँ बड़े राज्य या साम्राज्य की स्थापना हो गई थी।

नगर-राज्य-काल में सुमे

एक सुमेरियन मूर्त्ति
यह अभी हाल में खफाजे नामक स्थान में पाई गई है। इस मूर्त्ति में आँखें सीपी और लेपिस लेज़ुली की बनी है।

पुराना वृत्तान्त 'किश' नगर या नगर-राज्य का है। इसके बाद एरेच, उर, अक्शक, लगश आदि नगरों का भी पता चला है। यह प्रतीत होता है कि मसोपटेमिया में सुमेरियन लोग दक्षिण में थे और उनसे ऊपर सेमिटिक लोगों की प्रधानता थी। इन नगरों में आपस में अनबन और मित्रता भी हो जाती थी, जिनसे कभी एक दूसरे पर अपना अधिकार जमा लेता अथवा स्वतन्त्र हो जाता था। किश के 'मेसिलिम' नामक तीसरे राज-वंश के समय (३६२८-३४८८ ई० पू०) की ऐतिहासिक सामग्री इतनी मिली है कि हम उससे एक प्रकार का वंशावली [illegible] करते हैं। इस वंश का [illegible] राजा अपने को [illegible] का अधिपति लिखता था। किश ने कई भाग्य के चक्कर खाये और कई बार स्वतन्त्रता खोई, किन्तु अन्त में वह फिर बलशाली हो गया और छः सौ वर्ष तक आधिपत्य जमाये रहा। उल्लेखनीय बात यह है कि इस वंश की स्थापिका एक स्त्री 'अजगबाऊ' थी, जो पहले शराब का रोजगार करती थी। महारानी की हैसियत से उसने अच्छा यश प्राप्त किया। अपनी योग्यता के कारण वह अपने पुत्र और पौत्र की राजनियन्त्री रही। उसके समय में किश ने साहित्य, कानून, कला, व्यापार में अच्छी उन्नति की। सेमेटिक किशवालों पर सुमेरियन सभ्यता और धर्म की ऐसी छाप लग गयी थी कि वे अपना व्यक्तित्व तक खो बैठे।

लगश नाम के एक और नगर ने भी अच्छी उन्नति की। इसका सबसे पुराना राजा शायद 'उर-निना' था (३१०० ई० पू०)। इसने आसपास ऐसा अपना आतङ्क जमाया कि बाद को लोग उसकी मूर्ति की पूजा करने लगे। इसके वंश के राज्यकाल में धर्माधिकारियों की एक नई श्रेणी पैदा हो गई। इस वंश में एक प्रख्यात राजा 'उरुकगिन' हो गया है। वह अपने को

सुमेरियन-मूर्त्ति निर्माण कला का एक और नमूना
यह एक नार की मूर्त्ति है जो खफाजे नामक स्थान में पाई गई है।

'लगश और सुमेर का राजा' कहता था। उसने अनेक मन्दिर, इमारतें और एक नहर भी बनवाई। उसका दावा था कि उसने अपनी प्रजा को स्वतन्त्र कर दिया था। उसके प्रबन्धकाल में धर्माधिकारी अथवा धनिक लोग गरीब से-गरीब विधवा अथवा अनाथ बालक पर भी अत्याचार नहीं कर सकते थे। साधारण जनता को धर्म, धन आदि के बलवान् अधिकारियों के त्रास और अनुचित हस्तक्षेप से बचाने का यह सबसे पहला प्रयत्न समझा जाता है।

लगश का पतन उम्मा नगर के शोषक आक्रमण से हुआ। उम्मा के विजेता 'लुगल जगिसी' ने लगभग २५ वर्ष तक राज्य किया, परन्तु उसको राज्यच्युत कर 'सारगन' ने लगश पर आधिपत्य जमा लिया।

सारगन (२७७२-२७१७ ई० पू०) सेमेटिक वंश का था। किम्वदन्ती है कि इसकी मा नीची श्रेणी की और पिता अज्ञात था। मा ने उसे नरकुलों के ऊपर रखकर नदी में बहा दिया था। एक सिंचाई-वाले ने उसको निकालकर उसका पालन-पोषण किया और उसे माली बनाया। यही माली आगे चलकर बड़ा विजयी हुआ। उसने पचास नगरों को परास्त

सुमेरियन कला का एक नमूना

और कष्ट से बीता। साम्राज्य में विद्रोह की आग चारों ओर फैल गई। उसने दमन करने का कठोर प्रयत्न अवश्य किया, किन्तु सफल होने के पहले ही उसकी मृत्यु हो गई। यद्यपि सारगन के उत्तराधिकारियों ने साम्राज्य को एकदम नष्ट नहीं होने दिया, किन्तु उसकी क्षीणता दिनोंदिन बढ़ती गई। उसके पुत्र "नरम-सिन" ने अनेक विद्रोहियों का दमन किया, और कई मन्दिरों का निर्माण कराया। किन्तु उत्तर की ओर से सुमेर और अक्केड को अर्द्धसभ्य जाति वाले 'गुतियम' लोग दबाते ही चले गये और अन्त में उन्हें नष्ट कर दिया। यद्यपि इन विजेताओं में 'गुडिया' नामक एक तेजस्वी राजा हो गया है, जिसने अन्याय और बुराइयों को दूर करने के लिए सद्प्रयत्न कर अपना नाम इतिहास में अमर कर दिया, तथापि लगश के साम्राज्य के पतन को कोई भी न रोक सका।

लगश के साम्राज्य के बाद 'उर' नामक नगर का उत्थान हुआ, जिसने सुमेर और अक्केड की पतनोन्मुख ख्याति की रक्षा करने का अच्छा प्रयत्न किया। 'उर' के राजवंश में 'उर-एन्गर' का नाम पहले आता है।

सुप्रसिद्ध विधान बनाया, जिसका वर्णन आगे चलकर किया जायगा। सुमेरियन धर्म के पुनरुत्थान और सस्थापना मे भी इन्होने बडा परिश्रम किया। इनके समय म देवालयो का महत्त्व और उनकी आर्थिक सम्पत्ति बहुत बढ गई। चारो ओर से मन्दिरों के देवताओ की पूजा के लिए अन्न, फल, पशु एव अन्य प्रकार की इतनी अधिक सामग्री आने लगी कि उनके लेने और रखने के लिए एक अलग इमारत और कारिन्दों की आवश्यकता पड गई। उर के राजे यो तो अनेक देवताओ को मानते थे, किन्तु सूर्यदेव के प्रति उनकी विशेष श्रद्धा थी। अपनी न्यायप्रियता और धार्मिक एव राजनीतिक सेवाओं के कारण उर-एङ्गर और डुङ्गी भी देवताओ की श्रेणी मे शरीक कर लिये गये, उनके मन्दिर बन गये और उनकी मूर्त्तियो की पूजा होने लगी। इस वश का अन्तिम राजा 'इब्री-सिन' था। यद्यपि इसने पचीस वर्ष राज्य किया, तथापि इसके समय मे साम्राज्य शीघ्रतापूर्वक छिन्न-भिन्न हो गया। एलामवालो ने आक्रमण करके उसे कैद कर लिया। उसके पतन के साथ ही सुमेरिया की स्वतन्त्रता और सुमेरियन इतिहास का भी अवसान हो गया। यह स्मरण रखना चाहिए कि सुमेरियावाले शान्ति-उपासक थे, वे केवल विजय के भूखे न थे और न वे रण के प्रेम ही के कारण युद्ध करते थे। वे उपजाऊ भूमि पर अपना अधिकार जमा कर कृषि और सभ्यता की उन्नति करना ही अपना मुख्य आदर्श समझते थे। कहा जाता है कि उनके आधिपत्य और उन्नति का मुख्य कारण उनका सैनिक बल न था, वरन् उनकी सभ्यता और न्यायप्रियता थी।

सुमेरियन सभ्यता

सुमेरियन लोगों मे कृषि ६००० वर्ष पहले भी प्रचलित थी। उस जमाने मे भी वे नदियों से नालियों द्वारा पानी काटकर ज़मीन को उपजाऊ बना लेते थे और बैलो से हल चलाकर कुछ अनाज और तरकारियाँ पैदा कर लेते थे। ये लोग गाय, भेड़, बकरी और सुअर पालते थे। घोडो का इनको पता न था। साधारण तौर पर तो वे पत्थर, हाथी-दाँत और हड्डियो ही से अपने औज़ार बनाते थे, किन्तु ताँबा, टीन, काँसा और लोहा भी कभी-कभी काम मे लाया जाता था। सोना और चाँदी के जेवर भी इनमे प्रचलित थे। इनको सिक्कों का ज्ञान न था, लेकिन सोना-चाँदी का लेन-देन वे तौल से करते थे। विनिमय (अदल-बदल) द्वारा ये स्थल और जल-मार्ग से आस-पास के नगरो से ही नही, बल्कि मिस्र देश और भारतवर्ष से भी व्यापार करते थे। व्यापार-सबधी लिखा-पढ़ी का ढग भी इनको मालूम था। नाप-तौल और वर्ष-मास, तथा ऋतुओ का भी इन्हे ज्ञान था। इनमे धनिक और दरिद्रो के बीच की एक जन-श्रेणी पैदा हो गई थी, जिनमे विद्वान्, चिकित्सक और पुरोहित आदि थे। इसको यदि हम आधुनिक मध्य-श्रेणी का प्राचीनतम रूप मान ले, तो अनुचित न होगा। इसमे कोई आश्चर्य की बात नहीं क्योंकि सभवतः नगरों का सबसे प्रथम सस्थापन या निर्माण मसोपटेमिया मे ही हुआ था।

सुमेरियन लोगों को ईंटे और खपरैले तथा मिट्टी के बरतन आदि बनाना और पकाना मालूम था। उन्होंने ईंटों की एक ऊँची मीनार भी बनाई थी। किन्तु रहने के लिए साधारणतः वे लोग नरकुल (reeds) के मकान बनाते थे। मज़बूती के लिए टट्टर की दीवारों को वे भूसा और मिट्टी के सने हुए कडे पलस्तर से तोप देते थे। ऐसे मकानो के अवशेष अब तक पाये जाते हैं। किन्तु वे लोग मकानों के दरवाज़े लकडी ही के बनाते थे, जिनकी चूले पत्थर की होती थीं।

सुमेरिया मे अनेक नगर थे। प्रत्येक नगर मे एक नगराधीश था, जिसे हम वहाँ का राजा कह सकते हैं। इन राजों ने अपने-अपने नगर की स्वतत्रता को, जहाँ तक और जब तक इनसे बन पड़ा, क़ायम रखा। इसीलिए वे प्रायः आपस में युद्ध करते रहते थे। स्वतत्र नगरों और उनके
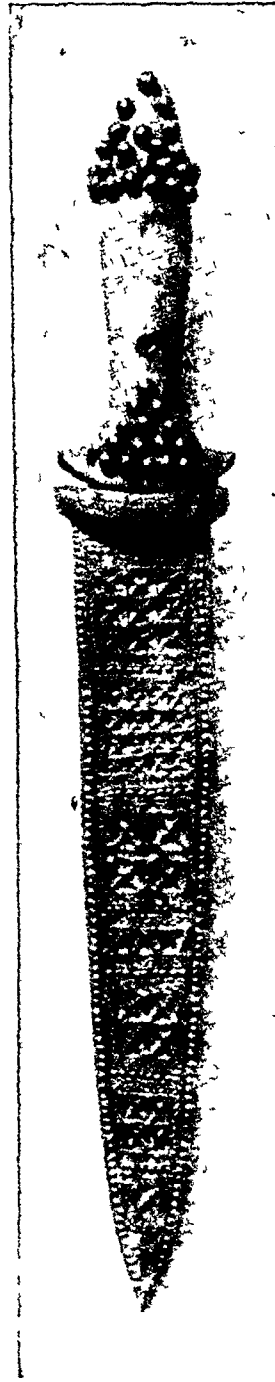
५००० वर्ष पूर्व की कला

यह सुंदर नक़ाशीदार कटार सोने और 'लेपिस लेजुली' की बनी हुई है। यह भी उर के ध्वंसावशेषों मे पाई गई थी।

पारस्परिक संघर्ष का काल ३०५० ई० पू० तक माना जाता है। किन्तु व्यापार की उन्नति के कारण यह परिस्थिति स्थिर न रह सकी। ईसा के २८०० वर्ष पूर्व यहाँ साम्राज्य की स्थापना हो गई। स्वतंत्र नगरों के बदले वहाँ एक नयी राजकीय सत्ता का आरम्भ हो गया, जिससे वे राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक एकता के सूत्र में बँध गये और उनका कार्यक्षेत्र और भी अधिक विस्तृत हो गया।

सुमेरिया के लोग पृथ्वी देवी, तथा सूर्य, चन्द्र, आकाश, व समुद्र के देवताओं को मानते थे। किन्तु उनका सबसे बड़ा देवता "वायु" था। वायु देवता का सबसे प्रसिद्ध मन्दिर निप्पर में था। यह मन्दिर पक्की ईंटों का बना था, क्योंकि बेबिलोनिया में पत्थर नहीं मिलता था। उसके पास पक्की ईंटों की एक ऊँची मीनार बनी थी, जो पिरामिड की-सी थी। मन्दिर के चारों ओर छोटी-छोटी इमारतें और आँगन बने थे। मन्दिर और उसके साथ की इमारतों को चारों ओर से चहारदीवारी घेरे हुए थी। भक्त लोग यहाँ पानी के घड़े और बकरे लाकर चढ़ाते थे। वे कर्मकाण्ड की विधि, मन्त्र-तन्त्र, आदि के द्वारा देवताओं को प्रसन्न करने और भूत-प्रेतादि को भगाते थे। वे मृत्यु के बाद भी जीवन की कल्पना करते थे, किन्तु वह कल्पना अन्धकारमय थी। पाप-पुण्य का भी उनको ज्ञान था। वे मुर्दों को दफ्ना देते थे, किन्तु न तो वे उन्हें कब्रों आदि में रखते थे और न उन पर स्मारक-स्तूप आदि ही बनाते थे। मन्दिरों में पुजारियों का प्रभुत्व था, जो "पटेसी" कहलाते थे। यही लोग ज्ञान और विद्या, ज्योतिष, लेखन-विधि, चिकित्सा आदि के भाण्डार माने जाते थे। ये लोग धनवान भी थे। इनका प्रधान स्वयं राजा था। वस्तुतः राजा ही एक तरह से प्रमुख पुरोहित माना जाता था।

सुमेरिया में स्त्रियाँ भी रखी जाती थीं—कुछ तो साधारण काम-काज करने के लिए और कुछ देवताओं अथवा उनके प्रतिनिधियों के भोग-विलास के लिए। देवताओं के निमित्त कन्यादान करना अहोभाग्य और सराहनीय कार्य माना जाता था। सुमेरियावालों का धर्म और साहित्य के क्षेत्र में बहुत कुछ प्रभाव पड़ा। बेबीलोनिया तथा असीरियावालों पर तो उनका पूरा-पूरा प्रभाव था ही, ईसाई और इस्लाम धर्म भी उनके प्रभाव से नहीं बचे। बहुत सम्भव है कि फारस और भारत पर भी उनका प्रभाव पड़ा हो।

सुमेरिया में विवाह की प्रथा प्रचलित थी। पत्नी अपने पिता से पाये हुए दहेज पर अपना अधिकार रखती थी। बच्चों पर पति और पत्नी के अधिकार समान थे। पत्नी अलग व्यवसाय करती थी। पति के मरने पर वह उसकी सम्पत्ति का प्रबन्ध भी करती थी। यदि पत्नी पर व्यभिचार का भी दोष होता तो भी उसे तलाक़ नहीं दिया जा सकता था। हाँ, पति दूसरा विवाह कर सकता था।

किश के महल की दीवारों की शिल्पकारी

इस तरह के और भी कई खुदाई के नमूने सुमेरियन ध्वंसावशेषों से मिले हैं, जिनसे ५००० वर्ष पूर्व के इन अद्भुत लोगों की प्रतिभा का परिचय मिलता है। इस चित्र में दीवार पर खुदे हुए बकरे-बकरी के चित्र हैं।

साराश यह है कि सुमेरियन लोगों ने ही पहले पहल साम्राज्य की रचना की। उन्होंने ही पहलेपहल नालियों व नहरों से सिंचाई करने की तरकीब निकाली, सोने-चाँदी से चीजों की क़ीमत निश्चित करने का आविष्कार किया, लिखा-पढ़ी करके व्यापार करने की विधि चलाई, लेखन-कला की रचना की, पुस्तकालयों और पाठशालाओं की स्थापना की, गद्य-पद्य लिखना आरंभ किया, तथा ज़ेवर और सौन्दर्य-वर्द्धक मसाले बनाये। उन्हीं ने पहले मन्दिर व महलों का बनाना शुरू किया। गुम्बद, मेहराब, खम्भे वगैरह बनाकर स्थापत्य-कला की उन्नति की। इन गुणों के होते हुए भी उन्होंने एकसत्तावाद, गुलामी, सैनिक अत्याचार और पुरोहित सत्ता की नींव ही नहीं डाली, किन्तु उन्हें काफ़ी मज़बूत बना दिया। यद्यपि उनके इतिहास का अभी तक पूर्ण ज्ञान नहीं प्राप्त हुआ, किन्तु यह निश्चित है कि उनकी सभ्यता का दौर दौरा तीन-चार हज़ार वर्ष तक क़ायम रहा।

भाप के इंजिन

मनुष्य की आर्थिक प्रगति के इतिहास मे भाप की शक्ति के आविष्कार का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी की 'औद्योगिक क्रांति' का सूत्रपात वाष्प-यंत्रों के आविष्कार ही से हुआ। भाप की ही बदौलत रेल और जहाज व कल-कारखानो की उस अद्भुत नई दुनिया का निर्माण हुआ, जिसने मनुष्य के विकास की धारा को एक नवीन दिशा की ओर मोड दिया है।

वाष्प-यंत्रों का इतिहास निस्सन्देह बहुत पुराना है। मिस्र और यूनान के प्राचीन निवासी वाष्प-सम्बन्धी अनेक प्रयोगो से परिचित थे। सिकन्दरिया के प्रसिद्ध विद्वान् हीरो ने एक ऐसा यत्र बनाया था, जिसमे एक दीपक की आँच से पानी भाप म परिवर्तित होता था। यह भाप एक बर्त्तन मे, जिसमे अगूरी शराब रक्खी रहती थी, प्रवेश करती थी। इस भाप के धक्के से यह अगूरी शराब उस बर्त्तन के बाहर एक पतली टोटी के रास्ते फव्वारे के रूप मे निकलकर मदिर की मूर्त्ति के ऊपर गिरती थी। देहात के जनसाधारण दर्शक इस करामात को देखकर सोचते थे कि अवश्य ही इसके पीछे कोई देवी शक्ति काम कर रही है।

हीरो ने भाप के जोर से चलनेवाला एक और यत्र बनाया था। एक गोल पीपा धुरी के आधार पर खडा किया गया था। इसके आमने-सामने के दो सूराखों से जिस समय भाप बाहर निकलती, तो उसके धक्के से यह पीपा उस धुरी पर नाचने लगता था।

किन्तु ये नमूने निरे खिलौने ही रह गये। इन नमूनों के आधार पर नित्य के काम के लिए कोई मशीन या इजिन न बनाया जा सका। तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियाँ भी ऐसे यत्रो के आविष्कार के लिए कुछ अधिक अनुकूल न थीं। अत हीरो के इन प्रयोगों के उपरान्त लगभग २००० वर्ष तक वाष्प-यत्रों के इतिहास के पन्ने कोरे ही पड़े रह गये। जान पडता है, हमारा ज्ञान-केतु पुच्छल तारों की तरह है, जो एकाएक प्रकट होकर लुप्त हो जाते है और बहुत दिनों बाद फिर वापस लौटते है।

इस अवधि मे इक्के-दुक्के वैज्ञानिकों ने वाष्प-सम्बन्धी तरह-तरह के प्रयोग किये, किन्तु भाप के इजिन के आविष्कार का श्रेय सन् १६५५ मे एक अग्रेज लार्ड वोर्सेस्टर को ही प्राप्त हो सका। अपनी एक पुस्तक "आविष्कारो की शताब्दी" मे लार्ड वोर्सेस्टर ने अपने इस आविष्कार का इन शब्दों मे परिचय दिया है—"आग की मदद से पानी ऊपर चढाने के लिए एक अद्भुत और शक्तिशाली साधन"। उसका इजिन वास्तव मे एक पम्पिङ्ग इजिन ही था। किन्तु यह इजिन आजकल के इजिन से मूलत. भिन्न था। इस इजिन मे भाप की प्रसरणशीलता (फैलने का गुण) और उसकी शक्ति का तनिक भी लाभ नहीं उठाया गया था, बल्कि आकाश की हवा के दबाव की शक्ति का प्रयोग इस इजिन मे किया जाता था। पीपे-जैसे दो बर्त्तनों में ब्वायलर (Boiler) से भाप जाती थी। पीपे के ऊपर ठण्डा पानी डालकर भाप को ठण्डा करके पानी बना लेते थे। ऐसा करने से पीपे के भीतर शून्य या वैकुअम (Vacuum) उत्पन्न हो जाता था। पीपे से एक नल कुएँ या खान के पानी तक जाता था। पीपे के अन्दर शून्य या वैकुअम उत्पन्न होते ही आकाश की हवा के दबाव से खान का पानी पीपे में स्वय चढ जाता था। अब वाल्व (valve) के द्वारा नीचे के पाइप का रास्ता बन्द करके पीपे मे, जिसमे पानी मौजूद रहता था, फिर भाप भेजते थे। भाप के ज़ोर से पीपे का पानी दूसरे रास्ते से बाहर निकल जाता था।

इसके बाद लगभग १०० वर्ष तक भाप के इजिन

केप्टेन सेवरी ने लार्ड वोर्सेस्टर के इंजिन में बहुत-कुछ सुधार किये। किन्तु उसे भी यह बात नहीं मालूम थी कि पानी भाप बनने पर १६०° गुना ज्यादा जगह घेरता है। अतः भाप की प्रसरणशीलता का लाभ सेवरी भी न उठा सका। किन्तु सेवरी का इंजिन इतना शक्तिशाली न साबित हो सका कि खानों की पानीवाली कठिनाई को वह पूर्णतया दूर कर सकता। सेवरी का इंजिन ३४ फीट से अधिक नीचे का पानी नहीं खींच सकता था। हाँ, ऊँचे दबाव की भाप का प्रयोग करके क़रीब ३०० फीट की ऊँचाई तक पानी को वह ऊपर को अवश्य चढ़ा लेता था। अतः १७१२ में न्यूकामेन ने सेवरी के इंजिन में कई एक मौलिक सुधार किये। उसने पहले-पहल पिस्टन (Piston) का प्रयोग किया। पिस्टन की मदद से उसका इंजिन पानी को बहुत ऊँचे तक फेंक सकता था। इसके एक भारी शहतीर का एक सिरा ज़ंजीरों द्वारा पम्प के डण्डे से बँधा था और दूसरा सिरा एक पिस्टन से बँधा था, जो एक गोल सिलिण्डर में नीचे-ऊपर आता-जाता था। इसी सिलिण्डर

न्यूकामेन के पंपिंग इंजिन का एक नमूना (model)

यह मॉडल या नमूना किंग्ज़ कॉलेज, लंदन के अजायबघर में रक्खा हुआ है। 'पिस्टन' का सर्वप्रथम प्रयोग इसी इंजिन में किया गया था, जिससे आगे इंजिन के विकास में बड़ी सहायता मिली।

क़रीब-क़रीब इसी सिद्धान्त पर काम करते रहे। उन दिनों इंगलैण्ड में खानों से पानी उलीचने की महत्त्वपूर्ण समस्या सामने थी। खान के मालिक लोग हैरान थे कि खान के पानी को कम दाम में और तेज़ी के साथ कैसे उलीचें। किसी-किसी खान में पानी उलीचने के लिए ५०० घोड़ों द्वारा रहट चलाया जाता था, और कितनी खानें तो पानी भर जाने के कारण बन्द भी हो गई थीं। अतः लार्ड वोर्सेस्टर के इंजिन की हर खान में माँगें हुईं, और इस इंजिन के दोष दूर करके इसे और भी शक्तिशाली बनाने के लिए तत्कालीन वैज्ञानिकों ने भी खोज कर परीक्षा करना शुरू किया।

जेम्स वॉट और मैथ्यू बोल्टन के संयुक्त प्रयत्न द्वारा आविष्कृत इंजिन

भाप के इंजिन के विकास में योग देनेवाले प्रारंभिक आविष्कारकर्त्ता इसी खोज में लगे थे कि कोई ऐसा शक्तिशाली साधन उन्हें मिल जाय जिससे खानों से पानी बाहर खींचने में मदद मिले। इस पंपिंग इंजिन का जन्म इसी आवश्यकता-पूर्ति के निमित्त हुआ। किन्तु इससे आगे के उन्नत भाप के इंजिन के निर्माण का रास्ता खुल गया। [फ़ोटो —साइंस म्यूज़ियम, लंदन।]

मे भाप प्रवेश करती थी। इस सिलिण्डर का ब्वायलर से एक वाल्व द्वारा सम्बन्ध था। वाल्व खोलने पर ब्वायलर मे से भाप इस सिलिण्डर में प्रवेश करती थी। फिर ऊपर से इस सिलिण्डर के अन्दर पानी की पतली धार प्रवेश कराई जाती थी। पानी के स्पर्श से भाप ठण्ढी होकर तरल बन जाती थी, अतः इस सिलिण्डर के अन्दर आंशिक शून्य या वैकुअम पैदा हो जाता था। वैकुअम के पैदा होते ही पिस्टन आकाश की हवा के दबाव के कारण नीचे चला आता था, क्योंकि सिलिण्डर के ऊपरी भाग में कोई ढक्कन न था। साथ ही दूसरी ओर का सिरा ऊपर को उठता और पम्प को चलाता था। इस तरह इजिन पानी उलीचता था। अब वाल्व फिर खोला जाता, और सिलिण्डर मे भाप फिर प्रवेश करती तथा पिस्टन ऊपर को उठ जाता था। इसी क्रिया की बार-बार पुनरावृत्ति होती थी। सिलिण्डर के भीतर का पानी एक छेद द्वारा बाहर निकाल दिया जाता था।

कहा जाता है कि एक खिलाड़ी लड़के को इस इजिन के वाल्व और पानी की टोंटी को खोलने और बन्द करने का काम दिया गया था। लड़का काम करने से जी चुराता था। अतः उसने कुछ रस्सियों और डण्डों को वाल्व और टोंटी से लगाकर शहतीर मे इस तरकीब से बाँधा कि शहतीर के ऊपर-नीचे होने के साथ ही ये वाल्व और टोंटी भी ठीक अवसर पर खुलने और बन्द हाने लगे। इस तरह उस खिलाडी लडके की सूझ ने इजिन को पूर्णतया स्वयक्रिय बना दिया।
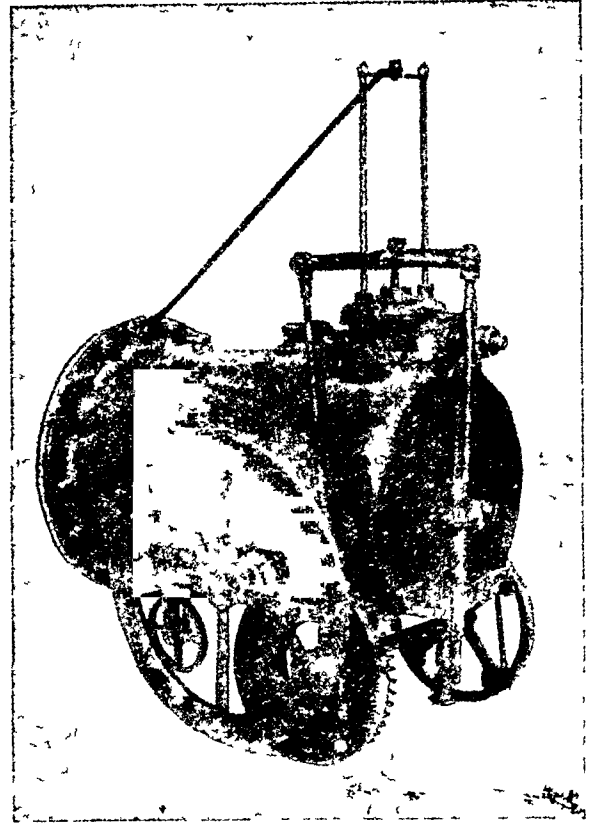
सड़क पर चलनेवाला सबसे पहला इंजिन
वैट और मर्डक द्वारा आविष्कृत भाप की शक्ति का उपयोग करके रिचर्ड ट्रेविथिक ने आधुनिक भाप के इंजिनों के इस आदिम पूर्वज को तैयार किया था। [फ़ोटो—'सायंस म्यूजियम', लंदन]

वालक जैम्स वैट द्वारा भाप की शक्ति का प्रथम प्रयोग
भाप के ज़ोर से चाय की देगची का ढक्कन उछलते देखकर बचपन ही मे वैट के मन में जो उत्कंठा जगी, उसी का विकास उसके द्वारा भाप के इंजिन के आविष्कार में हुआ।

न्यूकामेन के इंजिन में ईंधन का ख़र्चा अधिक था और बहुत काफी भाप इसमे नष्ट होती थी। फिर भी लगभग १५० वर्ष तक यही इजिन खानों मे पानी उलीचने का काम करता रहा। न्यूकामेन के इजिन मे समय-समय पर अनेक लोगों ने सुधार किये, किन्तु उसमें मूलतः परिवर्तन करके उसे आधुनिक ढंग के वाष्प-इजिन का रूप देने का श्रेय जैम्स वैट को ही प्राप्त हो सका। जैम्स वैट बाल्यावस्था में स्वास्थ्य की ख़राब

भाप के इंजिन का विधाता जैम्स वैट
(१७३६—१८१९)

के कारण स्कूल में भर्ती नहीं किया जा सका था। उसने घर ही पर शिक्षा पाई और बड़ा होने पर गणित-सम्बन्धी औजारों और यंत्रों की मरम्मत करने का काम शुरू किया। अपने काम मे वह इतना निपुण था कि ग्लासगो यूनिवर्सिटी की प्रयोगशाला के औजारों की मरम्मत करने के लिए मिस्त्री बना दिया गया। एक दिन उक्त विश्व-विद्यालय के विज्ञान के प्रोफेसर ने उसे एक बिगड़ा हुआ न्यूकामेन इजिन मरम्मत करने के लिए दिया। जैम्स वैट ने उस न्यूकामेन-इजिन का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया। उसने उसकी अनेक कमियों पर ध्यान दिया और अब उसे धुन सवार हुई कि न्यूकामेन इजिन के दोषों को दूर करें।

उसने देखा कि सिलिण्डर मे भाप को ठण्ढा करने के लिए जब पानी प्रवेश कराते हैं, तो ठण्डे पानी के स्पर्श से सिलिण्डर भी ठण्ढा हो जाता है। अत पिस्टन को ऊपर भेजने के लिए जब भाप को सिलिण्डर में फिर प्रवेश कराया जाता है, तो भाप की बहुत-सी गर्मी अनायास सिलिण्डर को फिर से गर्म करने मे खर्च हो जाती है। फल-स्वरूप पिस्टन को ऊपर भेजने समय बहुत-सी भाप ठण्ढी होकर पानी बन जाती है। इसलिए वैकुअम पैदा करने के लिए और अधिक भाप सिलिण्डर मे प्रवेश कराना पड़ता था। इजिन की इस फिजूलखर्ची को कम करने के लिए उसने सिलिण्डर से अलग एक दूसरे जैकेट मे भाप को ठण्ढा करने का प्रबन्ध किया, और सिलिण्डर को गर्म बनाए रखने के लिए उसके चारों ओर नमदा, ऊन और घास लपेट दिया।

भाप के लिए अलग कन्डेन्सर बनाकर जैम्स वैट इजिन के खर्च मे दस गुना कमी करने मे समर्थ हुआ। फिर उसने सोचा कि सिलिण्डर के ऊपर यदि ढक्कन लगा दिया जाय, तो अवश्य ही बाहर की हवा का दबाव तो पिस्टन को डुला न सकेगा, किन्तु तब भाप के द्वारा ही पिस्टन को हम ऊपर से नीचे भी ला सकते हैं। वैट की इस सूझ ने वाष्प-इजिन को एक सच्चा वाष्प यत्र बना दिया। इसके पहले पानी खीचने का काम भाप से नही लिया जाता था। इजिन के असली काम मे केवल हवा का दबाव ही मदद देता था। अब वैट पहली बार बाहर की हवा की मदद लिये बिना केवल भाप के जोर से ही इजिन द्वारा पानी उलीचने मे समर्थ हुआ। इस तरह उसने वाष्प-इजिन का कायापलट कर

जार्ज स्टीफेन्सन (१७८१—१८४८)
जिसने रेल के इंजिन का आविष्कार किया।

सड़क पर चलनेवाला पहला इंजिन
जिसमें भाप बनाने के लिए नलीदार ब्वायलर का प्रयोग किया गया था। इसे १७६१ में 'रीड' नामक व्यक्ति ने बनाया था।

दिया। इतना कर लेने पर भी वैट ने वाष्प-सम्बन्धी आविष्कारों की लगन न छोड़ी। कभी वह भाप का तापक्रम बढ़ाता, तो कभी उसका दबाव ज्यादा करता। प्रयोगों के सिलसिले में उसने देखा कि सिलिण्डर के भीतर भाप के धक्के से पिस्टन मे एक गति उत्पन्न होती है। जिस तरह पानी की तेज़ धार के धक्के से काफी शक्ति उत्पन्न होती है, उसी तरह भाप के धक्के के ज़ोर से यह पिस्टन आगे बढ़ता है। एकाएक उसने सोचा कि भाप बनने पर यदि पानी को मौक़ा मिले, तो वह १६०० गुना ज्यादा आयतन में बढ सकता है। बढ़ते समय इसके फैलने मे अधिक शक्ति भी पैदा होती है। तो क्या भाप के फैलने पर जो ज़ोर उत्पन्न होता है, उसका प्रयोग नहीं किया जा सकता ?

इस नई सूझ को आज़माने के लिए उसने प्रयोग भी किया। पिस्टन के अन्दर वाल्व के रास्ते उसने भाप को प्रवेश कराया और जब पिस्टन अपना एक चौथाई रास्ता तै कर चुका था तब उसने वाल्व को बन्द कर दिया। अब पिस्टन के अन्दर की भाप फैलनी शुरू हुई। फैलने की क्रिया में उसने पिस्टन को ढकेला। इस तरह पिस्टन सिलिण्डर के एक से दूसरे सिरे पर पहुँच गया। इस युक्ति से वैट ने थोड़ी ही भाप मे काम चलाना शुरू किया, और फलस्वरूप कोयले की लागत में भारी बचत होने लगी।

सौ वर्ष पूर्व के रेल के इंजिन का रूप
यह इंगलैंड की स्टाकटन और डार्लिंगटन रेल्वे द्वारा सन् १८२५ में काम में लाये जानेवाले एक इंजिन का चित्र है। आज के भीमकाय रेल-इंजिन का यह पुरखा कैसा खिलौने जैसा प्रतीत होता है।

इसके उपरान्त वैट ने अपने इंजिन को दोहरी हरकत करनेवाला (double-acting) बनाया। अब तक सिलिण्डर के अन्दर भाप एक ही रास्ते से प्रवेश करती थी, अतः भाप का पूरा ज़ोर पिस्टन को एक ओर चलाने मे ही लगता था। पिस्टन जब लौटता था, तब उसमे पहली हरकत के इतना ज़ोर नहीं रहता था। किन्तु अब सिलिण्डर के दूसरे सिरे पर भी भाप के प्रवेश करने के लिए वाल्व बनाया गया। इस तरह लौटती बार भी पिस्टन पर भाप का पूरा ज़ोर पड़ने लगा। पिस्टन को आते और जाते दोनों समय समान शक्ति मिलने लगी। अतः इंजिन की कार्यक्षमता पहले से दूनी हो गई। आजकल के सभी इंजिनों में ऐसे डबल ऐक्टिङ्ग पिस्टन ही काम में आते हैं।

अब भद्दे और तरह-तरह की कमियोंवाले इंजिन को हर तरह से परिष्कृत करके, वैट पिस्टन के आगे-पीछेवाली हरकत को वृत्ताकार हरकत मे परिणत करने के लिए तरह-तरह की तरकीबें सोचने लगा। आख़िरकार उसने 'क्रैन्क' (एक प्रकार का पुर्जा) और 'शैफ्ट' (एक और डंडानुमा पुर्जा) की मदद से पिस्टन की सीधी हरकत से **वृत्ताकार**

हरकत पैदा करने की भी तरकीब निकाल ली। वैट ही सर्वप्रथम व्यक्ति था, जिसने भाप के बल से पहिया घुमाया। अब तक भाप के इजिन केवल पम्प को ऊपर-नीचे चलाया करते थे, किन्तु 'क्रैन्क' और 'शैफ्ट' की मदद से वाष्प इजिन से खराद की मशीन, लकड़ी काटने के लिए वृत्ताकार आरे आदि हर तरह की मशीनों को चलाने का काम लिया जाने लगा।

तदुपरान्त वैट ने एक बहुत ही छोटा, किन्तु उपयोगी सुधार कर इस इजिन को पूर्ण बना दिया। इजिन की रफ्तार एकसाँ बनाये रखने के लिए उसने 'गवर्नर' बनाया, जो भाप के वाल्व के छेद को छोटा-बड़ा करता था। गवर्नर मे दो लट्टू लगे रहते हैं। ये लट्टू एक कीली के दोनों बाजू पर लटकते रहते हैं। उस कीली का सम्बन्ध इजिन के शैफ्ट (धुरी) से रहता है। ज्यों-ज्यों शैफ्ट तेज घूमता है, ये लट्टू भी तेज नाचते हैं। तेजी के साथ नाचने के कारण ये लट्टू कीली से दूर हट जाते हैं। कई लीवरों की मदद से लट्टुओं का सबध वाल्व से बना रहता है। लट्टू जब तेजी के साथ घूमने के कारण एक-दूसरे से दूर हट जाते हैं, तो वाल्व के भीतर का सूराख भी छोटा पड़ जाता है, जिससे सिलिण्डर मे कम भाप प्रवेश करती है। नतीजा यह होता है कि इजिन की चाल धीमी पड़ जाती है। उसी तरह जब इजिन धीमा पड़ने लगता है, तो वाल्व के सूराख बड़े हो जाते हैं, और पिस्टन मे ज्यादा भाप आने लगती है, जिससे रफ्तार बढ़कर फिर पूर्ववत् हो जाती है।

वैट के सग उसका एक सहायक भी था, जिसका नाम विलियम मर्डक था। मर्डक कुछ दिन वैट के साथ रहने के बाद कार्नवाल की खान मे पानी उलीचने की मशीनो की देखभाल करने के लिए इञ्जीनियर नियुक्त हो गया। दिन भर के कठिन परिश्रम के उपरान्त भी वह शाम को इजिन के नमूने बनाया करता था। वह इस फिक्र मे था कि किसी तरह ऐसा इजिन बना ले, जो सड़क पर दौड़ सके। उसने तीन पहियोंका एक इजिन बनाया, जिसमे आगेका पहिया छोटा था। इसमे ब्वायलर का पानी एक स्पिरिट लैम्प द्वारा गर्म किया जाता था। मर्डक सबसे छिपाकर अकेले मे अपने हाते के अन्दर इजिन-सम्बन्धी प्रयोग करता था। एक दिन शाम को मुहल्ले की सड़क को सूना पाकर वह अपने माडल को सड़क पर ले गया। सयोगवश गिर्जे का एक पादरी घूमकर उसी सड़क से लौट रहा था। पादरी ने देखा कि धुएँ की बदबू से भरा हुआ एक विशालकाय दानव, जिसके मुँह से आग की लपटें निकलती थीं, सड़क पर उसकी ओर बढ़ता आ रहा है। वह एकदम घबरा उठा, और बेतहाशा एक ओर भागा। इसके कुछ ही दिन उपरान्त उसने गिर्जे मे उपदेश देते हुए कहा कि मैंने शैतान को आग उगलते हुए देखा है। इस घटना से मर्डक इतना घबराया कि फिर उसने अपने नमूने को बहुत दिनों तक हाते से बाहर नहीं निकाला। वह हाते के भीतर ही गुप्त रूप से प्रयोग करता रहा।

उसने अपने नमूने मे सिलिण्डर के दोनों सूराखों को, जिनमे से होकर भाप सिलिण्डर म

भाप की शक्ति का जादू

घर की चाय की केतली में ढक्कन को उछालनेवाली भाप आज भीमकाय जहाज़ों को चलाती है !

भाप की शक्ति का प्रतीक—लोहे की पटरियो पर दौड़नेवाला आधुनिक युग का एक लौह दानव

यदि स्वयं जैम्स वैट या जार्ज स्टीफेन्सन से भाप के इंजिन के आरंभिक दिनों में यह कहा जाता कि उनके आविष्कार के सौ साल के ही भीतर पृथ्वी पर लगभग ८ लाख मील लंबी लोहे की पटरियाँ बिछ जायँगी और उन पर १ मील प्रति मिनट की गति से भीमकाय इंजिनो से खींचे जानेवाली रेलगाडियाँ हज़ारों मन माल और सैकडों सवारियाँ लेकर पहाडों और नदियों को लाँघते हुए रात-दिन दौडती रहेंगी तो शायद ही उन्हें इस बात पर विश्वास होता। पर आज दिन हमारे लिए ये रोज़मर्रे की मामूली बाते है।

प्रवेश करती थी, बारी-बारी से बन्द करने के लिए एक विशेष प्रकार का वाल्व बनाया, जो शैफ्ट से लोहे के एक डण्डे द्वारा सबधित था। शैफ्ट के घूमने पर यह नई वाल्ववाला डण्डा आगे-पीछे खिसकता था, और सिलिण्डर के दोनो वाल्व उपर्युक्त समय पर बारी-बारी से खुलते थे।

इन्ही दिनो कागनार नामक एक फ्रासीसी ने भी भाप का एक इजिन बनाया था। उसका इजिन बहुत छोटा था और वह कच्ची सडक पर भी चलता था। एक बार पेरिस की सडक पर उसका इजिन उलट गया। तब से फ्रांसीसी लोग भाप की गर्मी को ख़तरनाक समझने लगे और किसी ने भी उस इंजिन का सुधार करने का प्रयत्न नहीं किया।

मर्डक के बाद उसके शिष्य ट्रेविथिक ने मर्डक के नमूने को सर्वांगपूर्ण और निर्दोष बनाने का जिम्मा लिया। उसने पहली बार भाप के इजिन को रेल की पटरियो पर दौडाया। इसके पहले रेल की पटरियाँ ज़मीन पर बिछी तो अवश्य थीं, किन्तु उन पर चलनेवाली गाड़ियो को घोडे खीचा करते थे। १८०३ मे उसका इंजिन कई गाडियो को रेल की पटरी पर खीचने के लिए काम मे लाया गया। लोहे की पटरियो पर दौडनेवाला यह सर्वप्रथम इजिन था।

परन्तु ट्रेविथिक की योजना कार्यान्वित न हो सकी। भाप के इजिन की रेलगाडी तैयार करने का वास्तविक श्रेय जार्ज स्टीफेन्सन नामी एक अग्रेज़ नौजवान को मिला। बचपन मे वह कभी भेडें चराता, तो कभी फेरी लगाकर सौदा बेचता। आख़िर वह भी उस खान मे नौकर हो गया, जिसमे उसका

...पैदा करने की भी तरकीब निकाल ली। वैट ही सर्वप्रथम व्यक्ति था, जिसने भाप के बल से पहिया घुमाया। अब तक भाप के इंजिन केवल पम्प को ऊपर-नीचे चलाया करते थे, किन्तु 'क्रैन्क' और 'शैफ्ट' की मदद से वाष्प इंजिन से खराद की मशीन, लकड़ी काटने के लिए वृत्ताकार आरे आदि हर तरह की मशीनों को चलाने का काम लिया जाने लगा।

तदुपरान्त वैट ने एक बहुत ही छोटा, किन्तु उपयोगी सुधार कर इस इंजिन को पूर्ण बना दिया। इंजिन की रफ्तार एक-सी बनाये रखने के लिए उसने 'गवर्नर' बनाया, जो भाप के वाल्व के छेद को छोटा-बड़ा करता था। गवर्नर में दो लट्टू लगे रहते हैं। ये लट्टू एक कीली के दोनों ओर पर लटकते रहते हैं। उस कीली का सम्बन्ध इंजिन के शैफ्ट (धुरी) से रहता है। ज्यों-ज्यों शैफ्ट तेज घूमता है, ये लट्टू भी तेज नाचते हैं। तेजी के साथ नाचने के कारण ये लट्टू कीली से दूर हट जाते हैं। कई लीवरों की मदद से लट्टुओं का संबंध वाल्व से बना रहता है। लट्टू जब तेजी के साथ घूमने के कारण एक-दूसरे से दूर हट जाते हैं, तो वाल्व के भीतर का सूराख भी छोटा पड़ जाता है, जिससे सिलिण्डर में कम भाप प्रवेश करती है। नतीजा यह होता है कि इंजिन की चाल धीमी पड़ जाती है। उसी तरह जब इंजिन धीमा पड़ने लगता है, तो वाल्व के सूराख बड़े हो जाते हैं, और पिस्टन में ज्यादा भाप आने लगती है, जिससे रफ्तार बढ़कर फिर पूर्ववत् हो जाती है।

वैट के संग उसका एक सहायक भी था, जिसका नाम विलियम मर्डक था। मर्डक कुछ दिन वैट के साथ रहने के बाद कार्नवाल की खान में पानी उलीचने की मशीनों की देखभाल करने के लिए इञ्जीनियर नियुक्त हो गया। दिन भर के कठिन परिश्रम के उपरान्त भी वह शाम को इंजिन के नमूने बनाया करता था। वह इस फिक्र में था कि किसी तरह ऐसा इंजिन बना ले, जो सड़क पर दौड़ सके। उसने तीन पहियोंका एक इंजिन बनाया, जिसमें आगेका पहिया छोटा था। इसमें ब्वायलर का पानी एक स्पिरिट लैम्प द्वारा गर्म किया जाता था। मर्डक सबसे छिपाकर अकेले में अपने हाते के अन्दर इंजिन-सम्बन्धी प्रयोग करता था। एक दिन शाम को मुहल्ले की सड़क को सूना पाकर वह अपने माडल को सड़क पर ले गया। संयोगवश गिर्जे का एक पादरी घूमकर उसी सड़क से लौट रहा था। पादरी ने देखा कि धुएँ की बदबू से भरा हुआ एक विशालकाय दानव, जिसके मुँह से आग की लपटें निकलती थीं, सड़क पर उसकी ओर बढ़ता आ रहा है। वह एकदम घबरा उठा, और बेतहाशा एक ओर भागा। इसके कुछ ही दिन उपरान्त उसने गिर्जे में उपदेश देते हुए कहा कि मैंने शैतान को आग उगलते हुए देखा है। इस घटना से मर्डक इतना घबराया कि फिर उसने अपने नमूने को बहुत दिनों तक हाते से बाहर नहीं निकाला। वह हाते के भीतर ही गुप्त रूप से प्रयोग करता रहा।

उसने अपने नमूने में सिलिण्डर के दोनों सूराखों को, जिनमें से होकर भाप सिलिण्डर में

भाप की शक्ति का जादू

[illegible] ढक्कन को उछालनेवाली भाप आज भीमकाय जहाज़ों को चलाती है।

भाप की शक्ति का प्रतीक—लोहे की पटरियों पर दौड़नेवाला आधुनिक युग का एक लौह दानव

यदि स्वयं जेम्स वैट या जार्ज स्टीफेन्सन से भाप के इंजिन के आरंभिक दिनों में यह कहा जाता कि उनके आविष्कार के सौ साल के ही भीतर पृथ्वी पर लगभग ८ लाख मील लंबी लोहे की पटरियाँ बिछ जायँगी और उन पर १ मील प्रति मिनट की गति से भीमकाय इंजिनों से खींचे जानेवाली रेलगाड़ियाँ हज़ारों मन माल और सैकड़ों सवारियाँ लेकर पहाड़ों और नदियों को लाँघते हुए रात-दिन दौड़ती रहेंगी तो शायद ही उन्हें इस बात पर विश्वास होता। पर आज दिन हमारे लिए ये रोज़मर्रे की मामूली बातें हैं।

प्रवेश करती थी, बारी-बारी से बन्द करने के लिए एक विशेष प्रकार का वाल्व बनाया, जो शैफ्ट से लोहे के एक डण्डे द्वारा सम्बधित था। शैफ्ट के घूमने पर यह नई वाल्ववाला डण्डा आगे-पीछे खिसकता था, और सिलिण्डर के दोनो वाल्व उपर्युक्त समय पर बारी-बारी से खुलते थे।

इन्हीं दिनो कागनार नामक एक फ्रांसीसी ने भी भाप का एक इंजिन बनाया था। उसका इंजिन बहुत छोटा था और वह कच्ची सडक पर भी चलता था। एक बार पेरिस की सडक पर उसका इंजिन उलट गया। तब से फ्रांसीसी लोग भाप की गर्मी को ख़तरनाक समझने लगे और किसी ने भी उस इंजिन का सुधार करने का प्रयत्न नहीं किया।

मर्डक के बाद उसके शिष्य ट्रेविथिक ने मर्डक के नमूने को सर्वांगपूर्ण और निर्दोष बनाने का जिम्मा लिया। उसने पहली बार भाप के इंजिन को रेल की पटरियों पर दौड़ाया। इसके पहले रेल की पटरियाँ ज़मीन पर बिछीं तो अवश्य थीं, किन्तु उन पर चलनेवाली गाड़ियों को घोड़े खींचा करते थे। १८०३ में उसका इंजिन कई गाड़ियों को रेल की पटरी पर खींचने के लिए काम में लाया गया। लोहे की पटरियों पर दौड़नेवाला यह सर्वप्रथम इंजिन था।

परन्तु ट्रेविथिक की योजना कार्यान्वित न हो सकी। भाप के इंजिन की रेलगाड़ी तैयार करने का वास्तविक श्रेय जार्ज स्टीफेन्सन नामी एक अंग्रेज नौजवान को मिला। बचपन में वह कभी भेड़ें चराता, तो कभी फेरी लगाकर सौदा बेचता। आख़िर वह भी उस खान में नौकर हो गया, जिसमें उसका

भाप से चलनेवाले टरबाइन (Turbine) का चक्र (खुला हुआ)

आजकल अधिकाश बड़े जहाज़ो को चलाने के लिए एक विशेष प्रकार के चक्रवत् गर टरबाइन का प्रयोग किया जाता है। विशेष विवरण के लिए पृष्ठ २४२ का मैटर देखिए।

[illegible] काम करता था। यहाँ उसने छोटे-छोटे इजिनों को कोयला ढोते हुए देखा। वह घण्टों इन इजिनों को देखा करता और घर पर मिट्टी से इन्हीं इजिनो के माडल बनाया करता था। कुछ ही दिनो मे वह इजिन के कलपुर्जों से पूर्णतया परिचित हो गया। अब वह इनमे मरम्मत करने का काम करने लगा। लोग उसे 'इजिन का डाक्टर' कहने लगे। इजिन मे कैसी भी खराबी क्यो न आ गई हो, वह उसे दुरुस्त कर देता था। फिर भी उस समय तक स्टीफेन्सन एक अक्षर भी नहीं पढ़ पाता था। उसने न्यूकामेन, मर्डक, वैट आदि का नाम भी नहीं सुना था। उसने इजिन के सम्बन्ध में जानकारी सब अपनी आँखों और कानों की सहायता से ही प्राप्त की थी। बड़ा होने पर उसने रात्रि-पाठशाला मे जाकर पढ़ना सीखा। उसका छोटा-सा लड़का जब स्कूल से घर लौटता, तो स्टीफेन्सन अपनी किताब लेकर उसके पास पहुँच जाता और उसके साथ अपना पिछला सबक दुहराता था।

पढ़-लिख लेने के बाद स्टीफेन्सन ने और भी [illegible] इजिनों का अध्ययन किया। इन दिनो बढ़िया [illegible] की माँग भी बढ़ रही थी, क्योंकि खान के मालिकों के सामने बड़ी समस्याएँ आ उपस्थित हुई थीं। [illegible] नेपोलियन का डर छाया हुआ था, जिससे सभी अच्छे-अच्छे घोड़े फौज के काम के लिए ख़रीद लिये गये थे। खान मे कोयला-गाड़ी खींचने के लिए बढ़िया घोड़े मिलते ही न थे। युद्ध की सम्भावना के कारण चारा भी महँगा हो गया था। अतः खान के मालिको ने सोचा कि यदि कोयला-गाड़ी खींचने के लिए वे घोड़े के स्थान पर भाप के इजिनो का प्रयोग कर सके, तो उनकी सारी मुश्किले दूर हो जायँ। अतः वाष्प-यत्र सम्बन्धी अनुसन्धानों के लिए खान के मालिकों की ओर से ख़ूब प्रोत्साहन मिलना शुरू हुआ।

स्टीफेन्सन ने वर्षों के अथक परिश्रम के उपरान्त अत में बड़े आकार का एक इजिन तैयार किया। उसने अपने इजिन का ब्वायलर बहुत लम्बा बनाया। इस इजिन की चिमनी भी बहुत ऊँची थी, जिससे भाप बहुत जल्द बनती थी और इजिन मे शक्ति भी काफी पैदा होती थी। स्टीफेन्सन का यह इजिन ६० मन का बोझा ५ मील प्रति घण्टा की रफ्तार से खींच लेता था। यह सन् १८१८ की बात है।

किन्तु ये इजिन और उसके डिब्बे चलते समय बहुत ज्यादा हिलते-डुलते थे। अतः केवल कोयला, पत्थर, आटा आदि ऐसी चीजें, जो टूट-फूट नही सकती थी, इन रेलगाड़ियों मे लादी जाती थीं। किन्तु स्टीफेन्सन तो सवारी-गाड़ी को खींचनेवाला इजिन तैयार करना चाहता था। आख़िर उसका यह स्वप्न भी २७ सितम्बर, १८२५, को पूरा हुआ। ससार की यह सर्वप्रथम पैसेञ्जर ट्रेन थी। इसमे ६ माल-गाड़ी के डिब्बे थे, जिनमे आटा और कोयला लदा था; एक डिब्बा कम्पनी के डायरेक्टरो के बैठने के लिए था, और ३१ डिब्बे पैसेञ्जरों के बैठने के लिए जुड़े हुए थे। इस गाड़ी को १२ मील प्रति घण्टा के वेग से भागते देखकर दर्शकों ने दाँतों तले उँगलियाँ दबा लीं। इस छोटी-सी गाड़ी पर लगभग ६०० आदमी चिपके हुए थे।

उन दिनों साधारण जनता फक-फक धुँआ उगलनेवाले इस लोहे के नवीन दानव से बहुत डरती थी। इसलिए इंजिन के आगे-आगे लाल झण्डा लिये हुए एक आदमी असली घोड़े

पर चढकर चलता था। पहले रेलगाडी सिर्फ दिन के समय चलती थी, रात को ठहर जाती थी। बाद मे जब रात को भी गाडी चलने लगी, तो रास्ता दिखाने के लिए इजिन के सामने एक बडी अँगीठी रक्खी जाने लगी। इस अँगीठी मे लकड़ी जलाकर रोशनी करते थे, ताकि रास्ता दिखाई दे। इजिन के सामने अक्सर जानवर आ जाया करते थे। उन्हे ड्राइवर बन्दूक़ मे मटर की छर्रियाँ भरकर मारता था, जिससे वे रेल का रास्ता छोड़कर भाग जायँ। इजिन मे कोयले के स्थान पर पहले लकडी ही जलाते थे। रास्ते में जब ईंधन चुक जाता, तो मुसाफिर उतरकर पास के पेडों से लकडी तोड़ लाते, और यदि राह चलते पानी ख़त्म हो जाता तो ब्वायलर के लिए पानी भी ढूँढ लाते थे।

आधुनिक जहाज़ों का इंजिन जिसमें भाप का प्रयोग किया जाता है

इस इंजिन की शक्ति ३०००-अश्वबल (Horse-Power) के बराबर है। अधिकांश जहाज़ों में यही इंजिन लगाया जाता है। इसको चलाने के लिए भाप अलग ब्वायलर में तैयार होती हैं।

सिगनल का भी अजीब तमाशा था। स्टेशन पर एक ऊँचा-सा मचान बना रहता था। जिस समय ट्रेन आने का वक्त होता, स्टेशन मास्टर मचान पर चढ जाता था। गाड़ी का धुवाँ देखते ही वह उतर आता और घण्टी बजाकर मुसाफिरो को आगाह कर देता था।

किन्तु बहुत थोडे समय मे ही शक्तिशाली रेलवे इजिन बनने लगे। अब तेज रोशनी की सर्चलाइट की मदद से ड्राइवर मीलो दूर अपना रास्ता देख सकता है। समूची रेलगाडियो की बनावट व चाल-ढाल मे भी आश्चर्यजनक और महत्त्वपूर्ण परिवर्त्तन हुआ है। अमेरिका और इङ्गलैण्ड मे तेज़ रेलगाडियाँ एक सिरे से दूसरे सिरे तक एकदम सपाट बनाई गई हैं। इनके बनाने मे लोहे की जगह अल्यूमिनियम की चादर काम मे लाई गई है। चिमनी, गुम्बज आदि झंझटों से ये गाड़ियाँ सर्वथा मुक्त हैं। इनके इंजिन भाप से नहीं चलते, वरन् इन्हे चलाने के लिए एक बहुत ही सस्ते क़िस्म के मिट्टी के तेल का प्रयोग करते हैं। ये इंजिन आठ-नौ सौ अश्व-बल रखते हैं; अतः १२० मील प्रति घण्टा की गति से यह रेलगाडी सफ़र करती है।

जिन स्थानो मे सस्ते मे बिजली प्राप्त की जा सकती है, अब वहाँ विद्युत्-शक्ति से चलनेवाले इजिन रेलगाड़ी खीचने लगे हैं। परन्तु रेलगाडियो के संचालन में तेल या बिजली की शक्ति का प्रयोग अभी बहुत कम मात्रा मे हो रहा है। अधिकाश रेलगाडियाँ अब भी भाप के ही बल से दौडती हैं।

रेलवे-यात्रा मे समय की बचत के लिए भी अनेक आविष्कार किये गये हैं। एक फ्रेञ्चमैन ने स्वयंक्रिय कप्लिंग

की ईजाद की है। इनकी मदद से गाड़ियों के डब्बे स्वय धक्का लगने पर एक दूसरे से जुड़ जाया करेंगे। इजिनों में कोयला लादने में भी काफी समय नष्ट होता था, मगर इस काम के लिए भी बिजली की मशीने लग गई हैं।

जेम्स वैट द्वारा प्रथम वाष्प-इजिन के आविष्कार के डेढ़-सौ साल के भीतर ही भाप की शक्ति के प्रयोग का आश्चर्यजनक विकास हुआ है। यदि सन् १८१० की दुनिया के किसी व्यक्ति से—स्वय जैम्स वैट ही से—यह कहा जाता कि सौ साल ही के बाद पृथ्वी पर लगभग आठ लाख मील लबी लोहे की पटरियों की सड़के बिछ जायँगी, जिन पर मीलों लबे पुलों और सुरगो द्वारा बड़ी-बड़ी नदियों को लाघती और पर्वतमालाओं को फोड़ती हुई, हजारों रेलगाड़ियाँ, रात-दिन दौड़ती रहेंगी, तो शायद ही वह इस बात पर विश्वास करता। शायद ही वह इस बात की कल्पना कर सकता कि इसी भाप की शक्ति के बल पर एक छोटे नगर की पूरी आबादी—तीन-चार हजार मुसाफिरों—को भीमकाय जहाज हफ्ते भर ही में अटलाटिक महासागर को लाँघकर योरप से अमेरिका पहुँचा दिया करेंगे, और सरपट दौड़नेवाली रेलगाड़ियाँ पेरिस से चलकर योरप व एशिया की विशाल छाती को चीरती हुई पेकिङ्ग तक की दौड़ लगाया करेंगी।

किन्तु मनुष्य की अद्भुत वैज्ञानिक बुद्धि ने आज यह सब और इससे भी अधिक अचरज-भरी बाते सार्थक कर दिखाई है। ये आज हमारे रोजमर्रे की साधारण बाते हो गई हैं, जिन्हें देखकर हममें से किसी को भी आश्चर्य नहीं होता। आज तो मनुष्य भाप से हटकर तेल से उत्पन्न की हुई गैस व बिजली की शक्ति की ओर बढ रहा है, और स्वय भाप के इजनों में भी अब आश्चर्यजनक फेर-फार किये जाने लगे हैं। इसके प्रमुख उदाहरण आज के रेल और जहाजों के इजिन हैं। इन इजिनो के केवल आकार-प्रकार या शक्ति ही में वृद्धि नहीं हुई है, बल्कि सौ वर्ष के अनुभव और दिन पर दिन पैदा होनेवाली नई-नई आवश्यकताओ ने इनकी भीतरी रचना और सिद्धान्त मे भी क्रान्तिकारी उलटफेर कर दिया है। निरतर सुधार और परिवर्तन के होते हुए भी लगभग डेढ़ सौ वर्ष तक भाप के इजिन उसी सिद्धान्त पर काम करते रहे, जिसका आविष्कार और प्रयोग न्यूकोमेन और जेम्स वैट ने किया था। इस सिद्धान्त के अनुसार भाप अलग बायलर मे पैदा करके एक सिलिण्डर में पहुँचाई जाती है, जिसमें वह अपने दबाव के धक्के से एक पिस्टन को आगे ढकेलती है। इस पिस्टन से एक डंडा पहियों की धुरी से जुडा रहता है और विशेष प्रकार की यान्त्रिक व्यवस्था के अनुसार वह पिस्टन की आगे-पीछे की दोहरी सीधी गति को पहिए की वर्त्तुलाकार गति मे परिवर्त्तित कर देता है। आज के हजारों भाप के इजिन इसी सिद्धान्त पर काम करते हैं। किन्तु उन्नीसवी शताब्दी के आख़िर मे (सर) चार्ल्स पार्सन्स नामक एक अग्रेज़ वैज्ञानिक ने एक नये ही ढग के वाष्प-इजिन की रचना की, जिसमें बिलकुल दूसरा ही सिद्धान्त काम मे लाया गया था। इस इजिन का नाम 'टरबाइन इजिन' पड़ा। 'टरबाइन' (Turbine) एक लैटिन शब्द है और इसका अर्थ है, वह जो अपने ही आस-पास लट्टू की तरह लहरदार चक्कर काटते हुए गतिशील हो। इस इजिन का सिद्धान्त वास्तव में सिकदरिया के विद्वान् हीरो द्वारा आविष्कृत भाप के इजिन के सबसे आदिम रूप से मिलता जुलता था। इस नये इजिन का मूल सिद्धान्त पिस्टन और डडे के घुमाव के उपयोग की झझट मे पडे बिना भाप की गत्योत्पादक शक्ति को वर्त्तुलाकार गति में परिवर्त्तित करना था। इस सबध में यह बात ध्यान मे रखना आवश्यक है कि पानी से भाप बनाने में कोयला या ईंधन के रूप मे कुछ शक्ति ख़र्च होती है। जब भाप पैदा होती है, तो उसमे यह शक्ति जमा रहती है। इस शक्ति की मात्रा भाप के दबाव और ताप की मात्रा पर निर्भर करती है। दबाव और ताप की वृद्धि के अनुपात मे इस शक्ति मे भी वृद्धि होती है। साधारण भाप के इजिन मे इसका प्रयोग सिलिण्डर के पिस्टन को इधर-उधर घुमाने मे किया जाता है। इस क्रिया मे इस शक्ति का जितना उपयोग होना चाहिए, उतना नहीं हो पाता और वह भाप का दबाव और ताप घट जाने के कारण व्यर्थ मे नष्ट हो जाती है। टरबाइन इजिन में इसी व्यर्थ के व्यय को बचाने का प्रयत्न किया गया है और यह काम पिस्टन या डडे के फेर में पडने के बजाय सीधे पहिये या चक्र पर ही भाप की प्रतिक्रिया कराकर सिद्ध किया गया है। आज दिन बड़े-बडे जहाजों में इसी नये ढग के इजिनों का प्रयोग होता है।

टरबाइन इजिन की रचना और उसके कार्य करने की विधि के सबध में विशेष बाते हम आधुनिक युग के जहाज़ो के विकास सबधी आगे आनेवाले लेख मे बतायेंगे। इसी प्रकार रेल के इजिनों की रचना और कार्य-विधि पर भी रेलगाड़ियो सबंधी आगे आनेवाले लेख मे प्रकाश डाला जायगा।
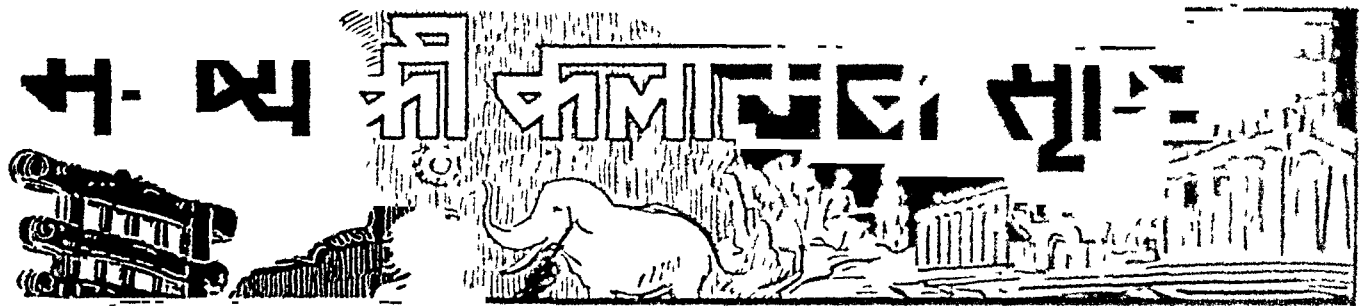
प्राचीन मिस्र की कला—(१)

आज से कुछ ही वर्ष पहले यदि कोई यह घोषणा करता कि प्राचीन मिस्र की कला हर दृष्टि से यूनान की कला के बराबरी की या रोम की कला से कहीं बढ़ चढ़कर है तो निस्सन्देह उसको अच्छी फटकार मिलती और कुछ नहीं तो उसकी खिल्ली ज़रूर उड़ायी जाती। किन्तु इसके विपरीत आज उलटे यूनान और रोम की कला को मिस्र की कला की कसौटी पर जाँचा जाता है। प्रागैतिहासिक युग के धुँधले कोहरे से बाहर निकलने पर मिस्र ही में हमें कला के क्षेत्र में मनुष्य के सबसे प्राचीन स्मारक मिलते हैं। इस लेख में प्राचीन मिस्र की कला पर सामान्य रूप से विचार किया गया है, अगले लेख में उसकी विशद आलोचना की जायगी।

मानव सभ्यता का कांस्य अथवा ताम्रयुग (the Bronze Age) अपने पूर्ववर्ती प्रस्तर-युग की भाँति सहस्रों वर्ष तक चलता रहा। इस युग में भी मनुष्य का जीवन उतना ही कठोर या अपरिष्कृत एवं शुष्क था, जितना कि प्रस्तर-युग में, किन्तु इसी काल में पृथ्वी पर मनुष्य के अस्तित्व को सुगमतर बनानेवाली जीवन की अनेक सुविधाओं का आविष्कार हुआ। ज्यों-ज्यों एक के बाद दूसरी शताब्दियाँ बीतती गईं, मनुष्य ने मक्का, जौ, बाजरा और सन आदि के उपयोग और उत्पत्ति का ज्ञान प्राप्त किया और घरेलू कार्यों के लिए पशुओं का पालना सीखा। कुछ और आगे चलकर, धातुओं को शोधने या पृथक् करने की कला का भी अनुसन्धान हुआ। सुवर्ण सम्भवतः सर्वप्रथम धातु थी, जिसका मनुष्य ने अनुसन्धान किया। इसके पश्चात् ताँबे (ताम्र) की बारी आई। कांस्य युग के मनुष्यों को किसी शुभ संयोगवश यह बात मालूम हो गई कि शुद्ध ताँबे के साथ टिन धातु का मिश्रण कर देने से उसमें काफी मजबूती आ जाती है। इस मिश्रण के परिणामस्वरूप जो धातु उन्होंने बनाई, उसी की संज्ञा मानव इतिहास के इस काल को दे दी गई है, जिससे यह काल 'कांस्य युग' या 'ताम्रयुग' (the Bronze Age) कहलाता है।

कांस्य युग के मानव की कला के बहुत-से नमूने खोज निकाले गये हैं और इनमें उस काल की नक्काशीदार तलवारें, कंगन, खंजर, नक्काशीदार ताबीजनुमा मुद्राएँ (plaques) तथा अन्य कई वस्तुएँ मिली हैं। प्रस्तर-युग के लोगों की भाँति दृश्य पदार्थों के निर्माण की अपेक्षा कांस्य युग के लोगों की प्रवृत्ति आभूषणों

आदिम मनुष्यों के शिलागृहों या समाधियों (Dolmens) के कुछ अवशेष

यह इंगलैंड में पाये गये शिलागृहों का चित्र है। इनसे हमें भवन-निर्माण के क्षेत्र में मनुष्य के प्रारम्भिक प्रयास की झलक मिलती है।

देर-अल-बहरी (Deir-El-Bahari) का मन्दिर और उसके पीछे का कगार

यह मन्दिर आज से करीब २५०० वर्ष पूर्व बनाया गया था। मन्दिर के पीछे चट्टानों के ऊँचे खड़े कगार पर ध्यान दीजिए। मिस्र वालों की इमारतों की रचना-शैली पर इन चट्टानों के आकार और रूप की स्पष्ट छाप है, जिससे प्रतीत होता है कि इन्हीं से उनको अपनी स्थापत्यशैली के निर्माण में मुख्य प्रेरणा मिली होगी।

की सजावट करने की ओर अधिक थी। इसके अतिरिक्त [illegible] की ओर भी उनका झुकाव होने के प्रमाण पाये जाते हैं। शिलाखण्डों को एक-दूसरे पर रखकर बनाये हुए आदिम शिलागृहों (Dolmens) (देखिए पृष्ठ ३४३ — [illegible]) अथवा पत्थर की समाधियों में, जो आगे चलकर [illegible] पुरातन मिस्र की कला में अपने विकास की चरम सीमा को पहुँच गये, इस दिशा मे हमे उनकी आरम्भिक आकाक्षाओ के दर्शन होते हैं। इस प्रकार के आरम्भिक शिलागृह या 'डॉलमेन' पुरातत्ववेत्ताओ को ब्रिटैनी के समुद्र-तट से कुछ हटकर स्थित गैवरीनिज (Gavr'inis) नामक द्वीप मे मिले हैं और इसी तरह के अन्य उदाहरण या नमूने फ्रान्स, डेनमार्क, स्वीडेन, स्पेन और पुर्त्तगाल मे भी पाये गये हैं। इन आरम्भिक रचनाओं मे जो शिल्पकारी है, वह कतिपय दुर्लभ उदाहरणो को छोड़कर, प्रायः आयताकार (geometrical) अर्थात् भूमिति की रेखाओं का अकन मात्र है, उसमे मनुष्य या पशु के जीवन का चित्रण करने का कोई प्रयत्न नही किया गया है।

प्राचीन मिस्र के इतिहास का वर्णन डा० त्रिपाठी ने 'हिन्दी विश्व-भारती' के पिछले भाग मे इतने सराहनीय ढग से किया है कि इस पुरातन देश की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के सम्बन्ध मे यहाँ विशेष कुछ कहना अनावश्यक प्रतीत होता है। किसी भी देश की कला, वहाँ के निवासियो की वेषभूषा और चरित्र-सबधी विशेषताओ की भाँति, उस देश की प्राकृतिक दशा पर निर्भर है। वह उस देश विशेष की अवस्थाओं के साथ सामञ्जस्य रखनेवाले विचारों और भावनाओ ही का स्पष्टीकरण है। एक

मात्र निकृष्ट कला वही है, जो यान्त्रिक (mechanical) बन गई हो, जिसमें वास्तविक भावनाओं और विचारों को व्यक्त करने की प्रेरणा नष्ट हो चली हो और जिसका लक्ष्य या कार्य ऐसी शैलियों और प्रवृत्तियों का अनुकरणमात्र रह गया हो, जो देश विशेष के वातावरण की वास्तविक अवस्थाओं से तनिक भी सबध न रखती हों।

अबु सिम्बेल के महान् देवालय के सभामण्डप का एक दृश्य

छत की चित्रकारी की बारीकी और दोनों ओर खड़ी भीमकाय मूर्त्तियों की विशालता के अंतर पर गौर कीजिए। यह मंदिर ग्यारहवें राजवंश के सम्राट् रामसेज़ द्वितीय द्वारा लगभग १२५० ई० पू० (अर्थात आज से लगभग २००० वर्ष पूर्व) बनाया गया था।

मिस्र की प्राकृतिक अवस्थाओं की तात्विक विशेषताओं मे सर्वप्रथम वहाँ के सूर्य का असह्य प्रचण्ड ताप है। दूसरी विशेषता है वहाँ के बालुकामय मरुप्रदेश की सुदूरव्यापी अनुर्वरता और बीच की सङ्कीर्ण घाटी की सुरम्य हरियाली का पारस्परिक गहरा अन्तर या असगति, और तीसरी मुख्य विशेषता है एक ही लबे सिलसिले मे समतल मैदान में फैले हुए वहाँ के अनाज के खेतों, बंजर पठारों और चूने या खड़िया पत्थर के स्तरों की दूर तक फैली हुई शृंखलाएँ, जिनके दोनों ओर सैकड़ों फीट ऊँची चट्टाने समान रूप मे लगातार खड़ी चली गई हैं।

मिस्री सूर्य के निर्दय ताप की चकाचौंध के कारण ही वहाँ वातायन-रहित सपाट दीवालोंवाले भवनों का आविष्कार हुआ। इन दीवालो मे स्थान-स्थान पर उत्तरकालीन कला की निर्माण-शैलियों के ढंग की शिल्पकारी का प्रदर्शन नहीं था, वरन् उन पर अंकित या चित्रित दृश्यों की भरमार थी। इस तरह दीवाल का धरातल भवन का भाग न होकर मानो चित्रित पेपिरस अथवा शिला-लेख का विस्तार-सा बन गया। दीवारों, खम्भों आदि पर उभरी हुई मूर्तियाँ प्रायः सुन्दर होते हुए भी विशाल मिस्री मन्दिरों के भीतर धुँधले प्रकाश के कारण स्पष्ट नहीं दीख पड़ती थीं, अतः उन्हें विशेषतया स्पष्ट करने के लिए उन पर गहरा रंग

ा। नग का यह प्रयोग इतना अधिक होने
ाने के उद्देश्य से प्राय. अत्यत उच्च
का मूर्त्तियों पर भी एक प्रकार का अत्य-
लेप या प्लास्टर (stucco) चढा दिया
के कारण बहुत-सी अति सुन्दर मूर्तियों की
य बलिदान हो जाता था।
एकान्त उर्वरता के मध्य मे पाये जाने-
न्धीय वनस्पति की हरियाली की प्रचुरता
मिस्र की इमारतो मे उनके बाहरी रूप
विशालता तथा भीतर की ओर बारीकी के
त्यत सूक्ष्म शिल्पकारी की मात्रा के अद्भुत विशारदों को अपने क्षेत्र मे करना पड़ा, वहाँ की मूर्ति-कला पर दुगुनी शक्ति के साथ लागू हुए। विशाल आकार-प्रकार के रहस्यमय मिस्री मन्दिर मे ग्रीस की मूर्तियो जैसी कोई भी मूर्ति बहुत तुच्छ खिलौने-सी प्रतीत होती। ग्रीस की मूर्ति-कला की उल्लसित मासलता नृत्य करते हुए चरवाहो के जीवन और लहराती नदियो के देश की उपज है, वह उस क्षणभगुर विश्व की वस्तु है, जहाँ का सौन्दर्य अस्थिर है—वह अनत के भाव को व्यक्त करनेवाले प्राकृतिक दृश्य अथवा स्थापत्य की वस्तु नही। मिस्र के कलाकारों की मानसिक अवस्था को समझने के लिए हमे उन विशेषताओं या गुणों की ओर ध्यान देना पडेगा, जो उनके साहित्य मे जीवन के आदर्श-स्वरूप माने गये हैं। प्राचीन मिस्र मे अटल स्थिरता (Stability) और शक्ति या दृढता सब गुणो से अधिक प्रशसनीय समझे जाते थे और सार्वजनिक स्मारको (Public Monuments) का नाम ही वहाँ "स्थिर वस्तुएँ" था। मिस्रवासियों मे शक्ति, चिरस्थिरता, भव्यता, सामञ्जस्य और कर्मठता की भावना अत्यत पूर्ण रूप में विद्यमान थी। इस भावना मे सहानुभूति और दया का भी पुट था, जो एक विस्तृत सुसगठित ढाँचे को सबद्ध किये हुए थी। मिस्री कलाकार इन सारे जीवन के उद्देश्यों को अपनी कला में इस सत्यता और शक्ति के साथ सम्पुटित एव अभिव्यजित करते थे कि उनके व्यक्तित्व का प्रभाव उन सभी पर पड़ा है, जो उनकी कलाकृतियों की ओर आकृष्ट हुए हैं। वे अपने बाद आनेवाली किसी भी जाति की तुलना में सच्ची कला के सिद्धान्तों का पूर्णतया प्रतिपादन करते हैं।

सम्राट् जोसेर का सीढ़ीनुमा पिरामिड

यह मिस्र की सबसे प्राचीन इमारतो मे माना जाता है। इसकी रचना लगभग ५००० वर्ष पूर्व उस युग के महान् मिस्री स्थपति इमहोतेप ने की थी। इसी तरह के पिरामिडो से आगे चलकर मिस्री पिरामिडो का विकास हुआ।
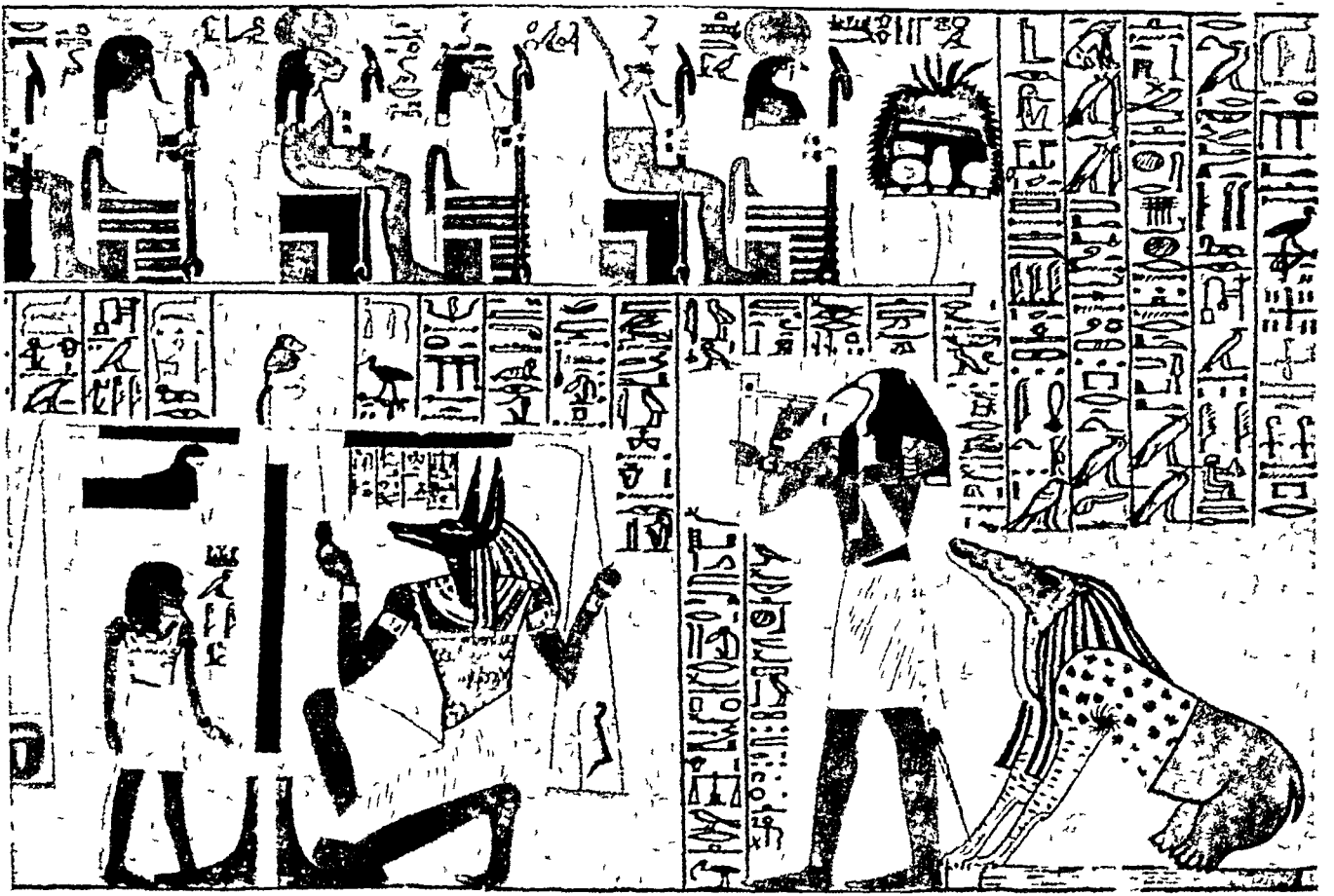
प्राचीन मिस्र की चित्रकला के उत्कृष्ट स्मारक—'अनी' के पेपीरस के दो दृश्य

ये चित्र ब्रिटिश म्युज़ियम में सुरक्षित प्राचीन मिस्र के एक 'पेपिरस' (एक प्रकार के कागज़ पर लिखित लेख) के अंश हैं। बीच-बीच में अंकित मिस्री भाषा की चित्रलिपि के चिह्न हैं, जिनसे आगे चलकर ग्रीक, लैटिन आदि भाषाओं के अक्षर बने।